श्री
रामानन्दाचार्य
चरितम्

महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतम्

श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्

महाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतम्

श्रीतुलसीपीठ सेवा न्यास, चित्रकूट
के लिये अनामिका प्रकाशन द्वारा प्रकाशित

पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक/लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को, किसी भी माध्यम से प्रयोग नहीं किया जा सकता।

श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्
© महाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्य

प्रकाशक :

श्रीतुलसीपीठ सेवा न्यास, आमोदवन, चित्रकूट, जनपद-सतना (म०प्र०)- 485331 के लिए *अनामिका प्रकाशन*, 52, तुलाराम बाग, प्रयागराज-211006, द्वारा प्रकाशित

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- **श्रीतुलसीपीठ** सेवा न्यास,
  आमोदवन, पो० नयागाँव, चित्रकूट जनपद-सतना (म०प्र०) - 485331
  मो. 09451491008

- *अनामिका प्रकाशन*
  52, तुलाराम बाग, प्रयागराज-211006, मो. 9415347186, 9415892895
  e-mail : anamikabooks@gmail.com

न्यौछावर : रू. 1000

प्रथम संस्करण : 2022

ISBN : 978-93-90683-85-7

श्रीतुलसीपीठ सेवा न्यास, चित्रकूट के लिये अनामिका प्रकाशन 52, तुलारामबाग, प्रयागराज द्वारा प्रकाशित एवं प्रिंटवर्क्स, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

॥पुरोवाकः॥

॥नमो राघवाय॥

सीतारामगुणानुवादविलसत्सुस्वादसंस्वादितं
रामानन्दजगद्गुरूडुपकलाकल्पात्मकं कामदम्।
वेदाम्भोनिधिजन्मजन्मकरणव्याध्येकसद्भेषजं
विद्वच्चारुचकोरकैरथ महाकाव्यामृतं पीयताम्॥

अयि गीर्वाणगिरिश्रद्दधाना विमाना भारतभारतीसन्तानाः, सुविदितमेव तत्र भवतां भवतां गीर्वाणवाणीमहाकाव्यपारम्पर्यम्। समारभ्य वाल्मीकीयरामायणं यावत्प्रत्यग्ररचितमन्महाकाव्यं निर्जरगव्यां गव्यायन्ते समसङ्ख्यानि महाकाव्यललामानि। तेषु किमप्यन्यतमं प्रत्यग्ररचितं मया 'श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्' भवद्भ्यः पुरस्क्रियमाणमास्ते। नचिरादेव रचितं मया सप्तविंशतिसर्गात्मकं महाकाव्यं प्रसादगुणसंवलितं वैदर्भीरीति[illegible]श्रीरामनवनीतसर्पिरिवासर्पति सकले जगति। अस्मिन् अनुष्टुबिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवंशा–द्रुतविलम्बितशार्दूलविक्रीडितमालिनीस्रग्विणीहरिणीपुष्पिताग्राशिखरिणी प्रहर्षिणीमत्तमयूरिकाप्रमाणिकोपजातिस्रग्धरादोधकत्रोटकाश्वधाटीललितगीतशालिनीमन्दाक्रान्ता प्रभृतीनि छन्दांसि स्वच्छन्दानि छन्दायन्ते, अलङ्काराः समलङ्कुर्वन्ति काव्यसौष्ठवेन रसिकमानसोपवनानि। पौराणिकं सप्तविंशतिसर्गात्मकं महाकाव्यमेतत् प्रतिसर्गं नवोत्तरशतश्लोकैः श्लोकितम्। भक्तिरसप्रधानं पुरस्कृतभारतीयसंस्कृतिविधानं निचितवैदिकसिद्धान्तसन्तानं वैष्णवयशस्सुरभिशोभमानं दार्शनिकराद्धान्तमण्डनमण्ड्यमानं सहृदयमनोरोलम्बान् नन्दनकाननमिव स्वाभिमुखं करिष्यतीति वर्तते मन्मानसे निरत्ययः प्रत्ययः। को न वेत्ति विद्वान् सुशीलापुण्यसदनपुण्यसमुद्भवत्रिदण्डिचूडामणियतीन्द्र–वृन्दारकसिद्धकुञ्जरभगवद्भक्तनागानागः श्रीमदाद्यजगद्गुरुरामानन्दाचार्यशरत्पार्वणचन्द्रचारुचरितानि। मत्पूर्वं नैके प्रतिभाधनिनः कीर्तिं गीतवन्तो भगवद्विग्रहाणां रामानन्दाचार्याणाम्। अहमपि स्वगवीपिपावयिषया प्रबध्नामि स्म प्रबन्धमहाकाव्यं चैतत्। आशासे यन्महाकाव्यकुशेशयमिदं निर्जरगवीसमाराधकान् श्रीरामभक्तान् वैष्णवान् आस्तिकान् तर्ककर्कशविचारचातुरीन् प्रकामं प्रसादयिष्यति। एतन्महाकाव्यलेखने मामकीना विधेया अन्तेवासिनो मां प्रकाममुत्साहितवन्तः। मत्तुलसीपीठोत्तराधिकारी आचार्यरामचन्द्रदासः

प्रकामं मां सौविध्येन सेवया परितोषितवान्। अमितलालः प्रयागवास्तव्यो नैव विस्मर्तुं शक्यते। वर्तनीसंशोधने भूयांसं परिश्रममकार्षीद् विश्वम्भरोपाध्यायः (एकराजपौडेलः)। एवं हिमांशु त्रिपाठी, कुलदीपपाण्डेयः, कश्यपोपाध्यायो, विनयभारद्वाजो, गोविन्दशाण्डिल्यो, दीनानाथदासः, इमे सर्वेऽपि महाकाव्यप्रणयने मम पुरः समनुकूलां परिस्थितिं समुपस्थापितवन्तः। इमे सर्वे शुभाशीराशिभिः संयोज्यन्ते।

मद्भगिनी मातृकल्पा साकेतवासिनी सुश्री गीता मिश्रा प्रणामपुष्पाञ्जलिना समर्च्यते। यस्याः शुभाशिर्भिः काव्यतेतत् पूर्णमकार्षम्।

अस्मच्छिष्या भगिनीकल्पा तुलसीप्रज्ञाचक्षुर्बधिरोच्चतरमाध्यमिकविद्यालयस्य प्राचार्या सुश्री निर्मला वैष्णवी, कण्वस्य शकुन्तलेव मम पालिता पुत्री मालिका, इमे द्वे अपि महाकाव्यप्रबन्धने माम् अलमुत्साहितवत्यौ। इमे आशीर्वादपात्रीभूते।

मत्कुलवधूर्मत्पुत्रवधूश्च मत्पुत्रकल्परोहितमिश्रधर्मपत्नी अखण्डसौभाग्यवती गरिमा मिश्रा मद्गोत्रोद्भवो रोहितमिश्रो, दम्पती अमू आशीर्वादैः सँल्लाल्येते। एतयोः पुण्यद्रविणेन श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्यं पुस्तककलेवरं प्रापत्। एतत्काव्यविरचने प्रत्यक्षतः परोक्षतश्च मां ये सहायितवन्तस्तेष्वाधमर्ण्यं बिभर्मि।

श्रीवाल्मीकिसमारम्भां कालिदासार्यमध्यमाम्।
तुलसीदासपर्यन्तां वन्दे कविपरम्पराम्॥

इति मङ्गलमाशास्ते
विद्वत्परितोषमनोरथवशंवदः
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीशो
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यः

वि.सं. 2063
चैत्र कृष्णद्वादशी रविवारः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

प्राङ्निवेदनीयम्

नत्वा सीतापतिं रामं रामानन्दं जगद्गुरुम्।
रामानन्दाचार्यचरिते प्राङ्निवेद्यं निवेद्यते ॥

यह तथ्य आविद्वत्पामर सर्वविदित है कि इस कराल कलिकाल में हिन्दूधर्म का उद्धार करने के लिये स्वयं भगवान् राम ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के रूप में प्रयाग में सौभाग्यवती सुशीला एवं वसिष्ठवंशावतंस पुण्यसदन शर्मा को निमित्त बनाकर 1356 की माघ कृष्णसप्तमी को समवतीर्ण हुए और 1515 की चैत्र शुक्ल नवमी को सशरीर भगवान् श्रीराम में समाविष्ट हो गये थे। इन दोनों विक्रमी संवतों का अन्तराल लगभग 159 वर्षों का था अर्थात् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का कार्यकाल 159 वर्ष का रहा है। जब साक्षात् भगवान् राम ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के रूप में अवतीर्ण हुए तो उनके लोकोत्तरचरित्रों की वर्णना ही क्या की जाये। **'लोकोत्तराणां चरित्रं हि पूर्णम्'**। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जब उपवीत के लिये प्रस्तुत हुए तब लोकरीति के अनुसार श्रीकाशीगमन के लिए उन्हें प्रेरित किया गया और मार्ग में सामान्य बच्चों की भाँति लोगों ने उन्हें मनाना चाहा पर जगद्गुरु जी ने कहा– "मुझे नाटक स्वीकार नहीं है।" इसलिए अपनी आठ वर्ष की अवस्था में ही घर–द्वार, माता–पिता छोड़कर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी परिव्राजक होकर, तत्कालीन प्रख्यात सन्तशिरोमणि जगद्गुरु राघवाचार्य जी से उन्होंने विरक्त श्रीराम मन्त्र दीक्षा और त्रिदण्ड धारण किया। अपनी दिग्विजय यात्रा में जगद्गुरु श्रीमद्रामानन्दाचार्य जी ने चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि नास्तिकों को पराजित किया और वेदान्त के तत्कालीन प्रचलित सभी वादों से निष्क्रिय रहकर विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया और विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार ही जगद्गुरु ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखा। अनेक विद्वानों को परास्त किया। पञ्चगङ्गा घाट पर कुटी बनाकर बिराजे। विक्रमी संवत् 1356 के माघ कृष्णा सप्तमी को अवतार लेकर विक्रमी संवत् 1515 की चैत्र शुक्ल नवमी को राम जी में स्वयं समाविष्ट करने वाले महात्मा जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने हिन्दू धर्म का एक ऐसा अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया जो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। जगद्गुरु जी ने एक साथ परावर्तन सिद्धान्त के आधार पर अपने योग

बल से 25 लाख उन हिन्दुओं को, जिन्हें विधर्मियों ने यवन बना दिया था, शिखा सूत्र से अलङ्कृत किया और उनकी कमियाँ समाप्त करके यथावत् प्रस्तुत कर दिया। अनेक सिद्धों को जगद्गुरु जी ने अपनी प्रतिभा से परास्त कर दिया। यह है उनकी संक्षिप्त जीवन जाह्नवी।

इसी पौराणिक तथ्यात्मक वर्णना को आधार मानकर श्री रामानन्दाचार्य परम्परा में चतुर्थ रामानन्दाचार्य पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीण हमारे सद्गुरुदेव **जगद्गुरु रामभद्राचार्य** जी ने सत्ताईस सर्गों में '**श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्**' प्रस्तुत किया। जिसे देखकर हम यही कह सकते हैं कि–

रामभद्रो हि जानाति रामभद्रसरस्वतीम्।
रामभद्रो हि जानाति रामभद्रसरस्वतीम्॥

आप सब इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं कि–

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

अर्थात् इस संसार में मनुष्य होना ही बहुत दुर्लभ है और मनुष्य होने पर भी प्रत्येक मानव को तो विद्या आती नहीं अतः हजारों मनुष्यों में से कोई एक विद्वान् कवि बनता है और प्रत्येक कवि को स्वाभाविक काव्य रचना की पाटवी मण्डिता शक्ति प्राप्त नहीं होती, यही सबसे सुदुर्लभ है। सौभाग्य से हमारे गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामि रामभद्राचार्य जी में चारों बातें देखी जाती हैं। वे इस युग के महामानव पद वाक्य प्रमाण तीनों में असाधारण अदूष्यवैदुष्य धारण करने वाले मनुष्य कवि और कवित्व शक्ति से अलङ्कृत महापुरुष हैं। शङ्कराचार्य जी से लेकर अद्यावधि जितने भी आचार्य हुए उनमें से शङ्कराचार्य जी को स्तोत्र रचना में पाटव प्राप्त था अर्थात् उन्होंने बहुत से सुन्दर-सुन्दर स्तोत्र लिखे और अन्य किसी आचार्य ने नहीं परन्तु भाग्य से हमारे जगद्गुरु जी में काव्य की सभी विधायें विराजमान हैं। उन्हीं को निहारकर विद्वज्जन उनकी प्रतिभा को प्रणाम करने के लिये और उनकी असाधारण मेधा की वरिवस्या करने के लिये विवश हो जाते हैं। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामि रामभद्राचार्य जी ने कविता की सभी विधाओं में अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया है। संस्कृत में तो उनके चार महाकाव्य हैं– भार्गवराघवीयम् (प्रबन्धमहाकाव्य), गीतरामायणम् (गीतमहाकाव्य), दशावतारचरितम् (गद्यमहाकाव्य) और अभी-अभी निर्मित हुआ रामानन्दाचार्यचरितम्। (27 सर्गों का विशाल महाकाव्य जो पौराणिक मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।) यहाँ यह कहना अतिरञ्जना नहीं होगी कि वेदव्यासजी के पश्चात् संस्कृत जगत् का सबसे बड़ा महाकाव्य है–'रामानन्दाचार्यचरितम्'। इसके पूर्व श्रीहर्ष द्वारा लिखित 22 सर्गों का 'नैषध' महाकाव्य था पर यह महाकाव्य 27 सर्गों

में है, इसकी भिन्न अनेक विशेषताओं में एक विशेषता यह है कि यहाँ श्लोक की संख्या पर भी नियन्त्रण है। अर्थात् 27 सर्ग के इस विशाल महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग 109 श्लोकों का ही है। इसकी भाषा बहुत प्राञ्जल है और शैली सुबोधगम्य है। यह वैदर्भी रीति से निबद्ध भक्तिरसप्रधान महाकाव्य है। संस्कृत के प्राचीन नवीन बहुतेरे ऐसे प्रयोग इस महाकाव्य में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जिन्हें अनुशीलित कर प्रत्येक रसिक जगद्गुरु जी की प्रतिभा को नमन करने के लिए विवश हो जाता है। रूपक, उपमा, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास, विभावना, यमक, अनुप्रास आदि अलङ्कार स्वाभाविक रूप से आचार्यचरणों की प्रतिभा का उपादान प्राप्त कर धन्यता का अनुभव कर रहे हैं और संस्कृत साहित्य के वृत्तों में अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, इन्द्रवंशा, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, मालिनी, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, स्रग्विणी, शालिनी जैसे अनेक प्रसिद्ध छन्द इस महाकाव्य में स्वच्छन्दता से आकर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने में कृतकार्य हो सके हैं। कतिपय ऐसे छन्द आचार्यचरण ने इस महाकाव्य में लिखे हैं जो लगभग देखे नहीं जाते। जैसे- अश्वधाटी, ललित, आदि।

इस महाकाव्य का भावविन्यास इतना मोहक है कि जिसका अनुशीलन करके कोई भी भावुक शिर: कम्पन के बिना नहीं रह पाता। इसमें एक ओर जहाँ प्राचीन भारतीय परम्पराओं का निर्वहन किया गया है, वहीं दूसरी ओर नवीन परिस्थितियों का भी अत्यन्त समीचीनता से उद्घाटन हुआ है। यह किसी का अनुकरण नहीं प्रत्युत कवि की प्रतिभा की यह परिकृति है। इस तथ्य को उद्घाटित करने में मुझे किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं हो रहा है। भगवान् श्रीराम की ललित लीलाओं का इस महाकाव्य में यथासमय समुन्मीलन किया गया है। महाकाव्य के प्रवाह में किसी भी प्रकार की प्रमीला के दर्शन नहीं होते।

भगीरथरथखातावच्छिन्नजलप्रवाह की भाँति ही कवि का प्रवाह सतत चलता रहा है। वह कभी भी विच्छिन्न नहीं हुआ। और जैसा कि आप जानते हैं— महाकवि एक सर्वमान्य परम्परा के आचार्य हैं और भावुक श्रीराम भक्त भी। अत: उनकी कविता में दोनों विधायें उन्मुक्त रूप से प्रस्तुत हुई हैं। इस काव्य में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के जिस लोकोत्तर दिव्य प्रतिभा विकास के निदर्शन प्राप्त हो रहे हैं वह अन्यत्र निश्चित रूप से सर्वथा अप्राप्य है। कवि ने काव्य को जिस गति से प्रस्तुत किया है, उसे हम भागीरथी गति की संज्ञा दे सकते हैं। श्रृंगार का यहाँ नाममात्र केवल प्रयोग हुआ है। जैसा कि हम प्रथम कह चुके हैं कि महाकाव्य का अङ्गीरस है भक्तिरस।

विषय को स्पष्ट करते हुए महाकवि ने दर्शन की उन निगूढ़ गुत्थियों को इतनी सुगमता से सुलझाया है जिसे देखकर उनकी प्रतिभा को प्रणाम करने के लिये शान्त स्वान्त: भी विवश हो जाता है। इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि का जीवन इस सङ्घर्ष से ही प्रारम्भ होता है। इनका मानना है कि सङ्घर्ष के बिना उत्कर्ष होता ही नहीं और इसी मनोभावना का इस

महाकाव्य में पदे-पदे प्रकटीकरण हुआ है। अश्वधाटी जैसे छन्दों को जितनी सरलता से महाकवि ने इस काव्य में प्रस्तुत किया है, निश्चित रूप से वह नमस्या के योग्य है। इस महाकाव्य में सरलता के साथ कठोरता, प्रवाह के साथ प्रसाद, आह्लादता के साथ करुणा आदि भी दिव्य विशेषताओं का स्वर्णसंयोग हुआ है।

इस महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग का छन्द भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार प्रस्तुत किया गया है। जहाँ ओजस्विता का प्रकरण है वहाँ भाषा भी ओजस्विनी हो गयी है। जहाँ दैन्य है वहाँ उसी प्रकार के शब्द भी न्यस्त हुए हैं। ऐसा कहना कठिन है कि आचार्य के अनुसार शब्द चले हैं या शब्द के अनुसार आचार्य? इन दोनों के एकतर निर्धारण में मेरी मनीषा स्वयं को असमर्थ पा रही है।

इस महाकाव्य के वितान में और अपनी कल्पनीय तरङ्गिणी के उद्यान में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्य ने जिस विधा का अवलोकन किया है, वह सर्वथा अवर्णनीय है। महाकाव्य में रस पूर्ण है। इसमें किसी भी प्रकार का वैरस्य नहीं है। और सबसे मनोहर बात तो यह है कि आचार्यचरण ने अपनी प्रतिभा प्राचीर की जिस क्षितिजीय छवि का मुद्रित नेत्रों से अवलोकन किया है उसका उद्घाटन हम जैसे सामान्य व्यक्तियों के लिए बहुत कठिन है। षड्ऋतुओं के भी वर्णन यहाँ उपलब्ध हैं। नदी, सागर, वन, तालाब, वृक्ष आदि कवि के वर्ण्य विषय, इस महाकाव्य में स्वयं ही आकर उपकृत हुए हैं अनुकृत कभी नहीं। प्रथम सर्ग से लेकर विश्राम पर्यन्त जो कविता इस महाकाव्य के रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत हुई है, वह धीरोदात्तनायक की मुग्धा नायिका की भाँति सम्पूर्ण भूषणों से भूषित प्रशंसनीय सारगर्भित एवं वन्दनीय है। यदि सम्पूर्ण महाकाव्य का गम्भीरता से अनुशीलन किया जाय तो मैं डंके की चोट पर यह कहने के लिये उद्धृत हूँ, कि यह संस्कृत साहित्य जगत् के काव्यकदम्ब का कुसुमाकर है। यदि गम्भीरता से इसका अवलोकन किया जाय तो लगेगा कि यह संस्कृत काव्य सरोवर का नीलोत्पल है, इसीलिये मैं यह कहकर इस लेख को विराम दूँ कि–

दृष्टानि काव्यानि मया बहूनि नानाविधालङ्कृतिभिर्युतानि।
नैवाधिरोहन्ति तुलां कदाचित् श्रीरामभद्रोचितकाव्यराशेः॥

जैसा कि मैंने छन्दों की चर्चा की अश्वधाटी छन्द महाका0व्य में प्रायः नहीं दिखता। गीत महाकाव्य में प्रायः नहीं दिखते। पर महाकाव्य गगन के इन उदीयमान पूर्णेन्दु ने अपनी प्रतिभा ज्योत्स्ना से काव्य के गगन को जिस प्रकार से आलोकित किया है उसे निहारकर सभी काव्यरसिक इनकी प्रतिभा के अधमर्ण रहेंगे।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि **श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्** महाकाव्य को सामान्य रूप से न देखा

जाये। इसे परमपिता परमेश्वर भगवान् सीताभिराम श्रीराम का एक कृपाप्रसादावदान ही समझा जाये जिसके उपादानों से अनन्त कालपर्यन्त भारतीय काव्य परम्परा आधमर्ण्य का बोध करती रहेगी। मैं पाठकों से विनम्र निवेदन करूँगा कि यद्यपि यह काव्य सर्वथा परिपूर्ण है तथापि कुछ स्थल ऐसे हैं इनका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना अभीष्ट होगा। जिनमें 24वाँ, 25वाँ, 26वाँ सर्ग अनिवार्य रूप से पढ़ लेना चाहिये। दशम सर्ग जहाँ एक चरण को चार बार दोहराया गया हो उसे निश्चित पढ़ना चाहिये।

हम सब कृतज्ञ हैं इन महाकवि शिरोमणि के कि जिन्होंने स्वयं इस महाकाव्य का प्रणयन किया और लोगों को समझाने के लिये इसकी तिलक नामक हिन्दी टीका भी प्रस्तुत की। इससे पढ़ने वालों को और सुगमता की अनुभूति होगी, जो संस्कृत नहीं जानते।

यह ग्रन्थरत्न रोहित मिश्र एवं माता गरिमा मिश्रा के पवित्र धन से मुद्रित हो रहा है। एतदर्थ मैं गरिमा माता के श्रीचरणकमलों में कृतज्ञताञ्जलि निवेदन करता हूँ। अनामिका प्रकाशन इसका मुद्रण कर रहा है, तुलसीपीठ प्रकाशन कर रहा है, मैं अपने प्राङ्निवेदनीय के अन्त में कहूँगा कि—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

दासानुदास,

रामचन्द्रदास

तुलसीपीठ, चित्रकूट
चैत्र रामनवमी, 2022

॥ अथ प्रथमः सर्गः॥

श्रीसीतारामपादाब्जमञ्जुरोलम्बकाम्बकाम्।
शारदां वरदां वन्दे वरटावरवाहनाम्॥01॥

नत्वा सीतापतिं रामं रामानन्दं स्वकान् गुरून्।
श्रीरामानन्दचरिते तिलकं क्रियते मया॥

मैं श्री चित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामभद्राचार्य (गिरिधर कवि) उन हंसवाहिनी देवी सरस्वती को वन्दन करता हूँ जिनके नेत्र भ्रमरों की भाँति भगवान् श्री सीताराम जी के चरण-कमल पर मंडराते रहते हैं। अर्थात् जो सीताराम जी के ही चरण-कमलों को निहारा करते हैं।

प्रत्यूहव्यूहशम्भूहकोटिकेक्युपमौजसम्।
प्रार्थये पार्वतेयं सत्सिद्धिबुद्धिविनायकम्॥02॥

जो विघ्नों के समूहरूप शिव जी के हार बने सर्पों को समाप्त करने के लिए करोड़ों मयूर जैसे तेज से सम्पन्न हैं, ऐसे पार्वतीपुत्र सिद्धि-बुद्धि के पति श्री गणेश से मैं इस महाकाव्य के विघ्नविनाश के लिए प्रार्थना करता हूँ।

रामनामामृताम्भोधिलीनमीनेन्द्रमानसम्।
वन्दे साम्बं शिवं सीतारामगाथैकगाथकम्॥03॥

जिनका मन श्रेष्ठ मत्स्य अर्थात् मछली की भाँति श्रीरामनामरूप महासागर में मग्न रहता है। जो श्री सीताराम की गाथाओं के एक मात्र शिल्पी गायक हैं, ऐसे साम्ब-सदाशिव शङ्करजी को मैं वन्दन करता हूँ।

यज्जिह्वावरटासीतारामसाद्गुण्यमौक्तिकम्।
चिनोति नित्यं तमहं वातिं वन्देऽञ्जनात्मजम्॥04॥

जिनकी रसना वरटा अर्थात् हंसिनी की भाँति श्रीसीतारामजी के सद्गुण रूप मुक्ताओं को चुवाती रहती है, ऐसे वायुपुत्र अञ्जना जी के गर्भ से प्रकट होने वाले उन हनुमान् जी को मैं नित्य वन्दन करता हूँ।

चारुचम्पकशोभां श्रीसम्प्रदायप्रवर्तिकाम्।
स्वाचार्यां प्रथमां वन्दे सीतां श्रीरामवल्लभाम्॥05॥

जिनकी शोभा श्रेष्ठ चम्पा के पुष्प के समान पीले वर्ण की है, ऐसी श्री वैष्णव सम्प्रदाय की प्रवर्तिका अपनी प्रथम-आचार्या भगवती सीता जी को मैं वन्दन करता हूँ, जो श्रीराम जी की प्राणप्रिया हैं।

यतो जन्मादि जगतो रामं सगुणनिर्गुणम्।
तमभिन्ननिमित्तोपादानं कारणमीड्महे॥06॥

जिन प्रभु श्री राम से इस जगत् का जन्म पालन और प्रलय होता रहता है, उन्हीं सगुण एवं निर्गुण रूप में विभक्त तथा इस जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान-कारण भगवान् श्रीराम की हम स्तुति करते हैं।

श्रीसीतानाथसमारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्॥07॥

यह पारम्परिक श्लोक भी मैंने अपने महाकाव्य में सोच-समझकर स्वीकार कर लिया है।

श्री सीताराम जी ही जिनके प्रारम्भिक आचार्य हैं, इस परम्परा के मध्य में विराज रहे हैं जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य, ऐसी हमारे आचार्य श्री सद्गुरुदेव 1008 श्री ईश्वरदास जी पर्यन्त परमप्राचीन गुरुपरम्परा को मैं प्रणाम करता हूँ।

रामपादाब्जभृङ्गस्य स्वाचार्यस्य जगद्गुरोः।
रामानन्दस्य वन्देऽहं श्रीपदाम्भोजपादुके॥08॥

जो श्रीराम के चरण-कमल के मधुप हैं ऐसी अपनी परम्परा के आचार्य जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य की श्रीचरणकमलपादुकायुगल को मैं वन्दन करता हूँ।

मूर्तिभूतमपूर्वं यत् सुशीलापुण्यसद्मनोः।
वासिष्ठोऽन्तः स्फुरतु मे रामानन्दो जगद्गुरुः॥9॥

जो देवी सुशीला एवं श्री पुण्यसदन शर्मा जी के सुपूर्व अर्थात् मूर्तिभूत पुण्य हैं, ऐसे वशिष्ठ गोत्र में प्रकट वशिष्ठ वंशावतंस जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य मेरे हृदय में स्फुरित होते रहें, जिससे इस कठिन कार्य को मैं कुशलतापूर्वक निर्वहन कर सकूँ।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं रामपादाब्जषट्पदम्।
गुरुमीश्वरदासं स्वं राममन्त्रप्रदं स्तुवे॥10॥

सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ एवं श्रीसीताराम जी के चरण-कमल के भ्रमर मुझे श्री राममन्त्र की दीक्षा प्रदान करने वाले अपने दीक्षागुरु साकेतवासी श्री श्री 1008 श्री ईश्वरदास जी गुरुदेव को मैं नमन करता हूँ।

सिमेभ्यः श्रीवैष्णवेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
श्रीरामानन्दचरितं तदनु ब्रूमहे शुभम्॥11॥

अब हम समस्त श्री सीताराम भक्त श्री वैष्णवों को 'नमो वाक्' का व्याहरण करते हैं अर्थात् नमस्कार करते हैं। इसके पश्चात् अत्यन्त पवित्र 'श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्' नामक महाकाव्य के प्रणयन का प्रारम्भ करते हैं।

तत् सज्जना हि श्रृण्वन्तु सीतारामपरायणाः।
रसालस्य रसं वेत्ति पिको न करटः क्वचित्॥12॥

इस 'श्रीरामानन्दाचार्यचरितम्' महाकाव्य को श्रीसीतारामपरायण सज्जन हृदय वाले वैष्णव ही सुन सकते हैं, वे ही इसे सुनने के अधिकारी हैं। क्योंकि आम्र के रस को कोकिल पक्षी ही जानता है, कौवा कभी नहीं जान पाता।

जम्बूद्वीपेऽधिवर्षं यल्लालसीति ललामवत्।
साक्षाद् भगवतो भूतिर्भारतं वर्षमुज्ज्वलम्॥13॥

जो जम्बूद्वीप के नवों वर्षों के बीच चूड़ामणि के समान सुशोभित होता है और जो भगवान् की साक्षात् विभूति है, वही है- हमारा उज्ज्वल भारतवर्ष।

दक्षिणं यत्तुषाराद्रेरुत्तरं यदुदन्वतः।
भारत्याः सन्ततेः सद्म तद्देशं भारतं विदुः॥14॥

जो हिमाचल से दक्षिण तथा सागर के उत्तर भाग में विराजमान है, जो भारतीय सन्तति का भवन है उसी देश को कहते हैं भारत।

भाति यद्रसतस्तत्त्वाद् भारतं तदुदाहृतम्।
स्तुत्यं यच्चरितं नित्यं भारतं तं प्रचक्षते॥15॥

जो प्रेम एवं ज्ञान तत्त्व के द्वारा निरन्तर सुशोभित रहता है उसे भारत कहते हैं। जो निरन्तर 'भा' अर्थात् ज्ञान के अन्वेषण में लगा रहता है, उसे भारत कहते हैं।

भार्थस्य यो भगवतः सादरं प्रेमभाजनम्।
भवाच्ये भगवत्यस्य नित्यं प्रेम सहादरम्॥16॥

जो भकार के वाच्य भगवान् के आदर और प्रेम से युक्त है और जिसका 'भ' के वाच्य परमेश्वर में आदर और प्रेम है, वो भारत है।

'भगवतः आ आदरं रतं प्रेम यस्मिन् तद् भारतम्,
भगवति आदरं प्रेम यस्य तद्–भारतम्।'

यत्र वर्णाऽऽश्रमवती प्रजा स्मार्तैश्च वैदिकैः।
रामं राजीवपत्राक्षं यज्ञैश्च यजते सदा॥17॥

जिस भारत वर्ष में चातुर्वर्ण्य पर विश्वास करने वाली प्रजा अनेक श्रौत एवं स्मार्त यज्ञों द्वारा राजीवनेत्र भगवान् राम का यजन करती रहती है, वह है भारत।

यत्र प्राप्ततनुर्धीमान् स्वर्गजं मोक्षजं सुखम्।
तृणाय मन्यते नित्यं भक्तिवैराग्यसंयुतः॥18॥

जिस भारत में जन्म लेने वाला व्यक्ति त्याग और वैराग्य से युक्त होकर स्वर्ग और मुक्ति के सुख को भी तिनके की भाँति छोड़ देता है।

यत्र गावस्तु दुह्यन्ते द्वारि द्वारि समादरात्।
गीयन्ते चैव पूज्यन्ते तद् भारतमुदाहृतम्॥19॥

जिस भारत के प्रत्येक घर में गौ माता दुही जाती हैं, गायी जाती हैं और पूजी जाती हैं वो है हमारा भारत।

हिंसा च दूयते यत्र सदाचरणतत्परैः।
तुलसी स्थापिता यत्र तं देशं भारतं विदुः ॥20॥

जहाँ हिंसा का निरन्तर अनादर होता है और सत् आचरण में तत्पर ब्राह्मणों के द्वारा, सदा अन्याय के विरुद्ध रण में तत्पर क्षत्रियों के द्वारा, सदा व्यापार के लिए चरण-भ्रमण में तत्पर वैश्यों द्वारा और सदा देश सेवा में तत्पर कर्मचारियों द्वारा हिंसा का अनादर करके तुलसी का समादर किया जाता है, वह देश है भारत।

यन्मृत्स्नां राघवो नित्यं धत्ते शिरसि भूषणम्।
कृष्णोऽपि जिह्वया लेढि प्रेम्णा यन्मृत्तिकां मुहुः ॥21॥

जिसकी पवित्र धूलि को भगवान् श्री राम धारण करते हैं अपने शिर पर और जिसकी माटी भगवान् श्रीकृष्ण भी चाट-चाट कर खाते हैं वह है हमारा देश भारत।

यत्र रामायणी गाथा यत्र भागवती कथा।
गीयतेऽहरहः पुम्भिस्तं देशं भारतं विदुः ॥22॥

जहाँ निरन्तर रामायण और श्रीमद्भागवत की कथा का गान किया जाता है, उस देश को भारत कहते हैं।

सागरो नित्यमद्भिर्यत् पादपद्मं निषेवते।
हिमालयोऽपि नित्यं यत् किरीटवदुपागतः ॥23॥

सागर दिव्य जल से जिसके चरण-कमल की सेवा करता है, हिमालय जिसका मुकुट बना हुआ है।

गङ्गायमुनयोर्वार्भिर्या स्नाति नित्यमादरात्।
हिमाद्रिविन्ध्यमहितां वन्दे भारतमातरम् ॥24॥

गङ्गा एवं यमुना के दिव्य जल से जो निरन्तर स्नान करती हैं ऐसी हिमालय और विन्ध्याचल से सुशोभित भारत माता को मैं वन्दन करता हूँ।

कृते यत्र स्नुषा जाता स्वर्गिणोऽपि विडौजसः।
सुताऽद्भुता भारतं तत् कथं कैरुपमीयताम् ॥25॥

कृतयुग में भी स्वर्ग के देवता इन्द्र की जयन्तीनामक पुत्री जिस भारत वर्ष की पुत्रवधू बनी। ऐसे भारत की किस प्रकार और किन देशों से उपमा दी जाय।

त्रेतायां च चतुर्विंश्यां भारतस्य शुभो ध्वजः।
त्रिविष्टपस्य सम्प्राप्तः सख्यं सर्वनमस्कृतम्॥26॥

और त्रेता में भी इसी भारत के शुभ ध्वज ने दशरथ के रूप में स्वर्गीय ध्वज की इन्द्र के माध्यम से मित्रता प्राप्त की।

सिंहासने समासीने रामे राजनि राघवे।
भारतस्य च माहात्म्यं त्रिविष्टपरसायनम्॥27॥

और चौबिसवें त्रेता में जब श्रीराम सिंहासन पर विराजमान हुए तो भारत का माहात्म्य स्वर्ग का भी रसायन बन गया था।

यत्रत्यः पारिजातोऽभूद् भारतस्य विभूषणम्।
द्वापरे त्रिदिवस्याऽस्य भारतेन तुला कथम्॥28॥

अर्थात् जिसका पारिजात भगवान् श्रीकृष्ण के राज्यकाल में द्वापरयुग में नरलोक का आभूषण बना, उस भारत की तुलना किससे की जा सकती है।

भारती भारती नूनं नरीनर्ति स्म सत्रपा।
गुणान् यस्य प्रगायन्ति भारतं तन्नमस्यते॥29॥

और उस भारत को हम नमन करते हैं जहाँ ज्ञान में अनुराग कहने वाली भारती भी जिस भारत का गान करते हुए मस्ती में नाच पड़ती हैं।

पुरन्दरपुरन्ध्रीणां यच्च क्रीडास्थलं ह्यभूत्।
सुरेन्द्रवन्द्यां चानिन्द्यां वन्दे भारतमातरम्॥30॥

अर्थात् इन्द्र की पत्नियों का भी जो क्रीडाङ्गण बनी, ऐसे इन्द्र के द्वारा वन्दित भारत माता का मैं वन्दन करता हूँ। भारत माँ की जय हो।

वाजिमेधशतैरिष्टो गुप्तकालेऽपि वै कलौ।
भारतं स्वर्णपक्षीति गीयते स्म पुरा किल॥31॥

कलिकाल में भी गुप्तकाल में जहाँ सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ किए जाते थे और वहाँ यह भारत इतिहास वेत्ताओं द्वारा सोने की चिड़िया कहा जाता है।

कलावपि महाराजे विक्रमे धर्मविक्रमे।
कृतं युगं समायातं पाणिनौ च पतञ्जलौ ॥32॥

कलियुग में भी महर्षि पाणिनि और पतञ्जलि के कार्यकाल में तथा धर्मार्थ पराक्रम करने वाले महाराज विक्रमादित्य के काल में जहाँ कृतयुग आ गया था।

इति काले कराले च कलौ सकरवालके।
युगधर्मव्यतिकरे प्राप्ते प्राप्ते क्षणे क्षणे ॥33॥

इस प्रकार जब समय विकराल होने लगा और कलिकाल ने अपनी तलवार उठा ली और क्षण-क्षण के क्रम से युगधर्म में विपरीतता आने लगी। तब

अनभ्यासाच्च वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च द्विजातिभ्यो विधर्मतः ॥34॥

जब ब्राह्मणों ने वेद का अध्ययन समाप्त कर दिया, ब्राह्मण आचारहीन होने लगे तो इनमें आलस्य आ गया और वे धर्महीनों के हाथ से दूषित भोजन करने लगे।

दूरितायां दुरन्तायां दौर्भाग्येन च भारतात्।
वेदसुस्मार्तशिक्षायां दीक्षायां श्रुतिदृङ्मनोः ॥35॥

इन कारणों से जिनका कभी नाश नहीं हो सकता ऐसी वैदिक शिक्षा, स्मृति शिक्षा और चौबीस अक्षरों वाली गायत्री की दीक्षा जब हमसे दूर हो गयी।

तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् पशुवृत्तिः समागता।
सनातनस्य धर्मस्य ह्रासो हा हन्त विश्वतः ॥36॥

उसी समय हमारे जीवन में पशुवृत्ति बढ़ने लगी और विश्रुत सनातन धर्म का भी ह्रास होने लगा।

बौद्धाश्च आर्हताश्चैव चार्वाकाश्च विधर्मिणः।
क्लीबमापादयामासुर्भारतं भव्यभारतम् ॥37॥

उसी समय बौद्ध, जैन और चार्वाक जैसे वेदविरुद्ध दार्शनिकों ने इस भारत को क्लीब बना दिया। भारत नि:शस्त्र हो गया।

> नि:शस्त्रे भारते जाते पुमांसो भग्नवैभवा:।
> बारम्बारं समाक्रम्य पीडिता दुष्टदानवै: ॥38॥

जब भारत नि:शस्त्र हो गया तब बार-बार आक्रमण करके दानव प्रकृति के लोगों ने इस भारत को पीड़ा पहुँचायी। सब कुछ नष्ट हो गया भारत का।

> ज्योतिर्लिङ्गे च प्रथमे सोमनाथे शिवालये।
> पश्यत्सु सर्वलोकेषु यवनैर्धूलिसात्कृते ॥39॥

और उसी समय सब के देखते-देखते भारत का प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग लोगों के समक्ष ही आक्रमण करके यवनों के द्वारा धूलिसात् कर दिया गया, विध्वस्त कर दिया गया।

> जातरूपं विरुपाश्च लुण्ठित्वा स्वगृहं ययु:।
> हा हन्त वर्ण्यतां किं वा भारतीया विडम्बना ॥40॥

हाय विधाता! उसी समय लगभग 64 खच्चर सोना यहाँ से लूटकर मोहम्मद गौरी अपने यहाँ ले गया। इस भारतीय विडम्बना को कैसे कहा जाय?

> राजवंशा: शतगुणा मिथ: कलहवह्निना।
> वेणुसादृश्यमापन्ना नष्टा भग्नाऽऽत्मवैभवा: ॥41॥

और हिन्दू राजा भी परस्पर विरोध रूप अग्नि के द्वारा उसी प्रकार जलकर भस्म हुए जैसे एक-दूसरे से रगड़-रगड़कर ग्रीष्म काल में लगी हुई आग से बाँस नष्ट हो जाते हैं।

> पृथ्वीराजो महाराजो गोभक्तो दीनवत्सल:।
> यं सप्तदशकृत्वोऽपि विजित्य सममूमुचत् ॥42॥

गो-भक्त और दीनों के वत्सल महाराज पृथ्वीराज चौहान जिस यवन को जीतकर भी सत्रह बार छोड़ दिए थे।

> अन्तिमे चैव सङ्ग्रामे दुर्योगेन पराजित:।
> अक्षि प्रदाय हतवान् शत्रुं तं शाब्दवेधिन: ॥43॥

अन्तिम संग्राम में दुर्भाग्य से पराजित होकर अपना नेत्र देकर भी पृथ्वीराज ने शब्दवेधीबाण से मुहम्मद गोरी को मार डाला। उसके लिए कहा जाता है–

चारि बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, अब न चूक चौहान॥

पराजयस्य गाथां तां वर्णयन्ती स्वदेशतः।
जिह्वेति मे हि रसना अहो धातर्विडम्बना॥44॥

भारत के पराजय की गाथा कहते–कहते मेरी रसना लज्जित हो रही है, विधाता! यही तो विडम्बना है।

हाहाकारो महानासीत् स्वाहाकारविवर्जितः।
क्षणेन क्षोभयामासुर्यवना भव्यभारतम्॥45॥

इस प्रकार इस देश से स्वाहाकार चला गया और भारत देश में हाहाकार मच गया। इस भव्य भारत को क्षण–भर में विधर्मियों ने क्षुब्ध कर दिया।

मथ्नार्णव इव क्षुब्धः पीडितो राहुणा शशी।
यथा तथेयं क्रन्दन्ती भारतीयवसुन्धरा॥46॥

मन्दराचल के द्वारा सागर की भाँति भारत मथ दिया गया। राहु के द्वारा पीड़ित चन्द्रमा की भाँति भारत निष्प्रभ हो गया। इसी प्रकार इस भयंकर स्थिति को प्राप्त कर भारत वसुन्धरा अब तो चिल्ला–चिल्लाकर रोने लगी।

चतुःसहस्रे सम्प्राप्ते वर्षे चैव शताधिके।
कलौ कराले सद्व्याले गृहीतकरवालके॥47॥

और भीषण सर्पादि जन्तुओं से युक्त कराल–कलिकाल जब अपना 4100 वर्ष का कार्यकाल पूरा कर चुका।

निरुपायाः समे देवा अपायागमशङ्किताः।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य महीं गोरूपधारिणीम्॥48॥

जग्मुः सर्वे जगन्नाथं रघुनाथं कृपानिधिम्।
साकेतलोकाधिपतिं श्रान्तः कल्पाङ्घ्रिपं यथा॥49॥

तब सभी देवता निरुपाय हो गये और अपाय के आगम की आशङ्का से अर्थात् भीषण अनर्थ के आने की आशङ्का से उद्विग्न होकर ब्रह्मा जी एवं गोरूपधारिणी पृथ्वी को उपस्कृत करके सब लोग जगत् के नाथ रघुनाथ कृपानिधि साकेताधिपति श्रीराम के पास उसी प्रकार आये जैसे चिलचिलाती धूप से व्याकुल हुए पथिक कल्पवृक्ष को प्राप्त कर ले।

तत्र सिंहासनासीनं वामया हतवामया।
रामया वामभागे तु सनाथितमरिन्दमम्॥50॥
मन्दस्मेरमुखाम्भोजं मकराकृतकुण्डलम्।
श्यामावदातं च हरिं भक्तानां भवभञ्जनम्॥51॥

वहाँ देवताओं ने निहारा कि श्रीराम सिंहासन पर विराजमान हैं। शत्रुओं का नाश करने वाली अत्यन्त सुन्दर भगवती सीताजी के द्वारा जिनका वामाङ्ग सनाथित है, ऐसे शत्रुदमनकारी मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त कमलमुख मकराकृतकुण्डल धारण किये हुए श्याम परन्तु स्वच्छ श्रीविग्रह से सम्पन्न भगवान् राम को देवता लोग निहार रहे हैं।

कोटिकन्दर्पदर्पघ्नं सौन्दर्याम्भोधिविग्रहम्।
कोटिमन्मथलावण्यं सेवितं च मरुद्गणैः॥52॥

करोड़ों कामदेवों के अहंकार को नष्ट करने वाले जिनका विग्रह सौन्दर्य का महासागर है ऐसे कोटि-कोटि कामदेवों के आकर्षक झांकी से युक्त भक्तों के भव-भय भञ्जक श्री रघुनाथ जी को देवता निहार रहे हैं, जो सभी देवताओं द्वारा सेवित हैं।

यस्य वामे जनकजा पुरतो हनुमान् स्थितः।
सौमित्रिः पृष्ठभागे च वीरासन उपस्थिताः॥53॥

इनके वाम भाग में सीता जी, समक्ष हनुमान् जी, पृष्ठ भाग में लक्ष्मण जी विराज रहे हैं।

भरतश्चैव शत्रुघ्नो यत्पार्श्वदलयोः स्थितौ।
वायव्यादिषु कोणेषु स्थिता वानरपुङ्गवाः॥54॥

जिनके पार्श्वदलों में अर्थात् अगल-बगल भरत जी एवं शत्रुघ्न जी विराज रहे हैं। वायव्यादि कोणों में श्रेष्ठ वानरपुङ्गव अर्थात् सुग्रीवादि भगवान् के नित्य-सेवक विराजमान हैं।

सुग्रीवो जाम्बवांश्चैव युवराडङ्गदस्तथा।
विभीषणोऽपि धर्मात्मा रामसेवापरायणा: ॥55॥

जहाँ सुग्रीव, अङ्गद जी, जाम्बवान् जी तथा श्रीराम सेवा में परायण विभीषण जी विराजमान हैं।

बालव्यजनसंशोभिहस्तपङ्कजया किल।
उपासितं वामभागे सीतया च विनीतया ॥56॥

जहाँ अपने करकमल में सुंदर बाल-व्यजन लिये हुए वेदों से गीत सीताजी वामाङ्ग में विराजमान होकर भगवान् की सेवा कर रही हैं।

अनन्यभक्तलब्धाङ्घ्रिसरोजं मन्दसुस्मितम्।
न तृप्तिमगमन् देवा: पश्यन्तोऽपि खरान्तकम् ॥57॥

जो प्रभु के श्री चरण-कमल अनन्य भक्ति से सम्पन्न भक्त सेवार्थ प्राप्त करते हैं, ऐसे प्रभु श्रीराम को निहारते हुए वे देवतागण तृप्त नहीं हो रहे हैं।

दृष्ट्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम्।
प्रणिपेतुश्च साष्टाङ्गममरा विगतज्वरा: ॥58॥

ऐसे नील कमल के समान श्यामल राजीव लोचन भगवान् को निर्निमेष दृष्टि से निहारकर भय से मुक्त देवता साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे।

तथा भारतभूश्चापि मुदा धेनुवपुष्मती।
स्तनै: संस्नपयामास सोमेन पयसा हरिम् ॥59॥

इसके पश्चात् गोरूपधारिणी भारत वसुन्धरा ने भी अपने अमृतमय दुग्ध से अपने दिव्य-स्तनों से भगवान् को स्नान कराया।

यावच्च क्षेमकुशलं हरि: पृच्छति निर्जरान्।
तावत् सुरा अवोचंस्ते आर्त: कालं न वीक्ष्यते ॥60॥

जब तक भगवान् श्रीराम देवताओं से उनके आगमन का कारण पूछते उससे पहले ही देवतागण अपना दुखड़ा रोने लगे। क्योंकि आर्त समय की प्रतीक्षा नहीं करता।

तुष्टुवुस्तुष्टसर्वाङ्गा दिव्येन वपुषा हरेः।
पश्चात् प्रतुष्टुवुः सर्वे निजागमनकारणम् ॥61॥

प्रथम भगवान् के दिव्य श्रीविग्रह से जिनके अङ्ग सन्तुष्ट हो गये ऐसे देवता प्रभु की स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् अपने आगमन का कारण प्रस्तुत किये।

नीलपाथोदसंकाशकान्तये धृतशान्तये।
रामाय पूर्णकामाय जानकीजानये नमः ॥62॥

देवता बोले- जिनका शरीर नीले मेघ के समान सुन्दर है। जहाँ शान्ति निवास करती है उन पूर्णकाम, भगवती जानकी जी जिनकी पत्नी हैं, ऐसे श्रीराम को हम नमन करते हैं।

चिदचिद्भ्यां विशिष्टाय विशिष्टाद्वैतवादिने।
नमो वेदान्तवेद्याय मायातीताय ते नमः ॥63॥

हे प्रभो! आप चित् और अचित् दोनों से विशिष्ट हैं, आप स्वयं विशिष्टाद्वैतवादी हैं, आप वेदान्त वेद्य हैं, मायातीत हैं इसलिए आपको हम नमस्कार कर रहे हैं।

नमांसि ब्रूमहे तुभ्यं नीलपाथोदकान्तये।
मन्दस्मेरमुखाब्जाय साकेताधिप राघव ॥64॥

हे साकेताधिपति राघव! आपका श्री विग्रह नीलमेघ के समान सुन्दर है, आप मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त दिव्य मुख कमल वाले हैं, इसलिए आपके प्रति हम नमस्कार व्याहरण कर रहे हैं।

नमो दयानिधानाय वात्सल्यनिधये नमः।
नमो देवाधिदेवाय नमः सौन्दर्यसिन्धवे ॥65॥

हे देवाधिदेव! हे दयानिधान! हे वात्सल्य के सागर! हे सौन्दर्य के सागर! प्रभो! आपको नमस्कार है! नमस्कार है! नमस्कार है।

चिदचिद्भ्यां विशिष्टाय ब्रह्मणे ब्रह्मवर्मणे।
विशिष्टाद्वैतवादाय नमस्ते सर्वशेषिणे ॥66॥

इस प्रकार जो चित्-जीव और अचित्-माया इन दोनों से विशिष्ट हैं, जो वेद को ही कवच के रूप में स्वीकारते हैं ऐसे परब्रह्म सबके शेषी, विशिष्टाद्वैतवाद स्वरूप आप श्रीराम को नमस्कार है।

नमोऽस्तु निर्गुणायास्मै सगुणाय नमो नमः।
निराकाराय च नमः साकाराय नमो नमः॥67॥

प्राकृत गुणों से रहित निर्गुण आपको नमन हो और कल्याण गुणों से युक्त सगुण आपको नमस्कार हो और मायिक प्रपञ्चों से दूर अर्थात् आकाररहित प्राकृत-आकारों से हीन और सगुण-साकार दिव्य आकारों से युक्त प्रभु श्रीराम आपको नमन हो।

निरस्तहेयगुणकं सगुणं सर्वसाक्षिणम्।
निर्विकारं सदा शान्तं रामं ब्रह्म भजेऽन्वहम्॥68॥

जो हेय गुणों से बहुत दूर हैं ऐसे सबके साक्षी सगुण-स्वरूप एवं निर्विकार तथा सर्वसाकार विग्रह श्रीराम आपको नमस्कार हो।

आकाराश्च विकाराः स्युस्तेभ्यो यो रहितः सदा।
निराकारः स एवास्ति रामो ब्रह्म सनातनम्॥69॥

जो आकार अर्थात् विकारों से रहित है उसे ही निराकार कहते हैं ऐसे निराकार सनातन श्रीराम ब्रह्म को मैं नमन करता हूँ।

एककालेन सर्वेषां गुणानां नैव सम्भवम्।
प्राकट्यं च ततो भूयो निर्गुणः स ततः किल॥70॥

एक काल में सभी गुणों को प्रकट करना सम्भव नहीं है और किसी गुण का अभाव भी सम्भव नहीं है इसलिए जिस समय जिस गुण की आवश्यकता होती है उसकी दृष्टि से वह गुण प्रकट हो जाता है और जिसकी आवश्यकता नहीं रहती उसकी दृष्टि से वह छिप जाता है।

तो जहाँ आवश्यकतानुसार गुण प्रकट होते हैं वहीं सगुण है, जहाँ अनावश्यकतानुसार गुणों को छुपा लिया जाता है वही निर्गुण है।

प्रकृतेश्च गुणास्तावत् सत्त्वं चाहो रजस्तमः।
नैव सन्त्यखिलाधीशे त्वयि ब्रह्मणि सात्त्वते॥71॥

अर्थात् जो प्राकृत सत्त्व, रज और तम गुण हैं, वे प्रभु आप में नहीं हैं, आपको जो और गुण मिले हैं वे आपके नहीं प्रत्युत भक्तों के हैं, आगन्तुक हैं।

साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं तथा।
नमामि रामं सीतेशं परब्रह्म सनातनम्॥72॥

इस प्रकार साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण सीतापति परब्रह्म श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

सगुणं निर्गुणं चापि साकारं च निराकृतिम्।
त्वामेव सर्वभूतानामविरुद्धं भजाम्यहम्॥73॥

प्रभो! आपका किसी भी परिस्थिति से विरोध नहीं है। आप सगुण भी हैं, निर्गुण भी हैं, साकार भी हैं और निराकार भी हैं।

अर्थात् जब आप कल्याणगुणगणों को प्रकट कर लेते हैं तब सगुण कहलाते हैं। जब इन गुण को अनावश्यक जानकार छिपा लेते हैं, तब निर्गुण कहलाते हैं। जब आप निर्विकार होते हैं, तब आप निराकार कहलाते हैं और जब आप दिव्य भुवनमोहन रूप प्रकट करते हैं तब साकार हो जाते हैं।

श्रीजानकीसमेताय धनुर्बाणभृतेऽनिशम्।
सदानिषङ्गयुक्ताय रघुवीराय ते नमः॥74॥

धनुर्बाणधारी श्री सीता जी के समेत आप श्री रघुवीर को सदा नमस्कार हो! नमस्कार हो!

सुहृदं सर्वभूतानां शरणागतवत्सलम्।
स्तुवे मायादिहीनञ्च सर्वसाक्षिणमव्ययम्॥75॥

मैं देवताओं का पुरोधा ब्रह्मा! सर्वभूतों के मित्र, शरणागत वत्सल, माया के प्रपञ्च से विहीन सभी के साक्षी अव्यय आप श्रीराम की स्तुति करता हूँ।

सर्वेषामवताराणां नमो नित्याऽवतारिणे।
नमः साकेतपतये नित्याऽयोध्याविहारिणे॥76॥

सम्पूर्ण अवतारों के नित्य-अवतारी आप श्री भगवान् को नमस्कार हो, साकेत लोक के अधिपति, नित्य-अयोध्याविहारी आप श्रीराम को नमस्कार हो।

सनकाद्यवताराय ब्रह्मचर्यव्रताय च।
नमः सूकररूपाय दंष्ट्रया भूमिधारिणे॥77॥

सम्पूर्ण सनकादिस्वरूप ब्रह्मचर्य में निरत आप श्रीराम को नमस्कार हो और अपने दाँत पर पृथ्वी को धारण करने वाले सूकरावतार प्रभो! आपको नमस्कार हो।

नरनारायणाख्याय नमो नित्यं तपस्यते।
नारदाय नमस्तुभ्यं विज्ञानामृतवार्धये॥78॥

सम्पूर्ण भूमण्डली के हित के लिए तपस्या करने वाले नर-नारायणस्वरूप आपको नमस्कार हो। हे ज्ञानरूप अमृत के साक्षात् सागर! नारदस्वरूप आपको नमस्कार हो।

साङ्ख्याचार्याय भवते कपिलाय नमो नमः।
यज्ञनारायणायाऽथ आकूतिसूनवे नमः॥79॥

सांख्याचार्य 25 तत्त्वों का व्याख्यान करने वाले धीर कपिलस्वरूप आपको नमस्कार हो। आकूति के पुत्र यज्ञनारायण आपको नमस्कार हो।

आत्रेयाय नमस्तुभ्यं दत्ताय देशिकाय च।
ऋषभाय नमो भूयः पारमहंससंविदे॥80॥

अत्रिनन्दन सम्पूर्ण जगत् के गुरुस्वरूप आपको नमस्कार हो। परमहंस ज्ञान से सम्पन्न ऋषभ को नमस्कार हो।

नमः पृथ्ववताराय पुत्रीकृतभुवे बुधे।
नमो मत्स्यावताराय मनुरक्षणशालिने॥81॥

पृथ्वी को पुत्री मानने वाले आप श्री पृथु अवतार परमेश्वर को नमस्कार हो। मनुजी की रक्षा से सुशोभित और मनु की रक्षा के कारण सुशोभित मत्स्यावतार आपको नमस्कार हो।

नमः कमठरूपाय मन्दरपृष्ठशोभिने।
नमोऽस्तु धन्वन्तरये आयुर्वेदभुवे किल॥82॥

अपने पृष्ठ पर मन्दराचल को विराजमान कराने वाले कमठावतार आपको नमस्कार हो। आयुर्वेद को जन्म देने वाले धन्वन्तरि आपको नमस्कार हो।

नमोऽमृतमुषे तुभ्यं मोहिनीरूपधारिणे।
नमोऽस्तु नरसिंहाय हिरण्यकशिपुच्छिदे॥83॥

मोहिनीरूप धारण करके अमृत का अपहरण कर लेने वाले आपको नमस्कार हो। हिरण्यकशिपु का छेदन करने वाले नरसिंह रूप आपको नमस्कार हो।

त्रिविक्रमाय भवते नमो वामनरूपिणे।
नमोऽस्तु भृगुवर्याय ब्रह्मधुक्क्षत्रनाशिने॥84॥

वामन रूप धारण करने वाले, तीन पग से पृथ्वी को नाप लेने वाले, आपको नमस्कार हो। ब्रह्मद्रोही क्षत्रियों का नाश करने वाले परशुरामस्वरूप आपको नमस्कार हो।

नमोऽस्तु रामचन्द्राय कौसल्यानन्दवर्धिने।
नीलपाथोददेहाय काण्डकोदण्डधारिणे॥85॥

कौशल्या जी को आनन्द देने वाले नीले बादल के समान शरीरवाले धनुर्बाण-धारी आप भगवान् श्रीराम को नमस्कार हो।

नमोऽस्तु कृष्णचन्द्राय नमो राधावराय च।
नमोऽस्तु द्वारकेशाय पार्थसूताय ते नमः॥86॥

हे कृष्णचन्द्र! आपको नमस्कार हो। हे राधावर! आपको नमस्कार हो। हे पार्थसारथि! आपको नमस्कार हो। हे द्वारकाधिपति! आपको नमस्कार हो।

नमोऽस्तु व्यासदेवाय पाराशर्याय शाश्वते।
नमोऽस्तु हंसरूपाय नीरक्षीरविवेकिने॥87॥

पराशरनन्दन परमात्मा व्यासदेव! आपको नमस्कार हो। नीरक्षीर के विवेक में कुशल हंसावतार आपको नमस्कार हो।

नमोऽस्तु बलदेवाय पुनर्मुसलिने नमः।
नमोऽस्तु हरिरूपाय गजाय वरदायिने ॥88॥

मुसल को धारण किए हुये बलदेव स्वरूप आपको नमस्कार हो और गजेन्द्र को बल देने वाले हरि अवतारधारी आपको नमस्कार हो।

नमो ध्रुवे कृपयते सहस्रशिरसे मुहुः।
नमोऽस्तु यज्ञपालाय हयग्रीवस्वरूपिणे ॥89॥

ध्रुव को वरदान देने वाले सहस्रशीर्षावतार आपको नमस्कार हो। हयग्रीव का स्वरूप धारण करके ब्रह्मा जी के यज्ञ की रक्षा करने वाले आपको नमस्कार हो।

काश्यपाय च बुद्धाय वेदत्राणाय ते नमः।
नमः कल्किस्वरूपाय म्लेच्छकालातवह्नये ॥90॥

वेदों की रक्षा करने वाले काश्यप बुद्ध स्वरूप आपको नमस्कार है और म्लेच्छ–रूप शत्रुओं को भस्म करने के लिए अग्नि के समान प्रतापशाली कल्कि अवतारस्वरूप प्रभु आपको नमस्कार हो।

वेदानां परिरक्षार्थं साधुत्राणाय राघव।
धर्मप्रतिष्ठाहेतोश्च समुद्भासि युगे युगे ॥91॥

हे राघव! आप वेदों की रक्षा के लिए और सन्तों का त्राण करने के लिए और धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए युग–युग में प्रकट होते हैं।

साम्प्रतं भारतं वर्षमसाम्प्रतमिवार्दितम्।
पाहि पाहि महाबाहो वन्दारुसुरपादप ॥92॥

इस समय भी भारत असहज रूप में दिख रहा है। हे महाबाहो! अब इसकी रक्षा कर लीजिए। क्योंकि आप वन्दन करने वालों के लिए कल्पवृक्ष हैं।

लोदीसिकन्दरो नाम कश्चिद् भूपालकाधमः।
तोतूद्यते दिवारात्रं भवतो भव्यभारतम् ॥93॥

इस समय सिकन्दर लोदी नाम का दुःशासक आपके भव्य भारत को बहुत कष्ट दे रहा है।

भागीरथ्यर्कजावारिधारया यः स्म सिच्यते।
स एव भारतो देशो गवां रक्तैर्निषिच्यते॥94॥

यह आश्चर्य है कि जो आपका भव्य भारत पहले गङ्गा-यमुना के जल से स्नान करता था, वह इस समय गौओं के खून से नहा रहा है।

यासां भारतनारीणां सेविकाः स्वर्गयोषितः।
ता एव साम्प्रतं पुम्भिर्विमान्यन्ते पदे पदे॥95॥

जो भारतीय ललनायें स्वर्ग-वैभव की भी आदर्श थीं, उन्हीं भारतीय नारियों का इस समय पग-पग पर अपमान हो रहा है।

दिवानिशं प्रताड्यन्ते हिन्दवो भग्नबिन्दवः।
कथङ्कारमिमां नाथ समस्यां वै समादधे॥96॥

आज अपने तेज के उत्कर्ष से नष्ट हिन्दूजन रात-दिन प्रताड़ित हो रहे हैं, इस समस्या का मैं कैसे समाधान निकालूँ?

त्वयि तिष्ठति राजीवलोचने भवमोचने।
भारतीया प्रजाऽनाथा पीड्यते तदसाम्प्रतम्॥97॥

हे राजीवलोचन! हे भवभयमोचन! आपके विराजमान रहने पर आपके समक्ष जो हिन्दुओं की दशा हो रही है, उचित नहीं लग रहा है।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भो राम शरं सन्धत्स्व राघव।
हिन्दूनां रक्षणं नाथ रावणारे विधेहि नः॥98॥

हे राजीवलोचन! उठिये, उठिये! धनुष-बाण उठाइये। हे रावणारे! अब हम हिन्दुओं की रक्षा कीजिए।

सोढुं न शक्नुमस्तात भारतीयं पराभवम्।
अतस्त्वां शरणं याता रक्ष नो राक्षसाधमात्॥99॥

हे प्रभो! ये सब कुछ अब प्रतिकूल हो रहा है, भारत की दशा नहीं देखी जा रही है, इससे हम आपकी शरण में आये हैं। आप इस अधम राक्षस से हमारी रक्षा कीजिए।

अद्य गावोऽभ्यहन्यन्ते मर्द्यन्ते ब्रह्मचारिणः।
महिलाश्च विमान्यन्ते बाध्यन्ते यज्ञकारिणः ॥100॥

आज चारों दिशाओं में माताओं-बहनों का अपमान हो रहा है, हिन्दुओं का उत्पीड़न हो रहा है, यज्ञ की दुर्दशा हो रही है।

त्रेतायुगे यथा राम रक्षिता दण्डकावने।
खलेभ्यः क्रूरदण्डेभ्यस्तथेदं पाहि भारतम् ॥101॥

जिस प्रकार आपने त्रेता में दण्डक वन की रक्षा करी, उसी प्रकार इस भारत की भी रक्षा कर लीजिए।

निशम्य देवो द्रुहिणोपवर्णितं रामो रमालालितपादपङ्कजः।
मा भैष्ट देवा इति सान्त्वयन् गिरा बभाष ईषत्कुटिलभ्रुरुल्बणम् ॥102॥

इस प्रकार ब्रह्मा जी के वक्तव्य को सुन करके भगवती सीताजी के द्वारा जिनके चरण-कमल लालित हैं, ऐसे भगवान् राम रोषावेश में भृकुटि को थोड़ी सी टेढ़ी करके 'देवताओं मत डरो' इस प्रकार सान्त्वना देकर अपने मन्तव्य को प्रकट करते हुए बोल पड़े।

पुरैव मे सर्वमिदं समीक्षितं या दुर्दशा भारतभूमितोऽधुना।
निदानमेतस्य विधास्यते ध्रुवं देवाः समस्ता भवत प्लुतव्यथाः ॥103॥

मेरे द्वारा पहले ही देख लिया गया था कि जो कुछ हो रहा है, इस भारतवर्ष में इसका शीघ्र ही निदान करुँगा। देवता लोग निर्भीक होकर अपनी व्यथा छोड़ दें।

विप्रावतारं विमलं गृहीत्वा भारं हरिष्यामि भुवोऽत्यपारम्।
मा वो व्यथा माऽस्तु दुरन्तचिन्ता रामोऽहमार्तक्षपणैकशीलः ॥104॥

मैं निर्मल ब्राह्मणावतार धारण करके इस भारत-भूमि का भार दूर करुँगा। आप लोग चिन्ता मत कीजिए। मैं राम हूँ, जिसका स्वभाव ही आर्त को नष्ट करना है।

कौसल्यया जातु जनिष्यते वै माता सुशीला द्विजधर्मपत्नी।
पितुश्च भूयो दशपङ्क्तितो वै जनिष्यते ब्राह्मणपुण्यसद्मा ॥105॥

साकेत में मेरी नित्य माता कौशल्या के सङ्कल्प से उन्हीं की अंशभूत सुशीला माता का जन्म होगा और मेरे नित्य पिता दशरथ जी के सङ्कल्प से ब्राह्मण पुण्यसदन शर्मा का जन्म होगा।

वसिष्ठगोत्रस्य च पुण्यसद्मनः प्रयागनाम्नि स्फुटतीर्थनायके।
जनिष्य ईड्योऽहमुदारदर्शन आनन्दनामा किल रामपूर्वकः ॥106॥

मैं वशिष्ठगोत्र में उत्पन्न पुण्यसदन शर्मा के यहाँ प्रयागनामक तीर्थाधिपति के पुण्य-क्षेत्र में 'रामानन्द' नाम धारण करके जन्म लूँगा।

इत्येवं रघुचन्द्रवाक्सुसुधया भग्नार्तयो देवताः
श्रीसीतापतिपादपङ्कजरजोभूषा मुहुस्तोषिताः।
बारम्बारमिमं प्रणम्य शिरसा प्रेम्णा स्मरन्तो मुहू
रामानन्दजनिं प्रसन्नमनसो याता जगत्स्वस्तये॥107॥

इस प्रकार भगवान् श्रीराम की अमृतवाणी से जिनके मन की व्यथा दूर हो गयी है, ऐसे देवतागण श्री सीतापति के चरण-कमल की रज को अपना आभूषण बनाकर, उन्हें प्रणाम करके और प्रभु के रूपमाधुर्य का चिन्तन करते हुए श्री रामानन्दावतार की विचारणा में तत्पर होकर प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग लौट आये, और जगत् के कल्याणकारी उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगे, जब भगवान् श्रीराम का रामानन्दाचार्य के रूप में अवतार होगा।

हरिष्यते भूतलभार उल्वणः करिष्यतेवैष्णवधर्मसुस्थितिः।
दलिष्यते भीषणहिन्दुसङ्कटं भरिष्यते भारतमीशभक्तितः॥108॥

मैं पृथिवी का भयङ्कर भार समाप्त कर दूँगा और वैष्णवधर्म को पुनः स्थापित कर दूँगा, हिन्दुओं का भीषण सङ्कट दूर कर दूँगा और भारत को श्रीरामभक्ति से भर दूँगा।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं प्रथमो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरमहाकविजगद्गुरुरामानन्दाचार्य-स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये प्रथमः सर्गः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ द्वितीयः सर्गः ॥

अस्ति प्रयागः श्रितकोटियागः श्रीरामपादाब्जधृतानुरागः।
अपूर्ववद् भारतपूर्वभागे तीर्थाधिपो भूतलभूरिभागे ॥01॥

भारत के पुण्यस्वरूप या यों कहें कि प्रयागवासियों के पुण्यस्वरूप भारत के पूर्व भाग में विराजमान पृथ्वी के अनन्त सौभाग्यों से युक्त भूमण्डल में ऐसा तीर्थराज प्रयाग विराजमान है, जहाँ करोड़ों-करोड़ों यज्ञ किये गए हैं और जिसका श्रीराम के चरण-कमल के प्रति दृढ़ अनुराग है, उसी प्रयाग क्षेत्र में जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी का आविर्भाव होगा।

वह कौन सा प्रयाग......

भागीरथीभानुमतीसुनद्यौ मध्ये गिरौ यद्विभवं वृणाते।
वटोऽक्षयोऽक्षीणयशो यदीयं प्रयागराजो जयतीह नित्यम् ॥02॥

वह प्रयागराज सर्वतोभावेन सुन्दर लग रहे हैं, इनके वैभव का भगीरथ पुत्री गङ्गा जी एवं सूर्यनारायण की कन्या यमुना जी मध्य में वर्तमान सरस्वती जी के साथ दोनों नदियाँ वरण करती हैं, अर्थात् जिनके वैभव की प्रशंसा करती हैं। अक्षयवट वृक्ष ही जिनका शाश्वत यश बना हुआ है, ऐसे तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

गङ्गाऽर्ककन्ये सरितौ विभातो यच्चामरे मञ्जुलसत्तङ्गरगैः।
नीलातपत्रं वट एव यस्य स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥03॥

भगवती गङ्गा-यमुना जी अपने दिव्य तरङ्गों से जिनके चामर की भूमिका निभा रही हैं। अक्षयवट जिनका नीलछत्र बनकर सुशोभित हो रहा है, ऐसे तीर्थराज प्रयाग की सर्वत्र जय हो रही है।

वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम्।
यत्रास्ति गङ्गायमुनाप्रमाणं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥04॥

इस सन्दर्भ में वेद प्रमाण हैं, स्मृतियाँ प्रमाण हैं और पुराण परम प्रमाण हैं, जहाँ गङ्गा एवं यमुना जी स्वयं प्रमाण हैं ऐसे तीर्थराज–प्रयाग की जय हो।

श्रीपुष्कराद्याश्च पवित्रतीर्था गङ्गादिका वै सरितः पवित्राः।
यमभ्यसिञ्चन् निजतीर्थनाथं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥05॥

श्रीपुष्कर आदि पवित्र तीर्थ श्री गङ्गा जी आदि पवित्र नदियाँ जिनको अपने तीर्थराज के रूप में अभिषिक्त किया। ऐसे तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

निपीय यस्याम्बु सुधासमानं स्नात्वा यदीये सलिलप्रवाहे।
अकालमृत्युर्न नृणां कदापि स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥06॥

जिनका अमृतमय जल पीकर और जिनके प्रवाह में स्नान करके हठात् शरीर छोड़ने पर भी किसी प्राणी की अकाल मृत्यु नहीं होती ऐसे तीर्थाधिपति प्रयाग की जय हो।

श्रीरामचन्द्रः सुषमासमुद्रः सीतासमेतः करुणानिकेतः।
सलक्ष्मणो यस्य जगौ सुकीर्तिं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥07॥

परम शोभा के सागर सीता जी के साथ विराजमान करुणानिकेत लक्ष्मण जी के साथ वर्तमान भगवान् श्रीराम जिसके दिव्य यश का गान करते हैं, उन तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

सिंहासनं यस्य च सङ्गमोऽयं गङ्गाऽर्ककन्ये किल चामरे वै।
सरस्वती यस्य हृदेकहारः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥08॥

सङ्गम ही जिनका सिंहासन है, गङ्गा–यमुना जिनकी चामर हैं सरस्वती जिनके हृदय का हार हैं, ऐसे तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

वारिप्रवाहं मुकुटं दधानो गङ्गाऽर्कपुत्र्यौ किल चामरे वै।
नीलातपत्रं वटमेव दिव्यं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥09॥

दिव्य जल प्रवाह को मुकुट रूप में धारण करते हुए और गङ्गा यमुना को चमर स्वरूप में स्वीकार करते हुए अक्षयवट को नीले छत्र रूप में धारण करते हुए वे तीर्थराज प्रयाग विजयी हो रहे हैं।

श्रद्धा प्रिया यत्सचिवः सुसत्यं श्रीमाधवो यस्य सखा खगात्मा।
भाति त्रिवेणी च यदीयमूर्ध्नि स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥10॥

श्रद्धा जिनकी पत्नी हैं, सत्य जिनका मन्त्री है, गरुड़-वाहन माधव जिनके मित्र हैं, जिनके मस्तक पर त्रिवेणी विराजमान है उन तीर्थराज प्रयाग की जय हो रही है।

तस्मिन् प्रयागे श्रितभूरिभागे निरस्तरागे विलसद्विरागे।
कौसल्ययाऽसावि निजांशतो वै देवी सुशीला धृतधर्मशीला ॥11॥

उसी रागादि दोषों से रहित वैराग्य से सुशोभित अत्यन्त भाग्यशाली प्रयागक्षेत्र में ही भगवती कौशल्या जी ने अपने अंश से धर्म और शील को धारण करने वाली देवी सुशीला को प्रकट किया। अर्थात् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य भगवान् श्रीराम जी के अंशभूत विग्रह हैं, तो उनके माता-पिता भी श्री कौसल्या और दशरथ जी के अवतार हैं। कवि का यही आकूत है।

तत्रैव गङ्गाहृतसर्वपापे कलिन्दकन्याहृतभक्ततापे।
श्रीतीर्थराजेऽजनि पुण्यसद्मा साकेततः पङ्क्तिरथांशकेन ॥12॥

वहीं पर अर्थात् गङ्गा जी के जल द्वारा जहाँ से सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर दिया गया है। सूर्यपुत्री यमुना जी के द्वारा जहाँ भक्तों के ताप को दूर कर दिया गया है। ऐसे उस तीर्थराज प्रयाग में ही महाराज दशरथ के अंश से पुण्यसदन शर्मा जी का भी जन्म हुआ।

वसिष्ठगोत्रो धृतधर्मसूत्रः स पुण्यपूर्वः सदनः सुतार्थम्।
गुणैरुपायंस्त निजानुरूपां पत्नीं सुशीलां हतपापकूपाम् ॥13॥

अर्थात् धर्मसूत्र को चलाने वाले वशिष्ठ गोत्रीय पुण्यसदन जी ने प्रियपुत्र की प्राप्ति के लिए गुणों के द्वारा अपने अनुरूप सम्पूर्ण पाप-कूप को नष्ट करने वाली सुशीला जी का पाणिग्रहण किया।

तां ब्रह्मविद्यामिव वन्दनीयां राकेन्दुलेखामिव नन्दनीयाम्।
अध्यात्मविद्यामिव चन्दनीयां जग्राह पत्नीं ननु पुण्यसद्मा ॥14॥

ब्रह्मविद्या के समान वन्दनीय, चन्द्रमा की लेखा के समान आनन्द देने वाली, आध्यात्म विद्या की भाँति आह्लादकारिणी उन सुशीला जी को पत्नी के रूप में पुण्यसदन शर्मा ने प्राप्त किया।

तौ दम्पती रामपदानुरक्तौ भोगाद् विरक्तौ विषयादसक्तौ।
सुखं वसन्तौ किल तीर्थराजे आनन्दसिन्धौ स्म गतौ रमेते॥15॥

वे सुशीला एवं पुण्यसदन शर्मा दम्पती श्रीराम के चरण-कमल में अनुरक्त थे, भोगों से विरक्त थे, विषय के प्रति अनासक्त थे, फिर भी सुखपूर्वक प्रयाग में निवास करते हुए वे लोग धर्मोचित गृहस्थ मर्यादा के सुख में रमण करने लगे।

सुरेन्द्रवन्द्यं नितरामनिन्द्यं संराधितं योगिमुनीन्द्रवर्यैः।
रामाभिधानं हरिमेव साक्षाद् गर्भं दधौ भूसुरधर्मपत्नी॥16॥

देवताओं के लिए वन्दनीय, निन्दा आदि दोषों से रहित अत्यन्त पवित्र परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम को ही ब्राह्मण धर्मपत्नी ने गर्भ में धारण किया।

हिरण्यगर्भं समवाप्य गर्भे सा विप्रपत्नी नितरां प्रतुष्टा।
शमी निजान्तर्ज्वलनेव रेजे सरस्वतीवान्तरलीनतोया ॥17॥

इस प्रकार ब्राह्मण धर्मपत्नी सुशीला ने भगवान् को गर्भ में धारण किया जो कि हिरण्यगर्भ हैं। फिर भी उनके मन में कोई क्लेश नहीं हुआ। उसी प्रकार प्रसन्न रहीं जैसे अपने हृदय में अग्नि को छिपाकर शमी प्रसन्न होती है और जिस प्रकार अपने हृदय-स्थल में जल को छिपाकर सरस्वती प्रसन्न रहती हैं।

दिने दिने सा परिवर्धमानं प्राप्तोदयं चन्द्रमशेषवन्द्यम्।
गर्भं दधाना सुपटं वसाना रेजे विभुम्नो ननु मातृभावे॥18॥

अनुदिन वृद्धि को प्राप्त कर रहे अभ्युदय में सम्पन्न उस गर्भ को धारण करती हुई माता सुशीला उसी प्रकार प्रसन्न हुईं जैसे प्राची चन्द्रमा को धारण करती हुईं।

शोभां पुषाणेव वसन्तलक्ष्मी रुचिं जुषाणेव च प्रावृषः श्रीः।
छविं मुषाणेव च शारदीं तामृतुत्रयस्यैव विभां प्रपेदे॥19॥

सुशीला जी तीन ऋतुओं की शोभा को प्राप्त कर रही हैं। वेवसन्त की शोभा से अलंकृत है, वर्षा की रमणीयता से परिष्कृत हैं वे और शरद काल की स्वच्छता से समलङ्कृत हैं।

यथा भवानी शरजन्मनाऽभूद् यथा शची चापि जयन्ततोऽभूत्।
यथाऽदितिर्वामनगर्भतोऽभूत् तथा सुशीला गुरुगर्भतोऽभूत्॥20॥

जिस प्रकार कार्तिकेय को गर्भ में धारण करके पार्वती जी की शोभा बढ़ी थी। जिस प्रकार जयन्त को गर्भ में धारण करके शची सुन्दर लगी थीं। जिस प्रकार विष्णु को गर्भ में धारण करके अदिति का सौन्दर्य बढ़ा उसी प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को गर्भ में धारण करके सुशीला का सौन्दर्य बढ़ गया।

देवाः प्रसूनैर्ववृषुः प्रसन्ना जगर्जुरब्दा अनुसागरञ्च।
समापतन् मङ्गलसूचिकानि नानानिमित्तानि च तीर्थराजे॥21॥

देवताओं ने प्रसन्न होकर पुष्पों की वर्षा की बादल सागर के पास जाकर गर्जन करने लगे और मङ्गलसूचक अनेक शकुन तीर्थराज प्रयाग में उपस्थित हो गये।

ब्रह्मादयो येऽखिल लोकनाथास्तथा मुनीन्द्रा ऋषयो द्विजेन्द्राः।
प्रहर्षसम्फुल्लमुखाम्बुजाता जयेति वाचं प्रगृणन्त आसन्॥22॥

ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण लोकनाथ अर्थात् उच्चाधिकार प्राप्त देवतागण मुनीन्द्रगण, ऋषिगण, ब्राह्मणगण आज प्रसन्न हो गये। उनके मुख पर प्रसन्नता के चिह्न दिखने लगे। प्रभातकालीन कमल के समान विकसित हो गया उनका मुख और सब लोग जय हो! जय हो! जय हो! कहने लगे।

वसिष्ठवंशाम्बुजचित्रभानुर्मुनीन्द्रसम्पूजितपादपीठः।
सीतापतेरंशमयस्त्रिदण्डी आनन्दपूर्वो जयताद्धि रामः॥23॥

वशिष्ठ कुल रूप कमल के लिए सूर्य के समान मुनीन्द्रों के द्वारा जिनकी पादुकापीठ वन्दित हैं। ऐसे भगवान् सीतापति के अंशस्वरूप त्रिदण्डी, आनन्द से पूर्व जिन्हें राम कहा जाता है, ऐसे जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी की जय हो।

विधेहि शान्तिं शुचिभारतेऽस्मिन् निधेहि पादाम्बुजमत्र देव।
बधान दुष्टान् कुटिलान् गवाशान् क्रान्तिं गृहाणाखिलदोषहन्त्रीम्॥24॥

हे प्रभो! इस भारतवर्ष में शान्ति की स्थापना कीजिए, प्रयागराज में अपने चरण-कमल का समप्रण कीजिए भारतभर में दैत्यों को बांधिए और क्रान्ति कीजिए।

क्रान्तिः सदा क्रान्तिरितीति घोषः कदापि भूमन् विरमेन्न चैव।
क्रान्तिश्च सर्वत्र भवेदनर्घ्या वैचारिकी क्रान्तिरपेक्षते सा॥25॥

हे प्रभो! सर्वत्र क्रान्ति ही क्रान्ति होनी चाहिए। यह घोष अब कभी विरत न हो। सर्वत्र क्रान्ति हो। अब तो वैचारिकी क्रान्ति की अपेक्षा है। विचारों में क्रान्ति आनी चाहिए।

शान्तिश्च शान्तिर्जरठैकघोषः प्रासङ्गिको नास्ति च साम्प्रतं सः।
क्रान्तिश्च क्रान्तिस्तरुणप्रजापः संघोष्यतां मङ्गलघोष एष॥26॥

हे प्रभो! शान्ति-शान्ति-शान्ति तो वृद्धों का घोष है अब यह प्रासङ्गिक नहीं रह गया अब तो क्रान्ति-क्रान्ति-क्रान्ति यह युवकों का घोष और इसी मङ्गल घोष की घोषणा की जाए। हमें वैचारिकी क्रान्ति चाहिए।

गावः प्रसीदन्तु सवत्सकाश्च वत्सा निसीदन्तु गताभिशङ्काः।
खराश्च सीदन्तु कुकृत्यभावा लोकः सुखं तिष्ठतु वीतशङ्कः॥27॥

हे प्रभो! अब गौएं प्रसन्न हो जाएं, बछड़ों का भय चला जाए। दुष्ट अपने कर्मों का फल पाकर दुखित हों और शोकरहित यह लोक अब प्रसन्न हो जाए।

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो वै सक्ता असक्ताः पदयोः खरारेः।
विस्तार्यतां सम्प्रति घोषणेयं समेधतां मङ्गलहिन्दुधर्मः॥28॥

हे प्रभो! अब समर्थ हो या असमर्थ सभी भगवान् की शरणागति के अधिकारी बनें। यह मङ्गल घोषणा की जाए और हिन्दू धर्म समृद्धि को प्राप्त हो।

शिखां च सूत्रञ्च तथोपवीतं गायत्रिगङ्गा ननु देवगीता।
गौश्चैव गोविन्द इमे हि पञ्च प्राणाः परं निर्वृतिमाप्नुवन्तु॥29॥

प्रभो! शिखा, सूत्र, गीता, गङ्गा, गायत्री, गौ और गोविन्द इन सनातन धर्म के पाँचों प्राणों की रक्षा हो जाए।

अलं दयां पापिषु देव कृत्वा अलं विषादैः परिदेवनैर्वा।
उक्त्वा खलूद्दण्डजनेषु शान्तिं कृत्वा खलूत्कर्षहरैश्च सन्धिम्॥30॥

प्रभो! अब पापियों पर दया करना उचित नहीं है उद्दण्ड जनों के समक्ष शान्ति-पाठ पढ़ना उचित नहीं है। जो हमारे उत्कर्ष का हरण कर रहे हैं, उनसे सन्धि ठीक नहीं है।

विजृम्भतां दिक्षु हि शङ्खनादः श्रीपाञ्चजन्यस्य तवेरितस्य।
सन्धोक्ष्यतां ज्ञानमयी च गङ्गा सन्दृश्यतां भारतशान्तिदूतः॥31॥

सम्पूर्ण दिशाओं में आपके पाञ्चजन्य का नाद गुञ्जारित हो जाए ज्ञानमयी गङ्गा का विस्तार हो और भारत में एक बार पुनः शान्तिदूत के दर्शन हो जाएं।

यावन्न दूरं यवनाः प्रयान्ति यावद्भिरम्येत न धेनुहत्या।
यावत् स्वतन्त्रा न जना धरन्ते क्रान्तेश्च तावन्न विराम इष्टः ॥32॥

जब तक यहाँ से यवन भाग न जाए, जब तक भारत से गोवध बन्द न हो जाए और जब तक लोग स्वतन्त्रता से न जी सकें तब तक क्रान्ति का विराम नहीं होना चाहिए।

आगच्छ हे जानकिप्राणनाथ आगच्छ हे लक्ष्मणमोदकारिन्।
आगच्छ हे चण्डकृपाणधारिन् आगच्छ हे रावणदर्पहारिन् ॥33॥

हे कृपालु सीतापति! अब आ जाइए। चण्ड कृपाण को धारण करने वाले प्रभु आ जाइए। भक्तों की रक्षा करने वाले प्रभु आ जाइए और लक्ष्मण के रक्षक-रावण का विनाश करने वाले प्रभु आ जाइए।

भवादृशे राजति राजराजे येयं दशा सम्प्रति भारतस्य।
तवानुकूला न कथञ्चनैषा किं कुक्कुरः खादति सिंहशावान् ॥34॥

आप जैसे राजाधिराज के विराजमान रहने पर यह भारत की दशा उचित नहीं लग रही है। अरे सिंह के बेटे को कुत्ता क्यों खा रहा है। इसलिए एक बार इस भारत में आकर शान्ति का उपदेश करिये प्रभु। वैचारिक क्रान्ति अपेक्षित है।

वैचारिकीं क्रान्तिमथाऽऽतनुष्व जहिश्च शत्रुं न विषादकालः।
हे राम हे राघव हे कृपालो हे रावणारे करुणैकसिन्धो ॥35॥

अब वैचारिकी क्रान्ति कीजिए, शत्रु को मार डालिए हे राम! हे राघव! हे कृपालो! हे करुणासिन्धु! अब विलम्ब मत कीजिए।

जन्मानि कर्माणि च जीवलोके न प्राकृतानीड्यचरित्रकस्य।
तस्मात् प्रगीतानि पुराणरत्नैर्वेदैरभेदैः स्मृतिभिस्तथैव ॥36॥

हे प्रभो! आपका चरित्र बहुत पावन है इसलिए आपके जन्म और कर्म संसारियों की भाँति नहीं होते, अलौकिक होते हैं। इसीलिए इनका गान श्रेष्ठ पुराणों ने, भेदरहित वेदों ने और स्मृतियों ने भी किया है।

ये लौकिकाः पामरजीवजातास्ते कर्मबन्धैः परिनह्यमानाः।
व्रजन्त्यधोऽधो विगतात्मबोधा नीचास्वविद्याश्रितयोनिषूत्काः॥37॥

हे प्रभो! जो पामर लोग रोते हैं वे कर्म-बन्धों से बंधे हुए होते हैं इसलिए आत्मबोध के अभाव में ये नाना प्रकार की अविद्याश्रित योनियों में विह्वल होकर पड़ते रहते हैं।

ये त्वत्पदाम्भोरुहसेवयाप्तवैराग्यबोधाः प्रतिबोधमुख्याः।
भजन्ति ते पादसरोजयुग्मं तेषां न मायापरिवर्त उग्रः॥38॥

जो लोग आपकी श्री चरणकमल-सेवा से प्राप्त वैराग्य बोध से युक्त होकर आपके श्री चरणकमल का भजन करते हैं, उनके जीवन में यह माया का प्रपञ्च उपस्थित ही नहीं होता।

निष्किञ्चना ये गलितात्ममोहा भजन्ति ते पादसरोरुहे च।
तन्नावमारुह्य कृपालुचित्तः संसारसिन्धुं प्रतरन्ति देव॥39॥

जो इस माया प्रपञ्च को छोड़कर आपके श्री चरणकमल का भजन करते हैं, निश्चित रूप से वे संसार सागर को पार कर लेते हैं और इस मायिक प्रपञ्च से सर्वथा दूर हो जाते हैं।

इत्थं दशा चेत् त्वदुपासकानां त्वद्भक्तिचूडामणिभावभाजाम्।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दविलब्धभावाः किल वैष्णवा ये॥40॥

यदि आपके भक्तों के चूड़ामणियों द्वारा जिनके दर्शन किए जा रहे हों या आपके भक्त चूड़ामणि जिनका भाव से दर्शन करते हों ऐसे आपके उपासकों की यदि यह दशा है तो जो सर्वभाव से आपके चरण-कमल की सेवा करते रहते हैं, उनकी क्या दशा होगी?

भक्ता न मुक्तिं स्पृहयन्त ईड्यास्तृणाय ते मन्वत एव मुक्तिम्।
अनन्यभावेन सुचेतसा वै स्मरन्ति ये त्वच्चरणारविन्दम्॥41॥

भक्त लोग कभी मुक्ति की कामना नहीं करते। वे तो उसको तिनके की भाँति छोड़ देते हैं। आपके चरण का स्मरण करते हैं और आपके भाव में निमग्न रहते हैं।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न स्वर्गलोकं न हि चापवर्गम्।
न योगसिद्धीः स्पृहयन्ति भक्तास्त्वत्प्रेमपाथोधिनिमग्नचित्ताः॥42॥

जो आपके प्रेमसागर में निमग्न रहते हैं ऐसे भक्त लोग न तो ब्रह्मलोक की इच्छा करते हैं, न स्वर्ग की इच्छा करते हैं, न स्वर्गीय सुखों की अपेक्षा करते हैं, न मोक्ष की इच्छा करते हैं, न योगसिद्धियों की अपेक्षा करते हैं, वे तो केवल आपको चाहते हैं।

न वा भवन्तं करुणैकवन्तं लिम्पन्ति कर्माणि कृपैकसिन्धो।
न चैव पापानि शुभाशुभानि भवान् यथा राजति पद्मपत्रम्॥43॥

हे भगवान्! आप तो कमल के समान इस संसार में आकर भी निर्लेप रहते हैं। आपके पास एकमात्र करुणा है इसलिए कर्म आपको लिप्त नहीं करते और जब लिप्त नहीं करते तो आप में सदसत् भावों के आगमन की आवश्यकता ही नहीं और न कोई अवसर है।

यदा ह्यधर्मेण निरस्तशान्तिः सीदेदजस्रं किल जीवलोकः।
एधेत धर्मस्य विरुद्धभावस्तदा भवान् धत्त इहावतारम्॥44॥

जब अधर्म से शान्ति नष्ट हो जाती है और जीवलोक दुःख पाने लगता है और जब धर्म से विरूद्धभाव बढ़ने लगता है तब आप यहाँ अवतार लेते हैं।

मत्स्यं नृसिंहं किल सूकरञ्च रामौ तथा वामनमुग्रतेजः।
कृष्णञ्च बुद्धं च तथैव कल्किं रूपाणि धत्से सममोघवीर्यः॥45॥

आप धर्म की रक्षा के लिए मत्स्यावतार, नृसिंहावतार, सूकरावतार, वामनावतार, श्रीरामावतार, बलरामावतार, व्यासावतार, परशुरामावतार बुद्धावतार और कल्कि अवतार इस प्रकार भिन्न-भिन्न अवतार धारण करते हैं।

असौ त्वदीयो ह्यवतार ईड्यः श्रीवैष्णवानां परिपालनाय।
क्रान्त्यै सुराणां च गवां हिताय कृपा विधेया धम पाञ्चजन्यम्॥46॥

हे प्रभो! आपका यह अवतार भी इसी प्रकार का है। धर्म के पालन के लिए एक बार क्रान्ति कीजिए। पाञ्चजन्य को बजा दीजिए।

जयस्व शत्रून् हर मित्रशोकं पुषाण भो भारतभूमिभागम्।
मुषाण पीडां किल यावनीं त्वं वधान पापान् मनुजैकतापान्॥47॥

हे प्रभो! अब तो बहुत हो चुका। गौओं की रक्षा कीजिए, सन्तों का पोषण कीजिए, पापों से रक्षा कीजिए और अपने नव्य-नव्य चरित्रों से इस भारत माँ को सन्तुष्ट कीजिए।

नामानि रूपाणि च तेऽद्भुतानि जन्मानि कर्माणि मनोहराणि।
गायन्ति शृण्वन्ति च येऽतिभक्त्या कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाऽब्धिम्॥48॥

हे प्रभो! आपके नाम, रूप, जन्म और कर्म ये सभी अद्भुत होते हैं और मनोहर भी। इन्हें जो लोग भक्तिपूर्वक गाते और सुनते हैं, वे इस संसार सागर को गोवत्स के समान पार कर लेते हैं।

न तेऽभवस्येह भवानुबन्धो न तेऽगुणस्येह गुणप्रवादः।
न त्वां प्रबध्नन्ति गुणानतीतं गुणा न कर्माणि कदाचनेह॥49॥

हे प्रभो! आप जीव की भाँति कर्म के पराधीन होकर जन्म नहीं लेते और सामान्य लोकों की भाँति आपके गुणों में कोई सङ्ग नहीं होता इसलिए न तो आपको भवानुबन्ध होता है और न ही आपके प्रति गुणों का प्रवाह होता है। आप गुणों से अतीत हैं, कर्म से परे हैं इसलिए गुण और कर्म आपको बांध भी नहीं पाते।

इति स्तुवन्तः सुरतल्लजास्ते हिरण्यगर्भस्य पितुः स्वगर्भम्।
तौ दम्पती तुष्टुवुरीड्यकीर्ती देवीं सुशीलां शुभसद्मविप्रम्॥50॥

इस प्रकार हिरण्यगर्भ ब्रह्मा जी के भी पिता श्री विष्णु के भी कारणभूत गर्भरूप में विराजमान परमात्मा श्रीराम की स्तुति करते हुए श्रेष्ठ देवता उन महनीय कीर्ति वाले जायापति अर्थात् ब्राह्मणपत्नी सुशीला और पुण्यसदन जी की स्तुति करने लगे।

दिष्ट्या भवन्तौ भुवि भाग्यवन्तौ पूर्तेष्टदत्तानि च वै शुभानि।
दिष्ट्या भवद्भ्यां गुणसङ्ग्रहाभ्यां सनाथितः तीर्थपतिः प्रयागः॥51॥

यह सौभाग्य है कि आप दोनों देवी सुशीला एवं पुण्यसदन शर्मा इस पृथ्वी पर भाग्यवान् हैं। एक बहुत बड़ा भागधेय लेकर प्रकट हुए हैं। सौभाग्य से बहुत बार आप लोगों के द्वारा इष्ट, पूर्त, दत्त आदि सत्कर्म किये गये और यह भी सौभाग्य है कि आप दोनों ब्राह्मण दम्पती द्वारा यह तीर्थराज प्रयाग सनाथ हो गया है।

दिष्ट्या भवद्भ्यां धृतभूरिभक्त्या समाधितोऽयं पुरुषः पुराणः।
शीघ्रं समाविर्भविता मुकुन्दो यतीन्द्ररूपेण गुणालयेन॥52॥

यह भी सौभाग्य है कि आप दोनों पति-पत्नी द्वारा अनन्य भक्ति से आराधित

पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बहुत ही शीघ्र समस्त गुणों के भवन यतिराज रामानन्द रूप में इस संसार में प्रकट होंगे।

दिष्ट्या युवां द्रक्ष्यथ ईड्यकीर्तिं लोकाभिरामं भगवन्तमीशम्।
विज्ञातसर्वार्थमनन्तवीर्यं लोकान् पुनानं ननु बालरूपम्॥53॥

यह भी सौभाग्य का विषय है कि आप दोनों बहुत ही शीघ्र पवित्र कीर्ति वाले संसार को पवित्र करते हुए इस भारतभूमि में प्रगट होकर बालरूप धारण किए हुए एक दिव्य छवि आप दोनों इन नेत्रों से दर्शन करेंगे।

दिष्ट्यैव खेलिष्यति वां गृहेषु कन्दावदातो जनपारिजातः।
मायामनुष्याऽर्भकरूपधारी श्रीरामचन्द्रः करुणासमुद्रः॥54॥

यह भी सौभाग्य ही है कि आप दोनों सुशीला और पुण्यसदन शर्मा के सौभाग्य से आपके सुन्दर प्राङ्गण में कुन्दपुष्प के समान गौरवर्ण वाले भक्तों के परिजात करुणासागर भगवान् श्रीरामचन्द्र माया मनुष्य का रूप धारण करते हुए खेलेंगे।

दिष्ट्या युवां द्रक्ष्यथ ईड्यलीला लीलावतारस्य परस्य पुंसः।
गोविप्रवात्सल्यवशंवदस्य श्रीरामभद्रस्य समस्तभर्तुः॥55॥

हे भगवान्! यह सबका सौभाग्य होगा कि आप दोनों सुशीला और पुण्यसदन जी लीलावतार धारण किए हुए परिपूर्णतम परात्पर परमेश्वर गौ और ब्राह्मणों के वात्सल्य के वशीभूत सारे संसार के स्वामी श्रीरामचन्द्र भगवान् की दिव्य लीलाओं के दर्शन आप दोनों करेंगे और हम को भी कराएंगे।

दिष्ट्या युवां धूलिविभूषणाङ्गं सङ्क्रीडमानं रुचिराङ्गणे स्वे।
निहार्य नीलोत्पलमञ्जुनेत्रं चुम्बिष्यथ प्राप्तमहाप्रमोदौ॥56॥

हे भगवन्! यह भी एक सौभाग्य होगा कि आप दोनों अपने आँगन में खेलते हुए नीले कमल के समान नेत्र वाले भगवान् को धूलधूसरिताङ्ग देखकर अपने आँगन में खेलता उपलब्ध पाकर प्रेम से चूमेंगे।

दिष्ट्या युवां श्रोष्यथ एव नूनं श्रीमन्मुकुन्दस्य गिरो मनोज्ञाः।
मामेति तातेति सुधानिसिक्ताः श्रोताभिरामाः सततं जनानाम्॥57॥

यह भी एक सौभाग्य होगा कि लोगों के लिए निरन्तर श्रवणाभिराम बनी हुई माँ-माँ, पिताजी-पिताजी इस प्रकार सम्बोधित की जाने वाली अमृत के सारसर्वस्व से निषिक्त भगवान् बालमुकुन्द की तोतली वाणी को भी निश्चित आप दोनों श्रवण करेंगे।

यथा विभून्श्च परेऽवतारा मत्स्यादयो लोकललामलाल्याः।
तथैव चायं विबुधावतारः शान्त्यै सुखायेष्यति भूरिधाम्नः॥58॥

हे प्रभो! जिस प्रकार भगवान् के अन्य मत्स्यादि अवतार इस संसार में श्रेष्ठ लोगों के द्वारा लालनीय हुए ठीक इसी प्रकार यह एक द्विधावतार होगा अर्थात् परमात्मा का ज्ञान-कलावतार होगा और वह भी सर्वमान्य होगा और सबको शान्ति प्रदान करेगा।

यथा त्रिलोक्यां किल रामलीलाः श्रृण्वन्ति पश्यन्ति जना गृणन्ति।
तथैव लोके भवितास्ति रामानन्दस्य सन्मङ्गललोकलीला॥59॥

जिस प्रकार भगवान् की बाललीला श्रीरामचन्द्र के समान त्रिलोकी में वन्दित हुई और आज भी उसे लोग सुनते हैं, गाते हैं और निहारते हैं। उसी प्रकार इस बार भी बालरूप में अवतरित रामानन्दाचार्य की लीला भी उसी यश को प्राप्त करेगी, यह हमारा विश्वास है।

यथा ह्ययोध्यावनिरेव साक्षात् साक्षिण्यभूद्राघवजन्मनश्च।
तथा प्रयागोऽपि भविष्यतीह साक्षी महामङ्गलविग्रहस्य॥60॥

जिस प्रकार अयोध्या उस समय श्रीरामावतार की साक्षी बनी उसी प्रकार यह प्रयाग भी महामङ्गल विग्रह जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यावतार का साक्षी बनेगा।

यथा पुराऽधीयत राघवेण स्तन्यामृतं कोशलराजपुत्र्याः।
तथा सुशीलास्तनमेव धाता त्रिलोकधाता जगतां विधाता॥61॥

जिस प्रकार त्रेतायुग में भगवान् श्रीराम ने दक्षिण कोशल की राजकुमारी कौशल्या जी का स्तनपान किया था उसी प्रकार वही रामचन्द्र जी इस समय भी बालक बनकर जगत् के विधाता होकर भी तीनों लोकों के रक्षक होकर भी सुशीला जी के स्तनों का पान करेंगे।

यथा पुराऽयाच्यत चन्द्रमामो रामेण सङ्क्रीडितुमर्भकेण।
तथाऽधुनाऽयं किल भारतञ्च संयाचिता राष्ट्रसमन्वयञ्च॥62॥

जिस प्रकार त्रेतायुग में श्रीराम ने खेलने के लिए चंदा मामा की याचना की थी उसी

प्रकार वही रामचन्द्र जी रामानन्दाचार्य बनकर सम्पूर्ण भारत से राष्ट्र के समन्वय की याचना करेंगे।

यथा पुरा पादसरोजधूल्या सन्तारिता गौतमधर्मपत्नी।
तथाऽधुनाऽनेन समस्तहिन्दूजातिश्च पाता भयसङ्कटेभ्यः ॥63॥

जिस प्रकार पूर्व में भगवान् श्रीराम ने अपने चरण-कमल की धूलि से गौतम जी की धर्मपत्नी अहिल्या जी की रक्षा की थी उसी प्रकार इस बार भी वही भगवान् राम जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का शरीर धारण करके समस्त हिन्दु-जाति को भय-सङ्कट से रक्षित करेंगे।

यथा कृता कौशिकयज्ञरक्षा रामेण हत्वा रजनीचरेन्द्रान्।
तथाऽधुनाऽप्येष समस्तहिन्दून् संत्रास्यते दुर्जनदण्डदानैः ॥64॥

जिस प्रकार पूर्व में भगवान् राम ने राक्षसों का वध करके विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी उसी प्रकार इस समय भी दुर्जनों को दण्ड देकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य वैदिक धर्म की रक्षा करेंगे।

पुरा ययाचे ननु रामभद्रः कैवर्तकं नावमुदारकीर्तिः।
कैवर्तकीभूय स भक्तिनावं दाता विधाता शरणागताय॥65॥

प्रथम भगवान् राम ने गङ्गा जी को पार करने के लिए केवट से नौका माँगी थी आज वही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बनकर स्वयं केवट बनकर शरणागतों को भक्तिरूपी नाव प्रदान करके उन्हें भवसागर से पार उतारेंगे।

पुरा किरातैः सह सख्यमिच्छंस्त्यक्त्वा गृहं दण्डकमध्युवास।
स साम्प्रतं शोषितहिन्दुवर्गं शीघ्रं समाश्वासयिता यतीन्द्रः॥66॥

प्रथम श्रीरामावतार में किरातों के साथ मित्रता करके भगवान् राम ने एक सामाजिक संगठन उपस्थित किया वही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का स्वरूप धारण करके शोषित वर्ग का संगठन करेंगे अर्थात् दोनों के प्रयोग में एकता ही दिखती है।

पुरा तु रामः कपिभल्लुवर्गैः समुद्रसेतुं रचयाम्बभूव।
स साम्प्रतं भक्तिमयञ्च सेतुं ध्रुवं विधाताऽस्ति जगच्छरण्यः॥67॥

पहले भगवान् राम ने नल-नील की सहायता से समुद्र पार सेतु बनाया और वही आज श्रीराम नाम का सेतु बनाकर करोड़ों लोगों को भवसागर से मुक्त करेंगे।

सक्ता असक्ता विकलागताङ्गाः सर्वे प्रपत्तेराधिकारभाजः।
अपेक्षते तत्र कुलं बलं नो न चापि कालोऽपि न विशुद्धता वा॥68॥

समर्थ या असमर्थ सकलाङ्ग या दिव्याङ्ग कोई भी हो भगवान् की शरणागति में सबका अधिकार है और यही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के आने का श्रेय भी है इससे अधिकारों की विमुक्तता हुई और रामत्व की एक नयी व्याख्या प्रकट होकर उपस्थित हुई।

येऽन्ये च पापाः पतिताः प्रलापाः स्त्रियश्चतुर्थां अपि चान्त्यजा वै।
रामेति वर्णद्वयमादरेण जप्त्वा समीयुर्भववार्धिपारम्॥69॥

और भी जो अन्य पाप निरत थे या पतित भाषण करते थे समर्थ थे या असमर्थ ऐसे करोड़ों लोग आदरपूर्वक रामनाम का जप करके संसार-सागर से पार हो गये। और भी जो स्त्रियां हों, अत्यज हों या चतुर्थ वर्ग कोई भी यदि भक्तिपूर्वक श्रीराम नाम, इस दो वर्ण का, आदरपूर्वक जप कर लेता है तो निश्चित वो संसार-सागर से पार होता है और ऐसा करके बहुत से लोग संसार-सागर से पार हुए।

इत्थं सुरेन्द्रस्तुतकर्मशक्तिः प्रादुर्भविष्यन् द्विजधर्मपत्न्याम्।
प्रतीक्षते स्माऽऽत्मजनेर्मुहूर्तं सुलग्नसूतिर्हि महाविभूतिः॥70॥

इस प्रकार देवताओं के द्वारा जिनके दिव्य कर्म और शक्ति की स्तुति की गयी ऐसे साकेताधिपति भगवान् राम ब्राह्मण-धर्मपत्नी सुशीला जी में अंशावतार लेने की इच्छा करते हुए अब अपने जन्म-नक्षत्र की प्रतीक्षा करने लगे क्योंकि प्रत्येक महाविभूति सुन्दर लग्न में ही जन्म लेती है।

क्रमेण यातेषु नवस्वमोघमासेषु गर्भे यतिपं वहन्त्याः।
प्राप्तश्च मातुर्दशमो हि मासः स माघ आकल्पितकल्पवासः॥71॥

इस प्रकार यतिराज श्रीरामानन्दाचार्य जी को अपने गर्भ में धारण करते हुई सुशीला माता जी के अमोघ नौ मास व्यतीत हो गये। अब उनके प्रसव का मास उपस्थित हुआ जिसे माघ नाम से जाना जाता है और उसी में प्रयाग में कल्पवास किया जाता है।

प्रयागराजे ननु तीर्थराजे समुल्लसद्वैष्णवसत्समाजे।
स कल्पवासो वशिनां चकाशे धर्मो हि कल्पेत मुदे नराणाम्॥72॥

इस प्रकार तीर्थराज नामक प्रयाग में जहाँ वैष्णवों और सन्तों का समाज सुशोभित है एक संयमी सनातन धर्मी महानुभावों का माघ मास का कल्पवास प्रारम्भ हुआ। निश्चित ही धर्म तो कल्याण-पथिकों का कल्याण ही करता है।

माघे यदा याति हि भानुमान् वै राशीशमिष्टं मकरं महात्मा।
तदा प्रयागे किल कल्पवासं सर्वे चरन्त्येव मुनीन्द्रसन्तः॥73॥

जय सूर्य भगवान् माघ महीने में राशियों के ईश्वर मकर राशि को प्राप्त होते हैं उसी समय सभी मुनिगण और सन्तजन प्रयाग में कल्पवास करते हैं।

यदैव भानुर्मकरं प्रयाति माघे च मासे कृतपापनाशे।
तदैव देवा मुनयश्च सन्तः प्रयागमायान्ति शुभानि कर्तुम्॥74॥

जब सूर्यनारायण मकर राशि में आ जाते हैं उसी समय शुभ कार्य करने के लिए माघ मास में देवता, मुनि और सन्तजन तीर्थराज प्रयाग में आ जाते हैं।

देवाश्च दैत्याश्च नरास्तथैव सर्वे मुदा किम्पुरुषाः पुरस्तात्।
प्रातर्निमज्जन्ति मुदा त्रिवेण्यां श्रीमाघमासे किल कल्पवासे॥75॥

कल्पवास की परम्परा का निर्वहन करने के लिए देवता, दैत्य मनुष्य, किम्पुरुषगण सभी लोग प्रातः काल त्रिवेणी में निमज्जन करते हैं।

ब्राह्मे मुहूर्ते हतघोरनिद्राः सुसंयमा जागरमाचरन्तः।
निमज्ज्य सानन्दहृदस्त्रिवेण्यां सेवन्त एते किल कल्पवासम्॥76॥

उसी समय सभी लोग प्रातः काल त्रिवेणी में स्नान करके कल्पवास को सेवाव्रत से अनुष्ठित करते है, क्योंकि एक मास पर्यन्त उनका प्रचुर जागरण होता है।

देवाश्च दैत्याश्च मनुष्यवर्गा गन्धर्वविद्याधरसिद्धसङ्घाः।
प्रातर्निमज्जन्ति मुदा त्रिवेण्यां निःश्रेयसायैव हि धर्मकार्यम्॥77॥

इस प्रकार सभी देवता, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, विद्याधर और सिद्धों के समूह कल्पवास में प्रातःकाल त्रिवेणी में स्नान करते हैं, क्योंकि धार्मिक कार्य मोक्ष के लिए ही होते हैं।

प्रातर्निमज्ज्यैव समे त्रिवेण्यां सम्पूज्य देवान् मनुजाः पितृंश्च।
कुर्वन्ति सर्वे किल कल्पवासं श्रीमाघमासे खलु तीर्थराजे ॥78॥

इस प्रकार माघ मास में तीर्थराज प्रयाग में प्रातःकाल त्रिवेणी में मज्जन करके देवताओं और पितरों की पूजा करके सभी लोग प्रेमपूर्वक कल्पवास का अनुष्ठान करते हैं।

भूमौ शयानाः श्रितकन्दमूलाः शीतं च वातं प्रसभं सहन्तः।
कुर्वन्ति माघे किल कल्पवासं श्रीतीर्थराजे निजपापनाशम् ॥79॥

सभी लोग श्रीतीर्थराज प्रयाग में पाप का नाश करते हुए भूमि में शयन करके कन्दमूल फल का सेवन करते हुए कठोर शीत और वात को सहन करते हुए कल्पवास करते हैं।

प्रभातकाले किल कम्पमानाः शीतं सहन्तो ननु वायुमुग्रम्।
सम्पूज्य देवान् भगवत्कथायां सानन्दचित्ता यमिनो वसन्ति ॥80॥

इस प्रकार प्रभातकाल में काँपते हुए भी शीत और कठोर वायु को सहन करते हुए भी संयमी जन प्रयाग में कल्पवास का अनुष्ठान करते हैं।

नत्वा त्रिवेणीं हतपापवेणीं सोमेश्वरं वासुकिमेव नागम्।
सम्पूजयन्ते परया च भक्त्या मायाधवं माधवमेव साक्षात् ॥81॥

पाप को नष्ट करने वाली त्रिवेणी को नमन करके पराभक्ति के द्वारा सोमेश्वर एवं वासुकि को प्रणाम करके कल्पवासी माया के स्वामी माधव को प्रणाम करते हैं।

पुनर्भरद्वाजमुनिं प्रणम्य ध्यायन्त ईड्यं रघुनाथरूपम्।
वन्दन्ति ईड्याऽक्षयमेव वृक्षं विधानतः कल्पितकल्पवासाः ॥82॥

इस प्रकार सभी कल्पवासी जन भरद्वाज मुनि को प्रणाम करते हुए भगवान् के दिव्य रूप का ध्यान करते हुए अक्षयवट को प्रणाम करते हैं।

वेदान्तचर्चां भगवत्कथां च विद्वन्मचर्चा ननु गौतमीयम्।
साङ्ख्यं च योगं प्रवदन्ति सर्वे वैशेषिकं शेषनिसृष्टचित्ताः ॥83॥

प्रयाग में शेषनारायण के चरणों में अपने चित्त को अर्पित करके विद्वान् लोग कहीं साङ्ख्य, कहीं योग, कहीं न्याय, कहीं वैशेषिक, कहीं वेदान्त आदि की चर्चा करते हैं।

मीमांसया स्थापितकर्मवादं विद्वद्विवादं विगलद्विषादम्।
संस्थापयन्ते ननु पूर्वपक्षं तदुत्तरं व्यासनिसृष्टसूत्रम् ॥84॥

इस प्रकार कल्पवास के समय विषाद से रहित विद्वानों के विवाद से मुक्त कर्मवाद की मीमांसा से स्थापना करते हैं और पुनः उत्तर-पक्ष के रूप में वेदव्यास द्वारा निर्मित ब्रह्मसूत्र की चर्चा करते हैं।

श्रीमाघकः पावनकृष्णपक्षः श्रीसप्तमी पातकमोचनी च।
समागतेयं गुरुवारयुक्ता जन्मर्क्षकाले हि यतीश्वरस्य ॥85॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के जन्म-नक्षत्र के समय साक्षात् पाप को नष्ट करने वाली माघ-मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी आयी और वह गुरुवार से युक्त होकर के विराजमान हुई।

प्रत्यूषकालः श्रितसौख्यमाला चित्रा विचित्रा नितरां पवित्रा।
शुभर्क्षयोगो हतसर्वरोग आचार्यजन्मन्यथ सञ्चकाशे ॥86॥

आचार्य के जन्म में क्या सुंदर योग बना। संपूर्ण सुखों से युक्त प्रत्यूषकाल परम-पवित्र चित्रा नक्षत्र इस प्रकार आनन्द ही आनन्द हो गया।

चित्रा विचित्रा परमा पवित्रा जन्मर्क्षकालो यतिनायकस्य।
सन्मङ्गलायैव समस्तनॄणां शोभां मनोज्ञां बिभराम्बभूव ॥87॥

सम्पूर्ण नक्षत्रों की मातास्वरूप, अत्यन्त विचित्र, परम पवित्र चित्रा सौभाग्य प्राप्त कर रही हैं। यतियों के नायक रामानन्दाचार्य जी के जन्मनक्षत्र का जिनमें नवग्रहों की स्थिति भी बहुत विचित्र है।

रविश्च साक्षान्ननु मङ्गलस्य चन्द्रोऽपि युक्तस्तुलया विभाति।
सन्मङ्गलो वै मकरस्य नूनं स्वाचार्यजन्मैव विभूषयन् वै ॥88॥

अपने आचार्य के जन्म को सुशोभित करने के लिए साक्षात् सूर्यनारायण मकर में आए, चन्द्रमा तुला राशि में सुशोभित हो रहे हैं। मङ्गल भी मकर के हैं। यही तो सौभाग्य है।

यदा रविर्वै मकरं प्रयातः संक्रान्तिरेषा मकरस्य दिव्या।
तदा समस्ता ऋषिदेवसङ्घाः समागताः शाश्वततीर्थराजम्॥89॥

जब सूर्यनारायण मकर में आ गये तो सम्पूर्ण ऋषिगण और देवगण प्रसन्नता से तीर्थराज में उपस्थित हो गये।

बुधः प्रबुद्धो विभवो धनौ च गुरुर्गरीयान्ननु मीनराशौ।
शुक्रोऽपि साक्षान् मकरस्य भाति सम्भूषयन् देशिकजन्मकालम्॥90॥

साक्षात् बुध देवता धनु के, गुरु मीन के और शुक्र मकर के पुनः सुशोभित हो रहे हैं।

शुक्रे विभाते मकरस्य नूनं छायासुतो भाति च कर्कराशौ।
राहुश्च कुम्भे विरराज दिव्यः केतुश्च सिंहे ननु राशियोगे॥91॥

इस प्रकार शुक्र मकर के शनि कर्क के राहु कुम्भ के और केतु सिंह के।

रविश्च भौमश्च तथैव शुक्रो ग्रहत्रयं वै मकरस्य भाति।
संवन्दमानं यतिराजराजं जन्मर्क्षयोगे निजसेवया वै॥92॥

इस प्रकार यतिराजराज के जन्मकाल में अपनी सेवा देते हुए एक विचित्र सा योग बना लिया ग्रहों ने तीन-तीन ग्रह रवि अर्थात् सूर्य, मंगल और शुक्र ये तीनों ही मकर के हैं। चूँकि केतु सिंह के हैं इसलिए आचार्य की दीर्घायु स्पष्ट हो गयी।

एवं लसत्कुण्डलिनी मनोज्ञा जन्मर्क्षकालस्य च कुण्डलीयम्।
आचार्यवर्यस्य विभां वहन्ती कामप्यभिख्यां बिभयाम्बभूव॥93॥

इस प्रकार योग की कुण्डलिनी से युक्त यह आचार्य चरण की कुण्डली कुल ग्रहों के साथ एक अद्भुत शोभा को प्राप्त हुई।

चित्रां पवित्रां समुदाहरन्ति जन्मर्क्षमीड्यं यतिशेखरस्य।
श्रीसूर्यसिद्धान्तनिरूपणेन दैवज्ञवर्याः परिभाव्य नूनम्॥94॥

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निर्णय करके श्रेष्ठ ज्योतिर्विद्गण यतिराजराज का जन्मनक्षत्र चित्रा ही बताते हैं।

चित्राणि कर्माणि च भान्ति नित्यं योगीन्द्रवर्यस्य समस्तलोके।
ततो यथार्थं ननु जन्मनीयं चित्रा विचित्रा सुषमां बिभर्ति॥95॥

चूँकि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के सभी कर्म आश्चर्ययुक्त ही रहे हैं इसीलिए तो उनके जन्म का नक्षत्र चित्रा हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

चित्रां तृतीयं चरणं प्रविष्टां सम्प्राप्य जातो यतिशेखरोऽयम्।
तस्मात्तृतीयार्णयुतेन रामानन्देति नाम्ना तमिहामनन्ति ॥96॥

चूँकि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का जन्म चित्रा के तृतीय चरण में हुआ और तृतीय चरण का साङ्केतिक नाम भी 'र' है इसलिए विद्वानों ने इनके जन्म के नाम से ही इनका नाम रख दिया रामानन्दाचार्य।

यथैव रामस्य तुलैव राशिर्जगत्प्रसिद्धा किल राघवस्य।
तथैव चैतस्य यतीन्द्रराजो राशिस्तुला चेति विभावयन्तु ॥97॥

जिस प्रकार भगवान् राम की राशि तुला है उसी प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की भी राशि तुला है।

मरीचिमालिन्यथ सप्तदण्डं प्राप्तोदये व्योम्नि विराजमाने।
आविर्बभूवैष महानुभावः श्रीमच्छुशीलाजठरान्महात्मा ॥98॥

चूँकि भगवान् सूर्य नारायण के उदय के अब सात दण्ड हो चुके हैं ऐसे मकर राशि में विराजमान सूर्य, मंगल और शुक्र के रहने पर धनु राशि में बुध के रहने पर, मीन में बृहस्पति के विराजमान होने पर, तुला राशि में शनि के विराजमान होने पर और कुम्भराशि में राहु के विराजमान होने पर और सिंह में केतु के होने पर आचार्य चरण का जन्म हो रहा है। बहुत मङ्गलमय संयोग है।

नेदुर्दिवो दुन्दुभयः समस्ता अनाहता लब्धमहोत्सवाश्च।
कल्पप्रसूनैर्ववृषुश्च देव्यस्तौ दम्पती चापि मुहुर्प्रहृष्टाः ॥99॥

जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी के जन्म के समय बिना बजाए ही स्वर्ग के नगाड़े बजने लगे और देवियों ने कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा की।

मृदङ्गशङ्खानकभेरिमुख्या वाद्या अवाद्यन्त सुरेन्द्रवर्यैः।
जयेति रामं सुमहानुभावं मुदा जगुः किन्नरनागवर्याः ॥100॥

इस प्रकार मृङ्ग, शङ्ख, आनक, भेरी आदि वाद्य अपने आप बजने लगे और महाप्रभाव के साथ किन्नर-नागों ने जय-जय की।

विद्याधराः किम्पुरुषाः सुराश्च गन्धर्ववर्याः किल नारदाद्याः।
जगुर्यशो निर्मलमेव तस्य सुरेन्द्रपत्न्यो ननृतुः समन्तात्॥101॥

इस प्रकार विद्याधर, किन्नर, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष सभी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के दिव्य यश को गाने लगे और देवताओं की पत्नियाँ भी प्रसन्न होकर नाचने लगीं।

शची भवानी जलराशिकन्या श्रीभारती भास्वति जीवलोके।
नीराजयामासुरुदारकीर्तिं सौशील्यवर्यं तमनन्तसत्त्वम्॥102॥

इस प्रकार शची, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती प्रसन्न होकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की आरती किये और सौशील्य से सुशोभित इस बालक के अभ्युदय की कामना की।

तदैव शान्तो ददृशेऽतिहृष्टः कन्दावदातो जनपारिजातः।
श्रीवायसः काकभुशुण्डिनाम्ना रामेति रामेति गिरं जगाद॥103॥

उसी समय सुन्दर खेत में आकर नीले बादल के समान स्वरूप वाले काक भुशुण्डी ने दर्शन दिये और राम-राम कहकर भगवान् का कीर्तन किया।

श्रीनारदो देवलपर्वतौ च वसिष्ठमुख्या ऋषय प्रसन्नाः।
सिद्धेश्वरा ये कपिलादयो वै संवर्धयामासुरुदारकीर्तिम्॥104॥

इस प्रकार नारद, देवल, पर्वत, वशिष्ठादि मुनिगण और कपिलादि सिद्धगणों ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को बधाइयाँ दीं।

जयति भूसुरवंशयशोधरो महितया हितया गुणसंविदा।
जय वसिष्ठकुलाम्बुजभानुमञ्जयतु ते सततं विमलं यशः॥105॥

हे वशिष्ठ कुल रूप कमल के सूर्य! आपकी दिव्य कीर्ति की जय हो, आपका दिव्य यश अमर रहे और आप निरन्तर विजयी बने रहें।

गोब्राह्मणानां च सतां सुराणां रक्षां विधातुं ननु रामचन्द्रः।
वसिष्ठवंशेऽवततार रामानन्देति नाम्ना यमिनां वरिष्ठः॥106॥

गौ, ब्राह्मण, सन्त एवं देवताओं की रक्षा करने के लिए वसिष्ठ वंश में भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने ही रामानन्दाचार्य नाम से प्रसिद्ध होकर अवतार ले लिया।

शरीरशोभाजितकोटिचन्द्रो द्राक्पुण्यसद्मार्जितपुण्यपूगः।
बालो विभाव्रीडितकोटिभानुश्चकार नैर्जीं जनिमार्तबन्धुः ॥107॥

अपनी शोभा से करोड़ों चन्द्रमाओं की शोभा को जीतने वाले पुण्यसदन शर्मा के पुण्यपुञ्ज स्वरूप रामानन्दाचार्य जन्म लेते ही अपने प्रकाश से करोड़ों सूर्यों को लज्जित करने लगे और आर्तों की रक्षा करने के लिए ब्राह्मणावतार स्वीकारा।

कलौ प्राप्ते व्योमद्वयसहितवेदद्वयमये सहोर्मीके भूते गुणरघुपतौ वैक्रमयुते।
प्रयागे सद्यागे विलसितविरागेऽप्यथ जगद्गुरू रामानन्दो दुहिणसुतगोत्रे समभवत्॥108॥

इस प्रकार इस कराल कलिकाल के 4400 वर्ष बीत जाने पर विक्रमी संवत 1356 में सन्तों के सौभाग्यस्वरूप प्रयाग में ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ जी के गोत्र में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का आविर्भाव हुआ।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गो द्वितीयको यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये द्वितीयः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ तृतीयः सर्गः ॥

अथो सती ब्रह्ममयी च भारती सुभारती भारतभव्यभारती।
निरीक्ष्य पुत्रं द्विजपुण्यसद्मनो मुदा समागायति गीतमङ्गलम् ॥01॥

जगद्‌गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी के आविर्भाव के अनन्तर ब्रह्म विचार में तत्पर, शुभ कार्यों में जिनका आदर और प्रेम है ऐसे भारतभाग्य की मङ्गलमयी सरस्वती भगवती जी ने पुण्यसदन शर्मा के यहाँ जन्मे हुए सुन्दर पुत्र को जो देखा तो वे प्रसन्न होकर एक मङ्गल गीत गाने लगीं–

जातं सखि रामानन्दाचार्यस्यास्य जन्म शुभम्
वर्धापनं प्रविधीयतां, वर्धापनं प्रविधीयताम्।
जातश्चाद्य भाग्योदयो भारतवसुन्धरायाः
वर्धापनं प्रविधीयतां, वर्धापनं प्रविधीयताम्।
आचार्योऽयं जगद्‌गुरुः रामानन्दाचार्यो जातो मङ्गलमनुदिनं गीयताम्।
हिन्दुत्वस्य रक्षाकृते करिष्यति बहुयत्नान् सर्वा समस्या समाधीयताम्।
रामचन्द्रपदपद्ममधुकरो भूत्वा द्विजो दिशि दिशि सर्वत्र विधीयताम्।
गिरिधरसरस्वत्या गुणगणं गायं गायं रामानन्दो हृदयं च नीयताम् ॥02॥

हे सखि! आज जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य का जन्म हुआ है। इनके लिए वर्धापन किया जाए– बधाई दी जाए। आज भारत का भाग्योदय हुआ है सतत मङ्गल गाया जाए। ये जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य के नाम से ख्यात होंगे और इनके लिए बहुत बड़ी–बड़ी बधाइयाँ दी जाए। ये हिन्दुओं का सङ्कट समाप्त करेंगे अतः इनके चरणों में हिन्दुओं की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान किया जाए।

रामानन्दाचार्य का दिग्विजय घोष सम्पूर्ण सनातन धर्म के लिए आदरणीय हो और प्रस्तुत महाकाव्य के लेखक जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्य गिरिधर कवि की

सरस्वती द्वारा भी श्रीरामानन्दाचार्य को जन-जन के हृदय में स्थापित किया जाए।

जातं सखि रामानन्दाचार्यस्यास्य जन्मदिनं गृहे गृहे वर्धापनं गीयताम्।
पूरितमनोरथसमस्तहिन्दुजनताया मङ्गलविधानं प्रविधीयताम्॥

हे सखि! आज जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का जन्मदिन है। आज घर-घर में बधाई गाई जाए। आज सम्पूर्ण हिन्दू जनता के मनोरथ पूर्ण हुए हैं इसलिए सर्वत्र मङ्गल विधान किया जाए....

और क्या किया जाए....

दीप्यन्तां च दीपकाश्चतुष्काणि विधीयन्ताम्, दिव्यं परिधानं परिधीयताम्।
दूरितानि दूर्यन्तां च पूर्यन्तां सुमनांसि, इतरोऽपि भावः परिहीयताम्॥

आज घर-घर में दीपक जलाए जाएं और सुन्दर चौके पूरे जाएं, दिव्य वस्त्र धारण किए जाएं, विघ्नों को दूर किया जाए, सबके मन पूर्ण हों और भगवत्विरुद्ध भावना दूर हो जाए और क्या-क्या हो

नृत्यन्तु प्रगायन्तु विबुधकुलललनाश्च दृश्यं दृश्यं दर्शनीयं नीयताम्।
प्रतिविथि पूर्यन्तां सुमौक्तिकचतुष्काणि च मधुरसुगानं प्रविधीयताम्॥

और प्रत्येक वीथिका में जहाँ सज्जा की व्यवस्था की जा रही है वहीं देवताओं की वधुएँ आज प्रसन्नता से नाचें और गाएं। प्रत्येक दृश्य आनन्द से भर जाए और सबका मन आनन्द में नाच उठे और मङ्गल-गान किया जाए, प्रत्येक दृश्य दर्शनीय बन जाएं और क्या हो-

दर्शं दर्शं बालमुखकमलं मनोहरञ्च सकला समस्या समाधीयताम्।
शकलदुरितहरं रामानन्दाचार्ययशो गिरिधरगिरा किल गीयताम्॥
जातं सखि रामानन्दाचार्यस्यास्य जन्मदिनम्... ॥03॥

इस बालक के सुन्दर मुखारविन्द को निहार-निहार कर समस्त समस्याओं का समाधान किया जाए और वर्तमान काव्य के रचयिता जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्य गिरिधर कवि की वाणी के द्वारा जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के दिव्य यश का गान किया जाए। बधाइयाँ गाई जाएं।

तमुत्तमं श्वेतसरोजसौभगं सुबालकं भूसुरवंशपालकम्।
निरीक्ष्य पुत्रं च मुदा सुशीलया निरर्गलं गीतमुपस्थितं तया ॥04॥

इस प्रकार श्वेत मेघों के समान सौभग वाले अर्थात् जिनका शरीर श्वेत कमल के समान श्वेत है, ऐसे ब्राह्मण वंश के पालक अपने बालक पुत्ररत्न को निहारकर सुशीला जी द्वारा प्रसन्न होकर एक गीत प्रारम्भ किया जा रहा है..

प्रकटो मुनिवृन्दो रामानन्दो हिन्दूजनसुखकारी।
दम्पतिहृदिमोदो लसितप्रमोदो भगवान् भवभयहारी।
कलकनकशरीरः परमगभीरः पाञ्चजन्यकरधारी।
शुचियुगभुजदण्डो लसितत्रिदण्डस्तेजोमयब्रह्मचारी॥

अर्थात् जब सुशीला जी के समक्ष बालक रूप में भगवान् श्री रामानन्दाचार्य जी प्रकट हुए तो उन्होंने निहारा। सम्पूर्ण गुणगणों में अवतीर्ण थे, हिन्दुजन के हितैषी थे। ऐसा अद्भुत विग्रह देखकर आनन्द के साथ दम्पति के हृदय में एक मोद उत्पन्न हुआ। प्रहर्ष के साथ हर्ष और साक्षात् भगवान् ब्रह्मचारी रूप में प्रकट हो गये। शरीर सुन्दर स्वर्णवर्णी गौर अत्यन्त गम्भीर भगवान् भवभय के हर्ता, सुन्दर दो भुजदण्ड, दाहिने हाथ में त्रिदण्ड और तेजस्वी ब्रह्मचारी रूप में भगवान् का आनन्द हुआ। यह देखा सुशीला ने–

परिवीक्ष्य सुशीला निरूपमशीला, गातुं श्रीभगवन्तम्।
धृतलोचननीरा पुलकशरीरा, ऊचे वचनमनन्तम्।
जय जय अविनाशिन् सर्वहृद्वासिन्, त्रातुं गोश्रुतिसन्तम्।
धृतमानवदेहं मङ्गलगेहं वन्दे तत्र भवन्तम्॥

शरीर पुलकित हो गया। उनका शील यद्यपि निर्मल था। सुशीला जी भगवान् की स्तुति करने के लिए नेत्रों में आँसू भरकर शरीर में रोमाञ्च होकर स्वयं भगवान् की स्तुति करने के लिए दिव्य वचन बोलीं। हे अविनाशिन्! हे सबके हृदय में निवास करने वाले! प्रभु आपकी जय हो, आपकी जय हो। आप देवताओं और सिद्धों की रक्षा करने के लिए दिव्य मङ्गल शरीर धारण करके गुण-गणों के रूप में प्रकट हुए हैं। हे प्रभु!–

जय भवभयभञ्जन जनमनरञ्जन, जय सुरनरमुनिस्वामिन्।
भवजलनिधिमन्दर गुणगणमन्दिर, सुन्दर अन्तर्यामिन्।

निजजनसुखहेतुश्रितश्रुतिसेतुनिखिललोकगुरुनामिन्।
हर्तुं भवभारं परममपारम्, जातो हनुमद्गामिन्॥

हे मुनिजनों के रञ्जन सज्जनों को आनन्द देने वाले सभी के स्वामी भव-वारिधि के मन्दराचल पर्वत, गुणगणों के मन्दिर, सुन्दर, अन्तर्यामिन्, वैदिक धर्म की रक्षा करने वाले, आनन्द के हेतु सर्वान्तर्यामी, एकमात्र वसुन्धरा का भार उतारने के लिए आप स्वयं हनुमद्गामी अर्थात् हनुमान् जी की पीठ पर बैठकर होकर आ गए।

जय जय सुरनायक, श्रुतिगणनायक सुखदायक किल भूमन्।
पालितसुरधरणे भवनिधितरणे मोदिततरणे श्रीमन्।
धृतपक्ष्यवतारिन् भवभयहारिन् सुखकारिन् भवसीमन्।
जय परमकृपालो दीनदयालो भक्तवश्य शुचिनामन्॥

सारे जगत् की कल्याण की सीमा, भूमण्डल के रक्षक भवसागर के सेतु आपकी जय हो। आप धीमान् हैं, आप भूमा हैं, आप सुरनायक हैं, आप शत्रु-मित्र सबको सुख देते हैं। इस भक्तिरूप नाव के ऊपर चढ़े केवट जैसे दलित की पत्नी और सूर्य को भी आनन्द देने वाले ऐसे हे सूर्यनारायण के साक्षात् गुरु! आपकी जय हो। जटायुरूप पक्षी को प्रेम करने वाले और सब के अवतारी आप हमारी रक्षा कीजिए।

पुण्यसदनशुचिपुण्यमय जय जय जय गुणकन्द।
देवीसुशीलाऽऽनन्दकर जय जय रामानन्द॥05॥

पुण्यस्वरूप पुण्यसदन के पुत्र सुशीला जी को आनन्द देने वाले वेद धर्म के रक्षक साक्षात् परमपिता परमेश्वर रामानन्दाचार्य जी आप की जय हो! जय हो! जय हो!

तमुत्तमं बालकमब्जलोचनं प्रफुल्लपीताम्बुजदेहसौभगम्।
निरीक्ष्य माता द्विभुजं जगद्गुरुम्, जगाद जीमूतगभीरया गिरा॥06॥

इस प्रकार अपने समक्ष प्रकट सभी गुणों से उत्तम, कमल नेत्र, पीले कमल के समान शरीर वाले, द्विभुज जगद्गुरु अपने पुत्र को देखकर माता सुशीला मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोली।

साकेतविहारी हरिरवतारी गर्भे मया गृहीतो
वासिष्ठो वंशो द्विजावतंसो भवता समनुगृहीतः।

कलिरवगुणहेतुर्हतश्रुतिसेतुर्भविता भवतो भीतो
मम पुत्र औरसो निरुपमपुरुषः कुरु तद् यथाप्रतीतः॥

साकेत बिहारी परम् ब्रह्म परमात्मा ने मेरे गर्भ में निवास किया। मैंने उन्हें गर्भ में धारण किया। वशिष्ठ वंश आपके द्वारा अनुगृहीत हुआ। अवगुणों के हेतु कलिकाल आपसे डरेगा। ऐसे निरुपम पुरुष मेरे औरस पुत्र बने। इस प्रकार लोग जैसे विश्वास कर सकें वही कीजिए अर्थात् छोटे से बालक बन जाइए।

पुनराह सुशीला मङ्गलशीला परिहर पौरुषरूपम्।
क्रियतां शिशुलीला जनसुखशीला स्मृतहतभवभयकूपम्।
श्रितमातृनिदेशः कृतशिशुवेषः समरुददर्भस्वरूपम्।
गायन्निति चरितं मङ्गलभरितं नाभिपतति भवकूपम्॥

फिर मङ्गलशीलवाली सुशीला जी ने कहा– यह रूप छोड़कर अनुपम शीलयुक्त बाललीला कीजिए। यज्ञ के यूपों का मण्डन कीजिए। माता का यह निर्देश पाकर छोटे से बालक का स्वरूप धारण करके भगवान् रामानन्दाचार्य रोने लगे।

इस मङ्गलमय चरित्र को गाता हुआ व्यक्ति भवकूप में नहीं पड़ता।

सौशीलेय कृपायतन पुण्यसदनसुतरत्न।
जय जय रामानन्द जय भारतमङ्गलनत्न॥07॥

हे पुण्यसदन और सुशीला के पुत्र आपकी जय हो! हे रामानन्द आपकी जय हो! हे भारत इतिहास के नवीन मङ्गल आपकी जय हो।

विलोक्य तं बालमरालमञ्जुलं पिशङ्गपाथोरुहकोमलद्युतिम्।
सुरेन्द्रकन्या ववृषुः सुमाञ्जलीर्मुदैव वर्धापनमुत्तमं जगुः॥08॥

सुशीला जी के समक्ष प्रकट हुए उत्तम गुणों से सम्पन्न विकसित पीले कमल के समान कोमल शरीर वाले बालक को निहारकर देव कन्याओं ने उन पर पुष्पाञ्जलि की वर्षा की और उत्तम स्वर में उत्तम बधाई गाने लगीं।

नृलीलाऽऽनन्दवर्धन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः॥
सुशीला तेऽभवन् माता भुवनमहिलासु विख्याता
सुशीलाऽऽनन्दवर्धन् ते वयं वर्धापनं ब्रूमः॥

पिता ते पुण्यसदनोऽऽभूद् वसिष्ठान्वयसुवदनोऽभूत्
वसिष्ठानन्दवर्धन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः॥
प्रयागे ते जनिर्जाता माघहरिसप्तमी ख्याता
वरिष्ठाऽनन्दवर्धन ते वयं वर्धापनं ब्रूमः॥
वसिष्ठशक्तिपाराशर इति त्वं त्रिप्रवर गिरिधर-
कनिष्ठानन्दवर्धन् ते वयं वर्धापनं ब्रूमः॥09॥

हे मानवीय लीला को आनन्द देने वाले प्रभु जगद्गुरु रामानन्दाचार्य आप के लिए हम बधाई गा रहे हैं। सम्पूर्ण महिलाओं में विख्यात सुशीला जी आपकी माता बनीं। उन सुशीला जी के आनन्द को बढ़ाने वाले और शोभनशील वाले मनुष्यों के भी आनन्द को बढ़ाने वाले प्रभु हम आपकी बधाई गा रहे हैं। आपके पिता श्री सुन्दर मुख से सम्पन्न वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न हुए पुण्यसदन शर्मा, अतः उन्हें तथा वशिष्ठ जी को आनन्द देने वाले प्रभु हम आपके लिए बधाई गा रहे हैं। आपका जन्म प्रयाग में हुआ है, आपके जन्म का माघ मास था, हरि सप्तमी अर्थात् कृष्ण पक्ष की सप्तमी और हरि अर्थात् गुरुवार से युक्त सप्तमी आपके जन्म की तिथि थी। हे वशिष्ठों को आनन्द देने वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य हम आपकी बधाई गा रहे हैं।

आप वशिष्ठ शक्ति पाराशर इस प्रकार से तीन प्रकार से युक्त वशिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण परिवार में प्रकट हुए। गिरिधर सहित हम सभी कनिष्ठों को आनन्द देने वाले प्रभु जगद्गुरु रामानन्दाचार्य हम आपके लिए बधाई गा रहे हैं।

धन्या धन्या माता सुशीलादेवी पिता पुण्यसदनो धन्यो हे।
हरे! हरे! धन्या सुशीला यासु कुक्षिर्यतीशो यत्र प्रकटितो हे॥
धन्या तीर्थराजप्रयागभूमिर्लोकत्रयवन्दिता हे।
यस्यां जातो रामानन्दाचार्यो निसर्गादनिन्दितो हे॥
धन्यो धन्यो माघः सुमासः कलितकल्पवासो हे।
यस्यां जातो रामानन्दाचार्यस्वामी सकलगुणवासो हे॥
धन्या धन्या कृष्णपक्षसप्तमी धन्यं रविवासरं हे।
यत्र प्रकटितो रामानन्दस्वामी सकलागुणमन्दिरं हे॥
गायन्ति गीतं गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसः प्रसन्नाः हे।
जय जय कथयन्ति रामानन्दाचार्यगिरिधरहृदि निषण्णो हे॥

देववाद्यं वादितं मृदङ्गं च शङ्खा दुन्दुभयोऽवाद्यन् हे।
स्वर्गतूर्याणि सर्वाणि वादितानि त्रिभुवनं सोहरम् हे॥
धन्या धन्या मकरसङ्क्रान्तिः सकलसुक्रान्तिक्षणो हे।
यस्यां रामानन्दाचार्यस्वामी प्रकटो गिरिधरकविस्वामिचरणो हे॥10॥

अर्थात् माता सुशीला देवी धन्य हैं और पिता पुण्यसदन शर्मा भी धन्य हैं, जिनके संकल्प से रामानन्दाचार्य स्वामी का जन्म हुआ। आज प्रयागराज की तीर्थ भूमि धन्य है और उसकी तीनों लोकों में प्रशंसा हो रही है क्योंकि इसी भूमि में प्रकृत्या निन्दारहित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी का प्राकट्य हुआ। धन्य है वह माघ मास जिसमें लोगों का कल्पवास होता है उसी में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी प्रकट हुए। धन्य है माघ कृष्णसप्तमी, धन्य है वह गुरुवार जिसमें सकलान्तर्यामी स्वामी रामानन्दाचार्य जी का प्राकट्य हुआ। धन्य है यह मकर संक्रान्ति जिसमें समग्र क्रान्ति का जन्म हुआ जिसके नायक बने यतिकुलशेखर। आज गन्धर्व गण गीत गा रहे हैं अप्सराएँ वस्त्र पकड़-पकड़कर नाच रही हैं, देववाद्य बज रहे हैं, प्रसूनों की वर्षा हो रही है, बिना बजाये ही देववाद्य बज रहे हैं। शङ्ख, तूर्य, मृदङ्ग इत्यादि वाद्य बजने लगे। इस प्रकार जगद्गुरु रामान्दाचार्य की जय-जयकार हो रही है। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य भगवान् की जय।

अद्य भूरिभागो प्रयागोऽपि जातो जगद्गुरुर्यत्र जातः।
माघकृष्णसप्तमी सुखदगुरुवारो विलसति विलसितसुखपारावारः।
देवा गायन्ति मञ्जु सुप्रभातं जगद्गुरुर्यत्रजातः।
धनोः शशी रविर्भौमो मकरस्य सूर्यो राहुश्च कुम्भे सिंहराशौ केतुरुग्रग्रहः।
मीने बुधस्तुलाशनैश्चरं विभातं जगद्गुरुर्यत्र जातः।
गङ्गायमुनयोर्भान्ति तरलतरङ्गाः कूजन्ति खगा अनुगुञ्जन्ति भृङ्गाः।
जनाः संस्पृशन्ति शिशिरर्तुवातं जगद्गुरुर्यत्र जातः।
गायन्ति गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसः पुण्यगृहे वर्धापनाऽवसरोऽपि सरसः।
गिरिधरगीतं च स्फीतं सञ्जातं जगद्गुरुर्यत्र जातः॥11॥
अद्य भूरिभागो...........

आज प्रयाग भी सौभाग्यवान् हो गया। जिस क्षेत्र में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी जी का प्रादुर्भाव हुआ। आहा! माघ कृष्ण पक्ष की सप्तमी। कितना सुखद है यह गुरुवार जो

सुख के समुद्र से सुशोभित हो रहा है। जहाँ देवता मङ्गल सुप्रभात का गायन कर रहे हैं। अहो! विचित्र है काल की गति। इस समय धनु का चन्द्रमा और सूर्य, मंगल और शुक्र यह तीन ग्रह मकर के और राहु, कुम्भ के उग्र ग्रह केतु सिंह के और मीन के बुध तथा शनैश्चर ग्रह का सुख भी तुला में सुशोभित हो रहा है। अरे! आज गङ्गा और यमुना जी की तरल तरङ्गे उत्ताल रूप में उठ रही हैं, पक्षीगण कूज रहे हैं, कलरव कर रहे हैं, भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। लोग शिशिर ऋतु की शीत वायु का आनन्द भी ले रहे हैं। गन्धर्व गा रहे हैं। अप्सराएं नृत्य कर रही हैं। पुण्यसदन शर्मा के घर में सुन्दर बधाई का उत्सव चल रहा है। इसी समय इस महाकाव्य के प्रणेता जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधर कवि का मङ्गल गीत भी स्फीत हो रहा है। क्योंकि आज जगद्गुरु जी का प्रादुर्भाव हुआ है।

अथागमन् द्रष्टुममर्त्यपालकं गुणालकं ब्राह्मणवर्णबालकम्।
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनः पादपुरत्पुरातनः॥12॥

श्री रामानन्दाचार्य जी के आविर्भाव के पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं के पालक घुंघराले बालों वाले उस ब्राह्मण श्रेष्ठ पुण्यसदन शर्मा के बालक को देखने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार जिनके चरण-कमल में स्वयं परमात्मा प्रणाम करते हैं वे पुण्यसदन के गृह आये।

मरीचिरत्रिः पुलहस्तथाऽङ्गिरास्तथा पुलस्त्यः क्रतुरत्र नारदः।
भृगुर्वसिष्ठः किल दक्ष एव हि समागमन् भूसुरवर्यनायकाः॥13॥

इसके अनन्तर मरीचि, अत्रि, पुलह, अङ्गिरा, पुलस्त्य, क्रतु, नारद, भृगु, वशिष्ठ और दक्ष ऐसे श्रेष्ठ ऋषिगण ब्राह्मणकुमार के दर्शन को आए।

सजामदग्न्यो जमदग्निरुज्ज्वलो महानुभावो मतिमान् सुतीक्ष्णकः।
सकुम्भयोनिर्गुरुगौतमस्तथा समागमन् बालकदर्शनोत्सुकाः॥14॥

परशुराम जी के सहित उज्ज्वल व्यक्तित्व वाले जमदग्नि जी और महान् प्रभाव वाले मतिमान् सुतीक्ष्ण जी, अगस्त्य जी और अन्य भी सभी के गुरु तुल्य गौतम जी ब्राह्मण बालक के दर्शन के लिए प्रयाग पधारे।

सकौशिकौ देवलनारदौ तथा महर्षिवर्यः किल पर्वतोऽपि च।
तथाऽसितो व्यास उदारविक्रमः समागमन् वै प्रमुदा महर्षयः॥15॥

इस प्रकार विश्वामित्र जी के साथ देवल, नारद, पर्वत, असित, वेदव्यास जी और उदार दर्शन वाले महर्षिगण बालक के दर्शन को आये।

समे शमाख्यापितदीप्तकीर्तयः समेऽपि पत्नीभिरुदारदर्शनाः।
समे त्रिकालज्ञनिसर्गमण्डिताः समागमन् बालकदर्शनाय वै॥16॥

सभी महर्षिगण शम के द्वारा दीप्तकीर्ति का आख्यापन कर चुके। सभी वैदिक सिद्धान्तों में निष्णात हैं सभी त्रिकालज्ञ हैं, सभी महर्षि हैं, इस प्रकार सभी लोग जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य के दर्शन के लिए प्रयाग आये।

निरीक्ष्य तानापततो दिवौकसो महानुभावांस्तरुणार्कतेजसः।
स पुण्यसद्मा शिरसा नमन् मुदा प्रहर्षपर्याकुलितेक्षणस्तदा॥17॥

इस प्रकार आकाश से नीचे आते हुए नवीन सूर्य के समान प्रकाश वाले सभी ऋषियों को निहारकर पुण्यसदन शर्मा ने सभी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सबके मन में महती प्रसन्नता हुई।

जयेत्यवोचन् मुनयो गतक्लमा निरीक्ष्य मेघं वरबर्हिणो यथा।
ननर्तुरानर्चुरुदारमानसाः प्रतुष्टुवुश्चापि गतव्यथाः समे॥18॥

इस प्रकार स्वर्ग से आते हुए देखकर सभी ब्राह्मणों को पुण्यसदन शर्मा ने बारम्बार प्रणाम किया। सभी लोग त्रिकालज्ञ हैं, दिव्यनेत्र हैं, अन्ततोगत्वा सब ने उस बालक को दुलारते हुए इस प्रकार कहा...

समेऽपि वेदाश्च सहोपवेदकाः सहाङ्गवन्तः स्मृतिरेव तादृशी।
पुराणमष्टादशकं तमर्भकं प्रपेदिरे प्राक्तनशिक्षिता इव॥19॥

उसी समय आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा शिल्पशास्त्र के साथ चारों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, अङ्गों- शिक्षा, कल्प, निरूक्त, ज्योतिष, छन्द और व्याकरण के सहित उस दिव्य बालक में स्वयं प्रविष्ट हो गये और इसी प्रकार अठारहों स्मृतियाँ और पुराण भी उसी प्रकार रामानन्दाचार्य के पास आ गये मानों पूर्वजन्म में ही शिक्षित हो चुके हैं।

समग्रशिक्षा सहकल्पसूत्रिका तथा निरूक्तं भगणानुशासनम्।
सपिङ्गलं पिङ्गलनेत्रसेवकं सशब्दशास्त्रं समुपास्त आदरात्॥20॥

उसी समय कल्पसूत्र सहित समस्त शिक्षा, निरूक्त, ज्योतिष और शब्दशास्त्र पिङ्गल छन्दशास्त्र ये छहों अङ्ग भी उस बालक की उपासना करने लगे और व्यक्तित्व धन्य-धन्य हो गया।

सबाणरामाम्बरवेदसञ्ज्ञितं शिवार्पितं पाणिनिसूत्रसङ्ग्रहम्।
सवृत्तिभाष्यं फणिराजफक्किकानुतं शिशुं व्याकरणं समभ्यगात्॥21॥

इस प्रकार चार हजार पन्द्रह सूत्रों की संख्या से शिवजी द्वारा उपलब्ध कराया गया वह अद्भुत पाणिनि सूत्र सङ्ग्रह जिसमें वृत्ति, पातञ्जल महाभाष्य तथा फणिराज पतञ्जलि की गम्भीर-गम्भीर फक्किकाएं हैं ऐसा समग्र व्याकरण बालक रामानन्दाचार्य जी में प्रविष्ट हो गया।

समस्तवेदोपनिषद्रहस्यकं सहाङ्गकं सौपयिकान्वयं तथा।
समाविशन्तस्तमशेषवाङ्मयं यथा समुद्रं सरितां पयः स्रुतम्॥22॥

सम्पूर्ण वेद, सम्पूर्ण उपनिषद् और वेद के छहों अङ्ग-शिक्षा, कल्प, निरूक्त, ज्योतिष, छन्द तथा व्याकरण सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय बालक रामानन्दाचार्य जी में उसी प्रकार समा गये जैसे सागर में नदियों का प्रवाह प्रविष्ट हो जाता है।

विराजमानं तमशेषशेखरं समुल्लसद्बालविभूषणं शिशुम्।
पिता समालिङ्ग्य चुचुम्ब सादरं पयश्च सम्पाययते स्म तज्जनिः॥23॥

इस प्रकार से सम्पूर्ण प्राणिमात्र के शेखर अर्थात् आभूषण बालविभूषणों से युक्त उस अलौकिक बालक को पिता पुण्यसदन शर्मा ने गोद में लेकर चूमा और उनकी माँ सुशीला जी ने उन्हें अमृतकल्प दूध पिलाया।

स जातकर्मादिकजन्मसंस्क्रिया चकार शास्त्रीयविधानकोविदः।
द्विजो द्विजेन्द्राननशोभितस्य वै शिशोः समासादितदिव्यसौभगः॥24॥

इस प्रकार से दिव्य सौभाग्य से युक्त पुण्यसदन शर्मा ने उस अलौकिक बालक के जातकर्मादि संस्कार प्रेम से कराये। जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित था।

यदास्य षष्ठी रजनी समापतत् तदा ययुर्निर्जरराजयोषितः।
सुवाद्यगीतैः कुसुमोत्करैः स्तवैः क्रिया हि साद्गुण्यगता विराजते॥25॥

जब उनकी जन्म की छठी रात आयी तब गीत-वाद्य पुष्पाञ्जली एवं स्तोत्रों के साथ वहाँ देव वधुएँ उपस्थित हो गयीं और जागरण करने लगीं क्योंकि सद्गुणसम्पन्न महापुरुष में लौकिक और वैदिक क्रिया और अधिक सुशोभित होती है।

स जातकर्मादिकवैदिकीः क्रियाश्चकार सूनोर्विधिवत् कृतात्मना।
रराज राजीवदृगर्भकस्तदा क्रिया हि सत्पात्रगता प्रकाशते॥26॥

अब पुण्यसदन शर्मा जी ने अपने पूर्व की जातकर्मादि सभी वैदिक क्रियाएं विधिवत् कीं। लाल कमल के समान नेत्र वाले बालक में अब विशिष्ट शोभा का उदय हो गया। क्योंकि क्रिया भी अच्छे पात्र में जाकर प्रकाशित होती है। अर्थात् प्रयोगों की गुणवत्ता भी सत्पात्र पर निर्भर करती है।

अथास्य षष्ठी रजनी रराज वै सुतस्य सद्भाग्यवशे प्रसेदुषः।
सुजागरं संव्यदधुर्द्विजाङ्गना गुणाय पुंसो ननु लौकिकी क्रिया॥27॥

इसके पश्चात् बालक की छठी रात आयी, छठी के दिन भारत के उत्तरी भाग में जागरण की परम्परा होती है और उस परम्परा का यहाँ भी निर्वाह किया गया। सभी ब्राह्मण महिलाओं ने उस दिन जागरण किया क्योंकि महापुरुष के जीवन में लौकिक क्रियाओं का भी अपना एक महत्त्व होता है।

अथागमन् नामकृतेश्चिकीर्षया स्वयं वसिष्ठो भगवान् सहानुगः।
सुपूजितः प्राह गुरुः प्रहर्षितोः गुणाय पूज्यस्य समर्हणं ननु॥28॥

इसके अनन्तर बालक का नामकरण करने के लिए अपने शिष्य-प्रशिष्यों के साथ स्वयं भगवान् वशिष्ठ आये और ब्राह्मण पुण्यसदन शर्मा जी ने उनका बहुत सम्मान किया और प्रसन्न हुए पुण्यसदन से बोले, क्योंकि पूज्य का सम्यक् सम्मान बहुत महत्त्वों का सृजन करता है।

जिताश्च लोका भवता कृतात्मना सुतस्य चैकस्य महोपलब्धितः।
तमो निरस्तं रविणैकतो ननु किमत्र तारागणसंसदां जवैः॥29॥

हे महाराज! एक ही बालक के जन्म से आपने सब कुछ जीत लिया। अब क्या आवश्यक रह गया। अरे! एक सूर्य जब सम्पूर्ण अन्धकारों को नष्ट कर ही देते हैं, तो तारागणों के मंडल की उपयोगिता क्या दिन में।

अयं हि साक्षाद् भगवान् जगत्पतिर्गृहेऽवतीर्णस्तव पुण्यसद्मनः।
उदारकीर्तिर्ननु लोकविश्रुता अनेकलीलाश्च बह्वः करिष्यति॥30॥

भगवन्! आपके घर में तो साक्षात् श्रीपति का अवतार हुआ है हे पुण्यसदन शर्मा। ये तो उदारकीर्ति होकर जगत् के उद्धार के लिए अनेक-अनेक लीलाएँ करेंगे। अब रही बात नामकरण की।

चित्राख्यभस्यैव पदे तृतीये जातस्तवायं कुलदीपको वै।
तस्मात् तृतीयार्णत एव रामानन्देतिनाम्ना सुधियो गृणन्ति॥31॥

हे पुण्यसदन शर्मा! आपका यह कुलदीपक चित्रा नक्षत्र के तृतीय चरण में उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसके तृतीय अक्षर से ही इसका नाम रामानन्द होगा।

रामे त्रिलोकस्य विपद्विरामे आनन्द एतस्य तवार्भकस्य।
तस्माद् भविष्यत्यथ जातु रामानन्देतिनाम्ना तवपुत्रकोऽयम्॥32॥

क्योंकि इस बालक के स्मरण से तीनों लोकों के कष्ट का विश्राम हो जाता है जहाँ ऐसे श्रीरामजी में ही आनन्द रहेगा इसलिए इसका नाम भी रामानन्द होगा। सामान्यतः होता क्या है, हे पुण्यसदन शर्मा—

आनन्द आयाति जनस्य कामे आनन्द एषः खलु कामपूर्वः।
रामेऽयमर्भो रमते च रामानन्देति नाम्ना च ततो भवेद् वै॥33॥

सारे संसार का आनन्द काम में होता है, इसलिए संसार के लोगों को कामानन्द कहना चाहिए परन्तु यह बालक तो राम में रमेगा इसलिए इसका नाम अन्वर्थ होगा 'रामानन्द'।

तस्माद् भविष्यत्यथ जातु रामानन्देति नाम्ना जगति प्रसिद्धः।
देवी सुशीला तनयोऽयमर्भः शङ्का न कार्या ननु चात्र लोकैः॥34॥

सामान्यतः किसी को अब शङ्का ही नहीं होनी चाहिए क्योंकि रामजी में आनन्द होने के कारण इस बालक का नाम अब रामानन्द होगा। आगे चलकर स्वामी रामानन्दाचार्य के

नाम से प्रसिद्ध होंगे इसलिए इस विषय में किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए।

इति प्रयाते कृतनामकर्मणि मुनौ वसिष्ठे मुनिभिः सशिष्यकैः।
अदायि दानं द्विजपुण्यकर्मणा प्रजासु तीर्थे विधिवन् महात्मना ॥35॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का नामकरण करके शिष्यों-प्रशिष्यों सहित मुनियों के साथ मुनि वशिष्ठ जी के चले जाने पर इस प्रजातीर्थ में महात्मा श्रेष्ठ ब्राह्मण पुण्यसदन शर्मा ने ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया।

हिरण्यगोरत्नकमन्नमुत्तमं तथा सुवासः ससमित्कमण्डलुः।
अदायि सद्‌भ्यो द्विजपुण्यकर्मणा प्रजासुतीर्थैकवितानवेदिना ॥36॥

इस प्रकार प्रजातीर्थ के एक महान् विधान के वेत्ता पुण्यसदन शर्मा ने जिसने जो चाहा उसे दान में वो दिया। किसी को स्वर्ण, किसी को गौएं, किसी को भिन्न-भिन्न रत्न, किसी को उत्तम अन्न, किसी को सुन्दर वस्त्र, किसी को समिधाएं, किसी को कमण्डल और सबको सन्तुष्ट किया।

कृतश्च संस्कार उदारबुद्धिना सुपञ्चमः पञ्चमतत्त्वलब्धये।
रराज बालो रजनीकराननः सुलक्षणो लक्ष्मणपूर्वजांशकः ॥37॥

इस प्रकार नामकरण संस्कार महर्षि के द्वारा किया गया क्योंकि उन्हें पञ्चम पदार्थ भक्ति की प्राप्ति करनी थी और लक्ष्मण पूर्वजन्मा भगवान् श्रीराम के अंशावतार रामानन्दाचार्य जी अब सुशोभित होने लगे। अभूतपूर्व था चन्द्रमा के समान मुखमण्डल।

अभूतपूर्वः सुमृणालविग्रहः कुनिग्रहो वैदिकधर्मसङ्ग्रहः।
प्रबालमृद्वङ्घ्रिमुखेन्दुरुज्ज्वलो रराज राजीवदलोत्तमाम्बकः ॥38॥

बालक के नेत्र लालकमल के समान सुन्दर थे। सुन्दर-सुन्दर थोड़ी-थोड़ी मुस्कान का प्रारम्भ हो चुका था। श्वेत और अरुण कमलों के मिश्रित सौन्दर्य से युक्त विग्रह था और बालक सबके चित्त को चुरा रहा था।

त्रिवेणिकापावनतीर उत्तमे गृहीतजन्मा द्विजपुण्यसद्मनः।
सुयोग्यपुत्रो धृतधर्मसूत्रकः सुशीलया चुम्बितपङ्कजाननः ॥39॥

माँ सुशीला बालक के कमल-मुख का चुम्बन करती थीं। पुण्यसदन शर्मा का यह सुशील पुत्र वैदिक धर्म-सूत्र को धारण करने वाला था। क्यों न हों त्रिवेणी के सुन्दर तट पर उनका जन्म हुआ था।

निरीक्षितुं तं शिशुमद्भुतप्रभं कठोरताराधिपमञ्जुलाननम्।
द्विजोत्तमः सम्मुदितः सुशीलया गृहस्य कार्याणि न चिन्तयाऽधरत्॥40॥

इस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख की शोभा वाले और पुण्यसदन शर्मा द्वारा निरन्तर लालित-पालित, सुशीला जी ने जिनके कमल मुख का निरन्तर चुम्बन किया हो, वे बालक रामानन्दाचार्य बहुत शोभा पाने लगे। अब उन्हें देखकर पुण्यसदन शर्मा अपने घरेलू कामों का भी चिन्तन नहीं कर पाते थे, उन्हें निहारते ही जाते थे।

विभूषयामास विभूषणोत्तमैर्विभूषणं तं द्विजवंशकस्य वै।
निवारयामास दृशोर्निमेषकं द्विजः स पुण्येन च पूर्वकः किल॥41॥

इस प्रकार से बालक की छवि धीरे-धीरे बढ़ती गई। वे उनको सजाते थे। अब रामानन्दाचार्य सम्पूर्ण ब्राह्मण वंश के आभूषण हो चुके थे। उनको निहारने में पुण्यसदन शर्मा अपनी पलकों को भी नहीं रोक पा रहे थे। अद्भुत आनन्द था और सुशीला जी का क्या कहना।

यथाऽदितिः श्रीमधुसूदनेन वै यथा शिवा कुञ्जरवक्त्रतः किल।
तथा सुशीला सह पुण्यसद्मना तुतोष तं प्राप्य शिशुं गुणान्वितम्॥42॥

जिस प्रकार अदिति भगवान् विष्णु के जन्म से सुशोभित हुईं, जिस प्रकार पार्वती जी गणपति के जन्म से सुशोभित हुईं और प्रसन्न हुईं उसी प्रकार इस सुयोग्य बालक को प्राप्त कर पुण्यसदन शर्मा के साथ सुशीला जी बहुत प्रसन्न हुईं।

अथो बहिर्निष्क्रमणं चिकीर्षुणा द्विजेन्द्रवर्येण च पुण्यसद्मना।
शिशुः स नीतः सह मन्त्रवाचकैस्त्रिवेणिकायां स्नपनाख्यकर्मणा॥43॥

इसके अनन्तर बहिर्निष्क्रमण संस्कार करने की इच्छा से अपने बन्धु-बान्धवों सहित पुण्यसदन शर्मा द्वारा इस बालक को त्रिवेणी में स्नान कराने के लिए अब अपनी कुटी से त्रिवेणी तट पर लाया गया।

सुराः प्रसूनैर्ववृषुर्मुदान्विता जगुश्च गन्धर्वगणा यशोबलम्।
सुराङ्गनाः सन्ननृतुर्गतस्मयाः सुवाद्यका वाद्यगणैः सभाजयन्॥44॥

अब क्या था देवताओं ने पुष्प की वर्षा से बालक का सम्मान किया। गन्धर्वों ने दिव्य गीत गाये। अप्सराएं नाचीं और सुन्दर वाद्य बजाने वालों ने दिव्य देववाद्यों से जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का सम्मान किया।

यदा स नीतः शुचि सङ्गमस्थलं शिशुर्मुदा वैदिकमन्त्रवाचकैः।
द्विजाङ्गनाभिः शुभसम्पदा तदा नृणां महाश्चर्यमयं महो बभौ॥45॥

जिस समय बालक रामानन्द को बहिर्निष्क्रमण के लिए वैदिक मन्त्र वाचकों द्वारा और ब्राह्मण पत्नियों द्वारा पवित्र सङ्गम तट पर लाया गया। उसी समय एक बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ।

महानुभावाश्च महाविभूतयः पदे पदे विस्मयमेव तन्वते।
स्वजन्मभिः कर्मभिरीड्यसंस्तवैर्न चात्र कार्या विबुधैर्विचारणा॥46॥

क्योंकि जो भी महानुभाव विशिष्ट प्रभाव वाले और महाविभूतियां इस धरा-धाम पर अवतरित होती हैं। उनके जीवन में पग-पग पर विस्मयकारी घटनाएं घटती रहती हैं। यहाँ सामान्य लोगों की बात तो छोड़िए विद्वानों को भी नहीं विचार करना चाहिए, कि ऐसा क्यों हो गया।

तदैव तिस्रः प्रकटा वरास्त्रियः समुल्लसत्काञ्चनकङ्कणाः शुभाः।
सुवाससः कम्पितकर्णभूषणत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलाः॥47॥

उसी समय खेलते हुए अपने कुण्डलों द्वारा अपने केशों को प्रकाशित कर रहीं सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुईं तीन श्रेष्ठ महिलाएं अपने आप प्रकट हो गयीं।

तदोज्ज्वला चैव भगीरथात्मजा सिताम्बरा भानुमतः सुकन्यका।
सरस्वती चारुणवस्त्रभूषिता किमद्भुतं नो चरितं महात्मनाम्॥48॥

जब दृष्टि पड़ी तो देखा गया कि श्वेत वस्त्र धारण की हुई भगवती गङ्गा जी, नीला वस्त्र धारण की हुई यमुना जी और अरुण वस्त्र धारण की हुई सरस्वती जी वहाँ उपस्थित हुईं। क्योंकि महात्माओं का कौन सा चरित अद्भुत नहीं होता।

सभाजयामासुरदभ्रसौभगं शुचिं सुतं पुण्यसदस्सुशीलयोः।
स्ववारिभिः पातकसंनिवारिभिर्महानुभावाः सततं गुणोत्तराः॥49॥

उस समय सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले दिव्य जलों से गङ्गा, यमुना, सरस्वती जी ने पुण्यसदन शर्मा और सुशीला जी के प्रिय पुत्र जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी को स्नान कराया। क्योंकि महापुरुषों का सब कुछ लोकोत्तर होता है।

गुणाऽऽकरं दिव्यकृपैकसागरं सुनागरं भग्नविमोहवागुरम्।
पयः पयोभिः सिषिचुर्मुदान्विताः स्त्रियश्च तिस्रोऽपि महद्विभूषणम्॥50॥

उन तीनों विशिष्ट महिलाओं ने अपने गोद में लेकर उन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को अपने दुग्ध से अभिषिक्त किया जो महापुरुषों के आभूषण कहे जाते थे। सभी ने देखा, माताओं ने बालक रामानन्दाचार्य का दुलार किया।

सुलालयन्त्यो ललनोत्तमाः शिशुं प्रपाययन्त्यः स्तनदुग्धमुत्तमम्।
प्रकाममानन्दमवापुरुत्स्मया यथा परब्रह्म विविक्तवासिनः॥51॥

अनन्तर उन श्रेष्ठ महिलाओं ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को दुलारना प्रारम्भ किया। बार-बार उन्हें चूमा, चुचकारा-पुचकारा और उस बालक को पाकर इतनी प्रसन्न हुईं जैसे योगियों को परब्रह्म का साक्षात्कार हो गया हो।

जयत्ययं कोटिमनोजसौभगो जयत्ययं मन्मथमन्मथो नृणाम्।
जयत्ययं बालमरालमञ्जुलो जयत्ययं भूसुरवंशशेखरः॥52॥

कोटि-कोटि कामदेवों के समान सुन्दर इस बालक की जय हो और मनुष्यों के हृदय में रहने वाले मन्मथ को भी आनन्द देने वाले इस बालक की जय हो, साक्षात् ब्राह्मण वंश के आभूषण इस बालक की जय हो और यतिराज रामानन्दाचार्य की जय हो।

प्रशस्य चेत्थं द्विजराजबालकं प्रणम्य मूर्ध्ना तमशेषशेखरम्।
समर्प्य तस्यै शुभसद्मयोषिते तिरोबभूवुः प्रमादोत्तमास्तदा॥53॥

इस प्रकार दिव्य बालक की प्रशंसा करके अशेषशेखर अर्थात् सबके आभूषण बने हुए बालक रामानन्दाचार्य को प्रणाम करके सुशीला जी के हाथों में उस बालक को सौंपकर तीनों महिलाएं सहसा अन्तर्ध्यान हो गयीं।

प्रफुल्लपङ्केरुहहासभासुरा नतोडुपं ब्राह्मणबालकोडुपम्।
चकार काकः परितः परीक्षितो न चान्तरा क्रीडनकं विभूतयः ॥54॥

इस प्रकार से विकसित कमल के विकास से सुन्दर लगने वाले चन्द्रमा के समान जिसका मुखमण्डल है, ऐसे ब्राह्मण-बालक जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के चारों ओर एक सुन्दर सा कौआ उछल-कूद करने लगा क्योंकि महापुरुष और उनकी विभूतियाँ अपने उपकरण के बिना रह ही नहीं सकती।

उपस्थिताः क्रीडनकाकरः शरो धनुर्निषङ्गं किल शङ्ख उत्तमः।
अनेकनामानि विभान्ति बालकं शुभानि चैतं समया सुमानि च॥55॥

इसी प्रकार बालक रामानन्दाचार्य के निकट स्वयं ही दिव्य खिलौनों की ढेर लग गई। बाण-धनुष, शङ्ख आदि उपस्थित हुए, क्योंकि ये सभी भगवान् के परिकर हैं।

क्वचित् पतङ्गः पतगेश्वरः क्वचित् क्वचिद् विहङ्गो विहगेश्वरः क्वचित्।
क्वचिच्च गोल्यो भ्रमराः क्वचित् क्वचिद् ह्युपासते स्मार्भकपुङ्गवं ननु॥56॥

अहा! कहीं पतङ्ग, कहीं स्वयं पक्षियों के ईश्वर गरुड़, कहीं अनेक पक्षी, कहीं जटायु जी, कहीं गोलियाँ, कहीं भ्रमर, ये सब के सब रामानन्दाचार्य जी की उपासना करने लगे।

निरीक्ष्य चैतानि सुकौतुकानि वै स पुण्यसद्मा सहितः सुशीलया।
तुतोष बालं ह्युपगुह्य शाश्वतं ननन्द नान्दीमुखकृत्यनिर्वृतः॥57॥

इस प्रकार के दिव्य कौतुकों को देखकर स्वयं सुशीला जी के सहित पुण्यसदन शर्मा बहुत प्रसन्न हुए। नान्दीमुख कृत्य से निवृत्त होकर उन्होंने परमानन्द का अनुभव किया।

जगाद भार्यां शिशुभर्मतत्परां द्विजोत्तमो मञ्जुलसुस्मिताननः।
पुनः पुनर्वीक्ष्य शिशोर्मुखाम्बुजं प्रफुल्लकञ्जारुणवारिलोचनः॥58॥

पुण्यसदन शर्मा के नेत्रों में जल आ गया। बालक रामानन्द को गोद में लेकर उन्हें बारम्बार निहारकर अपनी पत्नी को बुलाकर कहने लगे, जो रामानन्दाचार्य को दुलार रहीं थीं।

प्रिये न जानासि किमात्मगौरवं य एष साक्षाच्छ्रुतिगीतगौरवः।
स एव रामो रमणीयविग्रहो गृहेऽवतीर्णोऽस्ति ममाखिलेश्वरः॥59॥

हे प्रिये! क्या आप अपना सौभाग्य नहीं समझ रही हो जो साक्षात् वेदों के द्वारा अनेक प्रकार से गाये गये हैं। वे ही भगवान् राम वैदिक धर्म की रक्षा के लिए हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं।

किमिष्टमाराधितमिष्टमेधया किमद्य पूर्तं परिपूरितं ननु।
यदा च पुंसां सुकृतैकभाजनं गृहे शिशूभूय विभाति नौ प्रिये॥60॥

प्रिये! हमने कौन सा ऐसा पुण्य किया होगा, कौन से इष्ट की आराधना की होगी, कौन सा पूर्त हमारे द्वारा प्रपूरित हुआ होगा जिसके फलस्वरूप पुरुषों के सुकृत के एकमात्र पात्र भगवान् श्रीराम बालक बनकर हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं।

प्रिये न पश्यस्यथ बालकाऽऽननं शशाङ्ककञ्जोपममञ्जुसौभगम्।
विशालवक्षस्यथ रेखिकात्रयं श्रीवत्सलक्ष्मापि निहारयाऽद्भुतम्॥61॥

ये देखो, कितना सुन्दर है हमारे बालक का मुखारबिन्द। इसकी सुन्दरता को देखकर झिझक रहे हैं, करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमा और कमल। अरे! हमारे बालक के वक्ष का श्रीवत्स लाञ्छन नहीं निहार रही हो।

न चापि कार्यो मनसाऽपि संशयो न वै विचारोऽप्यपरो विधीयताम्।
न चापि कार्या हृदि चापि विक्रिया प्रभुं शिशुं संप्रति लाल एव वै॥62॥

मन में हमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए और हमारे चित्त में कोई विक्रिया नहीं होनी चाहिए। हम किसी प्रकार का विचार न करें। हम दोनों प्रभु श्रीराम की ही बुद्धि से इस बालक का लालन-पालन करें।

य एक आसीद्रघुनाथसेवकः सुभद्रकाकोऽपि भुसुण्डिनामभाक्।
स एव सम्प्रत्यभितश्चकास्ति वै मदीयबालं लघुवायसो भवन्॥63॥

जो भुशुण्डि जी भगवान् राम के सेवक हैं, वे ही तो इस समय मेरे बालक के पास छोटे से कौवे बनकर विराजमान हैं।

विलोकयैनं ननु साध्वि साध्वसं सुतोऽस्मदीयो गतदोषकल्मषः।
अयं निरस्ताऽखिलधातुबन्धनं विभाति सन्नाशयितुं कुबन्धनम्॥64॥

सुशीले! देख रही हो हमारे बालक में किसी प्रकार का दोष नहीं है। इसके चेहरे से हमने कभी धातुओं के दोष देखे ही नहीं। लगता है यह सातों धातुओं के बन्धन को तोड़कर हमारे बन्धनों को नष्ट करने के लिए हमारे पास आ गया है।

न दूषिका नीरजनेत्रयोः शिशोः पुरीषमूत्रं न कदाप्यदृश्यत।
किमस्ति चैतन्नहि विद्महे वयं महाविभूतेश्चरितं ननूत्तमम्॥65॥

सुशीले! क्या पता मैंने इस बालक की आँख में कभी कीचड़ नहीं देखा इसके शरीर में लघुशंका और मल देखे ही नहीं। यह सब क्या है? हम तो नहीं समझ पाए। इसी को कहते हैं महाविभूति। और महाविभूतियों का यही होता है, उत्तम चरित्र।

मलानि वै द्वादश यानि देहिनां विदन्ति विद्वांस उदारदर्शनाः।
न तानि चास्मिन् परिभान्ति भामिनि ध्रुवं ममाऽयं भगवान् सुतोऽभवत्॥66॥

जानती हो, जो आयुर्वेद में बारह प्रकार के मल कहे गए वे इस बालक में हैं ही नहीं। निश्चित रूप से यह हमारा बालक भगवान् है, सुशीले!

त्वमस्य पुंसो जननी जगत्पतेः पिताऽहमप्यस्मि हरेर्महात्मनः।
रतिः प्रसिद्धा ननु वत्सला श्रुतौ ततश्च वन्देवहि शङ्खमाधवम्॥67॥

सुशीले! यह तो निश्चय है कि तुम जगत्पति परमात्मा श्रीराम की माँ हो और मैं भी इनका पिता हूँ हम दोनों की रति वत्सला रति है, इसलिए हम वात्सल्य भाव से भगवान् की सेवा करें और शङ्ख माधव को प्रणाम करें, कि हमको प्रभु की सेवा का उन्होंने सौभाग्य दिया।

शिशुं समाऽऽलिङ्ग्य मुखाम्बुजं हरेः प्रचुम्ब्य संलाल्य मनोज्ञविग्रहम्।
सदैव सेवावहि सम्मतौ भवे सदैव वन्देवहि शङ्खमाधवम्॥66॥

हम बालक को गोद में लेकर इनके कमल-मुख का चुम्बन करके इनके मनोज विग्रह को दुलारते हुए इस संसार में सजग रहकर भगवान् की सेवा करें।

य एष शङ्खः पुरुतो विराजते ममाऽर्भकस्यालि सुदक्षिणध्वनिः।
स एव दत्तः शिशवे सुरोचसे सुशङ्खपूर्वेण च माधवेन वै॥69॥

हे सखि! देख रही हो! इस बालक के पास एक शङ्ख है, ये दक्षिणावर्ती है और ये सुन्दर बालक को आनन्द देने के लिए स्वयं ही शङ्ख माधव ने दे दिया है।

अयं गुणैः सम्प्रति शङ्खमाधवं सदाऽतिशेते भगवान् भवप्रियः।
ततस्त्विमं सम्प्रति लालयावहै सदा सुशीले सति गोप्यभावतः॥70॥

हे सती! ये देख रही हो! मुझे तो लगता है कि यह बालक अपने गुणों से शङ्खमाधव से भी उत्कृष्ट हो गया है। इसलिए हम दोनों का कर्त्तव्य तो ये बनता है कि हम चुपके-चुपके अत्यन्त गोपनीयभावना से इस बालक का लालन-पालन करें और दुलारें।

इयं च साक्षात् सुरभिस्समागता शिशुं पयः पाययितुं स्वलोकतः।
जनाः प्रगायन्ति च कामपूर्तिकां मुदैव गां यां सुरवन्दितां ननु॥71॥

ये देखो! हमारे पास तो गाय नहीं थी कोई। आज मैं देख रहा हूँ, जब ऐसा लगने लगा कि सुशीला के दूध से बालक का कार्य नहीं चलेगा तो इस बालक को दूध पिलाने के लिए गोलोक से स्वयं कामधेनु चली आयीं, सुरभि चली आयीं जिसको कामपूर्वक गौ अर्थात् कामधेनु कहते हैं।

अयं च कल्पद्रुम एव आगतः शुभैः प्रसूनैः परिमण्डयञ्छिशुम्।
अमोघपुष्पैः खलु पारिजातजैः शिशुं समाभूषयितुं मनोहरैः॥72॥

ये देख रही हो! कि मण्डन की इच्छा से ये कल्पवृक्ष यहाँ आ गया और यह परिजात के पुष्पों से हमारे बालक को सजाना चाह रहा है।

इमाः सुशीले परितोऽमराङ्गनाः शचीभवानीशुचिशारदारमाः।
उपस्थिता बालकमेव सेवितुं नमस्य चैता गतविस्मया प्रिये॥73॥

ये देखो सुशीला! हम लोग के देखते-देखते शची, सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी जैसी देवाङ्गनाएँ इस बालक की सेवा करने के लिए उपस्थित हो रही हैं। विस्मय छोड़कर इनको नमस्कार करो और ये देखना इनका कभी निरादर नहीं होना चाहिए।

अयं हि मर्यादितभूमिमण्डलो गुणाकरो वै करुणैकसागरः।
सुनागरो भग्नभवीयवागुरो गृहेऽवतीर्णो ननु चावयोः शिशुः ॥74॥

सुशीले! ये साक्षात् परमात्मा रामचन्द्र जी ही हैं जिन्होंने भूमिमण्डल को मर्यादित किया, जो सभी गुणों के आकर हैं, जो करुणा के एकमात्र सागर हैं, जो अत्यन्त चतुर और संसार के जाल को नष्ट करने वाले हैं। वे ही तो हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं।

इति प्रियां वल्गुमनोज्ञभाषितैर्द्विजः समाश्वास्य सनीरलोचनः।
निरीक्ष्यमाणो न ततर्प बालकं न वारयामास दृशोर्निमेषकम् ॥75॥

इस प्रकार से प्रिया जी को मङ्गलभाषण से समाश्वासित करके पुण्यसदन शर्मा बालक रामानन्द को निहारकर तृप्त नहीं हुए और नेत्रों के पलकों का गिराना भी बन्द कर लिया।

अथो चिकीर्षन् स्वसुताऽन्नप्राशनं स पुण्यपूर्वः सदनः समाधिमान्।
द्विजान् समाहूय च वेदपारगान् प्रकल्पयामास महामहोत्सवम् ॥76॥

इसके अनन्तर समाधिनिष्ठ पुण्यसदन शर्मा जी अपने बालक रामानन्द का अन्नप्राशन करने की इच्छा करते हुए वेद पारङ्गत ब्राह्मणों को बुलाकर एक बहुत बड़ा उत्सव समायोजित किया।

वसिष्ठकुम्भप्रभवौ द्विजर्षभौ सजामदग्न्यो जमदग्निरेव च।
तथाऽसितो देवलनारदावृषी सपर्वतास्तत्र मुदा समागमन् ॥77॥

तो फिर क्या था, वशिष्ठ एवं अगस्त्य जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मण परशुराम जी के सहित जमदग्नि, देवल, नारद, असित, पर्वत जैसे महर्षिगण पुण्यसदन शर्मा के यहाँ उपस्थित हुए।

सभाजयामास महर्षिपुङ्गवान् स पुण्यसद्मा निजसद्मनि स्थितान्।
सुपूजनैः षोडशभिर्महामनाः प्रजासुतीर्थस्य विधानवित्तमः ॥78॥

प्रजातीर्थ के विधान में कुशल पुण्यसदन शर्मा जी ने अपने भवन में पधारे हुए उन महर्षि पुङ्गवों का षोडश प्रकार से पूजन किया और उनका सम्मान किया।

शचीं भवानीं किल शारदां रमां सुराङ्गना वै गृहिणी सुमेधसाम्।
सुखं सुशीला प्रतिपूज्य सादरं समार्हयद् गौरवमञ्जुमानसा ॥79॥

इधर पुण्यसदन शर्मा जी की धर्मपत्नी सुशीला जी ने भी शची, पार्वती, शारदा, लक्ष्मी आदि देवाङ्गनाओं का और श्रेष्ठ ब्राह्मण-पत्नियों का सम्मान किया और सबकी पूजा की।

सुराङ्गनाः पायसमुत्तमं शुभं शुचेश्च पाकानपचन् सहादराः।
प्रसादमुख्यः किल चारुशष्कुलीस्तथैव मृष्टान्नविधीन् मनोहरान्॥80॥

अन्नप्राशन में उपयुक्त होने वाले प्रसादों की व्यवस्था स्वयं देवाङ्गनाओं ने की। पहले तो उत्तम प्रकार का पायस अर्थात् खीर बनाया और शष्कुली अर्थात् पूड़ी बनायी अनेक प्रकार के मिष्ठान्न बनाये और सबको ये प्रतीक्षा थी कि बालक को क्या रूचता है वो कौन सा पदार्थ स्वीकारेगा।

रुचिः समासां हृदयेष्वजागरीत् तथा समेषां श्रुतिपारदर्शिनाम्।
पदार्थकः कः शिशवे च रोचते प्रतीक्ष्यमाणा धृतरामचेतसः॥81॥

श्रीराम जी को अपने चित्त में धारण करके सभी देवाङ्गनाएँ और सभी देवगण इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि बालक किस पदार्थ में रुचि रखता है और वो अपने जीवन की चर्या कहाँ से प्रारम्भ करेगा।

अथो द्विजोऽयं जनको जगद्गुरोः पदार्थजातं विविधं समादरात्।
निवेद्य साकेतपतेः पदाम्बुजे मुदैव धीरः सुकृतं समन्वभूत्॥82॥

इसके अनन्तर ये विविध प्रकार के जो पदार्थ बनाये गये थे उन्हें पुण्यसदन शर्मा जी ने साकेताधिपति भगवान् श्रीराम के चरणों में निवेदित किया और अपने पुण्य का अनुभव किया।

उवाच चैनं वचनं कृताञ्जलिर्निमील्य नेत्रे पितरं जगद्गुरोः।
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय ते नमोऽस्तु सीतापतये मुहुर्मुहुः॥83॥

इसके अनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर नेत्र मूँदकर गद्गद् स्वर में कहा- हे सीतापति! हे साकेताधिपति! हे जगद्गुरु! आपको नमस्कार हो।

पुनः समाचम्य सुधोपमं पयः सुभोज्यजातं पुरतः पिता शिशोः।
मुदा समानीय च पर्यवैक्षत प्रसादचिह्नानि पुरः फलानि वै ॥84॥

इसके अनन्तर भगवान् को आचमन कराकर वह सम्पूर्ण नैवेद्यों का समूह रामानन्दाचार्य के पास लाया गया। क्योंकि प्रसन्नता के सङ्केत ही कार्य की फलवत्ता का विवरण करते हैं। अब एक आश्चर्य हुआ-

शिशुः समावीक्ष्य गुहास्यमासकः समं च नैवेद्यमनन्तसौरभम्।
सुपायसे वै स्पृहयाम्बभूव स जयेति चित्रां जगदाह वै गिरम् ॥85॥

इसके अनन्तर छह मास के उस बालक के सम्पूर्ण भोजन को एक बार अपनी सरसरी दृष्टि से देखा और सबके देखते-देखते बालक रामानन्द का मन पायस में ही टिक गया। और जगत् जय-जयकार करने लगा।

स हेमपात्रे नितरां व्यवस्थितं निरीक्ष्य तत् पायसमुत्तमोत्तमम्।
मनो बबन्धैव च तत्र बालको रुचिर्हि पूर्वस्य च वक्ति जन्मनः ॥86॥

इसके अनन्तर बालक रामानन्द ने सबके देखते-देखते स्वर्ण के कटोरे में रखे हुए सुन्दर खीर में ही अपना मन लगा लिया। क्योंकि बालक की रुचि पूर्वजन्म का ही ख्यापन करती है।

यतो हि त्रेतायुग एव राघवः सुपायसादाप मनोरमं वपुः।
ततः कलावप्यनपायसौहृदो मनो बबन्धैव सुपायसे द्विजः ॥87॥

क्योंकि रामावतार में भगवान् ने इसी पायस से अवतार धारण किया था, इसलिए कलियुग में भी सभी मिष्ठानों और लावणिक पदार्थों को छोड़कर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने खीर में ही अपना मन लगा लिया।

निरीक्ष्य तत् कौतुकमद्भुताऽर्भके सविस्मयोत्फुल्लविलोचनाः समे।
शिशुं समैक्षन्त शतप्रभाप्रभं प्रभावसम्मोदितदिग्दिगन्तरम् ॥88॥

इस प्रकार से इस अद्भुत बालक का यह विचित्र आश्चर्य देखकर सभी समागत महानुभावों के नेत्र में आश्चर्य का जल भर आया और अपने प्रभाव से दिग्-दिगन्तर को प्रसन्न करने वाले विद्युत्-प्रभाव से सम्पन्न बालक रामानन्द को सबने प्रेम से निहारा।

सुपत्रबर्हं शतपत्रलोचनं प्रलम्बबाहुं भवभीतिमोचनम्।
शतप्रभाकोटिविलोचनं शिशुं मुदा निरैक्षन्त समागताः समे॥89॥

उस समय बालक रामानन्द के मस्तक पर सुन्दर वनस्पतियों के पत्तों का मुकुट सजाया गया था। नेत्र कमल के समान सुशोभित हो रहे थे। उनकी लम्बी-लम्बी बाहुएँ भी भवसागर के भय को नष्ट करने वाली थीं। वे करोड़ों बिजलियों के तेज से सम्पन्न थे।

समेऽनमस्यन्त नताङ्घ्रिपङ्कजं सुरेन्द्रमुख्यैर्ननु सिद्धचारणैः।
सुखेन मातुः स्तनमेव सस्पृहं पिबन्तमीड्यव्रतपायसव्रतम्॥90॥

बालक को सभी ने देखा जो बड़ा तेजस्वी और माँ की गोद में आसीन होकर सुशीला माँ का स्तन पी रहा था और अन्नप्राशन में पायस को ही छुआ था।

समेऽपि सन्तश्च प्रयागवासिनो निरीक्ष्य विद्याधरसिद्धचारणाः।
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विता जयेति रामेति जगुः कलस्वरम्॥91॥

सबने रामानन्दाचार्य को प्रणाम किया और जो भी प्रयाग में रहने वाले सन्त थे, विद्याधर, सिद्ध, चारण ने सभी आश्चर्य भरी चितवन से बालक को निहार रहे थे। और जय हो, जय श्री राम। इस प्रकार दिव्य-दिव्य स्तोत्रों से भगवान् का गान कर रहे थे।

परस्परं ते कथयन्त आदरात् सुविस्मयोत्फुल्लविलोचनाम्बवः।
अहो बताहो शिशुरद्भुतो न्वयं निरीक्ष्य चित्तानि हरत्यशेषतः॥92॥

सभी लोग भगवान् की चर्चा के लिए उत्सुक होकर कह रहे थे, अहो! इस बालक को देखो ये तो अपनी चितवन से हमारे चित्त को चुरा ले रहा है। कितना अद्भुत है ये बालक!

निधाय पीयूषरसं समाहितं तथैव मृष्टान्नमनेकमद्भुतम्।
मनो बबन्धायमहो किलार्भकः सुपायसे यत् किमसौ व्यचारयत्॥93॥

अरे! बड़े-बड़े अमृत रस जैसे स्वादिष्ट पदार्थ को, अनेक मिठाइयों को और अनेक प्रकार के व्यञ्जनों को छोड़कर इस बालक ने खीर में ही अपना मन लगा दिया। इसने क्या विचार किया होगा।

अनेन सर्वे बत तर्कयामहे खरारिरेवैष पुराणपूरुषः।
समागतः सद्मनि पुण्यसद्मनः शिशुः सुशीलाङ्कगतो विराजते॥94॥

इससे हम सब को निश्चित कर लेना चाहिए यह कोई साधारण बालक नहीं है, ये तो जो पहले पुराणपुरुष भगवान् राम थे न, वे ही इस समय सुशीला जी के पुत्र के रूप में विराज रहे हैं। आश्चर्य तो देखिए...

न जन्मकालेऽस्य जनेर्व्यथाऽभवन्न शोणितं चाप्यपतन्मनस्विनः।
विकारशून्यो निरुपायविग्रहः समागतः शाश्वतधर्मसङ्ग्रहः ॥95॥

अरे! इस बालक के जन्म-काल में किसी प्रकार हमने दोष नहीं देखा और कोई रक्तादि की सम्भावना हमने देखी ही नहीं। निश्चित रूप में यह वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का सङ्ग्रह करने के लिए यहाँ उपस्थित हुआ है। ये कोई और नहीं रामजी ही हैं।

न कोऽपि चान्यो ननु चैष निर्जरो न मानवश्चागतवान् कुतश्चन।
समागतोऽयं निजधर्मसेतवे खरान्तको वै सुपुराणपूरुषः ॥96॥

यह निश्चित जान लीजिए, कि यह कोई देवता नहीं है और न ये कहीं से आया है, ये तो अपने धर्मसेतु की रक्षा के लिए साक्षात् खर नामक असुर के शत्रु, पुराणपुरुष, भगवान् राम ही सुशीला की गोद में आ गये हैं।

पुराऽस्य जन्मन्यथ कारणं ह्यभूत् सुपायसं दत्तमथो हविर्भुजा।
तदेव चादर्तुमसौ गृहीतवान् सुपायसं सम्प्रति चाऽन्नप्राशने ॥97॥

अरे! अपने पूर्व जन्मकाल में इस बालक के जन्म का कारण तो पायस ही बना था जिसे अग्नि ने दिया था। उसी का आदर करने के लिए इस अन्नप्राशन के समय भी इस बालक ने अन्य सभी मिष्ठान्नों का तिरस्कार करके पायस ही पा लिया।

न जातु मात्राप्यथ वारितोऽपि सन् पुनः पुनर्लेढि निजाङ्गुलीयकम्।
स पायसं वायसमित्र ईश्वरो निरीक्ष्यतामालि विचित्रकौतुकम् ॥98॥

ये देखो एक कौवा भी इसके पास आ गया है, बहुत प्रेम से बैठा है, पात्र को जूठा नहीं कर रहा है; और ये बालक बार-बार पायस के कटोरे में उंगली डाल करके अपने मुख में डाल रहा है। सुशीला जी के मना करने पर भी नहीं मान रहा है।

सुवर्णपात्रे विनमय्य चाननं प्रकाममश्नाति सुपायसं शिशुः।
शशी यथा पार्वणगङ्गपूरके सुखं सहाश्नाति नवाब्दपुङ्गवैः ॥99॥

ये देखो, क्या कहें बालक खीर के कटोरे में अपने सिर को झुका रहा है और झुका करके खीर को इतना प्रेम से पा रहा है मानो चन्द्रमा साक्षात् बादलों के समूह के साथ गङ्गा के जल में स्नान कर रहा है।

पुनः पुनर्लेढि विनम्रकन्धरः कचा निमज्जन्ति च पायसे सखि।
यथा पयोदा रविबिम्बमध्यगे पयोऽधिखेलन्ति कृतात्मसौहृदाः ॥100॥

क्या हो रहा है। बार-बार यह बालक अपने सिर को झुका-झुका करके खीर को पा रहा है और केश इसके उस खीर में डूब रहे हैं। ऐसा लग रहा है मानो सूर्यनारायण के बिम्ब में विराजमान गङ्गा जी के प्रवाह में मेघ स्नान कर रहे हैं।

पुनः पुनः खेलति खेलनोत्सुको मुहुर्मुहुर्लेढि शिशुश्च पायसम्।
हसत्यसौ कल्कलभाषणे रतः प्रदर्शयन् वै प्रकृतिं शिशोरथ ॥101॥

ये देखो! ये बालक बार-बार खेल रहा है और बार-बार खीर चाट रहा है। हँस रहा है, बाललीला कर रहा है। क्या सौभाग्य है।

सुराश्च सर्वे ननु किन्नराः सुगाः प्रसादप्राप्त्यै स्पृहयन्त आदरात्।
न दित्सतेऽसौ विहसञ्छिशूत्तमः प्रलोभयन् लुब्धसहस्रसोमकः ॥102॥

क्या कहा जाए! सब देवता प्रसाद के लिए तरस रहे हैं पर यह बालक इतना शरारती है कि जिस प्रसाद के लिए करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमा लुब्ध हो रहे हैं वह खीर का प्रसाद यह किसी को देना ही नहीं चाहता। स्वयं खाना चाह रहा है।

विलोक्यतामस्य मनोज्ञशिष्टता विशिष्टता चापि समैर्विभव्यताम्।
न पायसं किञ्चिदपीह भूतले निपातयत्येष महाऽर्भकोऽद्भुतः ॥103॥

अरे! इस बालक की शिष्टता तो देखिए इसकी विशिष्टता को बलिहार। एक बूँद भी खीर का यह व्यक्ति नीचे नहीं गिरा रहा है। इतना आदर है इसको अपने पूर्वजन्म के कारणभूत पायस पर।

यथा शिशुश्चाद्रियते स पायसं तथा न सोमं शुभगञ्च कर्हिचित्।
स्वयं मुदा लेढि तथैव वायसं मुदा समाचामयतीह सुन्दरः ॥104॥

ये देखिए जितना इस बालक को इस पायस पर आदर है उतना आदर इसको अमृत पर भी नहीं है स्वयं पा रहा है और धीरे-धीरे अपने मित्र कौवे को भी यह पवा रहा है।

न मक्षिकाः स्प्रष्टुमिहेशते शिशुं न कोऽपि विघ्नो विनिहन्ति विक्रमम्।
न कापि बाधा परिबाधते प्रभुं पिबत्यलं पायसमेष उत्तमम्॥105॥

देखो! कोई भी मक्खी यहाँ नहीं आ रही है और कोई भी विघ्न इसके इस प्रयोग को विघ्नित नहीं कर पा रहा है। किसी प्रकार की बाधा इसको नहीं आ रही है और ये बहुत प्रेम से इस खीर को पा रहा है।

शुभे सुशीले तव पुत्रभूमिकां भजन्निहाऽऽस्ते किल भूमिजाभवः।
पुरारिसम्पूजितपादपङ्कजो विरिञ्चमध्वर्यजनन्दनार्हणः॥106॥

देखो! सुशीला जी ब्रह्मा और विष्णु के द्वारा भी जिसकी पूजा की गयी है, शङ्कर जी भी जिनकी चरण-कमल की पूजा करते हैं, ऐसा यह बालक और कोई दूसरा नहीं हैं, स्वयं भगवान् राम ही भूमिजापति, मर्यादा-पुरुषोत्तम आपके पुत्र की भूमिका में आये हैं।

न चिन्तयेथाः स्वशिशोर्भविष्यकं भविष्य एवैष च भारताऽवनेः।
त्रिकालसाक्षी परमेश्वरः पुमान् गृहेऽवतीर्णस्तव पुण्यसद्मनः॥107॥

हे पुण्यसदन शर्मा! आप चिन्ता ही मत कीजिए कि इसका क्या भविष्य होगा? ये तो स्वयं भारत का भविष्य है। आप के घर में अवतार लिया है।

चतुर्विंशी त्रेता यदलभत सौभाग्यमनघमयोध्यां श्रीरामे जनदृगभिरामेऽधिवसति।
तथा चाऽष्टाविंशः कलिरपि गतोऽपूर्वममलं शिशौ रामानन्दे विलसितप्रयागे प्रकटिते॥108॥

हे सुशीला-पुण्यसदन! जिस प्रकार अयोध्या में श्रीराम जी के निवास करते समय विगत चौबीसवीं त्रेता ने दिव्य सौभाग्य प्राप्त किया था उसी प्रकार इस शिशु रामानन्दाचार्य के प्रयाग में आ जाने पर यह अट्ठाइसवां कलियुग भी सौभाग्य प्राप्त कर रहा है।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गस्तार्तीयको यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-विरचिते श्रीरामानन्दाचार्यचरिते तृतीयः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ चतुर्थः सर्गः॥

कुन्दावदातं जनपरिजातं काकानुगं कल्पितकाकपक्षम्।
सूनुं सुशीलाशुभसद्मनोस्तं वक्रालकं बालकमाश्रयामि॥01॥

अब चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ होता है, कुन्द पुष्प के समान श्वेतकान्ति वाले, भक्तों के वाञ्छा को पूर्ण करने के लिए कल्पवृक्ष के समान घुटने से चलते हुए और कागभुशुण्डि जी के पीछे-पीछे दौड़ते हुए सुन्दर काकपक्ष अर्थात् स्कन्धावलम्बी केश से युक्त सुशीला एवं पुण्यसदन के उन लाडले घुँघराले अलकों वाले बालक जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का मैं आश्रय ले रहा हूँ।

सङ्क्रीडमानं शिखिभिः स्वसख्यैः पद्भ्यां चलन्तं विभया लसन्तम्।
मन्दं हसन्तं भवने वसन्तं तं भूसुरस्याऽर्भकमाश्रयेऽहम्॥02॥

आहा! विश्वस्त मयूर शावकों के साथ खेलते हुए और धीरे-धीरे चरण से चलते हुए। कान्ति से सुशोभित, मन्द-मन्द हँसते हुए उन पुण्यसदन शर्मा के भवन में विहार करते हुए बालक रामानन्दाचार्य का मैं आश्रय ले रहा हूँ।

नीलालकालीविलसत्कपोलं पीतं निचोलं नितरां वसानम्।
आक्रीडमानं गलिताऽभिमानं सेवे सदा बालकराजहंसम्॥03॥

आहा! नीले-नीले बालों से जिनका कपोल सुशोभित हो रहा है, ऐसी पीली झिंगुलिया धारण किये हुये अभिमान रहित बाललीला में पुण्यसदन शर्मा के सदन में खेलते हुए एक अद्भुत बालक राजहंस अर्थात् हंस के बालक जैसे शिशु की मैं भावना से निरन्तर सेवा करता हूँ।

धावन्तमीड्यं चटकाभिरुच्चैः कामं हसन्तं प्रभया लसन्तम्।
देवीसुशीलातनयं सुसौम्यं को विस्मरेद् वै शिशुमीक्षमाणः॥04॥

आहा! ऐसा बालक जो पुण्यसदन शर्मा के यहाँ बाल-लीला करते हुए खेल रहा है, हँस रहा है और गौरैया पक्षियों के साथ दौड़ रहा है। ऐसे बालक को निहारने वाला कौन व्यक्ति उसे भूल सकता है।

कामं वहन् मूर्ध्नि प्रयागधूलिं धावन् धनुष्मानिव रामचन्द्रः।
सञ्चोरयामास मनांसि रामानन्दो नृणां बालककौतुकैः स्वैः ॥05॥

अहो! आज मन्द-मन्द मुस्कुराता हुआ किलकता हुआ और धनुर्धारी भगवान् रामचन्द्र की भाँति पुण्यसदन शर्मा के आंगन में दौड़ता हुआ रामानन्द नाम का शिशु निहारने वाले नर-नारियों के चित्त को चुराने लगा।

सङ्क्रीडमानश्चटकावयोभिः सङ्क्रीडनैर्भ्रामरगोलिकाभिः।
खेलन् मुकुन्दो भगवानिवार्भो विभ्राजयामास पितुर्गृहं स्वम् ॥06॥

गौरैया के बच्चों के साथ खेलते हुए और डोली-भौंरा आदि खिलौनों के साथ खेलते हुए बालक रामानन्द भगवान् बाल मुकुन्द की भाँति अब अपने पिता पुण्यसदन शर्मा के भवन को सुशोभित करने लगा।

माता सुशीला परिवीक्ष्य बालं पीताम्बुजातोपमदेहकान्तिम्।
कान्तालकं बाष्पकलाकुलाक्षी सम्पाययामास पयः प्रकामम् ॥07॥

माता सुशीला जी पीले कमल के समान सुन्दर कान्ति वाले अपने बालक को निहारकर पुत्रस्नेह से युक्त प्रेमाश्रुओं से भरे नेत्रों वाली अपने लाडले को गोद में लेकर प्रेम से अपना स्तनपान कराने लगीं।

प्रेम्णा परिष्वज्य मुकुन्दकल्पं मामेतिजल्पं विलसत्प्रकल्पम्।
सम्पाययामास पयः सुशीला तं बालकं धार्मिकपालकं च ॥08॥

धार्मिक जगत् के पालक सुन्दर प्रकल्पों से युक्त माँ-माँ इस प्रकार से बोलते हुए भगवान् बालमुकुन्द के समान सुन्दर शब्द वाले बालक को हृदय से लगाकर माता सुशीला ने अपना दूध पिलाया।

स्तन्यं धयन्तं जयिनं जयन्तं मात्राञ्चलैर्गुण्ठितरूववक्त्रम्।
दूर्वादलश्यामलकेशकान्तिं कान्तालकं तं जननी ददर्श ॥09॥

इस प्रकार माँ का स्तनपान करते हुए विश्वविजयी मनोविकारों को जीतते हुए माँ के आँचल से अपने मुख-मण्डल को ढंके हुए अपने लाडले बालक को माँ ने भाव भरी चितवन से निहारा।

श्रीवत्सलक्ष्माणमुदारकीर्तिं श्रीवैष्णवानां शुभकामपूर्तिम्।
स्मृत्या हरन्तं भवभीमजूर्तिं तं बालहंसं जननी जाप॥10॥

और माँ उन बालहंस रामानन्द का अर्थभावना के साथ जप करने लगीं जो उनके गोद में बैठ कर बाललीला कर रहे थे। प्रयाग की धूलि को मस्तक पर धारण किए हुए थे। मधुर-मधुर मुस्कुरा रहे थे। अद्‌भुत था वह दृश्य-

क्रोडे वसँस्तीर्थमहाधिपस्य पश्यन् त्रिवेणीतरलाँस्तरस्वी।
पित्रा समाहूय च लाल्यमानश्चेतांसि नृणां नितरां जहार॥11॥

अहो! तीर्थराज प्रयाग के गोद में विराजमान त्रिवेणी की चञ्चल तरङ्गों को निहारते हुए दुलारकर बुलाकर पिता के द्वारा खिलाये जाते हुए इस बालक ने दर्शक जीवों के मनों को हर लिया। क्योंकि यह स्वयं श्रीवत्सलक्षण से युक्त था।

एतस्य चूडाकरणं करिष्णुः पुत्रस्य पुंसो ननु पुण्यसद्मा।
आहूय वेदज्ञमहानुभावान् सङ्कल्पयामास विधिं विधिज्ञः॥12॥

इस बालक का चूड़ाकरण करने के लिए जो कि साक्षात् परमात्मा है, पुण्यसदन शर्मा ने ब्राह्मणों वेदज्ञों को बुलाया और बहुत बड़ा उत्सव किया।

यावत् पिता नापितमाध्यमेन पुत्रस्य चेच्छत्यथ केशकर्तम्।
तावत् त एवात्मभुवः सुमूर्ध्नि लिल्युर्विचित्रा हि गतिर्विभूतेः॥13॥

जब तक पिता नाई को माध्यम बनाकर अपने लाला का केश-मुंडन कराने की इच्छा कर रहे होंगे, तब तक वे केश स्वयं ही रामानन्दाचार्य के शिरोभाग में चिपक गए अर्थात् सबने देखा बालक का मुंडन हो गया। क्योंकि महाविभूतियों की लीला विचित्र ही होती है।

नो नापितस्तं क्षुरयाम्बभूव नो मुण्डनं कुन्तलखण्डनं वा।
केशाः प्रजाताः शिरसः शिशोर्वै विषिष्मिरे दर्शकतल्लजाश्च॥14॥

अरे! बालक के सिर पर नाई ने छूरा चलाया नहीं मुंडन हुआ नहीं बाल काटे गये नहीं तो फिर इस बालक के सिर से केश चले कहाँ गये? इस प्रकार देखने वाले विस्मित से हो गये।

मन्त्रान् हि चूडाकरणस्य विप्राः प्रेम्णा पठन्तः सुखयाम्बभूवुः।
सल्लोकलोभाद् वदनस्य जिष्णोः साश्चर्यचित्ता नितरां विरेजुः ॥15॥

बालक के मुखारबिन्द के निहारने के लोभ से केवल ब्राह्मणों ने चूड़ाकरण का मन्त्र पढ़ दिया और सब कुछ आश्यर्चमय हो गया एवं वैदिकगण सुखी हो गये।

न क्षौरकर्मापि न नापितो वै पस्पर्श बालस्य शिरः कथञ्चित्।
दिव्या शिखा धर्मशिखेव मूर्ध्नि भाति स्म विप्रस्य महाविभूतेः ॥16॥

अर्थात् नाई ने क्षौर कर्म नहीं किया, छुरे से बालक की शिखा का स्पर्श भी नहीं किया फिर भी धर्मशिखा के समान रामानन्द के मस्तक पर दिव्य शिखा विराजमान हो गयी।

दिव्या शिखा गोखुरमात्रदेहा विप्रस्य बालस्य च मूर्ध्नि भाति।
सौवर्णशैलस्य च श्रृङ्गमध्ये कलिन्दकन्यामिव कां वहन्ती ॥17॥

अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण के सिर पर गोखुर के परिमाण वाली शिखा इतनी सुन्दर लग रही है जैसे सुमेरू पर्वत के शिखर पर दिव्य शोभा को धारण करती हुई यमुना जी की धारा हो।

सर्वे जना ऊचुरहो सुचित्रं यच्चाऽस्य बालस्य विनापि मौण्ड्यम्।
बाभाति चूडाकरणं मनोज्ञं दिव्या शिखा धर्मशिखेव भाति ॥18॥

सभी लोग परस्पर बोलने लगे यह आश्चर्य देखिए मुण्डन कराए बिना ही इस बालक का स्वयं चूड़ाकरण हो गया और इसके मस्तक पर धर्मशिखा की भाँति सुन्दर शिखा विराजमान हो रही है।

अहो वयं धन्यतमा नृलोके यच्चाऽस्य बालस्य मुखारविन्दम्।
ईक्षामहे न्यस्तसमस्तदोषं दोषाकरं पार्वणिकं यथा वै ॥19॥

हम लोगों का क्या सौभाग्य है कि इस बालक के मुखारबिन्द को हम निहार रहे हैं जिस प्रकार शरद काल के चन्द्रमा को निहारा जाए।

किं नस्तपस्तप्तमहो सुराणां किं पूजनं चापि कृतं महार्घ्यम्।
दत्तञ्च दानं किमहो द्विजेभ्यः पश्याम एवं यदमोघपुण्याः ॥20॥

हमने कौन सी तपस्या की, कौन सा देवताओं का अर्चन किया है, ब्राह्मणों को क्या दान दिया है, जो इस बालक को हम निहार रहे हैं।

एतं निरीक्ष्यैव महानुभावं संवर्धते चेतसि नः प्रहर्षः।
एतत्पदाब्जं न मनो जहाति भृङ्गो यथा नीरजमञ्जुकोषम् ॥21॥

इस बालक से अथवा इसके चरण-कमल से हमारा मन उसी प्रकार नहीं हट रहा है, जिस प्रकार से भ्रमर कमल के कोश को नहीं छोड़ता।

सर्वे प्रकामं निगदन्तु नूनं श्रीमत्सुशीलातनयोऽयमर्भः।
स्वाऽन्ते तथाऽप्यत्र न प्रत्ययो नो नूनं विभात्येष हि चाऽस्मदीयः ॥22॥

सभी लोग भले कहें कि यह यह बालक सुशीला और पुण्यसदन शर्मा का बेटा है पर हमको तो विश्वास नहीं है हमको तो यह अपना ही लगता है।

सम्पन्नचूडाकरणो महात्मा भास्वानुदन्वानिव शौर्यवीर्यः।
श्रीमत्सुशीलाशुभसद्मपुण्यं बाभाति राकेन्दुसमानबालः ॥23॥

इस प्रकार चूड़ाकरण संस्कार सम्पन्न कर लेने पर बालक रामानन्दाचार्य इतने सुन्दर लगने लगे मानो श्रीमत्सुशीला एवं पुण्यसदन के पुण्यों के रूप में पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति रामानन्दाचार्य की शोभा बढ़ गयी।

को वेत्ति जीवो भगवद्गुणानां पारं पराक्प्रत्ययपूगधर्मा।
यस्मिन् कृपा वर्षति रावणारे जानात्यसौ वै भगवच्चरित्रम् ॥24॥

भगवान् के गुणों को सामान्य जीव कैसे जान सकता है वो तो समान स्थिति धर्मों से युक्त है जिस पर राघवेन्द्र सरकार की कृपा बरसती है, वही भगवान् के अलौकिक गुणों को जानता है।

अथाऽऽदिशद् बालककर्णवेधं मुनिर्वसिष्ठो विदुषां वरिष्ठः।
समागमन् वेदनिधानविज्ञा भूमीश्वरस्यैव कृपां हि द्रष्टुम् ॥25॥

इसके अनन्तर उसी समय बालक का कर्णवेध संस्कार करने के लिए विद्वानों में श्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने आदेश दिया और वहाँ पर भगवान् राम की कृपा के दर्शन करने के लिए वेद-विधान विज्ञ ब्राह्मण उपस्थित हुए।

तत्राऽऽगमन् वेदविधानविज्ञा भूमेः सुरा वैदिककर्मनिष्ठाः।
शिष्यैः प्रशिष्यैः परिसेव्यमाना वेदाः समस्ता इव मूर्तिमन्तः॥26॥

और वहाँ पर शिष्यों-प्रशिष्यों से युक्त वेदविधान को जानने वाले शरीर धारण किए हुए समस्त वेदों जैसे ब्राह्मण-वृन्द उपस्थित हो गये।

तत्रापठन् वैदिकभद्रसूक्तं भद्रं कर्णेभिर्विदुषां वरिष्ठाः।
संश्चक्रुरेते धृतधर्मधुर्यां देवानुभावं शिशुमप्रमेयम्॥27॥

इसके अनन्तर विद्वानों ने वैदिक भद्रसूक्त का पाठ किया जिसका पहला मन्त्र है, 'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः....' और अब क्या था कर्णवेध संस्कार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

यन्नामधेयं स्मरणेन नूनं पापान् पुनात्येव न तत्र चित्रम्।
तस्यैव संस्कारविधानमेतल्लोकोत्तराणां ननु शिक्षणार्थम्॥28॥

जिनके नाम का स्मरण पापियों को भी पवित्र कर देता है उन्हीं का यह संस्कार। ये तो लोकोत्तर महानुरुषों के प्रत्येक कार्य मानव की शिक्षा के लिए होते हैं।

काले च यस्मिन् भगवान्वसिष्ठः सद्भद्रसूक्तं प्रपपाठ धीमान्।
तस्मिंश्च काले स्वयमेव रन्ध्रे दृष्टे समैः कोमलकर्णयोश्च॥29॥

जिस काल में भगवान् वशिष्ठ ने यह मन्त्र पढ़ा 'भद्रं कर्णेभिः...' उसी काल में बालक रामानन्द के कोमल दोनों कानों में छिद्र देखे गये अर्थात् स्वर्णकार की आवश्यकता नहीं पड़ी स्वयं छिद्र आ गए।

सत्कुण्डले मञ्जुलकर्णयुग्मे दृष्टिः समेषां पतिता तदानीम्।
स्वाहाकृतिस्तत्र बभूव दिव्या हाहाकृतिश्चापि निरास्त तस्मात्॥30॥

उसी समय बालक रामानन्दाचार्य के दोनों श्रवणों में दिव्य कुण्डल आ गए। सर्वत्र स्वाहाकार होने लगे हा-हाकार चला गया।

दिव्यप्रसूनानि तदाऽमरेन्द्राः कल्पाङ्घ्रिपात् सादरमभ्यवर्षन्।
पुष्पाञ्जलींस्तत्र समर्पयंस्ते जीयाच्च बालः समघोषयन् वै ॥31॥

उसी समय कल्पवृक्ष से पुष्पों की वर्षा होने लगी। सबने जय-जयकार किया और कहा, बालक रामानन्दाचार्य की जय हो।

जीयात् सुशीलातनयो महात्मा श्रूयात् समस्तं श्रुतिजातमेव।
हूयान्महाहोमविधानदक्षो भूयाद्विभूत्यै ननु भारतस्य ॥32॥

इस बालक रामानन्द की जय हो। यह समस्त शास्त्रों का श्रवण करे। समस्त मनोरथ पूर्ण हों और यह भारत की विभूति के लिए सदैव उत्कृष्टवान् बनता रहे।

तं बालकेन्दुं द्विभुजं निरीक्ष्य लोकस्य दृक्स्वस्त्ययनं मनोज्ञम्।
नार्यो नरा जातमहाप्रमोदाः प्रोत्कण्ठचित्ताः समचुम्बिषुर्वै ॥33॥

इस प्रकार दो भुजाओं से सम्पन्न लोकों के नेत्रों के लिए स्वस्त्ययनस्वरूप उस बालचन्द्र को निहारकर प्रसन्न हुए नारी-नर आनन्द से भरे चित्त से उसे चूमने लगे।

केचिच्चुचुम्बुर्धृतवत्सलत्वात् केचित् प्रणेमुः परमेशबुद्ध्या।
केचिन्निरैक्षन्त सुविस्मिताऽक्षाः केचिज्जगुस्तच्चरितावलीश्च ॥34॥

उनमें से वात्सल्य भावना से कुछ लोग बालक का चुम्बन करने लगे, कुछ लोग परमेश्वर के भाव से प्रणाम करने लगे, कुछ लोग भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम करने लगे और कुछ लोग विस्मित नेत्र से उन्हें निहारने लगे।

सोऽप्येकदाऽऽगत्य निजालयस्थं प्रोत्थाप्य शङ्खं सनकैर्महात्मा।
दध्मौ समुद्बोधितसत्त्वजातो लोकान् समस्तान् रमयाम्बभूव ॥35॥

इधर एक बार रामानन्द अपने आँगन में रखे हुए दक्षिणवर्ती शङ्ख को उठा लिए और सम्पूर्ण जीवों को जगाते हुए उसे प्रेम से बजाया और बजाकर सारे चर-अचर को आनन्द सागर में रमण करा दिया।

श्रुत्वा निनादं दरनायकस्य स्वीयां समाधिं विजहुश्च सिद्धाः।
ब्रह्मा त्रिशूली ननु चक्रपाणिः सर्वेऽपि साश्चर्यविदो बभूवुः ॥36॥

उस शङ्ख के निनाद को सुनकर सभी सिद्धों ने अपनी समाधि छोड़ दी। ब्रह्मा, शङ्कर जी एवं विष्णु जी ने विस्मय को प्राप्त किया। सबके नेत्र फटे रह गये।

सोऽप्युच्चकाशे सितकञ्जकान्तिर्बालस्य हस्ते निकटे मुखस्य।
हंसो यथा राजति लब्धपद्मःसङ्क्रीडमानः किल मानसे वै ॥37॥

जिस प्रकार मानस-सरोवर में खेलता हुआ हंस कमल को लेकर शोभित होता है, उसी प्रकार रामानन्दाचार्य के हाथ में शंख भी सुशोभित हुआ।

एवं त्रिरुच्चैर्दिवसस्य बालो दध्मौ स्वशङ्खं नितरां विशालम्।
जह्रे समेषां कुविचारभावान् रेमे सतां चित्तसुवाटिकासु ॥38॥

इस प्रकार दिन के तीन बार जगद्गुरु शङ्ख बजाते सब को आनन्द देते और सभी लोग ये देखकर आनन्द करते थे।

दृष्ट्वा सुशीला सहपुण्यसद्मा माधुर्यतो विस्मयमाप देवी।
तां माधवो सूचयति स्म सर्वं स्वीयाऽवतारं ननु शङ्खवाद्यम् ॥39॥

इस प्रकार शङ्ख का वादन सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ माता सुशीला आश्चर्य में पड़ गयीं और भगवान् माधव ने उन्हें अपने अवतारी के कारण शङ्ख बजाने में हेतु समझा।

हे पुण्यसद्मन् द्विज हे सुशीले जायापती मद्वचनं विभाव्य।
मोघं विमोहं जरठौ जहीतं भाग्योदयो वां नितराम्विभाति ॥40॥

हे पुण्यसदन शर्मा, हे सुशीला जी! आप वृद्ध दोनों पति-पत्नी मेरा वचन सुनकर अपना संशय छोड़ दीजिए। व्यर्थ का मोह मत कीजिए। अब तो आप दोनों लोगों का भाग्योदय हुआ है।

अहं स्वयं माधव एव साक्षात् सूनुः प्रजातो युवयोर्वरेण।
भारं हरिष्यामि च भारतस्य रक्षां करिष्यामि च वैष्णवानाम् ॥41॥

मैं आपको वरदान देने के कारण आप दोनों का पुत्र बनकर आया हूँ, मैं भारत का भार दूर करूँगा और वैष्णवों की रक्षा करूँगा।

सङ्गूढजत्रुर्हतसर्वशत्रुस्तेजोविशेषाद् द्विभुजः प्रजातः।
नूनं हरिष्यामि मदं खलानां मा भैष्ट मा भैष्ट च भारतीयाः॥42॥

मैं सुन्दर अपनी अस्थियों को छुपाए हुए, शत्रुओं का नाश करके द्विबाहु रूप धारण करके इस भूमण्डल का भार दूर करूँगा आप लोग मत भय कीजिए, भारतीयों निर्भय रहो।

मा भीतिभीतौ भवतं च साधू सर्वं करिष्यामि भवन्निदेशे।
त्रिर्वादयन् शङ्खमुदारकीर्तिरह्नो हरिष्यामि भयं जनानाम्॥43॥

आप लोग निर्भय हो जाइए। मैं सब कुछ आपके निर्देश में काम करूँगा और दिन में तीन बार शंख बजाकर भारत की सारी चिन्ताओं का समाधान करूँगा।

रामावतारे हृतभूमिभारे कोदण्डदीक्षागुरुरासमेव।
सोऽहं समासादितचारुशङ्खः शिक्षां प्रदास्ये नितरां जनेभ्यः॥44॥

रामावतार में मैंने भूमिभार उतारकर धनुष-बाण को विश्राम दिया था। इस अवतार में शङ्ख-वादन करके सभी को शिक्षा देता रहूँगा।

यावद्धराम्येष रिपूग्रदर्पं शङ्खं धमन् धार्मिकवस्तु रक्षन्।
तावन्न दैत्यैः परिभाषणीयं संवीक्ष्य कालं कुरुतं प्रतीक्षाम्॥45॥

जब तक शङ्ख बजाकर मैं शुत्रओं का मान-मर्दन नहीं कर देता और धार्मिक वस्तुओं की रक्षा नहीं कर लेता तब तक आप लोग दैत्यों से वार्तालाप मत करना और समय की प्रतीक्षा करते रहना।

एवं निवेद्यैष महाविभूतिरन्तर्दधेऽन्तर्हितसर्वसत्त्वम्।
विज्ञाय पुत्रं शुचिमेव रामानन्दं सुचित्तं समभूद् द्वयोर्वै॥46॥

इस प्रकार कह करके शङ्ख-माधव जी अन्तर्ध्यान हो गये और रामानन्दाचार्य को श्रीराम रूप में जानकर सुशीला एवं पुण्यसदन ये दोनों ब्राह्मण-दम्पती प्रसन्न हो गए।

तावत्तडित्वानिव मेघमालां विदार्य बालो प्रकटो बभूव।
दाध्मायमानो दरराजराजं गेहे चकाराऽऽशु समस्तचेष्टाम्॥47॥

इस प्रकार सबको समझाकर मेघ-माला को विदीर्ण करके साक्षात् विशिष्ट बालक की भांति रामानन्दाचार्य शङ्ख बजाते हुए प्रकट हुए और घर में समस्त चेष्टायें करने लगे।

जीया द्विजेन्द्रात्मज भद्रबाहो जीयाः सुशीलासुत बोधराशे।
जीया महाराज वशिष्ठवंश्य लोका इतीत्थं घटयाम्बभूवुः ॥48॥

सुशीला और पुण्यसदन के बेटे आपकी जय हो, ब्राह्मण कुमार आपकी जय हो, दुष्टनिग्रहकर्ता आपकी जय हो। इस प्रकार सब लोगों ने उनकी विरूदावली का गान किया।

क्रीडन्नपि क्रीडति रामलीला रामो भवन्नाप्तसमस्तकामः।
कञ्चिच्च बालं भरतं विधाय सौमित्रिमेकं ह्यपरं रिपुघ्नम् ॥49॥

सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त हुए रामानन्दाचार्य खेल-खेल में भी स्वयं राम जी का अभिनय करते हुए रामलीला करते हैं, किसी को भरत जी बना लेते हैं, किसी को लक्ष्मण और किसी को शत्रुघ्न।

संक्षालयत्येष पदाब्जयुग्मं कैवर्तकीभूतसुबालकेन।
नावं समारुह्य जगन्निवासः पारं भवत्येष च जह्नुजायाः ॥50॥

इसी प्रकार किसी बालक को केवट बनाकर उससे चरण-कमल धुलवाते हैं और नाव पर विराजमान होकर गङ्गा पार करते हैं।

रामो भवन् भूतसमस्तसाक्षी संवन्द्य मातापितरौ सुभक्त्या।
उद्यन् प्रभाते विभया विभाते मर्यादया मण्डितसर्वलोकः ॥51॥

स्वयं भगवान् राम का अभिनय करके अपनी मर्यादा से सम्पूर्ण लोकों का मंगल करते हुए रामानन्दाचार्य जी माता-पिता को प्रणाम करते हैं और सबका सम्मान करते हैं।

तातस्य चाज्ञां रिपालयिष्य-ञ्छ्रीचित्रकूटं गहनं विवेश।
मग्नः समामज्जितधैर्यराशी रोरुद्यते स्मापि वियोगखिन्नः। ॥52॥

किसी समय भरत के वियोग का अभिनय करके स्वयं रामानन्दाचार्य घण्टों-घण्टों रोते हुए अपना भी धैर्य तोड़ देते हैं और दूसरों का भी।

प्रातः समुत्थाय मुदा कदाचिन् मातुश्च तातस्य पदं निपीड्य।
संवन्दमानो विगताभिमानः प्रीत्यान्वकार्षीद्रघुनाथचेष्टाम् ॥53॥

प्रातः काल स्वयं उठकर माता-पिता सुशीला एवं पुण्यसदन शर्मा के चरणों को प्रणाम करके वन्दन करते हुए रामानन्दाचार्य जी रघुनाथ जी की बाललीला का अनुकरण करते थे।

भूत्वा कदाचिन्नु बालरूपः सम्भग्नकूपो द्विजबालभूपः।
काकं सुमित्रं परिलाल्य नूनं सङ्खादयत्येष मनोज्ञमृष्टम्॥54॥

स्वयं कभी-कभी बालरूप की चेष्टा करते हुये ब्राह्मणकुल के बालकों के शिरोमणि रामानन्दाचार्य अपने मित्र भुशुण्डि जी को बुलाकर उन्हें सुन्दर मृष्टान्न खिलाते थे।

कोपात् कदाचित् कलुषीकृताक्षश्चापे च सन्धाय शरं प्रचण्डम्।
चिक्षेप हन्तुं किल ताटकां तां लीलाव्रती राघवबालकस्य ॥55॥

भगवान् राम के दिव्य लीला का व्रत करते हुए क्रोध से नेत्रों को क्रोधातुर करके धनुष पर बाण का सन्धान करते हुए ताड़का को मारने का अभिनय करते हैं।

कृत्वा वसिष्ठं किल बालमेकं साङ्ग्रामिकं शस्त्रविशेषमारात्।
संशिक्षमाणो मुदमातनोति क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये॥56॥

कभी-कभी किसी बालक को वशिष्ठ बनाकर सम्पूर्ण आयुधग्राम के शिक्षण का अभ्यास करते हैं।

बालं च कञ्चिन्ननु जातु विश्वामित्रं भवन्तं यशसा लसन्तम्।
संसेवमानोऽनुचकार विद्यालाभं समादर्शितदिव्यभक्तिः॥57॥

किसी बालक को विश्वामित्र बनाकर उनकी सेवा करते हुए विद्या-ग्रहण का अभिनय करते हैं।

एवं शिशौ कुर्वति बाललीलां मध्ये लसल्लक्ष्मणबन्धुशीलाम्।
अष्ट व्यतीयुः शरदः सुखेन सम्राजमाने किल तीर्थराजे॥58॥

इस प्रकार जिसके मध्य-मध्य में लक्ष्मण के बन्धु श्रीराम जी के दिव्य शील का परिचय मिलता है ऐसी बाल-लीला करते हुए, तीर्थराज में विराजमान बालक के आठ वर्ष बीत गये।

अष्टावतीत्य प्रकृतीर्निसर्गाद् बोभूयते लब्धसुखश्च योगी।
तथैव सद्ब्राह्मणचक्रवर्ती व्यतीत्य चाष्टौ शरदो विरेजे ॥59॥

जिस प्रकार आठों प्रकृतियों को पार करके योगी सुखी हो जाता है उसी प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों के चक्रवर्ती बालक रामानन्द आठवें वर्ष को व्यतीत करके प्रसन्न हो गये।

संविद्यमाने नवमे च वर्षे स ब्राह्मणः सम्प्रति पुण्यसद्मा।
इच्छत्यथो पुत्रमिहोपनेतुमुपस्थिते ब्राह्मणवर्यवर्गे ॥60॥

इस प्रकार से बालक का जब नवाँ वर्ष आ गया तब पुण्यसदन शर्मा ने उनका उपवीत कर्म सोचा कि बालक का उपवीत हो।

पूर्वं लिपिं निर्जरनागरीं च सङ्ग्राहयामास पिता तमर्भम्।
जग्राह यत्नेन विना स बालो यथौषधिर्नक्तमिवात्मभासः ॥61॥

पूर्व में पिता पुण्यसदन ने बालक रामानन्दाचार्य को देवनागरी लिपि का अभ्यास कराया। जिस प्रकार रात्रि में औषधि अपने प्रकाश को प्राप्त कर लेती है, उसी प्रकार इस देवनागरी लिपि को रामानन्दाचार्य ने बहुत शीघ्र ही प्राप्त कर लिया।

श्लोकाँश्च गीतानि पुरातनानि बद्धानि देव्यां सुरवाचि सम्यक्।
जग्राह बालः शिशुलीलयैव धीरो यथा प्राक्तनसंस्क्रियाश्च ॥62॥

जिस प्रकार धीर व्यक्ति प्राक्तन संस्कारों को प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार बालक रामानन्द ने श्लोक, गीत और पुराणों को प्रसन्नता से कण्ठस्थ कर लिया।

वाल्मीकिरामायणमेव सर्वं कण्ठस्थमर्भो विधिवच्चकार।
श्रीरामगाथा हतपापसार्थाः सङ्गातुमीड्या धृतहर्षभावः ॥63॥

पापों को नष्ट करने वाली श्रीराम की गाथा को गाने की इच्छा से बालक रामानन्दाचार्य ने सुन्दर वाल्मीकि रामायण को प्रथम ही कण्ठस्थ कर लिया।

श्रीजानकीचारुचरित्रमीड्यं संश्रुत्य सीताचरितं महात्मा।
भूयश्च पौलस्त्यवधं निधाय हृन्मन्दिरे मोदमवाप बालः ॥64॥

अपने मन-मन्दिर में श्री जानकी जी के दिव्य चरित से युक्त पौलस्त्यवध नामक महाकाव्य को उन्होंने कण्ठस्थ किया और बहुत प्रसन्न हो गये।

सर्गान् समुत्पादितरामसर्गान् कण्ठस्थितान् पञ्चशतान् महात्मा।
लीलाश्च गायन् रघुनायकस्य स्वान्ते परां निर्वृतिमाप धीरः ॥65॥

इस प्रकार भगवान् राम के दिव्य चरित्र को पाँच सौ सर्ग जिनमें राम जी का निश्चय स्पष्ट महर्षि वाल्मीकि ने गाया और लिपिबद्ध भी किया। इस प्रकार पाँच सौ सर्गों को कण्ठस्थ करके रामानन्दाचार्य जी बहुत प्रसन्न हुए।

प्रत्येकसर्गस्य खिले विभागे दृष्ट्वैव छन्दः परिवर्तनञ्च।
लेभे प्रमोदं विधिवच्च विद्वान् सिन्धुर्यथा वीक्ष्य च पार्वणेन्दुम् ॥66॥

जिस प्रकार सागर पूर्णचन्द्र को निहारकर प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार रामानन्दाचार्य जी प्रत्येक सर्ग के अन्तिम भाग में नये-नये छन्दों को देखकर बहुत प्रसन्न होते थे।

कायन् कलं सुन्दरकाण्डमेव ध्यायन् कपीन्द्रस्य पराक्रमञ्च।
गायँश्च सीताचरितं मनोज्ञं धन्यं स्वमाविष्कृत एव मेने ॥67॥

इस प्रकार भगवान् की दिव्य-गाथा को गाते हुए, हनुमान् जी के दिव्य पराक्रम का ध्यान करते हुए और सीता जी के दिव्य चरित्रों को गाते हुए रामानन्दाचार्य ने अपने आप को धन्य माना।

वाल्मीकिरामायणमादिकाव्यं श्रीरामनाम्नो जपतः प्रभावात्।
विद्वान् बभाषे वरुणस्य पुत्रस्तद् वीक्ष्य बालो मुदमाप भूरि ॥68॥

इस प्रकार आदि-काव्य जिसे भगवान् वाल्मीकि ने कहा है जो ललित छन्दों में गाया गया है उसे देखकर रामानन्दाचार्य जी को भी बहुत प्रसन्नता हुई।

दृष्ट्वैव रामस्य दृढां प्रतिज्ञां ध्यात्वैव रामं किल सत्यसन्धम्।
चक्रे यतीन्द्रोऽपि महाप्रतिज्ञां त्रातुं विपत्तेः किल हिन्दुजातिम् ॥69॥

इस प्रकार रामजी की प्रतिज्ञा एवं सत्यसन्धत्व को देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने भी हिन्दू जाति को विपत्ति से बचाने की प्रतिज्ञा की।

उत्थाप्य बाहू परिघोपमौ च प्राध्माय शङ्खं किल पाञ्चजन्यम्।
चक्रे प्रतिज्ञां महतीं च रामानन्दो विश्रृण्वत्यथ विप्रवर्गे॥70॥

परिघ के समान दोनों भुजाओं को उठाकर शङ्ख बजाकर सभी ब्राह्मण-गणों के सुनते-सुनते जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने भी एक महान् प्रतिज्ञा कर ली।

मा भैष्ट चित्तेषु च हिन्दवो वै मा भूद् व्यथा वो च विमूढभावाः।
सर्वान् हनिष्यामि कुविघ्नयूथान् सिंहो यथा क्षुद्रमृगान् निहन्ति॥71॥

हे हिन्दुओं! मत डारो, अपने मन में शोक मत करो। मैं आपके विघ्न को उसी प्रकार नष्ट करूँगा जिस प्रकार सिंह क्षुद्रमृगों को नष्ट करता है।

इत्थं प्रतिज्ञां च विधाय धीरो दध्मौ महाशङ्खमनुत्तमं च।
ध्वानं समाश्रुत्य च हिन्दुजातिर्मोमूद्यमाना नितरां बभूव॥72॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके रामानन्दाचार्य जी ने शङ्ख को बजाया और उसे सुनकर हिन्दू जाति बहुत प्रसन्न हुई।

तं चोपनिन्ये विधिवद् विधिज्ञो वैधो मुदा चोपनयक्रियाभिः।
संस्कारसम्पन्न उदारबुद्धी रेजे द्विजः पर्वणि वै शशीव॥73॥

इस प्रकार वशिष्ठ जी ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को विधिवत् उपनयन संस्कार किया और संस्कार सम्पन्न होकर रामानन्दाचार्य जी पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हुए।

वेदोर्मिलोकाम्बरवैक्रमाब्दे सा माघकृष्णा किल षट्तिलाऽऽगात्।
एकादशी दर्शितदिव्यपुण्या हरिप्रिया वै हरिवासराख्या॥74॥

इस प्रकार अब विक्रमी संवत् 1364 की माघ कृष्ण एकादशी षट्तिला आ गयी जिसको हरिवासर भी कहते हैं।

एकादशी सा बहुला स्म भाति श्रीमाघमासस्य गुणैरुपेता।
सौम्या च रम्या स्थिरवासराऽऽप्ता यां मङ्गलामौपनये विदन्ति॥75॥

इस प्रकार वह माघ कृष्ण एकादशी जिसे हम षट्तिला कहते हैं, विक्रम संवत् 1364 में शनिवार के दिन आयी और उसको हम उपनयन के लिए मङ्गलमय जानते हैं।

तञ्चोपनिन्ये विधिवद् विधिज्ञो वैधोऽष्टमो वै भगवान् वसिष्ठः।
विद्वद्वरिष्ठो यमिनां यमिष्ठो विद्यागरिष्ठो वशिनां वशिष्ठः ॥76॥

उसी समय उसी दिन विधि को जानने वाले विद्वानों में वरिष्ठ संयमियों में श्रेष्ठ विद्या में गरिष्ठ और यमियों में वेगवान् साधना में विशिष्ट वशिष्ठ जी ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का उपनयन किया।

तं चोपनीतं विभया परीतं मौञ्ज्यं च कौपीनपटं वसानम्।
संवीक्ष्यमाणः किल भूसुरेन्द्रो नैवाप तृप्तिं नयनाभिरामम् ॥77॥

इस प्रकार उपनयन संस्कार से सम्पन्न और स्वाभाविक विनय से विनीत मौञ्जी, मेखला और कौपीन को धारण किये हुये जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को निहार-निहार कर भी पुण्यसदन शर्मा तृप्त नहीं हो रहे थे।

सत्पादुकाः पादपयोजलक्ष्म्या सम्भूषयन् तीर्थपतिं समन्तात्।
याति स्म विद्या अधिगन्तुकामः काशीं कषायं लसयन् मनस्वी ॥78॥

इस प्रकार अपनी पादुका से भूमि-भाग को विभूषित करने वाले चरण-कमल के लक्षणों से भू-तल की शोभा बढ़ाते हुये और एक दिव्य-तेज से सम्पन्न विद्या का अध्ययन करने के लिए रामानन्दाचार्य जी काशी को पधारने लगे।

गच्छन् प्रयच्छन् महमात्मनीनं मायां नियच्छन् नितरां तपस्वी।
मार्गे बभौ ब्राह्मणपुत्ररत्नं संस्कार ओजः प्रगुणीकरोति ॥79॥

इस प्रकार विद्या अध्ययन के लिए जाते हुए, अपने दिव्य-तेज के साथ माया पर नियन्त्रण करते हुए, अत्यन्त मनस्वी रामानन्दाचार्य जी मार्ग में बहुत सुशोभित हो रहे थे। क्योंकि संस्कार तेज को प्रगुणित कर देता है।

कैश्चिद् विनोदेन निवार्यमाणो योषोपलम्भस्य विलोभनेन।
नैच्छद्वशी तां यतिमार्गबाधां तान् भर्त्सयन्नाह गिरं यथाऽऽप्तः ॥80॥

कुछ लोगों ने रामानन्दाचार्य से विनोद में कहा, अरे! लौट आओ तुम्हें सुन्दर दुल्हन मिलेगी पर उसे यतिमार्ग में बाधा समझते हुए उन महाव्रती ने वह प्रस्ताव ठुकरा दिया और उन्हें डाँटते हुए मेघगम्भीर वाणी में बोले।

मा मान्तरायो मम साधने भूर्मैवं प्रवादीर्नितरां प्रवादिन्।
नाङ्गीकरिष्यामि तवोक्तिमेतां जीवो मुमुक्षुर्मदनोक्तिकां वा॥81॥

अरे! तुम मेरी साधना में विघ्न मत बनो और मैं तुम्हारी बात मानूँगा नहीं जिस पर मुमुक्षु व्यक्ति कामुकों की बात नहीं मानता।

यास्याम्यहं शम्भुपुरीं च काशीं गङ्गातरङ्गार्जितपुण्यराशिम्।
श्रीराममन्त्रं श्रितमृत्यवे वै भूतेश्वरो यत्र ददाति नित्यम्॥82॥

मैं उस काशी को जा रहा हूँ, जहाँ गङ्गा के तरङ्ग से पुण्य की राशि का अर्जन हुआ है, जहाँ मरणधर्मा जीव को भूतनाथ शङ्कर श्रीराममन्त्र का उपदेश देते हैं।

या शम्भुशूले परिराजमाना नाशं न यात्येव लयेऽपि देवी।
तस्यां वसन् रामपदारविन्दभृङ्गो भविष्याम्यथ भूरिभाग्यः॥83॥

जो काशी शङ्कर जी के त्रिशूल पर विराजमान हुई और प्रलयकाल में भी जिसका नाश नहीं हुआ उसी काशी में रहकर मैं श्रीराम के चरणारविन्द का भ्रमर बनकर अपना जीवन धन्य बनाऊँगा।

काशीं गमिष्यामि सुपुण्यराशिं काशीनिवासी भविताऽस्मि भव्यः।
काश्यां वसन् मूलफलैकभोजी द्रक्ष्यामि काश्यां रघुराजराजम्॥84॥

मैं काशी जाऊँगा वहीं निवास करूँगा और काशी में रहकर मूलफल का भोजन करते हुए, भगवान् का दर्शन करूँगा।

काश्यां स्थितः कङ्करकश्च कोऽपि श्रीशङ्करस्यैव तुलामुपैति।
सोऽहं तदीयं पदपल्लवं वै आराधयन् राघवमाप्रपत्स्ये॥85॥

काशी में रहने वाला कङ्कड़ शङ्कर बन जाता है वहीं मैं काशी में रहकर भगवान् के चरण-कमल का आराधन करते हुए रघुनाथ जी को प्रपन्न हो जाऊँगा।

रोचिष्यते नो रुचितं न नूनं नो रोचते नाटक एव मह्यम्।
यद्यद् वदिष्यामि च तत् करिष्ये तत्तद् वदिष्यामि च यत् करिष्ये॥86॥

मुझे न तो पहले नाटक कभी अच्छा लगा न ही अभी अच्छा लग रहा है, और भविष्य में भी मुझे अच्छा नहीं लगेगा। मैं जो कहूँगा वही करूँगा और जो करूँगा वही कहूँगा।

इत्थं गिरा मेघगभीरया च तं सान्त्वयन् सान्त्वनवाक्यचुञ्चुः।
नाऽसौ निवृत्तो निजसर्गतोऽभूत् सिंहो यथा निर्णयतो महात्मा॥87॥

इस प्रकार अपना निश्चय सबको बताकर और उस विनोद प्रिय शक्ति को भी सान्त्वना देकर रामानन्दाचार्य जी चल पड़े। अपने निर्णय से वे उसी प्रकार नहीं मुड़े जैसे सिंह अपना निर्णय नहीं बदलता।

किं जम्बुकाद्या हरिणाश्च वन्याः कुर्वन्ति सिंहस्य किलाऽभिषेकम्।
तेजोविशेषेण हतारिरेकः साम्राज्यलक्ष्मीं स्वयमेति धीरः॥88॥

अरे! क्या सियार आदि सामान्य मृग सिंह का अभिषेक करते हैं, वो तो अपने तेज के विशेष से शत्रुओं का वध करके स्वयमेव अपनी साम्राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

किं तारकाश्चन्द्रमसः सहाया भूयस्तमःस्तोमविनाशने स्युः।
किं सूर्यनारायणयानकाले दीपा भवेयुर्ननु वै सयूथ्याः॥89॥

क्या चन्द्रमा की सहायता तारागण कर सकते हैं? क्या सूर्य नारायण के उदय-काल में दीपक उनके सहायक बन सकते हैं।

एकोऽपि सूर्यो लघुरश्मिविम्बो हन्तुं समर्थः तिमिरं त्रिलोक्याः।
एकोऽपि सिंहो निजगर्जनेन शास्तुं क्षमो भीषणकुञ्जरेन्द्रम्॥90॥

अरे! एक सूर्यनारायण का बिम्ब तीनों लोक के अन्धकार को नष्ट करता है और एक सिंह अपने गर्जन से सम्पूर्ण जङ्गली जन्तुओं पर शासन कर लेता है।

या धूर्जटेर्जूटजटाकलापा या जाह्नवीनीरनिपीतपापा।
या विश्वनाथार्दितलोकतापा निसेव्यतां सैव मयाऽपि काशी॥91॥

जो भगवान् शङ्कर जी जटा-जूट से सुशोभित हुई, जो गङ्गा जी के जल से जीवन के समस्त पापों को पी रही है अथवा गंगा जी का जल जिसमें समस्त पापों को पी रहा है और जिस काशी में भगवान् विश्वनाथ के द्वारा जिनके तीनों प्रकार के ताप नष्ट किये गये हैं, वह काशी मेरे द्वारा भी क्यों न सेवन की जाए।

या ब्रह्मणा नार्दयितुं हि शक्या या विष्णुना वै परिपाल्यमाना।
या विश्रुता शङ्करराजधानी सेवेय तां शम्भुपुरीं च काशीम्॥92॥

जिसको ब्रह्मा जी नहीं नष्ट कर पाये जो विष्णु जी के द्वारा नित्य पालित हुईं और जो शङ्कर जी के त्रिशूल पर विराजमान हैं, उन काशी का मैं क्यों न नित्यसेवन करूँ।

पुराणगीतासु पुरीषु नित्यं या वै तुरीयेव वयस्तुरीया।
या वै महाभूतविमोक्षदात्री तां काशिकां नूनमहं व्रजामि॥93॥

अहो! जो भगवान् की सात पुरियों में चतुर्थ पुरी है, जो महाभूतों को भी मुक्ति देती हैं, उस काशी में मैं जाऊँगा।

या ज्ञानवापीसलिलेन पूता या विश्वनाथाङ्घ्रिरजोऽभिषिक्ता।
या रामनामार्दितदुःखपूगा वाराणसीं तां हृदि संस्मरामि॥94॥

जो साक्षात् ज्ञानवापी के जल से पवित्र हुईं, जो शङ्कर जी के पद-कमल की रज से अभिषिक्त हुईं, जो राम-नाम अमृत से जीव के पाप को नष्ट कर रही हैं, ऐसी वाराणसी को मैं हृदय में स्मरण कर रहा हूँ।

मध्ये स्थिता या वरणाऽसिनद्योर्या वारयन्ती भवभीममायाम्।
शम्भोर्जटावारिनिसेविता या वाराणसीं तां मनसा स्मरामि॥95॥

जो वरूणा और असी नदियों के मध्य विराजमान हैं, जो संसार की माया का वरण करती हैं, जो शङ्कर जी के जटा-कलाप के जल से भी सुशोभित हुईं ऐसी वाराणसी का मैं मन से स्मरण करता हूँ।

इत्थं विनिश्चित्य विनिश्चिताऽऽत्मा महात्मवृन्दार्चितपादपद्मः।
पद्माऽवदातो जनपारिजातो वाराणसीं तुष्टमनाः प्रतस्थे॥96॥

इस प्रकार जिनका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो चुका है और बड़े-बड़े महात्माओं ने जिनके चरण-कमल की पूजा की, ऐसे कमल के समान स्वच्छ, भक्तों के लिए पारिजात, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य वाराणसी के लिए प्रस्थान किए।

तं प्रस्थितं सर्वजनाः प्रजग्मु-र्ये बान्धवा ये च सुहृद्वरूथाः।
प्रेम्णैव मातापितरौ श्रुतिज्ञं यथा तटागं तृषिता मृगेन्द्राः॥97॥

इसप्रकार उनके प्रस्थान करते ही उनके जो बन्धु-बान्धव थे और उनके माता-पिता सब लोग, उनके पीछे उसी प्रकार आ गए जैसे प्यासे हरिण-गण तालाब की ओर चल पड़ते हैं।

काशीं गत्वा गन्तुकांस्तान् विसृज्य विद्वद्वर्यो योगिपूज्याङ्घ्रिपद्मः।
वाराणस्यां वासमेवाथ चक्रे श्रीमद्रामं चिन्तयन् चेतसा वै॥98॥

इसप्रकार काशी जाकर सब लोगों को वहाँ से भेजकर और योगियों के द्वारा जिनके चरण-कमल की पूजा की गयी है ऐसे बालक रामानन्द श्रीराम का चिन्तन करते हुए वाराणसी में निवास करने लगे।

ध्येयं ध्येयं श्यामलं रामरूपं पेयं पेयं राममन्त्राऽमृतञ्च।
जल्पं जल्पं भूतनाथोऽपि रामानन्देनेत्थं सस्पृहं चाऽऽलुलोके॥99॥

श्रीराम-मन्त्र का निरन्तर जप करना चाहिए, श्रीराम मन्त्र का निरन्तर पान करना चाहिए इस प्रकार बोलते हुए भूतनाथ शङ्कर जी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के द्वारा सस्पृह नेत्र से देखे गये।

क्वचित्स्वभक्तैः परिपूज्यमानः क्वचिद् बुधेन्द्रैः परिदृश्यमानः।
क्वचिन्मुनीन्द्रैः परिबोध्यमानश्चकार काश्यां वसतिं वशीन्द्रः॥100॥

कहीं भक्तों से सम्मानित होते हुए, कहीं विद्वानों द्वारा दर्शन का विषय बनाये जाते हुए, कहीं श्रेष्ठमुनियों द्वारा उपदेश के विषय बने हुए रामानन्दाचार्य काशी में निवास करने लगे।

गौरोऽप्यगौरं श्रितसौरवंशं भूपावतंसं मनुजेन्द्रहंसम्।
रामं नृणां नेत्रमनोऽभिराममाराधयामास स विप्रबालः॥101॥

गौरवर्ण होकर भी रामानन्दचार्य जी श्यामवर्ण वाले सूर्यवंश को स्वीकार किये हुए, राजाओं के आभूषण, मनुष्यकुल के राजहंस, मानवों के नेत्र एवं मन को आनन्द देने वाले भगवान् राम की आराधना करने लगे।

नित्यं मुदा स्नाय मुकुन्दपादपङ्केरुहाम्बुन्यथ विष्णुपद्याम्।
प्रणम्य भक्त्या शिरसाऽन्नपूर्णां स विश्वनाथं स्नपयाम्बभूव॥102॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी भगवान् मुकुंद के चरण कमल के जल से प्रकट विष्णुपदी गङ्गाजी में निरन्तर स्नान करके भक्ति से अन्नपूर्णा माँ को सिर से प्रणाम करके श्रीविश्वनाथजी का अभिषेक करने लगे।

स ज्ञानवाप्याः सलिलं निपीय निपाय गङ्गाजलमाधिहारि।
प्रजप्य लक्षं किल रामनाम काशीनिवासं सफलं चकार॥103॥

श्रीरामानन्दाचार्य ने ज्ञानवापी जल का पान करके पापहारी गङ्गाजल का आचमन करके प्रतिदिन एक लाख रामनाम का जप करके काशी निवास को सफल बना लिया।

देहप्रभाव्रीडितकुन्दकान्तिं कान्तालकं ब्राह्मणबालकं च।
यज्ञोपवीतेन विराजमानं दृष्ट्वा दृशीलाभमवाप लोकः॥104॥

अपने शरीर की शोभा से कुन्द पुष्प की कान्ति को जीतने वाले घुँघराले बाल वाले यज्ञोपवीत से विराजमान उन ब्राह्मण बालक रामानन्दाचार्य को देखकर संसार ने नेत्रों का लाभ प्राप्त कर लिया।

आजानुपीनांसलदिव्यबाहुं कुमार्गपाखण्डमृगाङ्कराहुम्।
तं पुण्यसद्मार्भकमीड्यकीर्तिं दृष्ट्वा न तृप्तिं प्रययुः सुरेन्द्राः॥105

घुटने से नीचे तक लटकते हुए दीर्घ एवं बलशाली भुजाओं से युक्त कुमार्ग एवं पाखण्ड रूप चन्द्रमा के लिए राहु के समान, स्तुतियोग्य कीर्ति वाले पुण्यसदन शर्मा के पुत्र उन रामानन्दाचार्य को देखते हुए देवता तृप्ति नहीं मान रहे थे।

काशीनिवासी मृदुपूतभाषी विद्याऽभिलाषी खलवृन्दशासी।
विद्वान् सुशीलातनयो नयज्ञो गुरुं सुयोग्यं मृगयाम्बभूव॥106॥

काशी में निवास करते हुए कोमल एवं पवित्र भाषा में बोलने वाले, विद्या के इच्छुक खलवृन्दों पर शासन करने वाले रामानन्दाचार्य जी एक सुयोग्य गुरु की खोज करने लगे।

गुरुं विना राघवतोषणं नो गुरुं विना वैष्णवपोषणं नो।
गुरुं विना नैव हरिप्रपत्तिर्मृग्यः प्रयत्नेन गुरुश्च तस्मात्॥107॥

गुरुदेव के विना भगवान् राम सन्तुष्ट नहीं होते, गुरुदेव के बिना वैष्णवों का पोषण

नहीं होता, गुरुदेव के बिना भगवान् की शरणागति नहीं मिलती, इसलिए प्रयत्न करके सद्गुरु की खोज करनी चाहिए।

गोविन्दगुर्वोर्नहि कोऽपि भेदो गोविन्दतश्चापि गुरुर्गरीयान्।
गोविन्दपादाब्जपरागप्राप्त्यै गोविन्दतः पूर्वमये गुरुं च॥108॥

गोविन्द एवं गुरु में कोई भेद नहीं है, गोविन्द से गुरुदेव बड़े हैं श्रीगोविन्द के चरण कमल के पराग की प्राप्ति के लिए गोविन्द के पूर्व गुरुदेव के शरण में मैं जा रहा हूँ।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्भिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं तूर्यको यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य - विरचिते श्रीरामानन्दाचार्यचरिते चतुर्थः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ पञ्चमः सर्गः ॥

चकाश ईड्याचरितश्च काश्यां श्रीराघवानन्द उदारचेताः।
पत्रावलम्बां सचराचराम्बां यो विद्यया सर्वमहीं व्यधत्त ॥01॥

उन्हीं दिनों उदार चित्त वाले श्रीराघवानन्दचार्य जी काशी में विराजते थे। जिनके चरित स्तवनीय थे। जिन्होंने सारे संसार को जन्म देने वाली पृथ्वी को ही पत्रावलम्ब बना लिया था। इस प्रकार अपनी विद्या से पृथ्वी को पत्रावलम्ब करके राघवानन्दाचार्य जी ने एक घोष किया था।

यो वै चतुर्वर्णशरीरभाजां नृणां समेषां ननु रामभक्तौ।
समानमेव ह्यधिकारमाह समं समेषां खलु शास्त्रदृष्ट्या ॥02॥

जिस राघवानन्दाचार्य ने चतुर्वर्ण में उत्पन्न हुए सभी शरीरधारियों के लिए और चतुराश्रमों का सेवन करने वालों के लिए तथा सभी प्राणियों के हित के लिए शास्त्रीय दृष्टि से श्रीरामभक्ति में समान अधिकार कहा।

स्त्रीणां तुरीयाऽश्रमसेविनां वै वैखानसानां गृहिणां तथैव।
यो वर्णिनां तुल्यतयाऽधिकारं श्रीरामभक्तौ न्यगदत् समेषाम् ॥03॥

जिन राघवानन्दाचार्य जी ने खुलकर कह दिया स्त्रियाँ और संन्यासाश्रम में रहने वाले लोग, वैखानस, गृही, ब्रह्मचारी सबका राम-मन्त्र में अधिकार है। इतना ही नहीं,

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो वै सीतापतेः पावनपादपद्मे।
न लिङ्गभेदो न शरीरभेदो न वर्णभेदो भगवत्पराणाम् ॥04॥

भगवान् सीतापति श्रीराम के चरणकमल में शरणागति में सबका अधिकार है। भगवत्परायणों का लिङ्गभेद, शरीर भेद और वर्णभेद कभी भी नहीं स्वीकारा गया है।

नारी नरो वाऽपि नपुंसको वा वर्णी गृही वाऽप्यथ वानप्रस्थः।
वृद्धः प्रवृद्धोत्तमभक्तिभावैर्भजेत सीतापतिपादपद्मम्॥05॥

चाहे नारी हो या नर चाहे क्लीब हो, चाहे ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ हो या वानप्रस्थ हो या संन्यासी। चाहे युवक हो या वृद्ध सबको बढ़ते हुए उत्तम भक्तिभाव से श्रीसीतापति भगवान् श्रीराम के चरणकमल का भजन करना चाहिए।

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः स्युर्न क्वापि केन प्रतिबन्ध उक्तः।
न सर्गभेदो न निसर्गभेदः सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो वै॥06॥

भगवान् की शरणागति के सभी अधिकारी हैं, किसी को निषेध नहीं किया गया है। कोई भी हो वहाँ लिङ्ग नहीं, शरीरभेद नहीं, वर्णभेद नहीं, जातिभेद नहीं, भावभेद नहीं, निश्चय का भेद नहीं। सभी भगवद् प्राप्ति के अधिकारी हैं।

स्त्रीत्वं न पुंस्त्वं न नपुंसकत्वं नो वर्णिता नो गृहिता कदाचित्।
वैखानसत्वं न च वा यतित्वं श्रीरामभक्तौ परिबाधकं वै॥07॥

राघवानन्दाचार्य ने कहा कि श्रीरामभक्ति में स्त्रीत्व, पुल्लिङ्गत्व या नपुंसकत्व ये बाधक नहीं होते। श्रीराम भक्ति में ब्रह्मचारित्व, गृहित्व और वानप्रस्थत्व अथवा संन्यासित्व ये बाधक नहीं होते।

न ब्राह्मणत्वं न नृपोद्भवत्वं न वा तृतीयत्वमथापि चास्ति।
तूर्यत्वमेवाथ न बाधकं भो सीतापतेः पावनपादपद्मे॥08॥

श्री राघवानन्दाचार्य कहते हैं, भगवान् श्रीराम के चरण-कमल की भक्ति में न तो ब्राह्मणत्व बाधक है, न तो क्षत्रियत्व बाधक है, न ही वैश्यत्व बाधक है, न चतुर्थत्व बाधक है।

न सम्प्रदायो विदितोऽन्तरायो न जातिधर्मो न च वर्णधर्मः।
न कौलधर्मो न च वंशधर्मः श्रीरामभक्तिं परिबाधते वै॥09॥

श्रीराम की भक्ति को कोई नहीं बाधित करता चाहे वो सम्प्रदाय धर्म हो, चाहे वर्णधर्म हो, जातिधर्म हो, कुलधर्म हो, वंशधर्म हो, वहाँ सब कुछ स्वीकार्य है।

नाऽन्धत्वमेवाऽत्र करोति विघ्नं नो मूकता नो बधिरत्वमेव।
न पङ्गुता नापि च खञ्जता वै श्रीरामभक्ते रुचिरप्रसादे॥10॥

भगवान् की भक्ति के सुन्दर प्रसाद में कोई बाधक बन ही नहीं सकता। न ही दृष्टिबाधिता, न ही मूकता, न ही बधिरता, न ही पंगुतापन, न ही लूलापन अर्थात् यहाँ सबका प्रवेश है।

देवः समासादितसर्वसेवो नरः परो ब्रह्मविचारणायाम्।
खलो सुरोऽप्यासुरभावयुक्तो हरेः प्रपत्तावधिकुर्वते वै॥11॥

ब्रह्मविचारणा में तत्पर मनुष्य, आसुरी भाव से संयुक्त नर, भगवान् श्रीराम की प्रपत्ति में सबका अधिकार है।

न चापि कालो भजनेऽस्त्यपेक्ष्यः सीतापतेर्नैव कुलं कदाचित्।
नापेक्ष्यते देहविशुद्धताऽपि स्मृतौ खरारेर्ननु राघवस्य॥12॥

राघावानन्दाचार्य कहते हैं भगवान् की स्मृति के लिए काल की कोई अपेक्षा नहीं, कुल की कोई अपेक्षा नहीं, शरीर की कोई अपेक्षा नहीं।

यस्मिंश्च कस्मिंश्च नरो विनम्रः काले कराले रघुराजलाले।
निवेश्य चित्तं करुणैकवित्तं भजेत भावेन भवेद्धि भक्तः॥13॥

जिस किसी समय में भगवान् श्रीराम के चरण में मन लगाकर व्यक्ति भजन करे वो भक्त हो ही जाएगा।

हिन्दुर्भवेद्वाऽप्यथ वा तुरुष्कः कृष्टानुयायी यदि सौगतो वा।
यद्वार्हतस्त्यक्तसमस्तधर्मा भजेत्त रामं ननु पावनः स्यात्॥14॥

चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, चाहे ईसाई हो या बौद्ध अथवा जैन किसी भी सम्प्रदाय वाला व्यक्ति अपने समस्त विकारों को दूर करके भगवान् की भक्ति करे तो निश्चित वह भगवद् भक्त हो सकता है।

न ब्रह्मचर्यं न पुनर्गृहित्वं वैखानसत्वं न च नो यतित्वम्।
पुंस्त्वं न नारित्वमथो न षाण्ढ्यं श्रीरामभक्तिं प्रतिबन्धुमीष्टे॥15॥

राघवाचार्य कहते हैं श्रीरामभक्ति एक ऐसी धारा है, जिसको न ब्रह्मचर्य, न गृहस्थभाव, न वानप्रस्थभाव और न ही संन्यासीभाव, न पुंसत्व, न स्त्रीत्व और न नपुंसकत्व कोई भी उसे रोक नहीं पाता।

वर्णेऽपि कस्मिंश्चिदहो प्रजातः समत्वभावे च समाश्रितात्मा।
भजेत यो राघवपादपद्मं संसारसिन्धोः स भवेद्विमुक्तः॥16॥

किसी भी वर्ण में जन्म लेने वाला कोई भी व्यक्ति समभाव से युक्त अन्तःकरण वाला होकर यदि भगवान् श्रीराम के चरण-कमल का भजन करे तो निश्चित ही वह संसार सागर से मुक्त हो सकता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं।

यो वै दुराचाररतो दुरात्मा दुष्टोऽपि दुर्भावनयोपपन्नः।
भजेत दूर्वादलदिव्यकान्तिं श्रीरामचन्द्रं न पुनः पतेत् सः॥17॥

जो भी दुराचाररत हो, जिसका अन्तःकरण दुष्ट हो, दुर्भाव से युक्त हो। वह भी यदि दूर्वादल के समान दिव्यकान्ति वाले भगवान् राम का भजन कर लेता है तो निश्चित रूप से वह फिर पतित नहीं होता।

कथं पतित्वा भगवत्पदाब्जे पतेदिहाज्ञो भवघोरसिन्धौ।
कथं नु पीत्वा विबुधेन्द्रवन्द्यां सुधां निसेवेत हि कालकूटम्॥18॥

अरे! जो भगवान् के चरण-कमल में एक बार पड़ गया वह भव-सागर में फिर कैसे पड़ सकता है? एक बार जिसने देवताओं के द्वारा वन्दनीय अमृत को पी लिया तो वह संसार सागर के विष का निषेवण कैसे कर सकता हैं।

सकृत् स्वदित्वा भगवत्पदाब्जपीयूषयूषं हृतभूरिभीतिः।
पुनः कथं संस्पृहयेत दुष्टः कुकालकूटं स्वदितुं दुरात्मा॥19॥

जिसने भगवान् के श्रीचरणकमल के सुधा का पान किया हो, वह फिर संसार के विषयरूप विष का स्वाद क्यों लेना चाहेगा।

सकृन्निरीक्ष्येन्दुशतप्रकाशं मुखं मुकुन्दस्य गुणालकालि।
भूमेः किमिच्छेद् विषयाग्निजुष्टां पुष्टां मनोजेन च नारिशोभाम्॥20॥

एक बार जिसने करोड़ों चन्द्रमा के प्रकाश वाले भगवान् के मुखचन्द्र छवि का स्वाद ले लिया है, फिर विषय से ग्रसित काम से पुष्ट नारी की शोभा को निहारने की इच्छा क्यों करेगा।

यो जाह्नवीतुङ्गतरङ्गतल्पे सुखं शयानः समयं व्यनैषीत्।
कथं स वाञ्छेत् समसौख्यनाशां सकर्मनाशां परिगाढुमार्यः॥21॥

अरे! जिसने गङ्गा जी के सुन्दर लहरों के तल पर शयन करके प्रचुर काल बिताया हो वह व्यक्ति समस्त सुखों को नष्ट करने वाले कर्मनाशा को क्यों चाहेगा?

तस्मात् सुरो वाऽप्यसुरो नरो वा स वानरो वा ननु किन्नरो वा।
अनन्यभावेन भजन् मुकुन्दं श्रीरामचन्द्रं तरतीह मायाम्॥22॥

इसलिए चाहे देवता हो या असुर, चाहे वानर हो या किन्नर जो भी अनन्य भाव से श्रीराम का भजन करता है वो माया को पार कर लेता है।

तं पार्वतीनाथसमर्चिताङ्घ्रिसरोरुहं नीलशिरोरुहं च।
अनन्यभावेन भजन् खरारिं पारं लभध्वं भवभीमसिन्धोः॥23॥

इसलिए हे संसार के लोगों! पार्वतीपति शङ्कर भगवान् के द्वारा जिनके चरण-कमल का वन्दन किया गया है उन श्रीराम का अनन्य भाव से भजन करते हुए भवसागर को पार करो।

इत्थं निशम्याऽमललोककीर्तिं स राघवानन्दमुदारमार्यम्।
वव्रे निजं सद्गुरुमेव रामानन्दोऽजपुत्रं हि यथाऽजपौत्रः॥24॥

इस प्रकार दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो रही राघवानन्दाचार्य जी की कीर्ति रामानन्दाचार्य ने सुनी और वे समझ गये कि ये उदार आचार्य हैं, तब उन्होंने अपने सद्गुरु के रूप में उनका वरण किया। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने वशिष्ठ जी का वरण किया था।

परीक्ष्य लोकान् चितकर्मशोकान् तस्माद् विरज्य द्विजवंशकेतुः।
जिज्ञासमानः स च नित्यतत्त्वं तं राघवानन्दमथ प्रपेदे॥25॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने यह परीक्षा कर ली कि यह संसार कर्म से बना है। यहाँ शोक ही शोक है। यहाँ नित्य-वस्तु नहीं मिल सकती। अतएव नित्यतत्व श्रीराम जी की जिज्ञासा करने के लिए जगद्गुरु जी ने राघवानन्दाचार्य जी की ही प्रपत्ति ग्रहण की।

गत श्लोक 24 में दो शब्दों का प्रयोग किया गया है 'अजपुत्र' और 'अजपौत्र'। अजपुत्र अर्थात् वशिष्ठ और अजपौत्र में दो समास है, अज दशरथ जी के पिता के पौत्र श्रीराम अथवा अजः ब्रह्मा पौत्रः यस्य स अजपौत्रः अर्थात् ब्रह्मा जिनके पौत्र हैं वे श्रीराम।

यत्रापि कुत्रापि मनः प्रयाति सर्वेषु गोप्येष्वथ गोचरेषु।
संसारसङ्गं ननु मायिकं तत् कृतैः कृतं तद् ह्यकृतं परस्तात्॥26॥

इतना ही नहीं, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और उनके विषय जहाँ-जहाँ तक मन जाता है वह सब कुछ मायिक हैं, और उसी का नाम संसार है। वह कृतों के द्वारा रचा हुआ है। अकृत परमात्मा उससे परे हैं।

गोगोचरातीतमतीतमज्ञान् नित्यं पुराणं परमात्मतत्त्वम्।
निरस्तमायं शुचिबोधकायं कृतादतीतं ह्यकृतं परं तत्॥27॥

जो इन्द्रियों और विषयों से परे है, जो अज्ञों से बहुत दूर है, वही तो नित्य पुराण परमात्म तत्व है। वही अकृत है। उसको किसी ने बनाया नहीं।

न वा कृतं शिल्पिभिरेव कैश्चिन्नवाऽथ सृष्टं विधिना कदाचित्।
ततोऽकृतं तत् कवयो वदन्ति न ज्ञातुमेतत् कृतकैश्च शक्यम्॥28॥

यह तो निश्चित है कि परमात्म तत्त्व को किसी शिल्पी ने नहीं बनाया। ब्रह्मा जी ने इसकी रचना नहीं की इसलिए इसको विद्वज्जन अकृत कहते हैं। यह कृतकों द्वारा नहीं जाना जा सकता।

जिज्ञासमानः प्रभुरामचन्द्रं तं श्रोत्रियं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्।
श्रीराघवानन्दमसौ प्रपन्नः समित्करो ब्रह्मणि लब्धभावः॥29॥

इस प्रकार रामानन्दाचार्य भावनात्मक दास्योपासना को प्राप्त किए मनुष्य शरीर में विराजमान प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को जानने की इच्छा करते हुए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीराघवानन्दाचार्य जी की शरण में आये।

संसारशोकानलदग्धचित्तो ना व्याकुलश्चेव प्रपां पिपासुः।
करीव नैदाघतटागमार्तः श्रीराघवानन्दमसौ प्रपन्नः॥30॥

जिस प्रकार कोई प्यासा नदी के पास चला जाता है, जिस प्रकार धूप से तपा हाथी तालाब में जाता है, उसी प्रकार संसार की शोकाग्नि से जिनका चित्त जल चुका है ऐसे जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य जी ने श्री राघवानन्दाचार्य जी की शरण ली।

यज्ञोपवीतेन विराजमानो विभ्राजमानः खलु रौरवेण।
राराज्यमानो गुरुगौरवेण स राघवानन्दमुपैद् यतीन्द्रः॥31॥

यज्ञोपवीत से विराजमान और रुरु मृग के चर्म से सुशोभित गुरु-गौरव से अत्यन्त देदीप्यमान रामानन्दाचार्य जी श्री राघवानन्दाचार्य जी की शरण में आये।

जिज्ञासुचूडामणिमञ्जुमौलि समुन्मिलत्पावनपादपीठः।
वेदान्तशास्त्रं ह्यधिगन्तुकामः श्रीराघवानन्दमसौ प्रपन्नः ॥32॥

इस प्रकार जिज्ञासुओं के चूड़ामणि भी जिनके चरण-कमल पावन-पादुकाओं का पूजन करते हैं, ऐसे रामान्दाचार्य वेदान्त-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए एक जिज्ञासु भाव से श्रीराघवानन्द की शरण में आये।

गृहीतमौञ्जी कटिमेखलोऽसौ यज्ञोपवीती नितरामधीती।
संश्रोतुकामः किल भिक्षुसूत्रं श्रीराघवानन्दमसौ प्रपन्नः ॥33॥

इस प्रकार यज्ञोपवीत, मौञ्जी-मेखला धारण करके वेदान्तशास्त्र का अध्ययन करने के लिए और स्वयं पढ़ने-लिखने में मन लगाने वाले जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य जी श्री राघवानन्दाचार्य जी की शरण में आये।

तं कर्तुकामं सुगुरूपसत्तिं सहर्तुकामं विपदां विपत्तिम्।
संस्कर्तुकामं प्रपदां प्रपत्तिं गुरुं गुरूणां गुरुराददर्श ॥34॥

इस प्रकार श्री राघवानन्दाचार्य जी ने सभी गुरुओं के गुरु उन रामानन्दाचार्य जी को अपने पास आते हुए देखा जो गुरूपसत्ति करने की इच्छा कर रहे थे। जो मानव की विपत्ति को हरण करने की इच्छा कर रहे थे और जो सन्तों को प्रपत्ति का संस्कार देना चाह रहे थे।

तं पञ्चबाणेन न दूयमानं प्रपूर्यमाणं निजधर्मलक्ष्म्या।
अज्ञानबन्धेन न नह्यमानं क्रोधाग्निना वै न च दह्यमानम् ॥35॥

कामदेव के पाँचों बाणों से जो व्यथित नहीं हो रहे थे। अपनी स्वाभाविक धर्म-लक्ष्मी से जो पवित्र हो रहे थे, अज्ञान के बन्धन से जो नहीं बँध रहे थे और काम की अग्नि से भी जो नहीं जल रहे थे।

तापत्रयेणाऽपि न तप्यमानं न शप्यमानं गुरुभिर्गरिष्ठैः।
न लप्यमानं जनताऽपवादैः स दूरतो बालकमभ्यचष्ट ॥36॥

जो तीनों तापों से नहीं तप रहे थे और योगीन्द्र-मुनीन्द्र के द्वारा जिन्हें कोई शाप नहीं मिला था। जनता के अपवाद से जिनकी निन्दा नहीं की जा रही थी, ऐसे बालक को राघवानन्दाचार्य ने दूर से देखा।

यज्ञोपवीते प्रथमे च तन्तौ ओङ्कारमावाह्य विराजयन्तम्।
हरीशपाद्मान् सगुणाँस्तुरीयं तन्निर्गुणं चापि विभावयन्तम्॥37॥

रामानन्दाचार्य ने देखा कि यज्ञोपवीत के प्रथम तन्तु में ओङ्कार का आवाहन करके 'अ' से विष्णु 'उ' से शिव और 'म्' से ब्रह्मा का चिन्तन करते हुए और पुनः ओङ्कार को अखण्ड मानकर निर्गुण तत्त्व का विचार कर रहे हैं।

द्वितीयतन्तौ स्वमखोपवीते अग्निं समावाह्य समर्चयन्तम्।
आग्नेयभूतिं विलसद्विभूतिं रामस्य चाऽऽनन्दनिधौ ब्रुडन्तम्॥38॥

और यज्ञोपवीत के द्वितीय तन्तु में अग्नि का आवाहन करते हुए और स्वयं को भगवान् आग्नेय अर्थात् अग्नि के प्रदत्त पायस से प्रकट हुए भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की विभूति की भावना करते हुए रामानन्दाचार्य जी आनन्द-सागर में डूब रहे हैं।

यज्ञोपवीतस्य तृतीयतन्तौ सर्पान् समुत्पोथितकालसर्पान्।
मुदा समावाह्य समुल्लसन्तं सर्पेशसम्पूजितपादपद्मम्॥39॥

पुनः राघवानन्दाचार्य जी ने देखा आचार्य रामानन्द यज्ञोपवीत के तृतीयतन्तु में उन सर्पों का आवाहन कर रहे हैं जिन्होंने कालसर्प पर नियन्त्रण किया और शेषनाग के द्वारा जिनके चरण-कमल की पूजा की गई है। ऐसे श्रीरामचन्द्र जी ही श्रीरामानन्द के रूप में विराजमान हो रहे हैं। ऐसी राघवानन्दाचार्य की भावना हो रही है।

यज्ञोपवीतस्य चतुर्थतन्तौ सोमं समावाहयति स्म योगी।
सोमाऽऽननः सोमसमानशीलः सोमेन सम्पूजितपादपद्मः॥40॥

यज्ञोपवीत के चतुर्थ तन्तु में योगी रामानन्दाचार्य जी ने सोम अर्थात् चन्द्रमा का आवाहन किया। उनका मुख भी सौम्य-चन्द्रमा के समान है। उनका स्वभाव भी चन्द्रमा के समान है।

यज्ञोपवीतस्य च पञ्चमे वै तन्तौ पितृनाह्वयति स्म धीरः।
सुखेन संसारसमुद्रतो वै भक्तान् समातारयितुं महात्मा॥41॥

और यज्ञोपवीत के पञ्चम तन्तु में पित्रों का उन्होंने आवाहन किया क्योंकि उनको संसार-सागर से तारना था तथा अथवा उनका आशीर्वाद भी लेना था।

षष्ठे च तन्तौ सुमखोपवीते प्रजापतिञ्चैव पतिः प्रजानाम्।
प्रेम्णा समाह्वाय समर्हयन्तं प्रजापतिप्राप्तपरप्रमोदम्॥42॥

प्रजापति के द्वारा जिनको श्रेष्ठ आनन्द प्राप्त हुआ है ऐसे रामानन्दाचार्य जी यज्ञोपवीत के छठे तन्तु में प्रजापति का आवाहन कर रहे हैं।

पुनश्च तन्तौ किल सप्तमेऽसौ यज्ञोपवीतस्य समीरमीड्यम्।
पूज्यं समावाहयति स्म धीरः समीरपुत्रेडितदिव्यकीर्तिः॥43॥

जिनकी दिव्यकीर्ति को समीर-पुत्र अर्थात् हनुमान् जी गाते हैं, ऐसे रामानन्दाचार्य जी ने अपने उपवीत के सातवें तन्तु में वायुदेव का आवाहन किया।

तन्तौ तथैवाष्टम ईड्यकीर्तिः सूर्यं समावाहयितुं प्रयेते।
श्रीसूर्यवंशोद्भववंशजन्मा महानुभावो मधुरस्वभावः॥44॥

जिनका प्रभाव महान् है तथा स्वभाव मधुर है, ऐसे रामानन्दाचार्य जी ने यज्ञोपवीत के अष्टम तन्तु में सूर्य नारायण का आवाहन किया जो सूर्यवंश में जन्मे हुए श्रीराम के अवतार थे।

भूयश्च तन्तौ नवमे स विश्वेदेवान् समावाह्य निजोपवीते।
सन्तर्पयामास समस्तदेवान् विश्वेश्वरान् विश्वविशुद्धकीर्तिः॥45॥

जिनका यश विश्वकीर्ति है ऐसे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने यज्ञोपवीत के नौवें तन्तु में विश्वेदेव का आवाहन किया और धन्य कर दिया।

ग्रन्थिं विधातुः प्रथमां प्रयुज्य विधिर्विधेर्वेदवितानविज्ञः।
सम्पूजयामास मखोपवीतं विश्वानसौ विश्वविशुद्धकीर्तिः॥46॥

जिनकी विशुद्धकीर्ति विश्व में फैली है, ऐसे वेदविधान में विज्ञ ब्रह्माजी ने प्रथमग्रन्थि में समस्त देवताओं का आवाहन करके उसका तप्रण किया।

ग्रन्थिं विधातुः प्रथमां प्रयुज्य जग्रन्थ भावेन मखोपवीतम्।
ब्रह्मा स्वयम्भूः सह वैदिकैर्वै यत्रास्ति साक्षाद् विदधच्छुभानि॥47॥

फिर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने यज्ञोपवीत के प्रथम ग्रन्थि में ब्रह्मा जी का आवाहन किया। जो देवताओं के सहित शुभों का विधान करके प्रथम ग्रन्थि में वर्तमान हैं।

ग्रन्थिं पुनर्ग्रन्थयति स्म भूम्ना श्रीवत्सभाजा ननु विष्णुना वै।
दीक्षिष्यमाणो ननु विष्णुदीक्षां स वैष्णवीं विष्णुकृते रतात्मा ॥47॥

जिनका अन्तःकरण विष्णु में निरत है, ऐसे रामानन्दाचार्य जी ने अपने यज्ञोपवीत के द्वितीयग्रन्थि में श्रीवत्सलाञ्छन विष्णु का ही चिन्तन किया।

ग्रन्थिं तृतीयां परियुज्य धीरः श्रीशम्भुना वै मनुना शिवस्य।
एवं पवित्रेण पवित्रिताङ्गो गायत्रिमन्त्रेण बभूव भूमा ॥48॥

इस प्रकार से तृतीय ग्रन्थि में शङ्कर जी का आवाहन करके और ग्रन्थि को पूर्ण करके स्वयं को उन्होंने गायत्री मंत्र का जप करके पवित्र कर लिया।

यज्ञोपवीतं प्रवरानुसारि वदन्ति सर्वे श्रितकर्मकाण्डाः।
स्मृत्वा वसिष्ठं किल शक्तिमेव पाराशरं पावनजन्मनामा ॥49॥

इस प्रकार तीनों प्रवरों के द्वारा यज्ञोपवीत का धारण करना उचित कहा गया है, फिर रामानन्दाचार्य जी ने वशिष्ठ, शक्ति और पाराशर इन तीन प्रवरों से अपने को शुद्ध किया।

सोधीतवान् वाजसनेयशाखां माध्यन्दिनीं मध्यमसूर्यतेजाः।
चकाश ईषत्स्मितपङ्कजास्यः समुद्धरन् वैदिकलोकधर्मम् ॥50॥

इस प्रकार लोक-मर्यादा की रक्षा करते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी-माध्यान्दिनी शाखा का अभ्यास किया।

यज्ञोपवीती स शिखी महात्मा समुल्लसद्वैदिकगोत्रधर्मा।
रिरक्षिषुर्वैदिकगोत्रधर्मं चचार वीरव्रतमेव पुण्यम् ॥51॥

इस प्रकार शिखा-सूत्र धारण करके वैदिक गोत्रधर्ममय होकर उसकी रक्षा करने के लिए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने वीरव्रत अर्थात् अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया।

दुरासदं दुर्विषहं जनानां दुर्धर्षसत्त्वं दुरितापहारम्।
दीनानुकम्पानिरतं जनेशं प्रातस्तनं वा मुनिवर्य ऐच्छत् ॥52॥

आज राघवानन्दाचार्य ने देखा कि यह बालक तो प्रभावकालीन सूर्य है जो दुरासद है, और लोग उसे स्वीकार कर नहीं सकते। इसका सत्व दुर्धर्ष है और जो ये कहे सब कुछ अपूर्व होगा। इसलिए राघवाचार्य जी ने उस मर्यादाव्रती को ध्यान से देखा।

तं पादुकाभ्यां लसितं सितिम्ना प्रेम्णा चलन्तं जितराजहंसम्।
श्रीहंसवंशप्रथितप्रशंसं दुरासदं बालकमभ्यचष्ट ॥53॥

इस प्रकार से धीरे-धीरे अपनी चलती हुई चरण-पादुकाओं से सुशोभित अपने दाँतों की श्वेतिमा से हंसों को लज्जित करने वाले दुर्धर्ष, दृढ़व्रत रामानन्दाचार्य को राघवानन्दाचार्य जी ने निहारा।

तं चोपनीतं कलितोपवीतं विद्याविनीतं प्रभया परीतम्।
श्रीराघवानन्द उपांशु रामानन्दं शिशुं सुन्दरमभ्यचष्ट ॥54॥

इसके अनन्तर उपनयन संस्कार से सम्पन्न दिव्य यज्ञोपवीत धारण किए हुये विद्या से विनम्र, प्रभा से युक्त, अपनी किरणों को प्रसारित करते हुए शिशु रामानन्द को आचार्य राघवानन्द ने बड़े ही सस्पृह नेत्र से देखा।

सोऽभ्यर्णमागत्य कृताभिषेकस्तत्पादपङ्केरुहमक्षिवार्भिः।
सिषेच सिक्तः करुणाम्बुनाऽसौ गुरुं गरिम्णा जगतां गुरुर्वै ॥55॥

निकट जाकर रामानन्दाचार्य ने जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य के चरण-कमल का अपने नेत्र-जल से अभिषेक किया। जो स्वयं करुणा से अभिषिक्त थे, जिनमें गरिमा थी और जगत् के जो गुरु थे।

कृतप्रणामं नयनाभिरामं संसारबालैकललामभूतम्।
विप्रप्रसूतं कृपयाऽभिभूतं सोऽन्वग्रहीत् साधुवचोभिरज्ञः ॥56॥

इस प्रकार सारे संसार के नेत्रों को आनन्द देने वाले सम्पूर्ण संसार के बालकों के एकमात्र रत्न, ब्राह्मण-पुत्र जिन्होंने पहले ही राघवानन्दाचार्य को प्रणाम कर लिया था, उनको राघवानन्दाचार्य जी ने स्वीकार करते हुए अनुग्रहीत कर दिया।

उत्थाप्य बालं विभया विशालं सानन्दचित्तः किल सन्निधाप्य।
श्रीराघवानन्द उदारबुद्धिः पप्रच्छ तन्नाम तदीयधाम ॥57॥

इस प्रकार से बालक को उठाकर अपने निकट बैठाकर जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य जी ने उस बालक का नाम और धाम पूछा।

इति ब्रुवाणं यतिशेखरं तमुवाच बालो वचनं मनोज्ञम्।
निरीक्ष्यमाणो नयनाम्बुजाभ्यां सारङ्ग ईड्यं च यथाम्बुवाहम्॥58॥

इस प्रकार बोलते हुए जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य से आज रामानन्दाचार्य जी उत्तर देने के लिए उसी प्रकार निहारने लगे जैसे स्वाति के मेघ को चातक निहारता है।

जिज्ञासमानो मम नाम धाम प्रभुश्च पप्रच्छ यदार्यवृत्तः।
तत्ते प्रवक्ष्यामि यथार्थभूतं नाघाय लब्धक्षणमौखरी वै॥59॥

प्रभो! मेरे नाम और धाम की जिज्ञासा करते हुए जो आपने मुझसे पूछा है, अब मैं आपको बताना चाह रहा हूँ, क्योंकि उचित अवसर पर प्रयुक्त की हुई मुखुरता भी पाप के लिए नहीं होती।

अहं प्रयागे कृतभूरिभागे वसिष्ठवंशोद्भवविप्रजन्मा।
सुशीलया सञ्जनितः पिता मे श्रीपुण्यसद्माऽभिधधीरशर्मा॥60॥

मैं तीर्थराज प्रयाग में एक ब्राह्मण के यहाँ जन्मा हूँ, मेरी माँ सुशीला एवं पिता पुण्यसदन शर्मा हैं।

जिज्ञासमानो ननु नित्यतत्त्वं त्वत्पादपद्मं शरणागतोऽस्मि।
न चाप्यते नित्यमनित्यजातैस्ततस्तु मां साधि कृपानिकेत॥61॥

मैं श्रीरामतत्त्व की जिज्ञासा करने के लिए आपकी शरण में आया हूँ और मैं यह जानता भी हूँ कि अनित्य वस्तु से नित्य वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए आप अब मुझे नित्य तत्त्व का उपदेश कीजिए।

इति ब्रुवन्तं बृहतां बृहन्तं सब्राह्मणत्वं तमदीनसत्त्वम्।
प्रीतः प्रशंसन् वचसाऽनुशंसन् श्रीराघवानन्द इलामुवाच॥62॥

इस प्रकार देवताओं के भी देवता ब्राह्मण भाव से सम्पन्न अदीनसत्त्व, प्रसन्नचित्त श्रीरामानन्दाचार्य जी को बोलते हुए देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी प्रशंसा करते हुए

वाणी से उनकी अनुशंसा करते हुए श्रीराघवानन्दाचार्य जी ने अपना व्याख्यान प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया।

ज्ञातोऽसि मे तीव्रसमाधियोगाच्छ्रीपुण्यगेहस्य गृहेऽवतीर्णः।
साक्षाद् भवान् ब्राह्मणरूपधारी सत्काण्डधारी च खगः खरारिः ॥63॥

प्रभो! मैं जान गया कि ब्राह्मण रूप धारण करके धनुष-बाण धारण करने वाले खर के शत्रु आप श्रीराम जी पुण्यसदन शर्मा जी के यहाँ अवतार ले चुके हैं।

दातुं सुखं ब्राह्मणवैष्णवेभ्यस्त्रातुं च हिन्दुं जनतां भयेभ्यः।
हर्तुं भुवो भारमदभ्रवीर्यस्त्वं नः पुरो भासि पुरारिपूज्यः ॥64॥

हे शङ्कर भगवान् के पूज्य आप ब्राह्मण-वैष्णवों को सुख देने के लिए, हिन्दू जनता को भय से बचाने के लिए, साक्षात् भगवान् राम ही हमारे समक्ष सुशोभित हो रहे हैं।

वसिष्ठ एवेह समभ्यभूवं त्वां दीक्षितुं शिक्षितुमेव भूयः।
त्वद्वक्त्रपद्मं परितः परीक्ष्य स्वं नेत्रयुग्मं सफलीकरिष्ये ॥65॥

आपको दीक्षा देने के लिए और आपको शिक्षा देने के लिए मैं वशिष्ठ ही इस समय राघवानन्दाचार्य के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। आपके मुख-कमल को चारों ओर से निहारकर अपने दोनों नेत्रों को सफल करूँगा।

एह्येहि हे! दीनजनैकनाथ एह्येहि हे! शीलसुखैकसिन्धो।
एह्येहि हे! आर्तजनैकबन्धो एह्येहि हे! मानववंशकेतो ॥66॥

हे दीनजनों के एकमात्र नाथ! आइए! आइए! शील और सुख के सागर आइए! आइए! हे आर्तजनों के एकमात्र बन्धु आइए! हे मानव वंश के केतु आइए, आइए।

त्वां पञ्चसंस्कारयुतं विधाय दत्त्वा त्रिदण्डं खलदण्डनाय।
सन्यासयंस्त्वां द्विजकञ्जभानो धन्यं करिष्यामि निजं कृपालो ॥67॥

प्रभो! आपको पञ्चसंस्कार सम्पन्न करके, खलों को दण्ड देने वाले आपको त्रिदण्ड देकर आपको संन्यास की दीक्षा देकर के, मैं अपने अन्तःकरण को धन्य कर लूँगा।

मिथ्यापरीक्षाहृतजीविताशा पाश्चात्यवर्गैः कृतभूरिहासा।
विशीर्णवासा विलसन्निराशा साम्रेडमारोदिति देवभाषा ॥68॥

इस झूठी परीक्षा से जिसके जीवन की आशा समाप्त हो गयी है, पाश्चात्य वर्गों ने जिसकी बहुत हँसी उड़ाई है। जिसके वस्त्र चीथड़े-चीथड़े हो गए हैं, जहाँ निराशा ही निराशा है ऐसी देवभाषा संस्कृतभाषा बार-बार चिल्ला-चिल्लाकर रो रही है।

जङ्घन्यमाना नितरां हि गावो बम्भण्यमानाः श्रुतयः कुवाक्यैः।
दन्दह्यमाना द्विजवंशमिश्रास्त्वामेव सम्प्रत्यरणं प्रपन्नाः॥69॥

हे प्रभो! गौए आज बार-बार काटी जा रही हैं, श्रुतियों का अपमान किया जा रहा है। इस प्रकार ब्राह्मण भी आज भयभीत हो रहे हैं। तीनों तापों से तपकर सब के सब इस समय आपकी शरण में आये हैं।

परस्परं सङ्घटिता न चैते बाबाध्यमानाः किल हिन्दवस्ते।
मिथोविरोधेन विदह्यमाना मुमुर्षवो वेणुजवह्निनेव॥70॥

ये आपके हिन्दुजन भी परस्पर सङ्गठित नहीं हैं, एक-दूसरे से विरोध करके कट-मर रहे हैं। उसी प्रकार इनकी स्थिति है जैसे वन में स्वयं रगड़-रगड़कर अग्नि को उत्पन्न कर बांस उसी अग्नि में जल जाता है।

अतो भवन्तं निजनायकत्वे वृणीमहे पौरुषकर्मदक्षम्।
वृणीमहे स्वां विपदं दुरन्तं त्रायस्व हे नाथ जनाधिनाथ॥71॥

इसीलिए तो हम अपने नायक के रूप में आपका वरण करना चाहते हैं। हे प्रभो! अब हम आपका अपने नायक के रूप में वरण कर रहे हैं, आप समर्थ हैं, हमारी रक्षा कर लीजिए।

श्रीपञ्चमी चाद्य निरस्तपापा पुण्यातिथिर्मण्डितमाघमासा।
अद्यैव संस्कृत्य मुदा भवन्तं मोदिष्यते मे सुमनोऽप्रमेय॥72॥

आज ही श्रीपञ्चमी है जो माघ मास को पवित्र कर रही है हे। प्रमाणातीत! आज ही आपको पञ्चसंस्कार से सम्पन्न करके मेरा मन प्रसन्न हो जाएगा।

वेदोर्मिलोकाम्बरवैक्रमाब्दे श्रीपञ्चमी पञ्चमप्राप्तियोग्या।
सन्माघमासा विगलद्दुराशा त्वदीयदीक्षार्थमियं निदिष्टा॥73॥

हे प्रभु! ये भगवान् का निर्देश है। आज है विक्रमी संवत् 1364 श्रीपञ्चमी, माघ, महीना, यही आपकी दीक्षा के लिए निर्दिष्ट हो रही है।

श्रीपञ्चमी मण्डितमाघमासा विराजमाना रविणा दिनेन।
वेदोर्मिलोकाम्बरवैक्रमाब्दे मुहूर्तमेतद् विहितं त्वदर्थे ॥74॥

आपके लिए यही मुहूर्त है। आज है श्री पञ्चमी, माघ का महीना, रविवार, विक्रमी संवत् 1364।

तमित्युपामन्त्र्य स मन्त्रवेत्ता विधेः सुतो वैदिकमन्त्रचुञ्चुः।
संस्कारयामास सुखेन रामानन्दं स नन्दन् द्विजराजराजः ॥75॥

इस प्रकार से उपामन्त्रित करके मन्त्रवेत्ता वैदिक कार्य में दक्ष, श्री राघवानन्दाचार्य जी ने प्रसन्न होकर रामानन्दाचार्य जी को पञ्चसंस्कारों से संस्कृत किया।

पुण्ड्रं च मुद्रां तुलसीसुमालां मन्त्रं तथा नाम इमानि पञ्च।
तदर्थमभ्याचरितानि सम्यक् श्रीराघवानन्दमहानुभावैः ॥76॥

इस प्रकार से राघवानन्दाचार्य जी के द्वारा पुण्ड्र, मुद्रा, माला, मन्त्रदान और गोत्र ये पञ्चसंस्कार किये गये।

अथ द्विजो द्वादशनामधेयैः सम्पुण्ड्रयामास तमेव पुण्ड्रैः।
रविं यथा द्वादशभिः कलाभिः प्रजापतिः संस्कृतवान् पुरार्कम् ॥77॥

इस प्रकार से राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी को बाहर ऊर्ध्वपुण्ड्रों से इस प्रकार सजाया जिस प्रकार भगवान् प्रजापति कश्यप ने सूर्यनारायण को बारह कलाओं से सजाया था।

ललाटमारभ्य च पृष्ठभागं गृणन् सुनामानि रथाङ्गपाणेः।
सानन्दचित्तं तिलकं चकार तस्याऽङ्गदेशेष्वविसंज्ञकेषु ॥78॥

इस प्रकार मस्तक से लेके पृष्ठभाग पर्यन्त रामानन्दाचार्य के बारह अङ्गों में भगवान् का नाम लेते हुए राघवानन्दाचार्य जी ने तिलक किया। अर्थात् ललाट पर केशव का नाम लिया उस पर नारायण का, वक्षस्थल पर माधव का, कण्ठ पर गोविन्द का, विष्णु का दक्षिण कुक्षि में, मधुसूदन का दक्षिण बाहु में, त्रिविक्रम का दक्षिण कन्धरा में, वामन का वामपार्श्व में, श्रीधर का वामबाहु में हषिकेश का वामकन्धरा में और पद्मनाभ का पृष्ठभाग में तथा दामोदर का कटिप्रदेश में।

केशानवन्तं वनितासतीनां केश्याख्यरक्षोहतवन्तमेव।
ध्यायन् द्विजः केशवमेव रामं बालं तदीयं तिलकाम्बभूव॥79॥

भारतीय नारियों के केशों की रक्षा करने वाले, केशी नामक राक्षस का वध करने वाले, ऐसे सुन्दर केश वाले भगवान् श्रीराम का ध्यान करते हुए राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी के ललाट पर प्रथम ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक किया। ॐ केशवाय नमः।

ध्यायंश्च नारायणमेव रामं यच्चाऽयनं नारसुमञ्जुवाराम्।
प्रेम्णा प्रसन्नो द्विजराजराजस्तस्योदरं सत्तिलकं चकार॥80॥

राघवानन्दाचार्य जी ने भगवान् राम के नारायण नाम का ध्यान किया वे ही सबकी गति हैं। और नारायण नाम का ध्यान करते हुए रामानन्दाचार्य जी के उदर पर द्वितीय तिलक किया, ॐ नारायणाय नमः!

वक्षःस्थले तस्य तथोर्ध्वपुण्ड्रं चकार विप्रो विधिवत्तृतीयम्।
ध्यायन् मुहुर्माधवमेव साक्षान्मायाधवं तं मधुमासजातम्॥81॥

अर्थात् भगवान् के वक्षःस्थल पर तृतीय तिलक का विधान करते हुए राघवानन्दाचार्य जी ने माधव का ध्यान किया क्योंकि भगवान् राम मधुमास में जन्म लिये हैं एवं माया लक्ष्मीजी तथा सीताजी दोनों के पति हैं।

तूर्यं पुनः कण्ठसुकूबरे च विप्रो विवेकी तिलकं चकार।
गोविन्दमाध्यायति चारुचित्ते विन्दं गवां विन्दमिमं गवां च॥82॥

अब रामानन्दाचार्य जी के कण्ठकूबर में गोविन्द का नाम लेकर विवेकी राघवानन्दाचार्य जी ने चतुर्थ तिलक किया। उनका चित्त उन गोविन्द भगवान् राम का ध्यान कर रहा था जो गौओं के स्वामी और इन्द्रियों के भी स्वामी हैं।

तद्बाहुमूले किल दक्षिणे वै स पञ्चमं सत्तिलकं चकार।
विष्णुं विविक्ते परिचिन्तयन् स व्याप्तं त्रिलोक्यां निजतेजसैव॥83॥

इसके अनन्तर राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य के दक्षिण बाहु में तिलक किया और भगवान् के उस व्यापक स्वरूप का ध्यान करते हुए प्रसन्न हुए।

पुनश्च तद्दक्षिणकुक्षिभागे विप्रो विवेकी तिलकं चकार।
ध्यायन् सुभक्त्या मधुसूदनं वै यो वै मधुं सूदितवान् स्वकेल्या॥84॥

जिन भगवान् ने खेल-खेल में मधु को मार डाला ऐसे भगवान् का ध्यान करते हुए राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य के दक्षिण कुक्षि में छठाँ तिलक किया।

त्रिविक्रमं दक्षिणकन्धरायां तस्याऽऽशु चक्रे तिलकं महात्मा।
यो वै त्रिभिः पादसरोजलक्ष्मीक्रमैस्त्रिलोकीं सुवशीचकार॥85॥

इसके पश्चात् राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी की दक्षिण कन्धरा में भगवान् का त्रिविक्रम नाम लेकर तिलक किया। जो त्रिविक्रम अपने चरणकमल से सारे संसार को व्याप्त किये थे।

स वामनं चेतसि सङ्कलय्य संचिन्तयन् सत्तिलकं चकार।
तस्याऽष्टमं वामसुपार्श्वके वै यो वामनोद्धा वलिमाबबन्ध॥86॥

इसके अनन्तर वामन का नाम लेकर राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी के वामपार्श्व में अष्टम तिलक किया। जिन भगवान् वामन ने बलि को बाँध लिया था।

स श्रीधरं वामक एव बाहौ तस्य प्रसन्नस्तिलकं चकार।
यो वै धरत्येव सदा स्ववत्से श्रियं प्रसन्नामनपायनीं च॥87॥

राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी के बामबाहु में श्रीधर नाम का जप करते हुए तिलक किया। जिन श्रीजी को भगवान् अपने वक्ष पर धारण किया करते हैं।

तस्यापि वामा किल कन्धरा वै चक्रे मनोज्ञा तिलकेन भव्या।
श्रीमद्धृषिकेशपदाब्जयुग्मं मुहुर्मुहुः संस्मरता द्विजेन॥88॥

हृषिकेश के चरणकमल का बार-बार चिन्तन करते हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ राघवानन्दाचार्य ने रामानन्दाचार्य जी के वाम कन्धरा पर दशम तिलक किया।

अनन्तरं तस्य तु पृष्ठभाग एकादशं वै तिलकं चकार।
स्मृत्वा द्विजो वै किल पद्मनाभं श्रीमत्सुशीलातनयस्य जिष्णोः॥89॥

इनके अनन्तर भगवान् पद्मनाथ का स्मरण करके राघवानन्दाचार्य जी ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के पृष्ठभाग पर तिलक किया।

दामोदरं चाऽध्यधिकद्यमोघं नाम स्मरन् सत्तिलकञ्चकार।
येनैव दामानि च सेवकानां निजोदरे चक्रिर एव नूनम्॥90॥

इसके अनन्तर कटि प्रदेश में दामोदर का नाम लेकर के राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी का बारहवां तिलक सम्पन्न किया। जिन भगवान् ने अपने भक्तों के लिए संसार के सभी बन्धनों को अपने पेट में विलीन कर लिया था।

इत्थं द्विजो द्वादशभिश्च पुण्ड्रैः सम्मण्डयामास सुशिष्यमीड्यम्।
यथा रविं द्वादशभिः कलाभिः कं कश्यपः सम्मृडयाम्बभूव ॥91॥

इस प्रकार राघवानन्दाचार्य जी ने बालक रामानन्दाचार्य को उसी प्रकार बारह तिलक कर दिया जिस प्रकार कश्यप ने सूर्य नारायण को द्वादश कलाओं से अलङ्कृत किया था।

तस्य द्विजो दक्षिणबाहुमूले रामस्य बाणस्य चकार मुद्राम्।
तद्वामबाहौ ननु चापमुद्रामियं द्वितीया ननु संस्कृतिर्वै ॥92॥

इसके अनन्तर राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी के दक्षिण बाहु मूल में राम जी की बाणमुद्रा बनायी और वामबाहु में धनुष की मुद्रा बनायी। यही विरक्तों का द्वितीय संस्कार है।

पुनश्च मालां विमलां विशालां समुल्लसन्तीं मणिभिस्तुलस्याः।
ददौ स कण्ठीं गलमध्यकेऽस्य तृतीयसंस्कारमिदं वदन्ति ॥93॥

इसके अनन्तर राघवानन्दाचार्य जी ने रामानन्दाचार्य जी को सुन्दर तुलसी की मणिका से युक्त कण्ठी पहनायी जिसको तृतीय संस्कार कहा जाता है।

तस्य श्रुतौ राममनूनुदारान् स दक्षिणस्यां प्रददौ मुदा त्रीन्।
यैरञ्जसा वैष्णवचक्रवर्ती शशास भूत्वा जगतीं स बालः ॥94॥

इसके अनन्तर राघवानन्दाचार्य जी ने बालक के दक्षिण कान में तीन राममन्त्र सुनाये जिससे वे वैष्णवचक्रवर्ती होकर समस्त लोकों में शासक हो गये।

षडक्षरं द्वादशवर्णमात्रं दृग्लोकवर्णं ननु मन्त्रमीड्यम्।
ददौ स विद्वान् प्रणताय तस्मै शिष्याय सेवाव्रतनिष्ठकाय ॥95॥

इसके अनन्तर राघवानन्दाचार्य जी ने षडक्षर राममन्त्र, द्वादशाक्षर सीतारामन्त्र और बत्तीस अक्षर वाला 'सकृदेव प्रपन्नाय....' यह चरममन्त्र सेवा में लगे हुए विनीत शिष्य रामानन्दाचार्य जी को दे दिया।

स पञ्चमीं संस्कृतिमेव चक्रे बालस्य गोत्रं ननु नाम दिव्यम्।
यं पञ्चमं चापि मनन्ति भव्याः संस्कारमीड्यं सुविशुद्धतायै ॥96॥

इसके पश्चात् बालक का पञ्चम संस्कार करने के लिए राघवानन्दाचार्य जी ने जगद्गुरु के गोत्र और नाम की चर्चा की।

जन्म द्वितीयं तव वत्स चाद्य रामस्य नूनं कृपयैव जातम्।
अतस्तवाऽद्याऽच्युतमेव गोत्रं नामापि दिव्यं गदतः शृणु त्वम् ॥97॥

हे वत्स! आज भगवान् राम की कृपा से तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ इसलिए अब आज से तुम्हारा अच्युत गोत्र हो गया, अब नाम का भी रहस्य सुनो।

रामे तवानन्द इहाऽस्य नित्यं कामे न कश्चित् भगवान् कदापि।
अद्य प्रभृत्येव सदासि रामानन्दो न चान्यत्तव नाम किञ्चित् ॥98॥

चूँकि वत्स! तुम्हारा आनन्द निरन्तर राम में रहता है। तुम काम में कभी आनन्द नहीं लेते। इसलिए आज से तुम्हारा वही रामानन्दाचार्य नाम होगा कामपरक, कोई नाम हो ही नहीं सकेगा।

सप्तर्षिपूजां किल कारयित्वा शिखां प्ररक्षन् सहयज्ञसूत्रम्।
ददौ त्रिदण्डं सविधानमीड्यं तस्मै महावैदिकचक्रवर्ती ॥99॥

इस प्रकार से रामानन्दाचार्य जी की शिखा की रक्षा करते हुए, जनेऊ को न छेड़ते हुए उनसे सप्तर्षि की पूजा कराकर जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य जी ने उन्हें त्रिदण्ड किया।

जगाद भूयो घनधीरवाण्यां श्रीराघवानन्द उदारकीर्तिः।
रहस्यमेकं शृणु वत्सवर्य दिव्यं त्रिदण्डस्य विनाशिताऽघम् ॥100॥

फिर मेघतुल्य वाणी में राघवानन्दाचार्य जी ने कहा, हे यतिराज! इस त्रिदण्ड का अब रहस्य सुनो।

त्रीण्येव दण्डानि चकाशतीह नाम्नि त्रिदण्डे जनपापखण्डे।
पाखण्डखण्डे परमप्रचण्डे कुनास्तिकानां हतशान्तिदण्डे ॥101॥

इसमें तीन दण्ड विराजते हैं, जो सम्पूर्ण पापों का नाश करते है एवं पाखण्ड का खण्डन करते हैं और जो स्वभाव से परम प्रचण्ड हैं, जो नास्तिकों की शान्ति को भी दण्डित कर देते हैं।

श्रुतिं स्मृतिं चापि पुराणरत्नमे एतत्त्रिदण्डं प्रवदन्ति सन्तः।
इमानि येनाधिगतानि सम्यक् स वै त्रिदण्डी कथितस्त्रिलोक्याम्॥102॥

श्रुति, स्मृति और पुराण ये ही त्रिदण्ड हैं। ये जिसके पास रहते हैं उसी को त्रिलोकी में त्रिदण्डी कहा जाता है।

वाग्दण्डमेवाऽथ मनोऽपि दण्डं सुकायदण्डं प्रवदन्ति सन्तः।
अमूनि येनैव धिया धृतानि स वै त्रिदण्डी कथितस्त्रिलोक्याम्॥103॥

वाणी, मन और शरीर ये ही तीन दण्ड सन्तों के द्वारा कहे गये हैं। ये जिसके द्वारा बुद्धि से धारण किये गये हैं, उसी को त्रिदण्डी कहते हैं।

श्रीवंशदण्डे ननु रामचन्द्रः पलाशदण्डे किल लक्ष्मणोऽसौ।
सुबिल्वदण्डे विचकास्ति सीता तद् वै त्रिदण्डं त्रिसुराऽवतारम्॥104॥

इसके वंश दण्ड में भगवान् राम का निवास होता है, ढाक के दण्ड में लक्ष्मण जी का और बिल्व दण्ड में सीताजी का निवास होता है।

यो वै समाश्रित्य मुदा विशिष्टाद्वैतं लिखत्येष सुसंस्कृतेन।
भाष्यत्रयं सर्वपदार्थभव्यं स वै त्रिदण्डी कथितस्त्रिलोक्याम्॥105॥

जो व्यक्ति विशिष्टाद्वैत का आश्रय लेकर तीन भाष्य लिखता है, अर्थात् गीता-भाष्य, उपनिषद-भाष्य और ब्रह्मसूत्र-भाष्य उसी को त्रिदण्डी कहा जाता है।

त्वं मद् गृहीत्वा विधिवत्त्रिदण्डं भूत्वा त्रिदण्डीश्वरपूजिताङ्घ्रिः।
रामद्रुहो हिन्दुविरोधिनश्च राष्ट्रद्रुहो दण्डय तीक्ष्णदण्डैः॥106॥

हे रामानन्दाचार्य! तुम मुझसे विधिवत् त्रिदण्ड लेकर त्रिदण्डीश्वरों के भी पूज्यचरण बनकर रामद्रोही हिन्दुत्व द्रोही एवं राष्ट्रद्रोहियों को तीक्ष्णदण्डों से दण्डित करो।

हिन्दुत्वरक्षणविचक्षणतीव्रदण्डं धर्मद्विषां प्रबलतर्जनचण्डदण्डम्।
नास्तिक्यवादवरुणालयमन्थदण्डं श्रीराघवीयसुयतेर्जयतात् त्रिदण्डम्॥107॥

हिन्दुत्व की अवधारणा के रक्षण में कुशल तीव्र दण्डस्वरूप, धर्म द्वेषियों के लिए उन्हें भयभीत करने के लिए चण्ड दण्डस्वरूप, नास्तिक्यवाद रूप महासागर को मथने के लिए

मन्दराचल के समान, श्रीराघवानन्दाचार्य के ऐसे शिष्य जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य जी के त्रिदण्ड की जय हो।

गन्धर्वयक्षसुरकिन्नरनागलोकयोगीन्द्रसिद्धमुनिचारणसेव्यमाने।
श्रीविश्वनाथमहिते जयतां सदैव श्रीराघवीयपदपङ्कजपादुके हे॥108॥

योगीन्द्र, सिद्ध, किन्नर, विद्याधर, मुनीन्द्र आदि के द्वारा सेवित शङ्कर जी की दिव्य जटा से प्रणत राघवानन्दाचार्य जी के शिष्य रामानन्दाचार्य जी की दिव्य पादुकाएं निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त करती रहें।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं पञ्चमो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्य 'गिरिधर' कवि द्वारा रचित श्री रामानन्दाचार्यचरित नामक महाकाव्य में यह पाँचवा सर्ग वैष्णवजनों के कल्याण के लिए हो।

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यगिरिधरमहाकवि- रामभद्राचार्यविरचिते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये पञ्चमः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ षष्ठः सर्गः॥

लब्धत्रिदण्डं विरजँश्च रामानन्दं स्वचन्दं जनतैकनन्दम्।
सत्पञ्चसंस्कारमुपोपविष्टं तं राघवानन्दगुरुर्जगाद॥01॥

इस प्रकार स्वयं राघवानन्दाचार्य जी से ही त्रिदण्ड प्राप्त किए हुए, अपनो को आनन्द देने वाले, पाँचों संस्कारों से सम्पन्न, अपने ही पास विराजमान, रजोगुणरहित, रामानन्दाचार्य जी से राघवानन्दाचार्य जी बोले–

ज्ञातोऽसि मे त्वं भगवान् खरारिः श्रीपुण्यगेहस्य गृहेऽवतीर्णः।
संसारसिन्धोः परिपातुकामो जीवान् विषिण्वन्नसि भक्तिसेतुम् ॥02॥

मैंने आपको जान लिया है कि आप भगवान् राम ने ही संसार–सागर से जीवों को तारने के लिए, विचित्र जरा–मरणरहित सेतु का निर्माण करने के लिए, श्रीपुण्यसदन शर्मा के घर में अवतार ले लिया है।

रामावतारो जनरक्षणार्थं विप्रावतारो नरदीक्षणार्थम्।
ततो द्वयो रक्षणकाम एष गृहेऽवतीर्णोऽसि मम प्रयागे॥03॥

हे भगवन्! रामावतार लोगों की शिक्षा के लिए है और यह रामानन्दावतार मनुष्यों की दीक्षा के लिए है इसलिए दोनों की रक्षा हेतु आप रामानन्द की भूमिका में आ गए हैं।

ततो भवान् वैदिकधर्मसेतुं रक्षन्नधीष्वाऽखिलधर्मशास्त्रम्।
अहं वसिष्ठस्य च भूमिकायामध्यापयंस्त्वां भविताऽस्मि भद्रः॥04॥

वैदिक सेतु की रक्षा करने के लिए आप रामानन्दाचार्य भगवान् अब धर्मशास्त्र का अध्ययन कीजिए और मैं भी वशिष्ठ की भूमिका में रहते हुए आपको धर्मशास्त्रों का अध्ययन कराकर कल्याणवान् बन जाऊँगा।

अधीष्व साङ्गान् चतुरोऽपि वेदान् मत्तः स्मृतीर्लोकपविष्णुसंज्ञाः।
पुराणरत्नानि च गौतमीयां सधर्मशास्त्रं किल वाक्ययुग्मम्॥05॥

अब अङ्गों सहित चारों वेदों को, अठारह स्मृतियों को, धर्मशास्त्र के सहित गौतमी विद्या न्याय को और दोनों वाक्य अर्थात् पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा को विधिवत् मुझसे पढ़ लो।

अधीष्व शिक्षामथ कल्पमेव नैरुक्तिकं ज्यौतिषिकं तथैव।
छन्दोमयं व्याकरणं च शास्त्रमधीष्व मत्तोऽपि भवन्नमत्तः॥06॥

प्रमादरहित होकर तुम शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्यौतिष, छन्द, व्याकरण और वेद इन सब को मुझसे अध्ययन कर लो।

विद्ये उभे ये मुनिभिः प्रगीते पराऽपरा चेति नितान्तगुह्ये।
अधीष्व ते मत्त उदात्तचित्तः संसारजीवानवितुं पिपासून्॥07॥

संसार-सागर से जीवों की रक्षा करने के लिए जो दो विद्याएँ कही गयी हैं परा और अपरा उन दोनों को ही तुम मुझसे पढ़ लो।

पदं च वाक्ये च प्रमाणकानि वेदा षडङ्गाः सरहस्यसूत्राः।
पुराणपूगं किल धर्मशास्त्रं न्यायं तथा मञ्जुलजैमिनीया॥08॥

पद, वाक्य, प्रमाण, अङ्गों सहित चारों वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, गौतमीय सूत्र

विद्याऽपरेयं निगमेन गीता वेदप्रणीता हृदये सुनीता।
महानुभावैर्विमलप्रभावैर्ज्ञात्वा मृतान् मोक्ष्यस एव शीघ्रम्॥09॥

इस प्रकार मुनियों के द्वारा दो विद्याओं में अपरा विद्या गायी गयी और महानुभावों द्वारा अपने हृदय में बिठायी गयी ये अपर विद्या हैं। इसे जानकर तुम मृत्यु धर्म से मुक्त हो जाओगे।

इतः परां यां मुनयो वदन्ति विद्यामनिन्द्यां श्रुतिभिः प्रवन्द्याम्।
यां चैव दिव्योपनिषत्सु क्लृप्तां ध्यात्वा मृतान् मोक्ष्यसि नष्टबन्धः॥10॥

इससे अतिरिक्त परा विद्या का वर्णन है जो निन्दारहित वेदों द्वारा वन्दनीय है तथा जो उपनिषदों में सिद्धान्ततः कही गयी है। जिसका ध्यान करके तुम बन्धनों को नष्ट करके मुक्त हो जाओगे।

विलक्षणेतो मणिवनिषण्णा शिरस्सु सर्वोपरि सत्सतीनाम्।
सङ्गीयमाना सुमहर्षिवर्यैर्गतत्रिवर्गैः कलिताऽपवर्गैः ॥11॥

हे रामानन्द! इस अपरा विद्या से भी विलक्षण है परा विद्या। जो श्रेष्ठ उपनिषदों के शिरोभाग पर विराजती है। जो उन महर्षियों द्वारा गयी जा रही है जिन्होंने अर्थ, धर्म और काम का तो त्याग ही कर दिया है और जिन्हें मोक्ष प्राप्त है।

अध्यात्मविद्यां निगदन्ति चैनां परां गदन्त्येव महानुभावाः।
तां ब्रह्मविद्यां च मनन्ति केचिद् वेदान्तविद्यामिति केचिदाहुः ॥12॥

इसी विद्या को कुछ लोग अध्यात्मविद्या कहते हैं, कुछ लोग इसे ही परा विद्या कहते हैं, कुछ लोग इसे ब्रह्मविद्या मानते हैं और कुछ लोग इसे वेदान्त विद्या के नाम से जानते हैं।

परां च विद्यां श्रृणु वै त्रिदण्डिन् सङ्कथ्यमानां ननु युक्तियुक्तम्।
यां श्रद्धया संश्रृणुतो जनस्य विमुच्यते भीषणकर्मबन्धः ॥13॥

हे त्रिदण्डिन्! मुझसे उस परा विद्या को सुनो जिसे मैं युक्तियुक्त शास्त्रीय तर्कों के आधार पर सुना रहा हूँ जिसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हुए जिज्ञासुजन के भयङ्कर कर्मबन्धन स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं।

ज्ञेया परा सा ननु वत्स विद्या ययाऽनुभूयेत पुमान् परात्मा।
श्रीरामचन्द्रो हरिरादिदेवो गूढं परब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥14॥

हे वत्स! यहाँ उसी को परा विद्या समझनी चाहिए। जिसके द्वारा मनुष्य शरीर धारण करके छिपे हुए परब्रह्म परमात्मा भगवान् राम के दर्शन हो जाते हैं।

प्रत्यक्षतो वाप्यनुमानतो वा यं शब्दतो ज्ञातुमथो यतन्ते।
यस्मिन् समाचुम्बति वर्त्मदृष्टेर्न कल्पतेऽयं परिवर्त उग्रः ॥15॥

हे वत्स! जिस ब्रह्म को लोग प्रत्यक्ष द्वारा अनुमान द्वारा या शब्द द्वारा जानते हैं और जब वह हमारे दृष्टिपथ पर आ जाता है तो यह संसार का उग्रबन्धन समाप्त हो जाता है।

प्राहुश्च केचिद्ध्यनुभूतिगम्यं केचिच्च सम्भूतिमथो वदन्ति।
वयं तु निश्चिन्म इदं प्रतीत्य सम्पीयतेऽयं ननु चाऽक्षिभृङ्गैः ॥16॥

कुछ लोग इस ब्रह्म को अनुभूति का विषय मानते हैं। कुछ लोग संभूति कहते है। मैं तो विश्वास करके कह रहा हूँ भगवान् को नेत्ररूप भ्रमरों द्वारा पिया जा सकता है। आज भी भगवान् के दर्शन होते हैं।

आयोध्यका वै व्रजवासिनो वै गूढं परब्रह्म नरावतारम्।
संप्राप्य सार्धं च मुदा विजह्रुः शङ्का न कार्या हरिलब्धिपक्षे ॥17॥

देखिए भगवान् की प्राप्ति के पक्ष में कोई शङ्का नहीं करनी चाहिए श्रीअयोध्यावासी श्रीब्रजवासी अनेक ऐसे भक्तों ने भगवान् को प्राप्त करके उनके साथ विहार किया।

अद्यापि नूनं विकरालकाले कलौ नवीनाम्बुदकम्रकान्तिः।
खेलत्यसौ धूलिविधूसराङ्गो भक्तैः समं क्रीडति मन्दहासः ॥18॥

आज भी इस कराल–कलिकाल में भगवान् धूलिधूसरित होकर खेलते हैं, भक्तों के साथ मुस्कुराकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

आरूढमेतत् कथयन्ति केचिद् वृत्तिं न कात्स्न्र्येन विमूढभावाः।
वयं प्रवृत्तावपि मन्यमानाः पिबाम तत्पादसरोजसोमम् ॥19॥

कुछ लोग कहते है कि ब्रह्म वृत्ति में आरोपित होता है जो मूर्ख हैं, हम तो आज भी डंके की चोट पर कह रहे हैं कि भगवान् हमारी प्रवृत्ति में आते है और हम उनके चरणकमल का प्रेमामृत पी सकते हैं।

केचित् प्रजल्पन्ति विचारजल्पं तं निर्गुणं निष्कलमप्रमेयम्।
प्रत्येम्यहं वै व्यवहारलभ्यं हरिर्हि नूनं जनभाववस्यः ॥20॥

कुछ लोग भगवान् को विचारसाध्य मानते हैं, मानने दीजिए। मैं तो भगवान् को व्यवहार में भी प्राप्य मानता हूँ क्योंकि भगवान् भावगम्य हैं।

यं यं हि भावं मनसाश्रयन्तो भक्तानुसेवन्त इहैकबुद्ध्या।
तं तं समापूरयितुं मुकुन्दः प्रयाति दृग्गोचरतां जनानाम् ॥21॥

भक्त जिस–जिस भाव को मन का आश्रय करके भगवान् के साथ खेलने का मन बनाते हैं और भगवान् का चिन्तन करते हैं, भगवान् उसी–उसी भाव को पूर्ण करने के लिए आ जाते हैं।

नैतन्मतं कल्पितमप्यवेहि अयं रसश्चोपनिषत्सतीनाम्।
आकूतमेतद् बुधतल्लजानां सारं श्रुतीनां च धनं स्मृतीनाम्॥22॥

यही सत्य सम्पूर्ण उपनिषदों का रस है। यही स्मृतियों का सारांश है। यही विद्वानों का आकूत है। यही श्रुतियों का सार है यही भक्तों का सर्वस्व है। इस मत को कल्पित मत समझो।

तस्मादिमं नीलसरोजशोभं श्रीपार्वतीवल्लभलब्धलोभम्।
सन्द्रष्टुकामेन परैव विद्या श्राव्या सदा देशिकवक्त्रपद्मात्॥23॥

इसलिए जिन में पार्वतीपति शङ्कर को भी लोभ है, नीले कमल के समान जिनकी शोभा है, ऐसे भगवान् को निहारने के लिए देशिक गुरुदेव के मुखकमल से निकले हुए परा-विद्या का सिद्धान्त ही सुनना चाहिए।

त्रीणि प्रमाणानि विभान्ति चास्यां नूनं परायां श्रुतिसम्मतानि।
प्रत्यक्षमीड्यं ह्यनुमानमत्र शब्दं तथा वेदवितानमञ्जु॥24॥

इस परा-विद्या में तीन ही तो प्रमाण हैं, जिन्हें श्रुतियों ने कहा है प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

केचिद्भवादृक्ष उदारचित्ताः प्रत्यक्षतो ब्रह्म विलोकयन्ति।
केचित्तथैनं ह्यनुमापयन्ति शब्देन केचिच्च विनिश्चयन्ति॥25॥

हे रामानन्द! तुम्हारे जैसे कुछ भावुकहृदय वाले तो ब्रह्म को प्रत्यक्ष ही निहार लेते हैं, कुछ अनुमान करते हैं और कुछ शब्द से भगवान् को सुनते हैं।

प्रत्यक्षमेवं ह्यनुमानमत्र शब्दं प्रमाणं त्रितयं वदन्ति।
जीवः प्रमाता ननु राघवस्य रामः प्रमेयो मम यो विधेयः॥26॥

हे रामानन्द! हमारे यहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द यही तीनों प्रमाण माने जाते हैं और जीव इसका प्रमाता है। मुझ वशिष्ठ के जो विधेय हैं, शिष्य हैं ऐसे भगवान् राम ही इसके प्रमेय हैं।

अस्यां प्रमाणत्रितयं विभाति वेदान्तनाम्न्यां नितरां मनस्विन्।
या वै पराख्या विचकास्ति विद्या या ब्रह्मविद्येति बुधप्रणम्या॥27॥

इस परा विद्या में तीन ही प्रमाण हैं इसी को पराविद्या कहते हैं, इसी को अध्यात्म-विद्या कहते हैं और इसी को वेदान्त विद्या कहते हैं।

प्रमाणभूताः श्रुतयः समस्ता यद् ब्रह्म भक्त्या नितरां मनन्ति।
स्मृतिश्च गीताप्रमुखाः प्रमाणं तद् ब्रह्मसूत्रं यदुवाच कृष्णः ॥28॥

इसमें सम्पूर्ण वेद के मन्त्र प्रमाण हैं, स्मृतियां और गीता प्रमाण हैं और वह ब्रह्मसूत्र जिसे वेदव्यास ने कहा वह प्रमाण हैं।

ततः प्रमाणत्रितयस्य सारं ब्रवीमि ते ब्रह्मपरं विचारम्।
भक्त्योपहारं व्यवहारहारं श्रुत्वा यदाप्नोति परं पुमांसम्॥29॥

हे रामानन्द! इसी में इन तीन प्रमाणों से प्राप्त व्यवहार ही जिसका सब कुछ है। भक्ति जिसका उपाय है। इस सिद्धान्त को तुम्हें समझाकर कह रहा हूँ।

व्यासोऽपि पाराशरलब्धजन्मा यद् ब्रह्मसूत्रं निजगाद भूयः।
तस्यैव भाष्याणि बहूनि भान्ति आनन्दभाष्यं तव चापि भातु॥30॥

वेदव्यास जी जो साक्षात् पराशर से प्रकट हैं। उन्होंने जो ब्रह्मसूत्र कहा उस पर बहुत से भाष्य हैं और तुम्हारा भी आनन्द भाष्य शीघ्र प्रकाशित होने वाला है।

और यहाँ श्रोताओं को अवश्य समझ लेना चाहिए कि वेदव्यास जी ने जहाँ-जहाँ मन्त्रों में सन्देह देखा उनको दूर करने के लिए ब्रह्मसूत्र की रचना की।

नित्यावुभौ श्रौतविचारसाध्यौ जीवस्तथाऽयं परमेश्वरो वै।
द्वौ वै सखायौ विगतान्तरायौ समं समालिङ्ग्य विराजमानौ॥31॥

वैदिकविचार की दृष्टि से जीवात्मा एवं परमेश्वर ये दोनों ही नित्य तत्त्व हैं, किसी प्रकार के अन्तराल के बिना जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों एक दूसरे को आलिङ्गन करके मित्र-भाव से अनादिकाल से विराजमान हैं।

अणुत्ववान् सन् किल चेतनो यः स एव जीवो बुधवर्णितोऽयम्।
यो व्यापकश्चेतन एव साक्षात् स चैष रामो रघुवंशकेतुः॥32॥

जो अणु होकर भी चेतन है, वही जीव है और जो व्यापक होकर चेतन हैं वही भगवान् दशरथ-नन्दन श्रीराम हैं।

व्यासं क्वचित् क्वापि समासभावात् सङ्गृह्य वक्ष्यामि तवाग्रतोऽहम्।
श्रृणुष्व चैतत् किल सावधानः सङ्गीयमानं सुरहस्यमेतत्॥33॥

इस रहस्य को कही-कहीं विस्तार, कहीं-कहीं समास अर्थात् सङ्क्षेप में यथासम्भव मैं कहूँगा। मेरे द्वारा गाये जाते हुए इसे प्रेम से सुनो।

भाष्येषु वै राघवसत्कृपेषु विभान्ति या युक्तय एव ईड्याः।
ता वै प्रमोदेन निगद्यमाना महात्रिदण्डिन् श्रृणु सङ्ग्रहेण॥34॥

श्री राघवकृपाभाष्य में जो कहा गया है उन युक्तियुक्त सिद्धान्त को हे महात्रिदण्डिन् तुम सावधानी से सुनो।

एकं परं यच्चिदचिद्विशिष्टाद्वैतं जगुः कारणमेव सभ्याः।
तदेव कार्यं चिदचिद्विशिष्टाद्वैतं गदन्त्येव विचारविज्ञाः॥35॥

एक ही ब्रह्म कारण रूप में भी आता है तो चिदचिद् विशिष्टाद्वैत होता है और कार्य में आता है तो भी उसी प्रकार होता है। इन्हीं दोनों का अद्वैत विशिष्टाद्वैत कहलाता है। इस प्रकार सभ्य विद्वान् विवेचन करते हैं।

एकं च यद् ब्रह्म वदन्ति वेदाः सब्राह्मणाः सोपनिषत्कमन्त्राः।
स्मरन्ति चैकं स्मृतयोऽपि यद्वै तद् द्वैविधं चोपनिषत्सु गीतम्॥36॥

हे रामानन्द! जिस ब्रह्म को सभी वेद, सभी ब्राह्मण और सभी उपनिषदों के मन्त्र एक कहते हैं और स्मृतियाँ भी जिसे एक कहकर ही स्मरण करती रहती हैं। उसी ब्रह्म को उपनिषदों ने दो रूपों में विभक्त कर दिया है।

यद् व्योम्नि राजत् परमे रमेशं साकेतधामन्यथ निष्प्रपञ्चम्।
रामाभिधेयं सगुणाऽगुणञ्च तत् कारणं ब्रह्म बुधा मनन्ति॥37॥

जो परव्योम साकेतधाम में सीता जी के सहित राम नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म विराजमान रहता है उसी को विद्वान् लोग कारण-ब्रह्म कहते हैं।

यत्सृष्टिकाले विचकास्ति चान्तर्यामीति नाम्ना प्रतिजीवदेही।
तदेव वेदाः स्मृतयो मनन्ति कार्यं परब्रह्म निरस्तदोषम्॥38॥

जो सृष्टि के अनन्तर प्रत्येक जीव के अन्तर्यामी रूप में विराजमान रहता है, उसी ब्रह्म को वेद और स्मृतियाँ कार्य ब्रह्म कहती हैं।

द्वे ब्रह्मणी ये श्रुतिभिश्च गीते स्मार्ते तथा चोपनिषत्कृतान्ते।
ते वै विशिष्टे हि चिदाऽचिदा च ततो विशिष्टाद्वयमामनन्ति॥39॥

जिन इस ब्रह्म को स्मृतियों ने दो भेदों में बाँटा और उपनिषदों में भी ये कार्य और कारण ब्रह्म चिदचिद् से विशिष्ट हैं। उन्हीं दोनों चिदचिद् विशिष्ट अद्वैत को विशिष्टाद्वैत कहते हैं।

चिच्चेतनं राजति जीवसंज्ञमचिच्च माया प्रकृतीतिनाम्नी।
द्वौ ब्रह्मणो देहभिदां प्रपन्नौ विशेषणे चोपनिषन्यगादीत्॥40॥

ये जो दो ब्रह्म बताये गये उनके दो विशेषण हैं चित् और अचित्। जीव को ही चित् कहते हैं और अचित् माया और प्रकृति नामों से जाना जाता है, दोनों ही भगवान् के शरीर हैं।

चिच्चाप्यचिच्चापि शरीरतुल्यौ द्वौ ब्रह्मणश्चोपनिषन्यगादीत्।
ततो द्वयोर्ब्रह्मणि देहदेहिभावं समे दार्शनिका मनन्ति॥41॥

अर्थात् चित् और अचित् ये दोनों ही भगवान् के शरीर हैं इसे दार्शनिक लोग भगवान् के साथ देह-देही सम्बन्ध मानते हैं।

यथैव देही परिहाय देहं क्षणं च नो तिष्ठति लब्धशर्मा।
तथैव जीवं प्रकृतिं च हित्वा क्षणं च नो ब्रह्म विराजतेऽद:॥42॥

जिस प्रकार ये यह जीवात्मा शरीर के बिना नहीं रह सकता, एक क्षण भी नहीं रहता, उसी प्रकार भगवान् भी जीवात्मा और प्रकृति के बिना नहीं रह सकते।

अतश्च वै ब्राह्मण आह चान्तर्यामीतिनामा विमलं प्रसङ्गम्।
आरण्यके वै बृहत: स्फुटञ्च सुविस्तृतं मान्त्रिकजालमध्ये॥43॥

इसीलिए जीवात्मा एवं परमात्मा में वेद के ब्राह्मण भाग में बहुत अन्तर कहा गया। बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में बहुत मन्त्रों का प्रयोग करके श्रुति ने कह दिया कि भगवान् सबके अन्तर्यामी हैं।

यथा च भूम्यादि हरेः शरीरं गदन्ति सर्वोपनिषद्विभागाः।
तथैव चात्मापि शरीरमस्य ह्याकूतमित्येव तदीयमस्ति॥44॥

जिस प्रकार से पृथ्वी आदि भगवान् के शरीर हैं और भगवान् अन्तर्यामी हैं उसी प्रकार यह जीवात्मा भी भगवान् का शरीर है और भगवान् इसके अन्तर्यामी हैं। यही तथ्य उपनिषदों में प्रसिद्ध है।

जगत् शरीरं जगदीश्वरस्य आत्मा शरीरं परमात्मनश्च।
द्वयोरिमं शाश्वतिकं निबन्धं भजन्ति गायन्त उदारसत्त्वाः॥45॥

जैसे परमात्मा का जगत् शरीर है, उसी प्रकार यह जीवात्मा भी परमात्मा का शरीर है। इस प्रकार से दोनों के इस शाश्वत सम्बन्ध का स्मरण करते-करते महापुरुष गाते रहते हैं।

चिच्चाप्यचिच्चापि शरीररूपे विशेषणे द्वे परमात्मनश्च।
विना हरिं ते च न तिष्ठतो वै विना न ते तिष्ठति चायमीशः॥46॥

इस प्रकार से दोनों एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते। चिदचिद् के विना परमात्मा नहीं रह सकते और परमात्मा के विना चिद्चिद् नहीं रह सकते।

तस्मात् परब्रह्म विशेष्यमाहुश्चितोऽचितश्चापि मनीषिणो वै।
इमे उभे चापि विशेषणे वै प्राहुर्हरेश्चोपनिषत्सु निष्णाः॥47॥

इस प्रकार दोनों ही के परमात्मा विशेष्य हैं और उपनिषद् के विचार में तत्पर विद्वान् भी चित् और अचित् को ब्रह्म का विशेषण मानते हैं।

सूक्ष्मं च यद् ब्रह्म समामनन्ति स्थूलं च यत् सौष्ठवमेतमाहुः।
उभे विशिष्टे चिदचित्समाभ्यां विशेषणाभ्यां सुविभूषणाभ्याम्॥48॥

चाहे वह ब्रह्म सूक्ष्म हो या स्थूल, दोनों ही प्रकार से चित् और अचित् इन दोनों से परमात्मा विशिष्ट हैं।

सृष्टेः पुरा यच्चिदचिद्विशिष्टं सद्ब्रह्म व्योमाधिपतिं मनन्ति।
तदेव भूयश्चिदचिद्विशिष्टं यत् कार्यकाले विचकास्ति ब्रह्म॥49॥

जो सृष्टि में प्रथम चिदचिद्विशिष्ट था, वो ही अभी भी चिदचिद्विशिष्ट है।

तद्वै विशिष्टं चिदचिद्द्विधाभ्यामिदं विशिष्टं विधिवच्च ताभ्याम्।
विशिष्टयोरद्वयमेव तद्वै धीरा विशिष्टाद्वयमाहुरीशम्॥50॥

इस प्रकार चित् और अचित् इन दोनों से जो परमात्मा विशिष्ट हैं वही चिदचिद्विशिष्ट हैं और उन्हीं का अद्वैत विशिष्टाद्वैत है।

तद्वै विशिष्टं प्रवदन्ति ब्रह्म ह्येतद् विशिष्टं निगदन्ति विज्ञाः।
तदेकशेषे कथितं विशिष्टाद्वैतं सदा वेदवितानविज्ञैः॥51॥

इस प्रकार दोनों ही विशिष्ट हैं और दोनों की विशिष्टता के कारण (विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे, विशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्) परमात्मा को विशिष्टाद्वैत कहा जाता है। इसलिए कारणब्रहम और कार्यब्रहम इन दोनों को ही चिदचिद्विशिष्ट कहते हैं। इन दोनों विशिष्टों का अद्वैत ही विशिष्टाद्वैत है।

विशेषणे ब्रह्मणि ते तथोक्ते जीवश्च माया च हरेः शरीरे।
जीवं तयोर्नित्यमिहाम्नन्ति माया त्वनित्या कृतविश्वकृत्या॥52॥

इस प्रकार ब्रह्म के जो शरीर–शरीरी सम्बन्ध से विशेषण कहे गये हैं जीवात्मा और माया उनमें से जीव को उपनिषद् नित्य कहते हैं और जिसने सारे संसार को बनाया ऐसी माया को अनित्य कहते हैं।

नित्यो ह्ययं नित्यनृणां च मध्ये यश्चेतनो राजति चेतनानाम्।
एको बहूनां विदधाति शान्तिं तद् ब्रह्म नित्यं श्रुतयो मनन्ति॥53॥

कठोपनिषद् में कहा गया– **'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्। एको बहूनां यो विदधाति कामान्'** परमात्मा नित्य जीवों के बीच में नित्य हैं, चेतनों के मध्यवर्ती चेतन हैं और बहुतों के बीच एक हैं।

जीवाश्च नित्या बहवो विभान्ति ते चेतनास्तं किल चेतयन्ते।
अनाथनाथं रघुनाथमेव सीतापतिं व्यापकमप्रमेयम्॥54॥

जीव नित्य है और वह चेतन भी। इसलिए वे निरन्तर अनाथों के नाथ, व्यापक, अप्रमेय, सीतापति भगवान् श्रीराम को ही चिन्तन करते रहते हैं।

जीवस्तु मित्रं दशकन्धरारेर्नित्यः सखा पक्षिण एव पक्षी।
अनादिकालात् परिलिङ्ग्य रामं भुङ्क्ते परब्रह्म सुखं मनोज्ञम् ॥55॥

जीव भगवान् का मित्र है। जैसे एक पक्षी दूसरे पक्षी का मित्र होता है। यह अनादिकाल से भगवान् से चिपका हुआ दिव्य आनन्द का अनुभव कर रहा है।

न ब्रह्म जीवः परिहातुमीष्टे न वा जिहासत्यथ जीवमीशः।
अन्योऽन्यमाबद्धमनोज्ञसख्यं तत्र द्वयं राजति शास्त्रमध्ये ॥56॥

अर्थात् ब्रह्म को जीव कभी छोड़ना नहीं चाहता और जीव को भी ब्रह्म कभी छोड़ना नहीं चाहते। ये दोनों विलक्षण तत्त्व के रूप में शास्त्रों में विराजमान हैं और हमारे हृदयों में भी।

जीवः समश्नन् सुखदुःखभोगान् दुःखी सुखी भाति जगन्निवासी।
ब्रह्म त्वनश्नत् सुखदुःखमेकमानन्दकन्दं विचकास्ति नित्यम् ॥57॥

जीव सुख-दुःख को भोगता हुआ सुखी-दुखी, खिन्न-प्रसन्न दिखता रहता है और ब्रह्म संसार के फलों का भोग न करता हुआ प्रसन्न बना रहता है।

अत्रापि भेदं शृणु वत्स रामानन्द प्रसिद्धैः परिगीयमानम्।
अन्ये तु लक्ष्मीं किल जीवकोटौ सम्मन्वते दार्शनिकम्प्रमन्याः ॥58॥

हे वत्स रामानन्द! यहाँ भेद सुनो और दार्शनिक लोग स्वयं को दार्शनिकों का स्वामी मानते हुए लक्ष्मी जी को जीव-कोटि में मान लेते हैं और कहते हैं कि ब्रह्म केवल नारायण हैं।

विचार्यमाणे गहने गभीरे किमप्यतो भाति पृथक् सुचिन्त्यम्।
श्रीरामभक्तौ जनकेन्द्रपुत्री माया कृपा सा खरदूषणारेः ॥59॥

किन्तु गहन सिद्धान्तों का विचार करने के पश्चात् इस तथ्य में कोई विलक्षणता नहीं दिखती। हम सीताजी को जीव कोटि में नहीं मानते। एक ही ब्रह्म दो रूपों में आ जाता है।

एकं परब्रह्म मनोज्ञलीला भेदक्रमाद् द्विःप्रकटीबभूव।
आयोध्यकानां पुरि रामचन्द्रः श्रीमैथिलानां पुरि चैव सीता ॥60॥

एक ही ब्रह्म लीला के भेद के क्रम में दो बार प्रकट होते हैं। अयोध्या में श्रीराम रूप में और मिथिला में श्रीसीता रूप में।

सीतैव माता मिथिलापुरेऽभूत् पिताऽपि साकेतपुरे खरारिः।
द्वावप्यभूतां चिदचिद्विशिष्टावद्वैतमेतद् युगलस्य भाति॥61॥

एक ही सीताजी मिथिला में माता के रूप में प्रकट हुईं और भगवान् राम अयोध्या में पिता के रूप में प्रकट हुए और इन्हीं दोनों का जो अभेद है वही विशिष्टाद्वैत है।

साकेतलोके सुभगाऽध्ययोध्यमेकैव सीता विचकास्ति नूनम्।
साकेतलोके किल कारणाख्या आयोध्यके राजति कार्यरूपा॥62॥

एक ही सीता जी दो प्रकार से सुशोभित होती हैं, साकेत लोक में कारणब्रह्म बन जाती हैं और अयोध्या में कार्य-ब्रह्म।

तथैव साकेतपुरेऽपि रामः सत् कारणं ब्रह्म विभाति नित्यम्।
क्रीडन्नयोध्याधरणौ खरारिस्तद्ब्रह्म कार्यं शिशुतामुपैति॥63॥

इसी प्रकार एक ही ब्रह्म साकेत लोक में श्रीराम रूप में विराजमान हो जाता है और वही अयोध्या में खेलता हुआ कार्य रूप में।

उभे च नित्यं परिपूर्णरूपे उभाववद्यं किल नाशयन्तौ।
पूर्णात्तु पूर्णं नितरां विशिष्टं पूर्णत्वमादाय बभूव पूर्णम्॥64॥

दोनों ही कारण-कार्य ब्रह्म सीतारामजी परिपूर्णरूप हैं और दोनों ही जीवों के पापों को नष्ट करते रहते हैं। एक ही परब्रह्म परमात्मा साकेत और अयोध्या दोनों में पूर्ण हैं पूर्ण को पाकर परमात्मा पूर्ण ही रहे जाते हैं।

साकेतलोके ननु लक्ष्मणोऽपि चित्तत्त्वमेतद् विदुषां विमृग्यम्।
सैवाऽध्ययोध्यं चिदनन्तमेव नास्त्यन्तरं क्वापि कदापि तन्वोः॥65॥

वही लक्ष्मण जी साकेत में चित् रूप में रहते हैं और अयोध्या में भी चित् रूप में रहते हैं। उनके दोनों शरीरों में कभी अन्तर नहीं आता।

या नाम सीता जगदेकमाता साकेतलोके ह्यचिदेव भाति।
साप्यध्ययोध्यं ह्यचिदेव रामसङ्गं समासाद्य विभाति नित्यम्॥66॥

जो सीताजी जगत् की एकमात्र माता हैं वही साकेत लोक में अचित् जैसी लगती हैं और यहाँ अयोध्या में भी अचित् जैसी प्रतीत होती हैं।

चिनोति तत्त्वं परितोऽपि नित्यं यद्वै परब्रह्म पुराणमृग्यम्।
तत् तत्त्वमेवाथ वदन्ति चिद्वै सब्राह्मणाः सोपनिषत्कमन्त्राः ॥67॥

जो निरन्तर भगवान् राम का चिन्तन करता रहता है वही तो चित् तत्त्व है, उसी की चर्चा ब्राह्मण और उपनिषद् के मन्त्र करते हैं।

इतोऽप्यचित्तत्त्वमिहातिधन्यं तत्सावधानं श्रृणु शिष्यवर्य।
अचिन्मये नास्ति नञो विकारो ह्यकार एवात्र सुबाहुशत्रुः ॥68॥

हे शिष्य श्रेष्ठ रामानन्दाचार्य! अचित् तत्त्व चित्तत्त्व से भी विलक्षण है। अचित् का अकार नञ् तत्पुरुष नहीं है प्रत्युत यहाँ अकार का अर्थ है भगवान् राम।

अं रामचन्द्रं मनसा च वाचा कायेन या चापि चिनोति ह्यग्र्यम्।
अचिच्च सा भाति विभाति सीता पुराणगुह्योपनिषत्सु गुह्या ॥69॥

जो अकार अर्थात् रामचन्द्र जी का ही चयन करती हैं ऐसी सीता जी को यहाँ अचित् कहा जा रहा है। इसलिए एक ही ब्रह्म श्रीसीताराम के रूप में विराजमान हो रहा है।

यथा विहङ्गौ सखिताप्रसङ्गावेकं परिष्वज्य तरुं स्म भातः।
तथैकदेहं कृतनीडगेहं जीवेश्वरौ सूपनित्सुभातः ॥70॥

जिस प्रकार परस्पर मित्र बने हुए दो पक्षी एक ही वृक्ष पर चिपके हुए अनादिकाल से सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार अपना सुन्दर घोंसला बनाकर ये जीव तथा ईश्वर एक ही शरीर में सुशोभित हो रहे हैं।

जीवः स्वभावाद् बहुरूपधारी स्वकर्मतः कालगुणात्तथैव।
किन्त्वेश्वरस्त्वेकवपुर्विभाति अन्तर्गतः सर्वदृगेष साक्षी ॥71॥

किन्तु जीव बहुत रूप धारण करने के कारण प्रत्येक शरीर में एक जैसा नहीं रहता है, परमात्मा एक ही जैसे रहते हैं।

विभाति देवः प्रतिदेहि चान्तर्यामीति नाम्ना निकटे निरीहः।
निरस्तपापो हतजीवतापो न वै वयोभिः परिखिद्यमानः ॥72॥

यह परमात्मा जीव के साथ प्रत्येक शरीर में रहते तो हैं परन्तु वहाँ उन्हें किसी प्रकार का ताप नहीं होता और पाप भी नहीं होता और वे अवस्थाओं से पीड़ित नहीं होते।

न वा कुमारो न च वा युवासौ न चापि वृद्धः श्रितयोगसिद्धः।
एकं वयश्चापि सुखं किशोरं भातीह देहेषु विभुर्विधाता॥73॥

भगवान् कभी कुमार नहीं बनते, कभी युवक नहीं बनते, कभी वृद्ध नहीं होते वे एक हैं सभी सिद्धगण उनको प्रणाम करते हैं वो किशोरवय रूप में ही रहते हैं।

नित्यं किशोरी जनचित्तचोरः सीतामुखाऽऽत्रेयचकच्चकोरः।
विभाति देहेषु समेषु चान्तर्याऽमिस्वरूपेण खरान्तकर्ता॥74॥

भक्तों के चित्त को चुराने वाले, सीताजी के मुखचन्द्र के चकोर भगवान् प्रभु श्रीराम प्रत्येक शरीर में अन्तर्यामी रूप में विराजते हैं।

गुणाननश्नन् न च पापतापं प्रसारितानन्दसुधैकसिन्धुः।
सङ्क्रीडमानो हृदयाजिरेषु निर्दूषणः खेलति दूषणारिः॥75॥

अर्थात् वे गुणों को न भोगते हुए पाप-ताप का आश्रय नहीं बनते वे तो दूषण के शत्रु श्रीराम निर्दूषण बनकर भक्तों के हृदय के आँगन में खेलते रहते हैं।

गुणैर्विहीनः क्वचिदेव नासौ सदैव साद्गुण्यसमुद्र एव।
आकारहीनो न कदापि जातः सदैव साकारवपुः परात्मा॥76॥

वे भगवान् अन्तर्यामी होकर भी गुणों से हीन नहीं रहते, वे आकार से रहित भी कभी नहीं होते सदैव साकार और सगुण रहते हैं।

यथा न माधुर्यमपो जहाति यथा प्रभा नैव विधुं कदाचित्।
छाया यथा भानुमतो न दूरे तथा गुणा नो जहतीह रामम्॥77॥

जिस प्रकार से मधुरिमा जल को नहीं छोड़ती, जिस प्रकार से छाया सूर्य से दूर नहीं रह सकती जिस प्रकार प्रभा चन्द्रमा को नहीं छोड़ सकती उसी प्रकार गुण भगवान् श्रीराम को छोड़ ही नहीं सकते।

स्वरूपसम्बन्धमिहाऽऽमनन्ति गुणैश्च रामस्य खरान्तकर्तुः।
गुणाः स्वरूपाणि परेश्वरस्य ये चिन्तकानां किल कामगव्यः॥78॥

गुणों के साथ भगवान् के स्वरूप सम्बन्ध की कल्पना की गयी है ये भगवान् के स्वरूप हैं और ये ही चिन्तन करने वाले महानुभावों के लिए साक्षात् कामधेनु के समान हैं।

ये मन्वते ब्रह्म तु निर्विशेषं ते मन्वतां नो हठ एष तेषु।
वयं तु नीलोत्पलकम्रकान्तिं रामं सदा तं सगुणं विचिन्मः ॥79॥

जो लोग भगवान् को निर्विशेष मानते हों मानें, उनके प्रति हमारा ये आग्रह नहीं है। हम तो नीलकमलश्याम भगवान् राम को सगुण ही मानते है।

ये मायया संवलितं विमूढा लपन्ति रामं सगुणं सदेहम्।
ते कौशिकाः कौशिकयज्ञरक्षाचणं न पश्यन्ति दिवापि धूर्त्ताः ॥80॥

जो भगवान् राम को माया संवलित सगुण देह वाला समझते हैं वे उल्लू लोग दिन में भी कौशिक की यज्ञरक्षा में तत्पर प्रभु को नहीं देखते। इसलिए–

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पितकाकपक्षम्।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि ॥81॥

नीले मेघ के समान सुन्दर भक्तों के लिए पारिजात स्वरूप, भुशुण्डि जी को पकड़ने के लिए उनके पीछे–पीछे चलने वाले, कन्धे तक लटकने वाले घुँघराले केशों से युक्त धनुष–बाण धारण किये हुये उन वक्रालक सगुण–साकार श्रीराम का हम आश्रय करते हैं।

द्वावेव नित्यौ श्रितभक्तिकृत्यौ जीवेश्वरौ वैष्णवदर्शने च।
माया त्वनित्या गतसर्वकृत्या दासीव बाभाति परेश्वरस्य ॥82॥

वैष्णव दर्शन में नित्य तत्त्व है जीवात्मा और परमात्मा। जो भक्ति से युक्त हैं। माया तो परमात्मा की दासी है। उसके पास कोई कृत्य ही नहीं है।

एषा तु माया प्रकृतिः खरारेः शरीरभूता सगुणप्रसूता।
जडा प्रवद्या परिणामिनी वै श्रीवैष्णवानां च नये प्रसिद्धा ॥83॥

वैष्णव दर्शन में यह माया भगवान् की दासी है, अनित्य, प्रकृति तथा परिणामिनी है और यह माया परमेश्वर की शरीरभूत विशेषण भी है।

या ब्रह्मविष्णू च महेश्वरं च सनातनी नर्तयतेऽनवद्यान्।
सा रामचन्द्रभ्रकुटीविलासात् सदा नरीनर्ति मुदेह माया ॥84॥

जो ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर आदि बड़े-बड़े देवताओं को नचाती रहती है वही माया, श्रीराम के भृकुटी विलास मात्र से निरन्तर नाचती रहती है।

जीवस्तु दासः परमात्मनो वै श्रुतिप्रसिद्धः स्मृतिभिश्च गीतः।
ईशस्तु जीवस्य च मित्रभावे तत्सन्निधौ तिष्ठति वीतरोषः॥85॥

जीव परमात्मा का दास है, ये श्रुति में भी प्रसिद्ध है और स्मृति में भी। और ईश्वर जीवात्मा के मित्रभाव में उनके साथ बने रहते हैं और उन्हें कभी क्रोध नहीं आता।

जीवस्तु सामीप्यगतिं खरारिं संयाचमानो नितरां विभाति।
सामीप्यलोभाद्रघुनन्दनस्य सनन्दनाद्याः प्रविशन्त्ययोध्याम्॥86॥

हमारे यहाँ सामीप्य मुक्ति मानी गयी है जीव भगवान् के समीप रहना चाहता है और भगवान् के सान्निध्य के लोभ से ही सनन्दनादि चारों अयोध्या में प्रवेश करते रहते हैं।

एकं चिरेणाऽऽवसतः शरीरं जीवेश्वरौ नित्यसखित्वभावौ।
तयोरभोक्ता ससुखञ्च शेते भोक्ता पुनः क्रन्दति दुःखदुःखी॥87॥

एक ही शरीर में जीवात्मा और परमात्मा नित्य मित्र-भाव से रहते हैं। उनमें से जीवात्मा भोगों को भोगता हुआ भी रोता है, चिल्लाता रहता है और परमात्मा भोक्ता न होकर भी बहुत प्रेम से आनन्द में शयन करते हैं अर्थात् वे निरन्तर आनन्द में ही रहते हैं।

एकं यथा स्यन्दनमेव संस्थौ विराजतः फाल्गुनवासुदेवौ।
तथैव चैकं वपुरेव संस्थौ जीवेश्वरौ नात्र विचारणा भोः॥88॥

जैसे एक ही रथ पर भगवान् श्रीकृष्ण और श्री अर्जुन विराजमान हुए उसी प्रकार यह जीवात्मा और परमात्मा एक ही शरीर में विराजमान होते हैं।

रथं शरीरं विबुधा मनन्ति जीवात्मभूतः किल शक्रपुत्रः।
तथैव कृष्णः परमात्मभूतो गीतासु चेत्थं विचकास्ति भावः॥89॥

जैसे गीताजी में यह बात स्पष्ट है कि यह शरीर रथ के समान है। अर्जुन जीवात्मा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। भगवान् कृष्ण परमात्मा हैं। यदि ऐसी व्यवस्था है तो फिर अभेदवाद की चर्चा ही कैसे आयी।

गीतासु जागर्ति यदीयमीड्या चर्चा त्रयाणां किल तत्त्वकानाम्।
अभेदवादस्य कुतः कलङ्कः समागतोऽयं विदुषां समाजे॥90॥

यदि यह निश्चित है और गीताजी कह रही हैं कि वहाँ तीन तत्त्व निश्चित हैं जीवात्मा, परमात्मा और शरीर तो फिर अभेदवाद का यह विद्वानों के समाज में कलङ्क आ कैसे गया?

क्षरं शरीरं रणदुर्मदानां तथाऽर्जुनश्चाक्षर एव नित्यः।
द्वावप्यतीतः पुरुषोत्तमो वै गीतासु वै पञ्चदशे विमृष्टः॥91॥

गीताजी के पन्द्रहवें अध्याय में स्पष्ट कहा गया है कि यह शरीर क्षर है जो भीष्म आदि का है और अर्जुन अक्षर है और इन दोनों से अतीत हैं भगवान् कृष्ण जी, जो पुरुषोत्तम हैं।

इदं हि रामायणरम्यरङ्गे समन्ववोचत् तुलसीसुदासः।
क्षरं धनुश्चाक्षर एव बन्धुर्द्वावप्यतीतः पुरुषोत्तमोऽसौ॥92॥

रामायण के रमणीय मञ्च पर भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने कह दिया, शिव धनुष क्षर है, जिसको रामचन्द्र जी ने तोड़ दिया और लक्ष्मण जी अक्षर हैं और भगवान् श्रीराम पुरुषोत्तम हैं। जो दोनों से अतीत हैं।

क्षरं धनुश्चापि विखण्डितं वै न खण्डितश्चाक्षर एव शेषः।
उभौ नियम्याथ विराजमानः श्रीरामचन्द्रः पुरुषोत्तमो वै॥93॥

धनुष क्षर जिसे रामचन्द्र जी ने तोड़ा। लक्ष्मण जी अक्षर हैं जिनको परशुराम जी का फरसा नहीं काट पाया और इन दोनों को नियन्त्रित कर रहे हैं मर्यादा–पुरुषोत्तम भगवान् राम।

जीवात्मभूतः परमात्मनोंऽशो विभाति लोकेऽपि सनातनोऽयम्।
अंशी परात्मा निजगाद शौरिरध्यायके पञ्चदशे परात्मा॥94॥

जीवात्मा परमात्मा का अंश है और परमात्मा जीवात्मा के अंशी हैं। यही बात गीता जी के पन्द्रहवें अध्याय में श्री कृष्ण भगवान् द्वारा कही गयी है।

दासोऽस्ति जीवो रघुनन्दनस्य स्वामी सदा राघव एव तस्य।
एकस्तु सेव्यः परसेवकोऽसौ विराजते भाव उदस्तदर्पः॥95॥

अर्थात् जीव भगवान् का दास है और भगवान् जीव के स्वामी भी हैं। इस तथ्य में किसी भी प्रकार का यहाँ सन्देह नहीं।

द्वावेव नित्यौ श्रुतिमन्त्रसिद्धौ सर्वासु चैवोपनिषत्सु सिद्धौ।
द्वयोस्तु नाशो न हि सम्भवोऽस्ति त्रैकालिके भूतलभूतसङ्घे॥96॥

यह जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही नित्य हैं और इनका कभी नाश सम्भव नहीं है ऐसा श्रुतियाँ बार-बार कहती हैं।

यो ध्वंसभिन्नः स च नित्य एव द्वावेव तद्वत् किल जीवनाथौ।
तयोस्तु या मध्यगता हि माया सैवास्त्यनित्या श्रुतिमन्त्रभागे॥97॥

वेद के मन्त्र भाग के अनुसार दोनों नित्य हैं जीव और ईश्वर। उनके बीच में माया ही अनित्य है यही वैदिक सिद्धान्त है।

तस्मात् समुत्थाय विहाय शङ्कां भजस्व भो राघवपादपद्मम्।
श्रीवैष्णवानां प्रवरस्तु रामानन्द त्वमागच्छ सुनन्दभावम्॥98॥

इसलिए अब तुम इस सारे प्रपञ्चों को छोड़कर उठो और भगवान् राम का भजन करो। तुम वैष्णवों में श्रेष्ठ हो और भगवान् शङ्कर के भी ईश्वर रघुनाथ जी की दिव्य भावना करो।

सत्पञ्चसंस्कारनिदेशितश्च सिद्धान्ततश्चार्थकपञ्चकस्य।
जीवोऽस्ति दासः सततं खरारेर्भोग्यो विधेयः सततं हि ज्ञेयः॥99॥

यही पाँचों संस्कारों और अर्थपञ्चक का भी सिद्धान्त है कि जीव भगवान् का दास है, भोग्य है, विधेय है और ज्ञेय है।

जीवः प्रमाता परमस्य भर्तू रामः प्रमेयो ननु जीवकस्य।
तयोस्तु मध्ये विचकास्ति भक्तिः प्रमापयन्ती रघुवंशनाथम्॥100॥

भगवान् राम प्रमेय हैं और जीवात्मा प्रमाता है। इन दोनों के बीच में भक्ति है जो जीव को परमात्मा का ज्ञान कराती रहती है।

अर्थपञ्चकमथो ब्रवीमि ते श्रूयतां सुमनसा सुचेतसा।
यच्छ्रुतौ मतिरलं विरज्यते सर्वतोऽपि सुफलाच्छ्रुतात् स्मृतात्॥101॥

हे रामानन्द अब मैं तुम्हें अर्थपञ्चक का सिद्धान्त सुना रहा हूँ। उसे सुन्दर मन से चित्त लगाकर सुनो जिसको सुनने से श्रौत और स्मार्त सत्कर्म-फलों के प्रलोभन से बुद्धि स्वयं विरक्त हो जाती है।

स्वस्य स्वरूपं च परस्वरूपमुपायरूपं च फलस्वरूपम्।
विरोधिरूपं जगुरर्थकानां तत्पञ्चकं वेदवितानविज्ञाः॥102॥

इस प्रकार रामानन्दाचार्य सिद्धान्त में पाँच वस्तुएं हैं- स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप और विरोधीस्वरूप। इन्हीं को वैदिक-सिद्धान्त जानने वाले अर्थपञ्चक कहते हैं।

जीवश्च दासो रघुनन्दनस्य त्रेधा विभक्तोऽस्ति सुबाहुशत्रोः।
तस्मै च रामाय यतेत जीवो जीवेत् सदा जानकिजीवनाय॥103॥

हे रामानन्द! स्वस्वरूप की व्याख्या है जीव, नित्य, बद्ध, मुक्त इन तीन विभागों में विभक्त होता हुआ भी सुबाहु नामक राक्षस के शत्रु रघुनन्दन श्रीराम का दास है। इसलिए उसे रामजी के लिए यत्न करना चाहिए और जानकी-जीवन भगवान् राम की प्रसन्नता के लिए ही जीना चाहिए।

स्वामी परो रघुवरो दशकण्ठशत्रुर्जीवस्य वश्यविभवस्यवसिष्ठवश्यः।
त्रैमातुरस्तनुरुचा जितकोटिकामो रामो रमार्चितपदो जगदीश ईड्यः॥104॥

हे रामानन्द! भगवान् राम जगत् के ईश्वर हैं, वही स्तुति योग्य हैं और भगवती लक्ष्मी उन्हीं के चरण-कमल का अर्चन करती हैं। वे कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा इन तीन माताओं को स्नेह करते है। अपने शरीर की कान्ति से उन्होंने करोड़ों कामों को जीत रखा है। ऐसे रावण के शत्रु और वशिष्ठ जी के शिष्य भगवान् राम जीव के स्वामी हैं।

तत्प्राप्त्युपायं गुरुपादपद्मसेवासमालब्धकृपाप्रसादम्।
भक्तिं प्रपत्तिं भगवत्प्रबोधं प्रेमा पुमर्थः परमोऽस्त्युपायः॥105॥

उन्हीं भगवान् को प्राप्त करने के लिए सद्‌गुरु सेवा से प्राप्त भगवान् की कृपा का प्रसाद भक्ति, संसार से वैराग्य और प्रपत्ति को सन्त उपाय बताते हैं। वस्तुतस्तु प्रेम ही पञ्चम पुरुषार्थ है और वही भगवाप्राप्ति का मुख्य उपाय है।

भगवद्विमुखैकरोदिनी भगवत्प्राप्तिविरोधिनी मता।
भवरोगकरा दुरोदरा ननु माया मयजासहोदरा॥106॥

भगवान् की माया ये मन्दोदरी की बहन जैसी है और यह भगवद्विमुखों को कष्ट देती है यही भगवान् की प्राप्ति में विरोधिनी है यही भवरोगों को उत्पन्न करती है और इसका परिणाम भयङ्कर होता है।

एको देवः कोशलाधीश एव एको मन्त्रस्तारको वै षडर्णः।

एका गाथा सद्गुणानां खरारेरेकं चिन्त्यं रामपादाब्जयुग्मम्॥107॥

हे रामानन्दाचार्य! एक ही देवता हैं भगवान् राम, एक ही मन्त्र है षडक्षर राममन्त्र। एक ही गाथा है भगवान् राम के दिव्यगुणों की गाथा और एक ही चिन्तनीय हैं भगवान् राम के चरण-कमल, यही फल है।

एवं चोक्त्वा राघवानन्द ईड्ये शान्ते जाते शिष्यसत्पारिजाते।
प्रीतोऽभीतो भक्तिमांश्चैव रामानन्दो नन्दन् पादपद्मं प्रपेदे॥108॥

इस प्रकार अर्थपञ्चक सिद्धान्त का निरूपण करके जब राघवानन्दाचार्य जी चुप हुए तब जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी ने प्रसन्न होकर निर्भीकता से भक्तिमान् होकर सद्गुरुदेव राघवानन्दाचार्य के चरण कमलों को पकड़ लिया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्यै।
सर्गोऽयं गुहमुखो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये षष्ठः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ सप्तम सर्गः ॥

भूयो मत्तः सर्ववेदान्तसारं श्रुत्वा रामानन्दनन्द स्वचित्ते।
यज्ज्ञात्वा वै लौकिके वैदिके वा किञ्चिद् ज्ञेयं नेष्यते साधकानाम् ॥01॥

हे वत्स रामानन्द! मुझसे सम्पूर्ण वेदान्त के सारभूत सिद्धान्त को फिर से सुनकर चित्त में प्रसन्न हो जाओ जिसको जानने के पश्चात् लोक और वेद में साधकों के लिए कुछ भी जानना अवशिष्ट नहीं रह जाता।

तं सिद्धान्तं प्राहुरग्र्या विशिष्टाद्वैतं वादं सर्वसिद्धान्तसारम्।
तस्मिन् मन्त्राः संहिताब्राह्मणोक्ताः स्मार्तं चार्षं ब्रह्मसूत्रं प्रमाणम् ॥02॥

हे रामानन्द! इसी सिद्धान्त को सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सारभूत मानकर विद्वान् लोग विशिष्टाद्वैववाद कहते हैं। इसमें तीन प्रमाण हैं। मन्त्र–ब्राह्मणात्मक वेदों के मन्त्र जिन्हें हम श्रुति कहते हैं और मन्वादि स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण और वेदव्यासप्रणीत ब्रह्मसूत्र।

मन्त्रा द्वेधा संहिताब्राह्मणस्थाः स्मार्तं शास्त्रं मानवं चार्षमन्यत्।
व्यासप्रोक्तं ब्रह्मसूत्रं हि सूत्रमेतज्ज्ञात्वा स्याद् यतिर्वै त्रिदण्डी ॥03॥

इसमें संहिता और ब्राह्मण में कहे हुए वेदमन्त्र और मनुस्मृति तथा और भी वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, पुराणादि, स्मृति और वेदव्यास प्रोक्त ब्रह्मसूत्र इस विशिष्टाद्वैतवाद में प्रमाण हैं।

अस्मिंश्चक्रे ब्रह्मसूत्रे च वृत्तिं सीतारामप्रेष्ठबोधायनोऽसौ।
शीघ्रं भाष्यं भाषितासे त्वमग्रं पाथेयं यत् पण्डितानां मनोज्ञम् ॥04॥

इस ब्रह्मसूत्र पर श्रीसीताराम जी जिनके प्रिय हैं ऐसे महर्षि बोधायन ने बहुत सुन्दर

वृत्ति लिखी है और वत्स रामानन्द तुम भी इस ब्रह्मसूत्र पर शीघ्र भाष्य लिखोगे जो पण्डितों का पाथेय बन जाएगा।

सिद्धान्तेऽस्मिन् त्रीणि तत्त्वानि चाहुश्चिच्चाचिच्च ब्रह्म ताभ्यां विशिष्टम्।
तत्र द्वाभ्यां यद्विशिष्टं तदेवाद्वैतं ब्रह्म व्याहरन्तीह विज्ञाः ॥05॥

इसमें चित् और अचित् दो विशेषण हैं। इनसे विशिष्ट है ब्रह्म, यही विशिष्टाद्वैत है और इन्हीं दोनों चिदचिद् से विशिष्ट होने के कारण इस ब्रह्म को विशिष्टाद्वैत कहते हैं और इनमें से जो जीव तत्त्व है वही प्रमाता हैं

तत्त्वेष्वेषु प्रोच्यते यत् प्रमाता तत्त्वं तद्धै सर्वथा जीवसञ्ज्ञम्।
बद्धं मुक्तं नित्यमेवेति तद्वै प्रोक्तं शिष्टैरेभिरग्र्यैश्च भेदैः ॥06॥

इन तीनों में जीव प्रमाता है और वही चित् तत्त्व है और वह शिष्टों एवं वेदों द्वारा नित्य, बद्ध और मुक्त तीन भेदों से कहा जाता है।

चिद्रूपोऽयं सर्वथा राममित्रं जीवात्माख्यो भ्राजते वै शरीरे।
अण्वाकारो निर्गुणो निर्विकारो यद्विख्यातो ब्रह्मणो वै प्रमाता ॥07॥

यही जीव अण्वाकार है, निर्गुण है, निर्विकार है और यही प्रमाता तत्त्व के नाम से जाना जाता है। यद्यपि परमात्मा स्वयं नित्य वस्तु हैं उनको प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है, पर साधकों को उनके प्रमाण की आवश्यकता है।

नित्यं शुद्धं ब्रह्म यद् वेदवेद्यं तत् प्रामाण्यं नैव चापेक्षते भोः।
किन्त्वस्माकं शुद्धये चेतसां वै काचिल्लीला तत्प्रमाणप्रसङ्गे ॥08॥

भगवान् नित्य हैं, शुद्ध हैं, व्यापक ब्रह्म हैं, उनको किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हमारे चित्त की शुद्धि के लिए प्रमाण चाहिए।

जीवश्चिद्वै दासभूतः खरारेरण्वाकारो निर्गुणो निर्विकारः।
सैवाऽवश्यं ब्रह्मप्राप्तौ यतेत जीवेत्तस्माज्जानकीजीवनाय ॥09॥

ये जीव निरन्तर अण्वाकार, निर्गुण और निर्विकार है। इसे भगवान् के लिए यत्न करना चाहिए और इसका यत्न सफल होना भी चाहिए।

जीवेष्वेते मानवा ईड्यवृत्ता ये वीक्ष्यन्ते रामचन्द्रस्य लीलाम्।
अन्ये केचिन् नो भजेरन् परेशं तेषां शक्तिस्तादृशी नैव दृष्टा॥10॥

जीवों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है जो भगवान् की लीला का गान करता है और ऐसी किसी में भी योग्यता नहीं है जो कि भगवान् को जान सके।

जिज्ञासन्तां ब्रह्म रामैकतत्त्वं जीवा यत्नैः सद्गुरुभ्यः श्रुतिभ्यः।
जीवस्यैतां जीवतां प्राह सूतः कौरे शास्त्रे शौनकादिभ्य एव॥11॥

प्रयत्न करके सद्गुरुओं की कृपा और श्रुतियों के माध्यम से जीवों को एकमात्र रामरूप तत्त्व की जिज्ञासा करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत में सूत जी ने यही तो शौनकादिकों से जीव की जीवता बतायी **"जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा"**।

नैक्यं जीवब्रह्मणोः स्यात्त्रिकाले नित्यावेतौ ब्रह्मजीवौ सदैव।
नित्यं तत्स्याद् ध्वंसभिन्नं यदेव ध्वंसाद्भिन्नौ सर्वथा ब्रह्मजीवौ॥12॥

किसी भी प्रकार तीनों कालों में ब्रह्म और जीव की एकता नहीं सिद्ध हो पाती क्योंकि ये दोनों नित्य हैं। नित्य वह होता है जो ध्वंस से भिन्न हो और ये दोनों ध्वंस से भिन्न हैं इसलिए दोनों की एकता सम्भव नहीं है।

जीवो ज्ञाता ब्रह्मणो राघवस्य कर्ता नित्यं कर्मणां स्यात् स्वभावात्।
भोक्ता सोऽयं सत्फलस्याफलस्य ज्ञेयो रामस्तस्य जीवः प्रमाता॥13॥

जीव ज्ञाता है और यह सत्कर्मों का कर्ता भी है और यह अणु है और यह प्रमाता है। रामचन्द्र जी ज्ञेय हैं।

जीवो ज्ञाता राघवो ज्ञेय एव ज्ञानं चास्य प्रेमभावश्च नित्यम्।
ज्ञाता ज्ञेयो ज्ञानमेतत्त्रिवेणी नित्यं सेव्या दर्शनाम्भोजभृङ्गैः॥14॥

जीव ज्ञाता है और परब्रह्म रामचन्द्र जी ज्ञेय हैं और उनके चरण की शरणागति ही ज्ञान है। यह त्रिवेणी निरन्तर विराजमान हो रही है। दर्शनकमल के भ्रमरों को इसका निरन्तर सेवन करना चाहिए।

जीवोऽणुर्वै चेतनश्चित्स्वरूपः सीताभर्तुः पादपद्मस्य दासः।
शेषो नित्यं शेषिणो राघवस्य एतद्धार्दं वैष्णवे सम्प्रदाये॥15॥

जीव ज्ञाता है और भगवान् ज्ञेय हैं, उसे सेव्य-सेवक भाव के ज्ञान का प्रयास करना होता है। जीव शेष है और भगवान् शेषी हैं, यही इस सम्प्रदाय का रहस्य है।

जीवः शेषो रामचन्द्रस्तु शेषी जीवो दासो रामचन्द्रस्तु नाथः।
जीवो ज्ञाता राघवो ज्ञेय एव सम्बन्धोऽयं राजते दर्शनेऽस्मिन्॥16॥

जीव शेष है, रामचन्द्र जी शेषी हैं, जीव दास है भगवान् राम स्वामी हैं। जीव ज्ञाता है भगवान् ज्ञेय हैं, यही सिद्धान्त इस दर्शन में व्याप्त है।

जीवो नित्यं किङ्करो राघवस्य जीवो मित्रं सर्वदा वै खरारेः।
रामः सेव्यः सेवको जीव एव एतद् बुद्ध्वा मुच्यते कर्मबन्धात्॥17॥

जीव दास है, भगवान् स्वामी हैं, जीव मित्र हैं, भगवान् उसके आश्रय हैं, जीव सेवक है, भगवान् सेव्य हैं यही इस विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय का सिद्धान्त है।

ज्ञाता कर्ता कर्मणां चैव भोक्ता योक्ता चित्तं रामचन्द्राङ्घ्रियुग्मे।
नित्यं शिष्यः शासनीयो हरेर्वै एतच्चित्रं मित्रयोश्चानयोश्च॥18॥

जीव दास है, भगवान् स्वामी है जीव ज्ञाता है, भगवान् ज्ञेय, जीव अनुशासनीय है, और भगवान् अनुशासक। यही इन दोनों का रहस्य है।

श्रौतान् मन्त्रान् संहिता ब्राह्मणोक्तान् श्रुत्वा गीतां रम्यरामायणं च।
ध्यायं ध्यायं ब्रह्मसूत्रं मनोज्ञं जीवो ज्ञेयाद् राघवं यत्नतश्च॥19॥

संहिता और ब्राह्मण में कहे हुए मन्त्रों को और रामयण को सुनकर, ब्रह्मसूत्र का बार-बार ध्यान करके जीव को परमात्मविषयक ज्ञान करना चाहिए।

अंशो जीवो मापतेर्वै विभूतिर्नित्यं नित्यः किङ्करो राघवस्य।
जिज्ञासुर्वै जानकीभर्तुरेव एषः सर्गो जीवलोकस्य दिव्यः॥20॥

जीव भगवान् राम का विभूतिरूप अंश है और यह निरन्तर राघव सरकार का नित्य सेवक है। जीव जिज्ञासु है भिन्न-भिन्न श्रुतियों से, स्मृतियों से, रामजी की कृपा से वह भगवान् को जान पाता है यही यहाँ का रहस्य है।

संसारोऽयं जङ्गमः स्थावरो वा सर्वः सत्यस्तस्य सत्यव्रतस्य।
एवं बुद्ध्वा बुद्धिमान् बोधसिन्धुं कौसल्येयं संस्मरेद् रामचन्द्रम्॥21॥

यह जड़ चेतनात्मक संसार सत्यव्रत श्रीरामजी की रचना होने के कारण सर्वथा सत्य है। इस प्रकार जानकर बुद्धिमान् व्यक्ति ज्ञान के सागर कौशल्या-कुमार श्रीराम का स्मरण करे।

जीवात्माऽयं नित्यभूतिर्विभूम्नो नित्यं सेव्यस्तस्य रामः कृपालुः।
दूरस्थोऽपि स्वेन प्रेम्णा मुकुन्दो जीवं रक्षत्यण्डकं कच्छपीव॥22॥

यह जीवात्मा भगवान् का विभूतिरूप अंश है और कृपालु रामचन्द्र भगवान् जीव के नित्य सेव्य हैं। दूरस्थ होने पर भी भगवान् श्रीराम अपने प्रेम से जीव की उसी प्रकार रक्षा करते हैं जैसे कच्छपी अपने अण्डे की रक्षा करती है।

एतावता जीव-ब्रह्म का यह समन्वय भी बड़ा मनोहर है।

जीवो देही देहतश्चास्ति भिन्नो रामे भेदो देहिनो नो कदाचित्।
एवं भूतं सर्ववेदान्तवेद्यं ज्ञात्वा चित्रं रामचन्द्रं भजेत॥23॥

जीव देही है, वह शरीर से सर्वथ भिन्न है और श्रीराम में देह-देही का भेद नहीं होता, वही देह हैं वही देही हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वेदान्तों के वेद्य जीवात्मा से विलक्षण परमात्मा श्रीराम का भजन करना चाहिए।

जीवश्चांशो रामचन्द्रस्य नित्यो दासो दीनानाथपादारविन्दे।
तस्मात् त्यक्त्वा सर्वथा स्वप्रपञ्चं सेवेतेड्यं राघवं रामचन्द्रम्॥24॥

जीव भगवान् श्रीराम का नित्य अंश है और वह दीनानाथ अर्थात् दीना अहिल्या और दीना शबरी के नाथ भगवान् श्रीराम के चरणकमल का नित्य दास है। इसलिए जीव का यह कर्त्तव्य है कि वह सम्पूर्ण प्रपञ्चों को छोड़कर भगवान् श्रीराम का भजन करे।

जीवो ज्ञाता ज्ञेय एवात्र रामो ब्रह्म व्याप्तं जङ्गमस्थावरेषु।
सीताजानिर्जीवमायाविशिष्टाद्वैतं त्रैतं जानकीलक्ष्मणाभ्याम्॥25॥

इस सिद्धान्त में जीव ही ज्ञाता है और यहाँ वह ब्रह्मरूप श्रीराम ज्ञेय हैं, जो चर-अचर सब में व्याप्त हैं, जो सीताजी के पति जीव-माया से विशिष्टाद्वैत और लीला में जानकी जी और लक्ष्मण जी के कारण त्रैत भी हैं। अर्थात् जानकी, लक्ष्मण, राम में तीन तत्त्व दिखायी देते हैं और वस्तुतः ये राम जी के विशेषण हैं और हैं ये विशिष्टाद्वैत ही दोनों।

तस्माद्धेतोः सत्प्रमाणं त्रयं वै प्रत्यक्षं स्याच्चानुमानं तथैव।
शाब्दं चेदं सूरयः प्राहुरस्मत्सिद्धान्ते वा आर्य बोधायनाद्याः॥26॥

उन परमात्मा की प्रभा के लिए हमारे सिद्धान्त में आर्य बोधायन आदि विद्वानों ने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण स्वीकार किये हैं।

प्रत्यक्षं वै पूर्वमेव प्रमाणं यस्मिन् सर्वे सूरयश्चैकमत्याः।
सान्निध्याद्वै जातु गोगोचराणां प्रत्यक्षं तत् यद् ततो जन्यमेव॥27॥

इनमें से सर्वप्रथम प्रमाण प्रत्यक्ष कहा गया है। इसमें सभी नास्तिक और आस्तिक दार्शनिक एकमत हैं। इन्द्रियों और विषयों के सन्निकर्ष में जो उत्पन्न होता है उसी को प्रत्यक्ष कहा जाता है।

अर्थानां वै यद् गवां सन्निकर्षे जन्यं ज्ञानं तद्धि प्रत्यक्षमेव।
तस्मिन् माने षड्विधाः प्राहुरार्यास्ताः संक्षेपात् त्वत्कृते वच्मि भद्र॥28॥

हे भद्र! इन्द्रियों और विषयों के सम्बन्ध में जो ज्ञान होता है उसी को विद्वान लोग प्रत्यक्ष कहते हैं। उस प्रत्यक्ष में छह विधाएँ हैं। इनको भी तुम सङ्क्षेप से सुनो–

श्रौत्रं नैत्रं रासनं त्वाचमेवं घ्राणोत्पन्नं मानसं चापि दिव्यम्।
प्रत्यक्षं त्वं षड्विधं तन्निबोध यज्ज्ञात्वाऽज्ञो मुच्यते कर्मबन्धात्॥29॥

इनमें से श्रौत्र अर्थात् श्रावण प्रत्यक्ष नैत्र अर्थात् चाक्षुष प्रत्यक्ष रासन अर्थात् जिह्वा से जन्य प्रत्यक्ष, त्वाच अर्थात् स्पर्शजन्य प्रत्यक्ष, घ्राणज अर्थात् नासिका से जन्य प्रत्यक्ष और मानस प्रत्यक्ष ये छह प्रत्यक्ष होते हैं। इनको जानकर साधक कर्मबन्धनों से छूट जाता है।

प्रत्यक्षैर्वै षड्भिरेभिः प्रमाता ज्ञातुं चेष्टे राघवं सप्रपञ्चम्।
साराऽसारं यद्धि सांसारिकं वै ज्ञात्वा जीवो मुच्यते कर्मबन्धात्॥30॥

इनमें से ये जो श्रावण, चाक्षषु आदि छः प्रत्यक्ष कहे गये इनके द्वारा ही जीव सांसारिक वस्तुओं को जान लेता है और इनके सारासर को समझकर इन्हें छोड़कर स्वयं भी वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है।

सामान्यैर्वै पञ्चबोधेन्द्रियैः किं सामान्याभिः किं मनोवृत्तिभिश्च।
ज्ञातुं शक्योऽयं प्रमाता कथं तं ब्रह्म व्याप्तं रामतत्त्वैकमीड्यम्॥31॥

एक शङ्का होती है कि पाँचों श्रवण, नेत्र, रसना, त्वक्, घ्राण और मन, ये सामान्य इन्द्रियाँ हैं। पाँच इन्द्रियाँ और मन इन सामान्य उपकरणों से उस दुर्बोध परमात्मा को प्रमाता कैसे जान सकता है।

एतं प्रश्नं सावधानं यतेऽहं रामं स्मृत्वा वै समाधातुमेव।
रामस्यैव प्राप्य बोधं सुदिव्यं जीवो ज्ञातुं शक्यते रामचन्द्रम्॥32॥

इस प्रश्न का समाधान करने के लिए श्रीराम जी की ही कृपा से मैं यत्न कर रहा हूँ। भगवान् राम का ही बोधबल लेकर जीव सब कुछ जान लेता है।

आत्मा नायं पाठनेन श्रुतीनां नायं बुद्ध्या नैव भूरिश्रुतेन।
लब्धुं शक्योऽयं स एवात्मनीनमङ्गीकुर्यात् तत्प्रसादेन लभ्यः॥33॥

यह परमात्मा वेद प्रवचनों से नहीं प्राप्त होते, मेधा से नहीं प्राप्त होते, बहुत बड़े ज्ञान से नहीं प्राप्त होते, श्रौतसिद्धान्त के चिन्तन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जिसे अपना बना लेते हैं उसी सन्त की कृपा से प्राप्त हो जाते हैं। जीव के यत्न से परमात्मा कभी प्राप्त नहीं होते। जीवात्मा और परमात्मा के बीच महात्मा ही मध्यस्थ होता है।

श्रावं श्रावं रामचन्द्रस्य लीलां दर्शं दर्शं कोटिकामाभिरामम्।
भोजं भोजं तन्मुखाब्जप्रसादं स्पर्शं स्पर्शं तत्पदाम्भोजयुग्मम्॥34॥

भगवान् के दिव्य चरित्रों को सुन सुनकर भगवान् की दिव्य-लीला को देख-देखकर भगवान् के मुखोच्छिष्ट-प्रसाद को बार-बार पाकर भगवान् के चरण-कमल को बार-बार स्पर्श करके-

घ्रायं घ्रायं सौरभं तत्तुलस्या ध्यायं ध्यायं सन्मनोवृत्तिभिस्तम्।
पश्यत्येनं वेदवेदान्तवेद्यं रामब्रह्म ज्ञातृचूडामणिर्वै॥35॥

बार-बार भगवान् के चरण की तुलसी का ग्रहण करके, श्रेष्ठ मनोवृत्तियों से बार-बार ध्यान करके। जिज्ञासुओं के चूड़ामणि साधक भगवान् को जान लेते हैं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।

एवं भक्त्या पादपद्मप्रपत्त्या जीवा ध्यात्वा कोटिकामैककाम्यम्।
रामं श्यामं लोकलोकाभिरामं पारे जाता भीमसंसारसिन्धोः॥36॥

इस प्रकार से दृढ़ भक्ति करके भगवान् के चरण में अपनी प्रपत्ति करके पूर्वकाल में भी घोर संसार-सागर से अनेक महानुभाव पार हो चुके हैं।

आत्मानं त्वं ब्रह्म जानीहि रामं रामानन्द श्रीमतो ब्राह्मणस्य।
सूनुर्भूत्वा विश्वभद्रं चिकीर्षुः प्रादुर्भूतस्तीर्थराजप्रयागे॥37॥

हे भद्र! तुम अपने को श्रीराम ब्रह्म जानो, तुम साक्षात् विश्व का भार उतारने के लिए प्रयाग में स्थित पुण्यसदन शर्मा जी के यहाँ जन्म लिये हो और तुम्हारा नाम रामानन्द है और इतना ही नहीं-

साक्षात्कर्ता सानुजं वैक्रमाब्दे खाक्षिप्रोर्मीके तुलस्याश्च दासः।
स्वाऽलङ्कारं चन्दनं याचमानं रामं रामं चिन्मये चित्रकूटे॥38॥

हे वत्स! आज से 1620 वर्ष विक्रमी के पश्चात् श्रीचित्रकूट में अपने तिलक के लिए चन्दन मांगते हुए लक्ष्मण जी से युक्त भगवान् श्रीराम को आपके प्रशिष्य तुलसीदास जी इन्हीं नेत्रों से निहारेंगे।

नो सन्देहं नास्तिकाश्चात्र कुर्युर्नैव स्वप्ने चास्तिकाः संशयीरन्।
कालेऽप्यस्मिन् दृश्यते रामचन्द्रो ब्रूमः सत्यं सत्यमेवात्र सत्यम्॥39॥

इस पक्ष में नास्तिक भी सन्देह न करे और स्वप्न में भी आस्तिक संशय में न रहे। इस काल में भी भगवान् राम इन्हीं नेत्रों के सामने प्रकट होते हैं और दर्शन देते हैं। यह हम शपथपूर्वक सत्य कह रहे हैं।

प्रत्यक्षैर्वै षड्भिरेभिर्मुकुन्दः साक्षात्कार्यः संशयो नैव कार्यः।
रामो दृश्यो जीवनेऽस्मिन् नृलोके सत्यं सत्यं सत्यमेतद् ब्रुवेऽहम्॥40॥

जिन छह इन्द्रियों की पहले बात की गयी उन्हीं से इसी जीवन में मनुष्य के द्वारा भगवान् का साक्षात्कार हो सकता है। यह मैं सत्य कह रहा हूँ, सत्य कह रहा हूँ, सत्य कह रहा हूँ।

एभिर्गोभिः सन्मनस्कैः सदैव गोविन्दोऽयं दृष्टिवर्त्म प्रयाति।
प्रत्यक्षेयं ब्रह्मसम्भूतिरुक्ता न प्रत्यक्षा मोहमायावृतानाम्॥41॥

इन्हीं इन्द्रियों से भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं अप्रत्यक्ष नहीं। ब्रह्मसम्भूति ही प्रत्यक्ष होती है पर जो मोहमाया से आवृत हैं, उनको कभी नहीं।

श्रोत्रेणैषा वाक्सुधा राघवस्य दिव्या नव्या पीयते साधुवर्गैः।
यां पीत्वा वै धूर्जटिः शम्भुलोकं त्यक्त्वाऽयोध्यावीथिषु भ्राम्यतीह॥42॥

इन्हीं इन्द्रियों के बीच श्रोत्र इन्द्रियों से भगवान् की वाक्सुधा का सन्तजन पान करते हैं। जिस वाक्सुधा को श्रोत्रेन्द्रिय पीकर स्वयं भूतभावन शिव शिवलोक को छोड़कर अयोध्या की गलियों में आज भी भ्रमण करते रहते हैं।

रूपं रम्यं कोटिकन्दप्रकाम्यं कन्दश्यामं सर्वलोकाभिरामम्।
नेत्रैरेभिर्दृश्यते चाधुनापि पूर्वेऽप्येवं लोकयामासुरग्र्यम्॥43॥

इन्हीं नेत्रों से कोटि-कन्दर्प कमनीय भगवान् राम के दर्शन होते हैं इस पर सन्देह नहीं करना चाहिए। जैसे पूर्व में भी इन्हीं चर्म-चक्षुओं से दशरथ आदि साधकों ने भगवान् को निहारा।

प्रह्लादाद्याः सत्त्वमुख्ये युगे च त्रेतायां वै वायुपुत्रादिभक्ताः।
गोप्यो गोपाः पाण्डवा वै तृतीये कर्माद्या वै तं कलौ दृष्टवन्तः॥44॥

सतयुग में प्रह्लाद आदि ने, त्रेता में हनुमान् जी प्रभृति ने, द्वापर में गोप-गोपी और पाण्डवों ने और कलियुग में कर्माबाई प्रभृति ने भी भगवान् को देखा।

एषां पार्श्वे लौकिकी नास्ति दृष्टिस्तेभ्यो दत्त्वा दिव्यदृष्टिं हरिर्वै।
आत्मानं स्वं दर्शयत्येव दिव्यं द्रष्टारोऽग्रे सूरदासादिभक्ताः॥45॥

जिनके पास लौकिक दृष्टि नहीं है, उन्हें अलौकिक दृष्टि देकर भगवान् अपना साक्षात्कार करा देते हैं। जैसे कलियुग में आगे चलकर सूरदास आदि भक्त भी भगवान् को देखेंगे।

माधुर्यं श्रीरामचन्द्रस्य दिव्यं जिह्वा साक्षात्कारमित्वा प्रसन्ना।
मत्वा दिव्यं यन्मुखोच्छिष्टसोमं मीरादेवी कालकूटं हि पाता॥46॥

भगवान् के माधुर्य का जिह्वा से साक्षात्कार होता है इसीलिए भगवान् का उच्छिष्ट पाने की इच्छा से मीरा देवी आगे चलकर कालकूट का पान करेंगी।

श्रीरैदासो राममन्त्रं प्रदाय मीराबाईं मोचयिष्यत्यघौघात्॥47॥

त्वच्छिष्याणां वै रमादासनाम्ना पश्चाद्यो वै सम्प्रयातः सुकीर्तिम्।

हे रामानन्द! तुम्हारे ही शिष्यों में एक रमादास या रैदास नाम से एक महात्मा होंगे। वे ही मीराबाई को राममन्त्र देकर संसार-सागर से मुक्त करेंगे।

स्पर्शं स्पर्शं पादपद्मं खरारेर्भाग्यं लब्ध्वा साधु चर्मेन्द्रियञ्च।

यत्प्राप्त्यर्थं श्रीतुलस्याश्च दासो याता शीघ्रं चिन्मयं चित्रकूटम्॥48॥

भगवान् के चरण-कमल का बार-बार स्पर्श करके चर्मेन्द्रिय भी धन्य हो जाती है। इसी की प्राप्ति के लिए तुम्हारे प्रशिष्य गोस्वामी तुलसीदास शीघ्र ही चिन्मय चित्रकूट के लिए प्रयाण करेंगे।

घ्रायं घ्रायं श्रीपदाम्भोजगन्धं सीताभर्तुर्नासिका नष्टशोका।

भग्ना या सा नष्टसाध्यप्रयासा भाग्याऽऽकाशं निर्मलं संविधाता॥49॥

भगवान् के चरण-कमल के श्री तुलसी-मकरन्द का बार-बार घ्राण करके यह घ्राणेन्द्रिय भी धन्य हो जायेगी और अपने भाग्याकाश को निर्मल बनायेगी।

स्थापं स्थापं सन्मनोमन्दिरे स्वे रामं श्यामं कोटिकामाभिरामम्।

सीतायुक्तं सर्वबन्धाद्विमुक्तं सन्तः साक्षात् कुर्वते नात्र शङ्का॥50॥

अपने श्रेष्ठ मनो-मन्दिर में श्रीराम की बार-बार स्थापना करके सन्तजन नीले मेघ के समान कोटि-कामों से भी सुन्दर सीतायुक्त, संसार के बन्धनों से विमुक्त प्रभु श्रीराम का निश्चित रूप से साक्षात्कार कर लेते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।

यं यं भक्तं दर्शयेद्रावणारिस्तस्मै तस्मै दिव्यशक्तिं ददाति।

नो श्रीरामं द्रष्टुमर्हन्ति लोका ये सामान्याः पापपङ्के निमग्नाः॥51॥

जिस-जिस भक्त को भगवान् दर्शन देने की इच्छा करते हैं, उसको भगवान् दिव्यदृष्टि दे देते हैं। क्योंकि रावण के शत्रु भगवान् को प्राकृत इन्द्रियों से युक्त व्यक्ति न तो देख सकता है, न सुन सकता है, न उनके माधुर्य का स्वाद ले सकता है, न उन्हें स्पर्श कर सकता है, न उनका घ्राण कर सकता है, न उन्हें अपने मनो-मन्दिर में ला सकता है।

नित्यं दूरे भाति यश्चेन्द्रियाणां यो वै बुद्धिं सर्वथैवास्त्यतीतः।
तं वै धीरा व्याप्तितश्चानुमाय बोद्धुं शक्यः स्वानुमानैकशक्तिः ॥52॥

जो परमात्मा इन्द्रियों से परे हैं और जो बुद्धि से अतीत हैं, उनको धीरजन अनुमान का आश्रय करके जान लेता है।

साध्यं हेतुं पक्षमेवात्र बिभ्रत् सीताजानिं शक्यते चानुमातुम्।
नैवोपाधिर्विद्यते तत्र कश्चिद्धेत्वाभासः सर्वजीवावभासे ॥53॥

वहाँ साध्य, हेतु और पक्ष का अवलम्ब लेकर सीतापति भगवान् का अनुमान किया जा सकता है। वहाँ अनुमान की बाधक कोई उपाधि नहीं होती और सम्पूर्ण जगत् को अवभासित करने वाले सीतापति भगवान् का अनुमान किया जा सकता है। वहाँ अनुमान की बाधक कोई उपाधि नहीं होती और सम्पूर्ण जगत् को अवभासित करने वाले प्रभु में कोई हेत्वाभास भी नहीं होता।

पञ्चाङ्गानां शास्त्रतश्चोपयोगात् सम्यक् शक्यश्चानुमातुं सुधीभिः।
तर्कः श्रेष्ठो यो हि वेदाऽविरोधी सोऽयं नूनं शम्बलं चानुमाने ॥54॥

पञ्चाङ्गों का प्रयोग करके साधक भगवान् राम का अनुमान कर सकता है और वेद-शास्त्राविरोधी तर्क भी वहाँ स्वीकार्य है। न्याय में पञ्चावयव पाँच होते हैं–यथा–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन। पर्वतो वह्निमान् धूमात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान्। यथा- महानसम् तथा चाऽयम्, तस्मात्तथा।

शाब्दं दिव्यं यत्प्रमाणं तृतीयं रामः शक्यो जातु तेनाऽवबोद्धुम्।
तद्धै नूनं सत्प्रमाणं तृतीयं येन ज्ञेयं ब्रह्म सीतातृतीयम् ॥55॥

भगवान् के लिए शब्दप्रमाण तृतीय प्रमाण है। उससे परमेश्वर को ठीक-ठीक जाना जा सकता है और यही तृतीय प्रमाण भगवान् को जानने में वास्तविक प्रमाण है।

या शाब्देन स्यात्प्रमा वै तृतीया रामज्ञाने वास्तवी सा प्रमा वै।
बिभ्रच्छाब्दं शाब्दिकाभ्यर्चिताङ्घ्री रामः शक्यः सर्वदा वै प्रमातुम् ॥56॥

शब्दप्रमाण के द्वारा जो तृतीय शाब्दी प्रमा होती है श्रीराम के ज्ञान में वही प्रमा वास्तविक होती है। क्योंकि भगवान् राम आप्तवाक्य से ही जाने जा सकते हैं। शब्दप्रमाण

ही भगवान् का तृतीय प्रमाण है उससे श्री सीताराम जी को प्रमा का विषय बनाया जा सकता है।

सीतारामौ सर्वथैवाऽप्रमेयौ प्रत्यक्षेण प्रापितैश्चानुमानैः।
शाब्देनैवं सत्प्रमाणेन नूनं रामो ज्ञेयो न त्रिकाले विमोहः ॥57॥

इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुमान और शाब्द इन तीनों प्रमाणों से भगवान् श्रीराम को प्रमित किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में त्रिकाल में भी मोह सम्भव नहीं है।

लोके वेदे नोपमा कापि तादृग् रामो मातुं शक्यते यादृशा वै।
तस्माद् रामज्ञानकर्मण्यथोक्तं विद्वद्भिर्नैवोपमानं कथञ्चित् ॥58॥

श्रीराम की लोक और वेद में कहीं उपमा नहीं मिलती। इसलिए विद्वानों के द्वारा यहाँ उपमान नहीं स्वीकृत हुआ। क्योंकि कहीं भी जब रामजी की उपमा मिलती नहीं तो उपमान को प्रमाण कैसे माना जाए।

आप्तैः प्रोक्तं यच्च सद्भिः पवित्रं शब्दं चाहुः सत्प्रमाणं महान्तः।
तेन ज्ञातुं शक्यते रामचन्द्रो लोको ब्रूते जातु वेदाः प्रमाणम् ॥59॥

आप्त पुरुषों द्वारा जो पवित्र प्रमाण प्रस्तुत किया गया है, उसी को शब्दप्रमाण कहते हैं, उसी शब्द प्रमाण के द्वारा भगवान् राम को पूर्णतः जाना जा सकता है, क्योंकि लोक भी वेद को ही प्रमाण कहता है।

एवं त्रेधा सत्प्रमाणप्रतिष्ठो रामं बुद्ध्वा श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठः।
तीर्त्वा भीमं घोरसंसारवार्धिं जीवो नूनं रामचन्द्रं प्रमाति ॥60॥

इस प्रकार तीनों प्रमाणों के बल पर भगवान् को जानकर यह जीव संसार-सागर को पार करके भगवान् राम के चरण-कमल को प्रपन्न हो जाता है।

जीवो दिव्यञ्जानकीजीवनाय जीवो दिव्यञ्जानकीजीवनाय।
जीवो दिव्यञ्जानकीजीवनाय जीवो दिव्यञ्जानकीजीवनाय ॥61॥

इस जीव को जानकी-जीवन भगवान् श्रीराम के लिए ही जिज्ञासा करनी चाहिए। इस जीव को जानकी-जीवन भगवान् को प्राप्त करने के लिए संसार में खेलना चाहिए, इस

जीव को जानकी-जीवन भगवान् के लिए ही उनकी स्तुति करनी चाहिए। इस जीव को जानकी-जीवन भगवान् की प्राप्ति के लिए संसार-चक्र से उपरत हो जाना चाहिए।

जीवो जीवञ्जानकीजीवनाय जीवो जीवञ्जानकीजीवनाय।
जीवो जीवञ्जानकीजीवनाय जीवो जीवञ्जानकीजीवनाय ॥62॥

यह जीव जानकी-जीवन भगवान् के लिए जीवन धारण करता हुआ दिखता है। यह जीव जानकी-जीवन भगवान् को प्राप्त करने के लिए जीवित रहे यही इसका हेतु है। यह जीव जानकी-जीवन भगवान् श्रीराम को अनुकूल करने के लिए जीवन धारण करे और यह जीव जानकी-जीवन भगवान् को प्राप्त करने के लिए ही इस शरीर को धारण करता है यह इसका लक्षण है।

यहाँ चार बार 'शतृ' प्रत्यय का प्रयोग करके चार अर्थों की व्यञ्जना की गई है।

जीवो जीवेज्जानकीजीवनाय जीवो जीवेज्जानकीजीवनाय।
जीवो जीवेज्जानकीजीवनाय जीवो जीवेज्जानकीजीवनाय ॥63॥

इस जीव को जानकी-जीवन भगवान् को प्राप्त करने के लिए जीना चाहिए। इस जीव को जानकीजीवन भगवान् को प्राप्त करने के लिए ही स्वयं निमन्त्रित करना चाहिए। इस जीव को जानकीजीवन भगवान् को प्राप्त करने के लिए ही सत्कृत होकर व्यापार करना चाहिए।

रामो रामः सर्वभूताभिरामो रामो रामः सर्वलोकाभिरामः।
कन्दश्यामः कोटिकामैककामः सीताजानिः काण्डकोदण्डपाणिः ॥64॥

हे रामानन्द! श्रीराम ही राम हैं अर्थात् साकेत विहारी राम ही अवध बिहारी श्रीराम हैं। वे सम्पूर्ण लोकों में एकमात्र सुन्दर हैं। वे नीले मेघ के समान श्यामल हैं, करोड़ों वाम उन पर सम्मोहित हो जाते हैं। सीताजी उनकी पत्नी हैं। बाण-धनुष उनके हाथ में हैं, ऐसे दिव्य देव देवादेव शङ्कर की सेवा भी जिन्हें प्राप्त है वे दशरथनन्दन राम एकमात्र परब्रह्म हैं।

एको देवः सर्वभूताप्तसेवो ब्रह्म व्यापी कान्तिकाम्यत्कलापी।
विज्ञानात्मा सर्वभूतान्तरात्मा अन्तर्यामी भक्तभावानुगामी ॥65॥

भगवान् राम एकमात्र देवता हैं। सम्पूर्ण भूतों की सेवा उन्हें प्राप्त है। वे ब्रह्म हैं, वे व्यापक हैं। उनकी नीलमेघ-कान्ति को देखकर मयूर भी नाच पड़ता है। वे विज्ञानात्मा हैं, सर्वभूतों के अन्तरात्मा हैं, अन्तर्यामी हैं और भक्तों के भावों का अनुगमन करते हैं।

नीलाम्भोजश्यामलः कश्मलघ्नः शान्तो दान्तो निर्गुणो निर्विकारः।
साकारोऽसौ सर्वसौन्दर्यसारः सर्वस्वामी कोटिशक्रप्रणामी॥66॥

भगवान् राम नीले कमल के समान श्यामल हैं। वे कश्मलघ्न हैं। वे शान्त हैं, दान्त हैं। वे निर्गुण और निर्विकार हैं। साकार भी हैं। सम्पूर्ण सौन्दर्यों के सारभूत हैं। सभी के स्वामी हैं और कोटि-कोटि इन्द्र उन्हें प्रणाम भी करते हैं।

सर्वे वेदा यं सदैवाऽऽमनन्ति सर्वे सन्तो यं च पश्यन्ति नित्यम्।
सर्वे लोका यत्पदाब्जं नमन्ति सोऽयं रामो ब्रह्म सीताभिरामः॥67॥

सम्पूर्ण वेद भी जिस पद का आमनन करते हैं। सम्पूर्ण सन्त जिनको निरन्तर निहारते हैं। सम्पूर्ण लोक जिनके चरणों में प्रमाण करते हैं वही सीताभिराम श्रीराम ब्रह्म हैं।

यं वै नित्यं श्रेष्ठसाद्गुण्यवित्तं श्रीवाल्मीकिः प्राह पाराशरात्मा।
तं सर्वज्ञं सर्वदोषानभिज्ञं ब्रह्म प्राहुर्योगिनो ध्यानगम्यम्॥68॥

जिनको सभी लोग श्रेष्ठ सद्गुणों का सागर कहते हैं। वही भगवान् सर्वव्यापी और सर्वसद्गुणों के निलय सर्वदोषों से वर्जित श्रीराम एकमात्र ब्रह्म हैं।

यं वै शैवाः शम्भुरित्यामनन्ति यं वै विष्णुं वैष्णवा आह्वयन्ति।
यं वै वेदा वेदवेद्यं वदन्ति यं वेदान्ता ब्रह्म इत्यालपन्ति॥69॥

शैवगण जिन्हें शङ्कर के रूप में मानते हैं। वैष्णवजन जिन्हें विष्णु अर्थात् नारायण कहते हैं। वेद जिनको ब्रह्म कहके बुलाते हैं और अन्य लोग भी जिनको भिन्न-भिन्न विधि से कहते हैं वे ही श्रीराम सन्तों के लिए ध्यानगम्य हैं।

पीतं वासो यो हि नित्यं वसानो यत्पादाब्जं योगिनां ध्यानगम्यम्।
यो वै धत्ते चण्डकोदण्डकाण्डं तं श्रीरामं ब्रह्म चैवात्र विद्धि॥70॥

जो पीताम्बर धारण करते हैं, जिनके हाथ में धनुष-बाण हैं, उन्हीं को हम ब्रह्म कह रहे हैं और उन्ही के व्यक्तित्वों को धूमिल करने की कुचेष्टा चार्वाक आदि दर्शन करते हैं

और मीमांसा जिसे कर्ममय मानती है। अद्वैत वेदान्त जिन्हें निर्गुण–निर्विकार कहता है उन्हीं श्रीराम को परम देवता समझो।

यत्पादाब्जं घोरसिन्ध्वेकपोतं यन्नामैव ब्रह्महत्यादिशत्रुः।
यस्य स्मृत्या योगिनो घ्नन्ति भोगं तं श्रीरामं व्यापकं ब्रह्म विद्धि॥71॥

जिनका चरणकमल घोर संसार सागर का जहाज है। जिनका नाम करोड़ों पापों को नष्ट करता है जिनकी सेवा सबको सुलभ नहीं है। जिनकी स्मृति से संसार का बन्धन अपने आप समाप्त हो जाता है, उन्हीं श्रीराम को यहाँ ब्रह्मरूप में समझो।

यच्छोभाया नोपमा वै त्रिलोक्यां व्रीड्यत्सूर्यो यत्प्रभावस्त्र्यधीशः।
यन्नामाऽग्निः पापपुञ्जापहारी सोऽयं रामो न्यस्तलोभादिकामः॥72॥

जिनकी शोभा की त्रिलोकी में उपमा नहीं है। जिनका प्रभाव सूर्यनारायण को भी लज्जित कर देता है, जो तीनों लोकों के अधीश्वर हैं। वही काम क्रोधदि से वर्जित देवता भगवान् श्रीराम हैं।

श्रीवाल्मीकिर्व्यासुपत्रो महात्मा यन्नामाब्धौ मज्जयत्येव नित्यम्।
घोरान् पापान् पापिनां वै मलानि रामं प्राहुः पण्डिता न्यस्तदण्डाः॥73॥

जिनका नाम महासागर सम्पूर्ण पापियों के पाप को डुबो देता है। ऐसे भगवान् राम जिनका स्मरण सम्पूर्ण लोकों के चित्त को हर लेता है, वे ही श्रीराम हम सब के आराध्य हैं।

रामो गेयो राष्ट्रमाङ्गल्यरूपो रामो ध्येयो ध्यानसर्वस्वभूतः।
रामो ज्ञेयो योगिनां चैव ज्ञेयो रामो धेयो ब्रह्मसूनोर्विधेयः॥74॥

राष्ट्र के मङ्गलरूप श्रीराम ही गान के योग्य हैं, ध्यान के सर्वस्वरूप श्रीराम ही ध्यान करने योग्य हैं, योगियों द्वारा ज्ञेय श्रीराम ही जानने योग्य हैं, और वशिष्ठ जी के शिष्य भगवान् राम ही हमारी धारणा के योग्य हैं।

रामः स्वामी भक्तभावानुगामी रामो रम्यः सत्प्रणम्यो मुनीनाम्।
श्रीवाल्मीकिः कोटिकोट्या शतानां यं वै गायत्येव रामायणानाम्॥75॥

भक्तों के भाव के अनुगामी भगवान् राम ही स्वामी हैं और मुनियों के प्रणम्य भगवान् राम ही रमणीय हैं जिनको करोड़ों करोड़ों रामायण से महर्षि वाल्मीकि गाते रहते हैं।

तं जानक्या ध्यानसर्वस्वभूतं रामं वन्दे भक्तवन्दारुवृक्षम्।
रामो रम्यः सत्प्रणम्यः सतां वै रामो गम्यो योगिनामेव नित्यम्॥76॥

जानकीजी के ध्यान सर्वस्वभूत भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के स्वरूप उन श्रीराम को मैं वन्दन करता हूँ। रामजी ही रम्य हैं और वही सन्तों के लिए प्रणम्य हैं, भगवान् राम ही योगियों के लिए गम्य हैं।

श्रीवाल्मीकिर्यज्जगादाऽर्बुदेषु सीतारामब्रह्म रामायणेषु।
तच्चाद्वैतं जीवमायाविशिष्टं सर्वाभीष्टं चेतसा ध्याय शिष्टम्॥77॥

हे रामानन्द! श्री सीताराम जी के गुणगणों से प्रेरित होकर महर्षि वाल्मीकि ने सौ करोड़ रामायणों में जिन सीताराम रूप ब्रह्म का गान किया। उन्हीं जीव-माया से विशिष्ट अद्वैत सभी के अभीष्ट परम शिष्ट भगवान् राम का चित्त से ध्यान करो।

कन्दश्यामं कोटिकामाभिरामं राजत्सीतं सद्गुणैः सम्परीतम्।
वेदैर्गीतं शीलनीतं विनीतं सीतारामं चेतसा ध्याय नित्यम्॥78॥

हे रामानन्द! परब्रह्म परमात्मा सर्धाहार, सबके नियन्ता, जिनको वेद निरन्तर गाते हैं, उन्हीं सीताराम जी का चित्त से नित्य ध्यान करो।

सर्वाधारं निर्गुणं निर्विकारं साकारं तं सर्वसाद्गुण्यसारम्।
दीनानाथं नाथनाथं रघूणां नाथं नाथं चेतसा ध्याय रामम्॥79॥

हे रामानन्द! सबके आधार, निर्गुण, निर्विकार, साकार, सर्वश्रेष्ठ गुणों के सारसर्वस्व दीना शबरी के नाथ, नाथों के नाथ, रघुओं के नाथ की भक्ति की याचना करते हुए चित्त से ध्यान करो।

यद्वामाङ्गे जानकी भाति नित्यं सौमित्रिर्वै दक्षिणे भाति यस्य।
यस्याग्रे वा आञ्जनेयो विभाति तं श्रीरामं चेतसा ध्याय नित्यम्॥80॥

जिनके वामाङ्ग में जनकनन्दिनी सीताजी विराजती हैं, जिनके दक्षिणाङ्ग में लक्ष्मण जी निरन्तर विराजते हैं, जिनके आगे हनुमान् जी विराज रहे हैं, ऐसे भगवान् राम को अपने चित्त में नित्य ध्यान का विषय बनाओ।

यत्पादाब्जं भीमविश्वाब्धिसेतुर्यन्माया वै मोहिनी सर्वनृणाम्।
यत्सत्त्वाद्धि विश्वमेतद् विभाति तं श्रीरामं चेतसा ध्याय वत्स॥81॥

हे वत्स! जिनके चरण-कमल संसारसिन्धु के सेतु हैं। जिसकी सत्ता से सम्पूर्ण विश्व विभासित हो रहा है, ऐसे श्रीराम को अपने चित्त में ध्यान करो। क्योंकि उन्हीं की माया सबको मोहित करती रहती है और ब्रह्मादि देवता उन्हीं के आगे स्वाधिकार में प्रवृत्त हो रहे हैं।

यन्नामाग्निर्दाहकः पापराशेरालातस्य प्रोद्धतस्तेजसाढ्यः।
यद्रूपं वै नेत्ररासायनञ्च तं श्रीरामं चेतसा ध्याय नित्यम्॥82॥

जिनका नामाग्नि सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है और जिनका तेज सर्वव्याप्त है और जिनका रूप नेत्रों का रसायन है ऐसे श्रीराम को चित्त में नित्य ध्यान करो।

यन्मायाया नैव पारं प्रयान्ति ब्रह्माद्या वै देवदेवाः सदैव।
सद्गन्धर्वाश्चारणाः किन्नराश्च तं श्रीरामं चेतसा ध्याय नित्यम्॥83॥

जिनकी माया का बड़े-बड़े देव नहीं पार पाते और जिनका व्यक्तित्व अत्यन्त व्यापक है, उन्हीं श्रीराम का चित्त में नित्य ध्यान करो।

यन्माहात्म्यं शक्यते नैव गातुं वेदैः सर्वैः सत्पुराणैर्गिरा च।
तं नीलाम्भोरुट्छविं लोकरत्नं सीतारामं ध्याय नित्यं विधेय॥84॥

जिनका माहात्म्य वेदों, पुराणों और सरस्वती द्वारा भी नहीं गाया जा सकता, उन्हीं नीलकमल के समान सुन्दर लोक के एकमात्र रत्न श्रीसीताराम जी को वत्स! अपने नित्य ध्यान का विषय बनाओ।

यं पश्यन्तः प्राप्तवन्तश्च सन्तो मायामोहं सर्वथैव त्यजन्ति।
वन्दे रामं रामरामाभिरामं मेघश्यामं कोटिकामैककामम्॥85॥

जिनके दर्शन करते हुए और जिन्हें प्राप्त किये हुए सन्त माया मोह को सर्वथा छोड़ देते हैं, उन्हीं परशुराम एवं सीताजी को आनन्द देने वाले कोटिकाम कमनीय मेघ के समान श्यामल श्रीराम को मैं राघवानन्दाचार्य वन्दन करता हूँ।

रामं रामं सर्वनेत्राभिरामं रामं रामं कोटिकामाभिरामम्।
रामं रामं सर्वलोकाभिरामं रामं रामं ध्याय सीताभिरामम्॥86॥

जो राम के भी राम अर्थात् परशुराम को भी आनन्द देते हैं जो सर्वलोक के अभिराम हैं, जो बलराम को भी आनन्द देते हैं। ऐसे भगवती सीता को आनन्द देने वाले भगवान् राम का ध्यान करो।

लोकाधीशं सर्वदेवाध्यधीशं सर्वाधीशं सर्वसिद्धाध्यधीशम्।
भूताधीशं जीवमायाध्यधीशं चेतोऽधीशं कोसलाधीशमेहि॥87॥

एकमात्र भगवान् राम जो देवों के अधीश हैं, भूतों के अधीश हैं, सिद्धों के अधीश हैं, ऐसे कौशलाधीश का चिन्तन करो।

यन्मायाया वश्यतां नीतपूर्वाः सर्वे देवा दानवा मानवाश्च।
यत्सत्त्वाद् वै सर्वमेतद्विभाति तं श्रीरामं चेतसा चेत वत्स॥88॥

जिनकी माया के वश में सभी देवता दानव और मानव प्राप्त हो चुके हैं, जिनकी सत्ता में यह सब असत्य होने पर भी प्रतिभासित हो रहा है, ऐसे श्रीराम को चित्त से जानने का प्रयास करो।

सर्वे मन्त्राः संहिता ब्राह्मणाश्च यं गायन्तो भ्राजमाना विभान्ति।
स्मार्तं चार्तं यं स्मरत्येव भक्त्या तं श्रीरामं चेतसा चेत वत्स॥89॥

सम्पूर्ण संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में कहे हुए मन्त्र जिन श्रीराम को गाते-गाते सुन्दर लगते हैं। सम्पूर्ण स्मृतिशास्त्र आर्त होकर जिनकी सत्ता का स्मरण करता है। हे वत्स! उन्हीं श्रीराम का तुम चित्त से चिन्तन करो।

यं श्रीरामं वै महाविष्णुमेव रामोद्गीता प्राह वै तापनीया।
नानामन्त्रैर्युक्तियुक्तैर्मनोज्ञैः सीतारामं चिन्तयैनं स्वमिष्टम्॥90॥

सम्पूर्ण तापनीयोपनिषद् अनेक मन्त्रों और युक्तियों से जिनको महाविष्णु कहती है, उन्हीं श्रीराम को तुम अपने चिन्तन का विषय बनाओ।

रामोद्गीता तापनीया श्रुतिर्यं गायं गायं नैव तृप्तिं जगाम।
सीतारामं लोकलोकाभिरामं भक्त्या नित्यं चेतसा चिन्तय त्वम्॥91॥

सम्पूर्ण रामतापनीयोपनिषद् जिनको गा-गाकर तृप्ति को नहीं प्राप्त हुए, उन्हीं सीताराम जी को तुम अपने इष्टदेव के रूप में चिन्तन करो।

यन्नामेद्यं जप्यमानं मरेति श्रीवाल्मीकिः श्रद्धया चारु जप्त्वा।
सिद्धिं प्राप्तो निर्विकल्पे समाधौ तं श्रीरामं चेतसा चेत साधो ॥92॥

श्रीवाल्मीकि महर्षि ने जिनके नाम को उल्टा करके जपा और सिद्धि को प्राप्त किया उन्हीं श्रीराम को तुम अपने चित्त से चिन्तन का विषय बनाओ।

यौ श्रीसीताराघवौ ब्रह्मपुत्रो मत्वा ब्रह्म मन्वधीशो मनस्वी।
मन्वाख्यानस्तप्यमानोऽधिजज्ञे तं श्रीरामं चेतसा चेत भद्र॥93॥

जिन श्रीराम को स्वयम्भू मनु ने परब्रह्म माना और तपस्या से प्राप्त किया उन्हीं को तुम अपने चित्त में चिन्तन का विषय बनाओ।

यं श्रीरामं नैमिषे श्रीमनुर्वै वव्रे पुत्रं ब्रह्मपुत्रो महात्मा।
तं श्रीरामं निर्गुणं निर्विकारं रामानन्द स्मर्तुमर्हस्यमोघम्॥94॥

हे रामानन्द! जिन श्रीराम को घोर तपस्या करके नैमिषारण्य में स्वयम्भूव मनु ने अपने पुत्र के रूप में वरण किया। उन्हीं निर्मल-निर्विकार श्रीराम को तुम चित्त से स्मरण करने योग्य हो।

यन्माहात्म्यं नो विदुर्देववृन्दा नैवं सिद्धाश्चारणा नैव किञ्चित्।
तं श्रीरामं सर्ववेदान्तवेद्यं रामानन्द श्रद्धया वेत्तुमर्हः॥95॥

हे रामानन्दाचार्य! जिन श्रीराम का माहात्म्य देव, दानव, राक्षस, सिद्ध, गन्धर्व नहीं जान पाये उन सर्वव्यापी परमात्मा को तुम जानने योग्य हो।

गायं गायं शाश्वती रामलीला ध्यायं ध्यायं श्यामलं रामरूपम्।
धायं धायं चेतसा ब्रह्म रामं तर्तुं शक्यो घोरसंसारसिन्धुम्॥96॥

हे रामानन्दाचार्य! बार-बार भगवान् की शाश्वत लीला को गाकर निरन्तर उनके श्यामल रूप का ध्यान कर-कर के अपने चित्त में उन परमात्मा को बार-बार बिठाकर तुम्हारे द्वारा घोर संसार-सागर तरा जा सकता हैं

सीतारामौ दम्पती ब्रह्मरूपौ दिव्यौ देवौ भग्नसंसारकूपौ।
श्रौते यज्ञे दीक्षितौ लब्धशिक्षौ नित्यं रामानन्द चित्तं नय त्वम्॥97॥

हे रामानन्दाचार्य! सीताराम जी दिव्य दम्पती हैं और वे सर्वथा श्रौत यज्ञों को करते रहते हैं इसलिए उनको अपने चित्त में ले आओ।

तस्मिन्नीते रामचन्द्रे ससीते दूरध्वान्तं चारुचित्तं स्वकीयम्।
दूरेशङ्कं द्रष्टुमर्हस्यनल्पस्निग्धं दिव्यं भग्नसंशीतिराशिः॥98॥

इन्हीं सीता सहित श्रीराम के अपने चित्त में आ जाने पर तुम्हारा चित्त अन्धकार से रहित हो जाएगा और तुम उसे दिव्य प्रकाशमान होते हुए देखोगे।

सीतारामौ दम्पती दिव्यरूपौ चेतोयातौ सर्वसौन्दर्यमूर्ती।
कर्तारौ तौ निर्विकारं मनस्ते रामानन्द स्मर्तुमर्हस्त्वमेव॥99॥

रामानन्द! सीताराम जी दिव्यदम्पती हैं। यह चित्त में जब आ जाएंगे तो सब कुछ मङ्गल कर देंगे इसलिए उन्हीं का चिन्तन करो।

ज्ञायं ज्ञायं तं परब्रह्मरूपं सीतारामं कोसलानां च भूपम्।
निश्चिन्तस्त्वं सर्वलोके विहर्ता रामानन्द न्यस्तदण्डो विभायाः॥100॥

इस प्रकार ब्रह्मरूप एकमात्र राजा सीताराम जी को निरन्तर ध्यान का विषय बनाते हुए, निश्चिन्त होकर तुम सभी लोकों में विहार कर सकते हो और न्यस्तदण्ड होकर सुशोभित रहो, यही मेरा आशीर्वाद है।

यन्मायैषा वैष्णवी चैकरूपा यस्याग्रे वै भ्राजते नर्तकीव।
मायाधीशं कोसलाधीशमेनं भक्त्या प्रीत्या भावयन् भाहि भद्र॥101॥

जिनकी माया वैष्णवी हैं सर्वथा एकरूप होने पर भी भगवान् के सामने नर्तकी की भाँति रहती हैं। उन्हीं श्रीराम जी को भाववश्य करते हुए रामानन्द तुम शोभायमान हो।

संसारोऽयं नश्वरो भग्नशान्तिः पापाचारैः सर्वथा सेव्यमानः।
रामं ध्यात्वा ब्रह्म सीताभिरामं रामानन्द त्वं सुखं शेष्व वत्स॥102॥

ये संसार नश्वर है, इसमें कोई शान्ति नहीं है। ये पापियों के द्वारा सेवित हो रहा है इसलिए भगवान् का ध्यान करके तुम इसमें भी सुख से सो सकते हो।

नीलाम्भोजश्यामलं सौम्यमूर्तिं सीतामित्रं विस्फुरद्दिव्यकीर्तिम्।
कन्दर्पाभं मञ्जुलाभं जनानां ध्यायं ध्यायं मोक्ष्यसे घोरबन्धैः ॥103॥

नीले कमल के समान श्यामल, सौम्यमूर्ति सीताजी ही जिनकी मित्र हैं, ऐसे जिनकी दिव्यकीर्ति का विस्तार हो रहा है, उन श्रीराम का निरन्तर ध्यान करते हुए तुम संसार-सागर से मुक्त हो सकते हो।

कोटिमनोजमनोहरमूर्तिं सेवकवृन्दमनोरथपूर्तिम्।
विश्वविभातसुमङ्गलकीर्तिं राममिहाश्रय मुक्तकुबन्धः ॥104॥

करोड़ों कामदेवों के समान जिनकी मनोहर मूर्ति है और जो भक्तों के मनोरथ की पूर्ति करते रहते हैं, ऐसे जिनकी कीर्ति विश्व में विख्यात हो रही है, उन श्रीराम जी का ही तुम आश्रय लो।

राममनुस्मर मङ्गलमूर्तिं राममयैकमनाः शुभयस्व।
राममुपास्व निरस्तकुशङ्को राममवाप्नुहि देववरेण्यम् ॥105॥

मङ्गलमूर्ति श्रीराम का ही स्मरण करो, उनकी दिव्यकीर्ति का चिन्तन संसार की शङ्का छोड़कर श्रीराम को भजो, अन्ततोगत्वा सभी बन्धनों से मुक्त होकर श्रीराम को प्राप्त कर सकोगे।

यदा कन्दश्यामो जनदृगभिरामो रघुवरो विराजेच्छ्रीसीतः श्रुतिनिकरनीतश्च भगवान्।
भविष्यत्यालम्बी तव नयनमार्गे सुमतिमान् तदा रामानन्द त्वमतिकृतकृत्योऽसि भविता ॥106॥

जब कोटि काम कमनीय भगवान् श्रीराम तुम्हारे चित्त का आलम्बन कर लेंगे। हे रामानन्द! तब तुम कृतकृत्य हो जाओगे।

यदा ते सङ्कल्पा विधिनियमपङ्काद् विरमिता भविष्यन्त्यात्मार्थं विदितपरमार्थाः सुमधुराः।
तदा संसाराब्धिं कृतसुरभिपादं सपदि भो तरन् रामानन्द त्वमपि कृतकार्योऽसि भविता ॥107॥

जब तुम्हारे सङ्कल्प विधि-निषेध से मुक्त हो जायेंगे और परमार्थ को जान लेंगे, तब तुम हे रामानन्द! संसार-सागर को गाय के खुर के समान समझकर इसे शीघ्र पार करके कृतकृत्य हो जाओगे।

भक्तिः प्रपत्तौ च सहायिकाऽस्ति सर्वे प्रपत्तेरधिकारभाजः।

इदं ह्यवोचं शतधा समीक्ष्य समस्तशास्त्राणि बटो त्रिदण्डिन्॥108॥

भक्ति परमात्मा की शरणागति में सहायिका है और भगवान् की शरणागति में सबका अधिकार है। हे रामानन्दाचार्य! यह मैंने अनेक बार शास्त्रों का चिन्तन करके तुम्हें सुनाया है।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं सप्तमो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्यप्रणीते रामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये सप्तमः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्री राघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ अष्टमः सर्गः ॥

इत्थं गुरुः सदुपदेशसुधां च रामानन्दं प्रपाय्य हि विधापयति स्म भाष्यम्।
गीतां भवोपनिषदो ननु ब्रह्मसूत्रं सिद्धान्ततो निगमयन् निजशिष्यकेण॥01॥

इस प्रकार अपने पटु शिष्य रामानन्द को उपदेशामृत का पान कराकर जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य जी ने उनसे तीन ग्रन्थों पर भाष्य लिखवाया। अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त से श्रीमद्भगवगीता, ईशावास्य, कठ, केन, प्रश्न, माण्डूक्य, मुण्डक, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य और वृहदारण्यक इन ग्यारहों उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र को उन्होंने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के ही द्वारा रामानन्दाचार्य से सम्बद्ध और निगमित करवाया।

वेदान्तवादमपि वादयितुं विशिष्टाद्वैतं निरस्तशमलं बुधवर्यवन्द्यम्।
यस्मिन् समन्वयपुरस्सरमेव भाति सम्प्रेरितं गुरुवरेण च राजमानम्॥02॥

राघवानन्द जी की प्रेरणा से ही रामानन्दाचार्य जी के जिन तीनों भाष्यों में वेदान्त का विद्वानों द्वारा वन्दित विशिष्टाद्वैतवाद विराजमान है, उसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं है।

यस्मिन् प्रमाणत्रितयेन विराजमानं ब्रह्मैव नित्यसगुणं ननु रामसंज्ञम्।
सीताऽपि संविदनघा ननु ब्रह्मरूपा द्वावेव नित्यचिदचित्सहितौ विभातः॥03॥

जिस भाष्य में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीनों प्रमाणों के सहित विराजमान हैं नित्य सगुण श्रीरामनामक ब्रह्म। सीताजी भी संविदरूप निष्पाप हैं और ये दोनों चिदचित् से विशिष्ट भी हैं।

शेषो जगच्चिच्चिदात्मक एव यस्मिन् साकेतनाथरघुनन्दन एव शेषी।
दासस्तु जीवनिकरो ननु राघवस्य स्वामी सदैव जनकेन्द्रसुतापतिश्च॥04॥

जिस विशिष्टाद्वैतवाद में चिदचिदात्मक यह समस्त जगत् शेष अर्थात् दास है और साकेताधिपति भगवान् श्रीराम ही शेषी हैं, यह समस्त जीव भगवान् का सेवक है और भगवान् सीतापति इस जीव-जगत् के स्वामी हैं।

यस्मिन्नृणां भगवता सह नित्यभेदः स्वारूप्यतो न खलु तत्र चकास्ति शङ्का।
सम्बन्धतः क्वचिदपि श्रुतिमन्त्रतश्च ऐक्यं विभाति च तयोर्न हि जातु सत्यः ॥05॥

जिसमें जीवात्मा का परमात्मा से नित्यस्वरूपभेद है। वहाँ किसी प्रकार की शङ्का नहीं है। कहीं-2 जो श्रुतियों में ऐक्य कहा गया है वह सम्बन्धतः कहा गया है, स्वरूपतः नहीं।

यस्मिन् विभाति सगुणं ननु रामसंज्ञं ब्रह्माऽद्वयं कलितदिव्यकलेवरञ्च।
मायागुणान्महिमतः सततं ह्यतीतं सीतासमेतमिह राजति भक्तिगम्यम् ॥06॥

इस विशिष्टाद्वैतवाद में श्रीराम नामक तत्त्व सगुण तत्त्व है और वह दिव्य- देहधारी हैं, सीता के समेत निरन्तर विराजमान हैं और वह भक्ति से प्राप्त हैं।

तत्त्वत्रयात्मकमिदं किल वादरत्नं यस्मिंश्चकास्ति बुधतल्लजवन्दितं च।
यस्मिन् विभाति नितरां हि प्रपत्तियोगो यस्मिंश्च भक्तिमहिमा परिजृम्भते वै ॥07॥

इस विशिष्टाद्वैतवाद में तीन तत्त्व हैं- चित्, अचित् और विशिष्ट और यहाँ प्रपत्ति नामक योग है और भक्ति की महिमा उसमें विराजमान है।

गीतावृषध्वजमहोपनिषच्छ्रुतीर्वै सद्ब्रह्मसूत्रमधिकृत्य विधाप्य भाष्यम्।
प्रस्थानलोक इह लोकविलोचनेन प्रीतो बभूव वटुना सुगुरुः प्रकामम् ॥08॥

आदि गुरु श्री राघवानन्दाचार्य जी ने अपने सुयोग्य शिष्य श्रीरामानन्द से गीताजी एवं वृषध्वज अर्थात् रूद्र संख्या वाली ग्यारह ईशावास्य, कठ, केन, प्रश्न, माण्डूक्य, मुण्डक, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक इन महान् उपनिषदों की सभी श्रेष्ठ श्रुतियों पर एवं सद्ब्रह्मसूत्र अर्थात् वेदव्यास द्वारा विरचित ब्रह्मसूत्र को अधिकृत करके मङ्गलमय भाष्य लिखवाकर अर्थात् अपनी प्रेरणा से इन भाष्यों की रचना कराकर प्रस्थानत्रयी भाष्य की रचना से श्रेष्ठ वटु रामानन्दाचार्य से जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए।

ग्रन्थं च वैष्णवमताम्बुजभास्करं वै दृष्ट्वा कृतं सुकविना वटुना त्वनेन।
कीर्तिं जगत्त्रयसुमङ्गलदां च रामानन्दस्य विश्वगुरुरास्त प्रसन्नचेताः ॥09॥

जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य ने जब यह देखा कि वैष्णव मत अम्बुजभास्कर वैष्णव विशिष्टाद्वैतवाद का प्रामाणिक ग्रन्थ इन्हीं श्रेष्ठ कवि रामानन्द की रचना है और उन्होंने यह भी निहारा कि रामानन्द की कीर्ति तीनों लोकों के ताप को हर रही है तब जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य रामानन्दाचार्य पर बहुत प्रसन्न हुए।

आहूय वेदविदुषो विबुधप्रणामान् विप्रान्नृपालनिकरान् वणिजश्चतुर्थान्।
मूर्धाभिषिक्तमकरोत् सुयतिं च रामानन्दं जगद्गुरुपदे जगदेकपूज्यः॥10॥

संसार के एकमात्र पूज्य आद्यगुरु राघवानन्दाचार्य जी ने देवता भी जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे वेदों के विद्वान् ब्राह्मणों को श्रेष्ठ राजाओं को, वैश्यों को और चतुर्थ वर्ण शूद्रों को बुलाकर उन्हीं रामानन्दाचार्य को जगद्गुरु पद पर मूर्धभिषिक्त किया।

क्योंकि मूर्धाभिषिक्त आचार्य वही हो सकता है जिसका चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण सुन्दर मिट्टी से बने हुए घड़े से, क्षत्रिय स्वर्णमय घड़े से वैश्य रजतमय घड़े से और शूद्र रौप्यमय घड़े से अभिषेक कर दे।

आज रामानन्दाचार्य का चारों ने अभिषेक किया जिससे सिद्ध है कि वे समस्त हिन्दू जनता के निर्बाध जगद्गुरु बन गये।

गङ्गाजलेन चतुरब्धिसमाहृतेन तैर्थैः पयोभिरथ राघवशब्दपूर्वः।
पट्टाभिषिक्तमकरोद् यतितल्लजं तमाचार्यपावनपदे ननु हिन्दुनृणाम्॥11॥

राघवानन्दाचार्य जी ने गङ्गा जल से, चारों समुद्रों के जल से एवं सभी तीर्थों के जल से यतियों में श्रेष्ठ रामानन्द को हिन्दू-जनता के पावन आचार्यपद पर पट्टाभिषिक्त कर दिया।

शङ्खान् प्रदध्मुरमरा मुनिसिद्धसङ्घा भेर्यादिदुन्दुभिमुखानि च वादितानि।
दिव्या स्म वर्षति जगद्गुरुराजरामानन्दस्य मूर्ध्नि नवनन्दनपुष्पवृष्टिः॥12॥

अर्थात् जब जगद्गुरु रामानन्द का जगद्गुरु पद पर पट्टाभिषेक हुआ तब जगद्गुरु के मस्तक पर अलौकिकी नन्दन पुष्प की वृष्टि हुई और भेरी आदि दिव्य वाद्य बज उठे।

इत्थं जगद्गुरुपदे सुयतिं च रामानन्दं गुरुः समभिषिच्य बभूव तृप्तः।
निर्माय पर्णसदनं शुचिपञ्चगङ्गाघट्टे न्यवीविषदमुं महनीयमूर्तिम्॥13॥

इस प्रकार जगद्गुरु पद पर रामानन्दाचार्य को विधिवत् अभिषिक्त कर जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य तृप्त हुए और पञ्चगङ्गा घाट पर पत्तों की कुटी बनाकर वहीं उन महनीय मूर्ति रामानन्दाचार्य जी को विराजमान कर दिया।

काश्यां कपर्दिकरशूलविराजितायां श्रीजाह्नवीतरलतर्जितपातकायाम्।
श्रीविश्वनाथपदपङ्कजमण्डितायां देवैश्च सिद्धनिकरैः परिपूज्यमानः॥14॥

भगवान् शङ्कर के श्रीहस्त में सुशोभित त्रिशूल पर विराजमान और भगवती गङ्गा के तरङ्गों से जहाँ पापों को फटकारा गया श्रीविश्वनाथ के चरणकमल से मण्डित उस काशी में देवता, ऋषि और सिद्धसमूहों से पूजित होते हुए।

कृत्वा जनान् रघुपपादपयोजभक्तानानन्द आर्यचरितः समयाऽम्बिकेशम्।
सद्यो विवेश मतिमान्निकषाऽन्नपूर्णां श्रीराघवश्च प्रमुदैव वसिष्ठतेजः॥15॥

श्रीराघवानन्दाचार्यजी महाराज असङ्ख्य लोगों को भगवान् श्रीराम के चरणकमल के भक्त बनाकर, भगवान् विश्वनाथ के समीप भगवती अन्नपूर्णा के निकट, प्रसन्नतापूर्वक वशिष्ठजी के तेज में प्रविष्ट हुए।

लीने वसिष्ठशुचितेजसि राघवार्ये दिव्यास्तदैव सुरदुन्दुभयः प्रणेदुः।
पुष्पाणि नन्दनभवानि सुराश्च रामानन्दे मुदैव ववृषुः श्रितशिष्यवृन्दे॥16॥

इस प्रकार से जब जगद्गुरु राघवानन्दाचार्य वशिष्ठ तेज में विलीन हो गये तब देवताओं की दुन्दुभियाँ सहसा बज उठीं और देवताओं ने भी नन्दनवन के पुष्प शिष्यवृन्दों सहित विराजमान रामानन्दाचार्य जी पर बरसाने लगे।

तत्रैव वासमकरोच्छुचिपञ्चगङ्गाघट्टे विघट्टितजगत्त्रयपापहट्टे।
सच्छिष्यपूजितपदाम्बुजचारुरामानन्दः प्रकल्पितजगन्नवमङ्गलश्च॥17॥

उस पञ्चगङ्गा घाट पर जहाँ तीनों लोकों के पापों को समाप्त कर दिया गया है, रामानन्दाचार्य जी ने अपने शिष्यों के सहित निवास किया। शिष्यगणों से पूजित चरणकमल और विश्व के कार्य की जिन्होंने सङ्कल्पना की ऐसे रामानन्दाचार्य उस कुटी में वास करके भजनानन्द से युक्त हो गए।

प्रातः समुल्लसितसान्ध्यविधानतेजा मध्ये दिवा समनुपालितसान्ध्यकर्मा।
सायन्तनीञ्च समुपास्य मनोज्ञसन्ध्यां विद्वान् ननन्द परिनष्टसमस्तपापः॥18॥

श्रीरामानन्दाचार्य जी ने प्रातःकाल निरन्तर सन्ध्योपासन करके दिव्य तेज प्राप्त किया। वे मध्याह्न सन्ध्या सदैव नियमतः करते रहे और सायन्तन सन्ध्या की भी उपासना करके त्रिकाल सन्ध्या करके विद्वान् रामानन्दाचार्य समस्त पापों को नष्ट करके बहुत प्रसन्न हुए।

प्रातर्विधिं च समुपास्य सदैव शान्तः सत्सङ्गरङ्गपरिरञ्जितचित्तवृत्तिः।
नित्यञ्च पायसमयं बुभुजे बुधोऽसौ तेनैव पायसभुगेष जगत्प्रसिद्धः॥19॥

सत्सत्सङ्ग के आनन्द से जिनकी चित्तवृत्ति रंगी हुई थी ऐसे शान्त श्रीरामानन्दाचार्य प्रत्येक दिन प्रातर्नियम करके प्रसन्न रहते थे और वो नियमतः जीवनभर केवल खीर पान करके विराजते रहे इसलिए उन्हें जगत् में पायसव्रती की ख्याति मिली।

दध्मौ स शङ्खमनघं महसा महीयान् कालत्रयेऽपि परिमर्दितविश्वपापम्।
तेनैव शङ्खध्वनिना जगदेकवन्द्यो विष्वक् चकार सुमुखं नितरां हि विश्वम्॥20॥

निरन्तर वे तीनों काल पापहारी शङ्ख ध्वनि करते थे, इसी से इस जगत् को उन्होंने निष्पाप और प्रसन्न कर दिया।

शङ्खध्वनिं किल चकार सदा त्रिकालं नादेन तेन स निनाय समस्तदोषान्।
दोषाकराननविमर्दितसर्वतापस्तेजोनिधिश्च भगवान् यतितल्लजोऽसौ॥21॥

वे निरन्तर तीनों काल शङ्ख बजाते रहे जिससे कि सभी के दुःख का अन्त हो जाये। अपने चन्द्रमुख से तापों को दूर करने वाले रामानन्दाचार्य दिव्य स्वरूप में विराजे।

धन्यां व्यधात्स्वजनुषा जननीं सुशीलां मान्यं च पुण्यसदनं गुणतो व्यधत्त।
श्रीवैष्णवैः समनुलालितपादपद्मो रामस्य चारुचरितं सममन्वकार्षीत्॥22॥

रामानन्दाचार्य जी ने अपने दिव्य जन्म से सुशीला जी को धन्य कर दिया। अपने गुणों से पुण्यसदन शर्मा को माननीय बना दिया और श्री वैष्णवों द्वारा जिनके चरणकमल की पूजा होती है ऐसे रामानन्दाचार्य जी ने साथ ही भगवान् श्रीराम के मङ्गलमय चरित्रों का अनुकरण किया।

देवाश्च सिद्धनिकरा मुनयो नराश्च गन्धर्वयक्षवरचारणचक्रकाणि।
विष्वग्-विभूतय इमा नितरां हि रामानन्दस्य चारुचरणौ सततं प्रणेमुः॥23॥

अर्थात् सभी देवता, सिद्ध, मुनि, मनुष्य गन्धर्व, चारण आदि विशिष्ट विभूतियों ने भक्ति से अभिभूत होकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरणकमलों को प्रणाम किया।

सिंहासनं कनकसारमयं महीयः सद्धाम लज्जितमनोहरबालसूर्यम्।
यस्मै सदा स्पृहयते स्म महेन्द्रकोटिस्तत् पुण्यसद्मतनयः सुखमासिषेवे ॥24॥

वह सिंहासन जो कि एकमात्र स्वर्ण से निर्मित था जिसके महान् तेज से करोड़ों बालसूर्य लज्जित थे, जिस पर करोड़ों-2 इन्द्र स्पृहा करते थे कि यह सिंहासन मुझे मिल जाये, ऐसा दिव्य सिंहासन पुण्यसदन के पुत्र रामानन्दाचार्य की सेवा में आकर उपस्थित हुआ।

द्वे चामरे चमरिरोमकृते मनोज्ञे देहप्रभाविजितकोटिकरोहिणीशे।
ये सख्यमापतुरनन्तकराब्जयोश्च ते वीजनाय सुयतेश्च समागते वै ॥25॥

वे दो चामर जिनके तेज से करोड़ों चन्द्रमा लज्जित हो रहे हैं जो चमरी के केश-रोम से निर्मित हैं वे आज जो जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के प्रथम शिष्य अनन्तानन्द के मित्र बन गए थे। वे आज रामानन्दाचार्य की सेवा में डुलाने के लिए स्वयं उपस्थित हुए।

द्वे यष्टिके कनककल्पलतासमाने यत्तेजसा समनुलज्जितहेमशैले।
ते सेवने स्वमनुयात इहापि पुण्ये ये सौख्यमापतुरहो सुखपाणिपद्मे ॥26॥

आचार्य के लिए दो सुन्दर सोने की छड़ियाँ उपस्थित हुईं, जिनके तेज से सोने के पर्वत भी लज्जित हो रहे थे। ये जगद्गुरु की सेवा में उपस्थित हुईं जो सुखानन्दाचार्य जी के कर-कमल की मित्र बन गईं थीं।

छत्रं मनोहरतमं विविधोपकर्णैः सन्निर्मितं च खचितं मणिमौक्तिकैश्च।
नक्षत्रकोटिपरिमण्डितसौभगं वा आचार्यमूर्धपरिभूषणतामवाप्तम् ॥27॥

वह छत्र जो अद्भुत कलाकृतियों से बनाया गया था और जिसकी भिन्न कान्तियों से तारागण सुशोभित हो रहे थे वह आचार्यचरणों की सेवा में उपस्थित हो गया।

शङ्खश्च तत्करसरोरुहराजहंसो विध्मायते च विदुषा नितरां त्रिकालम्।
यस्य ध्वनिं समनुकर्ण्य त्रिविष्टपेशः स्वं भाग्यवैभवमथो उरीचकार ॥28॥

श्री रामानन्दाचार्य का वह शङ्ख जो तीनों कालों में बजाया जाता था जिसकी ध्वनि को सुनकर पाञ्चजन्यधारी भगवान् विष्णु भी अपने भाग्यवैभव की सराहना करते थे।

शङ्खश्च तत्करसरोरुहराजहंसः सिंहासनं कनकसारमयं च चारु।
छत्रं च चामरयुगं शुचियष्टिके द्वे नैतानि तन्मनसि लोभतरुं समूपुः॥29॥

अर्थात् रामानन्दाचार्य के कर-कमल में विराजमान राजहंस शङ्ख, स्वर्णमय सिंहासन, छत्र, दोनों छड़ियाँ, चामरादि उनके मन में लोभ के वृक्ष को बोने में समर्थ नहीं हुए।

सिंहासनं कनकसारमयं महस्वत् तेजःप्रभाविजितबालदिनेशशोभम्।
यस्मै सदा स्पृहयते बलसूदनोऽयमाचार्यविष्टरविधेस्तदुपाश्रयोऽभूत्॥30॥

स्वर्ण से निर्मित अत्यन्त तेजस्वी और तेज एवं प्रभा से जिस करोड़ों बालसूर्यों को जीत लिया है, जिसके लिए बलदैत्य के नाशक इन्द्र भी नित्य स्पृहा किया करते हैं ऐसा दिव्य सिंहासन उनके आसन की भूमिका निभाने लगा।

द्वे चामरे विजितशारदसोमशोभे सन्निर्मिते चमरिचारुकचावलीभिः।
संवीजनाय विहिते यतितल्लजानां ये सख्यमापतुरनन्तकराब्जयोश्च॥31॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के दो चँवर जिन्होंने अपनी शोभा से शरदकालीन चन्द्रमा को भी जीत लिया है और जो स्वर्ग की चमरी के केश से निर्मित हुए हैं और भगवान् रामानन्दाचार्य के संजीवन के लिए अर्थात् धीरे-2 वायु करने के लिए विहित किए गए हैं और जो अनन्ताचार्य जी के कर-कमल की मित्रता प्राप्त किये हैं, ऐसे दिव्य दो चामर श्रीरामानन्दाचार्य के पास उनकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

द्वे यष्टिके कनककल्पलतासमाभे क्लृप्ते सुमेरुगिरिकल्पितकाञ्चनेन।
मैत्रीं गते सुरसुरस्य सरोजपाण्योराचार्यदिव्यविरुदं जगतुर्विचित्रम्॥32॥

दो छड़ियाँ जिन्होंने अपनी शोभा से शरदकालीन चन्द्रमा को भी जीत लिया है और सुमेरु पर्वत के स्वर्ण खण्ड से बनी हैं, जो सुरसुरानन्द जी के करकमल की मित्र हैं और जो निरन्तर आचार्य के दिव्य विरुद को गाती रहती हैं।

छत्रं विभाविजितदेववरातपत्रं नक्षत्रमौलिकललामसुमालिकाढ्यम्।
यद्भक्तहिन्दुजनताहितरक्षणार्थं विश्वासनाय भगवत्करसाम्यमाप्तम्॥33॥

यह छत्र जिसने अपनी प्रभा से इन्द्र को जीता और वह तारागण रूप मुक्ताओं एवं रत्नों से सुशोभित हो रहा है और जो श्रीरामभक्त हिन्दू जनता के हित के रक्षण के लिए और

विश्वास प्रकट करने के लिए भगवान् श्रीराम के करकमल की छाया की समता प्राप्त कर चुका है।

हिन्दुत्वरक्षणविचक्षणचण्डदण्डं धर्मद्विषां प्रबलतर्जनतीव्रदण्डम्।
नास्तिक्यवादवरुणालयमन्थदण्डं श्रीपुण्यसद्मजनुषो जयति त्रिदण्डम्॥34॥

जो हिन्दुत्व की रक्षा के लिए चण्डदण्ड है, जो धर्मद्रोहियों को ताड़ित करने के लिए तीव्र दण्ड है, जो नास्तिकवाद रूप सागर के लिए मन्थदण्ड के समान है ऐसे उन पुण्यसदन शर्मा के पुत्र श्रीरामानन्दाचार्य के त्रिदण्ड की जय हो रही है।

शङ्खश्च तत्करसरोरुहराजहंसो दिव्यप्रभाविजितकेशवपाञ्चजन्यः।
श्रीपुण्यसद्मतनयस्य सुधाधरस्पृग् ध्मातो हरत्यहह भारतपापतापम्॥35॥

वह शङ्ख जो रामानन्दाचार्य जी के करकमल का राजहंस है, जिसने अपनी शोभा से भगवान् विष्णु के पाञ्चजन्य को जीत लिया है, जो पुण्यसदन शर्मा के पुत्र रामानन्दाचार्य जी के कोमल अधर का स्पर्श करता रहता है और जो रामानन्दाचार्य जी के द्वारा बजाया जाता हुआ भारत के पाप-ताप का हरण करता रहता है ऐसे दिव्य शङ्ख की जय हो।

सीतापतौ पतितपावनपादपद्मे यन्मानसालिरनिशं रमतेऽनवद्यः।
एतानि वै परिकराणि सुरेप्सितानि किञ्चिन्न चित्तविकृतिं प्रभवन्ति कर्तुम्॥36॥

जिनका मन सीतापति भगवान् श्रीराम के चरण-कमल में भ्रमर की भाँति रमता रहता है उन रामानन्दाचार्य को ये दिव्य परिकर अर्थात् आचार्य के दिव्य उपकरण उनके चित्त को विचलित करने में क्या समर्थ हो सकते हैं अर्थात् नहीं।

प्रातस्तथैव दिवसे दिनपे प्रतिष्ठे सायं मुदा दरवरं प्रधमन् मनस्वी।
श्रीरामभक्तजनतां रमयाञ्चकार योगीन्द्रवृन्दपरिवन्दितपादपीठः॥37॥

इस प्रकार योगीन्द्रवृन्दों के द्वारा जिनके चरणपीठ की वन्दना की गयी है ऐसे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी प्रातःकाल ध्यान के समय और सायंकाल इस विशिष्ट शङ्ख को बजाकर हिन्दू जनता के पाप-ताप का हरण करते रहते हैं।

काश्यां कपर्दिपरिकल्पितपुण्यराश्यां गङ्गापवित्रजलपावितपञ्चघट्टे।
नित्यं वसन् सुवसतौ वसिनां वरिष्ठो रामं स्मरन् हरति मानवपापतापम्॥38॥

इस प्रकार भगवान् शङ्कर के द्वारा जिसमें पुण्यराशि सँजोयी गयी है उस काशी के गङ्गा जल के द्वारा पवित्र पंचगङ्गा घाट पर निरन्तर निवास करते हुए श्रीरामानन्दाचार्य श्रीराम का स्मरण करते हुए भारत के पाप-ताप का हरण कर रहे हैं।

ब्राह्मे मुहूर्त उदतिष्ठदयं सदैव श्रीजाह्नवीललितगाहनलब्धसौख्यः।
सन्ध्यां विधाय परिचिन्तितमन्त्रराजो राजाधिराज इव राजति पण्डितेन्द्रः ॥39॥

प्रातःकाल उठ जाते हैं और गङ्गा जी में स्नान करके दिव्य आनन्द प्राप्त करते हैं और उसके पश्चात् श्रीमन्त्रराज राममन्त्र का चिन्तन करते हैं। ऐसे राजाधिराज भगवान् राम की भाँति जगद्गुरु रामानन्दाचार्य सुशोभित हो रहे हैं।

तच्चिन्तने लसति मञ्जुप्रपत्तियोगो भोगो न कर्हिचिदहो प्रविशत्यवद्यः।
श्रीजानकीपतिपदाब्जलसन्नियोगं रोगाः कदाचिदपि तं न बभुर्विकर्तुम् ॥40॥

रामानन्दाचार्य का नित्य प्रपत्तियोग में चिन्तन रहता है। वे जानकीपति श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमल के संयोग के कारण सर्वथा प्रपञ्च से विरक्त रहते हैं। रोग भी कभी उन्हें विकृत नहीं कर पाते क्योंकि वे निरन्तर तन्द्रारहित रहते हैं।

तत्पादुके परमहंसमुनीन्द्रवन्द्ये क्षिप्ते च काञ्चनगिरेः सकलेन हेम्ना।
ये पादपद्मदयिते विदधद्यतीन्द्रो राराज्यते सकलपण्डितमौलिरत्नम् ॥41॥

उन पादुका को जो सुमेरु पर्वत के स्वर्णखण्ड से बनाई गयी हैं रामानन्दाचार्य ने अपने चरणकमल की मित्र स्वीकार करते हुए उन्हें धारण करके सम्पूर्ण पण्डितों के मौलिरत्न बनकर सुशोभित हो रहे हैं।

एवं सुदिव्यचरितः किल पञ्चगङ्गाघट्टे विघट्टितजगत्त्रयपापहट्टे।
तिष्ठन् स्थितं विकलयन् पुरुषादनृणां काश्यां बभौ किरणवान् स दिवीव देवः ॥42॥

इस प्रकार शोभन एवं दिव्य चरितोंवाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य तीनों लोकों के पाप को नष्ट करने वाले पञ्चगङ्गा घाट पर निवास करते हुए मनुष्यवेषधारी धर्मद्रोही राक्षसों की स्थिति को विखण्डित करते हुए काशी में उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे आकाश में भगवान् सूर्यनारायण चमकते रहते हैं।

सैवैकदा दलितदानवदर्पसर्पः श्रीपार्वतीपुरि वसन् वसुधाऽघहारी।
पौर्वाह्णिकं परिसमाप्य महामनस्वी गङ्गां ददर्श शशिमौलिललाटरङ्गाम् ॥43॥

दानवों के दर्प रूप सर्प को नष्ट करने वाले, पृथ्वी के पाप को हरने वाले श्रीरामानन्दाचार्य जी ने एक दिन पौर्वाह्णिक कृत्य को समाप्त करके श्री शिव जी के ललाट को क्रीडा रङ्गभूमि बनाने वाली भगवती गङ्गा जी के दर्शन किये।

योषायितां मकरकेतनपत्यभीख्यां सौम्यां लसन्मकरवाहनशोभनाख्याम्।
वात्सल्यवार्धिमपरां च यथा सुशीलां श्रीलां महेश्वरमनोहरमञ्जुशीलाम् ॥44॥

उन्होंने देखा कामदेव की पत्नी रति के समान शोभा वाली और सौम्य मकर के वाहन पर चढ़कर सामने आती हुई, शोभन नाम वाली वात्सल्य की सागरस्वरूपा मानो नारी वेष में आयी उनकी सुशीला माँ ही हो। श्री अर्थात् भक्ति को जीवन में लाने वाली और श्री जिसका महेश्वर भगवान् शङ्कर के मन को भी जिनका शील हर रहा हो ऐसी दिव्य गङ्गा जी सामने उपस्थित हैं।

दौवारिकान् शुचिवटूंश्च निवारयन्तीं घ्नन्तीं समस्तविपदो वसुधासुधां ताम्।
श्रीमन्मुरारिपदपद्ममरन्दभूतां पूतां तरङ्गविहिताखिलपापिपूताम् ॥45॥

उन्होंने देखा कि वे भगवान् श्री विष्णु के चरणकमल के जल से प्रकट हुई हैं, जो स्वरूपतः और स्वभावतः अत्यन्त पवित्र हैं। जिन्होंने अपनी तरङ्गों से समस्त पापियों के पाप को भी पवित्र कर दिया है, ऐसी रामानन्दाचार्य के द्वारपालों और श्रेष्ठ शिष्यों को भी धकेलती हुई और समस्त संसार की विपत्ति को हरती हुई पृथ्वी की सुधा स्वरूपा भगवती गङ्गा जी समक्ष आ रही हैं।

लोकत्रयस्य दुरितानि मुदा दहन्ती सत्पायसं मृदुलकञ्जकरे वहन्ती।
पात्रं च कानकमयेन कृतं मनोज्ञा मातेव तापसपुरः स्म विभाति दिव्या ॥46॥

वे तीनों लोकों के दुरितों को नष्ट कर रही थीं, उन्होंने अपने करकमल में स्वर्णनिर्मित पात्र में सुन्दर भरे हुए खीर को धारण किया था और वे सहसा माँ के ही समान यतीन्द्र के समक्ष आकर उपस्थित हुईं।

तामागतामभिमुखे सुमुखीं सुशीलां वेदत्रयीसमनुवर्णितदिव्यलीलाम्।
गङ्गां तरङ्गकृतकल्मषयूथभङ्गां देवीं ननाम यतिशेखरवन्दिताङ्घ्रिः ॥47॥

उन्होंने जब सुन्दर शीलवाली वेदत्रयी द्वारा जिनका गान किया गया है और जिन्होंने

अपने तरङ्गों से समस्त दोषों के समूह को नष्ट किया है, ऐसी गङ्गा जी को अपने समक्ष उपस्थित देखा तब यतिशेखरों से भी पूजित रामानन्दाचार्य जी ने गङ्गा जी को प्रणाम किया।

सा प्राह प्राञ्जलिमिमं जगदेकवन्द्या श्रीजाह्नवी सुरनदी नितरामनिन्द्या।
मन्दस्मितेन सुधया यतिराजराजं पुष्णान्त्यमन्दकरुणा करुणार्यशीला॥48॥

इसके अनन्तर जगत् की एकमात्र वन्द्या देवताओं की नदी, अनिन्दित, करुण और श्रेष्ठ स्वभाव वाली गङ्गाजी मन्दस्मित से यतिराजराज को अपनी करुणा से सींचती हुई, हाथ जोड़े हुए रामानन्दाचार्य जी को सम्बोधित करती हुई, बोलीं-

भो भो यतीन्द्रकुलशेखरमौलिरत्न प्रत्नोऽप्युदारचरितैः किल नूलनूलः।
मा भुङ्क्ष्व पायसमिदं स्वजनार्पितं त्वं केनापि दुष्टजनुषा रचितं कथञ्चित्॥49॥

हे यतीन्द्रशेखरों के द्वारा पूजित तुम प्राचीन अवतार के श्रीराम होते हुए भी अपने उदार चरितों से आज भी नये प्रतीत हो रहे हो। इसलिए मेरा एक निवेदन स्वीकार करो, अपने शिष्यों द्वारा अर्पित इस खीर को आज मत खाओ, क्योंकि यह किसी दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति द्वारा निर्मित किया गया है, अपवित्र है और तुम्हारे लिए प्रसाद योग्य नहीं है।

श्रीजानकीपतिपदाम्बुजमञ्जुभृङ्ग त्वं वैष्णवोत्तम मयार्पितमेव चाद्य।
भुङ्क्ष्व प्रसादसुमुखः शुभपायसं वै माता निवारयति दुष्टकृतात् सुतं स्वम्॥50॥

तुम शुद्ध संन्यासी हो इसलिए तुम सोच सकते हो कि श्रीराम को नैवेद्य कैसे लगाया जाये, तो तुम्हारे लिए मैं दिव्य खीर स्वयं लायी हूँ। आज इसी को प्रसाद में स्वीकार करो। क्योंकि मैं माँ हूँ और माँ अशुभ से पुत्र को निवारित करती ही है।

प्रेम्णा त्वदर्थमनघं परिपूर्तभावं सत्पायसं समुपकल्पितमेतदार्य।
नूनं मया महितदेविसुशीलया च भुक्त्वा च पायसमिदं भवतात् कृतार्थः॥51॥

तुम जानते हो आज मैं तुम्हारे लिए दिव्य पायस लायी हूँ, क्योंकि तुम्हारे जन्म के कारण मैंने सुशीला की भी पूजा की है, इसलिए इस पायस को आज तुम स्वीकार करके कृतार्थ हो जाओ।

मा ते व्यथा भवतु हे यतिराजराज त्वं रामचन्द्रचरणार्चकचक्रवर्ती।
एवंविधाश्च विपदः सततं भवन्ति श्रीवैष्णवस्य रघुनन्दनसेवकस्य॥52॥

हे रामानन्दाचार्य! तुम दुःखी मत हो क्योंकि तुम भगवान् राम के अवतार हो, इस प्रकार श्रीवैष्णवों श्रीरामचन्द्र के सेवकों के ऊपर विपत्तियाँ आती ही रहती हैं और उनका समाधान स्वयं भगवान् करते हैं।

त्वं त्वं ह्यवेहि रघुनाथकृपावतारं शृङ्गारभूतमिह वैष्णवतल्लजानाम्।
नित्यं सुरेतरजने भव सावधानो ध्यानं विधत्स्व किल दाशरथेः सदैव॥53॥

तुम दुःखी मत हो और तुम श्रीराम जी के अवतार हो– ऐसा मन में सोचो तुम वैष्णवों के शृंगार भी हो इसलिए निरन्तर ही आसुरी प्रवृत्ति के लोगों से सावधान रहो और दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम का निरन्तर ध्यान करते रहो।

सन्मङ्गलानि सुवचांसि बहून्यवोचद् गङ्गातरङ्गकृतकल्मषपापभङ्गा।
अन्तर्दधे सुरनदी विबुधप्रणम्या श्रीरामचन्द्रचरणाब्जमरन्दरम्या॥54॥

इस प्रकार से भगवान् श्रीराम के चरणकमल के पराग से रमणीय अर्थात् उसी रस से जिनका दिव्य शरीर बना हुआ है और देवताओं के द्वारा जो प्रणम्या गङ्गा जी रामानन्दाचार्य के लिए बहुत-से मङ्गल वाक्य बोलीं और फिर उनके देखते-ही-देखते अन्तर्धान हो गयीं।

अन्तर्हितां च पुरतः प्रसमीक्ष्य गङ्गां श्रीमन्महेशनिटिलाहितरम्यरङ्गाम्।
सस्नेहवारिनयनो बुभुजे यतीन्द्रः प्रेम्णा स पायसमिदं हरये निवेद्य॥55॥

इस प्रकार शङ्कर जी के मस्तक पर जिन्होंने दिव्य लीलाभूमि बनायी ऐसी गङ्गा जी को अपने ही समक्ष अन्तर्ध्यान हुई देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने प्रसन्न होकर प्रेम के आँसू नेत्र में भरकर गङ्गा-जी के दिए उस पायस को पहले श्रीराम को नैवेद्य कर प्रेम से उसे पाया।

गङ्गार्पितं विमलपायसमत्युदारस्वादप्रसादपरिनिन्दितकोटिसोमम्।
भौमीभवाय विनिवेद्य यतिस्तु रामानन्दः प्रसन्नमनसा बुभुजेऽनवद्यम्॥56॥

इस प्रकार अपने उदार स्वाद से करोड़ों अमृतों को निन्दित करने वाली भगवती गङ्गा जी के द्वारा समर्पित उस निर्मल पायस अर्थात् खीर को सीतापति भगवान् को भोग लगाकर फिर यतिराज रामानन्द जी ने प्रसन्न मन से उस निर्मल प्रसाद को पाया।

एवंविधानि चरितानि चरंश्चकाशत् काश्यां कनन् कलितकाञ्चनकम्रकान्तिः।
श्रीवैष्णवांश्च सुहृदो रमयंश्च राममन्वर्थनाम विदधे विमलैर्यशोभिः॥57॥

इस प्रकार अपने दिव्य चरितों के द्वारा और देदीप्यमान, सुन्दर, स्वर्णकान्ति वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने काशी में सुशोभित होते हुए अपने सुयश से वैष्णवों को और भगवान् राम को भी आनन्द देते हुए अपने नाम को यथार्थ कर दिया।

कस्मिंश्चिदेव दिवसे दिवसावसाने सायन्तनाम्बुदतनुस्तिमिरोपगूढः।
अभ्यागमत् खलु खलो निजनामकृत्यैर्यो दुर्जनः समनुमोदितदुर्जनो वै॥58॥

किसी दिन दिवसावसान में सायंकालीन मेघ के समान शरीरवाला अन्धकार से ढका हुआ एक खल-दुष्ट रामानन्दाचार्य जी के पास आया जो अपने नाम और कर्म से दुर्जन था और दुर्जनों को ही आनन्दित करता था।

आगत्य तत्र नरमुण्डस्रगुद्धतोऽसौ संश्रावयन् कटुवचांसि महानुभावम्।
तत्रोद्ववर्ष रुधिरामिषपूयवर्षं मायां प्रदर्श्य मयदानवनिर्मिताञ्च॥59॥

वहाँ आकर अपने गले में नरमुण्डों की माला पहने हुए वह दुर्जनानन्द रामानन्दाचार्य जी को कटु उक्तियाँ सुनाता हुआ उन्हीं के आश्रम में मयदानव निर्मित माया का प्रयोग करते हुए रक्त, माँस और पीव का वर्षण करने लगा।

तं वीक्ष्य भीषणमथो कृतभीमवर्षं शिष्याः समेऽपि विभियो बिभयाम्बभूवुः।
हा राम हा रघुपते जगदेकनाथ प्रोच्चैर्ब्रुवन्त इति देशिकमभ्युपेयुः॥60॥

इस प्रकार भयङ्कर आकृति वाले और अशुभ वस्तुओं की वर्षा करने वाले उस दुष्ट दुर्जनानन्द को देखकर पूर्व में निर्भय होते हुए रामानन्दाचार्य जी के सभी शिष्य भयभीत हो गए और हा राम! हा रघुपते! हा जगत्पते! इस प्रकार कहते हुए श्रीरामानन्दाचार्य की शरण में आ गये।

तान् वीक्ष्य भीतमनसो मनसाऽनवद्यान् शिष्यान् समान् समनुसृष्टमहाविषादान्।
मा भैष्ट भू इति वदन् करतो निवार्य मायाविनं यतिवरो नितरां चुकोप॥61॥

इस प्रकार मन में डरे हुए अत्यन्त निर्मल और अपने मन में विषाद की सर्जना करते हुए शिष्यों को देखकर 'अरे! मत डरो' इस प्रकार आश्वासन देते हुए अपने हाथ से ही उस मायावी दुर्जन को सम्मुख आने से रोकते हुए यतिराज रामानन्दाचार्य अत्यन्त क्रुद्ध हो गये।

तं वीक्ष्य दुर्जनमथो कृतघातयत्नं नूनं कृतान्तमिव निर्घृणमेव दुष्टम्।
सद्यः ससर्ज खलदारणचण्डदण्डं तद्दुर्जनस्य समपादसुवीर्यतेजः॥62॥

इस प्रकार अत्यन्त भीषण, मारने का यत्न करते हुए नवीन यम के समान भयङ्कर उस दुर्जन को देखकर रामानन्दाचार्य जी ने उसको नष्ट करने वाले उस भयङ्कर दण्ड का प्रयोग किया जिसने दुर्जनानन्द के पराक्रम, प्राण और तेज को पी लिया।

तस्मिन् हते सकलवैष्णववृन्दशत्रौ दण्डप्रहारपरिमर्दितभीमजत्रौ।
देवाः प्रसन्नमनसो ववृषुः प्रसूनैर्दिव्या मुहुर्वियति दुन्दुभयः प्रणेदुः ॥63॥

इस प्रकार दण्ड के प्रहार से जिसके गले की हड्डियाँ चट-2 हो गई हैं ऐसे सम्पूर्ण वैष्णव-वृन्द के शत्रु दुर्जनानन्द के मारे जाने पर देवताओं ने प्रसन्न मन से श्रीरामानन्दाचार्य पर पुष्पवृष्टि की और आकाश में दिव्य दुन्दुभियाँ बजने लगीं।

तत्रैकदा कलितकान्यककप्रवेषा शाटीसमुल्लसितसंवृतसत्प्रदेशा।
पद्मावती परमपद्मपलाशनेत्रा भक्त्यागमत् स्मृतमरीचिप्रपौत्रमित्रा ॥64॥

एक बार पञ्चगङ्गा घाट पर आचार्य जी की कुटी पर पद्मावती नामक एक ऐसी छोटी बालिका आई जो सुन्दर कन्या के वेष में थी और जो अपनी साड़ी से सभी अङ्गों को ढके हुई थी। जिसके नेत्र पूजनीय कमलपत्र के समान थे और जो भक्ति से मरीचि ऋषि के प्रपौत्र सुग्रीव के मित्र श्रीराम का स्मरण कर रही थी।

यहाँ 'मरीचिप्रपौत्रमित्रा' का तात्पर्य है मरीचि के पुत्र कश्यप, कश्यप के पुत्र सूर्यनारायण और उनके पुत्र सुग्रीव और उनके मित्र हैं श्रीराम।

दौवारिकैरविनिवारितसुप्रवेशा सा लोकपालशरदाप्तमनोज्ञवेषा।
आसीनमेनमजपौत्रपदाब्जलीनं ध्यानं यथा धृतनराकृतिमाददर्श ॥65॥

जिनका कुटी में प्रवेश द्वारपालों द्वारा निवारित नहीं हुआ था अर्थात् जिनको रामानन्द जी की कुटी में जाने दिया, ऐसी 'लोकपालशरद' अर्थात् लोकपालों की सङ्ख्या है 8 अर्थात् 8 वर्ष की पद्मावती जो मनोज्ञ वेष में सजी हुई थीं, आकर श्रीरामानन्दाचार्य जी को अज के पौत्र भगवान् श्रीराम जी के चरणकमल में लीन होकर आसीन हुए ऐसे देखा जैसे ध्यान ही मनुष्य की आकृति में यहाँ विराजमान हो रहा है।

कृत्वा प्रणाममभिगम्य यतेः कुटीरं पद्मावती मधुरनम्रगिरा बभाषे।
धन्यो भवान् सकलवैष्णववन्द्यपादाम्भोजो जनार्दन इव प्रणतार्तिहारी ॥66॥

पद्मावती जी श्रीरामानन्दाचार्य जी के निकट जाकर उन्हें प्रणाम करके मधुर और विनम्र वाणी में बोलीं। भगवन्! आप धन्य हैं, सम्पूर्ण वैष्णववृन्द आपके चरणकमल की वन्दना करते हैं। आप भगवान् की ही भाँति भक्तों की आर्ति को दूर करते हैं। अब पद्मावती अपना परिचय दे रही हैं।

पद्मावती प्रथितभूसुरवंशजाता कन्याऽहमस्मि मम भक्तिमती च माता।
मात्रा निवेदितचरी तव पादपद्मरेणुं निवोढुमनघां शिरसाऽनवद्याम्॥67॥

भगवन्! मैं प्रसिद्ध ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुई पद्मावती नामक कन्या हूँ। मेरी माँ भी भक्तिमती हैं। उन्होंने पूर्व में ही मुझसे कह दिया है कि मैं आप की चरणधूलि को मस्तक पर धारण करूँ।

स त्वं प्रसीद वृजिनाटविधूमकेतो प्रातर्दिवाकररुचे धृतधर्मसेतो।
मह्यं प्रदेहि रघुनायकमन्त्रदीक्षां श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजभक्तिशिक्षाम्॥68॥

हे पापरूप वन को समाप्त करने के लिए अग्नि के समान प्रातःकालीन सूर्य की जैसी कान्तिवाले, धर्मसेतु को धारण करनेवाले रामानन्दाचार्य जी! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइए। मुझे श्रीराम के षडक्षर मन्त्र की दीक्षा दीजिए और श्रीराम के चरणाम्बुज की भक्ति की शिक्षा भी दीजिए।

भूत्वा समस्तजगतां जननीश्वरस्य द्वारं न्यगादि नरकस्य तथापि नारी।
हा हन्त हन्त न हि लज्जत एष लोको यो जाह्नवीमपि विपश्यति कर्मनाशाम्॥69॥

अरे, सम्पूर्ण जगत् की और ईश्वर की भी माँ होकर के भी नारी नरक की द्वार कही गई। हाय-2 इस लोक को लज्जा भी नहीं आती जो गङ्गा जी को भी कर्मनाशा के रूप में देखता है।

नारायणस्य जननी च नरस्य नारी द्वारं कथं नु नरकस्य विभाव्यते सा।
किं जातु निर्जरगवीसमकामदोग्ध्री शून्यास्तुलामहह रोहति विश्ववन्द्या॥70॥

अरे! जो नारायण और नर दोनों की माँ है। ऐसी नारी को कैसे नरक का द्वार कहा जा रहा है? क्या समस्त कामनाओं को देनेवाली कामधेनु देवताओं की गौ कुत्ती की तुला आरोहण करेगी, जो विश्व-वन्दनीय है?

सर्वं प्रपत्तिमधिगन्तुमिताधिकाराः क्लीबा नरा निगदिता भवतैव नार्यः।
तस्मादहं समनधीतपुराणवेदा खेदक्षयाय तव पादरजःप्रपन्ना ॥71॥

हे रामानन्दाचार्य जी! आपकी दृष्टि में शरणागति प्राप्ति में सभी अधिकारी हैं चाहे वह नपुंसक हो, नारी हो या नर यह आपने ही कहा है। इसलिए अब मैं भले पुराणों-वेदों के अध्ययन से वञ्चित रही फिर भी नारी होने पर अधिकारतः अपने खेद को नष्ट करने के लिए आपकी चरणधूलि को प्रपन्न हो चुकी हूँ।

येन त्वया शबरिका वनचारिपुत्री तारा च बालिदयिता दशवक्त्रपत्नी।
दासी च कैकयभुवः सकलाः स्त्रियो वै पूतास्तथैव करुणार्द्रदृशाविताश्च ॥72॥

आपके द्वारा भील पुत्री शबरी, बाली की पत्नी तारा, मन्दोदरी और कैकयी की दासी मन्थरा भी पवित्र की गयी और आपके द्वारा उनकी रक्षा भी की गयी।

तेन त्वयैव निजपादरजःप्रपन्ना रक्ष्या कृपालुहृदयेन च विप्रकन्या।
पद्मावती समनुसेवितपादपद्मा पुत्रीदृशैव भगवन् परिलोकनीया ॥73॥

उन्हीं आप रामानन्दाचार्य, जो रामावतार हैं के द्वारा यह ब्राह्मणकन्या पद्मावती भी पुत्री की दृष्टि से परिपालनीय है। अब श्रीराममन्त्र की दीक्षा देकर मुझे धन्य बनाइए।

मह्यं प्रदाय भगवन् किल मन्त्रराजं शिष्यां विधेहि यतिशेखर कन्यकां माम्।
धन्यां विधेहि भुवने शुचिमान्यमान्यां तुभ्यं नमोऽस्तु नितरां यतिशेखराय ॥74॥

हे भगवन्! अब मुझको मन्त्रराज की दीक्षा देकर अपनी शिष्या बना लीजिए। मुझको इस संसार में धन्य और मान्य बना दीजिए। हे यतिशेखर! आपको प्रणाम।

इत्येवमादि विनिवेद्य निवेदनं स्वं पद्मावती सपदि मञ्जुलवक्त्रपद्मम्।
प्रामीलयन्निशि निशाकररश्मिराजीमालोक्य नीलनलिनीव सरोजजातम् ॥75॥

इस प्रकार से अपना निवेदन प्रस्तुत करके पद्मावती जी ने अपने मुखकमल को उसी प्रकार बन्द कर लिया जिस प्रकार कमलिनी रात में चन्द्रमा को निहारकर सङ्कुचित हो जाती है।

पद्मावतीवच इदं शुचिसोमतुल्यं श्रुत्वा जगाद यतिराड् द्विजकन्यकां ताम्।
प्रीतोऽस्मि ते कमललोचनि मा व्यथिष्ठा पुत्री भव त्वमधुनैव विसृष्टशङ्का ॥76॥

इस प्रकार अमृत के समान पद्मावती जी का वचन सुनकर यतियों के राजा रामानन्दाचार्य जी ने उस ब्राह्मण कन्या से कहा हे कमललोचनी! तुम्हारे व्यवहार से मैं प्रसन्न हूँ। तुम इसी समय सभी शङ्काओं को छोड़कर मेरी पुत्री बन जाओ।

तुभ्यं ददामि सुभगे शुचिमन्त्रराजं त्वां दीक्षये विरतपावनदीक्षयाद्य।
सद्ब्रह्मचर्यनिरता श्रितरामभक्तिर्लोकान् पुनीहि निजमङ्गलकीर्तनेन॥77॥

हे पद्मावती! इसी समय मैं तुमको मन्त्रराज का उपदेश करता हूँ और पवित्र विरक्त दीक्षा भी दे रहा हूँ। तुम ब्रह्मचर्य में निरत रहकर श्रीरामभक्ति का श्रवण करती हुई अपने मङ्गलचरितों से समस्त लोकों को पवित्र करती रहो।

इत्थं निगद्य यतिराण्मृदुलस्वभावां पद्मावतीमकृत पञ्चसुसंस्कृताढ्याम्।
तस्यै ददौ पतितपावनराममन्त्रं साभूदुदारमनसः प्रथमैव शिष्या॥78॥

इस प्रकार पद्मावती को सम्बोधित करके जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उन्हें पञ्च संस्कारों से युक्त करके पतितपावन राममन्त्र दिया और वे ही उदार हृदय वाले रामानन्दाचार्य जी की प्रथम महिला शिष्या बनीं।

पद्मावती समभवद्यतिराजशिष्या देवाः प्रसूननिकरैर्व्यकिरंस्तमेव।
गन्धर्वसिद्धफणिचारणसाध्यवर्गास्तं तुष्टुवुर्मधुरवाग्भिरनन्तवीर्यम्॥79॥

इस प्रकार पद्मावती जी यतिराज रामानन्दाचार्य की शिष्या बन गयीं और देवताओं ने पुष्पों से जगद्गुरु को आच्छादित कर दिया। गन्धर्व, सिद्ध, साध्य, चारण, नाग वर्ग उन अनन्तवीर्य रामानन्दाचार्य की स्तुति करने लगे।

पद्मावती कलितसद्गुरुपादपद्मा पद्मानना सुभगराममनुप्रभावात्।
सिद्धाऽभवत् सकलचारणसिद्धसाध्यसम्पूजिताङ्घ्रिकमला विमला सुशीला॥80॥

इस प्रकार पद्मावती जी ने भी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरण-कमल को हृदय में धारण किया और राममन्त्र के प्रभाव से वे सिद्ध हुईं और समस्त सिद्धचारणों ने पद्मावती जी के चरणकमल की पूजा की।

धन्याऽभवज्जगति वन्दितपादपद्मा पद्मावती गुणवती महिलाललाम्नाम्।
अग्रेसरा क्षपितकल्मषदोषपुञ्जा चित्तोल्लसद्रघुपमञ्जुलपादकञ्जा॥81॥

इस प्रकार पद्मावती जी धन्य हो गयीं और वे महिला रत्नों में सर्वश्रेष्ठ बनीं। उनके हृदय में निरन्तर श्रीराम के चरणकमल विराजमान रहे।

तत्रैकदा समभवत् तिमिरान्धकारो मध्याह्नभानुरपि भग्नमहः प्रचारः।
काशी समापतितशोणितधूलिराशी राहूपराग इव सङ्कटमाप घोरम्॥82॥

एक बार वाराणसी में सहसा भयङ्कर अन्धकार फैल गया। यहाँ तक कि उस अन्धकार के कारण मध्याह्न के सूर्य का प्रकाश भी नष्ट हो गया। आज काशी सहसा आपतित रक्त एवं धूलिराशि से युक्त हो गयी। सूर्यनारायण उसी प्रकार सङ्कट में पड़ गए मानो खग्रास सूर्यग्रहण हो गया हो।

स्वाहाकृतं व्यपगमन्ननु शम्भुपुर्यां हाहाकृतं करुणचीत्कृतमास्त नृणाम्।
दृष्टा दिवापि न बभौ स्फुटतारकालिः कालीव कालरजनी दिवसेऽप्यदर्शि॥83॥

शङ्कर जी की पुरी काशी से सहसा स्वाहाकार चला गया और वहाँ मनुष्यों का करुण चीत्कार व्याप्त हो गया। उस समय दिन में भी स्पष्ट तारागण दिखने लगे और दिवस में भी भयङ्कर प्रलयकाल की भाँति काली रात दिखने लगी।

बालाः किशोरवयसो युवका युवत्यः सत्कन्यकाः कलगिरो जरठा जरत्यः।
सर्वेऽपि जग्मुरनघं यतिराजरामानन्दाश्रमं शुचिशुचः करिणो यथा कम्॥84॥

वे सब बालक, किशोर, युवक, युवितयाँ श्रेष्ठ मधुर भाषणवाली कन्याएं, वृद्ध, वृद्धाएं सभी लोग भयभीत होकर यतिराज रामानन्दाचार्य के निष्पाप आश्रम में उसी प्रकार भागकर गये जैसे ग्रीष्म के ताप से व्याकुल हाथी सुन्दर तालाब में चले जाते हैं।

ते द्वारपालमनुरुध्य निरुद्धवाचो वाचंयमा यमनिरीक्षणजातशङ्काः।
श्रीमज्जगद्गुरुपदाब्जयुगे निपेतू रक्षाऽऽशु राक्षसकुलाद् जगदू रुदन्तः॥85॥

वे सभी द्वारपालों से अनुरोध करके रामानन्दाचार्य जी के पास पहुँचे। उनकी वाणी निरुद्ध थी, वे मौन थे और यम के दर्शन-सी उनको मृत्युशङ्का हो गयी थी। वे सहसा जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के चरणकमलों में पड़ गए और रोते हुए बोले, "हे प्रभो! इस राक्षस कुल से शीघ्र हमारी रक्षा कीजिए।"

मा भैष्ट चेति विनिगद्य निवार्य भीतिं दध्मौ तदा दरवरं यतिराजराजः।
ध्वान्तं निरस्तममुना ध्वनिना क्षणेन भानुर्बभाविव च राहुमुखाब्जमुक्तः॥86॥

मत डरो, इस प्रकार कहकर उनको निवारित करते हुए यतिराज रामानन्दाचार्य जी ने भय को भी भय देनेवाले दिव्य शङ्ख को बजाया। उस ध्वनि से अन्धकार चला गया और राहु के मुख से मुक्त हुए से सूर्यनारायण प्रकाश करने लगे।

ध्वान्ते हते भगवता विहते च मृत्यौ निर्मायिकेषु सकलेषु जनेषु सत्सु।
कौलश्च कश्चिदगमद् गिरिकूटदघ्नो नग्नो नगाधिपधरो रुषमादधानः॥87॥

इस प्रकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य भगवान् द्वारा अन्धकार के नष्ट कर दिये जाने पर और मृत्यु के भी निष्प्राण कर दिये जाने पर, सम्पूर्ण जनों के मायामुक्त हो जाने पर सहसा एक नङ्गा हाथ में वृक्ष धारण किया हुआ, क्रोध को धारण करता हुआ, पर्वतशिखर जैसा विशालकाय, कौल वहाँ गया।

गर्जन् महाप्रलयवारिदभीमगर्जं तर्जन् महेन्द्रकुलिशायुधचण्डतर्जम्।
वर्षन् महाद्रिखरपादपधूलिवर्षं कर्षन् मनांसि रणरङ्गधियां व्यधावत्॥88॥

प्रलयकालीन मेघ के समान गर्जन करता हुआ, इन्द्र के वज्र के समान भयङ्कर तर्जन करता हुआ और बड़े-बड़े पर्वत, भयङ्कर वृक्ष तथा जल की वर्षा करता हुआ और युद्धभूमि में जिनका मन रमा हो- ऐसे लोगों को भी अपनी ओर खींचता हुआ वह रामानन्दाचार्य जी की ओर दौड़ा।

तं धावमानमभिमानवशं वसिष्ठो दृष्ट्वा प्रचण्डरभसं रभसाभियान्तम्।
प्राध्माय कम्बुमथ कम्बुगलो ललौ तं कार्तान्तभोजनविधेरथ सन्धितत्त्वम्॥89॥

इस प्रकार अपने भयङ्कर वेग से अभिमानवश समक्ष आते उसे देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने शङ्खध्वनि करके उसको मध्यकाल के भोजनतिथि के अचार के रूप में प्रस्तुत कर दिया अर्थात् उसे समाप्त कर दिया।

सोऽसून् विसृज्य निपपात धरोपकण्ठे सञ्चालयन् करपदांसमुखाक्षियुग्मम्।
तच्छिष्यवृन्दपरिरोदननेत्रनीरस्नातो महापुरुषहेलनघोरघातः॥90॥

इस प्रकार महापुरुष जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के अपमान से जिसको घोर आघात लगा है ऐसा वह कौल अपने शिष्यों के रोदन से उत्पन्न आँसू से स्नान किया हुआ प्राणों को छोड़कर अपने हाथ, चरण, कन्धा, मुख और नेत्रों को चलाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

तस्मिन् हते विबुधपुङ्गवकण्टकेन्द्रे धीरेण शङ्खनिनदेन यतीन्द्रभर्तुः।
देवाः प्रसूननिकरैर्व्यकिरंश्च रामानन्दं ननन्दुरथ वैष्णवतल्लजाश्च॥91॥

इस प्रकार देवताओं के कण्टकस्वरूप वह कौल जब यतीन्द्रों के स्वामी रामानन्दाचार्य जी के शङ्ख की ध्वनि से ही समाप्त हो गया, तब देवताओं ने पुष्पों से रामानन्दाचार्य जी को आवृत कर दिया और श्रेष्ठ वैष्णव जन बहुत प्रसन्न हुए।

सिद्धाः समाययुरमुं परिबोद्धुकामाः कामा रमापदपदांशक इत्युदारम्।
व्योमासना निरसना जितगोविकारा दिग्वाससोऽव्यसनिनो विजितेन्द्रजालाः॥92॥

एक बार समस्त सिद्धगण इस कुतूहल से लक्ष्मीनिवास विष्णु के भी आश्रय भगवान् राम के अंश जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को भली-भाँति समझने के लिए आकाश में आसन लगाए हुए, सामान्य भोजन न करते हुए, दिशाओं को वस्त्र बनाए हुए, इन्द्रियों के विकारों से दूर और इन्द्रजाल के माया प्रपञ्चों को जीतकर भी वहाँ उपस्थित हुए।

ते मातरिश्वरसना यतिवृन्दभर्तुरास्थाय वातजनके परितः कुटीरम्।
जिज्ञासवस्तपस ओजस एव रामानन्दं ययाचिर इभास्यकरोद्धृताम्भः॥93॥

वे वायु को ही मेखला बनाये हुए और यतिवृन्दों के स्वामी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की कुटी के चारों ओर ऊपर आकाश में विराजमान होकर यतिराज रामानन्दाचार्य के तप एवं ओज की जिज्ञासा करते हुए रामानन्दाचार्य जी से एक भिक्षा माँगी कि हे भगवन्! आप मुझे श्रीगणेश जी के सूँड से लाये हुए गङ्गाजल की भिक्षा दीजिए। इतना ही नहीं,

भूयो ययाचिर इडस्पतितातपादपङ्केरुहाप्ततुलसीमकरन्दबिन्दून्।
धातुः कमण्डलुजलं ननु शूलपाणिराजज्जटामुकुटनान्दनपुष्पगुच्छम्॥94॥

और उन्होंने कहा कि हमको ब्रह्माजी के पिता श्री विष्णु के चरण-कमल में विराजमान तुलसी का रस पिलाइए और ब्रह्मा जी के कमण्डलु में विराजमान गङ्गाजल पिलाइए और शङ्कर जी के जटामुकुट में लगे हुए नन्दनवन के पुष्पों का गुच्छ दीजिए।

ओमित्युदीर्य गणनायकमभ्युपेतस्तच्छुण्डपात्रपरिवेषितमम्बुगाङ्गम्।
सम्पाययन् प्रमुमुदे परिमोदयंस्तान् सिद्धान् नभश्चरणचारणचाटुचुञ्चून्॥95॥

ठीक है इस प्रकार कहकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य गणेश जी के पास आए और उनके

सूँड के पात्र में विराजमान दिव्य गङ्गाजल सिद्धों को पिलाया और आकाश में विहार करने वाले चारणों की चाटुकारिता कर रहे सिद्धों को प्रसन्न किया और स्वयं भी प्रसन्न हुए।

प्रेम्णा मुकुन्दपदपद्मपरागरागश्रीमत्तुलस्यपतिताम्बुमयं प्रपाय्य।
श्रीपद्मसम्भवकमण्डलुवार्यपायि शम्भोर्जटामुकुटपौष्पमथाऽभ्यदायि॥96॥

इसके पश्चात् रामानन्दाचार्य जी ने सिद्धों को भगवान् विष्णु के चरण कमल पर विराजमान तुलसी का रस पिलाया। ब्रह्मा जी के कमण्डलु में विराजमान गङ्गाजल का भी थोड़ा पान कराया और शङ्कर भगवान् की जटा में विराजमान नन्दनकानन के पुष्प का गुच्छ उन्हें प्रदान किया।

दृष्ट्वा जगद्गुरुवरस्य तपःप्रभावं तेजोऽनुभावमपि देशिककुञ्जरस्य।
सिद्धाः समेऽपि विगताघकलङ्कशङ्कापङ्काः प्रसन्नमनसो जयशब्दमूचुः॥97॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के तपस्या के प्रभाव को और श्रेष्ठ देशिक जगद्गुरु जी के तेज के महत्त्व को देखकर सम्पूर्ण सिद्धगण पाप, कलङ्क और शङ्का रूप कीचड़ से मुक्त होकर प्रसन्न मन से जय-जयकार करने लगे।

प्रोचुश्च गद्गदगिरो धृतनीरनेत्राः क्षेत्रं सुभक्तिपयसा प्रमुदाऽभिषिच्य।
जानीमहे भुवनपालकमेव रामं लब्धावतारमिह भारतभूमिभागे॥98॥

इसके पश्चात् नेत्रों में आँसू भरकर, अपने शरीर को भक्तिरूप जल से स्नान कराकर, गद्गद् वाणी में सिद्धगण बोले– "भगवन्! हमने जान लिया है कि भारतभूमि पर साक्षात् भुवनों के पालनकर्ता भगवान् राम ने ही अवतार ले लिया है।"

भारं विनेतुमथ भूतलमण्डलस्य व्याप्तं विकर्तुमपि यावनशासनं वै।
साक्षात्भवानवततार जगन्निवासः श्रीपुण्यसद्मसदने मतिमांस्त्रिदण्डी॥99॥

इस भूतल मण्डल में व्याप्त भार को दूर करने के लिए, यवन और यवन शासकों को अन्यथा करने के लिए अर्थात् समाप्त करने के लिए स्वयं जगन्निवास आप श्रीराम ने ही श्रीपुण्यसदन के भवन में यतिराज त्रिदण्डी के रूप में अवतार ले लिया है। ऐसा हम जान गये हैं।

एषा च हिन्दुजनता वनितेव भीता भग्नप्रसाधनगुणा भवसिन्धुमग्ना।
पारं यियासति भवत्पदपद्मपूता पूतात्मनो हि मतिमान् परिपासि नित्यम्॥100॥

यह हिन्दू जनता एक अनाथ अबला की भाँति भयभीत हो रही है, इसके प्रसाधन गुण नष्ट हो गए हैं, यह भवसागर में डूब रही है और यह आपके चरणकमल रूपी नाव को प्राप्त करके इससे पार जाना चाहती है। क्योंकि आप बुद्धिमान् रामानन्दाचार्य पवित्र आत्माओं की नित्य रक्षा करते हैं।

हन्यन्त उद्धतजनैर्नितरां हि गावो दण्ड्यन्त आर्तमनसः सततं हि सन्तः।
त्वं पाहि भो प्रणतपालक दीनबन्धो मा मा विलम्ब्य यतिराज यतस्व शीघ्रम् ॥101॥

इन दिनों उद्धत पापियों द्वारा गौएँ निरन्तर काटी जा रही हैं और आर्त मन वाले सन्त निरन्तर दण्डित किये जा रहे हैं। हे प्रणतपालक! हे दीनबन्धु! आप इनकी रक्षा कीजिए। हे यतिराज! विलम्ब मत कीजिए। शीघ्र यत्न कीजिए।

सिद्धेषु चैवमभिधाय गतेषु सत्सु स्वेष्टेषु लब्धधिषणेषु च पूजितेषु।
तत्रागतो नृपतिरेक उदारबुद्धिरायोध्यकोऽकउरुभीतिविकम्पिताङ्गः ॥102॥

इस प्रकार कहकर समस्त सिद्धों के चले जाने पर और अपनी-2 निष्ठा के अनुसार सभी इष्ट देवताओं के सम्मानित होने पर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के पास एक अयोध्या के राजा आए। वे बहुत दु:खी थे और भय के कारण उनके सभी अङ्ग काँप रहे थे।

सोऽन्तः प्रविश्य जगदेकगुरोः पदाब्जरेणुं समस्तजनकामितकामधेनुम्।
बिभ्रच्छिरःकनककप्रकिरीटकोणे प्रेम्णा ललाटपटले तिलकीचकार ॥103॥

उन्होंने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की कुटी में आकर उनके चरणकमल की धूलि, जो सेवकों के लिए कामधेनु के समान थी, उसे अपने सिर पर विराजमान स्वर्ण मुकुट के कोने में धारण किया और भक्तिपूर्वक ललाट पर तिलक के रूप में लगा लिया।

भूयो जगाद जगदीश्वरभूतिभूतं पूतात्मनां शरणदं निजकृत्यपूतम्।
नेत्रे विमृज्य जडबिन्दुगलत्कपोले भावेन गद्गदगिरा नितरां प्रणम्य ॥104॥

इसके अनन्तर जगदीश्वर श्रीराम जी के विभूतिस्वरूप, पवित्रात्माओं के शरणदाता, अपने ही कृत्य से पवित्र, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी से, आँसुओं से जिनके कपोल भीग रहे हैं, ऐसे नेत्रों को पोंछकर कम्पन के कारण गद्गद् स्वर में यतिराज को प्रणाम करके अयोध्या के महाराज बोले।

जातोऽस्मि रामनगरे श्रितकोसलः किंराजा रजोलुठितवैभववीरसत्त्वः।
सोऽहं भवत्प्रपदयोः शरणं प्रपन्नो दुर्धर्षदुष्टयवनैश्च पराजितो वै॥105॥

भगवन्! मैंने अयोध्या में जन्म लिया। मैं कौशल प्रदेश का दुष्ट राजा हूँ। मेरा वैभव, पराक्रम और सत्त्व सब कुछ धूल में मिल गया है। मेरी सेना मारी जा चुकी है। मैं दुर्धर्ष अजेय यवनों द्वारा पराजित होकर आपके चरणों में आया हूँ।

कोटेश्च हिन्दुजनुषां परिवर्त्य धर्मं तेषां विनाश्य रभसेन शिखां च सूत्रम्।
दत्त्वा बलाच्च किल यावनवर्त्मदीक्षां चक्रुः समस्तयवनान् हतसर्वसत्त्वान्॥106॥

मैं क्या बताऊँ, आज मेरे देखते-2 करोड़ों हिन्दुओं के धर्म का परिवर्तन कराकर उनके शिखा-सूत्र को समाप्त करके उन्हें यवन बना दिया। उनका सब कुछ छीन लिया गया।

अयोध्यानृपालस्य वाचं निशम्य प्रकामं लसत्कारुणीं दैन्यसाराम्।
जगर्जे महासिंहनादं विषादं प्रसादं दधानो जनेभ्यो यतीन्द्रः॥107॥

इस प्रकार अयोध्या के महाराज की वाणी जिसमें करुणा भरी थी, दैन्य ही जिसका सार था, को सुनकर यतिश्रेष्ठ रामानन्दाचार्य जी ने सबको प्रसाद देते हुए अवसादरहित महासिंहनाद गर्जन किया।

अये हिन्दवः सिन्धवो बुद्धिवारो मनाक्चापि मा भैष्ट धैर्यं भजध्वम्।
अहं घातयिष्यामि वः शत्रुवर्गान् इतीत्थं ददौ चाऽभयं देशिकेन्द्रः॥108॥

हे हिन्दुओं! तुम थोड़ा-सा भी मत डरो। धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारे शत्रुओं को नष्ट करूँगा। इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने सबको अभयदान दिया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽष्टमः कलितयतिपतिगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्यप्रणीते रामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्येऽष्टमः सर्गः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ नवमः सर्गः ॥

जगादाथ गम्भीरया वल्गुवाचा जगद्देशिको भर्त्सयन् यावनांस्तान्।
न भेतव्यमेभ्यो भवद्भिः कदाचित् कथं सिंहशावास्त्रसेयुः श्ववृन्दात् ॥01॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने दुष्ट यवनों को धमकाते हुए गम्भीर मधुरवाणी में कहा- अरे हिन्दुओं! इन दुष्टों से कभी मत डरो क्या कभी कुत्तों से सिंह के बच्चे डरते हैं?

उदस्यन्नभद्रं भयं हैन्दवं वै निरस्यन् महीसङ्कटं हिन्दुनॄणाम्।
समस्यन् समान् हिन्दुबन्धून् विभिन्नानहं यावनं धर्षयिष्ये कुयन्त्रम् ॥02॥

हिन्दुओं के भयंकर भय को दूर करता हुआ और हिन्दुजनों के संकट को निरस्त करता हुआ, विभिन्न वर्गों में बँटे हिंदुओं को एक करता हुआ मैं यवनों के कुयन्त्र को नष्ट कर दूँगा।

न वा जातिवादो न वा वर्गवादो न वा वर्णवादोऽवसादो न नॄणाम्।
इमे हिन्दवो भ्रातरः सर्व एव न कार्या घृणा केनचित् केषुचिद्वै ॥03॥

हिन्दुओं में जातियाँ है पर जातिवाद नहीं, वर्ग है पर वर्गवाद नहीं, वर्ण हैं पर वर्णवाद नहीं, किसी प्रकार का अवसाद नहीं। सभी हिन्दू परस्पर भाई हैं। किसी के द्वारा किसी से भी घृणा नहीं करनी चाहिए।

परावर्तयिष्ये द्रुतं हिन्दुबन्धून् निरावर्तयिष्ये भयं हिन्दुनॄणाम्।
दुरावर्तयिष्ये कुयन्त्रं खलानां समावर्तयिष्ये द्रुतं हिन्दुराष्ट्रम् ॥04॥

मैं विभिन्न पंथों और सम्प्रदायों में गए हुए अपने हिन्दू भाइयों का परावर्तन करूँगा अर्थात् इन्हें उनके घर लौटाऊँगा। मैं हिन्दुओं के संकट को दूर करूँगा, मैं शत्रुओं का संकट भी नष्ट करूँगा और सुखपूर्वक हिन्दू राष्ट्र का प्रवर्तन करूँगा।

परावर्तनं शास्त्रतः सम्मतं वै सदा हिन्दुनॄणां न शङ्का विधेया।
समे पूर्वतः हिन्दवश्चैवमासन्निदानीं विभेदः खलैः कल्पितो वै ॥05॥

हिन्दुओं का परावर्तन शास्त्रसम्मत है। इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं करनी चाहिए। पहले सभी हिन्दू ही तो थे। ये तो इस समय दुष्टों ने हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि भेद कर दिए हैं।

इतीत्थं निगद्याथ राजा यतीनां परावर्त्य सूत्रं शिखां हिन्दुनॄणाम्।
सलिङ्गच्छिदं योगविद्याप्रभावाद् द्विजेन्द्रो विरेजे सुरैः स्तूयमानः ॥06॥

इस प्रकार आश्वासन देकर यतियों के राजा जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने योगविद्या के प्रभाव से सभी हिन्दुओं के शिखा-सूत्र को लौटाकर और उनके सुन्नीपन को भी समाप्त करके देवताओं द्वारा स्तुति का अधिष्ठान बनते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य शोभायमान हुए।

इत्येवं यतिराजराजमुकुटालङ्कारहीरो हरिः
कोटीन् हिन्दुजनान् स्वगेहवसतीन् कृत्वा परावर्तनैः।
योगीन्द्रैः परिपूजिताङ्घ्रिकमलो मध्याह्नभानुर्यथा
रेजे भूतपतेः पुरे स पुरुषः श्रीपुण्यसद्मात्मजः ॥07॥

इस प्रकार यतिराजों के भी मुकुट के हीरे स्वरूप श्री हरि भगवान् राम के विग्रहस्वरूप रामानन्दाचार्य जी करोड़ों हिन्दुओं को परावर्तन के विधान से अपने घरों में लौटाकर योगिवृन्दों के द्वारा जिनके चरण-कमलों की पूजा हुई है ऐसे वे अपने शिष्यों सहित काशी पुरी में मध्याह्न सूर्य की भाँति सुशोभित हुए।

अथ स्वकैः शिष्यगणैः परीतो विद्याविनीतः स्मृतरामसीतः।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभिनन्द्यात्मगुणो गुणज्ञः ॥08॥
योगीन्द्रवृन्दैः परिसेव्यमानः संलब्धमानो विगताभिमानः।
श्रीरामधानीं रघुराजधानीं तां वेदबोद्ध्यां स्म गमत्ययोध्याम् ॥09॥

इसके अनन्तर अपने शिष्यों से घिरे हुए विद्या से विनम्र जिनके द्वारा श्रीराम सहित सीता जी का स्मरण किया गया है, जिनके आत्मगुण अभिनन्द्य हैं, जो गुणों को जानते हैं, योगी लोग जिनकी निरन्तर सेवा करते हैं, जो सम्मान प्राप्त करके भी अभिमान से रहित

हैं ऐसे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीराम की निवासस्थली रघुवंशी राजाओं की राजधानी वेदों के द्वारा बोधित श्री अयोध्या को पधारे।

समायतां द्वादश योजनानि त्रीणीव विस्तीर्णतयाऽभ्युपेताम्।
सौधैः सुसौधैः परिशोभमानां दिवौकसां संविलसद्विमानाम्॥10॥

जो बारह योजन आयत और तीन योजन विस्तीर्ण है, जो सुन्दर चूने की पुताई से युक्त अनेक राजमहलों से सुशोभित है, जहाँ देवताओं के विमान निरन्तर विराजमान रहते हैं- ऐसी अयोध्या में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पधारे।

इक्ष्वाकुवंशै रघुराममुख्यैर्भूपालवर्यैः परिपाल्यमानाम्।
विरिञ्चचातुर्यचमत्कृताभां सपद्मनाभां श्रुतिवर्गलाभाम्॥11॥

भगवान् राम जिनमें मुख्य हैं ऐसे इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं द्वारा जो निरंतर पाली जाती रही हैं, ब्रह्मा जी के चातुर्य से जिनकी आभा चमत्कृत है, जहाँ निरन्तर भगवान् राम विराजमान रहते हैं और जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को देती है- ऐसी श्री अयोध्या में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पधारे।

पौराणिकीनां मुनिसत्पुरीणामेकामनेकैर्विहिताभिषेकाम्।
सर्वानवद्यां नितरामनिन्द्यां रामाभिनन्द्यां विबुधेन्द्रवन्द्याम्॥12॥

जो पौराणिक अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची, अवन्तिका और द्वारावती- इन सात पुरियों में उत्तम हैं अनेक श्रेष्ठगण जिनका अभिषेक करते हैं, सब प्रकार से जो निर्दोष हैं, निन्दा से रहित हैं। भगवान् राम जिनका अभिनन्दन करते हैं और देवता जिनका वन्दन करते हैं- ऐसी श्री अयोध्या में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पधारे।

यां छायया छाययति प्रभातो विभाविभातोऽमरपारिजातः।
रिरंसते यत्र शिशुः सुजातो गुणैश्च मातो भरतस्य तातः॥13॥

जहाँ निरन्तर सुशोभित होता हुआ देवताओं का पारिजात अपनी छाया से जिसको निरंतर आच्छादित किए रहता है और जहाँ बालरूप धारण करके सभी गुणों से युक्त भरत के बड़े भ्राता भगवान् राम रमने की अर्थात् खेलने की इच्छा किया करते हैं।

यस्या रजस्येव समस्तकामो रामश्शिशुः खेलति पूर्णकामः।
देहप्रभानिन्दितकोटिकामो देवप्रणामो नयनाभिरामः॥14॥

पूर्णकाम, अपने देह की प्रभा से करोड़ों कामों को निन्दित करने वाले, देवता जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे नयनाभिराम श्रीराम बालक बनकर जिनकी धूल में निरन्तर खेलते रहते हैं।

यस्या अवाच्यां दिशि रामजन्मभूमिर्महामङ्गलमञ्जुभूमिः।
विराजते भारतभाग्यभूमिर्विज्ञानवैराग्यविवेकभूमिः ॥15॥

जिसके दक्षिण भाग में सम्पूर्ण मंगलों की सुन्दर भूमि, भारत के भाग्य की भूमि विज्ञान, वैराग्य और विवेक की भूमि श्रीराम जी की जन्मभूमि विराजमान है।

मेषस्य भानुर्मकरस्य भौमस्तुलाशनिः कर्कबृहस्पतिश्च।
मीनस्य शुक्रः सहसर्वशक्रो ग्रहाः शराख्याः प्रणिनंसवो याम् ॥16॥

जिस रामजन्मभूमि को शिव एवं इन्द्र के साथ मेष के सूर्य, मकर के मंगल तुला के शनि, कर्क के बृहस्पति, मीन के शुक्र ये पांचों ग्रह निरन्तर नमन करने की इच्छा करते रहते हैं।

यस्या उदीच्यां दिशि सर्ववन्द्या शुभा शुभञ्जुः सरयूश्चकास्ति।
सुधाजला मौक्तिकनिर्मला च समुज्ज्वला नाशितकश्मला वै ॥17॥

जिसकी उत्तर दिशा में सभी लोगों द्वारा वन्दनीय, परमकल्याणमयी एवं कल्याण से युक्त अमृत जलवाली, मुक्ता के समान निर्मल, समुज्ज्वल, सभी पापों को नष्ट करनेवाली सरयू मैया विराजमान हैं।

यतीश्वरो रामपुरीं स गत्वा निजांशिनो जन्ममहीं च नत्वा।
दृष्ट्वाऽभिमृष्टां यवनाधमैस्तां राहूपरक्तेन्दुरिवास्त विग्नः ॥18॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री अयोध्या पधारकर और अपने अंशी भगवान् श्रीराम की जन्मभूमि को प्रणाम कर उसे दुष्ट यवनों के द्वारा वशीकृत देखकर राहु के द्वारा ग्रसित चन्द्रमा के समान थोड़े उद्विग्न हो गए।

भूयः समासाद्य धृतिं धृतात्मा विभाव्य वैरिञ्चगतिं दुरन्ताम्।
शान्तः समाधातुमिमा समस्यामचिन्तयच्चारु विचारचुञ्चुः ॥19॥

मन को वश में करने वाले जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी ब्रह्मा जी के दुरन्तकृति देखकर सुन्दर विचारों में निपुण होने के कारण शान्त भाव से इस समस्या का समाधान सोचने लगे।

लोको ह्यसौ जन्मत एव हिन्दुः सञ्जातमात्रः सशिखः सशिश्नः।
उपासनाभेदत एव पश्चात् प्रवर्तितोऽनेकविभिन्ननामा ॥20॥

यह जीव तो जन्म से हिन्दू ही है क्योंकि जो भी जन्म लेता है प्रत्येक व्यक्ति के पास शिखा और लिंग होते ही हैं। इसके पश्चात् भिन्न-भिन्न उपासनाओं के कारण वह अनेक भिन्न-भिन्न पंथों में बदल जाता है।

तस्मात् परावर्तयितुं स योग्यो योगेन वै नात्र विचारणीयम्।
सर्वे सशिश्नाः सशिखाः ससूत्रा मया विधेयाः किल हिन्दवो वै ॥21॥

इसलिए इन सबको मुझे परावर्तित कर लेना चाहिए सबको उनका चिह्न लौटा देना चाहिए। सबके पास शिखा-सूत्र दे देना चाहिए। यह कार्य योग से ही होगा और किसी से नहीं।

गेहाद् गतो गेहमुपाश्रयेत प्रातर्गतः सायमसौ प्रवर्त्यः।
सनातनी लोकपरम्परेयं मयाऽपि सम्प्रत्यनुपालनीया ॥22॥

अरे! घर से गया हुआ व्यक्ति तो अपने घर आता ही है और प्रातः का भटका हुआ सायं आ ही जाता है। ये सनातन लोक-परम्परा है इसका मुझे भी पालन करना चाहिए।

एवं विमृश्यैव महानुभावो नृणां परावर्तनमेव साधु।
मत्वा विनिश्चित्य जगद्गुरुः स शुभां शुभंयुः सरयूं ददर्श ॥23॥

इस प्रकार से जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने यह निश्चय कर लिया कि अब परावर्तन ही उचित होगा और जब परावर्तन उचित होगा तो वह करना अनिवार्य है इस प्रकार निश्चय करके कल्याणप्रदा सरयू के दर्शन किए।

तत्र प्रतिज्ञां कृतवान् महात्मा हिन्दून् परावर्तयितुं समस्तान्।
एकैव जातिर्ननु वैष्णवाख्या अलं विभेदैर्बहुनामभिश्च ॥24॥

उसी समय जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने प्रतिज्ञा कर ली कि हिन्दुओं को परावर्तित करना है। इन सबकी एक ही वैष्णव जाति होनी चाहिए और भिन्न-भिन्न नामों का होना अब व्यर्थ है।

अहं परावर्तय एष लोकान् ये दूरिता वै निजहिन्दुधर्मात्।
योगप्रभावेण शिखां च सूत्रं प्रत्यानये शिश्नभिदां निरस्यन् ॥25॥

मैं अत्यन्त शीघ्र उन सभी लोगों को लौटा लूँगा जो अपने हिन्दू धर्म से दूर हो गए हैं। मैं अपने योग-प्रभाव से दूर हुए बन्धुओं के लिंगच्छेद समाप्त करके उनके शिखा-सूत्र भी परावर्तित कर दूँगा।

यथा गरुत्मानमृतं च शक्रात् स्यमन्तकं चापि यथा मुकुन्दः।
तथा प्रतिष्ठां किल हिन्दुजातेः प्रत्यानयेऽहं यवनेभ्य एव॥26॥

जिस प्रकार गरुड़ देव ने इन्द्रादि का दमन करके अपनी माँ को लाकर अमृत दे दिया, जिस प्रकार भगवान् कृष्ण दूसरों के हाथ में गया हुआ स्यमन्तक मणि ले आए उसी प्रकार मैं यवनों के हाथ गई हुई हिन्दू जाति की प्रतिष्ठा को लौटा लूँगा।

गेहान् परावर्त्य समस्तबन्धून् संशिक्षयिष्ये किल हिन्दुधर्मे।
स्वस्थान् करिष्यामि च राममन्त्रदीक्षां प्रदास्यामि जनेभ्य एव॥27॥

अपने बिछड़े हुए बन्धुओं को उनके घर लौटाकर उन्हें हिन्दू धर्म में बद्धनिष्ठ बनाऊँगा और उनको राममन्त्र की दीक्षा दूँगा।

इत्थं प्रतिज्ञाय यतीन्द्रवर्यः प्रेम्णा जगाहे विधिपुत्रपुत्रीम्।
विधाय सन्ध्यां प्रमुदा नदीं तां छन्दोभिरीड्यैः स्तुतवान् मनस्वी॥28॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी ने सरयू जी में स्नान किया और सन्ध्या करके दिव्य छन्दों से सरयू माता की स्तुति की।

अयोध्यासौभाग्यं विशदमथभाग्यं भगवतो
रघूणामानन्दं कमनकलकन्दं विधिभुवः।
दृगम्भोभूष्यन्दं मधुरमकरन्दं मधुमथः
सुधानिष्यन्दं ते सरयु सलिलं कं कलयतु॥29॥

हे सरयू माँ! जो श्री अयोध्या जी का साक्षात् सौभाग्य तथा श्रीमन्नारायण का भी निर्मल भाग्य है, जो रघुवंशी महाराजाओं का आनन्दस्वरूप तथा ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ जी का निर्मल कल्पनामय कन्दमूल है, जो मधुसूदन भगवान नारायण के नेत्रकमल से पिघला हुआ मधुरतम मकरन्द है ऐसा अमृतद्रवरूपी आपश्री का निर्मल जल समस्त संसार के लिए दिव्य सुख धारण करे अर्थात् स्नान-पान करने वालों को सदैव मंगल प्रदान करता रहे।

श्रुतीनां तात्पर्यं तमिह रघुवर्यं धनुरिषुं दधानं कुर्वाणं रतिपतिममानं तनुरुचा।
घनश्यामं रामं जनदृगभिरामं निदधती सुधानीरे नीरे सरयु सततं त्वं विजयसे॥30॥

हे अमृतजलवाली सरयू माँ! अपने दिव्य जल में वेदों के साक्षात् तात्पर्य रूप धनुर्बाणधारी अपनी देहकान्ति से कामदेव का भी मानभंग करने वाले, भक्तों के नेत्रों को आनन्द देनेवाले उन धनश्याम रघुकुल शिरोमणि, परब्रह्म श्रीराम को सदैव धारण करती हुई सभी नदियों में सदा श्रेष्ठ हैं।

रसो वै स श्रुत्या रस इति य आम्नायि भगवान् रसात्मा रस्यात्मा निखिलरसमूर्तिर्मधुरिपुः।
रसेन्दोस्तस्याहो नयनरससम्भूतविभवां कया वालङ्कुर्यामनुपमतनो त्वामुपमया॥31॥

हे उपमारहित श्रीविग्रहवाली सरयू माँ! 'रसो वै सः' इस श्रुति ने जिस परमेश्वर को रस रूप कहा है जो रसस्वरूप हैं तथा रसिकों द्वारा जिनके श्रीविग्रह का आस्वादन किया जाता है। जिनकी मधुर मूर्ति सम्पूर्ण रसों से युक्त है। ऐसे मधुसूदन उन रसचन्द्र भगवान् नारायण के नेत्ररस अर्थात् आँसू से ही जिनका जन्म हुआ है ऐसी अलौकिक उत्पत्ति वाली आपको मैं किस उपमा से अलंकृत करूँ।

न वा रङ्गा गङ्गा न तरलतरङ्गा तरणिजा न चैवान्तर्नीरा पुनरवितधीरा न मुनिजा।
न वा रेवा देवार्चितसलिलसेवा किमगजास्त्वयान्याः सामान्या हरिधुनि तदालं तुलयितुम्॥32॥

हे भगवान् श्रीराम की अभीष्ट नदी माँ सरयू! आपके साथ उपमा में तो न भगवान् नारायण में अनुरक्त भगवती गङ्गा उपयुक्त हैं, न ही सूर्यकन्या यमुना और न ही अन्तःसलिला सरस्वती योग्य हैं। आपसे उपमित होने के लिए धीरजनों की रक्षा करने वाली गौतमकन्या गोदावरी भी आपकी तुलना में नहीं आती तथा जिनका जल देवताओं द्वारा पूजनीय और सेवनीय है ऐसी भगवती नर्मदा भी यदि आपकी समता नहीं प्राप्त कर सकतीं तो फिर और दूसरी छोटी-2 साधारण नदियाँ आपश्री से कैसे उपमित की जा सकती हैं?

वसन् कल्पान् कोटीच्छ्रितनरकरोटी पुरि पुनस्तथाभूतान् भूताधिपजिदभिपूतां मधुपुरीम्।
व्रजेद् यावत् पुण्यं तत इह निमेषार्धमुषितो मुनीरे त्वत्तीरे शमधिकमुपैत्यर्बुदगुणम्॥33॥

हे मुनियों को प्रेरणा देनेवाली सरयू माँ! करोड़ों कल्पों तक मुण्डमालधारी भगवान् शङ्कर की पुरी काशी में निवास करके साधक जो पुण्य प्राप्त कर सकता है तथा उतने ही अर्थात् कोटि कल्पों तक भगवान् शङ्कर के विजेता योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान के श्रीचरणकमल से पवित्र मधुरापुरी में निवास करके जितना पुण्य प्राप्त कर सकता है उससे अरबों गुना अधिक पुण्य उस शक्ति को आपश्री के तट पर मात्र आधे क्षण निवास करने से उपलब्ध हो जाता है। ऐसा अपूर्व है आपश्री के तटनिवास का फल।

कोटि कल्प काशी बसे मथुरा लाख हजार।
एक निमिष सरयू बसे तुलइ न तुलसीदास।

यमैः किं बाणाख्यैः किमुतनियमैरासनगणैः किमु प्राणायामैः किमुत किल वाचंयमजपैः।
किमब्भोगैर्योगैः किमुत तनुतापेन तपसा यदीच्छेः सामीप्यं खरभिद उपास्वाथ सरयूम्॥34॥

अरे! पाँच प्रकार के यमों तथा पाँच प्रकार के नियमों से क्या लाभ? योगशास्त्र में वर्णित 84 आसनों की क्रिया का क्या तात्पर्य? पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायामों की क्या आवश्यकता? मौन धारण करके जटिल मन्त्रों के जपों से कोई लाभ नहीं। प्राणरस को खा जानेवाली अनेक हठयोग साधनाओं का क्या प्रयोजन? शरीर को तपा देनेवाले कठिन तप का कोई प्रयोजन नहीं। मित्र! यदि खर राक्षस के शत्रु भगवान् श्रीराम की निकटता चाहते हो तो भगवती सरयू माँ की उपासना करो। उसी से तुम्हें भगवान श्रीराम का सान्निध्य मिल जाएगा।

शरात्त्वं निर्वृत्ता शुफलशरसन्धायकगुरोर्निवृत्ता भूभोगाद्रुजितजपयोगादुरुभयान्।
प्रवृत्ता प्रोद्धर्तुं मलिनमनसो मानससरात् ततस्त्वां विद्वांसः शरयु सरयु प्राहुरनघे॥35॥

हे निष्पाप माँ सरयू! आप स्वयं 'शु' अर्थात् ब्रह्म ही जिसका फल है ऐसे दिव्य बाण का संधान करने वाले भगवान् श्रीराम के शिक्षागुरु भगवान् श्रीवशिष्ठ जी के बाण से ही प्रकट हुईं। जप और योगों को भी रुग्ण बना देने वाले ऐसे भीषण पार्थिव भोगों से भी आप अत्यन्त निवृत्त हैं। घोर भवमय से युक्त मलिन मनवाले जीवों का उद्धार करने के लिए ही आप वशिष्ठ जी के बाण के द्वारा बनाए गए मार्ग के द्वारा मानस सरोवर में से उद्गत हुईं। इसलिए विद्वान् लोग आपको तालव्य और दन्त्य– इन दोनों माध्यमों 'शरयू' तथा 'सरयू' कहकर संबोधित करते हैं।

हरस्यंहोराशिं सलिलवपुषा तालुनि गता भिनत्स्यागोदन्तान् सरयु इति सद्धीभिरुदिता।
ततस्त्वां तालव्यात् पुनरपि च दन्त्यात् पदविदो जगुर्ज्ञेयां ध्येयां शरयु सरयु प्रोज्ज्वलधियः॥36॥

हे माँ! आप जल के रूप में जब किसी के तालु को स्पर्श करती हैं। तभी उसकी समस्त पापराशि को समाप्त कर देती हैं और जब किसी के द्वारा सरयू कहकर दन्त्य सकार के माध्यम से दाँतों द्वारा उच्चारित होती हैं, उसी समय आप उच्चारणकर्ता के अपराधों के दाँत तोड़ देती हैं। इसलिए अत्यन्त निर्मल बुद्धि वाले महापुरुषों द्वारा जानने तथा ध्यान

करने योग्य आपश्री को हम जैसे पदशास्त्र व्याकरण के वेत्ता तालव्य शकार के माध्यम से सरयू तथा दन्त्य शकार के माध्यम से सरयू कहकर अभिहित करते हैं।

शरा नित्यं यस्मिन्नवितथशरं ब्रह्मविरजं घनश्यामं रामं पयसि परिपूर्णं प्रवहसि।
शरं जीवात्मानं हर इह शरे योजयसि यत् ततो युक्तं श्रुत्या जननि शरयु त्वं जगदिषे॥37॥

हे माँ! जिनके तूणीर में निरन्तर बाण विद्यमान रहते हैं ऐसे अमोघ शरों वाले रजोगुण से रहित घनश्याम परिपूर्णतम ब्रह्म भगवान् श्रीराम को आप अपने जलधारा-प्रवाह में निरन्तर प्रवाहित करती रहती हैं तथा कठोपनिषद् की दृष्टि से बाण रूप जीवात्मा को प्रणव के वाच्य बाणधारी भगवान् राम के चरणों में संयुक्त करती रहती हैं, इसलिए उचित ही भगवती श्रुति के द्वारा आप अनादिकाल से 'सरयू' कहकर संबोधित की जाती रही हैं। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है- "शरयूः सिन्धुरूर्मिभिः।"

रसो वै ब्रह्मेड्यं तदिह सगुणं सत्सरमभूत् तदेव त्वं धत्से नृपशिशुमयं वारि विमलम्।
सरोज्ञानध्यानं निजजलरते रासि रुचिरे ततो युक्तं प्रोक्ता स्मृतिभिरभियुक्तैश्च सरयूः॥38॥

हे भगवती! श्रुति ने जिस ब्रह्म को स्तुतियोग्य तथा 'रसो वै सः' मन्त्रखण्ड से रसरूप कहा, वही निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर 'रस' से उलटकर 'सर' बन गया। उसी 'सर' शब्द के वाच्य दशरथराज के बालक रूप परब्रह्म श्रीराम को आप धारण भी करती हैं और बड़ी बहन के सम्बन्ध से पोषण भी। आप अपने जल में भक्ति रखने वाले महानुभावों को ज्ञान और ध्यान का सरोवर भी प्रदान करती हैं। इसलिए स्मृतियों और अभियुक्त पूर्वाचार्यों ने आपको उचित ही 'सरयू' सम्बोधन किया है।

शरं यत्संसारं पदविनततो यावयसि यत् तथा यौषि ध्याने स्वजनहृदये राघवशरम्।
रटन्ती खेलन्ती हरि-हरि-हरीति प्रतिपदं समाश्लिष्यायोध्यां वहसि विरुदं विश्ववरदम्॥39॥

हे भगवती सरयू! आप अपने चरणसेवकों के हृदय से संसाररूप बाण को दूर करती हैं तथा अपने भक्त के हृदय में उसके ध्यान के माध्यम से श्रीराम के बाण को स्फुरित करती रहती हैं। इसीलिए श्री अयोध्या को आलिङ्गन करके खेलती हुई तथा सतत अपनी धारा की संस्कृति से हरि-हरि-हरि शब्द का उच्चारण करती हुई आपश्री सरयू माँ लोकवन्दित यश को धारण कर रही हैं जिससे यह संसार अनादिकाल से अपने मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त कर रहा है।

सुकेते साकेते निरुपधिनिकेते निरवधौ लसत्सीतारामे भवभयविरामे निरुपमे।
उदीच्यां राजन्ती रजतमहसा या च विरजाः विभुद्बोध्यायोध्या प्रियसहचरी सा च शरयूः ॥40॥

सुन्दर पताकाओं से सुशोभित तथा निष्कपट श्रीवैष्णव महानुभावों के दिव्य गृहों से मण्डित एवं परिपूर्णतम परब्रह्म श्रीसीताराम जी की नित्य उपस्थिति से शोभायमान ऐसे भवभय के विराम स्थानरूप निरूपम श्रीसाकेत लोक में भगवान् श्रीसीताराम जी के निवास से उत्तर दिशा में जो चाँदी के समान श्वेत जल से युक्त विरजा नामक नदी विराजमान है वही वेद-बोद्ध्या श्रीअयोध्या की प्रिय सहचरी बनकर श्रीसरयू के रूप में इस धराधाम में आयीं।

स्रवन्ती दीव्यन्ती रिपुततजनिस्वान्तसरसो द्रवन्ती दीव्यन्ती शशिकरजलैर्जह्नुतनयाम्।
अवन्ती दीव्यन्ती विषमविपदो जीवनिकरान् प्लवन्ती दीव्यन्ती दिविजसरितं भासि शरयूः ॥41॥

हे माँ सरयू! आप कामारि शङ्करके पूज्य पिता ब्रह्मा के मन से उत्पन्न मानस सरोवर से प्रकट होती हुई अपनी लोल तरङ्गों से क्रीड़ा करती हुई, जह्नुकन्या भगवती गङ्गा की ओर प्रवाहित होती हुई तथा स्वयं भी भगवदानन्द से आनन्दित होती हुई, चन्द्रकिरण जैसे शुभजल से विराजमान होकर कोटि-कोटि जीवों की विषम विपत्ति से रक्षा करती हुई एवं अठखेलियाँ करती हुई तथा अपने पुण्यातिशय से देवनदी गङ्गा को भी जीतने की इच्छा करती हुई अलौकिक रूप से विराजित हो रही हैं।

समाम्नाता वेदे गलितभवखेदेऽथ बहुशः स्मृता स्मार्तैरार्तैर्विनतवचनैः कीर्तितपदा।
मुहुर्गीता प्रीता भजनरसिकैर्भक्तिकलितैः सरिद्वेषा सैषा विलसति विभोः कापि करुणा ॥42॥

संसार का खेल नष्ट करने वाले अपौरुषेय वेद में भगवान् की जिस करुणा का बारम्बार अभ्यास किया गया है तथा अठारह स्मृतियों में जिसका बहुशः स्मरण किया गया है एवं आर्त भक्तों द्वारा अनेक विनम्र वचनों से परमेश्वर की जिस करुणा का स्मरण किया गया है, भगवान् की जो करुणा-कादम्बिनी भगवत्-प्रेमी भजनरसिक महानुभावों द्वारा भक्तिपूर्वक पुनः-पुनः गायी गयी है, वही भगवान् श्रीराम की कोई अनिर्वचनीय अलौकिक करुणा ही नदी का वेश धारण करके इस समय माँ सरयू के रूप में सुशोभित हो रही हैं। क्योंकि शिवजी के ताण्डव से करुण हुए भगवान् नारायण के नेत्रों से प्रवाहित जल ही तो सरयू है।

हसन्तीं स्वर्गङ्गां तरलिततरङ्गां स्वसुकृतैर्लसन्तीं वानीरैस्तटकृतकुटीरैर्मुनिगणैः।
वसन्तीं संवासं सुरनुतनिवासं हरिपुरे न सन्तीहामुष्मिन् जननि भवतीं येऽभिदधतः॥

हे माँ सरयू! अपने पुण्यों से तरल तरङ्गों वाली आकाश गङ्गा की भी हँसी उड़ाती हुई तथा अपने किनारों पर लगे हुए बेल के वृक्षों एवं अपने तीरों पर कुटिया बनाकर रह रहे मुनिगणों से सुशेभित होती हुई तथा देवताओं के द्वारा नमनीय श्रीअयोध्या में नदी रूप से सतत निवास करती हुई ऐसी महा-महिमामयी आपश्री सरयू माँ को जो पूर्णरूपेण गा सकें, ऐसे लोग इस मर्त्यलोक व परलोक में नहीं हैं।

विनश्यत्पङ्काङ्का प्रकषितकलङ्का पदजुषां विराजच्छीलाङ्का विजितहरिणाङ्का तनुरुचा।
लसन्मुक्ताम्भोऽङ्का धृतगुणकरङ्का कमलिनी वृषाङ्केशाङ्घ्र्यङ्का हरिधुनि विशङ्का विजयसे॥44॥

हे भगवान् की पूज्य नदी सरयू! आप अपने भक्तों के पापपंक तथा सभी कलंक नष्ट कर देती हैं। आपके भीतर शील रूप पताकावाले भगवान श्रीराम विराजते हैं। आपने अपनी दिव्य श्वेत कान्ति से चन्द्रमा को जीत लिया है। आपका जल शुभ्र मुक्ता के समान निर्मल है। आपने दिव्य गुणों का पिटारा धारण किया है। आप देवताओं के कमलों से युक्त हैं और समस्त शङ्काओं से रहित एवं सबसे श्रेष्ठ होकर विजयिनी हो रही हैं।

क्वचिद्दोलालोला क्वचिदपि तरङ्गैस्तरलिता क्वचित्सत्कल्लोला ध्वनिविचितवारान्निधिरवा।
क्वचित् खेलाहेला जवदलितशैलेन्द्रशिखरा लसल्लीला बाला प्रकृतिरथ कैशोरचपला॥45॥

जो भगवती सरयू कहीं पर हिंडोले की भाँति थोड़ी-2 चंचल दिखती हैं तो कहीं अपनी तरङ्गों से तरल हो जाती हैं। कहीं ऊँची लहरों की ध्वनि से सागर गर्जन को भी फीका कर देती हैं, तो कहीं अपनी सहज क्रीड़ा में अवज्ञापूर्वक सहज प्रवाह के वेग से बड़े-बड़े पर्वतों के शिखरों को भी तोड़ डालती हैं। इस प्रकार वे अपनी अनेक चंचल लीलाओं से सदैव गतिशील रहती हैं, क्योंकि बालाओं की प्रकृति प्रायः किशोरावस्था में कुछ चंचल हो जाती है।

क्वचिद्धीरा धीरार्चितविमलनीरा निरुपमा क्वचिल्लोलन्नीरा मलयितसमीराञ्चितचितिः।
क्वचित्तीरानीराजितमुनिकुटीरा भगवती प्रकृत्या गम्भीरा लसति चरितैरार्यललना॥46॥

कहीं पर भगवती सरयू स्थिर जलवाली दिखती हैं, उनके जल शरीर का धीरजन पूजन किया करते हैं। कहीं पर आपका जल कुछ हिलता दिखता है जिससे उनका तटवर्ती

मलयमारुत मानवीय चेतना को सक्रिय कर देता है कहीं पर भगवती सरयू के तट पर की जा रही आरती से मुनियों के कुटीर भी जगमगाते रहते हैं। इस प्रकार सरयू माँ के सौम्य चरित्र से यह निष्कर्ष स्पष्ट हो जाता है कि आर्य ललना कुशल गृहिणी के रूप में अपने चरित्रों से स्वभावतः गम्भीर रहकर ही सुशोभित होती हैं।

क्वचिच्छान्ताऽश्रान्ता विलसितवनान्ता सुवनिता ऋतौ ग्रीष्मे भीष्मे क्षपितसुषमे वै निजतटे।
दिवातप्यद्रेणू रविकिरणपीताल्पसलिला नमस्यत्स्वर्धेनुस्तप इव नदीयं प्रतपति॥47॥

कहीं श्रान्त तरङ्गोंवाली अश्रान्त अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न प्रवाह से युक्त तथा अपनी प्रभा से वन-प्रान्त को सुशोभित करनेवाली भयङ्कर ग्रीष्म ऋतु में भी भक्तों के उन्मत्त काम को नष्ट करने वाले ऐसे श्रेष्ठ तट पर दिन में चिलचिलाती बालुका से युक्त तथा सूर्य की किरणों से जिनका जल पी लिया गया है, ऐसी नमस्कार करने वालों के लिए कामधेनु के समान यह नदी भगवती सरयू तप करती हुई-सी प्रतीत होती हैं।

क्वचित्कुञ्जे गुञ्जन् मुनिमधुपपुञ्जे गहनतः शनैर्यान्ती रान्ती हरिचरणपङ्केरुहरतिम्।
निमज्जद्भ्योऽभीतिं भजनरसरीतिं रघुपतेर्बुधैर्गीता प्रीता लसति वनदेवीव सरयूः॥48॥

कहीं-2 मुनिरूप भ्रमरों के गुञ्जार से युक्त लताओं के झुरमुट में वन के अन्तराल से धीरे-2 बहती हुई अपने जल में निमज्जन करने वाले महानुभावों को संसार से निर्भीकता, परमात्मा के चरणाविन्द में भक्ति तथा श्रीराघव सरकार के भजन रस की रीति प्रदान करती हुई विद्वानों द्वारा गीतयशस्क प्रसन्नसलिला भगवती सरयू वनदेवी जैसी दृष्टिगोचर होती हैं।

हरत्यंहो ह्यम्भोऽवनतिरनिशं दुर्गतिमलं जलस्पर्शो हर्षोत्कमलकलिकां कन्दलयति।
पयः पानं पानं जननि पयसः संयमयति त्वयि स्नानं स्नानं हरिरतिरसाब्धौ जनयति॥49॥

हे माँ सरयू! आपश्री के जल का अधोगमन जीव की अधोगति के हेतुभूत पाप तथा उसकी दुर्गति को सतत समाप्त करता रहता है और हे माँ! आपके जल का स्पर्श जीव के हर्षरूप उत्कृष्ट कमलकलिका को विकसित करता है। हे भगवती! आप का पयःपान माता के दुग्धपान को नियंत्रित करता है; तात्पर्य यह है कि श्रद्धासहित आपके जल का पान करके जीव जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है और आपके जल में किया हुआ स्नान भगवत्प्रेमामृत समुद्र में स्नान की योग्यता उत्पन्न करता है।

चलत्-क्लान्तं श्रान्तं सशमलमशान्तं मनइभं मुहुर्मुग्धं दग्धं भवदवदवैस्तेऽमलजले।
सकृत्स्नात्वा ध्यात्वालभत इव पीयूषसरितं प्रवृष्टं सम्पुष्टं जयति सरयूस्नानमहिमा ॥50॥

जो मनरूप हाथी निरन्तर चलायमान तथा भीतर से क्लांत और बाहर से श्रान्त तथा पाप से युक्त होने के कारण अत्यन्त अशान्त था। जो ज्ञान से शून्य एवं संसार की विषयाग्नि से झुलसा चुका था, ऐसे मन-पतंग को भी आपके निर्मल जल में एक ही बार स्नान और ध्यान इतना हृष्ट-पुष्ट बना देता है मानो वह मनोगज अमृत की सरिता में प्रवेश कर चुका हो। ऐसी अपूर्व सरयू-स्नान की महिमा सबसे उत्कृष्ट हो रही है।

महाक्रूराशूरा सततमतिदूरा रघुपतेर्विषिण्वन्ती चार्थान् परिलसदनर्थान् प्रतिपदम्।
लसत्पापा तापापहतमतिरप्येति सलिले तव स्नात्वा शुद्धिं लसति सरयूस्नानमहिमा ॥51॥

अत्यन्त क्रूर तथा विकारों के प्रति सर्वथा भीरु प्रकृति वाली, कुटिल एवं श्रीराम के चरणों से अत्यन्त दूर, सतत अनर्थ से भरे हुए विषयों का ही चिन्तन करती हुई, भयंकर पाप से भरी हुई, तापों से नष्ट हुई बुद्धि भी आपश्री के जल में स्नान करने मात्र से परम शुद्धि को प्राप्त कर लेती है। ऐसी सरूय माँ की स्नानमहिमा सर्वत्र शोभित हो रही है।

वसन्मानं ज्ञानाम्बुजदलकृपाणं मलमयं विनश्यन्निर्वाणं भवितभवबाणं बलरिपुम्।
दुरन्ताहङ्कारं भवनिधिमथाम्भोघटभवः पिबत्यद्धैवारादहह सरयूस्नानमहिमा ॥52॥

जिसमें निरन्तर अभिमान रहता है तथा जो ज्ञान-कमलदल को नष्ट करने के लिए तलवार जैसा है। जिससे मोक्ष सुख नष्ट होता है और जहाँ संसार के दुःख बाणों की पूजा होती है, ऐसे कलिमलयुक्त अन्तरहित, अहंकारयुक्त संसार-सागर को आप श्रीसरयू माँ का जलरूप अगस्त्य अत्यन्त शीघ्रता से पान कर लेता है। अहो अपूर्व है सरयू जी के स्नान की महिमा।

मुधामायावित्तं प्रभुपदनिवृत्तं शठमयं विसर्पत्संसारे प्रतिपदमसारेऽनुनिमिषम्।
मुहुर्भ्रामं भ्रामं गतभयविरामं तव पयः सुखं चित्ते ध्यात्वा वशति शरयूस्नानमहिमा ॥53॥

झूठी माया ही जिसका धन है। जो सर्वथा भगवान् के चरणों से दूर रहता है। जिसका स्वभाव शठरूप है। जो सार रहित संसार में पग-2 पर क्षण-2 फिसलता रहता है तथा जो सदैव भटकता-2 कभी भी भय से विराम नहीं लेता- ऐसा अशान्त चित्त भी आपके जल का ध्यान करके सुखी हो जाता है। सरयू स्नान की महिमा कांतिमती हो रही है।

यहां 'वश कान्तौ' धातु से आचार में क्विप् प्रत्यय से 'वशति' शब्द निष्पन्न किया गया है।

द्विजानां वेदानां शिशुगुरुसुराणामथ गवां नृणामादृत्यानां परिभवभवं हिंसनकृतम्।
महापापं तावद् व्यथयति न यावत्तव वनं नमन्मूर्ध्ना धत्ते विमलशरयूस्नानमहिमा ॥54॥

ब्राह्मणों, वेदों, बालकों, देवताओं, गुरुजनों, गायों तथा आदरणीय मनुष्यों के अपमान से उत्पन्न हुआ एवं उनकी हिंसा से समुदित हुआ भयंकर पाप प्राणी को तभी तक व्यथित करता है जब तक वह आपश्री के जल को प्रणाम करके सिर पर नहीं धारण करता। धन्य है विमल सरयू के स्नान की महिमा!

उदस्यन्नौदास्यं पुनरपि च दास्यं खलकलेर्निरस्यन्नैराश्यं निचितमथ लास्यं त्रिजगताम्।
हरन्हारं हारं विगलितविहारं हरिमतां समुत्कर्षन्हर्षं विशदशरयूनीरमहिमा ॥55॥

उदासीनता तथा दुष्ट कलिकाल का दास्य समाप्त करती हुई तथा जीवों की निराशा एवं तीनों लोकों में व्याप्त विषयलास्य का निरसन करती हुई परमभागवतों की भावनाओं का हरण करने वाले तथा साधनाश्री को चुराने वाले श्रीवैष्णवोचित भजनानन्द रूप विहार को नष्ट करने वाले मोह का हरण करने वाली एवं भजनानन्दियों के हर्ष का उत्कर्ष बढ़ाने वाली निर्मल सरयू जल की महिमा अपूर्व है।

अपूर्वं प्रेमौर्वं भवजलनिधेः सन्तरलयन् खरारातेर्भक्तिं श्रितजगदसक्तिं प्रबलयन्।
मनोग्रावद्रावं कलितमृदुभावं सुबलयन् मतिम्मान्यां कुर्वन्नहह शरयूवारिमहिमा ॥56॥

अहो! क्या अपूर्व है सरयू जल की महिमा, जो संसार सागर को सोखने के लिए अपूर्व प्रेमरूप वाडवानल को गतिमान कर देती है, जो संसार की आसक्ति को समाप्त करने वाली भगवान् श्रीराम की भक्ति को प्रबल करती है और जो मन रूप पाषाण को पिघला देने वाले कोमल भगवद्भाव को शक्तिमान बनाती है या संसार में फँसी हुई बुद्धि को भगवद्भजन से माननीय बना डालती है।

छिनन्त्याशापाशं भवभयविनाशं वितनुते भिनत्यागोयूथं हृतमलवरूथं पदजुषाम्।
हरत्यम्भोरङ्गं धृतधरणिजानङ्गमनिशं वहन्वारारामं सुधति शरयूनीरमहिमा ॥57॥

भगवती सरयू की महिमा साक्षात् अमृत के समान है जो आशापाश को काटकर फेंक देती है तथा जो भव-भय का विनाश कर डालती है तथा जो भगवान् श्रीसीतापति के

अविचल अनुराग को धारण करती हुई पापों के समूह को भी कुचल डालती है और जो अपने जल के प्रवाह से भक्तों के हृदय में भगवान् श्रीराम को भी प्रविष्ट करा देती है।

न चोत्सर्गं स्वर्गं न जितरिपुवर्गं महिसुखं न वा त्रैय्या वर्गं न पुनरपवर्गं निरवधि।
न वा रामा रम्या विबुधगणनम्या तव पुनः पिबन् पाथोनाथस्तृणमिव कदाचिद् गणयति॥58॥

हे भगवती सरयू! जो आपका अमृतमय जल पी लेता है वह अनाथ अर्थात् अकार के ही वाच्य श्रीराम को ही अपना नाथ मान लेता है, वह श्रेष्ठ रचनावाला स्वर्ग हो या निष्कण्टक पृथ्वी का सुख, त्रयि अर्थात् अर्थ, धर्म, कामना वर्ग हो या निःसीम मोक्ष। चाहे देवताओं द्वारा प्रणम्य सुन्दरी नारियाँ हों या संसार के समग्र सुख, किसी को भी आपके जल की तुलना में तृण के समान भी नहीं गिनता।

कदा दर्शं दर्शं लसदलघुहर्षं तव रुचिं वसानः कौपीनं हृदयमथ लीनं हरिरतौ।
सनीरं कुर्वाणो नयनमथ बाणाङ्कितहरिं स्मरँस्तीरे धीरः शरयु तव नेष्यामि दिवसान्॥59॥

हे माँ सरयू! मेरे जीवन में वह क्षण कब आएगा जब परम प्रसन्नता के साथ आपकी शोभा बार-बार देखकर केवल कौपीन धारण करके अपने मन को भगवद्-रस में लीन करता हुआ आँखों में प्रेमाश्रु भरकर बाणधारी श्रीराम का स्मरण करते हुए शान्त मन से आपके ही तट पर अपने दिनों को क्षण की भाँति बिताऊँगा।

कदाहं कालिन्दीजलकमलकन्दाभमनुजैश्चरन्तं त्वत्तीरे शिशिरितसमीरे शिशुतनुम्।
दृशा पश्यन्रामं विजितशतकामं तनुरुचा मुहुश्चुम्बं चुम्बं निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥60॥

हे माँ सरयू! मेरे जीवन में वह क्षण कब आएगा जब मैं शीतल वायु से युक्त आपश्री के तट पर तीनों भाइयों सहित खेलते हुए यमुना-जल, कमल तथा बादल के समान सुन्दर शरीर की कान्ति से कोटि-कोटि कामदेवों को जीतनेवाले, शिशु रूप श्रीराम को अपनी आँखों से देखता हुआ उन्हें बार-बार चूम-चूमकर अपने दिनों को क्षण की भाँति बिताऊँगा।

न याचे वैधात्रं सुरपतिपदं नो पशुपतेर्न वा याचे नाकं न च विविधशाकं सुरवनम्।
न वाञ्छामि स्वर्गं न पुनरपवर्गं हरिधुनि मनो मे त्वत्तीरश्रितसुतृणधाम्ने स्पृहयते॥61॥

हे माँ सरयू! मैं ब्रह्मपद, इन्द्रपद तथा शिवपद भी नहीं चाहता। हे मां! मैं स्वर्ग और अनेक औषधियों से समृद्ध नन्दनन्वन भी नहीं चाहता। हे श्रीराम की नदी! और मैं अपवर्ग

भी नहीं चाहता, अब तो मेरा मन घास-फूस की कुटीर बनाकर आपश्री के तट पर निवास करने के लिए स्पृहा कर रहा है।

अपूर्वे पूर्वेषां मखलसदपूर्वे मखवतां सुरूपे सद्रूपे क्रतुकलितयूपे क्षितिभुजाम्।
महाभागे भागे भवभवविभागे भगवति द्रुते पद्माक्षाक्ष्णः क्षपय मम हृत्क्षाममममताम्॥62॥

हे लोकोत्तर व्यक्तित्व वाली सरयू! हे याज्ञिकों के यज्ञ के पुण्य से मण्डित हे शोभनरूपसम्पन्न, हे ब्रह्मरूपिणी, हे याज्ञिक नरेशों के यज्ञस्तम्भों से सुशोभित तटवाली, हे महाभागा, हे आभामयी, हे संसार के कल्याण विभागों से सम्पन्न, हे भगवान विष्णु के श्रीनेत्रारविन्द की मकरन्दभूते हे भगवती सरयू। आप कृपया मेरे हृदय में वर्तमान अज्ञानरात्रि सम्बन्धिनी ममता का क्षय अर्थात् विनाश करिये।

अनाथानां नाथो जननि तव पाथोऽमृतमयमनीशानामीशा त्वमसि जगदीशार्चितपदा।
अशक्तीनां शक्तिस्त्वमसि हरिशक्तिप्रणयिनी निराधाराधारोऽधिजगदवतारस्तव शुभे॥63॥

हे माँ! आपका अमृतमय जल ही अनाथों का नाथ है। जगत् के ईश्वर श्रीराम के द्वारा आपके श्रीचरणों की पूजा की गई है। इसलिए आप अनीश अर्थात् असमर्थों की भी ईश्वरी हैं। आप हरिशक्ति सीता जी की सहचरी होने के कारण शक्तिहीन प्राणियों की भी शक्ति हैं। आपका जगत् में यह जलावतार निराधारों का भी आधार है।

अमुष्मिन् कान्तारे विलसितविकारेऽधिजनुषो दुराशाकूपारे विगलितविचारे विचरतः।
असारे संसारे सरयु सरतो मे विहरतः कलङ्कं मृत्पङ्कं जननि तव पङ्कः क्षपयतु॥64॥

हे माँ सरयू! जो वन के समान भयङ्कर है तथा जिसमें विकार ही शोभित होते हैं, जो दुराशा का महासागर है और जिसके चिन्तन से श्रेष्ठ विचार समाप्त हो जाते हैं ऐसे असार संसार में जन्म लेकर फिसल-फिसलकर विचरते हुए मुझ दास के भगवद्विरोधी चिन्तन रूप, भजन के कलङ्क तथा पृथ्वी की आसक्ति से जनित कीचड़ को आपके भीतर वर्तमान पङ्क समाप्त कर दे।

भजन्त्वेके गौरीं गणपमपरे शम्भुमितरे रमानाथं केचित् स्थिरमन इहान्ये दिनकरम्।
अनन्योऽहं धन्यो रघुपतिपदाम्भोजविगलन् मरन्दाकाङ्क्षां सततमजपौत्रीमथ भजे॥65॥

कुछ लोग पार्वती जी का भजन भले ही करे, कुछ लोग भगवान् शङ्कर को भजते हों कुछ लोग गणपति, भगवान् नारायण अथवा सूर्यनारायण को भजते हों तो भजें; परन्तु मैं

तो स्वयं में धन्यता का अनुभव करता हुआ भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल के मकरन्द से मण्डित तथा परब्रह्म के श्रीवत्सलाञ्छन से चिह्नित भगवान् ब्रह्मा जी की ही पौत्री सरयू माता का ही अनन्य भाव से चिन्तन करता हूँ।

न जाने गौरीशं न पुनरवनीशं खगगतिं न हेरम्बं साम्बं न जगदवलम्बं हरिहयम्।
न चैवान्यान्देवान् श्रितविविधसेवान्मुनिसुते अहन्तु त्वां जाने हरिनयनजां जाह्नविनुताम्॥66॥

हे मुनि वशिष्ठ की पुत्री सरयू! मैं न तो गौरीपति भगवान् शङ्कर को जानता हूँ और न ही पृथ्वी के स्वामी भगवान् नारायण को, न तो मैं श्री पार्वती सहित भगवान् गणेश को जानता हूँ और न ही जगत् के अवलम्ब हरे घोड़ों वाले भगवान् सूर्य को, अनेक सेवाओं की अपेक्षा करनेवाले अन्य देवताओं को भी मैं नहीं जानता। मैं तो केवल गङ्गा जी की भी वन्दनीय भगवान् विष्णु के नेत्रकमल से प्रकटी हुई आपश्री सरयू माँ को ही जानता हूँ।

जपन्त्वेके कामं प्रणवमिह वेदार्पितधियो रटन्त्वन्ये धन्या विबुधगणमान्याः श्रुतिततीः।
पठन्त्वेके श्लोकानगलितभवशोकान्सुखमहं सदा श्रद्धायुक्तः सरयु शरयु प्राञ्जलि गृणे॥67॥

भले ही कुछ लोग वेदों में बुद्धि लगाकर प्रणव का जप किया करें, देवताओं द्वारा मान्य अन्य लोग भले ही स्मृतियों को रटें तथा इससे अतिरिक्त संसार के भय-शोकों को नष्ट करने वाले आर्ष स्तोत्र श्लोकों को भले ही कुछ लोग पढ़ा करें; परन्तु मैं तो श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर हाथ जोड़कर सरयू-सरयू ही रटा करता हूँ।

समुद्धर्तुं दीनान्जगदुदधिमीनान्कुमनसः सुखीकर्तुं लोकं कलितजनशोकं श्रितभयम्।
समाहर्तुं रामाङ्घ्र्युदजरज आयाहि विरजे रजो रातुं भूमेरधिजगति साकेतसदनात्॥68॥

जो साकेत लोक में विरजा के नाम से प्रसिद्ध हैं, वही आप संसार-सागर के मछली बने हुए दीनजनों का उद्धार करने के लिए लोगों के शोक से युक्त, भय-व्याप्त इस मर्त्यलोक को सुखी करने के लिए भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमल के पराग को अपने हृदय में समाहित करने के लिए तथा पृथ्वी का रजोगुण दूर करने के लिए ही इस जगत में सरयू रूप से अवतरित हुईं।

अयोध्याभामिन्याः सितकुसुमसीमन्तसुषमा भुवः श्रीभारत्या गुणगणितगम्भीरगरिमा।
खरारातिप्रेम्णः प्रथितप्रथिमालूनलघिमा नदीनां सम्राज्ञी जयसि सरयूर्मञ्जुमहिमा॥69॥

हे सरयू माता! आप अयोध्यारूपिणी सुलक्षणा महिला की शिरोऽलङ्काररूप श्वेत पुष्पमय सीमन्त की शोभा हैं। आप भारतभूमि की वह गुणगरिमा हैं जिसे भगवती शारदा गाया करती हैं। आप लघुता को दूर करने वाली श्रीरामप्रेम,की प्रसिद्ध प्रतिष्ठा हैं तथा आप नदियों की साम्राज्ञी एवं महामहिमा से मण्डित हैं। आपकी जय हो।

तवोर्मिर्भक्त्युर्मिर्मम भवकदूर्मीः कदयतु तवाम्भः पापाम्भः प्रसभमभयं मेऽपनयतु।
तवासारोऽसारं हरतु मम संसारमशुभं तवोद्धाराधारा मम विषयधाराः प्रथमतु॥70॥

हे माँ सरयू! श्री रामभक्ति की लहर से युक्त आपकी लहर हमारी जन्म-मरणादि छहों दुष्ट उर्मियों को समाप्त कर दे। हे अभयदात्री! आपका निर्मल जल मेरे शोक-जल को दूर करे।

हे माँ! आपका प्रवाह मेरे अशुभ असार संसार का हरण कर ले तथा उद्धार करने वाली आपकी धारा मेरी शब्दादि विषय-धाराओं को ध्वस्त कर दे।

शठो वा पापो वा धृतमलकलापो मलिनधीर्जडो वा जिह्मो वा लसदघकदम्बो हठपरः।
खलो वा दुष्टो वा प्रतिपदमशिष्टः समभिकः क्षणं पश्यन्नीरं भवति तव धीरो हि विमलः॥71॥

हे माँ! चाहे कोई शठ हो या पापी, चाहे कोई मलसमूहों से युक्त हो या मलिनबुद्धि, चाहे वह जड़ हो या कपटी, चाहे वह अपराधी की शशि हो या हठी, चाहे वह खल हो या दुष्ट, चाहे वह पग-पग पर अशिष्ट आचरण करता हो या अत्यन्त कामी हो, कोई भी कितना भी बड़ा निकृष्ट कोटि का क्यों न हो पर वह एक ही क्षण आपश्री के दर्शन करके धीर और निर्मल हो जाता है।

अये! मातर्माते मयि भवतु पारुष्यमनघे त्वयाहं क्षन्तव्यो जडमतिरनाथोऽतिकुटिलः।
यदि त्वं मद्दोषाद्भवसि समुपेक्षाकुलमना निराधारोद्धा रोदिमि कथय कस्याः पुर इह॥72॥

हे माँ सरयू! हे निष्पाप सलिले! मुझ पर आपकी इस प्रकार कठोरता नहीं होनी चाहिए। मुझ जैसा जड़बुद्धि वाला अनाथ, अत्यन्त कुटिल बालक आपके द्वारा तो क्षन्तव्य ही है। यदि आप मेरे दोष के कारण मुझ पर उपेक्षा युक्त मन वाली हो रही हों अर्थात् मुझे त्यागने का मन ही बना लिया हो तो आप ही बताइए कि सब प्रकार से निराधार मैं अब आपके अतिरिक्त किसके समक्ष यहाँ अपनी करुण कहानी रोऊँ?

त्वदन्या का मान्या त्रिभुवनवदान्या हरिथुनि त्वदन्या का कञ्जाम्बकनयनकारुण्यलहरी।
त्वदन्या का धन्या रघुपतिपदाम्भोजरजसा त्वदन्यां का यायां शरणमरविन्दाक्षतनये ॥73॥

हे श्रीराम की वन्दनीया सरिते! आपके अतिरिक्त तीनों लोकों में और कौन नदी इतनी दानशील है? हे सरयू माँ! आपके अतिरिक्त और कौन कमलनेत्र भगवान् श्रीविष्णु की करुणा-लहरी रूप में प्रकट हुईं। आपके अतिरिक्त और कौन नदी सहस्रों वर्षों तक भगवान् श्रीराम के पदपद्म-पराग से धन्यता को प्राप्त हुई। इसलिए हे भगवान् नारायण की पुत्री! मैं आपके अतिरिक्त और किसकी शरण में जाऊँ?

शुभे शुभ्रे शुभ्रागदितकरुणाभ्रे भगवति भवे भद्रे भद्रार्चितगुणसमुद्रे भवभवे।
लसत्सीतारामाविरलपुलिने नव्यनलिने सुनीरे त्वत्तीरे जननि रघुवीरं प्रकटय ॥74॥

हे माँ, हे श्वेत वर्णवाली हे शुभ्रा अर्थात् सरस्वती द्वारा गायी हुयी करुणा की मेघमाला से युक्त, हे कल्याणमयी हे भद्रे! हे भद्रपुरुषों द्वारा पूजित, गुणों के महासागर-कल्प, हे शिवजी का भी कल्याण करने वाली, हे भगवान् श्रीसीताराम जी से सुशोभित सघन तटों वाली, हे नवनीलकमलमण्डिते, आप करुणा करके श्रेष्ठ जल से अलंकृत अपने तट पर श्रीराघव सरकार को प्रकट कर दीजिए।

सदा मातस्तीरे तव महितनीरेऽनुजसुहृत् प्रवीरोऽर्चद्धीरो नवघनशरीरो विहरति।
दधानं तूणीरं तमथ रघुवीरं लघुधनुश्शरारामं रामं नयनपथमाटीकय मम ॥75॥

हे पूजनीय-सलिले माँ सरयू! आपके तट पर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा मित्रों से युक्त तथा धीर पुरुषों द्वारा पूजित, नवीन बादल के समान श्रीविग्रह वाले श्रीहरि सदैव विहार करते रहते हैं। निषंग धारण किए हुए छोटे-छोटे धनुष-बाण से खेलते हुए उन रघुवीर भगवान् श्रीराम को आप मेरे नेत्र-पथ पर ले आएँ।

मनुष्यश्चेन्मातस्तव शुभतटे कोशलगतः पशुश्चेद् भूयासं जननि तव तीरे तृणचरः।
अथो तिर्यग्योनिस्तव पुलिनभूनीडनिलयो यदि स्यां मत्स्योऽहं सततसरयूनीरनिभृतः ॥76॥

हे माँ! यदि मैं मनुष्य बनूँ तो अयोध्या में जन्म लेकर आपके तट पर भ्रमण करूँ, यदि मैं पशु बनूँ तो आपके तट की कोमल-कोमल घास चरूँ, यदि मैं पक्षी बनूँ तो आपके ही तट पर उत्पन्न हुए वृक्ष पर अपना घोंसला बनाऊँ, यदि मैं मछली बनूँ तो आपके ही जल में आनन्द करता रहूँ।

श्रये धीरस्तीरं पुनरमृतनीरं भयहरं भजेऽहं वासिष्ठीं हरिनयनसृष्टिं भगवतीम्।
स्मरामि प्रोत्तुङ्गां रचितभवभङ्गां गिरिधरः शरय्वाः श्रीरङ्गां मधुरमिह गायामि लहरीम्॥77॥

हे माँ सरयू! मैं गम्भीर बुद्धि से आपके तट एवं भयहारी अमृतमय जल का श्रयण करता हूँ। श्रीमन्नारायण के नेत्र से उत्पन्न हुई वशिष्ठ-तनया सरयू जी का भजन करता हूँ। मैं 'रामभद्राचार्य गिरिधर कवि' भगवती सीताजी की रंगकेलि रूप भवभंग करने वाली, माँ सरयू की विशाल तरङ्गावलि का स्मरण करता हूँ और अपने ही द्वारा उनचास शिखरिणी छन्दों में प्रणीत सरयू-लहरी का मधुर-मधुर गान भी करता हूँ।

सम्भूता नयनाम्बुजान्मधुरिपोर्लोकं पुनाना पुनर्निर्वृत्ता पयसा वसिष्ठविशिखाज्जाता पुनर्मानसात्।
याऽयोध्यां रमयस्युदारतरलैः संल्लालयन्ती शिशुं श्रीरामं भगिनीव भो भगवति त्वं श्रेयसी श्रेयसे॥78॥

जो आप प्रथम तो भगवान् विष्णु के नेत्र से प्रकट हुईं, फिर जगत् को जल से पवित्र करती हुईं वशिष्ठ जी के बाण से विकसित हुईं। अनन्तर मानस सरोवर में आपका उद्‌गम हुआ, तत्पश्चात् शिशु रूप राघव सरकार को बड़ी बहन के समान दुलारती हुई आपश्री अयोध्या को ही श्रेष्ठ तरंगों से आनन्दित कर रही हैं। हे भगवती! आपका प्रत्येक क्रिया-कलाप जगत् के कल्याण के लिए ही होता है।

नमामि सरयूमहं स्फुरदमन्दधारावलीं मुकुन्दनयनाम्बुजश्रुतमरन्दसद्विग्रहाम्।
वसिष्ठमुनिकन्यकामहह लोलयन्तीं शिशुं तरङ्गवरदोलिकागतमिवादराद्राघवम्॥79॥

अहो! जो निरन्तर शिशु रूप राघव को आदरपूर्वक अपने पालने पर झुलाती रहती हैं, ऐसी अनेक चंचल धाराओं वाली भगवान् नारायण के नेत्रकमल की मकरन्द रूप वशिष्ठकन्या श्रीसरयू को नमस्कार करता हूँ।

करुणाववतार वैष्णवी सरयूनामधरा धरामिता।
मयि जल्पति क्लृप्तरोदने करुणार्द्रा भवताद् वसिष्ठजा॥80॥

जो भगवान् विष्णु की करुणा ही सरयू नाम धारण करके नदी रूप में धराधाम पर अवतीर्ण हुईं तथा पृथ्वी पर आयीं वे ही अनादिकाल से करुण क्रन्दनपूर्वक विलाप करते हुए मुझ दीन पर करुणा करके पिघल जायें।

इत्थं मयाऽथ सरयूपदपङ्कजश्रीश्रद्धासुभक्तिविलसन्मनसानवद्या।
गीता मुदा गिरिधरेण च रामभद्राचार्येण रञ्जयतु वो लहरी हरीष्टा॥81॥

इस प्रकार से माताश्री सरयू के श्रीचरणानिन्द की श्रद्धा तथा भक्ति से विलक्षित भाव वाले मुझ 'कवि गिरिधर रामभद्राचार्य' द्वारा गायी हुई निर्दोष तथा भगवान् श्रीराम को अत्यन्त प्रिय यह सरयू की लहरी भक्ति प्रदान करके आप सब श्रीवैष्णवों का रञ्जन करो।

ततः सरय्वां सरसीरुहाक्षः संस्नाप्य सर्वान् खलु हिन्दुजातेः
वियोजितान् योजयति स्म शिश्नैस्तथा शिखाभिर्नवयज्ञसूत्रैः ॥82॥

इसके अनन्तर कमलनयन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी हिन्दू धर्म से बिछड़े हुए सभी लोगों को सरयू में स्नान कराकर अपने योग के प्रभाव से उनके शिश्नों, शिखाओं तथा यज्ञसूत्रों से उन्हें समान कर दिया। अर्थात् उनका शिश्नच्छेद्य समाप्त हो गया।

दत्त्वा गुहास्याक्षरमन्त्रदीक्षां श्रीहिन्दुधर्मस्य मनोज्ञशिक्षाम्।
रामप्रपत्तिं च हरेः प्रतीक्षां सर्वस्य लोकस्य च वै परीक्षाम् ॥83॥

उन्होंने सभी हिन्दू धर्म में परावर्तित हुए भाइयों को षडक्षर राममन्त्र की दीक्षा दी, हिन्दू धर्म की सुन्दर शिक्षा दी, श्रीराम की शरणागति प्रदान की, परमात्मा की प्रतीक्षा का रहस्य बताया और सभी सांसारिक लोगों की परीक्षा का भी माध्यम बताया।

उवाच तान् सिंहरवेण गर्जन्नाश्वासयन् स्वैर्विविधैश्च वाक्यैः।
मा भैष्ट मा भैष्ट सुता जनेभ्यः किं सिंहशावः शुनकाद्बिभेति ॥84॥

इसके पश्चात् सिंहनाद-से गर्जन करते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने सबको आश्वासन देते हुए कहा इन विधर्मियों से मत डरो, मत डरो। क्या सिंह का बच्चा कुत्तों से डरता है?

जीवो ह्ययं जीवत एव हिन्दुर्नारी नरो वा च नपुंसको वा।
न जातमात्रो हि भवेद्विधर्मी न हिन्दुधर्मश्च्यवते कथञ्चित् ॥85॥

यह जीव जन्म से ही हिन्दू है, चाहे वह नर हो या नारी अथवा नपुंसक- इसमें किसी प्रकार की विचारणा नहीं करनी चाहिए। कोई जन्म से विधर्मी नहीं हो जाता इसलिए हिन्दू कभी पतित नहीं होता।

जीवश्च हिन्दुः किल जन्मनैव स जायते लब्धशिखश्च मातुः।
परावरे ब्रह्मणि धर्मनिष्ठः श्रीहिन्दुधर्मे सफलप्रतिष्ठः ॥86॥

यह जीव जन्म से हिन्दू है क्योंकि वह माता से शिखावान् होकर ही जन्म लेता है, परब्रह्म परमात्मा में निष्ठावान् होकर प्रत्येक जीव जन्म से हिन्दू धर्म में ही प्रतिष्ठित रहता है।

जनो यदा जायत एव मातुस्तदा शिखावान् स भवत्युदारः।
न जायते शिश्नविहीन एव न वा शिखातो न च यज्ञसूत्रात्॥87॥

जो भी प्राणी माँ से जन्म लेता है उसके पास शिखा होती है। वह कभी भी लिङ्ग, शिखा या यज्ञोपवीत के बिना नहीं होता।

न लिङ्गभेदेन भवेद्विधर्मी न वा च्युतः कोऽपि च हिन्दुधर्मात्।
छिन्नेऽपि पुच्छे स हरिर्हरिर्वै सिंहो विपुच्छो न भवेद् अहो श्वा॥88॥

कोई इन्द्रियच्छेद से विधर्मी नहीं बन जाता और न ही वह हिन्दूधर्म से च्युत हो जाता है। अरे पुच्छहीन होने पर भी सिंह तो सिंह ही रहता है, कुत्ता तो नहीं हो जाता है।

तस्माद् वयं सर्व इहैव हिन्दवः केनापि कार्यो न हि कोऽपि संशयः।
एके भवेमैव विसृष्टमत्सराः सङ्घे च शक्तिर्विदिता कलौ युगे॥89॥

इसलिए हम लोग सभी हिन्दू हैं किसी के द्वारा किसी प्रकार संशय नहीं करना चाहिए। हम एक हो जायें, मतभेद भुला दें क्योंकि कलयुग में संघ में शक्ति होती है।

पञ्चापि चेद् अङ्गुलयः करस्य एकत्वमाप्ताः किल मुष्टिकाः स्युः।
अस्याः प्रहारेण जनश्च कोऽपि त्यक्त्वा ह्यसून् मूर्च्छति चाल्पकालात्॥90॥

जैसे पाँच अंगुलियाँ जब एक हो जाती हैं तब एक मुक्का बन जाता है जिसके प्रहार से व्यक्ति शीघ्र ही अपने प्राणों को छोड़ देता है।

उत्तिष्ठताऽद्य प्रबलाश्च जाग्रत स्वापो न चेष्टो भवतां कथञ्चन।
सुप्तश्च सिंहः परिभूयते सदा जाग्रद् वने राजति राजसत्तमः॥91॥

सब लोग उठ जाओ, अब जग जाओ, सोना अच्छा नहीं है। सिंह जब सोता है तो सभी का अपमान सहता है और जब वन में जागता रहता है तो राजा बनकर सुशोभित होता है।

नो जातिवादो न च वर्गवादिता नो वर्णवादो विजयेत पुत्रकाः।
एके वयं सर्वविभेदवर्जिताः श्रीहिन्दवो भारतमातृसत्प्रजाः॥92॥

हमें जातिवाद, वर्गवाद और वर्णवाद से ऊपर उठ जाना चाहिए। हम हिन्दू एक हैं, भारतमाता की श्रेष्ठ प्रजाएँ हैं।

यदापि हिन्दुः स्वप्रतिप्रमीलस्तदा विपद्भिः परिभूयतेऽसौ।
जाग्रज्जनान् हन्तितरां विपक्षान् यथैव सिंहो गतघोरनिद्रः ॥93॥

जब हिन्दू सोता है तब उसका अपमान होता है। जब जागता है तब सबको समाप्त कर देता है जैसे नींद से जगा हुआ सिंह।

यदा गुहायां मुचुकुन्दराजः शेते स्म देवैः परिदत्तनिद्रः।
तदैव तस्योरसि पादघातं चकार कालो यवनः प्रसह्य ॥94॥

जब निद्रा का आशीर्वाद प्राप्त कर राजा मुचुकुन्द सोए, तभी उनकी छाती में कालयवन ने लात मारा।

यदा स्म जागर्ति महामहीशः पश्यँश्च दृग्भ्यां मुचुकुन्दराजः।
तदैव तत्क्रोधमहानले वै क्षणेन भस्माऽभवदेव दुष्टः ॥95॥

जब मुचुकुन्द जगे और उनकी क्रोधाग्नि उद्दीप्त हुई, तब एक क्षण में कालयवन भस्म हो गया।

तस्माद् वयं चैकमतेन सर्वे विहाय पारस्परिकं तु भेदम्।
एकीभवन्तो ननु भारतस्य भवेम वै भारतकर्णधाराः ॥96॥

इसलिए हम सब अपना भेद भुलाकर एक होकर भारत के नवीन भाग्य के कर्णधार बनें।

हिन्दूनां षोडश प्राहुः संस्कारान् श्रुतयः किल।
सावधानेन मनसा तान्निबोधत पुत्रकाः ॥97॥

हिन्दुओं के सोलह संस्कार श्रुतियों ने कहे हैं, हे बालकों! इन्हें सावधान मन से मुझसे समझो।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा।
जातकर्म चतुर्थञ्च नालोच्छेदनपूर्वकम् ॥98॥

पञ्चमं नामकरणं बहिर्निष्क्रमणं तथा।
अन्नप्राशनमेवाथ चूडाकरणमेव च॥99॥
कर्णच्छेदश्च नवमो व्रतबन्धस्तथैव च।
वेदारम्भः पुनश्चायं केशान्तं द्वादशं तथा॥100॥
समावर्तनमेवाथ विवाहश्च चतुर्दश।
वह्निहोत्रो पञ्चदश अन्त्येष्टिश्चैव षोडश॥101॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, नालोच्छेदन के साथ जातकर्म, नामकरण, बहिर्निष्क्रमण, अन्नप्रशन, चूड़ाकरण, कर्णच्छेद, व्रतबन्ध, वेदारम्भ, बारहवाँ केशान्त, समावर्तन (दीक्षान्त), विवाह, अग्निहोत्र और अन्त्येष्टि– ये हिन्दुओं के सोलह संस्कार हैं।

पुण्ड्रं मुद्रा तथा माला मन्त्रो गोत्रञ्च पञ्चमम्।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तहेतवः॥102॥

वैष्णवों के पाँच संस्कार कहे गए हैं– पुण्ड्र, मुद्रा, माला, नाम–मन्त्र और अच्युत गोत्र।

इति निगद्य गतिं गदतां वरो यतिवरः प्रणिधाय मनः स्वकम्।
समवलोकयताजसुतं नृपं कनकगेहगतं सहराघवम्॥103॥

इस प्रकार वक्ताओं में श्रेष्ठ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने हिन्दू संस्कारों की व्याख्या करके अपने मन को एकाग्र करके वहीं सरयू तट पर ही ध्यान में कनक भवन में विराजमान शिशु रूप राम को गोद में लिए महाराज दशरथ के दर्शन किए।

कौसल्या कैकेयी सुभगसुमित्रा सुताश्च चत्वारः।
रामो भरतो लक्ष्मणशत्रुघ्नौ बालकौ दृष्टौ॥104॥

इस प्रकार कौसल्या जी, कैकेयी जी, सुमित्रा जी तथा चारो बालकों श्री राम, श्री भरत, श्री लक्ष्मण, श्री शत्रुघ्न को खेलते हुए रामानन्दाचार्य जी ने देखा।

दशरथयागापूर्वस्तनुरुचिनिन्दितसरोजदलदूर्वः।
कौसल्याङ्कपरङ्के विलसति वेदान्तप्रतिपाद्यः॥105॥

महाराज दशरथ के यज्ञ का जो अपूर्व है पुण्य और अपने शरीर की शोभा से कमल और दूर्वादल को जीतने वाले ऐसे वेदान्तप्रतिपाद्य भगवान् राम कौशल्या जी के गोद रूपी पिटारे में सुशोभित हो रहे हैं।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पितकाकपक्षम्।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाददर्श ॥106॥

आज रामानन्दाचार्य जी ने मेघ के समान सुन्दर भक्तों के परिजात कल्पवृक्ष, भुशुण्डी के पीछे-पीछे चलते हुए सुन्दर काकपक्ष से सुशोभित अर्थात् स्कन्ध तक लटके केशों से सुशोभित धनुष-बाण धारण किए हुए घुँघराले अलकोंवाले श्रीराघवरूप बालक को आदरपूर्वक निहारा।

भूयः समाधाय मनो मनस्वी वसिष्ठकन्यापुलिने सुशीलम्।
सीतासमेतं करुणानिकेतं ददर्श रामं जितकोटिकामम्॥107॥

इसके अनन्तर मन को समाहित करके मनस्वी रामानन्दाचार्य जी ने वशिष्ठकन्या अर्थात् सरयू जी के तट पर विराजमान करुणा के भवन करोड़ों काम को जीतनेवाले, सीता-समेत श्रीराम जी को निहारा।

करतलशरचापं भानुकोटिप्रतापं शिशुरविवरवस्त्रं प्रोल्लसद्दैवतास्त्रम्।
तरुणतुलसिमालं पुण्ड्रराजत्सुभालं यतिरिह रघुनाथं चारु तुष्टाव रामम्॥108॥

अब यतीन्द्र जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी हाथ में धनुष-बाण लिए हुए कोटि-कोटि सूर्य के समान प्रतापशाली और नवीन, बालसूर्य के समान वस्त्र धारण किए हुए, दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से सुशोभित, गले में सुन्दर नवीन तुलसी की माला धारण किए हुए, देह की शोभा से तमाल को भी लज्जित करने वाले श्रीरघुनाथ रामचन्द्र जी की स्तुति करने लगे।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्यें।
सर्गोऽयं नवमो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकवि- स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये नवमः सर्गः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ दशमः सर्गः॥

श्रीसीताननचारुचन्द्रचटुलोऽचञ्चच्चकोर प्रभो
सीतानेत्रचकोरपार्वणविधो! विश्वेन्द्र विष्वग्विभो।
सीतासत्प्रियया सहैव विलसत्कोट्यश्वमेधिन् हरे
सीताश्रीरघुनाथ राम रमसे श्रीचित्रकूटेऽवधे॥01॥

जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य कहते हैं कि— हे श्रीसीता जी के मुख रूप पूर्ण चन्द्र के सौन्दर्यामृत के पान के रसिक चञ्चल चोंच वाले चकोरस्वरूप सर्वसमर्थ प्रभु श्रीराम, हे श्रीसीता जी के नेत्र चकोरों के लिए पौर्णमासी के चन्द्रमा स्वरूप, समस्त संसार के स्वामी, सर्वत्र व्याप्त श्रीराघवेन्द्र सरकार, श्रीसीता जी जैसी श्रेष्ठ पतिव्रता धर्मपत्नी के साथ हो करोड़ों श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करनेवाले, श्रीसीता जी की शोभा से नित्य युक्त हे श्रीहरे भगवन् राम श्रीरघुनाथ जी महाराज आप 'अ' वध अर्थात् हिंसा–रहित श्रीचित्रकूट में तथा अवध अर्थात् श्रीअयोध्या में भगवती सीता जी के सहित निरन्तर रमते रहते हैं।

आनन्दात्मतनुं विकाररहितां ब्रह्मस्वरूपां शुभां
सच्चित्सौख्यमयीमपास्तशमलां गुण्यां सुपुण्यां सदा।
घ्नन्तीमुत्पलशक्ररत्नवनमुक्तापिच्छदूर्वामदं
मूर्तिं श्रीरघुनाथ राजसि वहन् सन्मानसेष्वन्वहम्॥02॥

हे श्रीरघुनाथ जी महाराज प्रभु राम! आपश्री, आनन्दमय विग्रह वाली, विकारों से रहित, परब्रह्मस्वरूप, अत्यन्त शुभ, सच्चिदानन्द–स्वरूपिणी, दोषों से रहित, सभी श्रेष्ठ कल्याण गुणों से युक्त, अत्यन्त पवित्र, अपनी शोभा से नीलकमल, मरकतमणि, नीलमेघ, तमाल तथा दूर्वादल के श्याम सौन्दर्यमय अहङ्कार को नष्ट करती हुई ऐसी दिव्य श्यामल मनोहर मूर्ति को सदैव धारण करते हुए सन्तों के मनमंदिरों में निरन्तर विराजते रहते हैं।

नीलेन्दीवरकान्तया कमनया लावण्यलक्ष्मीपुषा
सीतालोचनभृङ्गजुष्टसुषमामाध्व्या सदा सौम्यया।
दीव्यद्-देवतयेव लब्धपदया श्रीसन्मनोमन्दिरे
मूर्त्या श्रीरघुनाथ मूर्छयसि वै कोटीर्मनोजन्मनाम्॥03॥

हे श्रीरघुनाथ जी! आपश्री तो नीलकमल के समान सुन्दर, कमनीय, लावण्य की शोभा का पोषण करने वाली सीता जी के नेत्र रूप भ्रमरों द्वारा जिसकी सौन्दर्य मदिरा का आदरपूर्वक सेवन किया गया है, श्रीसन्त महानुभावों के मन-मन्दिर में देवता के समान निरन्तर विराजमान- ऐसी अपनी दिव्य श्यामल मूर्ति से सदैव करोड़ों कामदेवों को मूर्छित करते रहते हैं।

कौसल्यासुकृताब्धिसोमसुषमां माधुर्यमन्दाकिनीं
माहेयीसुमनोमहोमहमहीं सौन्दर्यसारच्छविम्।
रम्यां लोचनपुत्तलीं दशरथस्याजेर्मनोदेवतां
मूर्तिं स्वां रघुनाथ मद्दृगतिथिं कारुण्यतस्तां कृणु॥04॥

हे श्रीरघुनाथ जी महाराज! आप श्रीकौशल्या अम्बा के पुण्य क्षीरसागर का सारभूत अमृत ही जिसकी परम शोभा है, ऐसी माधुर्य की मन्दाकिनीस्वरूप तथा भूमिनन्दिनी सीता जी के पवित्र मन के तेजोमय महोत्सव की जन्मभूमिरूप, सौन्दर्य के सारसर्वस्वस्वरूप छविवाली, महाराज दशरथ जी के नेत्रों की निरन्तर पुतली बनी हुई, शिव जी के मन के देवता, ऐसी अपनी मनोहर श्यामल मूर्ति को कृपया मेरे नेत्रों का अतिथि बना दीजिए अर्थात् अपनी मनोहर मूर्ति को मेरे नयनों में बसा दीजिए।

यामिन्दीवरसौभगां भगवतीं नेत्रैस्त्रिभिर्धूर्जटि-
र्दीपैर्दीपितभक्तिभिर्वितनुते नीराजयन्मङ्गलम्।
श्यामा पारमहंससिद्धिगरिमा कारुण्यकादम्बिनी
सा मूर्ती रघुनाथ मूर्छयतु मे कामादिकाँस्तावकी॥05॥

हे श्रीरघुनाथ जी! नीले कमल को भी जिससे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो निरन्तर ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य से सम्पन्न रहती हैं तथा श्री शिव जी भक्ति रस को दीप्त करनेवाले अपने तीनों नेत्रों (अग्नि-सूर्य-चन्द्र) से जिसकी आरती करते हुए जगत् का मङ्गल विधान करते रहते हैं, जो परमहंसों के सिद्धि की गरिमा तथा करुणा की

मेघमाला ही हैं वही आपश्री की श्यामल मूर्ति मेरे मन में रहने वाले कामादि दोषों को मूर्च्छित करके निष्क्रिय बना दें।

शाश्वद्धर्मसुविग्रहा पदजुषां सङ्कल्पितानुग्रहा
वेधोविश्वविलक्षणा गुणचणा वात्सल्यवार्धिः शुचिः।
सीतानेत्रयुगप्रपा कृतकृपा पापापहा पापिनां
देयात्कं रघुनाथ नाथितमला मूर्तिस्तव श्यामला ॥06॥

हे श्रीरघुनाथ जी! वैदिक सनातन धर्म ही जिसका विग्रह है तथा अपने श्रीचरण-सेवकों पर अनुग्रह ही जिसका सङ्कल्प है ऐसी विधाता की सृष्टि से विलक्षण श्रेष्ठ गुणों से युक्त, वात्सल्य की सागरस्वरूप, अत्यन्त पवित्र सीता जी के नेत्रयुगल के लिये प्रपा अर्थात् प्याऊ स्थान जैसी, सदैव भक्तों पर कृपा करने वाली, समस्त मलों को समाप्त करने वाली- ऐसी आपकी श्यामल श्रीमूर्ति हमें भजनानन्द प्रदान करे।

ब्रह्मानन्दघना प्रसन्नवदना सम्पुष्टनिष्किञ्चना
भक्तिश्रीसदना कृपामृतधना शंस्वर्धुनी धन्विनी।
तूणीरेषुधनुर्धरा शरकरा वात्सल्यधाराधरा
मूर्तिस्ते रघुनाथ मङ्गलमयी जूर्तिं बलाद्धन्तु मे ॥07॥

हे प्रभु श्रीरघुनाथ जी! जिसमें घनीभूत ब्रह्मानन्द विराजमान है तथा जिसने निष्किञ्चन भक्तों का सतत पोषण किया है, भगवती भक्ति ही जिसका निवास स्थान है, कृपा-सुधा ही जिसका धन है, ऐसी कल्याण की गङ्गा सदैव शार्ङ्ग धनुष से युक्त तरकश-बाण एवं धनुष को धारण करने वाली, जिसके श्रीहस्त अमृत का वितरण करते रहते हैं, जहाँ वात्सल्यमय मेघ विराजमान है ऐसी आपश्री की मङ्गलमयी मूर्ति बलपूर्वक मेरे संसारज्वर को नष्ट कर दे।

भास्वन्मूर्ध्नि हिरण्यहेमविजयप्रख्यं सुमौलिं वहन्
धत्से माकरकुण्डले श्रवणयोर्हारं हरं वक्षसि।
पाणौ बाणशरासने कटितटे पीताम्बरं स्वेषुधी
नूनं ते रघुनाथ भूषणधृतिस्तेषां रुचो वृद्धये ॥08॥

हे श्रीरघुनाथ महाराज भगवान् श्रीराम! आप अपने मस्तक पर परम प्रकाशमान सुवर्ण एवं बालसूर्य की शोभा को जीतने वाले सुन्दर मुकुट को धारण किये रहते हैं तथा अपने कानों में मकराकृत कुण्डल, वक्षःस्थल पर चित्त को चुरानेवाला हार, श्रीहस्त में धनुष-बाण,

कटि-तट पर पीताम्बर तथा अपने दो तरकश धारण करते हैं। हे भगवन्! निश्चित ही आपकी यह अलङ्कार धारण की प्रक्रिया इन अलङ्कारों की शोभा वृद्धि के लिए ही है।

न्यस्तानर्थवरूथतः कथमिमेऽनर्थान् विहन्युर्बलात्
सौन्दर्याऽमृतसागरे कथममी दध्युश्छवेर्विप्रुषः।
आधिक्यं किमु तन्यतां निरधिके तस्मादपार्थाः समं
नूनं स्वं रघुनाथ धातुमनसो बाभान्ति ते विग्रहे॥09॥

हे रघुनाथ जी! अलंकार धारण के सामान्यतः तीन प्रयोजन कहे जाते हैं अपने आश्रय के अनर्थ की निवृत्ति, उसमें सौन्दर्य की स्थापना और उसे सबसे अधिक बनाना। आप में ये तीनों प्रयोजन व्यर्थ हैं, क्योंकि जब आप में कोई अनर्थ ही नहीं है तो फिर ये अनर्थ दूर करेंगे किसका? जब आप स्वयं सौन्दर्य के महासागर है तो इन अलङ्कारों का बूँद भर सौन्दर्य वहाँ जाकर करेगा ही क्या? जब आपसे कोई अधिक है ही नहीं तो ये आपमें कौन-सी अधिकता ले आयेंगे? अतः ये सभी अलङ्कार आपके लिये निरर्थक ही तो हैं फिर भी स्वयं की सत्ता को बनाये रखने के लिये ये आपके श्रीविग्रह पर सुशोभित होते हैं।

जयत्यशेषैनसतूलपावको महापराधाऽहिजताक्ष्यर्शावकः।
सुरद्रुमारामसमोऽभिकामतो द्युवैद्यवर्णं रघुनाथ नाम ते॥10॥

हे रघुनाथ जी महाराज! आपके उस रामनाम की जय हो। जो सम्पूर्ण पाप रूप रुई को जलाने के लिये अग्नि के समान है तथा जो बड़े से बड़े अपराध रूप सर्पों का भक्षण करने के लिये गरुड़ है। जो भगवद्भक्तिरूप अभीष्ट की कामना से जप करने वाले साधक के लिये कल्पवृक्षों के बगीचे के समान है तथा जो द्युवैद्यवर्ण अर्थात् देववैद्य अश्विनीकुमारों की समान सङ्ख्या दो अक्षरों वाला है।

विशेष- अश्विनी कुमार दो हैं-अतः दो संख्या कहने के लिये अश्विनी कुमार का प्रयोग काव्य चातुर्य है। "दिवो वैद्यौ द्युवद्यौ अश्विनीकुमारौ तद्वद् द्वौ वर्णौ रेफमकारौ यस्मिन्त द्रामनाम द्युवैद्यवर्णम्"।

जयत्यजेयं द्विभुजं जरज्वरं गुणाकरं निर्गुणमीड्यमैश्वरम्।
पयोजपाथोजसरोजसुन्दरं वरं नृरूपं रघुनाथ तेऽजरम्॥11॥

हे रघुनाथ जी महाराज! आपश्री के जरामरणरहित श्रेष्ठ कल्याणमय उस नररूप की

जय हो, जो कभी भी किसी से भी जीता नहीं जा सकता, जो द्विभुज अर्थात् दो भुजाओं से सम्पन्न है, जिसके चिन्तन से संसार का विषय ज्वर भी समाप्त हो जाता है, जो समस्त कल्याण गुणों की खानि एवं हेय कामादि दुर्गुणों से रहित स्तुतियोग्य तथा परमेश्वरीय षडैश्वर्यों से सर्वदा युक्त रहता है, जो पयोज अर्थात् क्षीरसागर से उत्पन्न होने वाले मरकतमणि तथा पाथोज अर्थात् जलनिधि से जन्म लेने वाले मेघ के समान एवं सरोज अर्थात् कमल के समान नीलवर्णी सुन्दर है।

जयन्ति संसारसमुद्रसेतवः स्वलोकलीलाः स्वसुखैकहेतवः।
कुपातकालातकधूमकेतवः श्रुतीड्यगाथा रघुनाथ हे तव॥12॥

हे रघुनाथ जी राघवेन्द्र सरकार! आपकी उन नर रूप लीलाओं की जय हो, जो संसार-सागर को पार करने के लिये सेतु तुल्य हैं, आपके भक्तों को सुख प्रदान करना ही जिनका एकमात्र प्रयोजन है तथा जो भयङ्कर पाप रूप सूखे तृणों को भस्म करने के लिए अनेक अग्नियों के समान हैं और वेदों में जिनकी स्तुतिपूर्ण गाथायें प्रसिद्ध हैं।

जयत्यघोघौघविनाशचातुरीत्वराकमानन्दमयं सुचिन्मयम्।
सदात्मकं ब्रह्मविभूति राम ते निरामयं श्रीरघुनाथ धाम ते॥13॥

हे श्रीरघुनाथ भगवान् राम! आपके, उस सांसारिक रोगों से रहित विशिष्ट विभूतिसम्पन्न शुद्ध चिन्मय धाम की जय हो जिसमें अनेक-अनेक पापों के विनाश की चतुरता और शीघ्रता है तथा जो आनन्दस्वरूप है ऐसे आपश्री के धाम श्रीअयोध्या, श्रीचित्रकूट, हिमाचल प्रदेश स्थित कुल्लू रघुनाथपुर आदि प्रकट एवं अप्रकट धामों की सदैव जय हो रही है और होती रहेगी।

जयन्ति जाग्रज्जनदिष्टसत्पथाः सदैव मर्यादितमानवप्रथाः।
पुराणरामायणगा गतव्यथाः श्लथच्छ्लथाः श्रीरघुनाथ ते कथाः॥14॥

हे रघुनाथ जी! जिन्होंने जागरूक साधकों को श्रेष्ठ मार्गों का निर्देश किया है तथा जिन्होंने निरन्तर मानव की परम्परा को मर्यादित किया है ऐसी वाल्मीकिकृत आदिरामायण एवं पुराणों तथा अन्य अरबों रामायणों में विराजमान वक्ताओं एवं श्रोताओं की व्यथा को नष्ट करने वाली शिथिलता को भी शिथिल करने वाली आप श्रीराम की लोकपावनी श्रीरामकथा की निरन्तर जय हो रही है।

जयन्ति रामायणकोटिकोटिषु श्रुतानि गीतानि मुनीन्द्रसूरिभिः।
चरन्ति चैत्यं चरितानि सेविनां पुनन्ति पापं रघुनाथ तेऽनघ॥15॥

हे निष्पाप श्रीरघुनाथ जी महाराज! जो करोड़ों-करोड़ों रामायणों में प्रसिद्ध और सुने जाते हैं, जिन्हें श्रेष्ठ मुनियों एवं विद्वान् कवियों ने बारम्बार गाया है, जो आदरपूर्वक वाचन एवं श्रवण करनेवाले महानुभावों के चित्तगत दोषों को नष्ट करते हुए उनके पापों को भी समाप्त कर देते हैं। आपश्री के उन विमल चरितों की जय हो रही है।

जयत्यदभ्रं शतकोटिविस्तृतं सुरम्यरामायणमादिकाव्यकम्।
सदैव वाल्मीकिमुखेन्दुसोमकं जगत्त्रये ते रघुनाथ शाश्वतम्॥16॥

हे श्रीरघुनाथ जी! आपके उस नित्य रामायण आदिकाव्य का तीनों लोकों में सदैव जय-जयकार हो रहा है, जो महर्षि वाल्मीकि के मुखचन्द्र का अमृत बनकर उन्हीं के द्वारा गाये हुए सौ करोड़ रामायण प्रबन्धों में विस्तृत हुआ और सम्पूर्ण मानव-जाति द्वारा निर्दोष रूप से सम्मानित हुआ।

जयत्यदो रामचरित्रमानसं सुरामगाथाशतकोटिसारभृत्।
दलं तुलस्यास्तुलसीरितं यथा सदानवद्यं रघुनाथ तेऽमलम्॥17॥

हे श्रीरघुनाथ जी! आपश्री के उस निर्मल रामचरितमानस का सदैव जय जयकार होगा जो स्वयं महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित सौ करोड़ रामायणों के सारांशों को अकेले निर्दोष रूप में धारण करेगा और जो गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति के लिये तुलसीदल के रूप में प्रस्तुत किया जायेगा।

जयत्यनल्पाघविनाशकारिणी विहारिणी सज्जनमानसाजिरे।
प्रहीणगङ्गाशुचिता शुचिप्रिया सदैव कीर्ती रघुनाथ तेऽनघा॥18॥

हे प्रभु श्रीरघुनाथ जी! आपकी, उस निर्मल कीर्ति की जय-जय हो रही है जो सम्पूर्ण पापों को नष्ट करती है और सज्जनों के मन आँगन में विहार करती है, जिसने अपनी पवित्रता से गङ्गा जी की पवित्रता भी हल्की कर दी है और जो पवित्र महानुभावों को भी प्रिय लगती है।

सीतामुखाम्बुरुहमञ्जुलचञ्चरीकं सीताहृदम्बुरुहपावनपुण्डरीकम्।
सीताकराम्बुरुहलालितमव्यलीकं सीतापतिं रघुपतिं रघुनाथमीडे॥19॥

श्रीसीता जी के मुखकमल के मधुर भ्रमर एवं सीता जी के हृदय सरोवर में विराजमान पावन कमलस्वरूप तथा श्रीसीता जी के श्रीकर–कमल से निरन्तर सेवित लाड़ लड़ाते हुए, निष्कपट सीतापति, रघुकुल के स्वामी भगवान् राम श्रीरघुनाथ जी की मैं स्तुति करता हूँ।

सैरध्वजीनयनचातकवारिवाहं सौन्दर्यसारजितमन्मथकोटिकोटिम्।
माधुर्यधूर्यमपराजितमप्रमेयं वन्देऽनवद्यचरितं रघुनाथमीशम्॥20॥

सैरध्वजी अर्थात् जानकी जी के नेत्र–चातकों के लिये स्वाति–मेघस्वरूप अपने सौन्दर्यसार सर्वस्व से करोड़ों–करोड़ों कामदेवों को जीतने वाले, माधुर्य की धुरी को धारण करने वाले, किसी के भी द्वारा कभी भी पराजित न होने वाले, सभी प्रमाणों से परे, निर्मल चरित्रों वाले परमेश्वर भगवान् श्रीराम जी का मैं स्तवन कर रहा हूँ।

शृङ्गारसारसरसीभवचित्रभानुं भास्वत्कुलाम्बुरुहभास्वरचित्रभानुम्।
उद्दण्डचण्डतरचण्डनचित्रभानुं नाथं प्रणौमि रघुनाथमनाथनाथम्॥21॥

शृङ्गार के सारभूत मङ्गलमय सरोवर में प्रकट सौन्दर्य–कमल को विकसित करने के लिए बाल सूर्यस्वरूप, सूर्यकुलरूप कमल को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये चैत्र के सूर्य के समान, उद्दण्ड राक्षसों को दण्ड देने के लिये साक्षात् कालाग्निस्वरूप, अनाथों के नाथ, अपने नाथ, श्रीरघुनाथ जी को मैं नमन करता हूँ।

इन्दीवराम्बुधरनीलमणिप्रकाशं कन्दर्पदर्पदलनाद्भुतकम्रकान्तिम्।
कान्तालकं ललितहासमुदारकीर्तिं श्रीशर्वरीशवदनं रघुनाथमीडे॥22॥

नीलकमल, नीलमेघ तथा नीलमणि को जिनसे प्रकाश प्राप्त हुआ है तथा जिनकी आश्चर्यजनक शरीरकान्ति ने कामदेव के भी दर्प को चूर–चूर कर दिया है, जिनके घुँघराले केश अत्यन्त कमनीय हैं, जिनका हास अत्यन्त ललित है ऐसे उदार कीर्तिसम्पन्न पूर्णचन्द्र की शोभा से सम्पन्न मुख वाले श्रीरघुनाथ जी को मैं अपने उपमेय के रूप में वरण कर रहा हूँ।

दन्तप्रभाविजितदाडिमबीजराजिं राजीवलोचनमघौघविमोचनञ्च।
कोदण्डमण्डितकरं श्रितचण्डकाण्डं यामो वयं हि शरणं रघुनाथमाद्यम्॥23॥

अपनी दन्तावली की प्रभा से अनार के बीजसमूहों को जीतने वाले, लाल कमल के समान नेत्र वाले, पापसमूहों के नाशक, धनुष से सुशोभित श्रीहस्त एवं भयङ्कर बाण धारण करनेवाले ऐसे आदिदेव प्रभु श्रीरघुनाथ जी को हम शरण्य के रूप में स्वीकार कर रहे हैं।

प्रातर्दिवाकरकरोपमपीतवस्त्रं वक्षोलसत्तुलसिकावनमालमीशम्।
आजानुबाहुमजपौत्रसुतेन्दुराहुं तं वै व्रजामि शरणं रघुनाथमार्यम्॥24॥

प्रातःकालीन सूर्य नारायण की किरणों के समान सुन्दर पीताम्बर धारण करने वाले, श्रीवक्षःस्थल पर तुलसीमाला एवं वनमाला को विराजमान किये हुए, चराचर के ईश्वर, आजानुबाहु अर्थात् घुटनों से भी नीचे लटकती बाहु वाले, ब्रह्मा के पौत्र विश्रवा के पुत्र रावणरूप चन्द्रमा के लिये राहु, आर्योचित गुणसम्पन्न उन भगवान् श्रीराम रघुनाथ जी की मैं शरणागति स्वीकार कर रहा हूँ।

श्रीजाह्नवीकरणकारणकारणाङ्घ्रिपाथोरुहं मुनिवधूदुरितघ्नपादम्।
लोकेश्वरं जनकनन्दिनिपूतपाणिपद्मं व्रजामि शरणं रघुनाथमेनम्॥25॥

जिनके चरण कमल गङ्गा जी के जन्मदाता वामन भगवान के अंशी हैं तथा जिनके श्रीचरण मुनिपत्नी अहल्या के पापनाशक हैं ऐसे तीनों लोकों के ईश्वर, जनकनन्दिनी श्रीसीता जी के स्वीकार से पवित्र करकमल वाले श्रीरघुनाथ जी की शरण में मैं भक्तिभाव के साथ जा रहा हूँ।

हे हेमशैलतनुमारुतिमोदकारिन् हे हेमपर्वतनिषण्णमनोविहारिन्।
हे हेमभूषणशरासनबाणधारिन् क्षिप्रं सनाथय जनं रघुनाथ राम॥26॥

हे स्वर्ण पर्वत के समान शरीरवाले हनुमान् जी के आनन्ददाता प्रभु राम! हे सुमेरुपर्वत पर विराजमान लोमश जी के मन में विहार करने वाले भगवान् राघव! हे स्वर्ण विभूषणों से सुशोभित धनुर्बाणधारी श्रीराम रघुनाथ जी! मुझ भक्त को मनोवाञ्छित कामनाओं की पूर्ति करके शीघ्र ही सनाथ कीजिए।

त्वत्पादपद्ममकरन्दमधुव्रतो हि स्वप्नेऽपि नैव लभते भवतो नकारम्।
तन्मां वसिष्ठकुलजं किल याचमानं मा मा निराशय हरे रघुनाथ भिक्षुम्॥27॥

हे श्रीहरे! आपके, श्रीचरणकमल रस का भ्रमर साधक स्वप्न में भी आपसे नकार नहीं प्राप्त करता अर्थात् जो भी जो कुछ माँगता है उसे आप वह सब कुछ दे डालते हैं। इसलिये

हे श्रीरघुनाथ जी! आपश्री से याचना करते हुए वशिष्ठ-कुल में जन्मे हुए मुझ याचक भिक्षुक को आप मत निराश कीजिए।

नवनीलतमालसुन्दरं सुभगं भीममभवाब्धिमन्दरम्।
दशकन्धरशत्रुमन्वहं रघुनाथं शरणं समाश्रये ॥28॥

मैं निरन्तर नवीन नीले तमाल के समान सुन्दर, शोभन छहों भगों से सम्पन्न भयङ्कर भवसागर के मन्दरस्वरूप, रावण के शत्रु श्रीरघुनाथ जी की शरण समाश्रय करता हूँ अर्थात् रघुनाथ जी की शरण में जाता हूँ।

शरणं करवाणि सादरं सरलं सर्वहितैषिणं हरिम्।
शरणागतवत्सलं प्रभुं रघुनाथं तमनाथसंश्रयम् ॥29॥

मैं आदरपूर्वक अत्यन्त सरल, सबके हितैषी, भक्तभयहारी, शरणागतवत्सल, सर्वसमर्थ, अनाथों के आश्रयदाता श्रीरघुनाथ जी की शरण स्वीकारूँ।

शरणागतवज्रपञ्जरं शरणं सर्वनृणां समाश्रयम्।
शरणागतरक्षणव्रतं शरणं श्रीरघुनाथमाश्रये ॥30॥

शरणागतों के लिये वज्र से निर्मित पिञ्जरे के समान, सम्पूर्ण जीव मात्र के शरणदाता, सबके आश्रयस्वरूप, शरणागतों के रक्षारूप व्रत का निर्वहण करने वाले ऐसे श्रीरघुनाथ जी का मैं शरणरूप में समाश्रय करता हूँ। अर्थात् प्रभु रघुनाथ जी की शरण में जाता हूँ।

विशेष- **'शरणागतवज्रपञ्जरम्' यहाँ भगवान् श्रीराम को शरणागत-वज्रपञ्जर कहने का एक विशेष तात्पर्य है। तोते आदि पालतू पक्षी जब साधारण पिञ्जरे में रखे जाते हैं तो कभी-न-कभी बिल्ली आदि भयंकर हिंसक जन्तु पिञ्जरे को तोड़कर उन्हें (पिञ्जरस्थ पक्षियों को) खा जाते हैं; परन्तु श्रीराम तो वज्र के पिञ्जरे के समान हैं। यहाँ आकर तोते आदि के समान निर्बल शरणागत भी पूर्णतः सुरक्षित हो जाता है। क्योंकि बिलाव आदि जैसे कितने भी भयङ्कर हिंसक जन्तु हों; पर वे वज्र का पिञ्जरा तो नहीं तोड़ सकते, उल्टे उससे टकराकर स्वयं ही टूट जाते हैं।**

शरणं शरणामि शाश्वतं मरणत्रं शरणैषुणां नृणाम्।
करुणं कलकञ्जलोचनं रघुनाथं नरनाथविग्रहम् ॥31॥

मैं सभी प्राणियों के रक्षक, अविनाशी, शरणागत के इच्छुक मानवों को मरण के भय से मुक्ति दिलाने वाले, करुणा से युक्त, कोमल कमल के समान नेत्र वाले, राजा के समान आकृति वाले श्रीरघुनाथ जी की शरण में जाता हूँ।

न धनं न बलं न बान्धवा न हि माता न पिता न वा सुहृत्।
निरुपाय उदस्तसम्बलो रघुनाथं शरणं श्रयाम्यहम्॥32॥

मेरे पास न धन है, न बल है, न ही बन्धु-बान्धव हैं, न माँ है, न पिता हैं और न ही कोई मित्र है। मैं सब प्रकार के उपायों से रहित और अध्यात्म मार्ग के पाथेय से रहित हुआ श्रीरघुनाथ जी की शरणागति स्वीकार कर रहा हूँ।

न जपो न तपो न साधनं नहि विद्या न विचारणा शुभा।
कुगतिं कुमतिं च मादृशं रघुनाथाव जनं जनार्दन॥33॥

हे जनार्दन! न मेरे पास जप है, न तप है, न ही साधन है और न ही ब्रह्म विद्या का सङ्ग्रह है और न ही मेरे पास सुन्दर ब्रह्मविचारणा है। इस प्रकार हे रघुनाथ जी! दुर्गति में पड़े हुए दुष्ट बुद्धिवाले मुझ जैसे सेवक की आप ही रक्षा कीजिये।

रघुनाथ कृपा हि तावकी सुरवल्लीसदृशी श्रुतौ श्रुता।
किमहो मम भाग्यविप्लवात् कृपणा सा निरपत्रपाऽभवत्॥34॥

हे रघुनाथ जी! वेदों में ऐसा सुना गया है कि आपश्री की कृपा कल्पलता के समान है जो शरणागत की प्रत्येक इच्छा पूर्ण करती है। परन्तु आंज वही आपश्री की कृपा मेरे दुर्भाग्य से क्यों इतनी कृपण और निर्लज्ज हो गई है?

गणिकाशबरीजटायुषो विमला यत्र सरित्यथाभवन्।
मयि सा रघुनाथ केन ते करुणादेवधुनी न्यशोषि भो॥35॥

अहो! हे रघुनाथ जी! आपकी जिस करुणागङ्गा में स्नान करके गणिका, शबरी एवं जटायु जैसे जन्म और कर्म से पापी लोग भी पवित्र हो गये, वही आपकी करुणा-गङ्गा मेरे पवित्र होते समय किसके द्वारा सोख ली गई?

न हि मादृश एनसां निधिर्न भवादृक् करुणानिधिः क्वचित्।
विधिदत्तमिदं ह्यनन्वयं रघुनाथाऽव न नाथ्यतां जनः॥36॥

हे रघुनाथ जी! न कोई मेरे समान पापों का सागर है और न ही कोई आपके समान करुणा-सिन्धु है। हे भगवन्! हम दोनों को विधाता ने ही यह अनन्वय अलङ्कार का संयोग दे दिया है। अब आप ही इसकी रक्षा करें और अपनी स्वाभाविकी करुणा छोड़कर मुझ शरणागत सेवक को उत्तप्त न करें।

स्मरं कञ्जं गुञ्जन्मधुपमरविन्दं जलधरं ललामं सौत्रामं गगनमविजातोयमुडुपम्।
हरिं हारं हारं हरतनयहारं हरिधनुः कविं जीवं सौम्यं जयति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥37॥

अहो! श्रीचित्रकूट पर्वत तथा हिमालय की उपत्यका कुल्लू पर्वत पर विराजमान श्रीरघुनाथ जी भगवान् राम अपनी शोभा से कामदेव को, कोमलता से कमल को, केशों से मुखरित भ्रमर को, नेत्र, मुख, श्रीहस्त एवं श्रीचरणों से बिखरी पङ्खुड़ियों वाले कमल को, श्रीविग्रह की कान्ति से वर्षा के लिये उन्मुख मेघ को, इन्द्रनीलमणि को, आकाश को, अविजा अर्थात् सूर्यपुत्री यमुना जी के जल को, अपने मन्द हास से चन्द्रमा को, पीताम्बर तथा प्रताप से सूर्यनारायण को, सौन्दर्य से हार अर्थात् हरि सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमारद्वय को, पुनः अपनी विघ्नविनाशिनी शक्ति से हार अर्थात् शिव जी के पुत्र गणपति को और अपने शरीर की चित्रित नीलिमा से मयूर को, अपने धनुष से इन्द्रधनुष को, मुक्ताहार से शुक्राचार्य को पीतवर्ण स्वर्ण मुकुट से बृहस्पति को, हरित मणि से बुध को सदैव जीत रहे हैं।

दधानस्तूणीरं धनुरथ गभीरस्वनमयं प्रकाण्डं वैकाण्डं दलितदशकण्ठाननवनम्।
वसानः कौशेयं बलमपरिमेयं विलसयन् घनश्यामो रामो जयति घुनाथोऽधिकुधरम्॥38॥

दिव्य तरकश एवं गम्भीर टङ्कार से युक्त धनुष तथा रावण के मुख-समूहों को काटने वाला नुकीला बाण धारण किये हुए, पीत वस्त्र से सुसज्जित, सीमारहित बल को शोभायमान करते हुए श्रीचित्रकूट पर्वत पर विराजमान नीले मेघ के समान श्यामल प्रभु राम रघुनाथ जी महाराज! सभी देव-देवियों से उत्कृष्ट भाव में शोभायमान हो रहे हैं।

विधुः श्रीकौसल्यासुजठरपयोधेर्गुणनिधिर्दशास्याब्धेरौर्वो दशरथमखापूर्वमनघः।
तमालाभो लाभो धृतमधुरमूर्तिर्दृशिमतां स्वमर्यादातन्तून् वयति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥39॥

श्रीकौशल्या जी के गर्भरूप क्षीरसागर से प्रकट, परिपूर्ण चन्द्रमा गुणों के निधान, रावण रूप महासागर को सोख लेने के लिये बड़वानल के समान, चक्रवर्ती दशरथ जी के

अश्वमेधादि यज्ञों के अपूर्व अर्थात् मूर्तिमान् फलस्वरूप, तमाल वृक्ष के समान शोभावाले, भगवद्-दृष्टि सम्पन्न महानुभावों के लिये मधुरमूर्ति धारण किये हुए लाभ रूप ऐसे भगवान् श्रीराम रघुनाथ जी श्रीचित्रकूट एवं कुल्लु पर्वत पर विराजमान रहते हुए अनादिकाल से अपनी मनुष्य जाति की आदर्श मर्यादा के तन्तुओं को बुनते जा रहे हैं।

कृपासिन्धुर्बन्धुर्विनतजनतानां हरहरो हरिर्हृष्टः पुष्टः सततमथ सीतासहचरः।
महात्मा पूतात्मा प्रथितपरमात्मा पदजुषां नृणां दोषान्दूरं नयति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥40॥

कृपा के सागर, शरणागत जनसमूहों के बन्धु, श्रीशङ्कर को भी अपनी सौन्दर्यमाधुरी से अपनी ओर आकृष्ट करने वाले श्रीहरि भक्तों के गुणश्रवण से सदैव रोमाञ्चित तथा पोषण के स्वभाव से स्वयं भी पुष्ट, भगवती सीता जी के सहचर, प्राणपति, भजनरसिक आत्माओं को महान् बनाने वाले, पवित्र अन्तःकरण वाले, प्रसिद्ध परमात्मा भगवान् श्रीरघुनाथ जी श्रीचित्रकूट एवं कुल्लु पर्वत पर विराजमान रहकर अपने श्रीचरणसेवक साधकों के दोषों को दूर फेंकते रहते हैं।

जुषाणः श्रीसीतावदनवनरुक्सारममलं पुषाणः पार्थिव्याः परमरसराड्भावमनघम्।
मुषाणो माहेयीमनसिजततं लक्ष्मणसखो वरो वै वैदेह्या वसति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥41॥

श्रीसीता जी के मुखकमल के माधुर्य मकरन्द को आतृप्ति (मनभर के) प्रीतिपूर्वक सेवन करते हुए, पृथ्वीनन्दिनी सीता जी के निष्पाप, परमपवित्र श्रृङ्गार भाव को पुष्ट करते हुए, भूमिनन्दिनी भगवती जानकी जी के मन को चुराते हुए, वैदेही जी के प्राणप्रिय श्रीरघुनाथ जी महाराज श्रीलक्ष्मण के विश्वासपात्र बनकर श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मण के साथ श्रीचित्रकूट एवं कुल्लु पर्वत पर निवास कर रहे हैं।

वपुः स्वीकुर्वाणः शुभदगुणरत्नाकरमहो लसत्स्वेच्छारूपं क्षपितभवकूपं परमया।
मया युक्तो मुक्तोचितविगतमायोपकरणो जयन् कामं रामो लसति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥42॥

भक्तों की इच्छानुरूप अलौकिक रूप सम्पन्न, संसार के विषय-कूपों को नष्ट करने वाले, सम्पूर्ण कल्याण गुणों के महासागर ऐसे श्रेष्ठ चिन्मय श्रीविग्रह को स्वीकार किये हुए, परमपूज्य आदिशक्ति श्रीसीता जी से युक्त तथा मुक्त परमहंस महानुभावों के लिये समुचित, मायारहित अपने दिव्य किरीट-कुण्डल-केयूर-कङ्कण-वनमाला, पीताम्बर, तूणीर, धनुष, बाणादि उपकरणों से सुसज्जित प्रभु श्रीराम रघुनाथ जी काम पर विजय प्राप्त करते हुए श्रीचित्रकूट एवं कुल्लु पर्वत पर शोभायमान हो रहे हैं।

क्वचित् सीतावक्षोरुहकलशपाटीररचनारसं सन्तन्वानो विलसितविधानो रसपतेः।
समञ्चन् शृङ्गारं प्रथितमुपहारं महिभुवो रहो रासं रासं रसति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥43॥

किसी निभृत निकुञ्ज में श्रीसीता जी के वक्षोज-कलश पर पाटीर रचना अर्थात् चन्दनलेप चित्रकारिता का आनन्द विस्तृत करते हुए एवं अपने भक्तों का कल्याण विस्तार करते हुए तथा रसराज श्रृङ्गार के विभाव, अनुभाव एवं सञ्चारी भावों के विधानों को सुशोभित करते हुए स्वयं श्रीश्रृङ्गार को मर्यादा की पद्धति से स्वीकृति देते हुए और भूमिनन्दिनी सीता जी के प्रेमोपहार को सम्मान देते हुए एकान्त में श्रीसीता जी के साथ बारम्बार रासक्रीड़ा सम्पन्न करते हुए रसिकशेखर श्रीरघुनाथ जी प्रभु श्रीराम श्रीचित्रकूट एवं कुल्लु पर्वत पर विराजमान होकर रास में आनन्द ले रहे हैं।

कुटीरे वानीरे विधुविमलनीरे सुसरितः सुतीरे सद्धीरे शिशिरितसमीरे तृणमये।
विराजन् राजन्यो भुवनकुलधन्योऽवनिजया प्रपन्नेषु प्रेष्ठो द्रवति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥44॥

धीरजनों से सुशोभित, चन्द्रमा के समान निर्मल, मन्दाकिनी जी के स्वच्छ जल से सींचे गये शीतल वायु से युक्त, बेलों की पत्तियों से घिरे हुए ऐसे मन्दाकिनी के तट पर निर्मित तृणमय कुटीर में भूमिनन्दिनी सीता जी के सहित विराजमान, सम्पूर्ण लोकों में एकमात्र धन्य, चक्रवर्ती दशरथ जी के ज्येष्ठ राजकुमार, सभी प्राणियों के एकमात्र प्रेमास्पद प्रभु श्रीरघुनाथ जी अपने शरणागत भक्तों पर श्रीचित्रकूट एवं कुल्लू पर्वत पर विराजते हुए द्रवीभूत हो रहे हैं।

कृपादृष्ट्या वृष्ट्या कलितसुखसृष्ट्या त्रिजगतां तुदंस्तापं पापं भवभयकलापं कलपदैः।
भवानीजानीष्टो विबुधविनतेष्टो निजगिरा जनानन्दस्यन्दं च्यवति रघुनाथोऽधिकुधरम्॥45॥

अहो! श्रीचित्रकूट एवं कुल्लू पर्वत पर विराजमान श्रीरघुनाथ राम जी कृपादृष्टि को माध्यम बनाकर सुख की सृष्टि करने वाली वर्षा द्वारा तीनों लोकों के ताप-पापकारक भवभय समूहों को नष्ट करते हुए, स्वयं पार्वतीपति श्रीशङ्कर के इष्ट देवता और विनम्र देवताओं के परमाराध्य होकर भी आज अपनी वाणी से निर्गत मधुर वचनों से भक्तों में अलौकिक आनन्द-रसधारा का श्रवण कर रहे हैं।

अभिनव वनमुक्तमालनीलं निगममनुष्वभिगीतसौम्यशीलम्।
जनकनृपसुतावरं वरार्हं शरणमहं रघुनाथमेमि भक्त्यै॥46॥

नवीन मेघ एवं तमाल के समान नील वर्ण, वैदिक मन्त्रों में जिनके सौम्य स्वभाव का अभीष्ट रूप में गान किया गया है, ऐसे जनकनन्दिनी सीता जी के प्रियतम, श्रेष्ठ पूजाओं वाले श्रीरघुनाथ जी महाराज की मैं भक्ति के लिये शरणागति स्वीकार कर रहा हूँ।

मनसिजशतकोटिकाम्यकान्तिं मनसिजशत्रुनिसृष्टशिष्टशान्तिम्।
मनसिजतततप्ततापतान्तिं मनसिजकं रघुनाथमाश्रयामि ॥47॥

करोड़ों कामदेवों द्वारा जिनकी शोभा की कामना की जाती है अथवा जिनकी शोभा देखकर करोड़ों कामदेव मोहित हो जाते हैं, जिनके द्वारा काम के शत्रु शिवजी के लिये भक्तिमय अनुशासन के साथ शान्ति की सर्जना की गयी है, कामदेव के पिता श्रीमन्नारायण को भी दुखी करने वाले रावण से उत्पन्न ताप भी जिनके द्वारा समाप्त किया गया है और किया जाएगा, ऐसे कामदेव को भी सुख देने वाले श्रीरघुनाथ जी का मैं आश्रय ले रहा हूँ।

करुणमनसमद्भुतस्वभावं प्रणतजनावनदीक्षमार्तरक्षम्।
रघुकुलकुमुदेन्दुमीश्वरेशं शरणमहं रघुनाथमाव्रजामि ॥48॥

मैं उन श्रीरघुनाथ जी की शरण में आ रहा हूँ जिनका मन करुणापूर्ण है। जिनका स्वभाव अद्भुत है, प्रणतजनों की सुरक्षा ही जिनकी दीक्षा है, जो आर्तजनों की रक्षा करते आ रहे हैं, जो रघुकुल–कुमुद के चन्द्रमा तथा शिव आदि ईश्वरों के भी ईश्वर हैं।

भवदवदहनेन दह्यमानो विपिनकरीव करालकालकाल्यः।
हरिणतृषिकृशः कुलौल्यलोभः शरणमये रघुनाथसत्तटागम् ॥49॥

मैं कराल काल के मुख में जाने के लिये प्रस्तुत होता हुआ, अत्यन्त निर्बल हुआ, झूठी मृगतृष्णा में ही जल की प्रत्याशा में कुत्सित चञ्चलतापूर्ण लोभ से युक्त होकर भवदावाग्नि द्वारा भस्म किया जाता हुआ अपनी रक्षा के लिए श्रीरघुनाथ नामक श्रेष्ठ तालाब की शरण ले रहा हूँ।

विषयविषभुजङ्गदष्टसत्त्वो मदनमनोरथभूतकाभिभूतः।
मरणभयत आतुरो मुमुक्षुः शरणमये रघुनाथगारुडीकम् ॥50॥

जिसके सत्त्व को विषय रूप विषैले साँप ने डँस लिया है ऐसा मैं काम के मनोरथरूप भूत से अभिभूत होकर, मृत्यु का क्षण अत्यन्त निकट जानकर, मरण के भय से मुक्त होने

का इच्छुक होकर अत्यन्त आतुर मन से भगवान् रघुनाथ रूप गारुड़ी अर्थात् सर्पविषनिरोधक वैद्य की शरण में जा रहा हूँ।

जहि जहि रघुनाथ वासनाहिं न कुरु विलम्बमनाथनाथ केकिन्।
त्वयि खलु विमुखे सुबाहुशत्रौ हरिशिशुमेनमशिष्यतीह भेकः ॥51॥

हे रघुनाथ जी! इस वासना रूप सर्पिणी को मार डालिये, मार डालिये। हे अनाथनाथ, विषयसर्प के मयूर, हे सुबाहुराक्षस के शत्रु! आप विलम्ब मत कीजिये, क्योंकि आपके असावधान हो जाने पर सिंह के शावक को शीघ्र ही मेंढक निगल लेगा।

विशेष- यहाँ साधक श्रीरघुनाथ रूप सिंह का शावक है और कलिकाल मेंढक।

नहि मम जपयागयोगशक्तिर्न खलु समाधिविधौ च मे प्रतीतिः।
गतदृश इव यष्टिरार्तबन्धो त्वमसि सदा रघुनाथ मेऽवलम्बः ॥52॥

हे रघुनाथ जी! मुझमें जपयज्ञ और योग की शक्ति नहीं है और समाधि की विधा में भी मेरा कोई विश्वास नहीं है। हे आर्तों के बन्धु श्रीरघुनाथ जी महाराज! दृष्टिहीन की हाथ के लकड़ी की ही भाँति मेरे तो एकमात्र आप ही सदैव अवलम्ब हैं।

जगति जनिमतां विमाननादयः शुनक इवास्मि कुटुम्बतो निरस्तः।
कलिकलिलगतो यथा जरन् गौः शरणमहं रघुनाथतोऽप्यपेक्षे ॥53॥

हे प्रभो! मैं, संसार में जन्म लेने वाले लोगों के अपमान का पात्र बन चुका हूँ और कुत्ते की भाँति सांसारिक कुटुम्ब से निरादृत हो चुका हूँ। अब तो कलिकाल के कीचड़ में फँसे हुए बूढ़े बैल की ही भाँति मैं श्रीरघुनाथ जी से इससे उद्धार की अपेक्षा करता हूँ।

गुणगणजलधे कृपैकमूर्ते भुवनपते प्रणतैककामपूर्ते।
रघुवर वरणीयशीलसिन्धो स्वजनमिमं रघुनाथ पाह्यनाथम् ॥54॥

हे गुणगणों के महासागर! हे एकमात्र कृपामय मूर्ति से सम्पन्न! हे सम्पूर्ण भुवनों के स्वामी! प्रणतों की कामनाओं की एकमात्र पूर्ति करनेवाले प्रभु! हे रघुवर! हे सबके वरणीय! हे शील के सिन्धु! रघुनाथ जी! मुझ अनाथ अपने दास की रक्षा कर लीजिए।

तव स्वभावो रघुनाथ इदृग् गृहीतरागा रिपवोऽपि यत्र।
न बद्धवैरोऽपि दशाननस्त्वां कदापि निन्दास्पदमाततान ॥55॥

हे रघुनाथ जी! आपका स्वभाव ही इस प्रकार का है कि जिस पर आपके शत्रुओं को भी आकर्षण हो जाता है। यहाँ तक कि जन्म से आपके साथ वैर बाँधकर भी रावण आपकी निन्दा नहीं कर पाया अर्थात् आपके स्वभाव के कारण ही रावण आपका प्रसंशक बना रहा।

न कोऽपि मित्रं नहि कोऽपि शत्रुस्तव त्रिलोक्यां रघुनाथ राम।
अतो जगौ श्रीकविकोकिलोऽपि मुहू रिपूणामपि वत्सलं त्वाम्॥56॥

हे रघुनाथ भगवान् राम! तीनों लोकों में आपका न कोई मित्र है न कोई शत्रु। इसीलिये श्रीकविकोकिल महर्षि वाल्मीकि जी आपको बारम्बार 'रिपूणामपि वत्सलः' (आप श्रीराम शत्रुओं के भी वत्सल हैं) कहकर बार-बार गाते रहते हैं।

वहन्ननेकान् प्रतिलोमलोकांस्तथापि मातुः पयसि स्पृहावान्।
ध्रुवं स्वभावो रघुनाथ तेऽयमणोरणीयस्त्वमयप्रकाशः॥57॥

हे रघुनाथ जी! आप अपने रोम-रोम में करोड़ो ब्रह्माण्डों को धारण करते हुये भी बाल-लीला में माँ कौशल्या के दूध में स्पृहावान् बने रहते हैं अर्थात् इच्छा करते रहते हैं। निश्चित ही आपका यह स्वभाव 'अणोरणीयस्त्व' को प्रकट करता है अर्थात् अपने स्वभाव के कारण ही आप भक्त के समक्ष छोटे-से-छोटे हो जाते हैं।

समस्तलोकेश्वरलोकपाला यदाज्ञया स्वं चरितार्थयन्ति।
स एव गाधेयवशंवदोऽभूत् स कः स्वभावो रघुनाथ चित्रम्॥58॥

हे रघुनाथ जी! आपका वह कौन-सा आश्चर्यजनक स्वभाव है जिसके कारण वह आप विश्वामित्र के इच्छानुसारी सेवक बने, जिनकी आज्ञा पाकर सभी लोकों के स्वामी और लोकपाल स्वयं को कृतार्थ करते रहते हैं।

त्वदीयपादाब्जरजोभिमर्शाद् बभूव पूता ह्यघवत्यहल्या।
तथापि पश्चात् तपसेऽभिमृश्य पदस्पृशे त्वं रघुनाथ पापम्॥59॥

हे श्रीरघुनाथ जी! यद्यपि आपकी श्रीचरणकमल धूलि प्राप्त कर भयङ्कर पापिनी अहिल्या शापमुक्त होकर पवित्र हो गयी; फिर भी अपने चरण स्पर्श में, पाप का चिन्तन करके आप ही बारम्बार पश्चाताप करते रहते हैं।

हे रघुनाथ जी! जिन आपश्री के सङ्कल्प से ही उत्पन्न हुई ब्रह्मा की सृष्टि जगत् में प्रा प्राप्त कर रही है उन्हीं आपने समुद्र को सुखाने के लिये अग्निबाण का सन्धान क्यों का लिया? उसे तो आप अपने सङ्कल्प से ही सुखा सकते थे।

दुर्वार्यकालोऽस्ति धनुर्यदीयं सम्वत्सरात्मा यदमोघबाणः।
स त्वं कथं राक्षसनाशनाय निर्देष्टुमैक्षो रघुनाथ कीशान्॥70॥

हे श्री रघुनाथ जी! दुर्निवार्य काल ही जिन आपश्री का धनुष है तथा आपका अमोघ बाण ही सम्वत्सरात्मा दैनन्दिनी काल है। ऐसे सर्वसमर्थ आप राक्षसों को मारने के लिये सामान्य दिगम्बर वानरों को क्यों भेज देते हैं?

नूनं स्वभावो रघुनाथ तेऽसौ सङ्क्रीडसे यल्लघुभिश्च कीशैः।
मित्रे च सुग्रीवविभीषणौ ते पुत्रो बभौ श्रीहनुमांस्त्वदीयः॥71॥

हे रघुनाथ जी! निश्चित ही आपश्री का इस प्रकार का स्वभाव ही है जिससे आप अत्यन्त लघु वानरों के साथ भी उन्हें सम्मानित करने के लिये खेलते रहते हैं। हे रघुनाथ जी! इसीलिए सुग्रीव और विभीषण आपके मित्र बने और श्रीहनुमान् जी आपके पुत्र बनकर सुशोभित हुए।

तं ते स्वभावं परितो निशम्य श्रुत्वा त्वदीयाञ्च दयालुतां भो।
त्वन्निष्ठचित्तः शरणं प्रपद्ये त्वं ह्यातुरं मां रघुनाथ रक्ष॥72॥

हे रघुनाथ जी! चारों ओर से आपके स्वभाव को सुनकर एवं आपकी दयालुता का श्रवण करके मैं आपमें परिनिष्ठित चित्त होकर आपकी शरण में आया हूँ। हे भगवन्! अब आप मुझ आतुर की रक्षा कीजिए।

यत्सच्चिदानन्दवपुर्बिभर्षि स्वप्रीतये श्रीरघुनाथ रम्यम्।
तदेव दृष्ट्वा प्रतिबिम्बभावे मुग्धो नरीनर्त्सि कियद् विचित्रम्॥73॥

हे श्रीरघुनाथ जी! आपका यह स्वभाव कितना विचित्र लगता है कि अपने भक्तों की प्रसन्नता के लिये आप जिस सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह को धारण किये हुए हैं उसी को बाललीला में मणिमय स्तम्भ की परछाई में देखकर मोहित होकर बार-बार नाच उठते हैं।

विशेष- रूप राशि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी॥

न मोदसे त्वं पदपद्मधूल्या पापामहल्यामपि तारयित्वा।
चेखिद्यसे वै रघुनाथ तत्के पादस्पृशे कीदृगहो स्वभावः॥74॥

हे रघुनाथ जी प्रभु श्रीराम! अरे, अपने चरणकमल की धूलि से अहिल्या जैसी पापिनी को भी संसार–सागर से तारकर भी आप कभी प्रसन्न नहीं होते हैं; प्रत्युत उनके सिर पर अपने चरण के स्पर्श से अपराध–बोध करके बार–बार दुःखी होते रहते हैं। यह आपका कैसा स्वभाव है? अहो! आश्चर्य है।

विभज्य चापं तृणभञ्जमाजेर्नैवा स्म दर्पं रघुनाथ यासि।
स्वयम्वरे जानकिजैत्रमालां गृह्णासि नम्रो विनयः कियांस्ते॥75॥

हे प्रभु रघुनाथ जी! आप, तिनके की भाँति शिव जी के धनुष् को तोड़कर भी गर्वीले नहीं हुए; ठीक इसके विपरीत धनुष तोड़ने के पश्चात् स्वयंवर के रङ्गमञ्च पर सीता जी के हाथ से पहनाई जाने वाली जयमाला को आपश्री ने विनम्रतापूर्वक झुककर स्वीकार किया। यह आपका कितना विनयशील अद्भुत स्वभाव है।

कुठारपाणेः परुषाक्षराणि स्वीकृत्य वाक्यानि यथाशिषस्त्वम्।
न रोषमागाः कृतपादपूजो लोकातिगं ते रघुनाथ शीलम्॥76॥

हे रघुनाथ जी! जिनके हाथ में फरसा विद्यमान था, ऐसे परशुराम जी के कठोर अक्षरों वाले वाक्यों को सहजता से आशीर्वाद जैसे स्वीकारते हुए आपश्री परशुराम पर क्रुद्ध नहीं हुए, ठीक इसके विपरीत विनम्र होकर आपश्री ने परशुराम जी के चरणों की पूजा कर ली। वस्तुतः आपका यह स्वभाव सभी लोकों से विलक्षण है।

गुहं निगूहन् भरतन् भुजाभ्यां चकर्थ मित्रं ननु मित्रमित्रः।
स्वपादपाथोजमरन्दतोयं कैवर्तकेभ्यो रघुनाथ रासि॥77॥

हे प्रभु रघुनाथ जी! सूर्य नारायण के सूर्य होते हुए भी आपश्री ने भरत जी के समान लघु भ्राता मानते हुये अपनी भुजाओं में भरकर निषादराज गुह को हृदय से लगाते हुए उन्हें अपना मित्र बना लिया और उससे भी बड़ा आश्चर्य तो यह है कि अपने चरणकमल के मकरन्दरूप चरणोदक को आपने उदारतापूर्वक केवट को वितरित किया और नित्य लीला में आज भी कर रहे हैं।

विशेष- "भरतम् इव करोति इति भरतति, भरतति इति भरतन् प्रातिपदिकात् द्वितीयान्तात् नामधातुः क्विप् तस्मात् शतृ प्रत्ययः।"

चकार यद्यप्यहितं प्रियायाः काकायमानो जडधीर्जयन्तः।
तथापि तस्मै ददिथासुदानं विलक्षणं ते रघुनाथ शीलम्॥78॥

यद्यपि कौए के वेश में आये हुए दुष्टबुद्धि जयन्त ने आपश्री रघुनाथ जी की प्राणप्रिया भगवती सीता जी का बहुत बड़ा अहित किया, चोंच मारकर उनके श्रीचरणों को घायल कर दिया; फिर भी आपश्री रघुनाथ जी ने उसे प्राणदान दे दिया। अहो! आपका स्वभाव कितना विलक्षण है।

पितुः क्रियायां भरतं नियुज्य जटायुषः श्राद्धमहो चकर्थ।
तस्मै ह्यदाः स्वीयगतिं च भक्तिं कीदृक् स्वभावो रघुनाथ तेऽसौ॥79॥

हे रघुनाथ जी! आपका यह कैसा स्वभाव है? कि अपने पूज्य पिताश्री दशरथ जी की श्राद्ध क्रिया में आपने श्रीभरत जी को नियुक्त किया और गीधराज जटायु को पिता मानकर उनका संस्कार अपने श्रीहस्तकमल से किया एवं उन जटायु जी को आपने अपनी मुक्ति और भक्ति दे दी।

अम्बात्रये जाग्रति वत्सलाढ्ये यद् भिल्लभामां जननीमकार्षीः।
इदं हि ते श्रीरघुनाथ नूनं दिव्यस्वभावानुगुणं चरित्रम्॥80॥

हे श्रीरघुनाथ जी महाराज! यद्यपि आपकी तीन मातायें कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा आपके लालन-पालन में जागरूक रहती हैं, उनका आप पर वात्सल्य भी है; फिर भी आपने कौशल्यादि माताओं के होने पर भी एक भील की कन्या शबरी को अपनी माता बना लिया। हे प्रभु! आपका यह चरित्र आपके लोकोत्तर स्वभाव के अनुरूप ही है।

स्वयं समर्थोऽतिरथोऽपि वीरः सुग्रीवमुख्यांश्च विभीषणं च।
चकर्थ मित्राणि निजान् सहायान् तदेव ते श्रीरघुनाथ शीलम्॥81॥

हे श्रीरघुनाथ जी! यद्यपि आप स्वयं समर्थ वीर तथा अतिरथ हैं अर्थात् आप अकेले असङ्ख्य वीरों के साथ युद्ध कर सकते हैं; फिर भी आपने अपनी सहायता के लिये सुग्रीवादि वानर, भालुओं को और रावण के छोटे भाई विभीषण को अपना मित्र बनाया, वही तो आपके स्वभाव का रहस्य है।

तं ते स्वभावं परिमृश्य शत्रुहन् संसारसिन्धौ पतितोऽतिपामरः।
पापी प्रपद्ये तव पादपल्लवं दीनानुकम्पिन् रघुनाथ रक्ष माम्॥82॥

हे शत्रुहन्ता! हे दीनों पर अनुकम्पा करने वाले श्रीरघुनाथ जी! संसार-सागर में पड़ा हुआ अत्यन्त नीच मैं पापी आपके उसी स्वभाव का चिन्तन करके आपके श्रीचरणपल्लव की शरण ले रहा हूँ। हे राघवेन्द्र सरकार! आप मेरी रक्षा करें।

यद्यप्यहं जातु जडोऽतिजाल्मो मायापिशाचीपरिभूतसत्त्वकः।
किन्तु त्वमप्यार्तिहरो हरार्चितस्तस्मात् प्रपन्नं रघुनाथ पाहि माम्॥83॥

हे रघुनाथ जी! यद्यपि मैं अत्यन्त जड़ और दुष्ट हूँ। माया-पिशाचिनी ने मेरे अन्तःकरण को दबा दिया है; किन्तु आप शिव जी से पूजित होते हुए भी भक्तों के आर्त का हरण करने वाले हैं इसलिये मुझ शरणागत की आप रक्षा कीजिए।

नैवास्ति मादृग् भुवनेषु पातकी त्वादृक् च नैवास्ति जगत्स्वघापहः।
इत्यावयोर्ब्रह्मकृतं ह्यनन्वयं त्रायस्व यत्नाद्रघुनाथ मा त्यज॥84॥

हे रघुनाथ जी! सम्पूर्ण लोकों में मेरे समान कोई पापी नहीं है और सभी भुवनों में आपश्री के समान कोई पापहारी भी नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मा के द्वारा बनाये हुए हम दोनों के अनन्वय की आपश्री यत्न से रक्षा कर लें, मुझे न छोड़ें।

जानन्नपि स्वं दुरितैकसागरं वात्सल्यवार्धिञ्च भवन्तमीश्वरम्।
त्यक्त्वा त्रपां त्वां शरणं समाश्रये नूनं व्रतं नो रघुनाथ हास्यसि॥85॥

हे रघुनाथ जी! स्वयं को पापों का एकमात्र सागर जानते हुए और आपको भी वात्सल्य-सागर और सर्वसमर्थ परमेश्वर समझते हुए मैं लज्जा छोड़कर आपश्री की शरण स्वीकार रहा हूँ। निश्चित ही आप शरणागत रक्षा-रूप अपना व्रत नहीं छोड़ेंगे और मेरी रक्षा करेंगे ही।

यस्यां कृपादेवसरित्यनेकशः क्रूरान्नृशंसान् प्रपुनासि पापिनः।
तस्यां कथं पापिशिरोमणिं हि मां पूतं विधातुं रघुनाथ लज्जसे॥86॥

हे प्रभु राम श्रीरघुनाथ जी! जिस कृपागङ्गा में अनेक क्रूर, नृशंस, पापियों को भी स्नान कराकर आप पवित्र कर देते हैं उसी कृपागङ्गा में मुझ पापियों के शिरोमणि को पावन करने में आप लज्जित क्यों हो रहे हैं?

एकत्र गर्जन् कलिकालकुञ्जरो मद्बुद्धिवल्लीं प्रसभं जिघत्सति।
अन्यत्र मामाधिरियं पिशाचिनी नेतुं विनाशं रघुनाथ नाथते॥87॥

हे रघुनाथ जी! एक ओर तो यह कलिकाल रूप खूनी हाथी गरजता हुआ मेरी बुद्धिलता को तोड़कर खा लेना चाहता है तो दूसरी ओर मेरी मानसिक पीड़ा मुझे विनाश के पास ले जाने की इच्छा कर रही है।

यद्यप्यहं क्रूरकुकर्मपाकभुग् दण्ड्यो भवेयं नहि नाथ विस्मयः।
किन्तु त्वदङ्घ्रौ पतितस्य पीडया लोकापवादो रघुनाथ ते भवेत्॥88॥

यद्यपि अपने कुटिल कर्मों के दुष्परिणाम को भोगता हुआ मैं कलि के द्वारा दण्ड पाऊँ इसमें कोई आश्चर्य नहीं है और न ही कोई मुझे आपत्ति है; परन्तु हे रघुनाथ जी! आपके चरण में पड़े हुए मेरी पीड़ा से तो आपका ही लोकापवाद होगा। लोग कहेंगे कि श्रीरघुनाथ जी अपने शरणागत को कुत्सित कर्मों के दुष्परिणाम से नहीं बचा पाये।

कामं व्रजेयं नरकेष्वनेकधा पापच्यमानः कटुकर्मजाग्निना।
किन्तु त्वदङ्घ्र्यम्बुजभावनासवो मा मानसान्मे रघुनाथ गच्छतु॥89॥

हे रघुनाथ जी! अपने कुत्सित कर्मों के परिणाम रूप अग्नि से सदैव पकाया जाता हुआ मैं भले अनेक प्रकार के नरकों में पड़ता रहूँ; किन्तु मेरे मन से आपके श्रीचरणकमल का भावना रूप मकरन्द कदापि दूर न हो।

मा याहि दूरं पतितं पुनीहि भो मा धेहि धीमन् जनदूषणं हृदि।
मा देहि दीनं कलये कदाचन मा पाहि पापं रघुनाथ पाहि माम्॥90॥

हे प्रभो रघुनाथ जी! मुझसे दूर मत जाइये। मुझ पतित को पावन कर दीजिये। हे धीमान्! मुझ भक्त के दोष हृदय में मत धारण कीजिये। हे प्रभु राम! मुझ दीन को कलिकाल के हाथ कभी मत सौंपिये। हे रघुनाथ जी! इस पापी कलि की रक्षा मत कीजिए। अब तो मेरी ही रक्षा कीजिये।

मरकताम्बुजवारिदसुन्दरं समरकर्कशकाण्डधनुर्धरम्।
विगतकल्मषदिव्यगुणाकरं तमधुना रघुनाथमहं भजे॥91॥

मरकत मणि, नील कमल, नील मेघ के समान सुन्दर, युद्ध में कठोर, बाण एवं प्रचण्ड

धनुष को धारण करने वाले सभी हेय गुणों से रहित एवं दिव्य कल्याणगुणों की खान उन श्रीरघुनाथ जी को अब मैं भजता हूँ।

कमललोचनमाधिविमोचनं जलजरोचनरोचनरोचनम्।
कुधरशोचनशोचनशोचनं तमधुना रघुनाथमुपाश्रये॥92॥

कमल के समान नेत्र वाले, मानसिक पीड़ा को दूर करने वाले एवं कमलों को आनन्द देने वाले, भगवान् सूर्य के भी आनन्ददाता, विष्णु के भी सुखदायक तथा पर्वतों को चिन्तित करने वाले इन्द्र के भी कष्टदाता रावण को भी दण्ड देने वाले, उन श्रीरघुनाथ जी की मैं उपासना करता हूँ।

परमकारुणिकं करुणार्णवं नवलनीरदनीरजविग्रहम्।
दशरथात्मजमात्तधनुश्शरं शरणदं रघुनाथमहं श्रये॥93॥

मैं परम कारुणिक करुणा के महासागर, नवीन मेघ एवं नवीन कमल के समान श्रीविग्रह वाले चक्रवर्ती दशरथ जी के ज्येष्ठ आयुष्मान्, धनुर्बाण धारण किये हुए सबके शरणदाता श्रीरघुनाथ जी का आश्रय ले रहा हूँ।

जनकजाननचन्द्रचकोरकं भरतमाधिहरं भरताग्रजम् ।
ललितलक्ष्मणलालितलालसं तमनिशं रघुनाथमहं भजे॥94॥

मैं उन श्रीरघुनाथ जी का निरन्तर भजन करता हूँ जो श्रीजनकनन्दिनी सीता जी के मुखचन्द्र के चकोर हैं तथा जो सबके भरण-पोषण करने वाले, भक्तों के मन की पीड़ा को हरने वाले एवं श्रीभरत के बड़े भ्राता हैं। जिन्होंने अत्यन्त ललित भैया लक्ष्मण जी की लालसाओं को दुलराया है।

महितमारुतिमञ्जुलमानसं महितमारुतिमञ्जुलमानसम्।
महितमारुतिमञ्जुलमानसं तमनघं रघुनाथमुपब्रुवे॥95॥

जिन्होंने मारुतनन्दन हनुमान् जी के कोमल मन का सम्मान किया है तथा जिन्होंने माँ अर्थात् सीता जी की रुति अर्थात् स्तुति से मधुर मन वाले महानुभावों को महोत्सव प्रदान किया है तथा महित अर्थात् पृथ्वी से प्रकट हुई माँ अर्थात् सीता जी की रुति अर्थात् मधुर शब्दावली से अथवा सीता जी के श्रीचरणों के नूपुर झङ्कृति से जिनका मन मधुर हो

गया है ऐसे निष्पाप श्रीरघुनाथ जी का मैं उपब्रवण कर रहा हूँ अर्थात् उनका यशोगान कर रहा हूँ।

विशेष– महितम् मारुतेः मञ्जुलम् मानसं येन स तं महितमारुति– मञ्जुलमानसम्। अथवा मा सीता तस्याः रुतिभिः स्तुतिभिः महितानि मानसानि येन तम्। अथवा मह्याः पृथिव्याः इता प्रकटिता या मा सीता तस्याः रुतिभिः नूपुरझङ्कृतिभिः मञ्जुलं मानसं यस्य तथाभूतम्।

भवभवं शरणागतवत्सलं भवभवं शरणागतवत्सलम्।
भवभवं शरणागतवत्सलं तममलं रघुनाथमहं श्रये॥96॥

संसार के कल्याणकारी, शरणागतों के वत्सल पुनः भव अर्थात् स्वामी, जिनके शरणागत भी संसार के प्रति वात्सल्य रखते हैं। पुनः भव अर्थात् कल्याण भव अर्थात् जिन प्रभु से प्रकट होता है और जिनके कारण शरणागतों में भी वात्सल्य आ जाता है तथा जो शरणागतों को बालक की भाँति दुलारते हैं उन निर्मल श्रीरघुनाथ जी का मैं आश्रय ले रहा हूँ।

जनकजामहितं महिताहितं जनकजामहितं महिताहितम्।
जनकजामहितं महिताहितं सुखकरं रघुनाथमहं गृणे॥97॥

जनकनन्दिनी श्रीसीता जी से पूजित तथा अहित अर्थात् अपने शत्रुओं का भी आदर करने वाले, पुनः जनकजा अर्थात् सीता जी जिनके द्वारा सम्मानित हुई एवं अ अर्थात् विष्णु का हित अर्थात् मङ्गल जिनके द्वारा महित अर्थात् महोत्सव को प्राप्त हुआ, पुनः जो जनकनन्दिनी सीता जी के कृपापात्र म अर्थात् जीवों के हित अर्थात् हितैषी हैं, एवं महि अर्थात् पृथ्वी से प्रकट हुई सीता जी आहिता आदरपूर्वक जिनके द्वारा हृदय में स्थापित की गयीं, ऐसे सर्वसुखकारी रघुनाथ जी की मैं शरणागति स्वीकार करता हूँ।

हरिमहं रघुनाथमिमं भजे हरिमहं रघुनाथमिमं भजे।
हरिमहं रघुनाथमिमं भजे हरिमहं रघुनाथमिमं भजे॥98॥

१. मैं हरि अर्थात् राजाओं के इन्द्ररूप रघुनाथ अर्थात् रघुकुल के नाथ इन भगवान् राम का भजन करता हूँ। २. पुनः मैं हरि अर्थात् दुष्टों के लिये यमस्वरूप इमम् अर्थात् काल

के नाशक रघुनाथ अर्थात् रघु नामक जीवों के द्वारा अपनी याचना के आश्रय बनाये हुए प्रभु राम का भजन करता हूँ। ३. मैं इमम् अर्थात् काम को समाहित करनेवाले रघुनाथ अर्थात् जीवों के दोषों के उपतापक हरि अर्थात् सूर्यरूप भगवान् श्रीराम का भजन करता हूँ। ४. मैं, हरि अर्थात् महाविष्णु इमम् अर्थात् भगवद्दर्शनात्मक काम के मङ्गलकारक रघुनाथ अर्थात् रघु नामक सम्पूर्ण जीवों के ईश्वर और सम्पूर्ण जीवों को आशीर्वाद देने वाले अहम् अर्थात् अकार के वाचक विष्णुरूप श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण एवं श्रीशत्रुघ्न के समीपवर्ती श्रीरघुनाथ भगवान् राम का नाम–रूप–लीला–धाम के चिन्तन द्वारा भजन करता हूँ।

हरिमयं रघुनाथमुपास्महे हरिमयं रघुनाथमुपास्महे।
हरिमयं रघुनाथमुपास्महे हरिमयं रघुनाथमुपास्महे ॥९९॥

१. हम, हरिमयम् अर्थात् वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी के भी गन्तव्य, रघुकुल के स्वामी श्रीरघुनाथ जी की उपासना करते हैं।

२. हम, हरि अर्थात् सूर्यपुत्र सुग्रीव को म अर्थात् मङ्गल के य अर्थात् प्रापक सूर्यपुत्र सुग्रीव को मङ्गल देने वाले, सम्पूर्ण जीवों के याचना के विषय श्रीराम जी की स्मृति करते हैं।

३. हम, हरि अर्थात् सूर्य, चन्द्र, अग्नि वायु एवं यम के भी मय अर्थात् गन्तव्य रघुनाथ अर्थात् जीवमात्र के ईश्वर श्रीराम जी का ध्यान करते हैं।

४. हम, हरि अर्थात् विष्णु म अर्थात् शिव य अर्थात् ब्रह्मा इन तीनों ब्रह्मा, विष्णु, शिव के आश्रय रघुनाथ अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के आशीष रूप मङ्गलों के परम कारण भगवान् राम का चिन्तन करते हैं।

नीलकञ्जनवकन्दसुन्दरं भीमदुस्तरभवाब्धिमन्दरम्।
सर्वसद्‌गुणमनोज्ञमन्दिरं भावयामि रघुनाथमादरात्॥100॥

नीलकमल तथा नवीन मेघ के समान सुन्दर अथवा नीलकमल एवं नील मेघ जिनके कारण सुन्दर हुए, जो भयङ्कर और दुस्तर संसार–सागर के लिये मन्दराचल के समान हैं, जो सम्पूर्ण सद्‌गुणों के मनोहर मंदिर हैं, ऐसे श्रीरघुनाथ जी की मैं आदरपूर्वक भावना करता हूँ।

शार्ङ्गसायकनिषङ्गधारिणं सत्प्रपन्नभवभीतिहारिणम्।
मैथिलीमहमनोविहारिणं मानयामि रघुनाथमन्वहम्॥101॥

शार्ङ्ग धनुष, बाण एवं तरकस धारण किये हुए श्रेष्ठ शरणागतों की भवभीति हरने वाले, सीता जी के महोत्सवमय मन में विहार करने वाले श्रीरघुनाथ जी की मैं निरन्तर पूजा करता हूँ।

ताटकासुभुजदर्पहारिणं कौशिकाध्वरविकासकारिणम्।
ऐश्वरेण मुनिदारतारिणं तं सदैव रघुनाथमाश्रये॥102॥

ताटका-सुबाहु का गर्व दूर करने वाले, विश्वामित्र के यज्ञ को सुशोभित करने वाले, मुनिपत्नी अहिल्या को तारनेवाले श्रीरघुनाथ जी का मैं सदैव आश्रय स्वीकार करता हूँ।

वीरमीश्वरपिनाकभञ्जनं भार्गवेन्द्रमदगर्वगञ्जनम्।
जानकीजयमशेषरञ्जनं राममेव रघुनाथमाद्रिये॥103॥

मैं, परमवीर, शिव जी के पिनाक को तोड़ने वाले, परशुराम जी के मद एवं अहङ्कार को चूर-चूर करने वाले, स्वयम्वर में जानकी जी को जीत कर लाने वाले, सबको सुख देने वाले, रघुकुल के नाथ भगवान् राम का ही आदर करता हूँ।

चित्रकूटशुचिशैलवासिनं जानकीहृदयसद्मकाशिनम्।
तापसं हरिसुतैकशासिनं राममत्र रघुनाथमेम्यहम्॥104॥

चित्रकूट नामक सुन्दर पर्वत पर वास करने वाले, जानकी जी के कोमल मनभवन में विलास करने वाले, तपस्वी वेश धारण किये हुए, इन्द्रपुत्र जयन्त को दण्ड देने वाले श्रीरघुनाथ राम जी को ही मैं इस संसार में अपना आश्रय बना रहा हूँ।

जानकीशमविवंशभूषणं भग्नघोरखरमस्तदूषणम्।
एणनाशनमनर्घ्यपूषणं चिन्तयामि रघुनाथमीश्वरम्॥105॥

सीता जी के पति, सूर्यवंश के अलङ्कार स्वरूप, खर को नष्ट करने वाले, दूषण नामक राक्षस को समाप्त करनेवाले, मारीच मृग का वध करने वाले, सूर्य नारायण को भी बहुमूल्य बनाने वाले ऐसे परमेश्वर रघुनाथ जी का मैं चिन्तन करता हूँ।

शीलतुष्टशबरीजटायुषं भावपुष्टहनुमद्वनायुषम्।
रावणान्तकविभीषणायुषं रामभद्ररघुनाथमीड्महे॥106॥

अपने शील से शबरी और जटायु को सन्तुष्ट करने वाले, अपने भाव से श्रीहनुमान् एवं श्रीसुग्रीव को पुष्ट करने वाले, रावण के लिए कालरूप तथा विभीषण को कल्पायु प्रदान करनेवाले ऐसे रामभद्र श्रीरघुनाथ जी का मैं आश्रय करता हूँ।

रामभद्रचरणाम्बुजं श्रये रामभद्रमनिशं समाद्रिये।
राघवेन्द्रसुगुणावलीं ब्रुवे राघवं च रघुनाथमाह्वये॥107॥

मैं, श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमल की शरणागति ले रहा हूँ, मैं सदैव भगवान् रामभद्र का समादर कर रहा हूँ, मैं अपनी वाणी से श्रीराघवेन्द्र सरकार की गुणावली का गान कर रहा हूँ और अन्ततो मैं श्रीराघव रघुनाथ जी का आह्वान कर रहा हूँ।

रामचन्द्रचरणाब्जकिङ्करं जानकीचरणचारुचारणम्।
गिर्धरं "गिरिधर" गिरापते दर्शनेन रघुनाथ नाथय॥108॥

इस प्रकार हे रामचन्द्र! हे रामभद्र! हे रघुनाथ जी महाराज! हे वाणी के पति भगवान् राम! अपने चरणकमल के किङ्कर, अपने यश के गान के लिए मुखरित एवं जनकनन्दिनी सीता जी के श्रीचरणकमल के सुन्दर चारण (भाट) गिर्धर अर्थात् आपके यशरूप वाणी को धारण करने वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को अपने दर्शन से सनाथ कर दीजिये।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं दशमो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकवि रामभद्राचार्यविरचित श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये दशमः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथैकादशः सर्गः ॥

तत्रैकदा कोऽपि नृपालवर्यः पुत्रं गृहीत्वा क्षयिणं मुमूर्षुम्।
जगद्गुरुं स्वामिवरं च रामानन्दं समानन्दयितुं जगाम॥01॥

एक बार कोई एक राजा अपने मरणासन्न क्षयरोग से ग्रस्त पुत्र को लेकर स्वयं को आनन्दित करने के लिए जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य के पास गया।

ददर्श तत्राऽजितमच्युतांशं तेजोविशेषार्जितसत्प्रशंसम्।
समुल्लसद्द्वादशमुख्यशिष्यं विपत्तिकादम्बहरप्रशिष्यम्॥02॥

उस राजा ने पञ्चगङ्गा घाट पर निर्मित कुटी में एक ऐसे व्यक्तित्व के दर्शन किये जिसका कभी पराजय नहीं हुआ। जो साक्षात् भगवान् का अंश ही था। जिसने अपने तेज से सन्तों की प्रशंसा अर्जित की थी। जिसके मुख्य द्वादश शिष्य उसके पास सुशोभित हो रहे थे और जिसके प्रशिष्य विपत्ति समूह को नष्ट करने में समर्थ थे।

सिंहासनासीनमदीनमीनं श्रीरामचन्द्रप्रणिधानलीनम्।
दरध्वनिप्रोद्धृतकोटिदीनं निजांशिसुप्रेमपयोधिमीनम्॥03॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी सिंहासन पर आसीन थे और वो स्वयं अदीन अर्थात् प्रसन्न थे। ईनम् अर्थात् दिव्य शोभा से सम्पन्न थे। भगवान् श्रीराम के ध्यान में लीन थे। अपनी शङ्खध्वनि से करोड़ों दीनों का उन्होंने उद्धार किया था और वे अपने अंशी श्रीराम के प्रेम सागर के मत्स्य अर्थात् मछली स्वरूप थे।

सदूर्ध्वपुण्ड्राञ्चितभव्यभालं वक्षोलसच्छ्रीतुलसीसुमालम्।
प्रपन्नपालं रसदं रसालं कुपालपालं कुशलं कृपालम्॥04॥

दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्र से उनका मस्तक सुशोभित हो रहा था। उनके वक्षः पर दिव्य तुलसीजी की माला विराजमान थी। वे प्रपन्नों की रक्षा कर रहे थे। सबको आनन्द दे रहे

थे। स्वयं भगवत्प्रेम का रस ले रहे थे। वे पृथिवीपाल राजाओं के भी पालक थे, कृपाल थे और कृपालु थे।

गौरीपतिप्रार्थितगौरवं सत्सेवाव्रतध्वंसितरौरवं च।
महानुभावं सरलस्वभावं महोनुभावं विशदप्रभावम्॥05॥

गौरीपति भगवान् शङ्कर भी जिनके समक्ष गौरव की प्रार्थना करते थे। सन्तों की सेवा से जिन्होंने भक्तों के रौरव को नष्ट किया था। जिनका प्रभाव महनीय था। जिनका स्वभाव बहुत सरल था। जो तेजोमय थे और जिनका प्रभाव अत्यन्त निशद था।

समुल्लसद्दक्षकरत्रिदण्डं प्रोद्दण्डविश्राणिततीव्रदण्डम्।
हिन्दुद्रुहां भीषणकालदण्डमखण्डचण्डं हतपापखण्डम्॥06॥

जिनके दाहिने हाथ में त्रिदण्ड विराजमान हो रहा था और जो उद्दण्डों को कठोर दण्ड देते थे। जिनका दण्ड हिन्दुद्रोहियों के लिए भीषण काल के समान था। जिनका क्रोध अखण्ड था और जो पापखण्डों को नष्ट कर रहे थे ऐसे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के उस राजा ने दर्शन किये।

देहप्रभाव्रीडितकोटिकामं यशोऽभिरामं विपदां विरामम्।
सुरेन्द्रकोटिप्रथितप्रणामं सतां ललामं श्रितसर्वकामम्॥07॥

जिन्होंने अपने शरीर की प्रभा से करोड़ों कामदेवों को निन्दित किया था जो यश से सुन्दर थे जो विपत्तियों के विराम स्थान थे। करोड़ों इन्द्र जिन्हें प्रणाम करते थे, ऐसे सन्तों के रत्नभूत, समस्त कामनाओं से पूर्ण, अथवा आश्रितों की सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण करने वाले, ऐसे रामानन्दाचार्यजी को उस म हाराज ने देखा।

कौपीनवन्तं शुचिशीलवन्तं गोमन्तमन्तोज्झितबुद्धिमन्तम्।
श्रीभूतनाथस्य पुरे वसन्तं लसद्वसन्तं सुभगं सुसन्तम्॥08॥

जो कौपीन धारण किये हुये थे, जो पवित्र शील से युक्त थे जो प्रशस्त इन्द्रियों के धनी थे और जो अन्तरहित बुद्धि से युक्त थे। ऐसे शङ्करजी की पुरी काशी में निवास करते हुए वसन्त को भी सुशोभित करने वाले, सुन्दर, श्रेष्ठ सन्त जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के महाराज ने दर्शन किये।

वामांशसंशोभितयज्ञसूत्रं श्रीमत्सुशीलासुभगैकपुत्रम्।
श्रीराघवेन्द्रस्य कृपैकपात्रं भास्वत्सुसङ्ख्यातिलकाप्तगात्रम्॥09॥

उनके वामस्कन्ध पर यज्ञोपवीत सुशोभित था। वे भगवान् श्रीराम के एकमात्र कृपापात्र थे और द्वादश तिलकों से सूर्य सङ्ख्यक अर्थात् द्वादशादित्यसङ्ख्यक दिव्य तिलकों से उनके सुन्दर गात्र सुशोभित हो रहे थे। ऐसे श्री सुशीलाजी के सुन्दर एकमात्र पुत्र जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के महाराज ने दर्शन किये।

शिखावलं भावितभद्रवेषं तेजोविशेषाभिगतं सुदेशम्।
महेन्द्रसम्वन्दितसन्निदेशं कृपानिधिं तं पुरुषं विशेषम्॥10॥

जो भद्रवेश में थे अर्थात् शिर उनका मुण्डित था। विशेष तेज से जो चारों ओर से आवृत थे। जिनके अङ्ग बहुत सुन्दर थे। इन्द्र भी जिनके निदेशों का (निर्देशों का) सम्मान करते थे। ऐसे शिखाधारी कृपानिधि विशेष पुरुष जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के उन महाराज ने दर्शन किये।

स वै कुमारं कुपतिः कुमारं यतीन्द्रपादाम्बुजयोर्निपात्य।
शोकानिलोत्पाटितधैर्यवृक्षो वक्षःशिरस्ताडमलं रुरोद॥11॥

इसके अनन्तर वे महाराज क्षयरोग से कुत्सित रूप से मरते हुए अपने कुमार को यतीन्द्र रामानन्दाचार्य जी के चरणकमलों में गिरा कर शोकरूप वायु से जिनका धैर्यवृक्ष उखड़ चुका है ऐसे वे अपनी छाती और सिर पीट पीट कर बहुत रोने लगे।

किरीटकोटीडितरामचन्द्रज्ञानांशपादाम्बुजपूतपीठः।
प्रमृज्य नेत्रे कलिताश्रुनेत्रे त्रिनेत्रमित्रं वचनं न्यगादीत्॥12॥

महाराज ने भगवान् श्रीराम के ज्ञानांश रूप रामानन्दाचार्यजी के चरण कमल से पवित्र पादुका को अपने मुकुट के कोने से संलालित किया अर्थात् उनकी स्तुति की और उमड़ रहे आँसुओं को बहाने वाले नेत्रों को पूँछ कर शिवजी के मित्र रामानन्दाचार्य जी से यह वचन बोले।

एको ममायं तनयस्तपस्विन् क्षयार्कसंशोषितखाशुवार्धिः।
वारान्निधिर्वै विपदां बुभूषुर्ग्रासोऽचिरात् सैरिभवाहनस्य॥13॥

हे तपस्विन्। यह मेरा एक ही बेटा है और आज क्षयरोग रूप सूर्य के द्वारा इसकी इन्द्रियों और प्राणरूप समुद्र सूख गये हैं। यह विपत्तियों का सागर बन गया है इसलिए शीघ्रातिशीघ्र अब यह महिषवाहन यमराज का ग्रास बनना चाहता है।

मुमूर्षमाणं विहितप्रयाणं त्वत्पादमूले स्ववपुःप्रमाणम्।
द्रुतं सुतं रक्षतु राक्षसारिर्भवान् भविष्णुर्विपदां विजिष्णुः ॥14॥

हे भगवन्! यह मरणासन्न हो चुका है और मृत्यु के भय से अपने शरीर को ही प्रमाण मानने वाला यह बालक आपके चरणों में आ गया है। आप राक्षसों के शत्रु हैं, विपत्तियों पर विजय प्राप्त करने वाले हैं इसलिए मेरे बेटे की शीघ्र रक्षा कर लीजिए।

मृते च पुत्रे मम वंशसूत्रे प्रजैकमित्रे निजमातृनेत्रे।
कथं विनाथो जरठो धरिष्ये कथं प्रकृत्या प्रकृतीर्भरिष्ये ॥15॥

हे भगवन्! यह बालक मेरे वंश का सूत्र है। यह प्रजा का एकमात्र मित्र है। अपनी माँ का नेत्र है। इस बालक के मर जाने पर अनाथ हुआ वृद्ध मैं कैसे जी सकूँगा और सुन्दर कार्य करते हुए मैं प्रजा का पालन कैसे कर सकूँगा?

तस्मादनाथः शरणागतोऽहं त्वत्पादपद्मं जगदेकबन्धो।
द्रुतं सुतं मे परिरक्ष रक्ष त्वं वै शरण्यः शरणागतानाम् ॥16॥

इसलिए आज मैं अनाथ होकर आपके चरण कमल की शरण में आया हूँ। मेरे पुत्र की शीघ्र रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। आप शरणागतों को शरण देने में समर्थ हैं।

प्रहीणपुत्रो गतवंशसूत्रो गतैकमित्रो विपदां च पात्रम्।
कथं मुखं स्वं परिदर्शयिष्ये स्वकप्रजाभ्यः पतिताग्रगण्यः ॥17॥

भगवन्! पुत्रों से होता हुआ और अपने वंश सूत्र को समाप्त करके, अपने विश्वासपात्र को खोकर और विपत्ति का पात्र बनकर मैं पतित चक्र चूड़ामणि अपनी प्रजाओं को कैसे मुह दिखाऊँगा?

स्वपुत्रहीनं विपदेकलीनं दृष्ट्वा सशोकाः पितरो मदीयाः।
कवोष्णकारं च जलाञ्जलिं मे लप्स्यन्त एते कलिताश्रुभाराः ॥18॥

और मुझको पुत्र से हीन और विपत्ति से घिरे हुए देखकर मेरे पितर भी मेरी जलाञ्जलि को करुणा से गरम करके ही ग्रहण करेंगे।

मृते च पुत्रे प्रकृतीद्र्यमित्रे विराजकं भारतराष्ट्रमेतत्।
लुण्ठेयुरेते किल दस्यवो वै तस्मात् सुतो मे परिरक्षणीयः ॥19॥

जब मेरा यह बालक जो प्रजा का एकमात्र मित्र है वह मर जायेगा तो इस भारत राष्ट्र को डाकू लोग लूट लेंगे इसलिए आप इसकी रक्षा कर लीजिए।

त्वं वै सुशीलातनयस्तपस्वी श्रीपुण्यसद्मार्जितपुण्यलब्धः।
कुरुष्व शीघ्रं करुणैकसिन्धो मदीयपुत्रं विरुजं विजिष्णो ॥20॥

हे भगवन्! आप सुशीला के सुयोग्य पुत्र हैं और पुण्यसदन शर्मा के अर्जित पुण्य से उन्हें आप प्राप्त हुये हैं। इसलिए हे करुणा के सागर! मेरे पुत्र की रक्षा कर लीजिए और इसे रोगरहित कर दीजिये।

त्वं वैष्णवानां ननु चक्रवर्ती नूनं त्वमाचार्यशिरोमणिश्च।
त्वं सद्‌गुरूणाञ्च गुरुर्गरीयान् त्वमेव रामः पुरुषाभिरामः ॥21॥

हे भगवन्! आप वैष्णवों के चक्रवर्ती महाराज हैं, आप आचार्यों के शिरोमणि हैं, आप सद्‌गुरुओं के भी श्रेष्ठ गुरु हैं, और क्या अधिक आप ही पुराणपुरुष भगवान् राम हैं।

साकेतलोकं ससुखं विहाय सीतां तथान्तर्हृदि संनिवेश्य।
त्वं पुण्यसद्मालय एव जातः सन्नूर्ध्वरेताः सुयतिस्त्रिदण्डी ॥22॥

हे भगवन्! आप साकेत लोक को छोड़कर और प्राणप्रिया सीताजी को भी प्रत्यक्ष रूप में न साथ लेकर उनको अपने हृदय में निवास देकर पुण्यसदन शर्मा जी के भवन में ऊर्ध्वरेता सन्त, श्रेष्ठ संन्यासी और त्रिदण्डी के रूप में प्रकट हुए हैं।

उद्धारकस्त्वं किल हिन्दुनृणां पाता भवान् वैदिकधर्मसेतोः।
कैवर्तकीभूय विपत्समुद्रे गोपायसि त्वं ननु हिन्दुधर्मम् ॥23॥

हे भगवान! आप हिन्दू जनता के उद्धारक हैं, आप वैदिक धर्म सेतु के रक्षक हैं, क्या अधिक इस विपत्ति के सागर में डूबते हुए हिन्दू धर्म को आप खेवैया केवट की भूमिका निभाते हुए बचाते जा रहे हैं।

तस्मादहं त्वां शरणं प्रपद्ये स्वामिन् महात्मन् जगदेकनाथ।
कुरुष्व शीघ्रं विरुजं सुतं मे हे हे सुशीलातनयाऽप्रमेय ॥24॥

आप जगत् के एकमात्र नाथ हैं, आप स्वामी हैं, आप महात्मा हैं। मेरे पुत्र को शीघ्र रोग-रहित कर दीजिए। हे सुशीलापुत्र! हे अप्रमेय! अब मेरी रक्षा कीजिए। इसलिए अब मैं आपकी शरण में आया हूँ,

इत्येवमुक्त्वा यतिराजराजं नृपालवर्यः परिरुद्धकण्ठः।
तूष्णीम्बभूव स्वकनेत्रवार्भिस्तत्पादपद्मं स्नपयाञ्चकार॥25॥

इस प्रकार कहकर, इस प्रकार यतियों के राजाओं के भी राजा श्रीरामानन्दाचार्य जी से निवेदन करके महाराज चुप हो गये और उन्होंने अपने नेत्र जलों से श्रीरामानन्दचार्य जी के चरण कमल को नहला दिया।

निशम्य वाचं वदतां वरस्य भूपालवर्यस्य यतीन्द्रवर्यः।
विलोक्य राजन्यमथो मुमूर्षुं जगाद जीमूतगभीरगव्या॥26॥

इस प्रकार बोलने वालों में श्रेष्ठ, श्रेष्ठ राजा के इस वचन को सुनकर और राजन्यकुमार को मरणासन्न देखकर यतीन्द्रवर्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मेघ जैसी गम्भीर वाणी में बोले।

शृणुष्व राजन् वचनं मदीयं भजस्व धैर्यं किल मा स्म भैषीः।
विलोकयिष्यस्यचिरात् सुतं त्वं गतक्षयं प्रापितजीवनञ्च॥27॥

हे राजन्! मेरा वचन सुनिये, धैर्य धारण कीजिए, डरिये मत। आप शीघ्र ही अपने पुत्र को क्षयरोग से मुक्त और दिव्यजीवन को प्राप्त हुआ देखेंगे।

किन्तु त्वया पूर्वमितो विधेयं कठोरकर्मैव नरेन्द्रनाथ।
जीवातवे राजकुमारकस्य क्वचिद् भवेत् साहसिकं गुणाय॥28॥

हे राजन्! किन्तु इसके पहले अपने पुत्र के जीवन के लिए आपको एक कठोर कर्म करना पड़ेगा। क्योंकि कहीं-कहीं साहसपूर्ण कर्म भी बहुत लाभप्रद हो जाते हैं।

निक्षिप्य गङ्गासलिले सुतं स्वं व्रज त्वमद्यैव विहाय शङ्काम्।
प्रलप्स्यसे सप्तमवासरे त्वं भग्नक्षयं जीवितमेव बालम्॥29॥

राजन्! अपने पुत्र को गङ्गा जी के जल में फेंक कर आप ही शङ्का छोड़कर चले जाओ और आज के सातवें दिन अपने बालक को क्षयरोग से मुक्त और जीवन किये हुए देखोगे।

मन्त्रे च तीर्थे च गुरौ हरौ च तथौषधे ब्रह्मणि देवकार्ये।
विश्वासमूलं फलमेव राजन् तस्मात् त्वमित्थं भव वीतशङ्कः ॥30॥

राजन्! मन्त्र में, तीर्थ में, गुरुदेव के प्रति भगवान् के प्रति, औषधियों के प्रति, ब्राह्मणों के प्रति, ईश्वर के प्रति, विश्वास ही फल का मूल हुआ करता है इसलिए शङ्का छोड़ दो और विश्वास करो।

मन्त्रे च तीर्थे च गुरौ हरौ च सज्ज्यौतिषे ब्रह्मणि भेषजे च।
विश्वासमूलं च फलं प्रसूते विश्वस्य राजन् भव वीतशङ्कः ॥31॥

मन्त्र, तीर्थ, गुरु, भगवान्, ज्यौतिष, ब्रह्मण और औषधि इन सब में फल विश्वास के आधार पर ही उत्पन्न होता है। इसलिए राजन् मुझ पर विश्वास करके शङ्का छोड़ दो।

सुतस्य मोहान् नृपतिर्यदा वै तथा न मेने तनयं विधातुम्।
तदा स्वयं राजकुमार एव पपात गङ्गासलिले स भक्त्या ॥32॥

पुत्र के मोह से जब राजा ने ऐसा करना नहीं स्वीकारा अर्थात् बेटे को गङ्गा जी में नहीं फेंका तब राजकुमार स्वयं ही गङ्गाजी में भक्तिपूर्वक कूद पड़ा।

हाहाकृतं राजकुलं चकार तथा महिष्यो रुरुदुः सखेदम्।
दृष्ट्वा कुमारं पतितञ्च रामानन्दो ननन्दैव समाप्तकार्यः ॥33॥

उस समय सम्पूर्ण राजकुल हाहाकार करने लगा और रानियाँ रोने लगी परन्तु रामानन्दाचार्य जी अपना कार्य सम्पन्न देखकर प्रसन्न हुए।

स सप्तमे वै दिवसे कुमारो विलोकितो जाह्नवितोयमध्ये।
भग्नक्षयः प्रापितजीवनश्च किशोरमूर्तिर्हततातजूर्तिः ॥34॥

इसके अनन्तर ठीक सातवें दिन वह राजकुमार गङ्गाजी के जल में दिखा उसका क्षयरोग दूर हो गया था और उसको नया जीवन मीला तथा शरीर किशोर था और उसे देखकर उसके पिता का पुत्रशेकज्वर समाप्त हो गया।

भागीरथीपूरत उद्गतेऽस्मिन् भग्नक्षये जीवति राजपुत्रे।
जहर्ष राजा महिषी प्रजाश्च तन्वो यथा प्राणमुपेत्य नैजम् ॥35॥

जब राजकुमार गङ्गाजी के प्रवाह से जीवित ऊपर उठ आया तब महाराज, उनकी पत्नी और उनकी प्रजा, ये सब इतने प्रसन्न हुये जैसे शरीर अपने प्राण को पाकर प्रसन्न होता है।

स राजपुत्रो यतिराजराजपादारविन्दं प्रणनाम मूर्ध्ना।
न्यवीविदत् सर्वमुदन्तमीड्यं यथाऽधिगङ्गञ्च समन्वभावि ॥36॥

उस राजपुत्र ने पहले यतिराज श्रीरामानन्द जी के चरण में सिर से प्रणाम किया फिर गङ्गा जी के भीतर जैसा अनुभव किया था वह सम्पूर्ण पवित्र वृत्तान्त उनसे निवेदन किया।

विश्वासमानं गलिताभिमानं भवद्गिरां मङ्गलकारिणीनाम्।
न्यपीपतं विष्णुपदीप्रवाहे तनुं यथा लोष्टमहो मुमूर्षुः ॥37॥

भगवन्! आपकी मङ्गलकारिणी वाणी पर विश्वास मानता हुआ मैं अभिमान से शून्य होकर गङ्गाजी के प्रवाह में मरणासन्न अपने शरीर को उसी प्रकार फेंक दिया, उसी प्रकार डाल दिया जैसे कोई माटी के ढेले को डाल देते है।

तदा च गङ्गा जननीव देवी स्वाङ्के निधायेड्ययशाः कृपालुः।
अपीपलन् मां श्रितमृत्युशङ्कपङ्कं च पङ्केरुहचारुवक्त्रा ॥38॥

उस समय गङ्गा देवी एक माँ की भाँति मुझे गोद में लेकर मरणासन्न वाले मुझको प्रेम से पाला और मुझे रोगरहित बना दिया।

भग्नक्षयं मां व्यदधान्मनोज्ञा सुधापयः पायितवत्यनर्घ्यम्।
अजीवयद् भग्नजिजीविषञ्च जगाद वाक्यं जननी जगत्याः ॥39॥

इसके अनन्तर माँ ने मुझे रोगरहित कर दिया और अमृत जैसा जल पिलाया। मेरी जिजीविषा जीवन की इच्छा नष्ट हो गयी थी फिर भी उन्होंने मुझे जीलाया और जगत् की माँ इस प्रकार मुझसे बोलीं।

राजन्य दिष्ट्या परिवर्धसे त्वं दिष्ट्या क्षयं ते विगतं भविष्णोः।
प्रीतास्मि ते जीव समाः शतानि प्रशाधि राज्यं प्रकृतीः प्रकृष्टाः ॥40॥

हे राजकुमार! सौभाग्य से तुम्हारा अभ्युदय हो रहा है, तुम्हारा क्षयरोग भी दूर हो गया। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ और तुम सैंकड़ों वर्ष जी कर अपने राज्य का और श्रेष्ठ प्रजा का पालन करो।

सामान्यमेनं न हि विद्धि साधुमुपस्थितं ते पुरतः प्रतीतम्।
अवेहि रामं नयनाभिरामं कृतावतारं हतभूमिभारम्॥41॥

हे राजकुमार! तुम्हारे समक्ष जो विश्वस्त रूप में विराजमान हैं उन रामानन्दाचार्य जी को तुम सामान्य साधु मत मानो। ये तो भूमिभार उतारने के लिए साक्षात् नयनाभिराम भगवान् राम ही अवतार लेकर यहाँ आये हैं।

हर्तुं भरं भारतभारतस्य कर्तुं प्रकामं जनतोपकारम्।
उद्धर्तुकामः किल हिन्दुजातिं श्रीरामचन्द्रोऽवततार साक्षात्॥42॥

इस ज्ञानसम्पन्न भारत का भारत उतारने के लिए जनता का बहुत बड़ा उपकार करने के लिए और हिन्दू जाति का उद्धार करने के लिए स्वयं भगवान् राम ही यहाँ अवतार लेकर आये हैं।

त्रेतायुगे नीरजदेहकान्तिः कान्तालको यो विबभौ सकान्तः।
कलौ युगे सैव च गौरवर्णो वर्णी भवन् वर्ण्यविभो विभाति॥43॥

हे राजकुमार! त्रेता युग में जो नीले मेघ के समान सुन्दर घुँघराले अलकों वाले श्रीरामचन्द्र जी सीताजी के सहित विराजमान हो रहे थे, वही इस समय कलियुग में ब्रह्मचारी बनकर सुशोभित हो रहे हैं, जो गौररूप में विराजमान अर्थात् जो त्रेता में श्यामवर्ण थे वही कलियुग में गौर वर्ण हैं।

एतन्निदेशं शिरसा वहन्ती त्वां पालयामास विरुद्धमृत्युम्।
गतक्षयं त्वां विदधे क्षयिष्णुमजीवयं भग्नजिजीविषञ्च॥44॥

इन्हीं के आदेश को मैं सिर से धारण करती हुई क्षय से ग्रस्त और नष्ट होने वाले तुमको पाली, तुम्हारी तो कोई जीजिविषा नहीं थी, फिर भी मैंने तुमको जीला दिया।

स्वके प्रवाहे पतयालुमेव क्षयार्दितं त्वां परिपालयन्ती।
समन्वभूवं च महाप्रमोदं सुतं यथा क्वापि कृपालुमाता॥45॥

कुमार! अपने प्रवाह में पतित अर्थात् गिरते हुए "त्वाम्" तुमको मैंने जब देखा तो मैंने तुम्हारा पालन उसी प्रकार प्रसन्न होकर किया जैसे कोई कृपालु माता अपने पुत्र का पालन करती है।

पुरैव भीष्मं यशसाऽपि भीष्मं गर्भे दधे धायितवत्यमोघम्।
सुधापयः पायितवत्यनल्पवात्सल्यतो वर्णिनमाततान॥46॥

मैंने पहले ही अपने यश से भयङ्कर भीष्म को अपने गर्भ में धारण किया और उनको अपना अमृततुल्य दूध पिलाया, उन पर वात्सल्य बुद्धि रखकर उनका पालन किया और उनको ब्रहमचारी बना दिया।

अपीपलं तं विधिवद् विधिज्ञा चकार वै रोधितरोधसं तम्।
यशस्विनं कृष्णपदारविन्दसुचञ्चरीकं शुचिमव्यलीकम्॥47॥

मैंने पितामह भीष्म को यशस्वी बनाया। उनको ब्रहमचारी बनाया और सर्वभाव से विजयी बनाया।

तथा भवन्तं किल मृत्युमन्तं क्षयार्दितं कालकपोलयातम्।
अजीविषं भग्नजिजीविषाकमाज्ञां यतीन्द्रस्य मुदा वहन्ती॥48॥

उसी प्रकार मैंने आज तुमको भी पाला जबकि तुम काल के कपोल में अर्थात् गाल में जा चुके थे फिर भी तुम्हे जिलाया जबकि तुमको जीने की इच्छा नहीं थी।

प्रयाहि राजन्य सुखं स्वगेहं प्रमोदयेथाः पितरौ पितृज्ञः।
सुखेन वर्षाणि शतानि जीव सम्वर्धयेर्भारतभूमिभाग्यम्॥49॥

राजकुमार जाओ और पिता-माता को प्रणाम करो, सैकड़ों वर्ष जीओ और भारतवर्ष का वर्धन करो।

इत्युक्तवत्यां किल विष्णुपद्यां पदं प्रणम्याथ जगज्जनन्याः।
प्रापत् कुटीरं यतिराजरामानन्दस्य सम्मोदितयोगिधीरम्॥50॥

इस प्रकार गङ्गाजी के आदेश देने के पश्चात् राजकुमार बाहर आये और योगी-मुनियों को प्रसन्न करने वाले रामानन्द जी के कुटी में आकर प्रणाम किये।

ततश्च राजन्यकुमार आदौ प्रणम्य मूर्ध्ना यतिराजराजम्।
ततः पितृज्ञः पितरौ प्रणम्य स लब्धकामो मुमुदे मनस्वी॥51॥

इसके अनन्तर राजकुमार ने पहले आकर रामानन्दाचार्य जी को प्रणाम किया। इसके अनन्तर पितृकर्त्तव्य को जानने वाले राजकुमार ने अपने पिता-माता को प्रणाम किया।

तं वन्दमानं पितरौ सुतं स्वं दृढं प्रसन्नौ परिषस्वजाते।
संस्नापयामासतुरेव वार्भिर्दृग्भ्यां गलन्तीभिरदुःखलेशौ ॥52॥

इसके अनन्तर दुःख से रहित पिता-माता ने प्रणाम करते हुये अपने पुत्र को देखकर उसे गले से लगा लिया और अपने नेत्र के जल से उसे स्नान करा दिया।

अनन्तरं पार्थिवदम्पती तौ सम्पूजयामासतुरेव सन्तम्।
काश्यां वसन्तं विरुजं वसन्तं हसन्तमात्मीयरुषा लसन्तम्॥53॥

इसके अनन्तर दोनों राजदम्पती काशी में निवास करते हुए रोगरहित अपनी शोभा से वसन्त का भी उपहास करते हुए सुशोभित रामानन्दाचार्य जी की पूजा की।

सम्पूज्य तं षोडशभिः प्रकारैः स्वदेशिकं तुष्टुवतुः प्रसन्नौ।
जयेति सन्तं प्रमुदा गृणन्तौ किरीटकोटीडितपादपीठम्॥54॥

इसके अनन्तर आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा, दक्षिणा और पुष्पाञ्जलि इन सोलहों प्रकारों से रामानन्दाचार्य जी की उन राजदम्पती ने पूजा करके प्रसन्न होकर जय जयकार करते हुए उनकी स्तुति की।

एवंविधानां यशसामनेकैः सम्भ्राजमानो विगताभिमानः।
रराज राजीवदृगुज्झिताधिः स स्वामिकेतुर्धृतधर्मसेतुः॥55॥

इस प्रकार से अपने अनेक यशों के द्वारा सुशोभित अभिमानरहित मन की पीड़ा से रहित राजीवलोचन रामानन्दाचार्य जी धर्म की सेतु की रक्षा करते हुए सुशोभित हुए।

तत्रैकदा स्वामिवरस्य रामानन्दस्य काशीस्थकुटीरकस्य।
उपापवर्गं व्यथितत्रिवर्गा यथा तृषार्ताः प्रययुर्निपानम्॥56॥

एक बार जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के काशीस्थ कुटी के द्वार के समीप जिनके अर्थ, धर्म, काम तीनों व्यथित हो चुके हैं, ऐसे लोग उसी प्रकार गये, जैसे प्यास जलाशय के पास जाता है।

बाला युवानो जरठाः किशोराः सर्वे रुदन्तः स्वमुरस्तुदन्तः।
द्विजं पुरस्कृत्य ससैनिकञ्च हाहेति चक्रू रुरुदुः समेत्य॥57॥

बालक, युवक, किशोर, वृद्ध सभी लोग रोते हुए अपनी छाती पीटते हुए एक होकर और एक ब्राहमण को आगे करके हाहाकार करने लगे और रोने लगे।

निशम्य तेषां परिदेवनोत्थकुक्रन्दनं चित्कृतमेव साधुः।
बहिर्विनिष्क्रम्य ददर्श सर्वान् दीनान् विपत्त्यम्बुनिधौ विलीनान्॥58॥

उने चीत्कार भरे करुण क्रन्दन को सुनकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी बाहर आकर उन दीन दुःखियों को निहारे जो विपत्ति सागर में विलीन थे।

तेषां विपत्तिं गतसत्प्रपत्तिं विलोक्य जातः करुणो महात्मा।
मा भैष्ट मा भैष्ट जगाद चोच्चैस्तेषां विपत्कारणमन्वपृच्छत्॥59॥

उनके विलाप से उत्पन्न सङ्कट को देखकर रामानन्दाचार्य जी भावुक हो उठे और बोले-मत डरो, मत डरो! और कहा- तुम इतने संकट में क्यों हो ? क्यों तुम्हें कष्ट हो रहा है।

निशम्य तत्साधुवचः प्रविग्ना निवेदयामासुरिमे विपत्तिम्।
सर्वज्ञदेवस्य पुरः प्रवक्तुं धाष्ट्र्यञ्च नः क्षन्तुमिहार्हसि त्वम्॥60॥

उन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के सुन्दर वचन को सुनकर इन लोगों ने कहा- कि भगवन् आप सर्वज्ञ स्वामी हैं, आपके समक्ष निवेदन करना हमारी धृष्टता है पर आप इसे क्षमा करें।

पश्याधुना भारतदुर्दशां त्वमाशाविवैन्द्रीं किल दुर्दिनेन।
समावृतां क्रूरकृतां भयेन निरस्तुमर्हश्च भवान् विपत्तिम्॥61॥

आप इस भारत माँ की दुर्दशा को देखिये जैसे मेघमाला के द्वारा पूर्व दिशा ढक जाती है तो कितना भयङ्कर लगता है उसी प्रकार भारत दुर्दिनों से ढक गया है। इसको आप ही दूर कर सकते हैं।

निपीड्यमाना किल हिन्दवोऽमी स्त्रियः कुलीना ह्रियमाणशीलाः।
बालाश्च वृद्धाः परितो महात्मन् विहन्यमाना यवनैर्यथा गौः॥62॥

देखिये न, हिन्दू जनता आज पीड़ित हो रही है स्त्रियों का शील अपहृत हो रहा है बालक और वृद्ध गौर की भाँति यवनों के द्वारा पीटे जा रहे हैं।

पश्याधुना राघवमन्दिरञ्च दुष्टैश्च विध्वस्तचरं पुरे स्वे।
असङ्ख्यहिन्दून् रभसा निहत्य तत्स्थानमेवात्र विनिर्मितं भोः॥63॥

आप श्री अवध का राम मन्दिर देखिये न जिसे तोड़कर के अनेक हिन्दुओं की हत्या करके वहाँ पर उनका साम्प्रदायिक स्थान बना दिया गया।

पश्य द्विजोऽयं यवनैर्विधर्मे नियुज्यमाने स यदा न चैच्छत्।
तदास्य बालं ज्वलदग्निकुण्डे तूलं यथा चिक्षिपुरेव दुष्टाः ॥64॥

देखिये न यह एक ब्राहमण जब इसको दुष्ट यवन लोग विधर्मी बनाना चाहते थे इसने नहीं चाहा, तो इसके बालक को अग्निकुण्ड में उसी प्रकार उन्होंने फेंक दिया जैसे कि कोई आग में रूई को फेंक देता है।

विरोद्धुमैच्छत् किल सैनिकोऽसौ यदा तदा चैनमहो निगृह्य।
निःसारयामासुरमी कथञ्चित् प्राणान् परित्रातुमसौ पलायत् ॥65॥

इस सैनिक ने जब विरोध किया तब इसको भी उन लोगों ने बन्दी बना लिया, निकाल दिया, इसके प्राण हरने लगे। किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए वहाँ से भाग आया।

हे देव हे देशिक हे दयालो हे हिन्दुरक्षाव्रतधृक् कृपालो।
द्रुतं च नो रक्षय राक्षसारे त्वत्पादमूलं शरणं प्रपन्नाः ॥66॥

हे देव! हे जगद्गुरो! हे दयालो! हे हिन्दूरक्षा का व्रत धारण करने वाले कृपालो! हे राक्षसशत्रु! आपके चरण कमल में शरण प्राप्त किये हुए हम लोगों की शीघ्र रक्षा कीजिए।

सन्तस्त्वदन्ये मठमन्दिरेषु व्यवस्थितव्यस्तधियो न शेकुः।
त्रातुं च हिन्दून् प्रसभं निराशास्तस्माद् वयं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥67॥

आपके अतिरिक्त अन्य सन्त भी अपने मठ मन्दिरों की व्यवस्था में ही व्यस्त रहते हैं। वे हिन्दुओं को नहीं बचा पाये इसलिए निराश होकर हम लोग आपकी शरण में आये हैं।

शैवाश्च शाक्ता ननु सूर्यभक्ताः सगाणपत्याः शुचिवैष्णवाश्च।
एकान्तवृत्त्या स्वमथाप्यवन्तो न राष्ट्रचिन्ताकलिता विभान्ति ॥68॥

क्या बतायें शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य और वैष्णव ये सभी लोग अपनी रक्षा करने में लगे हुये हैं किसी के मन में राष्ट्र की चिन्ता नहीं है।

एको भवानेव च राष्ट्रचिन्तासक्तो विभास्येष धनाऽनपेक्षः।
ततो भवान् रक्षतु नो कृपालुर्दुर्धर्षदुष्टेभ्य उदारचित्तः॥69॥

फिर एक आप ऐसे हैं जो धन की अपेक्षा किये बिना राष्ट्र की चिन्ता में व्यस्त रहते हैं इसलिए हे उदारचित्त कृपालु आप ही हमारी रक्षा कीजिए।

नूनं विभो भावय भारतं स्वं यद्रामचन्द्रस्य च जन्मभूमिः।
श्रीकृष्णचन्द्रस्य च कर्मभूमिस्तत्पीड्यते वै यवनैरिदानीम्॥70॥

हे विभो! आप इस भारतवर्ष की भावना तो कीजिए जो यह रामचन्द्र भगवान् की जन्मभूमि है श्रीकृष्णचन्द्र की कर्मभूमि है और जन्मभूमि भी और आज वही भारत यवनों के द्वारा पीड़ित हो रहा है।

हन्यन्त एवात्र बलाद्धि गावो विध्वस्यमानानि च मन्दिराणि।
शङ्खश्च घण्टा परिवाद्यते नो ततो भवान् त्रातुमिहार्हतीह॥71॥

देखिये, यहाँ गौयें निरन्तर मारी जा रही हैं मन्दिर तोड़े जा रहे हैं। घण्टा घड़ी नहीं बज रही है इसलिए आप अब सबकी रक्षा कर लीजिए।

दृष्टं विधात्रा तुलनां न याति जगत्त्रयं भारतभारतस्य।
तद्भारतान्न्यूनममुष्य नाम नेमाक्षरेणैव जगद्व्यधायि॥72॥

विधाता ने देखा कि सारा संसार भारत की तुलना नहीं कर पा रहा है इसीलिए उन्होंने भारत से आधा अक्षर कम करके संसार का नाम जगत् रख दिया।

तद्वै जगत्त्वं जगदीश पाहि जगच्छरण्योऽसि जगन्निवासः।
जङ्घन्यमानं रिपुभिर्विमूढैस्त्रातारमन्यं त्वदृते न विद्मः॥73॥

इसलिए आप जगदीश्वर हैं, आप जगत् को शरण देने वाले हैं। आप जगन्निवास हैं इसलिए इस जगत् की आप रक्षा कीजिए, आपके अतिरिक्त हम किसी को रक्षक नहीं मानते।

निशम्य वाचं वदतां समेषां स्वेषां समुद्वेलितरोषसिन्धुः।
स्वकान् समाश्वास्य यतीन्द्रवर्यो जगर्ज कण्ठीरवनादमेव॥74॥

इस प्रकार बोलते हुए आत्मीय जनों का वचन सुनकर जिनका क्रोधरूप सागर

समुद्वेलित हो चुका था ऐसे जगद्गुरुरामानन्दाचार्य ने आत्मीय जनों को समाश्वस्त करके सिंहनाद में गर्जना की।

मा भैष्ट मा भैष्ट जनाः शृणुध्वं धैर्यं लभध्वं न रिपून् क्षमध्वम्।
युष्मद्विषादज्वलने विभूतेः सख्यं प्रयास्यन्ति परे पुरारेः ॥75॥

हे लोगों! मत डरो, मत डरो, सुनो धैर्यधारण करो पर शत्रुओं को क्षमा मत करो निश्चित ही तुम्हारे विषादरूप अग्नि में ये सभी शत्रु शङ्करजी की विभूति अर्थात् भस्म के मित्र बन जायेंगे अर्थात् जायेंगे।

एतानहं द्राविणदुर्मदांश्च क्रूरान् पिशाचान् ननु दण्डयिष्ये।
शठे च शाठ्यं चरणीयमेव प्रोवाच नीतिर्विशदप्रतीतिः ॥76॥

मैं इन धन से दुर्मदान्ध क्रूर पिशाचों को निश्चित ही दण्ड दूँगा। क्योंकि सुन्दर विश्वास से युक्त नीति भी कहती है शठे शाठ्यं समाचरेत् शठ के प्रति शठता का ही व्यवहार करना चाहिए।

व्यक्तित्वयुग्मं प्रथितं हि साधो रामायणे पुण्यपरायणे च।
शान्तौ स्वनिर्वाणविचारणाद्धा क्रान्तौ धनुर्बाणमयं प्रमाणम् ॥77॥

पुण्यपरायण से युक्त श्रीरामायण में साधु के दो व्यक्तित्व कहे गये हैं। वो शान्ति के समय अपने निर्वाण धर्म मोक्ष आदि की चिन्ता करें और क्रान्ति के समय धनुष बाण को ही प्रमाण मान लें।

शान्तौ विशाला कर एषु माला क्रान्तौ च भल्लं कृतशत्रुहल्लम्।
इत्येव शिक्षा भरतेन दत्ता प्रशासता राज्यमथाऽध्ययोध्यम् ॥78॥

शान्ति के समय साधु के हाथ में माला हो और क्रान्ति के समय शत्रुओं के वर्ग में हल्ला मचाने वाला भाला हो। यही शिक्षा दी है अयोध्या में राज्य का शासन करते हुए भैया भावते भरतजी ने।

शान्तेश्च घोषो हि पुरातनोऽभूत् क्रान्तेश्च घोषो नवतामुपैति।
तस्मात् परित्यज्य शठेषु शान्तिं क्रान्तिर्विधेया नितरां खलेषु ॥79॥

शान्ति का नारा अब पुराना पड़ गया है और क्रान्ति का ही घोष अब नये युग की आवश्यकता है इसलिए शान्ति को छोड़कर दुष्टों के विषय में क्रान्ति ही करनी चाहिए।

न ते कदाचिद्धि भवन्ति सन्तो न राष्ट्रचिन्तां खलु कुर्वते ये।
धिक् तं च षण्ढं ननु यत्र पश्यत्यहो हविर्जक्षिति सारमेयः ॥80॥

वे कभी भी सनत कहलाने योग्य नहीं होते जो राष्ट्र की चिन्ता नहीं करते। उस नपुंसक व्यक्ति को धिक्कार है जिसके देखते-देखते कुत्ता हवि को खा रहा हो।

कण्ठीरवं तं किमु मानयामो यस्मिन् स्थिते बुक्कति कुक्कुरोऽपि।
किं भास्करोऽसौ ननु यत्र तिष्ठत्यहो तमस्तोम उपैति भीत्यै ॥81॥

उस सिंह को हम क्यों सम्मानित करें? जिसके रहते कुत्ता भी भौंकने लग जावे। वह सूर्य कैसा? जिसके विराजमान होते समय भी लोगों को भयभीत करने वाला अन्धकार उदित हो जाये, प्रस्तुत हो जाये।

इत्येवमुक्त्वा यतिराजराजः सदक्षिणावर्तमथ स्वशङ्खम्।
दध्मौ परिध्मातसपत्नचित्तो भयेन सम्प्लावितधैर्यवित्तः ॥82॥

इसप्रकार यतिराजराज रामानन्दाचार्यजी ने लोगों को आश्वासन देकर अपना दक्षिणावर्त शङ्ख बजाया। इससे शत्रुओं का चित्त आक्रान्त हो गया और भय से उनका धैर्यवित्त भी (धैर्यधन भी) समाप्त हो गया।

ततः पृथिण्यां यवना निपेतुः शैला यथा वज्रहता विचेष्टाः।
मुमूर्च्छुरेते गतचेतना वै हाहाकृतं शुश्रुवुरेव तत्र ॥83॥

इसके अनन्तर जिस प्रकार वज्र के प्रहार से पर्वत नीचे गिर पड़ता है उसी प्रकार सभी यवन मूर्च्छित हो गये और पृथिवी पर गिर पड़े, चेतनारहित होकर मूर्च्छित हो गये और वहाँ शत्रुओं में हाहाकार मच गया।

यतो यतस्ते परिधावमानाः स्वरक्षणार्थं च निजस्थलेषु।
ततस्ततः शङ्खरवोऽतिघोरः संश्रूयते स्माऽरिविदारणोऽयम् ॥84॥

वे जहाँ-जहाँ अपनी मस्जिदों में अपनी रक्षा के लिए जाते वहाँ-वहाँ शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला रामानन्दाचार्य जी का शङ्खरव ही सुनायी पड़ता था।

अलब्धशान्ती रिपुयूथकोऽयं यदा न चाप्नोच्छरणं कथञ्चित्।
तदैव सस्मार निजाग्रदूतं मुहुर्मुहुर्मोहमदं भयार्तः ॥85॥

इसके अनन्तर जब यवनों को किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिली तब उन्होंने भयभीत होकर अपने पैगम्बर मोहम्मद को स्मरण किया।

प्रादुर्बभूवाथ स तत्समक्षं गलन्मदो मोहमदोऽतिभीतः।
संश्रावयामास गिरं गभीरां मा भैष्ट वक्ष्ये ननु शान्तिमार्गम्॥86॥

इसके पश्चात् जिसका मद नष्ट हो गया है ऐसे अत्यन्त भयभीत पैगम्बर मोहम्मद उन यवनों के समक्ष प्रकट हुए और गम्भीर वाणी में बोले–तुम लोग डरो मत मैं तुम्हें शान्ति का उपाय बताता हूँ, शान्ति का मार्ग बताता हूँ।

जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं शरण्यं शरणं प्रयात।
यदीप्सितं जीवनरक्षणं वो जिजीविषा चेत् किल पुत्रकाणाम्॥87॥

शीघ्रातिशीघ्र जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की शरण में आइये। वे शरण देने में समर्थ हैं। यदि आप लोग अपनी जीवन की रक्षा चाहते हैं यदि मेरे बेटों को जीवन की इच्छा है तो।

ततस्तु तेषां खलु देशिका ये ते जग्मुरार्ताः शरणं शरण्यम्।
जगद्गुरुं स्वामिवरं च रामानन्दं कुटीरस्थममोघवीर्यम्॥88॥

इसके अनन्तर उन यवनों के गुरु मौलवी थे वे भयभीत होकर अपनी कुटी में विरजमान अमोघ पराक्रम वाले स्वामी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की शरण में गये।

ते प्राञ्जलि प्रोचुरनन्तवीर्यं भयेन संवेपितसर्वगात्राः।
रक्षाशु नः स्वामिवर प्रकामं सतां प्रसिद्धं रिपुवत्सलत्वम्॥89॥

तब उन लोगों ने वहाँ जाकर अनन्त पराक्रमी रामानन्दाचार्यजी से कहा– हे भगवन्! आप अमोघ सत्ता सम्पन्न हैं इसलिए हमारी रक्षा कीजिए। क्योंकि सन्त तो शत्रुओं के भी वत्सल होते हैं इस प्रकार कहा गया है।

ततोऽब्रवीत् तान् यतिशेखरोऽयं वाञ्छास्ति चेद् वो निजरक्षणस्य।
तत्संविदां नो किल भानुसङ्ख्याः स्वीकारयध्वं निजनायकेन॥90॥

दूरीभवेद् वै जजियाकरोऽसौ यो हिन्दुलोकान् तुदति प्रकामम्।
धर्मस्थलानां ननु हिन्दुजातेर्निर्माणकार्यं न विहन्तु कोऽपि॥91॥

अब यदि तुम लोग अपने जीवन को बचाना चाहते हो तो हमारी द्वादश (12) शर्तें अपने नायक से स्वीकार करवाओ। पहली बात हिन्दुओं का जजिया कर हटाओ, जो हिन्दुओं को बहुत पीड़ित कर रहा है और मन्दिर मठों के निर्माण में हिन्दुओं को कोई विघ्न न डाले।

न चैव धर्मान्तरणं विधेयं न वा विधेया किल धेनुहत्या।
ग्रन्थाश्च नो क्वापि विदाहनीया हृतिर्न कार्या किल हिन्दुनार्याः ॥92॥

और धर्मान्तरण न किया जाये, गोवध न हो, हमारे ग्रन्थ न जलाये जायें और हिन्दू नारी का हरण न किया जाये।

घण्टादिनादः किल मन्दिरे स्याद् ग्राह्यो न दण्डो ननु कुम्भकादौ।
बाधा न कार्या किल कीर्तनादौ स्वतन्त्रता स्याद्न्निजधर्मकार्ये ॥93॥

और मन्दिरों में घड़ी घण्टी आदि बजते रहें, कुम्भ आदि में कर न लगाया जाये, कथा कीर्तन में विघ्न न डाला जाये और धर्म में स्वतन्त्रता रखी जाये।

व्रतेषु वै वैष्णवकोत्सवेषु स्वतन्त्रता स्यात् किल हिन्दुनृणाम्।
कदापि नो हैन्दवदुर्लभोऽयं युष्मत्स्थलेषु प्रणमेद् विनम्रः ॥94॥

और व्रतों में, वैष्णव उत्सवों में हम हिन्दुओं को स्वतन्त्रता दी जाये और कभी भी हिन्दू दुलाहा तुम्हारे स्थलों को झुककर प्रणाम न करे।

इमाः शुभा द्वादश संविदो नः सम्पालनीयाः सततं प्रयत्नैः।
यदीच्छथ स्वान् परिपातुमुग्रा नो चेद् मृतिः स्यात् किल युष्मदीया ॥95॥

इस प्रकार हमारी बारह शर्तों को तुम्हें माननी होगी, यदि तुम अपनी जीवन की रक्षा चाहते हो। नहीं तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।

शिकन्दरं लोदिनमेव गत्वा निवेदयामासुरिमेऽभिभूताः।
स्वीकार्य सन्धीन् किल सूर्यसङ्ख्यान् भयाद् विमुक्ता यतिशेखरस्य ॥96॥

फिर ये लोग सिकन्दर लोदी के पास आये और उसको जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की बारह शर्तों के सम्बन्ध में निवेदन किया, उसने स्वीकारा फिर ये रामानन्दाचार्य के भय से मुक्त हो गये।

इत्थं महाभाग उदारकीर्तिः स वैष्णवानां किल चक्रवर्ती।
समुद्दधारैव विपद्गणेभ्यः स्वां हिन्दुजातिं नितरां खलानाम्॥97॥

इस प्रकार वैष्णव चक्रवर्ती रामानन्दाचार्य जी ने अपने प्रभाव से हिन्दू जाति की रक्षा कर ली अब हिन्दू जाति दुष्टों की विपत्ति से मुक्त हो गयी।

ततोऽमरास्तं व्यकिरन् प्रसूनैर्दिवौकसां दुन्दुभयः प्रणेदुः।
द्यावापृथिव्योरपि हर्षयुक्तो जयेति रावः समभूत् प्रकामम्॥98॥

इस अनन्तर देवताओं ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को पुष्पों से ढक दिया। आकाश में देवताओं की दुन्दुभियाँ अपने आप बज गयीं पृथिवी और आकाश दोनों में प्रचुर रूप से जय-जयकार होने लगा।

जय जय द्विजनन्दन हे हरे जयतु ते सततं विमलं यशः।
विजयतां सुगुरुर्जगतामिह तव जयन्तु सुनिर्मलभूतयः॥99॥

हे ब्राह्मणकुमार! हे श्रीरामरूप! आपकी जय हो। आपका निर्मल यश निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त करे। हे जगत् के गुरु! आपकी विजय होती रहे और आपकी विभूतियाँ भी निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त करती रहें।

विजयतां यतिराजशिखामणिर्विजयतां भवतोऽमलवैभवम्।
विजयतां भवतः शुभविग्रहो विजयतां भवतः खलनिग्रहः॥100॥

हे रामानन्दाचार्य यतिराज शिरोमणि! आपकी जय हो। हे प्रभो, आपके निर्मल वैभव की जय हो। आपका यह सुन्दर विग्रह विजयी रहे और आपका दुष्टनिग्रह प्रयोग भी निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त होता रहे।

एवंविधानां यशसां समूहैः सम्मण्डयन् भारतवर्षभूमिम्।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो ननन्दाप्तरिपुघ्नकीर्तिः॥101॥

इस प्रकार अपने यशों के समूहों से भारतभूमि का मण्डन करते हुए शत्रुनाशिनी कीर्ति को प्राप्त करके जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए।

यदा यदा भारतवर्षभूमिर्विशङ्कटं सङ्कटमाससाद।
तदा तदा शङ्खरवेण धीरो व्यनीनशद् भानुरिवान्धकारम्॥102॥

जब जब भारत भूमि पर विशाल सङ्कट आये तब तब शङ्खध्वनि से जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उन्हें उसी प्रकार दूर किया जैसे सूर्यनारायण अन्धकार को दूर कर देते हैं।

तं पञ्चबाणोऽपि निजारिपूज्यरामांशभूतं मनसा विभाव्य।
स्वप्नेऽपि नो पञ्चशरोग्रपुङ्खप्रहारतो वै व्यथयाम्बभूव ॥ 103 ॥

पाँच बाण वाला कामदेव भी अपने शत्रु शङ्करजी के पूज्य श्रीराम जी का अंशभूत विग्रह मानकर रामानन्दाचार्यजी को स्वप्न में भी अपने पाँचों बाणों के उग्र प्रहार से व्यथित नहीं कर पाया।

गौरः समासादितगौरवश्च त्वचं वसानो ननु रौरवीं वै।
स रौरवघ्नः समभूत् प्रजानां यतीन्द्रसँल्लालितपादपीठः ॥ 104 ॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वयं गौरवर्णी थे। उन्हें अलौकिक गौरव प्राप्त था और सभी यतीन्द्र उनकी चरणापादुका की पूजा करते थे। वे रौरव चर्म धारण करके सनातनधर्मी प्रजा के रौरव नरक के नाशक बन गये।

प्रातर्वियन्मध्यगते च भानौ सायन्तने चैव मनोज्ञकाले।
प्रध्माय शङ्खं जगदेकनाथः सनाथयामास प्रजा विनाथाः ॥ 105 ॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य प्रतिदिन प्रातः काल, मध्यान्ह में तथा सायंकाल तीन बार शङ्खनाद करके अनाथ लोगों को सनाथ करते रहे।

सर्वान् प्रपत्तावधिकार्य लोकान् कृत्वा विशोकान् स दिवेव कोकान्।
प्रह्लादयामास यथांशुमाली भास्वान् प्रगे गायति जीवलोके ॥ 106 ॥

सभी को शरणागति में अधिकृत करके दिन में चकवे की भाँति शोकरहित करके जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जगत् को उसी प्रकार आनन्दित करने लगे जैसे जीवलोक के गान करते समय प्रातःकालीन सूर्य सबको आनन्दित कर देते हैं।

श्रीमत्सुशीलातनयः सुशीलः स धर्मशीलः श्रुतिगीतलीलः।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो बभौ विप्रवरस्त्रिदण्डी ॥ 107 ॥

सुशीलाजी के पुत्र शोभन चरित्र सम्पन्न धर्म एवं शील से युक्त वेदों में जिनकी लीला गायी गयी ऐसे ब्राहमण श्रेष्ठ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य त्रिदण्डिवर्य सुशोभित हो रहे थे।

काश्यां काश्यां कनककमनः काञ्च कान्तिं दधानो
बिभ्रद् विष्वग्विरुदविभवं दिव्यवीरव्रतञ्च।
सर्वान् हिन्दून् यशसि रमयन् रम्यराजीवनेत्रो
रामानन्दो जगति जगतां कीर्तिराशिं जिगाय॥108॥

इस प्रकार शिव, विष्णु एवं ब्रहमा से युक्त श्रीकाशी में निवास करते हुए स्वर्ण के समान तपे हुए अलौकिक शोभा को धारण करते हुए दिगन्तव्यापी विरूद को धारण करते हुए एवं दिव्य ब्रहमचर्य व्रत को अलङ्कृत करते हुए अपने यश में सम्पूर्ण हिन्दुओं को रमाते हुए सुन्दर लालकमल जैसे नेत्र वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने इस जगत् में रहकर तीनों लोकों की कीर्तिराशी को जीत लिया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गश्चैकादशो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य

विरचिते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये एकादशः सर्गः सम्पूर्णः।

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्रचार्य द्वारा निर्मित श्रीरामानन्दाचार्य चरित महाकाव्य में यह एकादश अर्थात् ग्यारहवाँ सर्ग सन्तों के कल्याण के लिए हो।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥अथ द्वादशः सर्गः॥

जानन्ति ये भागवतं च धर्मं प्रोक्ताश्च ये भागवते यमेन।
ते सूर्यसङ्ख्याः पुररेव रामानन्दं कलौ प्रीणयितुं समेताः॥01॥

जो बारहों आचार्य अर्थात् ब्रह्माजी, नारदजी, शङ्करजी, सनकादि, कपिलजी, मनुजी, प्रह्लादजी, जनकजी, भीष्मजी, बलिजी, शुक्राचार्यजी और यमराज धर्मजी जो भागवत धर्म को जानते हैं और अजामिल के प्रसङ्ग में भागवतजी में जिन बारहों आचार्यों के लिए यमराज ने स्वयं कहा–

स्वयम्भूर्भगवान् शम्भुः कुमाराः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥ (6.3.20)
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः।
ज्ञेयं विशुद्धं दुर्बोधं यद्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते॥ (भा. 6.3.20)

वे ही द्वादश भागवत धर्मों के आचार्य कलिकाल में फिर से रामानन्दाचार्य जी को सन्तुष्ट करने के लिए बारह शिष्यों के रूप में प्रकट हुए।

ब्रह्मा सुरर्षिः पुरभित् कुमाराः श्रीकार्दमः पाङ्कजजो मनुश्च।
प्रह्लादशिरध्वजजाह्नवीजा वैराचनिर्व्याससुतो यमश्च॥02॥

वे हैं ये- ब्रह्माजी, सुरर्षि अर्थात् नारदजी, शङ्कर जी सनकादि, कर्दम के पुत्र कपिलजी, और कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी के पत्रु मनुजी, प्रह्लादजी, शिरध्वज जनक जी, भीष्मजी और विरोचन के पुत्र बलिजी, व्यासनन्दन शुकाचार्य जी और धर्म स्वरूप यमराज जी।

इमे समे द्वादशभक्तभूपाः ख्यातिं गताः स्वीयगुणानुरूपाः।
यमोऽप्यमीषां कृतवान् प्रशंसां महेशसन्मानसराजहंसाम्॥03॥

ये बारहों भक्तों के महाराजगण अपने गुणों के अनुरूप ख्याति को प्राप्त हुए, यमराज ने भी इनकी प्रशंसा की जो शङ्करजी का सुन्दर मानस ही जिनका राजहंस बन गया।

ज्ञात्वा जगत्यां जगदेकनाथं रामं लसद्ब्राह्मणविग्रहञ्च।
तं सेवितुं स्वीकृतशिष्यरूपा जाता इमे वन्दितदासभूपाः ॥04॥

जब इनको यह अनुभव हुआ कि जगत् के एकमात्र नाथ रघुनाथ जी ही ब्राह्मण का विग्रह स्वीकार करके इस संसार में आये हैं तो उनकी सेवा करने के लिए श्रेष्ठदासों ने जिनकी वन्दना की है या श्रेष्ठ दासों की जो निरन्तर वन्दना करते रहते हैं वे द्वादश शिष्यों के स्वरूप में रामानन्दाचार्य जी के पास फिर आये।

जातः स्वयम्भूर्भगवाननन्तानन्दः समामोदितभक्तवृन्दः।
वृण्दारकप्रार्थितभक्तिकन्दश्चित्तोल्लसद्रामपदारविन्दः ॥05॥

स्वयं साक्षात् भगवान् ब्रह्माजी ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के प्रथम शिष्य अनन्तानन्दाचार्य के रूप में अवतीर्ण हुए। वृन्दारकगण अर्थात् देवगण उनकी भक्ति के मेघ से प्रसन्न हो रहे थे, उन्होंने भक्तों को आनन्दित किया था और इनके चित्त में भगवान् श्रीराम के चरण कमल विराज रहे थे।

श्रीदेवर्षिर्धृतसुरसुरानन्दरूपोऽनुरूपः
सञ्जातोऽत्र श्रितसुरसुरीवल्लभो दुर्लभत्विट्।
येनाख्यातो मधुरमहिमा रामचन्द्रप्रसादः
सोमस्वादो निखिलभुवने भग्नभक्तावसादः ॥06॥

इसके पश्चात् सुरसुरी को जिन्होंने अपनी पत्नी बनाया ऐसे सुरसुरानन्द के रूप में जो उनके अनुरूप ही था क्योंकि नारदजी को भी विश्वमोहिनी पर आसक्ति हो गयी थी इसलिए इस अवतार में भी सुरसुरी को उन्होंने अपनी पत्नी बनाया और उनकी शोभा अत्यन्त दुर्लभ थी। उन्हें सुरसुरानन्द जी ने भक्तों के अवसाद को दूर करने वाले अमृत के स्वाद वाले और मधुरमहिमा वाले श्री रामचन्द्रजी के प्रसाद का सम्पूर्ण भुवन में व्याख्यायित करके प्रसिद्ध कर दिया।

शम्भुः सुखानन्दतनुः सुखेन प्रादुर्बभूवाथ गुणौघराशिः।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य शिष्यत्वमुपाजगाम ॥07॥

और स्वयं सम्पूर्ण गुणों के राशि शङ्कर जी ही सुखपूर्वक सुखानन्द के रूप में आये और उन्होंने जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य की शिष्यता को प्राप्त किया।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनश्चापि चतुःसना इमे।
बुभूषवश्चैकतनौ महोमहाः समाभवन् घोरकलौ सुखेन वै॥08॥

इस घोर कलिकाल में एक ही शरीर में सामञ्जस्य बैठाते हुए सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन ये चारों सनकादि एक ही शरीर में अवतार लेने का निश्चय कर के इस घोर कलिकाल में प्रकट हुए।

जाताः सनत्कुमारा नरहर्यानन्दनाम्नि यच्छिष्यः।
न्यगदत् तुलसीदासो मानसरामायणं दिव्यम्॥09॥

इस प्रकार चारों सनकादि एक नरहर्यानन्द नामक महापुरुष में आविर्भूत हुए। जिन नरहर्यानन्द जी के शिष्य तुलसीदासजी ने दिव्य रामचरितमानस जैसे महाग्रन्थ का गान किया।

जातः कनिष्ठः कपिलोऽपि योगानन्देतिनाम्ना धृतयोगनिष्ठः।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य शिष्यत्वमुपेयिवान् सः॥10॥

इस प्रकार योगशास्त्र में जिनकी निष्ठा है ऐसे साङ्ख्याचार्य और कर्दम ऋषि के सबसे छोटी सन्तान कपिलजी महाराज योगानन्द जी के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी की शिष्यता को भक्तिपूर्वक स्वीकारा।

स्वायम्भुवमनुरीड्यो रामानन्दस्य शिष्यतां यातः।
पीपाप्रतापनामा सीतासहचर्यभूत् पत्नी॥11॥

इस प्रकार स्वायम्भुव मनु भी पीपाप्रताप नामक महाराज के रूप में अवतार लेकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के शिष्य बने और उनकी पत्नी शतरूपा भी यहाँ सीतासहचारी नामक पीपाप्रताप की पत्नी बनकर साध्वी जीवन को व्यतीत कर जगत् का मङ्गल की।

प्रह्लादोऽप्यसुरेन्द्रो जातो गर्भं समाश्रितो देव्याः।
धीरश्चैव कबीरो यतिवरशिष्योऽभवद् भक्त्या॥12॥

इस प्रकार दैत्येन्द्र प्रह्लाद एक अप्सरा के गर्भ को स्वीकार करके यहाँ धीर कवि कबीर के नाम से विख्यात हो कर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के शिष्य बने।

शीरध्वजोऽपि जनको भावानन्दोऽभवत् यतिपशिष्यः।
यत्सेवायां समगाद् रामः सहलक्ष्मणः साक्षात्॥13॥

इसके अनन्तर शिरध्वज जनक जी भी भावानन्दाचार्य के रूप में अवतीर्ण हुए और यतिराज रामानन्दाचार्य जी के शिष्य बने। यहाँ तक कि जिनकी सेवा में स्वयं लक्ष्मण जी के साथ साक्षात् भगवान् राम ही बाल रूप में उपस्थित हुआ करते थे।

भीष्मः समभूत् सेनो रामानन्दाश्रितो लसद्दैन्यः।
यत्तनुरक्षणहेतो रघुनाथो नापितो जातः ॥14॥

इस प्रकार साक्षात् रामानन्दाचार्य के चरणों में आश्रित दीनता से पूर्ण सेनजी के रूप में स्वयं पितामह भीष्म अवतीर्ण हुए। जिनके रक्षण के लिए भगवान् राम भी नाई बनकर बान्धवनरेश का तेल लगाने उपस्थित हो गये थे।

वैरोचनिरपि समभूद् यतिवरपदपद्ममञ्जुवरभृङ्गः।
धन्यो धनावदान्यो रामाऽनन्यश्च विख्यातः ॥15॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरण कमल के मधुकर स्वरूप धन्यवाद के पात्र परमदानी धनाजी के रूप में स्वयं विरोचन के पुत्र बलि ही अवतरित हुए। जो विख्यात श्रीरामचन्द्र जी के चरणारविन्द के अनन्य थे।

कीरः श्रितमुनिधीरः शिष्यः समभूच्च गालवानन्दः।
रामानन्दपदाम्बुजमञ्जुलमधुपो महाभागः ॥16॥

इस प्रकार साक्षात् धीर मुनि जिन का श्रवण करते हैं ऐसे शुकाचार्य जी ही गालवानद शिष्य के रूप में अवतरित हुए और महाभाग्यशाली एवं रामानन्दाचार्य जी के चरण कमल के बहुत मधुर मधुकर थे।

यमोऽभवद् रैदासो रघुवरदासो विभग्नजगदाशः।
रामानन्दपदाम्बुजषट्पदभूतस्तपःपूतः ॥17॥

इस प्रकार साक्षात् यमराज रैदासजी के रूप में अवतीर्ण हुए जो जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरण कमल के बहुत मधुर मधुकर थे, तपस्या से पवित्र थे, रघुनाथ जी के एकमात्र अनन्यदास थे और जिन्होंने जगत् की आशा छोड़ दी थी।

एवं द्वादशशिष्या द्वादशतिलकायिता महाभागाः।
रामानन्दसुयशसः केतूभूतास्तपःपूताः ॥18॥

इस प्रकार श्रीरामानन्दाचार्य जी के यश के केतु स्वरूप, तप से पवित्र, ये द्वादश शिष्य उनके द्वादश तिलक के समान बने।

द्वे अपि महिले शिष्ये यतिकुलकेतोर्बभूवतुर्धीरे।
पद्मावतीसुरसुर्यौ परमसुशीले लसल्लीले ॥19॥

इस प्रकार यतीन्द्र रामानन्दाचार्य की दो महिलायें भी शिष्यायें थीं जो अत्यन्त सुशील थीं और जिनकी लीला अत्यन्त शोभनीय थी, ऐसी पद्मावती और सुरसुरी ये जगद्गुरु की दो शिष्यायें भी थीं।

यतेर्द्वादशशिष्याणां चरितं शुचिधीमताम्।
वक्ष्यामि वैष्णवप्रीत्यै रामानन्दकथोदयम्॥20॥

अब मैं यतिराज जगद्गुरु स्वामिरामानन्दाचार्य जी के द्वादश अर्थात् बारह मुख्य शिष्यों का परमपवित्र चरित्र वैष्णवजनों की प्रीति के लिए कहूँगा और यही श्रीरामानन्दाचार्य जी के और कथाओं के उदय का कारण बनेगा।

विचारयामास विधिः कदाचिन्नातिप्रसीदन् निजसृष्टिकार्ये।
अहो मयाऽनार्यमिदं व्यधायि द्राक् चोरिता माधवमित्रवत्साः॥21॥

ब्रह्माजी अपने सृष्टिकार्य से बहुत प्रसन्न न होते हुए विचार करने लगे–अरे! मेरे द्वारा यह कैसा नीच कार्य किया गया, मैंने भगवान् के मित्र और उनके बछड़ों को चुरा लिया। यह कितना नीच कार्य हुआ।

जिज्ञासमानेन च पूतनारेर्मायाबलं श्रीभगवत्त्वमेव।
वृन्दावने जेमनमानसस्य द्राक् चोरिता बालकमित्रवत्साः॥22॥

मैंने यह कितना नीच कार्य किया है, पूतना शत्रु भगवान् के मायाबल की और श्रीभगवत्त्व की जिज्ञासा करते हुए मेरे द्वारा वृन्दावन में भोजन में अपना मन लगाये हुए प्रभु के बालक मित्र और बछड़ों की मैंने चोरी कर ली। क्या यह नीच कार्य नहीं हुआ?

सान्निध्यमाप्तुं क्षणतो यदीयं शरीरतापं तप आचरन्ति।
तपस्विनस्तस्य पदारविन्दाद् विदूरिताः पापकृता मयेमे॥23॥

क्या करें? जिनका एक क्षण भर सान्निध्य प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े योगिजन मुनीन्द्रगण अपने शरीर को तपाकर घोर तप किया करते हैं, उन्हीं के चरण कमलों से मुझ पापी के द्वारा भगवान् के ये बालक मित्र और बछड़े दूर कर दिये गये। यह कितना नीच कार्य हुआ!

यत्पादपद्मं परिलेढुकामाः सुरेन्द्रवर्यास्त्रिदिवं विहाय।
वत्सीभवन्तो व्यचरन् व्रजेऽस्मिन् वियोजितास्ते भगवत्पदाब्जात् ॥24॥

मैं क्या करूँ? अरे जिनके चरण कमलों को चाटने की इच्छा करते हुए देवतागण अपना स्वर्ग छोड़ कर गौओं के बछड़े बनकर व्रज में भ्रमण किये, वे ही मेरे द्वारा भगवान् के चरणों से दूर कर दिये गये। क्या यह पाप नहीं हुआ?

जिज्ञासयाऽलं ननु नीचबुद्धेर्धिग् धिग् मदीयां धिषणां जडाञ्च।
सम्प्रेरितोऽहं च यया चकार श्रेयोहरं श्रीभगवद्विरोधम् ॥25॥

अरे! मुझ नीच बुद्धि की यह जिज्ञासा भी व्यर्थ है और मेरी इस जड़ बुद्धि को बार-बार धिक्कार है जिससे प्रेरित होकर मैंने यह भगवान् का विरोध कर लिया।

कृतौ मया भागवताऽपराधावुभौ महापापकृता जडेन।
स्निग्धांश्च वत्सान् सुहृदः प्रतीमौ धिङ्मां विरञ्चं कृतपापराशिम् ॥26॥

अरे मेरे द्वारा दो भागवतापराध किये गये। भगवान् के बालमित्रों के प्रति और बछड़ों के प्रति। ऐसी पापराशी का सञ्चय करने वाले मुझ ब्रह्मा को धिक्कार है।

जानन्निमौ भागवताऽपराधौ संस्तूयमानोऽपि मयाऽधमेन।
न माधवोऽभाषत मां कृतघ्नं क्षमैकसिन्धुर्जगदेकबन्धुः ॥27॥

मेरे दोनों भागवतापराधों को जानते हुए मेरे द्वारा बारम्बार स्तुति किये जाने पर भी भगवान् ने मुझ कृतघ्न के प्रति एक भी वाक्य नहीं बोला, चुप रहे वे। क्योंकि भगवान् क्षमा के एकमात्र सागर हैं और जगत् के एक मात्र बन्धु हैं।

ततः कृतौ पापकृता मया यौ घोरापराधौ भगवत्प्रियाणाम्।
तत्पाप्मनोर्दारुणयोश्च प्रायश्चित्तं करिष्यामि कलौ युगेऽस्मिन् ॥28॥

इस प्रकार मुझ पापी के द्वारा जो दो भागवतापराध किये गये उनका मैं इस घोर कलिकाल में प्रायश्चित करूँगा ही।

रामश्च साक्षाज्जनताऽभिरामः कामश्च लोकेशकृतप्रणामः।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभवत् तीर्थपतौ युगेऽस्मिन्॥29॥

साक्षात् जनता के नेत्राभिराम और काम अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर जिनमें निरन्तर निवास करते हैं, लोकपाल भी जिनको प्रणाम करते हैं, ऐसे भगवान् राम इस समय जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के रूप में प्रकट हुए हैं।

तत्पादपङ्केरुहसेवनाय शिष्यो भविष्यन् प्रथमो भविष्णुः।
संक्षालयिष्ये महतां कृतैनः श्रेयस्करी चापि गुरूपसत्तिः॥30॥

उनके चरणकमलों की सेवा करने के लिए मैं उनका प्रथम शिष्य बन जाऊँगा, क्योंकि गुरु की उपसत्ति अर्थात् शरणागति समस्त कल्याणों को करती है। इसी कृत्य से मैं भगवान् के भक्तों के प्रति किये गये अपराध का प्रक्षालन कर लूँगा।

भूयश्च भूयासमहं गताक्षो भक्तश्च नारायणदासनामा।
नाभेति विख्यातिमहं व्रजिष्यन् श्रीभक्तमालं शुभगं प्रवक्ष्ये॥31॥

और द्वितीय अपराध का प्रायश्चित करने के लिए मैं स्वयं नारायणदास नामक भक्त बनूँगा और रहूँगा। जन्मान्ध और भक्तापराध का पापशमन करने के लिए मैं भक्तमाल की रचना करूँगा।

एवं विमृश्यैव सरोजयोनिः कृत्वाऽऽत्मनो वै द्विविधं स्वरूपम्।
प्रत्यागमद् भारतभूमिमध्ये पापे च संक्षालयितुं महात्मा॥32॥

इस प्रकार विचार करके कमलजन्मा ब्रह्माजी अपने पापों का प्रक्षालन करने के लिए इस भारतभूमि पर मानव शरीर धारण करने के लिए फिर लौट आये।

भूयश्च शिष्यः प्रथमो ह्यनन्तानन्दो भविष्यन् ननु पद्मजन्मा।
आगादुपायोध्यमनन्तवीर्यो महेशपूर्वे च पुरे पुरस्तात्॥33॥

इसके पश्चात् रामानन्दाचार्य जी का प्रथम शिष्य होने के लिए ब्रह्माजी अयोध्या के निकट महेशपुर नामक ग्राम में आये।

स कस्यचिद् विप्रवरस्य गेहे गृहीतजन्मा जलजातजन्मा।
बभूव बालः श्रितभाग्यभालः संराधयिष्यन् रघुनाथमेव॥34॥

और ब्रह्माजी एक श्रेष्ठ ब्राहमण सरयूपारीण के यहाँ जन्म लिये जो स्वयं पहले कमल से जन्मे हुए थे। उने मस्तक पर भाग्य की रेखा सुन्दर थी वे बालक बने। भगवान् की आराधना करने के लिए उन्होंने दिव्य शरीर धारण किया।

पित्रोश्च कार्तान्तमुपेयिवोर्वै बभूव बालो नितारामनाथः।
सम्पालितो गोपगणैश्च भक्त्या काशीं गतो भूतपतेः पुरीं च॥35॥

इस प्रकार जो इनके माता-पिता समाप्त हो गये उनकी गोपगणों द्वारा बड़ी सेवा की गयी और वे शङ्कर भगवान् की पुरी काशी में चले गये।

दृष्ट्वा ह्यनाथं रघुनाथनाथं श्रीराघवप्रेमपयोधिमीनम्।
समाधिलीनं ननु दीनदीनं कश्चिद् द्विजस्तं सुतवत् पुपोष॥36॥

इस प्रकार से उन्हें रघुनाथजी जिनके नाथ हैं और जो रामजी की प्रेम सागर के मत्स्य के समान हैं जो निरन्तर समाधि में लीन रहते थे, जो बाहर से अत्यन्त दीन दिखते थे, उन बालक बने ब्रह्माजी का एक ब्राहमण ने बालक की भाँति पालन किया।

स एकदा ध्यानरतो महात्मा ददर्श कृष्णं श्रितगोपवेषम्।
सञ्चारयन्तं सुगवीर्गवेशं वृन्दावने गोपसुहृत्परीतम्॥37॥

उन बालक ब्रह्माजी ने एक बार ध्यान में ही भगवान् कृष्ण के दर्शन किये जो गोपवेश धारण किये हुए हैं, वृन्दावन में अपनी गायों को चरा रहे हैं, जो इन्द्रियों के ईश्वर हैं और गोपबालकों से घिरे हुए हैं।

नवीनधाराधरदेहकान्तिं कान्तालकं कंसकृषं सुशान्तिम्।
वंशीं क्वणन्तं सुवने वसन्तं स्ववेषसंव्रीडितसद्वसन्तम्॥38॥

उन्होंने देखा भगवान् कृष्ण नवीन मेघ के समान शरीर वाले हैं, उनके बाल घुँघराले हैं, वे कंस-शत्रु हैं और परमशान्तिमय हैं, वंशी बजा रहे हे, अपने वेश से श्रेष्ठ वसन्त को भी लज्जित कर रहे हैं।

बर्हावतंसं शिशुराजहंसं मुनीन्द्रसन्मानसमानसानाम्।
कस्तूरिकासत्तिलकं दधानं गुञ्जाधरं वर्धितभक्तमानम्॥39॥

वे मयूरमुकुट धारण किये हुए हैं और श्रेष्ठमुनियों के मानस रूप मानससरोवर के बाल राजहंस हैं। उनके मस्तक पर कस्तूरी का सुन्दर तिलक लगा है और वे भक्तों का मान बढ़ा रहे हैं और गुञ्जा धारण किये हुए हैं। ऐसे मोर मुकुटी श्रीकृष्ण भगवान् को उस बालक ने देखा।

गोधूलिसन्धूसरकृष्णकेशं राजत्सुदेशं कृतगोपवेशम्।
महानुभावं मधुरस्वभावं गोवर्धनोद्धारणसत्प्रभावम्॥40॥

और उन्होंने देखा भगवान् का श्रीविग्रह गोधूलि से धूसरित हो रहा है, जो स्वयं महानुभाव हैं उनका मधुर स्वभाव है और गोवर्धन के उद्धारण में ही उनका सुन्दर प्रभाव प्रस्तुत किया जा रहा है।

राधामुखाम्भोरुहचञ्चरीकं राधाहृदम्भोरुहचञ्चरीकम्।
राधाकराम्भोरुहचञ्चरीकं राधाधवं माधवमाददर्श॥41॥

राधाजी के मुख कमल के भ्रमर और राधाजी के हृदयकमल पर मँडराते हुए भ्रमर और राधाजी के करकमल को चूमते हुए भ्रमरस्वरूप ऐसे राधाजी के पति माधव को उन्होंने देखा।

वेणुस्वनारञ्जितदिग्विभागं वृन्दावनाभूषणदेहरागम्।
गोपीजनामोहकपद्मरागसख्यं लसत् पीतपटं दधानम्॥42॥

देखा कि जो वृन्दावन को सुशोभित करने वाले देहराग को धारण किये हुए हैं और अपने वंशीध्वनि से सम्पूर्ण दिग्विभाग को आरञ्जित किया हुआ है और गोपीजनों को वश में करने वाले पद्मराग के समान पीले पीताम्बर को धारण किया हुआ है।

श्रीमद्यशोदासुतमादिदेवं मुनीन्द्रसंवाञ्छितपादसेवम्।
श्रीनन्दसूनुं जनकामधेनुं धेनुप्रियं तं शिशुराददर्श॥43॥

ऐसे अर्थात् श्रीयशोदाजी के पुत्र, आदिदेव और मुनीन्द्रगण जिनकी सेवा की इच्छा करते हैं ऐसे श्रीनन्दनन्दन और भक्तों के जो कामनायें पूर्ण करने के लिए कामधेनु के समान हैं, गौयें प्रिय हैं जिनको, ऐसे भगवान् को उस बालक ने निहारा।

पश्यन् परेशं धृतगोपवेशं श्रीकृष्णचन्द्रं सुषमासमुद्रम्।
न तृप्तिमागान्नयनाभिरामं पिबन् दृशां स्वस्त्ययनं स बालः ॥44॥

इस प्रकार गोपरूप धारण किये हुये, परमेश्वर भगवान् को निहारते हुए और नयनाभिराम प्रभु की रूपमाधुरी को पीते हुए और नेत्रों के स्वस्त्ययन रूप परमात्मा के दर्शन करते हुए वह बालक तृप्ति प्राप्त नहीं कर सका अर्थात् तृप्त नहीं हो सका।

तुष्टाव तं नीलतमालनीलं समस्तवेदेडितदिव्यशीलम्।
उदारलीलं रसराजसिन्धुं राकेशमीशं जगदीशमेव ॥45॥

इस प्रकार नीले तमाल के समान नील वर्ण वाले, वेद जिनकी लीला को गाते हैं, उदार लीला वाले, करुणाशील, जगदीश्वर, परमात्मा, श्रीकृष्णचन्द्रजी की उस बालक ने स्तुति की।

कृष्णः कंसरिपुः सदा विजयते कृष्णं कृपाब्धिं भजे
कृष्णेनाभिहता तमीचरचमूः कृष्णाय तुभ्यं नमः।
कृष्णान्नास्त्यपरः स्वरक्षणपरः कृष्णस्य भक्तोऽस्म्यहं
कृष्णे भक्तिरखण्डिता भवतु मे हे कृष्ण मां पालय ॥46॥

इस श्लोक में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने विभक्तियों के सातों प्रयोग, सिद्धान्तों और सम्बोधन के प्रायोगिक निदर्शनों से एक विद्वन्मनोरञ्जन का सफल प्रयास किया है-

कंस के शत्रु श्रीकृष्ण विजयी हो रहे हैं। कृपा के सागर श्रीकृष्ण को मैं भजता हूँ, श्रीकृष्ण के द्वारा राक्षसों की सेना का वध किया गया, आप श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार। श्रीकृष्ण से अधिक श्रेष्ठ कोई दयापरायण नहीं, मैं श्रीकृष्ण का भक्त हूँ, श्रीकृष्ण में मेरी अखण्डिता भक्ति हो, हे श्रीकृष्ण! आप मेरा पालन कीजिए।

शूर्पस्थं वसुदेवमूर्धनि गतं सन्नीयमानं व्रजं
कालिन्दीलहरैर्जगद्भयहरं सङ्क्षालिताङ्घ्र्यम्बुजम्।
राजन्नन्दनिकेतनं कमपि तं बालाकृतिं श्यामलं
संपुष्टं च यशोदया शिशुवरं श्रीवासुदेवं भजे ॥47॥

सूप में विराजमान तथा वासुदेव के मस्तक पर स्थित, ब्रज ले जाये जाते हुए, यमुना जी की सुन्दर लहरों द्वारा जिनके चरण कमल का क्षालन किया गया है, जिनसे नन्द के भवन की शोभा बढ़ी है, यशोदाजी ने जिनका पालन पोषण किया है, ऐसे श्यामवर्ण,

भवभयहारी, बालस्वरूप वासुदेवनन्दन का मैं भजन करता हूँ।

रिङ्गन्तं व्रजकर्दमे सहबलं लिप्तं मुहुर्गोमये
गोविन्दं गविगोपिकापरिवृतं गोपालकैर्लालितम्।
पुञ्जीभूतमयं च नन्दसुकृतं तं पूतनारिं हरिं
क्रीडन्तं नवनीतचोरणचणं श्रीकृष्णमेवाऽऽश्रये ॥48॥

व्रज की कीचड़ में रेंगते हुए गोबर में बारम्बार संलिप्त गोविन्द पृथिवी पर विराजमान गोपिकाओं से घिरे हुए, वृद्ध गोपों द्वारा दुलारे हुए मूर्तिमत् नन्दराय का सुकृतस्वरूप पूतना के शत्रु ऐसे दधिचौर्य कार्य में कुशल, गोकुल में खेलते हुए, श्रीहरि कृष्ण का ही मैं आश्रय लेता हूँ।

क्रीडन्तं यमुनातटे निजसखैः सान्द्राम्बुदाभं प्रभुं
गोपालं व्रजसुन्दरीभिरभितो दृग्भिर्निपीतं सुखम्।
वृन्दारण्यविहारकेलिकुशलं गोपीजनाऽऽनन्ददं
श्रीकृष्णं मुरलीधरं नटवरं गुञ्जाऽवतंसं श्रये ॥49॥

अपने मित्रों के साथ यमुना तट पर खेलते हुए, नीले घनीभूत मेघ के समान शोभा वाले, सर्वसमर्थ, गोपाल व्रज-बालाओं द्वारा चारों ओर से नेत्रों के पान के विषय बने हुए अर्थात् पिये जा रहे, वृन्दावन के विहार की लीला में कुशल, गोपीजन को आनन्द देने वाले, ऐसे आभूषण बनाने वाले, मुरलीधर, नटवर, भगवान् श्रीकृष्ण का मैं आश्रय ले रहा हूँ।

कंसारिं तमधोक्षजं हततृणावर्तं च दामोदरं
लीलायां निहताऽघवत्सकवकं दावाऽग्निपानव्रतम्।
धीरं कालियमर्दनं व्रजवधूप्राणप्रियं माधवं
जम्भघ्नस्मयनाशनं गिरिधरं कृष्णं श्रये सर्वदम् ॥50॥

कंस के शत्रु, शकटासुर को चरण से ही ढकेल कर मार डालने वाले, तृणावर्त का वध करने वाले, दामोदरलीला में यमलार्जुन का उद्धार करने वाले, खेल-खेल में वत्सासुर, बकासुर, अघासुर का वध करने वाले तथा दावाग्निपान ही जिनका व्रत है ऐसे, परमधीर कालिया का मर्दन करने वाले, गोपिकाओं के प्राणप्रिय, माधव, जम्भ के शत्रु, इन्द्र का मद नष्ट करने वाले, गोवर्धन को धारण करने वाले, भक्तों को सब कुछ प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण का मैं श्रयण करता हूँ।

नृत्यन्मत्तमयूरिकापतिपतद्बर्हार्हमौलिं लस-
च्छ्रीवत्सं जनवत्सलं नवघनश्यामं विरामं द्विषाम्।
कन्दर्पाऽमितसुन्दरं नटवरं वृन्दावनीभूषणं
श्रीराधामुखकञ्जमञ्जुमधुपं तापिच्छनीलं श्रये ॥51॥

नाचते हुए मयूरी के पति अर्थात् मोर के गिरते हुए पङ्ख को ही जिन्होंने सुन्दर मुकुट बना लिया है, जिनके वक्ष पर श्रीवत्सलाञ्छन सुशोभित है ऐसे, भक्त वत्सल, नवीन मेघ के समान श्यामल, शत्रुओं के अभाव स्थान, अनेक कामदेवों के समान सुन्दर, नटवर, वृन्दावन के आभूषण, श्रीराधाजी के मुख कमल के सुन्दर भ्रमर, तमाल के समान नीले, भगवान् श्रीकृष्ण का मैं आश्रय लेता हूँ।

राधाऽऽराधनतत्परं सुचरितै राधासुखावर्धनं
राधाऽम्भोरुहिणीप्रभाततपनं राधामुखाब्जालिकम्।
राधाचित्तनिकुञ्जमञ्जुभवनं राधायशश्चारणं
राधाप्राणधनं नवाम्बुदनिभं राधाभवं भावये ॥52॥

नवीन मेघ के समान सुन्दर तथा राधाजी के आराधना में तत्पर, अपने सुन्दर चरित्रों से राधाजी के सुख को बढ़ाने वाले, राधारूप कमलिनी के लिए प्रभातकालीन सूर्य तथा राधाजी के मुखकमल के भ्रमर, राधाजी के चित्त निकुञ्ज को अपना भवन बनाने वाले, राधाजी के यश के चारण राधाजी के प्राणधन, श्रीराधाजी के पति, श्रीकृष्णचन्द्रजी की मैं भावना करता हूँ।

नन्दं नन्दयते जनिं सुखयते शत्रून् मुहुर्निघ्नते
धेनुं चारयते कलं क्वणयते वेणुं गिरिं बिभ्रते।
सर्पं नाथयते सखीन् रमयते राधाननं चुम्बते
कंसं नाशयते सते भगवते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥53॥

नन्दजी को प्रसन्न करते हुए माता यशोदाजी को सुखी करते हुए, शत्रुओं को नाश करते हुए, सुन्दर मुरली बजाते हुए, गोवर्धन धारण करते हुए, कालिया को नाथते हुए, मित्रों को रमाते हुए, राधाजी के मुख का चुम्बन करते हुए, कंस का वध करते हुए, अखण्डसत्ता सम्पन्न उन भगवान् श्रीकृष्ण को मेरा नमस्कार।

स्तुत्वा जगत्स्तुत्यमिमं स कृष्णं कृष्णासखं प्रीणितमित्रकृष्णम्।
कृष्णाप्रियं कृष्णनदीनदीष्णं कृष्णेडितं कृष्णकमभ्यजानात्॥54॥

इसके अनन्तर पूर्वोक्त आठ श्लोकों से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके जो जगत् के स्तुत्य हैं, जो निरन्तर कृष्णा राधाजी के साथ रहते हैं, जो कृष्ण द्रौपदी जी के मित्र हैं, जिन्होंने अपने मित्र कृष्ण अर्जुन को प्रसन्न किया है, जिन्हे कृष्ण यमुनाजी प्रिय हैं, जो कृष्ण नदी नदीष्णम् यमुनाजी को निरन्तर पार करते रहते हैं, कृष्ण वेदव्यासजी ने जिनकी पुराणों मे स्तुति की है, ऐसे अनुकम्पित अनुकम्पामय भगवान् कृष्णजी को उस बालक ने पहचान लिया। उसने देखा-

पूर्वं त्वपूर्वं मृगयन्तमीड्यं दूर्वादलश्यामलमाप्तदूर्वम्।
दूर्वाप्रियान् दूर्वितचारुवर्णान् मित्राणि वत्सांश्च वने तुलस्याः॥55॥

उस बालक ने देखा पहले की भाँति यहाँ चकार का अर्थ 'इव' है प्रथम की ही भाँति जो अपूर्व होने पर हाथ में दूब की गठ्ठर लेकर दूर्वापिय और दूर्वा के समान वर्ण वाले अपने मित्र और बालकों को वन में ढूँढ रहे हैं, ऐसे भगवान् कृष्ण को उस बालक ने पहचान लिया।

सञ्चारयन्तं पुलिने सुधेनुं सूर्यात्मजाया अनुकम्पितायाः।
वृन्दावने बालसखैः परीतं विद्याविनीतं श्रुतिगीतगीतम्॥56॥

जो पहले की ही भाँति यमुनाजी के तटों पर वृन्दावन में गौएं चरा रहे हैं बालमित्रों से घिरे हैं, विद्या से विनीत हैं और श्रुतियाँ जिनके गीत गा रही हैं।

देहप्रभाव्रीडितकन्दकान्तिं कान्तालकं श्राणितसौम्यशान्तिम्।
वेणुं क्वणन्तं विपिने वसन्तं वसन्तमाधुर्यगुणैर्लसन्तम्॥57॥

जो अपने देह की कान्ति से मेघ की कान्ति को लज्जित किये हुये हैं। जिनके अलक बहुत सुन्दर हैं। जिन्होंने सौम्यजनों को शान्ति दी है, जो वृन्दावन में निवास कर रहे हैं और अपने बसन्त के माधुर्य गुणों से सुशोभित हो रहे हैं ऐसे भगवान् को उस बालक ने पहचान लिया।

तं कृष्णसत्कम्बलमावसानं वेणुं दधानं च सुखं ददानम्।
प्रपन्नसद्भ्यो ननु पुण्यकृद्भ्यो राधाप्रियं स्वप्रियमभ्यजानात्॥58॥

सुन्दर काली कमली ओढ़े हुए और लकुटिया लिये हुए और सन्तों और अपने प्रणत जनों को दिव्य शान्ति देते हुए, ऐसे राधाजी के प्रिय और अपने प्यारे भगवान् कृष्ण को उस बालक ने पहचान लिया।

जीमन्तमन्नं रुचिराङ्गुलीभिर्दध्योदनं भक्तिविशोधनञ्च।
हसन्तमुच्चैः परिहासयन्तं गोपान् सखीन् स्वान् हृदि वासयन्तम् ॥59॥

बालक ने देखा भगवान् भक्तों के द्वारा शोधित अन्न, दही भात प्रेम से पा रहे हैं और भक्तों को अपने हृदय में बसा रहे हैं, हँस रहे हैं और उन्हें हँसा रहे हैं।

सुदूरगान् बालसखांश्च वत्सान् निहारयन्तं ननु हारयन्तम्।
देहत्विषा नीलतमालकन्दं सूर्यात्मजायाः सलिलं तथैव ॥60॥

अपने से दूर गये हुए मित्रों और बछड़ों को निहारते हुए और अपने देह की प्रभा से नील तमाल, मेघ और यमुनाजी की शोभा को भी चुराते हुए ऐसे भगवान् को उस बालक ने पहचान लिया।

यशोदया चुम्बितवक्त्रपद्मं पद्माननं पद्मकरं सपद्मम्।
श्रीनन्दराजेन विवर्ध्यमानं समेधमानं व्रजराजगेहे ॥61॥

यशोदाजी ने जिनके मुखकमल का चुम्बन किया है, जिनका मुख पद्म के समान है, जो हाथ में लीला में लीलाकमल लिये हुए हैं और जो निरन्तर राधाजी के साथ रहते हैं, नन्दराज के द्वारा जिनका विवर्धन किया जा रहा है और जो व्रजराज के घर पर निरन्तर बढ़ रहे हैं ऐसे श्रीकृष्ण को बालक ने पहचान लिया।

तं चोरयन्तं व्रजयोषिताञ्च दधीड्यगेहेषु गुणैरुषत्सु।
बालैः सुहृद्भिर्नवनीतचौरं चौराग्रगण्यं हरिमभ्यजानात् ॥62॥

उस बालक ने देखा यों तो प्रत्येक गोपियों के घर दही चुरा रहे हैं और बालमित्रों के साथ माखन भी चुरा रहे हैं, ऐसे श्रीहरि श्रीकृष्ण यही द्वापर के कृष्ण हैं, इस प्रकार उस बालक ने पहचान लिया।

मोघाममोघां श्रितपातकौघां मायां लसज्जीवजगन्निकायाम्।
कुर्वन्तमूर्वीतलभूरिभारं हरिं हरन्तं शिशुरभ्यजानात् ॥63॥

ब्रह्मरूप बालक ने यह जान लिया कि जिन्होंने अनेक ब्रह्माण्ड को रचने वाली जीव जगत् को रचने वाली अमोघ माया को मोघ माने विफल कर लिया है और जो पृथ्वी का भार उतारने के लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं।

हृतेषु वत्सेषु सुहृत्सु सत्सु स्वमायया कल्पिततत्स्वरूपम्।
कृपैककूपारमनर्घ्ययूपं गोपस्वरूपं ननु गोपगोपम्॥64॥

जिन्होंने ब्रह्माजी के द्वारा मित्रों और वछड़ों के चुरा लेने पर अपनी माया से उन्हीं का रूप बना लिया है। जो कृपा के एकमात्र सागर हैं और जिनके यज्ञयूप महान् हैं ऐसे गोपों के राजा भगवान् कृष्ण को बालक ने पहचान लिया।

बर्हावतंसं सुकुलावतंसं महेशसन्मानसराजहंसम्।
भवेड्यवंशं करचारुवंशं वीर्याऽग्निसम्भस्मितदुष्टकंसम्॥65॥

जो बर्हावतंस हैं, मोर पंख धारण कर रखा है, जो अपने कुल के आभूषण हैं, जो मुनीन्द्रों के श्रेष्ठ मानस के राजहंस हैं, जिनका वंश जगत् में पूज्य है जिन्होंने हाथ में वंशी ली हुयी है और जिन्होंने अपने पराक्रम रूप महान् अग्नि में कंस को भस्म कर दिया है। ऐसे भगवान् कृष्ण को बालक ने पहचान लिया।

कनिष्ठिकाधारितशैलराजं विभुं विराजं सुरराजराजम्।
विभ्राजमानं व्रजराजगेहे बलं वसिष्ठं बलसेव्यमानम्॥66॥

जिन्होंने अपनी कनिष्ठिका पर गिरिराज को धारण किया है और जो राजाओं के राजा देवताओं के राजा हैं ऐसे व्रजराज नन्द के घर में पाले जाने वाले बलवान् और बलराम जी के द्वारा सेवित बालकृष्ण को उस बालक ने पहचान लिया।

सुदर्शनं बर्हकिरीटजुष्टं कृपासुधाजह्नुसुताभिपुष्टम्।
भावेन तुष्टं नितरां च रुष्टं दुष्टात्मपापेभ्य इहास्तदुष्टम्॥67॥

जो मयूरमुकुट से युक्त हैं। अपने गुणगणों से भक्तों को सन्तुष्ट किया है। जो दुष्टात्मा पापियों से रुष्ट रहते हैं और अपने पराक्रमों से दुष्टों को अस्त किया है। ऐसे भगवान् कृष्ण को बालक ने पहचान लिया।

वृन्दावनश्राणितभूरिभागं वृन्दावनावर्धितभूरिरागम्।
वृन्दावनप्रस्तुतभूरिजागं वृन्दावनोत्सावितसत्प्रयागम्॥68॥

वृन्दावन के भूरिभाग को जिन्होंने बढ़ाया। जिनको वृन्दावन में अनुराग है, जो वृन्दावन में यज्ञ करते हैं और जिन्होंने अपनी राधाकृष्णमय युगल शोभा से वृन्दावन को प्रमाण दिया है। ऐसे बालक कृष्ण को उस बालक ने पहचान लिया।

राधागुणोच्चारणदत्तचित्तं राधायशश्चारणचारुचित्तम्।
राधावपुःप्रार्थितमञ्जुचित्तं राधैकचित्तं हरिमभ्यजानात्॥69॥

राधाजी के गुणों का जिनके चित्त में उच्चारण हो रहा है, राधा जी के यश के चारण में जिनका चित्त लगा हुआ है, राधाजी के दिव्य श्रीविग्रह की प्रार्थना में जिनका चित्त व्यस्त है, राधा में ही जिनका एकमात्र चित्त है, ऐसे भगवान् कृष्ण को उस बालक ने पहचान लिया।

स तं त्वभिज्ञाय जगन्निवासं वृन्दावने कल्पितवल्गुवासम्।
पपात तत्पादपयोरुहान्ते स्वान्ते सति प्रोद्धतदोषशान्ते॥70॥

इसके अनन्तर उस बालक ने यह पहचान लिया कि अरे ये तो वही कृष्ण भगवान् हैं, जिनका वृन्दावन में दिव्य वास है। फिर क्या था उसके मन के सभी दोष शान्त हो गये और वह भगवान् के चरण कमल के समीप पड़ गया।

स्मृत्वा स्वकीयं निजचौर्यकर्म श्रीमायया चोरितसद्विविवेकम्।
गोपालमित्राञ्चितवस्तु पश्चात्तापं प्रचक्रे नितरां विषण्णः॥71॥

इसके पश्चात् उसने ब्रह्मभाव में रहकर जो भगवान् के बछड़ों और बालकों की चोरी की थी उस पापकर्म का स्मरण करके जो भगवान् की माया से ही किया गया था, पश्चात्ताप करने लगा और दुःखी हो गया।

स तं समुत्थाप्य बृहद्भुजाभ्यां दीनानुकम्पी भगवाञ्जगाद।
मा मा व्यथिष्ठा द्विजराजपुत्र मायाकृतं सर्वमिदं ह्यहंयोः॥72॥

इसके पश्चात् अपनी विशाल भुजाओं से उठाकर दीनानुकम्पी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा– हे ब्राह्मणपुत्र! दुःखी मत हो। यह सब तो अहङ्कार से युक्त व्यक्ति के लिए मेरी माया ही कर देती है।

कलौ भवान् मे मम बालमित्रं पूर्वं त्वमद्धा मम वत्सपुत्रः।
भिदा कृता वा उभयोर्दुरन्तमन्मायया नाशितबोधया च॥73॥

निश्चित रूप से इस समय तुम मेरे मित्र हो और ब्रह्मा रूप में तुम मेरे पुत्र हो। ये दोनों के बीच में ज्ञान को नष्ट करने वाली मेरी माया ने भेद डाल दिया है।

अचूचुरस्त्वं सुहृदो मदीयान् निरागसो वै मम धेनुवत्सान्।
ये मद्वियोगं निमिषार्धजुष्टं न वै सहन्ते गतसर्वदोषाः ॥74॥

तुमने मेरे बालमित्रों को और निरपराध मेरे बछड़ों को चुरा लिया, जो सभी दोष से रहित होने के कारण आधा क्षण पर्यन्त भी मेरा वियोग सहन नहीं कर पाते।

पापस्य तद्दारुणकस्य प्रायश्चित्तं विधेह्येव महानुभाव।
तस्यैव मार्गं प्रगृणामि तेऽद्य विधत्स्व मा तप्य सरोजयोने ॥75॥

इस पाप का प्रायश्चित्त तो करना पड़ेगा। मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ, वह कार्य करो और हे कमलजन्मा ब्रह्मा जी पश्चात्ताप मत करो।

न श्रेयसे भागवताऽपराधो न प्रेयसे भागवताऽपराधः।
न वा श्रियै भागवताऽपराधो न वा धियै भागवताऽपराधः ॥76॥

देखिये भगवान् के भक्त का अपराध न तो कल्याण के लिए होता है न प्रेम के लिए अर्थात् लोक-परलोक दोनों के लिए नहीं होता, न श्री के लिए न बुद्धि के लिए।

चकार यद्भागवतापराधं श्रीमत्सुमित्रातनयस्य रोषात्।
श्रीजामदग्न्यो भृगुरामरामो भुङ्क्तेऽधुनाऽत्त्येव च तत्फलं वै ॥77॥

स्वयं जगदग्निपुत्र परशुरामजी ने जो लक्ष्मण जी के प्रति भागवतापराध किया था आज भी वे उसका फल भोग रहे हैं।

तपोऽपि नष्टं सुकृतञ्च नष्टं लोकाश्च नष्टाः खलु निर्जिता ये।
विभग्नवीर्यः स महेन्द्रशैलमध्यास्त एतर्हि फणीव वृद्धः ॥78॥

देख नहीं रहे हो उनका तप नष्ट हो गया, सुकृत नष्ट हो गया, सभी लोग नष्ट हो गये और सम्पूर्ण सत्त्वों से रहित होकर इस समय बूढ़े साँप की भाँति महेन्द्राचल पर विराज रहे हैं।

तद् गच्छ साधो यतिराजरामानन्दस्य पादाब्जनिषेवणोत्कः।
लब्धक्षमादान उदारबुद्धेः पापं प्रमार्ष्टाऽसि महानुभाव ॥79॥

इसलिए एक काम करो अब तुम जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी के पास जाओ और वहाँ उन उदारबुद्धि रामानन्दाचार्य जी से क्षमादान प्राप्त करो और उनकी सेवा करके इस पाप का परिमार्जन करो।

पादारविन्दं यतिराजरामानन्दस्य बुद्ध्वा कलिकामधेनुम्।
प्रेम्णा जुषाणः सुमतिं पुषाणो दोषं मुषाणो भव पापमुक्तः ॥80॥

तुम जानते हो यतिराज रामानन्दाचार्य जी के चरण कमल कलिकाल के लिए कामधेनु के समान हैं। उनके चरणों की सेवा करते हुए अपनी बुद्धि का पोषण करते हुए, अपने दोषों को नष्ट करते हुए, तुम पापमुक्त हो जाओगे।

अलं व्यथां पद्मजपुत्र गत्वा अलं च पश्चात्तपनं हि कृत्वा।
काशीं व्रज त्वं गतसर्वशङ्कः सेवस्व पादं यतिराजभर्तुः ॥81॥

हे ब्रह्मा के पुत्र! अब व्यथा करना व्यर्थ है। अब पश्चात्ताप करना भी व्यर्थ ही है। अब तुम काशी जाओ और सम्पूर्ण शङ्काओं को छोड़ दो और यतिराज रामानन्दाचार्य जी के चरण कमलों की सेवा करो।

त्रेतायुगेऽहं च बभूव रामो मर्यादया यः पुरुषोत्तमो वै।
स एव सम्प्रत्यथ विप्ररामानन्देति नाम्नाऽहमिहावतीर्णः ॥82॥

तुमको सञ्ज्ञान है त्रेतायुग में जो मैं मर्यादापुरुष रामजी के रूप में था वही इस समय कलियुग में ब्राह्मण रामानन्दाचार्य के रूप में अवतीर्ण हुआ हूँ।

रामे च कृष्णे च तथैव रामानन्दे त्रये चैक्यमथो विभाव्य।
सेवस्व तं भो यतिराजराजं सेवा सतां पातकपुञ्जहन्त्री ॥83॥

देखो श्रीराम और कृष्ण तथा रामानन्दाचार्य में एकत्व की भावना करके उन्हीं की सेवा करो वो सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देगी। क्योंकि सन्तों की सेवा सभी पापों को नष्ट कर देती है।

न वेदयज्ञाऽध्ययनैर्न दानैस्तपोभिरुग्रैर्न च वा क्रियाभिः।
अहं प्रसीदामि यथा तथा वै सेवात उच्चैः किल वैष्णवानाम् ॥84॥

मैं वेद, यज्ञ, अध्ययन, दान, तपस्या और क्रिया से उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना वैष्णवों की सेवा से प्रसन्न हो जाता हूँ।

निशम्य चैतच्छिखिपिच्छमौलेर्वाक्यं यथा वेदमयाऽनुवाकम्।
जगाम काशीं कृतपुण्यराशिं स ब्रह्मपुत्रो हरिपूर्वमित्रम्॥85॥

इस प्रकार वेद के अनुवाक् के समान शिखिपिच्छमौली भगवान् श्रीकृष्ण के वाक्यों को सुनकर पुण्य के राशि से युक्त काशी में ब्राह्मणपुत्र और भगवान् के पूर्व मित्र छन्नु शीघ्र आ गये।

स्नात्वा च भक्त्या किल पञ्चगङ्गाघट्टे सरित्येव सुरेश्वराणाम्।
गतः कुटीरं यतिशेखरस्य ददर्श तं मूर्तमिवाऽघशत्रुम्॥86॥

इसके अनन्तर काशी में जाकर पञ्चगङ्गा घाट पर गङ्गाजी में स्नान करके यतिशेखर रामानन्दाचार्य जी की कुटीर में जाकर उन्हें मूर्तिमान् पापाहारी भगवान् राम की ही भाँति निहारा।

स तं निदेशं शिरसा दधानः सेवाव्रतं पालयति स्म धीमान्।
कुटीरसम्मार्जनकार्यचुञ्चुः प्रसन्नचेता हृतदोषपुञ्जः॥87॥

रामानन्दाचार्य जी का निर्देश का पालन करते हुए उन्होंने सेवा कार्य प्रारम्भ किया। वे कुटीर की झाड़ू बहारू करते थे। सेवा करते-करते उनके समस्त दोष समाप्त हो गये थे।

त्रिकालमाकर्ण्य तदीयशङ्खध्वनिं विनिर्ध्वंसितकल्मषश्च।
पूतात्मतामाप सदस्युदस्तदोषो लसत्सद्गुणचारुकोषः॥88॥

तीनों कालों में रामानन्दाचार्य जी के शङ्ख की ध्वनि सुनकर समस्त दोषों को दूर करते हुए सद्गुण के चारुकोष सुन्दरकोष बनकर उस ब्राह्मण बालक ने पवित्रता प्राप्त कर ली।

स ब्रह्मचारी निजधर्मचारी निदेशकारी यतिपुङ्गवस्य।
शीघ्रं कृपाभाजनतामवाप सेवा समृद्ध्यै हि च सद्गुरूणाम्॥89॥

वे बालब्रह्मचारी रहकर अपने धर्म का आचरण करते हुए, रामानन्दाचार्य जी के निर्देश का पालन करते हुए, शीघ्र ही उनकी कृपापात्रता को प्राप्त कर लिये। क्योंकि सद्गुरु की सेवा निश्चित रूप से जीव के जीवन में समृद्धि लाती है।

तं पञ्चसंस्कारयुतं त्वनन्तानन्देति नाम्ना गुरुरभ्यधत्त।
तस्मै प्रदायाऽथ विरक्तदीक्षां विरक्तचूडामणिरभ्यधायि ॥90॥

इसके अनन्तर उनको पञ्चसंस्कार दीक्षा देकर उनका नाम भी अनन्तानन्द रख दिया।
उन्हें विरक्त दीक्षा देकर विरक्त चूड़मणि बना दिया।

दत्वा तस्मै विरक्तिं विशिखपरिलसत्संस्कृतं चापि रामा-
नन्दाचार्योऽनिवार्यो यतिकुलतिलको राममन्त्रस्य दीक्षाम्।
शिक्षां तस्मै प्रदाय प्रथितगुणगणं तस्य चित्ते निवेश्य
प्रावोचत् प्रीतिपूर्वं भव भवसुयशा विश्वविख्यातकीर्तिः ॥91॥

इस प्रकार रामानन्दाचार्य जी ने उनको विरक्ति देकर राममन्त्र की दीक्षा दी, शिक्षा दी और सद्गुणों को उनके मन में निवेश करके कह दिया, जाओ बेटे तुम्हारी कीर्ति विश्व में विख्यात हो और तुम विजयी बन जाओ।

स पञ्चसंस्कारयुतस्त्रिदण्डी जगद्गुरोर्वै प्रथमः सुशिष्यः।
स्वयं दिदीपे गुणतस्त्वनन्तानन्दः शरत्काल इवांशुमाली ॥92॥

इस प्रकार पञ्चसंस्कारों से सम्पन्न जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के प्रथम शिष्य त्रिदण्डी महात्मा अनन्तानन्दाचार्य जी दिव्यगुणों से स्वयं उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे थे जैसे शरद काल में अपनी किरणों से सूर्यनारायण प्रकाशित होते हैं।

यः कृष्णचन्द्रस्य पुरा सखाऽभूत् छन्नूसुनाम्ना निजबाल्यकाले।
सैवाधुना स्वामिवरस्त्वनन्तानन्दो बभूवैव यतीन्द्रशिष्यः ॥93॥

जो अपने बाल्यकाल में "छन्नू" नाम से प्रसिद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के बालमित्र हुआ करते थे, अब वही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के प्रथम शिष्य स्वामी अनन्तानन्दाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

स चैकदा पीतपयःसु गोषु स्वकाश्रमस्थासु सुबाहुशत्रोः।
नैवेद्यहेतोः सँवरुस्वमित्रं सस्मार धीरः पयसे प्रकामम् ॥94॥

एक बार जब काशी के आश्रम में विराजमान सभी गौओं का दूध बछड़ों ने पी लिया तब अनन्तानन्दाचार्यजी ने भगवान् राम के नैवेद्य के लिए गोदुग्ध की व्यवस्थार्थ अपने बाल्यकालीन 'सँवरु' नामक मित्र भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया।

आगत्य शीघ्रं शिखिपिच्छमौलिः सख्ये ददौ धेनुपयःप्रकामम्।
दृष्ट्वैवमाश्चर्यमयं त्वनन्ता-नन्दं समेऽप्याश्रमिणोऽभ्यनन्दन्॥95॥

उसी समय भगवान् कृष्ण ने आकर अपने मित्र छन्नू को पर्याप्त गोदुग्ध दे दिया जिससे भगवान् का नैवेद्य हो गया। इस प्रकार अनन्तानन्दजी का आश्चर्यजनक कार्य देखकर सभी आश्रमवासियों ने उनका बहुत अभिनन्दन किया।

स कर्हिचित् स्वामिवरस्य रामानन्दस्य पादौ परिसेवमानः।
ददर्श सिद्धान् वियति प्रसिद्धान्पर्युपर्येव निजाश्रमं वै॥96॥

एक बार जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी के श्रीचरण कमलों की सेवा कर रहे अनन्तानन्दाचार्य ने अपने आश्रम के ऊपर आकाश में मँडराते हुए प्रसिद्ध सिद्धों को देखा।

स योगमाहात्म्यत एव तेषां समीपगः सत्कृतिमाततान।
नूनं गुरोः पादसरोजसेवा सिद्धीः समस्ताः सुलभीकरोति॥97॥

अनन्तानन्दाचार्यजी ने अपने योग के माहात्म्य से आकाश में स्थित उन सिद्धों के समीप जाकर सिद्धों का यथोचित अतिथि-सत्कार किया। निश्चित ही गुरुदेव के चरण कमल की सेवा शिष्य के लिए समस्त सिद्धियाँ सुलभ कर देती हैं।

विताय विद्वान् किल सोऽम्बरेऽम्बरं तदातपत्रं निरमान्मनोहरम्।
प्रापय्य तान् नान्दनशर्करारसं जहार तेषामुभयीं तृषोर्बुधः॥98॥

इसके अनन्तर अनन्तानन्दाचार्यजी ने आकाश में ही योगबल से वस्त्र का निर्माण करके सिद्धों के लिए आसन और छाते की व्यवस्था कर दी और उन्हें नन्दनवन की शर्करा से निर्मित शरबत पिलाकर उनकी आधिभौतिक और आध्यात्मिक तृषा (प्यास) को शान्त कर दिया।

सिद्धेश्वराः स्वामिवरं त्वनन्तानन्दं प्रशंसन्त उपात्तहर्षाः।
गतव्यथाः स्वास्पदमेव जग्मुः शिष्योदयायैव गुरूपसत्तिः॥99॥

इसके अनन्तर अनन्तानन्दाचार्य द्वारा सम्मानित आकाशचारी सिद्धगण उनकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न होकर और व्यथा से रहित होकर अपने-अपने आश्रमों को लौट गये। क्योंकि सद्गुरु की शरणागति शिष्य के अभ्युदय के लिए ही होती है। इसलिए अनन्तानन्दाचार्य जी का सुयश बढ़ गया।

चक्रे लोकपसङ्ख्यान् विदितविधेयान् बुधेन्द्रसन्धेयान्।
गुरुस्त्वनन्तानन्दो रामानन्दस्य निर्देशात् ॥100॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के निर्देश से अनन्तानन्दाचार्य जी ने श्रेष्ठ विद्वानों के प्रश्न के विषय बने हुए प्रसिद्ध आठ शिष्य बनाये।

योगानन्दगयेशौ सकर्मचन्द्राऽल्हदुग्धसम्भोजौ।
श्रीसारीरामदासं रङ्गं श्रीनरहरेर्दासम् ॥101॥

उनके नाम इस प्रकार हैं- श्रीयोगानन्द, श्री गयेश, श्रीकर्मचन्द्र, श्रीअल्ह, श्रीपयहारी, श्रीसारीरामदास, श्रीरङ्ग, श्रीनरहरिदास।

काश्मीरवास्तव्य उद्धदर्पो वाराणसीपण्डिततल्लजाँश्च।
शास्त्रार्थरङ्गे तरसा विजित्य स पञ्चगङ्गोटजमभ्युपेतः ॥102॥

कश्मीरवासी एक अहङ्कारी पण्डित वाराणसी के श्रेष्ठ विद्वानों को शास्त्रार्थ में जीतकर पञ्चगङ्गा घाट पर निर्मित श्रीरामानन्दाचार्य जी की कुटीर में आ गया।

तं पण्डितम्मन्यमथाप्यनन्तानन्दो जिगाय प्रतिभाबलेन।
शास्त्रार्थयुद्धे नितरां विरुद्धे गर्वो नृणां घोरपराभवाय ॥103॥

स्वयं को पण्डित मानने वाले उस अहंकारी पण्डित को स्वभाव से विरुद्ध होते हुए भी शास्त्रार्थ के युद्ध में अनन्तानन्दाचार्यजी ने जीत लिया। क्योंकि घमण्ड मनुष्यों के पराभव अर्थात् अवनति के लिए ही होता है।

उवाच तं सोमसिचञ्च वाचं वाचंयमो वाग्मिशिरोमणिश्च।
आत्मा हि दासः परमात्मनो वै न ब्रह्मजीवैक्यमिहाऽऽमनन्ति ॥104॥

फिर स्वयं वाणी का संयम रखते हुए भी श्रेष्ठ वक्ताओं के शिरोमणि अनन्तानन्दाचार्य जी ने उस पण्डित से अमृत सींचने वाली वाणी में कहा- देखो मित्र! जीवात्मा परमात्मा का दास है, जीवात्मा और परमात्मा की एकता शास्त्र कभी नहीं स्वीकारते।

पतञ्जलिर्वै कपिलः कणादः श्रीगौतमो जैमिनिशक्तिपौत्रौ।
षडेव सद्दार्शनिकाः श्रुतिज्ञा ऐक्यं न जीवेश्वरयोः सहन्ते ॥105॥

कपिल, पतञ्जलि, कणाद, गौतम, जैमिनि और शक्ति के पौत्र भगवान् वेदव्यास ये छहों वेदज्ञ श्रेष्ठ दार्शनिक जीवात्मा और परमात्मा की एकता को किसी भी प्रकार नहीं सहन करते।

अद्वैतवादो ननु भिक्षुसूत्रे प्रच्छन्नबौद्धैः परिजल्पितोऽयम्।
प्रमाणहीनञ्च कुतर्कलीनं शास्त्रार्थविज्ञाः प्रतियन्ति नैनम्॥106॥

प्रच्छन्न बौद्धों द्वारा वेदव्यासजी के ब्रह्मसूत्र में एक अद्वैतवाद जल्पना के साथ उपस्थित किया गया। इसको प्रमाणों से रहित और कुतर्कों से युक्त जानकर शास्त्रों का अर्थ जानने वाले विद्वान् विश्वास का विषय नहीं बनाते।

एकं वादं महान्तो वै विशिष्टाद्वैतं धीरा मन्वते ब्रह्मसूत्रे।
तस्मात् त्यक्त्वा सिद्धरुद्धान् कुतर्कान् सीतारामौ ब्रह्मरूपौ भजेम॥107॥

विद्वान् लोग प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाणों के आधार पर ब्रह्मसूत्र में एक ही विशिष्टाद्वैतवाद मानते हैं। इसलिए सन्तों से विरुद्ध कुतर्कों को छोड़कर हम ब्रह्मरूप सीताराम जी का ही भजन करें।

इत्यादिष्टः पण्डितोऽसौ ह्यनन्तानन्दं नत्वा नन्दितः सन् प्रतस्थे।
एवं शिष्यः स्वैश्चरित्रैरनेकै रामानन्दं नन्दयन्नास्त काश्याम्॥108॥

इस प्रकार आदेश पाकर वह शास्त्रार्थी पण्डित प्रसन्न होकर अनन्तानन्दाचार्य जी को प्रणाम करके कश्मीर के लिए प्रस्थान कर गया। इस प्रकार अपने अलौकिक चरित्रों से जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी को आनन्दित करते हुए अनन्तानन्दाचार्य जी काशी में पञ्चगङ्गा घाट पर निर्मित आश्रम में ही निवास करने लगे।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं द्वादशो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविराम-
भद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये द्वादशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ त्रयोदशः सर्गः॥

व्यचीचरच्चारितचारुचक्षुः श्रीनारदो वेदविशारदोऽयम्।
अहो मया निन्द्यमकारि कर्म नष्टौजसा माधवमाययैव॥01॥

एक बार सुन्दर नेत्रों को इधर-उधर दौड़ाते हुए, वेदों के विशारद श्री नारद विचार करने लगे, और भगवान् नारायण की माया से प्रेरित होकर, और उसी के द्वारा, जिसका ओज नष्ट हो गया ऐसे मेरे द्वारा, एक निन्दित कर्म कर दिया गया।

यद् विश्वमोहिन्युदजाननेऽहं निबद्धदृष्टिः परिणेतुमेनाम्।
हरिं ययाचे च हरेः स्वरूपं प्रापं तदाकारमहं हरेश्च॥02॥

अरे उसी माया से वशीभूत होने के कारण माया से नारी बनी हुई विश्वमोहिनी के कमल मुख पर मेरी दृष्टि बँध गयी और उससे विवाह करने के लिए मैंने 'श्रीहरि' से उन्हें श्रीहरि के स्वरूप की याचना कर ली, और उनसे वानर का आकार प्राप्त कर लिया।

तदाऽशपं सर्वजगन्निवासं क्रोधाब्धिसम्मज्जितधैर्यराशिः।
तच्छापमङ्गीकृतवान् स रामो दोषं हरिर्दासकृतं हि भुङ्क्ते॥03॥

इसके अनन्तर क्रोध में आकर तब मैंने सम्पूर्ण विश्व के जगन्निवास भगवान् नारायण को शाप दे दिया। क्योंकि क्रोध के महासागर में मेरी धैर्य की राशि डूब चुकी थी, उस शाप को भगवान् रामचन्द्र जी ने अङ्गीकार कर लिया। क्योंकि भगवान् रामचन्द्र श्रीहरिदास के किये हुए पाप को स्वयं ही भोगते हैं, जबकि गलती की श्रीहरि ने और स्वीकारा भगवान् राम ने।

वत्सं यथा स्वं शिशुवत्सलेयं गौः क्षालयन्ती नितरां पुषाणा।
तथा हरिर्भक्तकृतं हि पापं स्वयं प्रभुङ्क्ते जनवत्सलत्वात्॥04॥

जिस प्रकार शिशु वत्सला गौ अपने बालक को स्वयं चाटती हुई उसके दोषों को खा जाती है, उसी प्रकार भगवान् भी भक्त के दोषों को खा जाते हैं।

दोषस्य भोक्ता तु यदाश्रितानां तस्माद् हरिर्वै जनवत्सलोऽयम्।
उपेक्षते भक्तकृतं च पापं ख्यातस्ततः सेवकवत्सलोऽपि ॥05॥

भगवान् भक्तों के दोष को समाप्त कर देते हैं, इसलिए उनको भक्त वत्सल कहा जाता है, और भगवान् सेवकों के दोषों की उपेक्षा भी कर देते हैं। इसलिए वत्सल शब्द की दो व्याख्यायें कही गयी हैं। "आश्रितजन भोक्तृत्वं जनवत्सलत्वम्" और "आश्रितजन दोषोपेक्षकत्वं जनवत्सलत्वम्।"

तं वत्सलं चापि महारिपूणामुदारशीलं करुणार्द्रलीलम्।
हरिं प्रपद्येयमुदा शरण्य-मनाथनाथं शरणं मुमुक्षुः ॥06॥

इसलिए उन अनाथ नाथ परमात्मा की शरण में मैं जाऊँ क्योंकि वे शत्रुओं के भी वत्सल हैं।

तं वै स्तुवन्तो रिपवोऽपि नित्यं शीलं प्रशंसन्ति धनुर्धरस्य।
तत्वाप्मनः प्रायस एव चित्तं कर्तुं यतिष्ये ननु नारदोऽहम् ॥07॥

अरे उनकी स्तुति करते हुए, शत्रुगण श्रीराम के शील की प्रशंसा करते हैं इसलिए मैं नारद अब उस पाप का प्रायश्चित करने का यत्न करूँगा।

तदागसः स्वात्मकृतस्य प्रायश्चित्तं विधास्ये विदितात्मतत्त्वः।
ततस्तरिष्यामि भवार्णवञ्च नो चेत् पतिष्यामि महान्धकूपे ॥08॥

इसलिए इस पाप का मैं प्रायश्चित करूँगा। तब निश्चित इस संसार सागर से पार हो जाऊँगा। नहीं तो महान्धकारमय कूप में पड़ूँगा।

यच्चेन्न कुर्यां निजपापप्रायश्चित्तं व्रजेयं नरकं तदानीम्।
कृते च तस्मिन् विगतात्मदोषो भूयासमेवास्य कृपैकपात्रम् ॥09॥

यदि मैं प्रायश्चित नहीं करूँगा, तो नरक में मेरा जाना निश्चित है, और प्रायश्चित कर लूँगा, तो भगवान का एकमात्र कृपा पात्र बन जाऊँगा।

जानामि जातं जगदेकनाथमनाथनाथं ननु दीनबन्धुम्।
भारं हरिष्यन् जगतीतलस्य प्राप्तावतारं द्विजराजगेहे ॥10॥

मैं यह जानता हूँ कि व्यक्ति एकमात्र नाथ अनाथनाथ करोड़ों के महासागर दीनबन्धु भगवान् राम ने ब्राह्मण के घर में रामानन्दाचार्य के रूप में अवतार ले लिया है।

लभेय लाभं समयस्य चाऽस्य विधाय पापाऽपचितिं प्रकामम्।
मलीमसं स्वं परिशोधयेयं बुद्धिः प्रशस्ता हि निजात्मशुद्धिः ॥11॥

इस प्रकार प्रायश्चित करके मैं अपनी अपवित्र आत्मा को शुद्ध कर लूँ। क्योंकि अपने अन्तः करण को शुद्ध करने वाली बुद्धि ही शुद्ध मानी जाती है।

जायेय वंशे महिते कुलीने विप्रस्य वै वेदविशारदस्य।
भूत्वाप्यदोषो गुणशीलकोषः सेवेय रामं जगतां गुरुं च॥12॥

मैं अब वेद में विशारद ब्राह्मण के कुल में जन्म लूँ और जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरणकमल की सेवा करूँ।

सेवा गुरूणां जनकामधेनुः पादाब्जरेणुश्च शुभा तदीया।
तां मूर्ध्नि बिभ्राण उदारबुद्धिर्भूयासमेवास्य कृपैकपात्रम्॥13॥

सद्गुरु की सेवा साधक के लिए कामधेनु के समान होती है, और उनके चरण कमल की धूलि अत्यन्त शुभ होती है। उसी धूलि को सिर से धारण करता हुआ मैं निश्चित रूप से उनका एकमात्र कृपापात्र बन जाऊँगा।

इत्थं विचार्यैव धियाऽवधार्य श्रीमन्महाकालपुरोपकण्ठे।
बभूव बालो वपुसा रसालो नित्यं समाराधनलब्धलालः॥14॥

इस प्रकार से मन में विचार करके, बुद्धि से निश्चित करके, नारद जी महाकाल के निकट ही एक सुन्दर बालक के रूप में प्रकट हुए।

नाम्ना बभौ भायण एव भावान् सम्पाल्यमानो जनकेन नित्यम्।
श्रीनारदः शास्त्रविशारदश्च श्रीमत्पदाम्भोजमनोज्ञभृङ्गः॥15॥

शास्त्रविशारद नारद जी भगवान् के चरण कमल के सुन्दर भ्रमर होकर दीप्तिमान् होकर भायण नाम से प्रसिद्ध हुए।

दिने दिने वै परिवर्ध्यमानः पित्रा जनन्या च स लाल्यमानः।
पुपोष चाङ्गानि यथैव चन्द्रो लब्धाभिवृद्धिर्ननु शुक्लपक्षे॥16॥

इस प्रकार प्रतिदिन माता-पिता के द्वारा पालित होकर उसी प्रकार बढ़ने लगे जैसे शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होने वाला चन्द्रमा बढ़ता रहता है।

तं चाष्टवर्षं कृतबन्धुहर्षं विप्रान् समाहूय च वेदविज्ञान्।
पिता चकार व्रतबन्धमस्य संस्कारकार्यं हि नृणां श्रियै स्यात्॥17॥

इस प्रकार उनके आठ वर्ष बीत जाने पर और अपने व्यवहार से माता-पिता को प्रसन्न कर लेने पर, भायण का पिता ने यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया और उनका उत्कर्ष होने लगा। क्योंकि संस्कार मानव का कल्याण ही करता है।

कृतोपवीतं प्रभया परीतं विद्याविनीतं स्मृतरामसीतम्।
तं भायणं भाऽयनमेव वीक्ष्य प्रसन्नतां तत्पितरावगाताम्॥18॥

इस प्रकार से जिनका उपवीत कर दिया गया है, जो स्वभाव से अपने प्रभाव से युक्त विद्या से सम्पन्न और निरन्तर सीताराम जी का स्मरण कर रहे हैं। उन भायण को प्रभा का अयन समझकर ही उनके पिता-माता बहुत प्रसन्न हुए।

कैशोरमासाद्य वयश्च बालः शनैः शनैः स्वां सुषमां पुपोष।
वसन्त आयात उदग्रतेजा यथा सपुष्पो हि तरुर्नवीनः॥19॥

धीरे-धीरे वह बालक किशोर अवस्था को प्राप्त करके सौन्दर्य को प्राप्त करने लगा, जैसे वसन्त के आने पर नवीन पुष्पों से युक्त वृक्ष सुशोभित होता है।

मन्दस्मितैः सुस्मितचन्द्रवक्त्रं बिभ्राणमीड्यं ननु सुभ्रवस्त्रम्।
चकर्ष नारीजनचित्तवृत्तिं बालः स्वगात्रैः सुभगप्रकृत्या॥20॥

बालक मन्द-मन्द मुस्कुराता था, जिसका मुख चन्द्रमा के समान खिल जाता था और वह अपने स्वभाव से नारी जन के चित्त वृत्तियों के आकर्षण का केन्द्र बन गया।

काचित् सकाञ्ची ननु चारु शीला तत्पादपद्मैकमनोज्ञभृङ्गी।
बभूव तस्मिन् नितरां निसक्ता सा योगमायेव निसृष्टकाया॥21॥

इस प्रकार सुन्दर जूड़ा धारण की हुई किशोरी जो साक्षात् भगवान् की माया ही थी और यह था कि जो पूर्व की विश्वमोहिनी थी, वही इस बार भी नारद के द्वितीय अवतार में भी उनकी जीवन में आ गयी।

सा वै किशोरी चकिता चकोरी ध्यानस्थिता भायणचन्द्रिरस्य।
शान्तिं न लेभे च निरीक्ष्यमाणा समीक्ष्यमाणापि तदीयभावम्॥22॥

वह किशोरी भायण रूप चन्द्रमा की चकोरी बनकर उन्हें निरन्तर निहारती रही और उनको निहारकर भी वह तृप्त नहीं होती थी।

माध्यस्थ्यमेवाथ तयोश्चकार नारायणो बोधपरायणश्च।
प्रगृह्य तन्मातुलमञ्जुवेषं सर्वं मुदा साधितवान् सुदेशम्॥23॥

इसके अनन्तर भायण के मामा का वेश धरके स्वयं नारायण ही दोनों की मध्यस्थता करने लगे और दोनों के बीच के घटकत्व को निभाया और सब कुछ सम्पन्न कराया।

मातुः पितुर्ग्राम्यजनस्य चैव निदेशमासाद्य महानुभावः।
जगाम काशीं किल भायणोऽसा-वध्येतुकामो ननु शास्त्रपुञ्जम्॥24॥

इस प्रकार माता पिता और ग्राम्य जनों की आज्ञा पाकर भायण शास्त्रों को पढ़ने के लिये काशी गये।

अन्वव्रजत् तं च किशोरिकाऽसौ कठोरचन्द्रं ननु रोहिणीव।
छायेव देहं नितरां विदेहं समुल्लसत्सद्गुणचारुगेहम्॥25॥

विदेह होते हुए भी सुन्दर सद्गुणों के भँवर स्वरूप भायण के पीछे-पीछे वह किशोरी भी काशी की ओर चल पड़ी। जैसे शरीर का अनुगमन छाया करती है और जैसे पूर्णचन्द्रमा का अनुगमन रोहिणी करती है।

काशीं समागत्य स पञ्चगङ्गाघट्टे निमज्याथ सुरापगायाम्।
विधाय सन्ध्यां नितरामबन्ध्यां ययौ कुटीरं यतिराजभर्तुः॥26॥

इसके अनन्तर भायण ने काशी पहुँचकर पञ्चगङ्गा घाट पर गङ्गा जी में स्नान करके निरन्तर फल देने वाली सन्ध्या करके यतिराजों के राजा रामानन्दाचार्य जी के कुटी में प्रवेश किया।

ददर्श तं भायण आदिदेवं गुणालयं स्वस्त्ययनं दृशीनाम्।
गौरप्रभाव्रीडितकाञ्चनाद्रिं मुखाम्बुजश्रीजितचन्द्रकान्तिम्॥27॥

भायण ने उस कुटी में आदिदेव भगवान् राम के सम्पूर्ण गुणों के आगार नेत्रों के स्वस्त्ययन अपने गौर शरीर की कान्ति से सुमेरु पर्वत को भी लज्जित कर रहे मुखकमल की शोभा से चन्द्रमा की कान्ति को भी जीतने वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को देखा।

त्रिदण्डमंसे किल दक्षिणे वै वक्षस्यथो श्रीतुलसीसुमालाम्।
कमण्डलुं वामकरे दधानं मनोहरं चाजिनकं वसानम् ॥28॥

और अपने दाहिने स्कन्ध पर त्रिदण्ड धारण किये हुये, बाये हांथ में कमण्डलु लिये हुए और मृगचर्म धारण किये हुये, ऐसे जगद्गुरु जी को भायण ने देखा।

धृतोपवीतं प्रभया परीतं शिखावलं वल्गुमुखस्मितञ्च।
राजीवनेत्रं सुगुणैकपात्रं विज्ञानमात्रं शुभसर्वगात्रम् ॥29॥

यज्ञोपवीत धारण किये हुये, शोभा से युक्त और लालकमल जैसे नेत्र वाले करुणा के सद्गुणों के एकमात्र पात्र विज्ञानस्वरूप सपूर्ण सुन्दर अङ्गों वाले जगद्गुरु जी को भायण ने निहारा।

श्रीराममन्त्रं प्रमुदा जपन्तं त्रिदण्डवन्तं शुचिशीलवन्तम्।
महानुभावं सरलस्वभावं महर्षिसाहस्रसमप्रभावम् ॥30॥

प्रसन्नता से श्रीराम नाम का जप करते हुए त्रिदण्ड धारण किये हुए पवित्र शीलवान्, महानुभाव, सरल स्वभाव वाले और सहस्रों महर्षियों के समान प्रभाव वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को भायण ने निहारा।

निरीक्ष्य वै तापसशेखरञ्च स भायणो भायनमेनमीड्यम्।
पपात साष्टाङ्गमथो पदाब्जे हे नाथ पाहीति वचो ब्रुवाणः ॥31॥

इस प्रकार प्रभावों के पुञ्ज जगद्गुरु जी को प्रेम से निहारकर भायण हे नाथ! रक्षा कीजिये, इस प्रकार बोलकर उनके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किये।

स तं समुत्थाप्य पदप्रपन्नं तापैर्विषण्णं शुचिमप्रसन्नम्।
आशिर्वचोभिः समलञ्चकार ब्रह्मप्रियो ब्राह्मणसूनुवर्यम् ॥32॥

इस प्रकार अपने चरण में प्रपन्न भायण को उठाकर जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी ने आशीर्वाद वचनों से उन्हें सजाया क्योंकि रामानन्दाचार्य स्वयं ब्राह्मणों के प्रिय हैं, और प्रणाम कर्ता भी ब्राह्मणराज का पुत्र हैं।

निरीक्ष्य तं विप्रसुतं श्रुतिज्ञस्तत्पञ्चसंस्कारविधिं चकार।
ददौ च तस्मै किल राममन्त्रदीक्षां समासादितसत्प्रतीक्षाम्॥33॥

इस प्रकार कुमार को अपनी शरण में देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उनका पञ्चसंस्कार किया और उन्हें परमात्मा की प्रतीक्षा जहाँ विराजमान है ऐसा श्री राममन्त्र दिया।

तस्मिन्नहन्येव समागतायै तस्यै किशोर्यै च महानुभावः।
स पञ्चसंस्कारविधानवत्यै श्रीराममन्त्रस्य ददौ हि दीक्षाम्॥34॥

उसी दिन वहाँ आयी हुयी उस किशोरी को भी जिसका पञ्चसंस्कार करके जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी ने श्रीराममन्त्र की दीक्षा दे दी।

उवाच तौ ज्ञातसमस्तवृत्तो जगद्गुरुर्भावितभाग्यभूषौ।
सद्दम्पती वाक्यमिदं मनोज्ञं विश्वासयन् मञ्जुलमानसौ च॥35॥

इसके पश्चात् अपने उनके निर्मल मन को विश्वास दिलाते हुए उन भाग्यवान् दम्पतियों के सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर रामनन्दाचार्य जी ने इस प्रकार कहा।

अवैमि वां नारदयोगमाये गृहीतकाये नितराममाये।
तद् गच्छतं स्वीयगृहे प्रसन्ने विधाय वैवाहिकमेवमास्तम्॥36॥

मैं ये जान गया हूँ, तुम नारद हो और ये विश्वमाहिनी योगमाया। अब तुम दोनों ने माया रहित होते हुए भी फिर मानव शरीर धारण किया है। जाओ अपने घर प्रसन्न हो करके वैवाहिक विधि करो और विवाह की विधि से और दाम्पत्य भाव से वन में जाकर भजन करो।

दाम्पत्यभावेन विराजमानौ सब्रह्मचर्यौ शुभगौ तथार्यौ।
षड्मासमेवाथ नियम्य गाः स्वा भूयः समागच्छतमत्र शान्तौ॥37॥

अब अपने घर जाओ। छह मास दाम्पत्य भाव में रहते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करो और फिर शान्त मन से छह महीने के पश्चात् मेरे पास चले आना।

भयं न कार्यं युवयोः परीक्षा ससत्प्रतीक्षा भविता महान्तौ।
श्रेयो विधास्यत्यजपौत्र एव प्रेयोऽपि नूनं युवयोः खरारिः॥38॥

तुम लोग भय मत करना। यह तुम्हारी मध्य में बहुत बड़ी परीक्षा होगी और महाराज अज के पौत्र खर के शत्रु भगवान् राम तुम दोनों के श्रेय और प्रेय दोनों की रक्षा करेंगे।

नाम्ना जातः किल सुरसुरानन्द इत्येव धीमान्
सैषा देवी खलु सुरसुरी तावकीना च भार्या।
गत्वाऽरण्यं विजितमनसौ भावयन्तौ खरारिं
शीघ्रं काशीं स्मरहरपुरीं द्रक्ष्यथो वीतशोकौ ॥39॥

चिन्ता मत करो। आज से तुम्हारा नाम सुर सुरानन्द होगा, और यह सुरसुरी रहेंगी और वन में जाकर अपने मन को जीतकर भगवान् की भावना करते हुए शोकरहित होकर तुम लोग शीघ्र ही मेरी काशी पुरी में आ जाओगे।

इति निदिश्य गुरुर्नवदम्पती नयननीरकृताभिसवावुभौ।
निजपदाम्बुजयोर्यतिशेखरः स विससर्ज गृहाय यथासुखम् ॥40॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उन नवदम्पती को घर जाने की आज्ञा दी। जिन्होंने उनके चरण कमलों में अपने नेत्रों से अभिषेक कर दिया था।

काशीत आगत्य गृहं स्वकीयं तौ चक्रतुर्ब्रह्मविवाहमीड्यम्।
प्रहर्षयामासतुरात्मकृत्यैर्निजं कुटुम्बद्वयमाप्तकामौ ॥41॥

इस प्रकार जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य के निर्देश से काशी से अपने घर आकर दोनों सुरसुरी एवं सुरसुरानन्द जी ने ब्रह्मविवाह कर लिया और दानों की कामनायें प्राप्त हुईं। दोनों ने अपने कृत्यों से दोनों परिवारों को प्रसन्न कर लिया।

तारुण्यवन्तावपि रूपवन्तौ दाम्पत्यप्रेमामृतसिन्धुमन्तौ।
गुरोर्निदेशं शिरसा वहन्तौ तौ चेरतुर्वै व्रतमासिधारम् ॥42॥

यद्यपि दोनों युवावस्था में थे, दानों रूपवान् भी थे और दोनों दाम्पत्य प्रेमामृत के सागर भी थे, अर्थात् दोनों के मन में दाम्पत्य भाव था फिर भी गुरुदेव के आदेशों को सिर से पालन करते हुए दोनों असिधारा व्रत का पालन किया अर्थात् साथ रहते हुए भी ब्रह्मचर्य के नियम को नहीं तोड़ा। यही असिधारा व्रत है।

पित्रोरनुज्ञां समवाप्य धीरावापृच्छ्य लोकान् सुहृदः स्वकीयान्।
तावीशमाराधयितुं खरारिं वनं प्रयातौ मनुदम्पती वा ॥43॥

अब दोनों ने अपने पिता-माता की आज्ञा प्राप्त कर ली और अपने मित्र वर्गों से पूँछ लिया और खर को नष्ट करने वाले भगवान् श्रीराम की आराधना करने के लिये वे उसी प्रकार वन की ओर चल दिये जैसे मनु शतरूपा भगवान् की आराधना के लिये गये थे।

तौ दम्पती भग्नमनोविकारौ श्रीरामपादाम्बुजप्रेमसारौ।
प्रजग्मतुर्वै विगलद्विकारौ तपोधनौ भग्नभवीयभारौ ॥44॥

इन दोनों के मन में किसी प्रकार का विकार नहीं था, श्रीराम की सेवा ही उनके जीवन का सार था। इनके मन में किसी भी प्रकार के विहार की वासना नहीं थी, संसार का भार नष्ट कर चुके थे, इस प्रकार वे वन को जा रहे थे।

इमौ युवानौ विगताभिमानौ व्रतं चरन्तौ किल वार्धकस्य।
इत्येव लोका निगदन्त एतौ हा हन्त हा हन्त गिरा विलेपुः ॥45॥

अरे ये दोनों पति पत्नी किसी भी मन के विकार से रहित हैं और युवक होकर के भी वे वृद्धोचित व्रत कर रहे हैं, इस प्रकार लोग इनके प्रति ऐसे वाक्य कहते हुए हाय-हाय कहकर विलाप करने लगे।

क्वचित् प्रसूनैः परिवृष्यमाणौ क्वचित् प्रवान्तौ विभयाऽभिवान्तौ।
क्वचित् क्वचिन् मञ्जुलकन्दमूलैः फलादिभिस्तौ परिवर्ध्यमानौ ॥46॥

कहीं-कहीं पर लोगों द्वारा पुष्पवृष्टि से युक्त होते हुए, कहीं-कहीं प्रयाण करते हुए और शोभा से सूचित होते हुए, कहीं-कहीं पर मधुर कन्दमूल और फलादि से भूख मिटाते हुए दम्पती वन को जा रहे थे।

स्वेनेव मान्येन मनोरथेन प्रजग्मतुस्तौ विपिनं प्रघोरम्।
अघोरसन्दापितदिव्यदिक्षौ श्रीरामपादाम्बुजसत्प्रतीक्षौ ॥47॥

इस प्रकार अपने दिव्य मनोरथों से वे वन को प्राप्त हो गये और शिवजी ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी से निवेदन करके उनको दिव्य दीक्षा दिलायी और जगद्गुरु की मानसी दिव्य दीक्षा प्राप्त करके श्रीराम जी के चरणकमल की सुन्दर प्रतीक्षा करते हुये वे वन में विराजमान हो गये।

विराजमानौ विपिने निपाने तपस्विनां पावनमानसानाम्।
विचक्रतुर्नो नितरां प्रशान्तौ तपोधनौ मन्त्रजपेन दान्तौ ॥48॥

इस प्रकार से उस सुन्दर वन में जो पवित्र मन वाले तपस्वियों का निपान स्थान स्वरूप था, अर्थात् प्याऊ के स्थान जैसा पावन था, ऐसे वन में विराजमान वे दम्पती अत्यन्त शान्त थे और श्रीरामनाम के मन्त्र के जप से उनके इन्द्रियों का चाञ्चल्य समाप्त हो चुका था।

सदा जपन्तौ रघुनाथनाम सदा स्मरन्तौ रघुनाथरूपम्।
सदा मनन्तौ रघुनाथलीलास्तावूषतुर्घोरवने मुदैव ॥49॥

रघुनाथ जी के नाम का निरन्तर जप करते हुए, रघुनाथ जी के रूप का निरन्तर स्मरण करते हुए, रघुनाथ जी की लीला का निरन्तर मनन करते हुए, वे नरदम्पती घोर वन में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

पौर्वाह्णिकं तौ विधिवद् विधाय माध्याह्निकं चापि सुखेन कृत्वा।
सायाह्निकं कर्म सुखं समाप्य तौ निन्यतुः कालमपूर्वकृत्यौ ॥50॥

वे दोनों द्विज दम्पती पूर्वकालिक नियम को विधिवत् करके एवं मध्यान्ह काल के समय को सुखपूर्वक समाप्त करके सायङ्काल के भी समय को सम्पन्न करके अपने अद्भुत कृत्यों से समय को बिताने लगे।

अमावसन्तौ द्विजदम्पती तौ विभासमाव्रीडितकोटिकामौ।
स्वप्नेऽपि नो संस्मरतुर्बुभुक्षामली यथा चम्पकपुष्पगुच्छम् ॥51॥

एक साथ रहते हुए भी अपनी शोभा से करोड़ों कामों को लज्जित करते हुए भी वे दोनों ब्राह्मण दम्पती स्वप्न में भी भोग वासना को उसी प्रकार नहीं स्मरण किये जैसे भ्रमर और भ्रमरी चम्पा के पुष्प गुच्छ को नहीं स्मरण कर पाते।

निरीक्ष्य तौ रामपदारविन्दभृङ्गायमाणौ गलिताभिमानौ।
सिद्धाः प्रसिद्धाः प्रशशंसुरेतौ प्रोज्झद्विकारौ हरिभक्तिसारौ ॥52॥

इस प्रकार विकाररहित भगवत् भक्ति ही जिनका सारतत्त्व है, ऐसे इन तपस्वी द्विज दम्पती को निहारकर सभी साधक सिद्ध इनकी प्रशंसा करने लगे।

जयत्यसौ स्वामिवरस्तु रामानन्दोऽभिनद्यः किल सर्वनृणाम्।
अवाप्य यत्पादरजःप्रसादं भग्नाऽवसादौ तपतः किशोरौ ॥53॥

जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी की जय हो, जिनकी कृपा को प्राप्त करके किशोरावस्था में भी किसी प्रकार का अवसाद प्राप्त न करते हुए इस प्रकार द्विज दम्पती तपस्या कर रहे हैं।

यत् तीक्ष्णबाणाऽभिहताश्च पूर्वे जहुः स्वधैर्यं किल दुर्निवार्यम्।
तस्यैव कामस्य च पञ्चबाणाः स्प्रष्टुं न शेकुर्द्विजदम्पती वै॥54॥

अरे जिस काम के बाण से अभिहत होकर बड़े-बड़े धैर्यवान् अपना धैर्य छोड़ दिये, उसी काम के पाँचों बाण द्विज दम्पती को नहीं छू सके।

शुची सुशीलौ स्मृतरामलीलौ वने वसन्तौ नितरां तपन्तौ।
श्रीरामनामैव सदा जपन्तौ विजित्य कामं स्म सुखं शयाते॥55॥

ये सुन्दर शील वाले श्रीराम जी की लीला का स्मरण करते हुए वन में बसते हुए तपस्या करते हुए दुर्निवार्य काम को भी जीत लिये हैं।

सुरसुरानन्द इह देवऋषिर्भारताजिरे परिलब्धतनुः।
सुरसुरी विश्वमोहिनी बभौ तदिमौ वनेऽपि वसतौ दान्तौ॥56॥

स्वयं सुरसुरानन्द जी साक्षात् नारद हैं, वे भारत भूमि में आये हैं और विश्वमोहिनी सुरसुरी रूप में हैं, ये दोनों इस वन में निर्विकार रूप से रह रहे हैं।

न हि देववृन्दललनानिकरो मन एतयोश्च मथितुं प्रभवौ।
रघुनाथरूपरसभावनयोः परिक्लृप्तरामरसचिन्तनयोः॥57॥

आश्चर्य यह है श्री रामनाम रस की भावना करने वाले और श्री रामनाम के रस का चिन्तन करने वाले दोनों द्विज दम्पती के मन को देवललनाओं का समूह भी विकृत नहीं कर पाया।

तदलं प्रवञ्चनविधानगणैर्मनसाप्यगम्यमनघं चरितम्।
तपसा पवित्रतममप्यनयो रघुवीरचारुपदकञ्जजुषोः॥58॥

इसलिये अब राम जी के चरण कमल में रहने वाले इन लोगों के तपस्या से पवित्र और मन से भी ना प्राप्त किये जाने वाले चरित्र को धारण करते हुये इन दोनों का प्रतारण करना सर्वथा विपरीत होगा।

रघुनाथनाम जपतो नरयो रघुनाथरूपमिह चिन्तयतोः।
रघुनाथपादरज आवहतोः कुत एव भीतिरथ साधकयोः॥59॥

जो निरन्तर राम जी का नाम जप रहे हैं और निरन्तर राम जी के रूप का चिन्तन कर रहे हैं, और निरन्तर श्रीराम जी की चरण कमल की धूलि को मस्तक पर धारण कर रहे हैं, उन साधकों के लिए किस प्रकार की भीति हो सकती है।

द्विजदम्पती च लसतां विपिने जयतां सदैव हरिभक्तवरौ।
भजतामिमौ च भगवन्तमहो भवतां भविष्णुमनसावनघौ॥60॥

इस प्रकार ये द्विज दम्पती इस वन में सुशोभित रहें और इनकी निरन्तर जय होती रहे। ये निरन्तर भगवान् का भजन करते रहें और वे अपने साधनपथ पर विजयी होते रहें।

इत्येवमुक्त्वा सुरसिद्धसङ्घाः प्रसूनकैः नन्दनसम्भवैश्च।
समाकिरंस्तौ विपिने तपन्तौ नृदम्पती राघवसद्गती च॥61॥

इस प्रकार से श्री सुरसुरानन्द एवं सुरसुरी की प्रशंसा करते हुये देवताओं सिद्धसङ्घों ने नन्दनवन के पुष्पों से उन्हें ढक दिया। क्योंकि वे राम जी के शरणागति के आश्रय में थे।

सुरसुरीमेकदा दैत्यगणाः कलिताश्च शस्त्रनिकरा मलिनाः।
परितो जिघृक्षव उदारधियं समगुर्नितान्तकुटिला विपिने॥62॥

एक बार वन में बैठे हुये सुरसुरी को ग्रहण करने के लिये अनेक अस्त्र शस्त्र लिये हुये दुष्ट प्रवृत्ति के लोग उन्हें घेर लिये।

परिवीक्ष्य दुष्टनिकरान् वनिता बिभयाञ्चकार न हि चेतसि सा।
मनसा स्मरज्जनकजादयितं रघुनन्दनञ्च धनुरायुधकम्॥63॥

सुरसुरी जी दुष्टों को सम्मुख आते हुए देखकर भी मन में नहीं डरीं और धनुर्बाण धारण किये हुए सीतापति भगवान् राम का स्मरण कीं।

रघुनाथ एहि धृतबाणधनुर्जहि दानवान् दलितमानवकान्।
व्रतमेव रक्ष मम चैकपतिं परिपालयाऽऽशु विरुदं विदितम्॥64॥

हे रघुनाथ जी! आप आइये, इन मानवों का भक्षण करने वाले दानवों को मार डालिये, मेरे पवित्र पतिव्रत की रक्षा कर लीजिये और अपने विदित विरुद का पालन कीजिये।

सुरसुरीवाक्यकरुणार्द्रमना जनकात्मजापतिरनाथगतिः।
अवितुं व्रतं कुसुरगेहजुषः खरभिद् दधार नरसिंहवपुः॥65॥

इस प्रकार सुरसुरी का करुण वाक्य सुनकर भगवान् राम भी करुणार्द्र मन वाले हो गये और ब्राह्मण पत्नी के व्रत की रक्षा करने के लिए खर के शत्रु भगवान् श्रीराम ने नरसिंह रूप धारण कर लिया।

नरसिंहरूपमिदमाकलयन् प्रमुदा जगाम रघुनाथप्रभुः।
परिदातुकाम इह चाप्यभयं निजपादपद्ममुभयोर्भजतोः॥66॥

भगवान् ने नरसिंह रूप धारण कर लिया और अपने भक्तों को अभयदान देने के लिये वो वहाँ उपस्थित हो गये।

क्षणतो विदार्य दनुजाप्तबलं रिपुसैन्यमेव नृहरिर्भगवान्।
हरिवद् जगर्ज भृकुटीकुटिलो जनयन् भयञ्च भयकृन्मनसाम्॥67॥

एक क्षण में नृसिंह देव ने इनके राक्षसों की सेना को समाप्त कर दिया। और जो लोगों को भय दे रहे थे उनमें भय का सञ्चार करते हुए नरसिंह ने सिंह गर्जना की।

पविकोटिकोटिसमतीव्रनखैः क्षणतोऽप्युरांसि बलतो द्विषताम्।
परिदारयन् दलितदुष्टबलो निबभौ च तत्र नृहरिर्भगवान्॥68॥

एक क्षण में ही अपने करोड़ों–करोड़ो वज्र से भी कठिन नखों द्वारा शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण करते हुए भगवान् नरसिंह बहुत सुशोभित हुए।

तनुरोमराजिविभया भगवान् परिभूतकोटिशशिचन्द्रकलः।
समभूद् भयानकतनुस्तपतोः परिदातुमेव सुखमात्तबलः॥69॥

अपने शरीर के रोम की कान्ति से करोड़ों–करोड़ों चन्द्रमा की कला को जीतने वाले भगवान् तपस्या करने वाले द्विज दम्पती को सुख देने के लिए आज बहुत सुन्दर लगे।

रिपुसैन्यमेव निमिषेण विभुः परिनाश्य चाऽस्य तपसां जलधेः।
अभयं प्रदाय ललनैकजुषः प्रजगाम राम इह दीनहितः॥70॥

इस प्रकार से राक्षसों की सेना को समाप्त करके और तपस्या के निधि सुरसुरानन्द जी को पत्नी सहित अभय दान देकर भगवान् राम साकेत लोक अर्थात् अपने धाम को चले गये।

सती निरीक्ष्यैव कृपां कृपानिधेर्विलोक्य चात्मानमथो सुरक्षितम्।
बभाष एनं मधुराक्षरं पतिं पतिव्रतज्ञा पततां च पावनी॥71॥

इस प्रकार पतितों को एकमात्र पावन करने वाली सुरसुरी जी ने भगवान् श्रीराम की कृपा देखी और स्वयं को सुरक्षित देखा। फिर अपने पतिव्रत को जानने वाली सती अपने पति सुरसुरानन्द जी से मधुराक्षर में बोलीं।

सद्ब्रह्मचर्यं चरतोः किलावयोर्मासा व्यतीताः षडहो सुदुर्गमाः।
दत्ता परीक्षा हरये त्वया मया सानन्दमुत्तीर्णतया व्यवस्थितौ॥72॥

भगवन् ब्रह्मचर्य का पालने करते हुये आपके और मेरे छह महीने बीत गये मैंने और आपने भगवान् को परीक्षा दे दी और हम उत्तीर्ण हो गये।

त्वं नारदो वेदविशारदश्च कलौ समागत्य करालकाले।
जगद्गुरुं स्वामिवरं च रामानन्दं समासेवितुमभ्युपेतः॥73॥

आप वेदविशारद नारद हैं, इस कराल काल वाले कलि में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की सेवा करने के लिए यहाँ आये हैं।

अहं च तस्यैव धनुर्धरस्य या योगमाया धृतनारिकाया।
सा विश्वमोहिन्यभिधानयुक्ता समागता सम्प्रति प्रीतिपुष्टा॥74॥

मैं ही नारी का स्वरूप धारण करके उन धनुर्धर श्रीराम जी की योग माया हूँ और जिसका नाम विश्वमोहिनी था, वही इस समय आ गयी।

षण्मासमेवाऽत्र भवत्सकाशं सद्ब्रह्मचर्यञ्च निषेवमाणा।
समावसं त्वत्पदपद्मपार्श्वे सम्प्रत्यहं गन्तुमितः समीहे॥75॥

मैं छह महीने पर्यन्त ब्रह्मचर्य के विधि से आपकी सेवा करते हुए आपके साथ रही। अब मेरा कार्यकाल पूरा हुआ। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

सुरसुरी चैवमविभाष्य पतिं समगात् सती हरिनिवासमथो।
सुरसुरानन्द इदमाप्य महो महसां निधिञ्च स गुरुं समगात्॥76॥

इस प्रकार अपने पति से कहकर सुरसुरी जी भगवान् के पास चली आईं और सुरसुरानन्द जी भी इस उत्सव को देखकर प्रसन्न होकर तेजो निधि अपने गुरु के पास चले गये।

सुरसुरानन्दमथ शिष्यवरं मतदोषमेत्य यतिराजवरः।
मनसा समर्च्य परिलिङ्ग्य शिशुं समवाप मोदमिव लब्धधनः ॥77॥

इस प्रकार से सुरसुरानन्द जी को प्राप्त करके अब यह देख करके भी इनके मन में कोई विकार नहीं है। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी भी उनके मन से पूजा करके हृदय से आलिङ्गन करके इतने प्रसन्न हुये जैसे कोई कृपण निर्धन अपने धन को प्राप्त कर प्रसन्न होता है।

तं पञ्चसंस्कारविधानतो वै विधाय वैराग्यनिधिं विरक्तम्।
नियुक्तवान् वैष्णवधर्मवृद्ध्यै कल्पद्रुमः सद्गुरुमोद एव ॥78॥

इस प्रकार सुरसुरानन्द जी को पञ्च संस्कार विधान से वैराग्य का सागर विरक्त बनाकर, उनको वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए नियुक्त किया क्योंकि सद्गुरु की प्रसन्नता ही कल्प वृक्ष है।

आहूयाऽथ जगद्गुरुः सुरसुरानन्दं विधेयं प्रियं
सर्वेषामनुश्रृण्वतां पदजुषां सम्यक् सतां धीमताम्।
प्रोवाचाऽमृतसम्मितं मतिमतां पाथेयमत्यद्भुतं
रामोपासकवल्लभं सुरगवीगव्यात्मकं मङ्गलम् ॥79॥

एकबार अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानन्दजी को निकट बुलाकर सभी सुन रहे अपने चरणसेवक विरक्तसन्तों के बीच अमृत के समान बुद्धिमानों के लिए अद्भुत पाथेयरूप एवं श्रीरामोपासकों को अत्यन्त प्रिय संस्कृत भाषा रूप कामधेनु के गव्य अर्थात् दुग्ध के समान परमङ्गल वचन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी बोले।

वेदान्तसर्वस्वमदभ्रबोधं श्रौतं कृतान्तं बुधनिर्विरोधम्।
श्रीरामपादाम्बुजसेवकानां सन्मङ्गलं मद्वचनं निबोध ॥80॥

हे सुरसुरानन्द! अब मेरा वह वचन धारण करो जो वेदान्त दर्शन का सर्वस्व है। जिसमें छिद्ररहित बोध है। जो विद्वानों का निर्विरोध वैदिक सिद्धान्त है। जो भगवान् श्रीराम के सेवकों के लिए परमकल्याणमय है।

वेदान्तहार्दं चिदचिद्विशिष्टाद्वैताख्यवादं किल निर्विवादम्।
त्वत्प्रीतये तं प्रवदामि वत्स समासतो वैष्णवभूतये भोः ॥81॥

हे वत्स! जो सम्पूर्ण वेदान्तों का हार्द है जो विद्वानों का भी निर्विवाद ध्येय है, वही चिदचिद्विशिष्टाद्वैतवाद तुम्हारी प्रसन्नता के लिए और वैष्णवों की चिन्तन सम्पत्ति के लिए मैं संक्षेप से कह रहा हूँ।

त्रीण्येव तत्त्वानि जगुर्विशिष्टाद्वैते महान्तो महिताश्च सन्तः।
रामं परब्रह्म चितं च जीवमचित्स्वरूपां प्रकृतिं हि मायाम्॥82॥

पूजनीय महान् सन्तजन विशिष्टाद्वैतवाद सिद्धान्त में तीन ही तत्त्व कहे हैं। यहाँ विशिष्ट तत्त्व हैं परब्रह्म भगवान् श्रीराम, विशेषण हैं–चित् जीव और अचित् प्रकृति इसी को ही माया कहते हैं।

उभे शरीरे ननु जीवमाये विशेषणे विश्वविभूषणस्य।
हरेः परब्रह्मण एव भौमीभर्तुर्जगज्जन्मलयादिकर्तुः॥83॥

जीव और माया ये दोनों विश्व के अलङ्कार स्वरूप जगत् के जन्म आदि के कारण सीतापति परब्रह्म भगवान् राम के शरीर रूप विशेषण हैं।

चिताऽचिता चोभयतो विशिष्टाद्वैतं परब्रह्म य किलाऽस्ति रामः।
तं यो वदत्येष स एव वादो मद्दर्शने वैदिकयुक्तिभिश्च॥84॥

चित् और अचित् इन दोनों से जो विशिष्ट अद्वैत परब्रह्म भगवान् श्रीराम हैं उन्हीं को वैदिक युक्तियों से व्यवस्थापित करता है, वही मेरे अर्थात् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के दर्शन में सिद्धान्तरूप विशिष्टाद्वैतवाद है।

त्रीणि प्रमाणानि मदीयवादे भ्राजन्त इड्यानि सनातनानि।
प्रत्यक्षमेकं ननु चानुमानं शब्दं तृतीयं श्रुतिमन्त्रमूलम्॥85॥

हमारे विशिष्टाद्वैतवाद में प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शाब्द ये तीन ही प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष का आधार है इन्द्रियों और विषयों का संयोग अनुमान का आधार है व्याप्तिज्ञान और शाब्द का आधार है वेद मन्त्र तथा वेदानुमोदित स्मृति, रामायण, महाभारत एवं पुराणादि का वाक्य।

जीवः प्रमाता गुरुभक्तिनिष्ठो रामः परब्रह्ममयः प्रमेयः।
प्रमाद्वयोः सेवकसेव्यभावज्ञानं च वेदान्तनये निदानम्॥86॥

सद्गुरु की भक्ति में निष्ठा रखने वाला जीव ही प्रमाता है और परब्रह्म स्वरूप भगवान् राम ही प्रमेय हैं। जीव और ब्रह्म के बीच सेवक सेव्यभाव सम्बन्ध का ज्ञान ही प्रमा है। यही वेदान्तदर्शन का रहस्य है।

द्वे ब्रह्मणी वै चिदचिद्विशिष्टे कार्यं तथा कारणमामनन्ति।
अद्वैतमेवात्र तयोर्विशिष्टाद्वैतं हि तद्वाद इहास्मदीयः ॥86॥

श्रुतियाँ दो ब्रह्मों का मनन करती हैं। एक कारण ब्रह्म दूसरा कार्य ब्रह्म। और दोनों ही चित् और अचित् से विशिष्ट रहते हैं इन्हीं दोनों विशिष्ट कारणकार्यब्रह्मों का अद्वैत अर्थात् ऐक्य है उसी का वाद हमारा विशिष्टाद्वैतवाद है।

सीता परब्रह्ममयी विभाति मद्दर्शने काचन कार्यरूपा।
यत्कारणं ब्रह्म स एव रामस्तयोरथाद्वैतमिहास्ति नित्यम् ॥88॥

हमारे दर्शन में सीताजी कार्यब्रह्म हैं और भगवान् राम कारणब्रह्म। ये दोनों ही चिदचिद्विशिष्ट हैं; उन्हीं दोनों विशिष्ट ब्रह्मों का अद्वैत ही विशिष्टाद्वैत है। "विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च विशिष्टे तयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्।"

शौक्ले यजुर्वेदमनौ न्यगादि पत्नीद्वयी भागवती भविष्णुः।
श्रीश्चापि लक्ष्मीर्ननु चैकत्रिंशे तयोर्न चैक्यं ननु वेदमन्त्रे ॥89॥

शुक्ल यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय में "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ" कहकर वेद मन्त्र ने स्पष्ट कह दिया कि श्री और लक्ष्मी ये दोनों भगवान् की पत्नियाँ हैं, इसलिए वेदमन्त्र के अनुसार श्री और लक्ष्मी में एकत्व की सम्भावना है ही नहीं।

श्रीरेव सीता रघुनाथपत्नी लब्धा महीपेन च यज्ञभूमौ।
कार्यं परब्रह्म वदन्ति तां वै यत्कारणं ब्रह्म स एव रामः ॥90॥

वही श्रीजी भगवान् श्रीरघुनाथजी की धर्मपत्नी श्रीसीताजी हैं जिन्हें जनक जी ने यज्ञभूमि से प्राप्त किया था। वही कार्यब्रह्म हैं और भगवान् राम कारणब्रह्म।

लक्ष्मीश्च नारायणधर्मपत्नी पृथक् स्वरूपा ननु जानकीतः।
श्रीरेव सीता मम दर्शने या सा संविदानन्दमयी प्रसिद्धा ॥91॥

लक्ष्मी जी श्रीमन्नारायण की धर्मपत्नी हैं जो सीताजी से सर्वथा पृथक् हैं। श्री है सीताजी हैं जो हमारे दर्शन में परब्रह्मस्वरूपिणी संविदामयी हैं।

श्रीसम्प्रदायोऽनघ एष रामानन्दस्य मेऽपास्तसमस्तदोषः।
अनादिरव्यक्तगतिर्गुणाढ्यो रामाङ्घ्रिपद्मार्चनसारभूतः ॥92॥

मुझ जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य का यही अनादि अव्यक्तगति गुणों से युक्त श्रीराम की उपासना तत्त्व से सम्पन्न यही अनादि वैदिक श्रीसम्प्रदाय है।

श्रीसम्प्रदाये त्वमवेहि सीतारामौ परब्रह्ममयेष्टदेवौ।
तत्पादपङ्केरुहपूर्णप्रेमा पुंसः पुमर्थः परमः प्रसिद्धः ॥93॥

श्री सम्प्रदाय में परब्रह्म श्रीसीताराम जी ही इष्टदेव है और उन युगल सरकार के श्रीचरणकमलों का पूर्णप्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है।

बालाश्च वृद्धा युवका युवत्यः सर्वेऽपि वर्णाः सकलाः समाश्च।
स्त्रियः पुमांसः किल षण्ढलोकाः सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो वै ॥94॥

बालक, वृद्ध, युवक, युवतियाँ, स्त्री, पुरुष, नपुंसक सभी वर्ण और सभी आश्रम के लोग भगवान् श्रीराम की प्रपत्ति अर्थात् शरणागति के अधिकारी हैं।

न जातिवादो न च वर्णवादो न वंशवादो न च लिङ्गवादः।
एको हि वादो ननु निर्विवादो रामाङ्घ्रिपद्मार्चनवाद एव ॥95॥

श्रीराम की सेवा में न तो जातिवाद है न वर्णवाद है, न वंशवाद है, न लिङ्गवाद है यहाँ एक ही वाद है, वह है- भगवान् राम की प्रसन्नता।

व्रतानि पञ्चैव श्रृणुष्व धीमन् सदैव सेव्यानि च वैष्णवाग्र्यैः।
श्रीकोशलेन्दोर्नवमी जनेर्वै कृष्णाऽष्टमी माधवजन्मनश्च ॥96॥
श्रीद्वादशीवामनजन्मनश्च नृसिंहप्राकट्यचतुर्दशी वै।
श्रीजानकीजन्मतिथिर्मनोज्ञा वैशाखशुक्ला नवमी हताऽघा ॥97॥

पाँच व्रत वैष्णवों द्वारा अवश्य करने चाहिएं श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णाष्टमी, वामनद्वादशी, नृसिंहचतुर्दशी और सीताजी की जन्मतिथि वैखास शुक्ल नवमी।

आहारशुद्धिः सततं विधेया श्रीवैष्णवै राघवसेवकैर्वै।
निवेद्य रामाय च तत्प्रसादः प्रसन्नवक्त्रेण हि भोजनीयः॥98॥

भगवान् श्रीराम के सेवक श्रीवैष्णवों को निरन्तर आहारशुद्धि करनी चाहिए, जो भी भोजन की सामग्री उपलब्ध हो उसे भगवान् श्रीसीताराम जी को निवेदित करके प्रसाद रूप में प्रसन्नमुख से ग्रहण करना चाहिए।

मांसञ्च मत्स्यं मदिरां मसूरमशास्त्रकं मैथुनमेव हित्वा।
श्रीरामपादाम्बुजपूतपोतो नरस्तरेद् गोष्पदवद् भवाब्धिम्॥99॥

माँस, मछली, मदिरा, मसूर की दाल, शास्त्रविरूद्ध मैथुन इन पञ्च मकरों को छोड़कर भगवान् श्रीराम के चरणकमल रूप पवित्र जलयान द्वारा साधक संसार सागर को गोखुर की भाँति तर सकता है अर्थात् पार कर सकता है।

न भक्षयेद् वै लशुनं पलाण्डुं न ग्रञ्जनं रामपदाब्जनिष्ठः।
नाऽनर्पितं जानकिबल्लभाय भुञ्जीत भोज्यं यदि चेत् सुधा स्यात्॥100॥

श्रीरामचरणसेवक को लहसुन, प्याज, गाजर नहीं खाना चाहिए और यदि अमृत भी हो तो भी भगवान् को भोग लगाये बिना कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए।

मन्त्रत्रयं लक्ष्मणपूर्वजस्य श्रीसम्प्रदाये गुरुभिर्न्यगादि।
षडर्णकं द्वादशवर्णकञ्च द्वात्रिंशदर्णं चरमं मनुज्ञैः॥101॥

श्रीसम्प्रदाय में मन्त्रवेत्ता सद्गुरुओं द्वारा श्रीराम के तीन मन्त्र कहे गये हैं– षडक्षर श्रीराममन्त्रराज तारकमन्त्र, द्वादशाक्षर युगलसीताराममन्त्र और बत्तीस अक्षरों से युक्त चरममन्त्र।

नामैव जाप्यं जगदेकभर्तुर्द्विवर्णकं वा चतुरक्षरं वा।
कलौ युगे नामजपः प्रधानो गौणानि चान्यानि सुसाधनानि॥102॥

भगवान् श्रीराम का नाम जप ही करना चाहिए अपनी रुचि के अनुसार चाहे राम यह दो अक्षरका नाम हो या "सीताराम" यह चार अक्षर का नाम हो। क्योंकि कलियुग में भगवान् श्रीसीताराम जी का नाम ही प्रधान है।

सत्ख्यातिवादो ननु दर्शने मे सत्यं जगन्नैव कदापि मिथ्या।
यद्रामचन्द्रेण विचार्य सृष्टं कालत्रये तच्च कथं मृषा स्यात्॥103॥

हमारे रामानन्द दर्शन में सत्ख्यातिवाद है, यह जगत् सत्य है, असत्य नहीं। भला विचार करो जिसकी रचना भगवान् ने की हो वह त्रिकाल में भी मिथ्या हो सकता है?

सुरसुरानन्दमुपदिश्य गुरुर्विससर्ज तीर्थचरणाय परम्।
स च सद्गुरोश्चरणपद्मरजः शिरसेव सम्बलमुदूह्य ययौ॥104॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने अपने शिष्य सुरसुरानन्द जी को उपदेश देकर उन्हें तीर्थ यात्रा के लिए भेज दिया। सुरसुरानन्दजी भी सद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के श्रीचरणकमल की धूलि को पाथेय मान कर सिर से धारण करके तीर्थयात्रा के लिए चले गये।

पथि व्रजन् स्वामिवरश्च केनचिद् दलैस्तुलस्या सहितं सहाऽऽमिषम्।
वटं प्रसादेत्यभिधाय चार्पितं प्रसादबुद्ध्या बुभुजेऽविचारयन्॥105॥

मार्ग में जाते हुए स्वामी सुरसुरानन्द जी को किसी दुष्ट के द्वारा तुलसीदास के सहित माँस से युक्त बड़ा प्रसाद कहकर दिया गया और सुरसुरानन्दजी ने भी उसे प्रसाद की बुद्धि से बिना विचार किये पा लिया।

शिष्यास्तदीयास्तदनुव्रता वै वटं चखादुः सकलञ्जमेव।
सन्तर्ज्यमाना गुरुणा च वेमुर्मांसेन युक्तं वटकं च पूति॥106॥

सुरसुरानन्दजी के शिष्यों ने उन्हीं का अनुगमन करते हुए माँस से युक्त बड़ा खा लिया, गुरुदेव के डाँटने पर उन्होंने खाया हुआ बड़ा उगला तो वह माँस से युक्त था और उसमें से दुर्गन्ध निकल रही थी।

सहसा कदन्नमिदमार्तिहरो विहसन् ववाम गुरुरात्तगुणः।
तदभूत् सुमं च तुलसीकलितं जगदुत्तरं हि महतां चरितम्॥107॥

उस दूषित अन्न को आर्तिहरी सद्गुरु सुरसुरानन्दजी ने हँसते हुए सहसा उगल दिया। वह माँसयुक्त खाया हुआ बड़ा स्वामी जी के उगलने पर तुलसीदल और पुष्प में परिणत होकर नीचे गिर गया। वस्तुतः महापुरुषों का चरित्र लोकोत्तर ही होता है।

व्यकिरन् प्रसूननिकरैर्विबुधाः सुरसुरानन्दमभिलब्धमुदः।
स च तीर्थसेवनविधेर्विरतो गुरुपादपद्मनिलयं पुनरैत्॥108॥

देवताओं ने प्रसन्न होकर स्वामी सुरसुरानन्दजी को पुष्पों से ढक दिया और सुरसुरानन्दजी ने भी तीर्थयात्रा को समाप्त करके सद्गुरु स्वामी श्रीरामान्दाचार्यजी के चरण कमलों में फिर अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गस्त्रयोदशो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविराम-
भद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये त्रयोदशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ चतुर्दशः सर्गः॥

शङ्करोऽप्यघवतां भयङ्करो लोकशङ्कर उदस्तकिंस्मरः।
सेवितुं त्रिजगतां गुरोः पदं भारताऽवनिमथाऽगमत् पुनः॥01॥

इसके अनन्तर पापियों के लिये भयङ्कर लोक का कल्याण करने वाले दुष्ट काम को नष्ट करनेवाले भूतभावन भगवान् शङ्कर ने भी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के चरणकमल की सेवा करने के लिए भारतभूमि में फिर अवतार लिया।

चिन्तयन् स निजपौर्वकालिकं मोहिनीसमवमोहनं धियः।
धावनं च जगतीह शुष्मिणो मोहिनीं समवश्रित्य गामिव॥02॥

शङ्कर जी ने अपने पूर्वकालिक वृत्तान्त का स्मरण किया जब मोहिनी माया के द्वारा उनकी बुद्धि का मोहन कर लिया गया था। और जब गौ के पीछे-पीछे बैल की भाँति शङ्कर जी मोहिनी के पीछे-पीछे जगत् में इधर-उधर दौड़े थे।

व्रीडितो हृदि शशाङ्कशेखरो भग्नभा दिवसदीपको यथा।
भावयन् किमपि भाविभावितं मौनमास्त मुनिवृन्दवन्दितः॥03॥

इस वृत्तान्त का चिन्तन करते हुए दिवसकालीन दीपक की भाँति जिनकी प्रभा नष्ट हो गयी है, ऐसे चन्द्रशेखर शङ्कर मन में बहुत लज्जित हुए और भावी घटना की संरचना का विचार करके मुनिवृन्दों से वन्दित शङ्कर जी मौन रह गये।

भारते सकलभारते न्वहं कस्यचिद् द्विजवरस्य चान्वये।
सम्भवेयमनघां तनुं वहन् दर्शयेयममलां गतिं भवे॥04॥

वे विचार करने लगे कि सम्पूर्ण ज्ञान से सम्पन्न भारत में, किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के पवित्र कुल में, मैं श्रेष्ठ शरीर धारण करके जन्म लूँ और लोगों को अपनी निर्मल गति का दर्शन कराऊँ।

ब्रह्मवर्चसमयं वपुर्वहन् हस्तिवर्चसमये कलौ युगे।
स्पष्टयेय मुनिवर्यवन्दितं भावनं भगवतो मुदा न्वहम्॥05॥

मैं ब्रह्मचर्य से सुन्दर पूजित शरीर को धारण करते हुए, हाथी के समान तेजस्वी कलिकाल में भी उदार ब्रह्मवर्चस का आश्रय करते हुए, भगवान् की भावना का विभावन करूँ अर्थात् मन में चिन्तन करूँ।

ब्रह्मवर्चसमयीं द्विजन्मनो दिव्यभव्यतनुमुद्वहन् न्वहम्।
तोषयेयमनघं जगद्गुरुं धन्यता भवतु जीवनस्य मे॥06॥

और मैं ब्रह्मवर्चस से युक्त ब्राह्मण का दिव्य शरीर धारण करके जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को सन्तुष्ट कर लूँ, जिससे मेरे जीवन की धन्यता हो जाए।

यत्कृतेन गुरुरावहेन्मुदं तस्य जन्म जगतीह पावनम्।
सैव धन्य इह भाग्यभाजनं लोकपालनुतपादपङ्कजः॥07॥

जिसके कृत्य से गुरुदेव प्रसन्न हो जायें, उसी का जन्म इस जगत् में पावन है, वही धन्य है, वही भाग्य का पात्र है और लोकपाल उसी के चरणकमल का वन्दन करते हैं।

पादपद्मरजसा जगद्गुरोर्मार्जयेय रज उल्बणं न्वहम्।
वैष्णवैः समनुलालितोऽनिशं यापयेय समयं सुखावहम्॥08॥

जगद्गुरु जी के चरण-कमल की रज से मैं अपने रजोगुण को नष्ट कर दूँ, और वैष्णवों के द्वारा दुलारा जाता हुआ मैं इस अपने समय को सुखपूर्वक बिताऊँ।

एवमेव मनसा विचिन्त्य वै भूतभावन उदस्तकामनः।
क्षिप्रया समनुलालिते पुरे जन्म लेभ इह भूसुरे कुले॥09॥

इस प्रकार मन में चिन्तन करके कामनाओं को नष्ट किये हुए भूतभावन भगवान् शङ्कर क्षिप्रा के द्वारा लालित उज्जयिनी नगर के समीप ही एक ब्राह्मण कुल में जन्म लिये।

सूनुरेष त्रिपुरारिभट्टजो जाह्नवीजलसमानमानसः।
मातृमोदलतिकां समुन्नयन् वर्धयन् पितुरथो मुदं बभौ॥10॥

इस प्रकार गङ्गाजल के समान पवित्र मन वाले त्रिपुरारि भट्ट के पुत्र अपनी बाललीला से माता की हर्षलतिका को बढ़ाते हुए और पिता के मोद का भी समुन्नयन करते हुए सुशोभित हुए।

गौरदेह इसहस्रसुन्दरो नीलमेघसमचारुकुन्तलः।
पूर्णचन्द्रवदनः सुनासिको मोहयन् परिजनं शिशुर्बभौ॥11॥

उनका शरीर गौर था। वे करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर थे और उनके केश नील मेघ के समान काले और घुँघराले थे और वे अपने स्वरूप से अपने परिजनों को मोहित कर रहे थे।

बालमेत्य नितरामलौकिकं भालदेशहरिणाङ्कलाञ्छनम्।
स्वात्मजं समनुलालयन् पिता मोदितो हरिमिवेत्य कश्यपः॥12॥

अत्यन्त सुन्दर मस्तक पर चन्द्रमा के रेखा से युक्त उस बालक को दुलारते हुये त्रिपुरारि भट्ट इतने प्रसन्न हुए जैसे भगवान् वामन को प्राप्त कर कश्यप प्रसन्न हुए थे।

जातकर्म विधिवत् पिताऽकरोत् पुत्रजन्मपरिपूर्णकामकः।
वादिता च वियतीह दुन्दुभिः पुष्पवर्षणमभूत् सुरेरितम्॥13॥

इस प्रकार पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में पिता ने जातकर्म किया, आकाश में दुन्दुभि बजी और पुष्पवर्षा होने लगी।

अथान्वतिष्ठद् द्विजराजराजस्तन्नाम कर्मापि दिनेर्कसङ्ख्ये।
गुणैरुपेतं विभया परीतं पिताह्वयच्चन्द्रहरीति नाम्ना॥14॥

इसके पश्चात् बारहवें दिन पिता जी ने गुणों से युक्त शोभा से सम्पन्न अपने पुत्र का नाम चन्द्रहरि रखा।

दिने दिनेऽसौ परिवर्धमानो मातापितृभ्यामनुलाल्यमानः।
पुपोष चाङ्गानि शुभानि बालो विधुर्यथा राजति शुक्लपक्षे॥15॥

दिन-दिन बढ़ता हुआ, माता-पिता के द्वारा पालित वह बालक अपने अङ्गों को पुष्ट करने लगा जिस प्रकार से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा सुशोभित होते हैं।

सपाणिपद्भ्यां प्रचलन् धरित्र्यां मोदं दधानश्च पितुर्जनन्याः।
सम्मोदयामास निजं कुटुम्बं चन्द्रो यथा वारिधिवीचिराशिम्॥16॥

उस बालक ने घुटनों से चलता हुआ माता और पिता को आनन्द देता हुआ अपने कुटुम्ब को उसी प्रकार मोहित कर लिया जैसे चन्द्रमा समुद्र की तरङ्गों को उछाल देते हैं।

न क्रीडनैः संरमते स बालो न वा त्यजत्यथ मलं वपुष्टः।
न वा कदाचित् पयसे स्पृहावान् न वा स्म रोदित्यथ वस्तुजात्यै ॥17॥

वह बालक खिलौनों से नहीं खेलता था और प्राकृत बालकों की भाँति शरीर से मलादि का विसर्जन नहीं करता था। दूध के लिए चिल्लाता नहीं था। किसी वस्तु के लिए रोता नहीं था। शान्त रहता था।

भित्तौ च दृष्ट्वा परिलम्बमानं रामस्य वैचित्रपटं स बालः।
स्म मोदते मोदितबन्धुवर्गो जीमूतनादं किलकन् जहास ॥18॥

दीवार के फलक पर रघुनाथ जी का चित्र देखकर वह बालक अत्यन्त प्रसन्न होता था और अपने बन्धु वर्ग को भी प्रसन्न करता था। और मेघ की भाँति किलक-किलक कर हँसता था।

स बालको बालमरालगामी लावण्यधामा धृतदिव्यनामा।
मातुः पितुश्चापि मनोरथानां सुकल्यवल्लीं परितस्ततान ॥19॥

वह बालक बाल हंसराज के समान घुटनों से चलता। वह सौन्दर्य का धाम था। और बहुत सुन्दर नामवाला भी था। अतः वह धीरे-2 माता-पिता के मनोरथ-कल्पलतिका का विस्तार करने लगा।

स कृत्यचूडाकरणः सुवर्णो विभिन्नकर्णो नवहेमवर्णः।
लिपिं शिशिक्षे सुरनागरीं वै विद्यां समस्तामधिगन्तुकामः ॥20॥

बालक का चूड़ाकर्म हुआ। उसका वर्ण बहुत सुन्दर था, उसके कान छेदे गये। बालक ने सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन करने के लिए देवनागरी लिपि को सीख लिया।

स बालकश्चन्द्रहरिर्हरीष्टः स्विष्टः समासादितदिव्यभावः।
मातापितृभ्यां परिपाल्यमानः कालेन पौगण्डवयः प्रपेदे ॥21॥

श्रीहरि को प्रिय वह चन्द्रहरि नामक बालक जिसके इष्टदेवता शोभन अर्थात् भगवान राम हैं और जिसने दिव्यभाव प्राप्त कर लिया है, वह माता-पिता के द्वारा परिपालित होकर कौमार अवस्था को पार कर पौगण्ड अवस्था को प्राप्त हो गया।

बाल्यात् प्रभृत्येव महानुभावः श्रीरामचन्द्रस्य सहानुजस्य।
सीतासमेतस्य च मन्दिरं वै गत्वाध्ययासीच्चरणोदकञ्च॥22॥

बाल्यावस्था से ही वह बालक, लक्ष्मण और सीता सहित भगवान् श्रीराम के मन्दिर में जाकर उनका चरणामृत लेता था।

स प्रत्यहं मन्दिरमेव गत्वा रामस्य सीतानुजसंयुतस्य।
पादोदकं तन्मधुरप्रसादं सुखं गृहीत्वा च निवर्तते स्म॥23॥

वह बालक प्रतिदिन श्रीसीता–लक्ष्मण–सहित भगवान् श्रीराम के मन्दिर में जाकर उनका श्री चरणोदक और मधुर प्रसाद ग्रहण करके ही घर लौटता था।

विना खरद्विट्चरणारविन्दपादोदकेनैव विना प्रसादम्।
न वारिमात्रं शिशुनाऽपि तेन कदापि कस्याप कराद् गृहीतम्॥24॥

बालक ने नियम ले लिया था कि जब तक वह भगवान् श्री सीताराम जी के चरणोदक का पान नहीं करता था और जब तक भगवान् का प्रसाद नहीं ले लेता था, तब तक कभी-भी किसी के हाथ से दिया हुआ जल भी नहीं पीता था।

एवं निरीक्ष्याऽद्भुतभावजुष्टं श्रीरामचन्द्रस्य कृपैकपुष्टम्।
तुष्टं च बालं प्रशशंसुरेनं सर्वेऽपि पौराश्च नराश्च नार्यः॥25॥

इस प्रकार अद्‌भुत भाव से युक्त, भगवान् राम की कृपा से पुष्ट, सन्तुष्ट उस बालक की सभी नगर के नर–नारी प्रशंसा करते थे।

स एकदा राघवमन्दिरञ्च समेत्य संवीक्ष्य त्रिमूर्तिशोभाम्।
तुष्टाव बद्धाञ्जलिरेव बालो नीरन्ध्रनेत्राम्बुलसत्कपोलः ॥26॥

एक बार राघव जी के मन्दिर में जाकर तीनों मूर्तियों को निहारकर निर्गलित नेत्र जलधारा से जिसके कपोल सुन्दर लग रहे थे, ऐसे बालक ने हाथ जोड़कर भगवान् श्री सीताराम की स्तुति करनी प्रारम्भ की।

नवीननीलाम्बुदसन्निकाशं लसत्सहस्रांशुशतप्रकाशम्।
कारुण्यमूर्तिं हतभक्तजूर्तिं श्रीरामचन्द्रं शिरसा नतोऽस्मि॥27॥

नवीन मेघ के समान शोभा वाले, कोटि–कोटि सूर्यों के समान प्रकाश वाले, कारुण्य की मूर्ति भक्तों के ज्वर को दूर करने वाले भगवान् श्री सीताराम को मैं शिर से नमन करता हूँ।

समस्तकल्याणगुणाम्बुधिं तं तापिच्छनीलं श्रितदिव्यशीलम्।
ज्ञानैकगम्यं विबुधप्रणम्यं श्रीरामचन्द्रं शिरसा नमामि ॥28॥

सम्पूर्ण कल्याण गुणों के एकमात्र सागर, ज्ञानगम्य देवताओं के भी प्रणम्य दिव्यदेव श्रीरामचन्द्र जी को मैं सिर से नमन करता हूँ।

सौन्दर्यसिन्धुं प्रणतैकबन्धुं स्वभक्तभीत्यम्बुधिमन्दरञ्च।
कल्याणसाद्गुण्यसुमन्दिरं तं श्रीरामचन्द्रं गिरया गृणामि ॥29॥

सौन्दर्य के सागर, प्रणत जनों के एकमात्र बन्धु और भक्तों के भय रूप महासागर के मन्दर के समान, कल्याणादि श्रेष्ठ गुणों के मन्दिर श्रीरामचन्द्र जी का मैं अपनी वाणी से गृणन करता हूँ।

प्रचण्डमार्तण्डशतप्रतापं कालाग्निसंकाशमहार्घचापम्।
अमोघबाणं निगमप्रमाणं श्रीराचन्द्रं वचसा ब्रवीमि ॥30॥

सैंकड़ों प्रचण्ड सूर्यों के समान प्रताप वाले और कालाग्नि के समान माननीय धनुष वाले अमोघ बाण वाले, वेद ही जिनके सम्बन्ध में प्रमाण हैं ऐसे श्रीरामचन्द्र जी का मैं अपने वाणी से गुणानुवाद करता हूँ।

गृहीतचापं तपनप्रतापं दोर्दण्डसंशोभितकाण्डचण्डम्।
अमोघवीर्यं धृतदिव्यधैर्यं श्रीरामचन्द्रं मनसा स्मरामि ॥31॥

दिव्य धनुष धारण किये हुए, सूर्यनारायण के समान प्रताप वाले और अपने करकमल में सुशोभित भयङ्कर बाण वाले अमोघ पराक्रमी दिव्य धैर्य धारण करने वाले, ऐसे श्रीरामचन्द्र जी का मैं मन से स्मरण करता हूँ।

तं व्यापकं ब्रह्म गवामगम्यं वरिष्ठनम्यं विबुधप्रणम्यम्।
पुण्यप्रणामं समवाप्तकामं श्रीरामचन्द्रं शरणं व्रजामि ॥32॥

उन व्यापक ब्रह्म इन्द्रियों के लिए भी अगम्य, सबके प्रणम्य और देवताओं के भी नमनीय, पवित्र प्रणाम वाले, समस्त कामनाओं को प्राप्त करने वाले श्रीरामचन्द्र जी की मैं शरण में जा रहा हूँ।

कौशल्यया चुम्बितवक्त्रपद्मं सँल्लालितं पङ्क्तिरथेन चैव।
सीताभिरामं भुवनाभिरामं श्रीरामचन्द्रं भगवन्तमीडे ॥33॥

कौशल्या जी ने जिनके मुखकमल को निरन्तर निहारा, जो महाराज दशरथ जी के द्वारा दुलारे गये, ऐसे सीता जी से सुन्दर लगने वाले सम्पूर्ण भुवन में एकमात्र सुन्दर भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की मैं स्तुति कर रहा हूँ।

हनूमताभ्यर्चितपादकञ्जं समस्तकल्याणगुणैकपुञ्जम्।
राजाधिराजं विरजं विराजं श्रीरामचन्द्रं प्रणमामि नित्यम्॥34॥

हनुमान् जी ने जिनके चरणकमल की सेवा की है, जो सम्पूर्ण कल्याण गुणों के पुञ्ज हैं, ऐसे राजाधिराज रजोगुण से रहित और विराट् श्रीरामचन्द्र जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

स्तुत्वैवमेनं रघुराजपुत्रं सुग्रीवमित्रं धृतयज्ञसूत्रम्।
श्रीरामचन्द्रं सुषमासमुद्रं न्यवर्तत स्वं सदनं कुमारः॥35॥

इस प्रकार सुग्रीव जिनके मित्र हैं ऐसे सुषमा के सागर, रघुराज दशरथ के पुत्र, यज्ञोपवीत धारण किये हुए, भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति करके वह कुमार अपने भवन को लौट आया।

अथोपनिन्ये विधिवद् विधिज्ञः संस्कारकेण व्रतबन्धनाम्ना।
विद्याविनीतः प्रभया परीतो बभौ स बालस्तरुणो यथार्कः॥36॥

इसके अनन्तर श्रेष्ठ संस्कार व्रतबन्ध के द्वारा बालक का उपनयन किया गया। वह विद्या से प्रशिक्षित, शोभा से युक्त बालक नवीन सूर्य की भाँति सुशोभित होने लगा।

स एकदा तातपितामहादिजयप्रभावर्धितगूढगर्वम्।
तं पण्डितम्मन्यमतिप्रलापं शास्त्रे विजिग्ये विदुषां वरेण्यः॥37॥

एक बार अपने तात, पितामहादि विद्यावन्तों को जीतने की शोभा से उत्पन्न गूढ़ गर्व वाले स्वयं को पण्डित कहने वाले अतिप्रलापी एक ब्राह्मण को विद्वद् वरेण्य बालक ने शास्त्र में जीत लिया।

विजित्य तं दीक्षितनामधेयमदीक्षितं काममशिक्षितञ्च।
गृहं परावर्तत लब्धमानो निरस्तमानो विगताभिमानः॥38॥

जिसका नाम मात्र दीक्षित था, पर वह ना तो दीक्षित था ना शिक्षित। उस पण्डित को विद्या में, शास्त्रार्थ में जीतकर उसके मान को समाप्त करके स्वयं अभिमानरहित होकर वह बालक अपने घर लौट आया।

तदा प्रभृत्येव समस्तलोका निरस्तशोकाः प्रशशंसुरेनम्।
विद्याधनं चन्द्रहरिं कुमारं सौन्दर्यसंव्रीडितकोटिमारम्॥39॥

उसी समय से शोकरहित होकर समस्त लोक विद्या ही जिनका धन है, अपने सौन्दर्य से जिन्होंने करोड़ों कामदेवों को जीता है, ऐसे चन्द्रहरि कुमार की प्रशंसा करने लगे।

दृष्ट्वा प्रशंसां शिशुराजहंसो हंसो विवेकेन कुलावतंसः।
आत्मानमेवाप्तगुणं जगर्हे न श्रेयसे मेन इहात्मविद्याम्॥40॥

इस प्रकार अपनी प्रशंसा देखकर वह बालक राजहंस जो स्वयं में विवेक से हंस के समान नीरक्षीरविवेक में निपुण था, जो अपने कुल का आभूषण था, उसने गुणज्ञ होने पर स्वयं की निन्दा की और अपनी विद्या को कल्याण के लिये नहीं माना।

उवाच धिग्धिङ् ननु मानिनं मां यो वै पराजेष्ट बुधं विवादे।
अनेन लाभेन च का प्रतिष्ठा विभग्नसीतेशपदाब्जनिष्ठा॥41॥

वह बोले अरे! मुझ अहङ्कारी को धिक्कार, जिसने विवाद में पण्डित दीक्षित को हराया। इस सम्मान से मुझको क्या प्रतिष्ठा मिली, क्योंकि इस प्रतिष्ठा ने तो सीतापति भगवान् श्रीराम के चरणकमल की निष्ठा को ही नष्ट कर डाला।

प्रतिष्ठया किं न हि यत्र निष्ठा लाभेन किं यत्र न भक्तिलाभः।
बोधेन किं यत्र न सत्प्रबोधो ज्ञानेन किं यत्र न रामगानम्॥42॥

उस प्रतिष्ठा से क्या लाभ, जहाँ भगवान् की निष्ठा न हो, उस लाभ से क्या, जहाँ भक्ति का लाभ न हो उस बोध से क्या, जहाँ संतों का प्रबोध न हो, उस ज्ञान से क्या लाभ, जहाँ भगवान् का गुणगान न हो।

इत्येवमाद्यैर्बहुशो विगर्ह्य स्वात्मानमेवाथ बुधाग्रगण्यः।
रुरोद चोच्चैर्ननु मूर्धताडं स बालकः पण्डितराजराजः॥43॥

इस प्रकार से विद्वानों के शिरोमणि, पण्डितराजराज उस बालक ने अपनी बहुत निन्दा की और सिर पीट-पीटकर रोया।

स एकदा वीक्ष्य तटाकमध्ये निजाननं वै प्रतिबिम्बमानम्।
तदैव सञ्जातविरक्तबुद्धिः स्वकात्मशुद्ध्यै प्रजगाम काशीम् ॥44॥

एक बार तालाब में प्रतिबिम्बित होते हुए अपने मुख को देखकर वहीं से वैराग्य प्राप्त करके अपनी आत्मशुद्धि के लिये चन्द्रहरि काशी चले गये।

तां भूतनाथस्य पुरीमुपेत्य काशीं लसन्मङ्गलबोधराशिम्।
तुतोष बालो भगवत्कृपार्थी यथा दरिद्रो मणिरत्नमाप्य ॥45॥

इस प्रकार भूतनाथ की पुरी मङ्गल और ज्ञान की राशि काशी को प्राप्त करके बालक उतना प्रसन्न हुआ। जैसा कि दरिद्र धन और रत्न को प्राप्त करके प्रसन्न होता है।

प्रणम्य तत्र प्रभया वहन्तीं मरन्दभूतां चरणाम्बुजस्य।
श्रीमन्मुरारेस्तरलत्तरङ्गां गङ्गां सदा भक्तमहाघभङ्गाम् ॥46॥

इसके अनन्तर वहाँ शोभा के साथ बह रही भगवान् मुरारि के चरण-कमल की मकरन्दभूत चञ्चल तरङ्गों वाली, भक्तों के पाप को नष्ट करने वाली गङ्गा जी को प्रणाम करके बालक बहुत प्रसन्न हुआ।

स्नात्वा जपित्वा किल पञ्चगङ्गाघट्टे द्युनद्याः सलिले महात्मा।
प्रेम्णा कुटीरं प्रविवेश दिव्यं जगद्गुरोः स्वामिवरस्य धीरः ॥47॥

इस प्रकार पञ्चगङ्गा घाट पर गङ्गा जी में स्नान करके, सन्ध्या-वन्दन करके, वह धीर बालक जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य की कुटी में प्रविष्ट हुआ।

ददर्श चैकान्तसमाधिमग्नं श्रीरामप्रेमाम्बुधिमञ्जुमीनम्।
सद्भावपीनं परमप्रवीणं सरस्वतीश्रावितदिव्यवीणम् ॥48॥

वहाँ उन्होंने उन रामानन्दाचार्य जी को देखा, जिनको सरस्वती जी वीणा सुना रहीं थी। जो रामचन्द्र जी के प्रेम महासागर के सुन्दर मत्स्य थे, जो परम प्रवीण थे और भगवान् के भाव से स्वस्थ थे।

तं दक्षहस्ते विलसत्त्रिदण्डं प्रोद्दण्डविश्राणितचण्डदण्डम्।
गुणैरखण्डं हतपापखण्डं ततर्प पश्यन्नपि नो कुमारः ॥49॥

इस प्रकार दाहिने हाथ में जिन्होंने त्रिदण्ड धारण किया है और उद्दण्डों को जिन्होंने कठोर दण्ड दिया है, ऐसे अपने गुणों से अखण्डित पाप खण्ड को नष्ट करने वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को निहारते हुए बालक तृप्त नहीं हो रहा था।

तं पञ्चसंस्कारविधानकेन संस्कृत्य नाम्ना यतिराजराजः।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दः सुखानन्द इति न्यगादीत्॥50॥

इस प्रकार चन्द्रहरि को पञ्चसंस्कारों से संस्कृत करके यतिराजराज जगद्गुरु स्वामीरामानन्दाचार्य जी ने उनको सुखानन्द कहकर बुलाया और इसकी निरुक्ति करके बोले।

सुखस्वरूपो रघुनन्दनोऽसौ तस्मिंस्तवानन्द उदारबुद्धेः।
तस्मात् सुखानन्द इति त्वदीयं सम्पत्स्यते नाम महानुभाव॥51॥

भगवान् राम सुखस्वरूप हैं और उनमें तुम निरन्तर आनन्द का अनुभव करते रहते हो। हे महानुभाव! इसीलिए आज से तुम्हारा 'सुखानन्द' ही नाम होगा।

त्वं विश्वनाथो ननु शूलपाणिः स्वयं महादेव उदात्तसत्त्वः।
पूर्वावतारे नहि वैष्णवस्त्वं बाह्यं द्वयं साम्प्रतमाचकास्ति॥52॥

हे उदारबुद्धि! तुम पूर्वावतार में भगवान् शङ्कर थे। उस समय तुममें बाह्य वैष्णवता नहीं थी, आन्तर वैष्णवता ही थी। इस बार तो बाह्य और आन्तर दोनों वैष्णवतायें तुममें विराजमान हो रही हैं।

पुण्ड्रं च मुद्रा तुलसीसुदाम मन्त्रश्च गोत्रं श्रुतयो वदन्ति।
तत्पञ्चसंस्कारसमन्वितस्त्वं बाह्यां मुदा वैष्णवतां बिभर्षि॥53॥

पुण्ड्र, मुद्रा, माला, मन्त्र और गोत्र ये ही पाँच संस्कार हैं। इनसे सम्पन्न होकर तुम बाह्य वैष्णवता धारण कर रहे हो।

सदा जपञ्छ्रीरघुनाथनाम स्मरन् सदा श्रीरघुनाथरूपम्।
विभावयञ्छ्रीरघुनाथलीलां त्वमान्तरीं वैष्णवतां बिभर्षि॥54॥

निरन्तर रघुनाथ नाम का जप करते हुए, भगवान् रूप का स्मरण करते हुए, और भगवान् की लीला का निरन्तर चिन्तन करते हुए तुम आन्तरी वैष्णवता को भी धारण करते हो। इस प्रकार बाह्य और आन्तर दोनों वैष्णवतायें तुम्हारे पास हैं।

तद् गच्छ साधो नितरां प्रसन्नः सेवस्व सीतापतिपादपद्मम्।
तीर्थान्यट प्राप्तसमस्तविद्यः शीघ्रं प्रयातासि हरेः प्रियत्वम्॥55॥

इसलिए हे साधो! अब जाओ, सीतापति भगवान् श्रीराम के चरण-कमल की सेवा करो और तीर्थाटन करो। शीघ्र ही भगवान् की प्रियता को प्राप्त हो जाओगे।

तीर्थानि यानि प्रथितानि लोके पौराणिकानि श्रुतिसम्मतानि।
तानीड्यगाथानि शतान्यटित्वा भविष्यसि त्वं हरिदासवर्यः॥56॥

जो तीर्थ वेदसम्मत और पौराणिक रूप से लोक में प्रसिद्ध हैं, उन सैंकड़ों तीर्थों का पर्यटन करके तुम शीघ्र ही भगवान् के दास बन जाओगे।

यत्रैव यत्रैव वसन्ति सन्तः श्रीरामचन्द्रं मनसि स्मरन्तः।
गेयानि तीर्थानि च तानि तानि तान्येव पापानि विनाशयन्ति॥57॥

जिन-जिन तीर्थों में भगवान् का स्मरण करते हुए सन्त विराजते हैं, वे ही तीर्थ होते हैं और वे ही पापों को नष्ट करते हैं।

तरन्ति पापानि महासमुद्रतुल्यानि वै निर्मलमानसाश्च।
तान्येव तीर्थानि गृणन्ति सन्तः प्रसन्नचित्तो ह्यट तानि तानि॥58॥

जिनके द्वारा लोग पापरूप महासागरों को पार कर लेते हैं, उन्हीं को तीर्थ कहा जाता है इसलिए उन्हीं तीर्थों में पर्यटन करो।

नत्वा गुरोः पङ्कजपादयुग्मं मुदा सुखानन्द उदारचेताः।
पुरीश्च सप्तप्रथमं हि गन्तुमियेष यादृच्छिकभावमेत्य॥59॥

गुरुदेव के चरणकमल को प्रणाम करके यादृच्छिक भाव से सहज निष्प्रयोजन वृत्ति के द्वारा उदारचित्त सुखानन्दाचार्य जी ने पहले सप्तपुरियों में भ्रमण करने का निर्णय लिया।

जगाम धीरः प्रथमां पुरीं तां दिव्यामयोध्यां ननु वेदबोध्याम्।
श्रीरामचन्द्रस्य च राजधानीं लोके श्रुतां राघवजन्मभूमिम्॥60॥

पहले सुखानन्दाचार्य जी वेदों के द्वारा बोधनीय, श्रीरामचन्द्र जी की राजधानी और उनकी जन्मभूमि श्री अयोध्या को ही सर्वप्रथम आये।

स्नात्वा सरय्वां धृतभूरिभागः सञ्चिन्त्य रामस्य च बालरूपम्।
तुतोष चित्ते हरिदासवर्यो यथाऽधनः प्राप्य सुवर्णराशिम्॥61॥

वहाँ जाकर सरयू में स्नान करके उन्होंने भगवान् श्रीराम के बालरूप का चिन्तन किया और इतने प्रसन्न हुए जैसे निर्धन स्वर्ण की राशि प्राप्त करके प्रसन्न होता है।

ततस्त्वतिव्रज्य स साधुवर्यो गतो द्वितीयां मथुरां महिष्ठाम्।
श्रीकृष्णचन्द्रस्य च जन्मभूमिं व्रजं व्रजेशप्रियमत्युदारम्॥62॥

इसके पश्चात् वे मथुरा आये जो भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि है। और फिर व्रज का दर्शन किया।

विगाह्य धीरो यमुनां यविष्ठः श्रीवासुदेवस्य समानवर्णाम्।
राधाधवं चापि विलोक्य कुञ्जे सुखं सुखानन्द उवाह चित्ते॥63॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के समान वर्णों वाली यमुना में मज्जन करके और राधाप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण को कुञ्ज में निहारकर सुखानन्द ने बहुत सुख प्राप्त किया।

ततो हरिद्वारमवाप धीरो गङ्गां जगाहे तरलत्तरङ्गाम्।
मायापुरीं तां शिरसा प्रणम्य संसारमायाञ्च तिरश्चकार॥64॥

इसके पश्चात् सुखानन्द जी हरिद्वार आये। तरलतरङ्गों वाली गङ्गा जी में स्नान किया और मायापुरी को प्रणाम करके संसार की माया का तिरस्कार किया।

ततश्च काशीं स जगाम साधुः श्रीविश्वनाथं प्रणनाम भक्त्या।
मातान्नपूर्णां प्रणतैव मूर्ध्ना सुखं सुखानन्द इदं च लेभे॥65॥

इसके पश्चात् वे काशी आये, विश्वनाथ जी को प्रणाम किया। माता अन्नपूर्णा को प्रणाम करके, सुखानन्द ने बहुत सुख प्राप्त किया।

शिवस्य विष्णोश्च सुवल्लभे ते काञ्च्यौ जगामैव महानुभावः।
प्रणम्य मूर्ध्ना वरदाधिराजं तुतोष चित्ते यतिराजशिष्यः॥66॥

इसके पश्चात् शिव और विष्णु दोनों को प्रिय शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची दोनों तीर्थों में सुखानन्द जी पधारे और वरदराज जी को प्रणाम करके यतिराज के शिष्य सुखानन्द जी को अपार आनन्द की सुखानुभूति हुई।

पुनर्महाकालपुरीं प्रयातः स वै सुखानन्द उदस्तदोषः।
क्षिप्रां विगाह्याथ स उज्जयिन्यां श्रीरामनामैव सुखं जजाप॥67॥

इसके पश्चात् यतिराज रामानन्द के शिष्य सुखानन्द जी उज्जयिनी गये और क्षिप्रा नदी में स्नान करके भगवान् के रामनाम का जप किया।

ततो मुदा द्वारवतीं जगाम मध्येसमुद्रञ्च विराजमानाम्।
यत्रैव नित्यं यदुराजराजश्चकास्ति कृष्णः सकुटुम्बदारः॥68॥

इसके अनन्तर प्रसन्न हुए सुखानन्द जी द्वारिका पधारे जहाँ पत्नी और परिवार के सहित भगवान् श्रीकृष्ण निरन्तर विराजते हैं।

तं द्वारकाधीशमथाभिपश्यन् मेघावदातं जनपारिजातम्।
चतुर्भुजं लब्धनिजायुधञ्च सभूषणं साधुरुवाच वाचम्॥69॥

उन्होंने द्वारिकाधीश जो कि मेघ के समान श्याम वर्ण के हैं, भक्तों के लिये परिजात हैं, चार भुजाओं वाले हैं, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म को धारण किये हुए हैं, अन्य अलङ्कारों से युक्त हैं ऐसे द्वारिकाधीश को देखते हुए साधु सुखानन्द ने यह बात कही।

मधुपुरीं किन्न चलसि घनश्याम बलिं व्रजामि राजधानीं स्वाम्।
किं विजहिथ हे श्याम नन्दयशोदामाश्वासयितुम्॥
भक्तानां सुखकारणतारण गोकुलमहीललाम।
दिवानिशं तोषं न लभेते पितरौ ते शुभदाम्॥
वंशीवादनसुखं समेता अधिकालिन्दीतीरम्।
कथं भवन्तो न हि स्मरेयुः कृष्णं हलधरवीरम्॥
गोपवधूव्रजमण्डलमण्डन हे हे दीनानाथ।
सुखानन्दस्वामिन् सुखसागर व्रज मा व्रज व्रजनाथ॥70॥

एवं सता सानुनयं च भक्त्या सम्प्रार्थितः श्रीयदुराजराजः।
तां द्वारकाख्यां स पुरीं विहाय गन्तुं स तेनैव समं समैषीत्॥71॥

इस प्रकार अभिनयपूर्वक भक्ति से प्रार्थना करने पर यदुराजराज भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी द्वारिकापुरी छोड़कर सुखानन्द जी के साथ ही चलने का निर्णय कर लिया।

निरीक्ष्य तं सार्थमथो व्रजन्तं सम्प्रार्थयामास पुनः स साधुः।
तेनानुनीतो नवनीतचोरो भूयः पुरीं तामधिवस्तुमैच्छत्॥72॥

इस प्रकार अपने साथ चलते हुए द्वारिकानाथ को देखकर सुखानन्दाचार्य जी ने उनसे प्रार्थना की। फिर उनके द्वारा अनुनीत होकर नवनीतचोर श्री कृष्णचन्द्र जी ने अपनी द्वारिकापुरी में फिर निवास करने की इच्छा कर ली।

ततस्त्वतिव्रज्य महानुभावः श्रीचित्रकूटं तपसे जगाम।
विगाह्य मन्दाकिनिपुण्यतोयं ददर्श शैलं ननु कामदाख्यम्॥73॥

इसके पश्चात् वहाँ से चलकर सुखानन्दाचार्य जी तपस्या के लिये चित्रकूट आये। मन्दाकिनी जी के पवित्र जल में स्नान करके उन्होंने शैलराज कामदगिरि के दर्शन किए।

स राम शैय्यामधितिष्ठति स्म प्रेम्णा तपस्यन् तपसि स्पृहावान्।
उपासितुं रामपदारविन्दं भुञ्जान एवादृतकन्दमूलम्॥74॥

इसके अनन्तर आदरपूर्वक कन्दमूल का भोजन करते हुए सुखानन्द जी तपस्या में स्पृहा रखकर उग्र तपस्या करते हुए रामशैय्या में ही विराजमान हुए।

मन्दाकिनीवारिपवित्रकूटः संसारपाथोधिवहित्रकूटः।
सौमित्रिसीताङ्घ्रिविचित्रकूटो मत्पापकूटं द्यतु चित्रकूटः॥75॥

एवं ब्रुवाणो यतिराजशिष्यः सुखं वसन् पावनचित्रकूटे।
तपश्चरंश्चारुचरित्रकूटं निनाय कालं ससुखं करालम्॥76॥

मन्दाकिनी के जल से जिसके कूट पवित्र हैं, जिसके शिखर संसार रूप सागर के वहित्र अर्थात् जहाज के समान हैं, जिसके शिखर श्री लक्ष्मण और श्री सीता जी के चरणकमल से विचित्र हो चुके हैं, ऐसा वह चित्रकूट मेरे पापकूटों को नष्ट कर दे। इस प्रकार प्रार्थना करते हुए यतिराज रामानन्दाचार्य जी के शिष्य सुखानन्द जी पावन चित्रकूट में निवास करते हुए, तपस्या करते हुए, स्वयं में भी सुन्दर चरित्र के कूटों का आधान करते हुए इस कराल कलिकाल सम्बन्धी काल को भी सुखपूर्वक बिताने लगे।

यदा स्म गायत्यथ गौरिरागं श्रीरामचन्द्रे लसितानुरागम्।
तदा हरिण्यो हरिणाश्च गावस्तां श्रोतुकामाः स्म सुखं प्रयान्ति॥77॥

श्रीराम जी के चरणकमल में विहित दिव्य अनुराग से सम्पन्न, गौरीराग में सुखानन्द जी भजन गाते थे। तब तो उनका भजन सुनने के लिए सभी हरिणियाँ, हरिण और गायें भी उनके पास चली आती थीं।

तच्छ्रोतुकामो नयनाभिरामो मृगोऽथ कश्चित् स गुरोः समीपम्।
समागतस्तं तरसा जिघांसुर्बलात् प्रयेते मृगयुर्मुमूर्षुः ॥78॥

एक बार गौरी राग सुनने के लिये सुखानन्दाचार्य जी के पास एक हरिण आ गया। एक शिकारी उस हरिण की हत्या का यत्न करने लगा।

निवार्यमाणोऽपि यदा न मेने मृगं विहन्तुं यतमान एव।
तदा मृगोऽसौ धृतसिंहरूपस्तमेव हन्तुं मृगयुं जगाम ॥79॥

बार-बार रोकने पर भी जब वह नहीं माना, तब वह हरिण ही सिंह का रूप धारण करके उस शिकारी को मारने के लिये यत्न करने लगा और दौड़ पड़ा।

तं धावमानं पुरतो विलोक्य त्रस्तो विशस्तो मृगयुर्मुमूर्षुः।
श्रीमत्सुखानन्दपदारविन्दं पाहीति चोक्त्वा शरणं जगाम ॥80॥

इस प्रकार शिकारी ने देखा कि यह तो स्वयं उसके पास चला आ रहा है, तो उसके हाथ से धनुष शस्त्र गिर गया। वह भयभीत हो गया। मरणासन्न होकर रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये कहता हुआ सुखानन्द के चरण-कमल की शरण में आया।

दत्त्वाऽभयं सोऽथ खराय तस्मै श्रीमत्सुखानन्द उदारसत्त्वः।
दृष्ट्वा हनूमच्चरणारविन्दं काशीं गतः श्रीगुरुदर्शनाय ॥81॥

उसको अभय देकर उदारचेता सुखानन्द जी श्री चित्रकूट से अपने गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के दर्शनों के लिये फिर लौट आये और हनुमान् जी का निरन्तर चिन्तन करते रहे।

तप्त्वा तपः पावनचित्रकूटे सधर्मकूटे शुचिकर्मकूटे।
काशीं समागत्य गुरोः पदाब्जरेणुं सुखानन्द उवाह मूर्ध्ना ॥82॥

इस प्रकार जो निरन्तर धर्मों का और श्रेष्ठ कर्मों का कूट है, उस चित्रकूट में तपस्या करके काशी में आकर सुखानन्द जी ने जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी के चरणारविन्द की धूल को मस्तक पर धारण किया।

सुशीलासौभाग्यं कलयितुमथो चारुचरितैः
प्रयागं सद्भाग्यं दिशि दिशि प्रचारे सुखयितुम्।
वितन्वानो धर्मं विबुधमहितं वैष्णवमतं
गुरू रामानन्दो जगति जगतां वै विजयते ॥83 ॥

सुखानन्द जी बोले कि अपने दिव्य चरितों से सुशीला जी के सौभाग्य को प्रसिद्ध करने के लिए, श्रेष्ठ भाग्य वाले प्रयाग का दिग्दिगन्तर में प्रचार करने के लिए वेदविहित वैष्णवधर्म को विस्तृत करते हुए जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य की जगत् में जय हो रही है।

समाहर्तुं भारं विषमविषमं भारतभुवः
प्रहर्तुं वै दुष्टान् कलिकलुषकुष्टान् कुजनुषः।
य आयातो रामो जनदृगभिरामो गुरुवरः
स वै रामानन्दो जयति जगतीह प्रतिपदम् ॥84 ॥

जो अत्यन्त विषम भारतभूमि के भार को दूर करने के लिये और पाप से पुष्ट कलियुग के कलुष से पुष्ट, दुष्कुल में जन्मे हुए दुष्टों को दण्ड देने के लिए स्वयं भगवान् राम ही गुरुदेव रामानन्दाचार्य के रूप में आये, वे ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पग-पग पर जगत् में विजयी हो रहे है।

सीतां प्रथमाचार्यां शम्पाशोभां निरस्तविक्षोभाम्।
रघुवरसेवालाभां नमामि चम्पाकुसुमाभाम् ॥85 ॥

मैं बिजली के समान कान्तिवाली, क्षोभ से रहित श्रीराम सेवारूप लाभ से युक्त, चम्पा पुष्प के समान आभावाली श्रीसम्प्रदाय की प्रथम आचार्या सीताजी को नमन करता हूँ।

या श्रीमन्त्रमहीपं साक्षाच्चक्रे त्रिलोकसन्दीपम्।
वन्दे तामनवद्यां सततमनिन्द्यामशेषसुरवन्द्याम् ॥86 ॥

जिन्होंने षडक्षर श्रीराममन्त्रराज का साक्षात्कार किया ऐसी निष्पाप, निरन्तर निन्दारहित सम्पूर्ण देवों की वन्दनीया सीताजी का मैं वन्दन करता हूँ।

वन्दे लवकुशजननीं भवसुखजननीं त्रिलोकभवजननीम्।
जनककिशोरीं सीतां श्रुतिगणगीतां महःप्रीताम् ॥87 ॥

लव-कुश की माँ, भगवान् शङ्कर के सुख को उत्पन्न करने वाली, तीनों लोकों के कल्याण की जन्मदात्री, जनकराज की किशोरी, वेदों के मन्त्रों द्वारा गायी गयी, श्रीराम के महोत्सवों से प्रसन्न भगवती सीताजी का मैं वन्दन करता हूँ।

जनकनन्दिनी सीता मुनिगणगीता जनेषु सम्प्रीता।
रघुवरभवनं नीता भूयात् प्रीता सदा मह्यम्॥88॥

मुनिगणों द्वारा गान का विषय बनायी गयी। भक्तों के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुई, भगवान् श्रीराम के हृदय में वास करने वाली भगवती सीता सदा मुझ पर प्रसन्न हो जायें।

रामचन्द्रमुखचन्दिरचटुलचकोरी महीपमणिचारी।
जनककिशोरी सीता प्रीता भूयान्मनाङ् मह्यम्॥89॥

श्रीरामचन्द्रजी के मुखचन्द्र की चञ्चल चकोरी जनककिशोरी सीताजी मुझ पर थोड़ी-सी तो प्रसन्न हो जायें।

अयि रघुनन्दनभार्ये प्रथमाऽऽचार्ये खरारिभक्तानाम्।
सीते परमविनीते प्रीता भूयाः शिशौ मन्दे॥90॥

हे भगवान् राम की धर्मपत्नी, श्रीरामभक्तों की प्रथम आचार्या, परमविनीता भगवती सीता! मुझ मन्द बालक पर प्रसन्न हो जाइए।

सञ्जीवनीभक्तिरसि त्वमेव श्रीरामचन्द्रस्य विभोः खरारेः।
त्वं प्रेमरूपा ह्यमृतस्वरूपा विभासि सम्भूषितयज्ञयूपा॥91॥

हे सीते! आप श्रीराम भक्तिरूप सञ्जीवनी बूटी हैं जिनका खर के शत्रु श्रीराम से स्वरूप सम्बन्ध है। आप ही प्रेमरूप और अमृतस्वरूप होकर करोड़ों यज्ञस्तम्भों को सुशोभित करती हुई सुशोभित हो रही हैं।

त्वमेव माया रघुनन्दनस्य कृपैव पर्यायमयी यदीया।
मध्ये सुमित्रासुतरामयोश्च विराजमाना महिमानमेषि॥92॥

आप ही भगवान् राम की माया हैं, जिनका पर्याय कृपा है। आप श्रीलक्ष्मण एवं भगवान् राम के मध्य में स्थित होकर महिमा को प्राप्त कर रही हैं।

सीते पुरस्कारसुभूमिकायां मध्ये स्थिता जीवसुबाहुरिप्वोः।
तस्मात् समे सूरय आमनन्ति त्वामेव मातर्घटकस्वरूपाम् ॥93॥

हे सीते! आप जीव और भगवान् के मध्य स्थित होकर पुरस्कार की भूमिका में रहती हैं। इसलिए हे माँ! आपको विद्वान् लोग भक्ति मार्ग में घटक मानते हैं।

कथां गृणाना करुणां स्वनाथां जीवे शुभे दाययसि प्रकामम्।
जीवं परिष्कृत्य समाप्तदोषं भर्तुः पदाब्जे भ्रमरीकरोषि ॥94॥

हे माँ! आप जीवों की करुणा कथा कहकर अपने प्राण वल्लभ श्रीराम को जीव पर दया करने के लिए विवश कर देती हैं। और जीव के समस्त दोषों को समाप्त करके तथा उसे परिष्कृत करके भगवान् श्रीराम के पदकमल का भ्रमर बना देती हैं।

यथा सुमाता मलिनं सुपुत्रं संस्नाप्य सम्पोष्य ददाति भर्त्रे।
तथा भवत्यप्यखिलान्यघानि हत्वा जनं स्वीयवराय रासि ॥95॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ माता अपने मलिन पुत्र को स्नान कराकर, सजा-धजा कर अपने पति को सौंपती है। उसी प्रकार आप भी शरणागत जीवों के पाप को समाप्त करके उसे योग्य बनाकर अपने प्राणवल्लभ भगवान् श्रीराम को अर्पित कर देती हैं।

सङ्क्षामयन्ती निजवल्लभेन जीवापराधान् ननु देवि कोटीन्।
सदा समुद्धारयसे भवाब्धेर्दुरन्तपारस्य जनाननेकान् ॥96॥

हे देवि! आप अपने प्राणवल्लभ भगवान् श्रीराम से जीवों के करोड़ों अपराधों को क्षमा कराती हुईं निरन्तर अपार संसार-सागर से लोगों का उद्धार कराती रहती हैं।

त्वं सूयसे वै सवसीह लोकान् श्यसि प्रगल्भान् स्यसि जीवदोषान्।
शुभे सुवस्येव सिनोषि रामं सीतेति नाम्ना त्वमतः प्रसिद्धा ॥97॥

हे भगवती! 'सूयसे' अर्थात् आप संसार को जन्म देती हैं, 'सवसि' अर्थात् आप संसार का पालन करती हैं, 'श्यसि' अर्थात् संसार का संहार करती हैं, 'स्यसि' अर्थात् भक्तों के क्लेश का हरण करती हैं, 'सुवसि' अर्थात् जीवों को सत्कर्म के लिए प्रेरित करती हैं, 'सिनोषि' राम् अर्थात् श्रीराम को अपने प्रेमबन्धन में बाँधे रहती हैं, इसीलिए आप सीता नाम से प्रसिद्ध हैं।

सीरध्वजस्यैव हलस्य फालात् सिंहासनस्य प्रविघट्टनेन।
विदार्य भूमिं च यथाऽश्वधाटी वभूविथ त्वं प्रकटा किशोरी ॥98॥

हे सीते! आप शीरध्वज राजा जनक के हल के स्फाल के सिंहासन से टकराने के कारण अश्वधाटी छन्द की भाँति पृथिवी को फाड़कर स्वयं किशोरी रूप में प्रकट हुईं।

सीताकुमार्यकृत सीतां ललामधाम लालाममञ्जुमहिमा
श्रीरामचन्द्रमुखचञ्चच्चकोरी सुकिशोरी प्रभूतगरिमा।
सौन्दर्यसारवरवाटीविहारकृतकोटीरतीयलधिमा
भौमी तनोतु पतिपादे रतिं सुमतिभव्यां प्रगीतप्रथिमा ॥99॥

हे भगवती कुमारी सीता! आपने सीताम् अर्थात् हल की रेखा को श्रेष्ठ बना दिया और वहाँ प्रकट होकर उसे चारों धामों से श्रेष्ठ बना दिया, आपकी महिमा मञ्जु अर्थात् सौन्दर्यमिश्रित माधुर्यमयी है, आप श्रीरामचन्द्र के मुखचन्द्र की चञ्चल चकोरी और जनकराज की शोभना किशोरी हैं तथा आपकी गरिमा भी बहुत अधिक है, आप सौन्दर्य सारसर्वस्व रूप श्रेष्ठ वाटिका में विहार करती हैं और आपने अपनी छवि से करोड़ों रतियों को भी (कामपत्नी) छोटी बना दी हैं। हे भूमिनन्दिनि! आप मुझ में सात्विक बुद्धि से भव्य अपने प्राणवल्लभ श्रीराम की भक्ति का विस्तार करें, क्योंकि आपकी प्रथिमा अर्थात् विस्तार की परिधि वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र गायी गयी है।

शम्पासहस्रतनुशोभा मुनीन्द्रसुरलोभा नवाम्बुजनिभा
रामाभिरामसुखसीमा सुशीलगुणरम्या रमाधिकविभा।
माधुर्यसिन्धुशशिलेखा पदप्रणतलेखा पवित्रितप्रभा
सीता विभाति सुरगीता खरारिहृदि नीता सुशोभितशुभा ॥100॥

हे भगवती सीताजी! आपके श्रीविग्रह की शोभा करोड़ों बिजलियों के समान है, आपश्री की भक्ति के प्रति श्रेष्ठ मुनियों और देवताओं का लोभ रहता है, आप नवीन कमल के समान कोमल हैं, आप भगवान् राम को सतत प्रसन्न रखती हैं, आप सुख की सीमा हैं, आपका सुशील गुण रमणीय है और आप स्वयं सुशील गुण से रमणीय हैं, आपकी शोभा लक्ष्मीजी से भी अधिक है, आप माधुर्यरूप सागर की चन्द्रलेखा के समान हैं, आपके श्रीचरणों में देवता प्रणत रहते हैं, आपने प्रभा को भी पवित्र किया है अथवा आपका गुणगान गाकर स्वयम्प्रभा भी पवित्र हो गयी, ऐसी समस्त देवताओं द्वारा गान का विषय

बनायी हुई तथा भगवान् श्रीराम के हृदय में विराजमान एवं शुभगुण-सम्पन्न महिलाओं को भी सुशोभित करती हुई आप स्वयं सुशोभित रहती हैं।

देहप्रभाविजितचम्पा सहस्रशतशम्पासमानसुभगा
सौन्दर्यसारजितकोटिस्मरीयरतिः सत्यो निरस्तकुभगा।
राजाधिराजगृहलक्ष्मीर्विलक्ष्य शतलक्ष्मीर्गृहीतविभगा
भौमी विभाति भुवनश्रीः खरारिविजयश्रीः सदैव शुभगा ॥101॥

हे माँ! आपने अपने शरीर की कान्ति से चम्पा पुष्प को भी जीत लिया है अर्थात् आपश्री से ही चम्पा ने पीतवर्ण और शोभा प्राप्त की है, आपका सौन्दर्य सहस्रों बिजलियों के समान है, आपने अपने सौन्दर्य-तत्त्व से करोड़ों रतियों को जीत लिया है और अपने सत्य से भक्तों के कुभाग्य को नष्ट किया है, आप राजाधिराज भगवान् राम की गृहलक्ष्मी हैं, आपकी शोभा से अनेक लक्ष्मियाँ लज्जित हैं और आप विशिष्ट ऐश्वर्य धारण करती हैं। हे भूमिपुत्रि! माँ जानकी! आपसे सम्पूर्ण भुवनों को शोभा प्राप्त हुई है, आपश्री स्वयं खर राक्षस के शत्रु भगवान् राम की विजयलक्ष्मी हैं और आप सतत भक्तों को शुभ प्रदान करती हुई सुशोभित हो रही हैं।

मातस्त्वदीयपदपद्मे पुरश्चरणवाञ्छास्त्रिदेवललना
लक्ष्मीर्गिरीशगृहलक्ष्मीर्विरञ्चिवरवामामनोज्ञकलनाः।
सेवाविधानशुचिदक्षाः समक्षधृतलक्षा विदूरमलनाः
त्वामेव सर्वविधयत्नैः सन्ति परितुष्टां विधीयचलनाः ॥102॥

हे माँ सीते! सुन्दर कलाओं से युक्त लक्ष्मीजी, पार्वतीजी, ब्रह्माणीजी ये तीनो देवियाँ आपके चरणकमल में पुरश्चरण की इच्छा करती रहती हैं, वैतनिक भाव छोड़कर सेवाविधान से पवित्र और दक्ष, आपके समक्ष आपकी प्रसन्नता का ही लक्ष्य धारण करती रहती हैं। विधिसम्मत कार्य द्वारा सर्वभाव से तीनों देवियाँ आपको ही सन्तुष्ट करने की इच्छा करती रहती हैं।

कौसल्यया विहितभागा निरस्तभवरागा भवाब्धितरणी
राजाधिराजप्रभुपत्नी विदूरितसपत्नी महाघहरणी।
वैदेहयज्ञभुवि जाता त्रिलोकशुचिमाता सुशीलकरणी
सा मे ददातु हरिभक्तिं समस्तसुखशक्तिं स्वभक्तभरणी ॥103॥

हे माँ सीते! आपको कौशल्याजी के द्वारा आशीर्वाद देकर दिव्य भाग्य का विधान किया गया है, आप संसार का राग दूर करती हैं, आप भवसागर के लिए विशाल नौका के समान हैं जो कभी नहीं डूबती, आप राजाधिराज भगवान् राम की धर्मपत्नी हैं, आपके पास कोई सौतन नहीं हैं, आप बड़े-से-बड़े पापों को हर लेती हैं, आप जनकजी की यज्ञभूमि में प्रगट हुई हैं, आप देव-दानव-मानव सभी की पवित्र माता हैं, आप सुन्दर शील को प्रस्तुत करनेवाली हैं-ऐसी आप सीताजी मुझको समस्त सुखों की शक्ति देने वाली भगवद्भक्ति प्रदान करें, क्योंकि आप अपने भक्तों का भरण-पोषण करती रहती हैं।

मातः कृपां वितर बाले विमोहभवजाले महीपतिसुते
सीते सुबाहुरिपुनीते खरारिपरिणीते सुसौभगयुते।
मा रोषमेहि मयि मूढे कुभाग्यपथरूढ़े महाव्रतधृते
पाहीह घोरभवसिन्धोः शिशुं सपदि कार्या दया मम कृते॥104॥

हे माँ सीते! हे जनकराजपुत्रि! मोहजाल में फँसे हुए मुझ बालक पर कृपा का वितरण कीजिए। हे सीते! हे सुबाहु के शत्रु श्रीराम द्वारा स्वयम्वर में प्राप्त की गयी भगवति! हे खर के शत्रु श्रीराम की पाणिगृहीतापत्नि! हे सौभाग्ययुक्ते! हे महाव्रतधारिणि माँ! कुभाग्यपथ पर आरूढ़ मुझ मूढ़ पर क्रोध मत कीजिए, मुझ बालक को शीघ्र ही घोर भवसागर से डूबते हुए बचा लीजिए और मुझ पर दया कीजिए।

वैदेहराजशुभकन्ये कृतित्वपरिधन्ये महाव्रतधरे
श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रे शुचित्वपरिमन्द्रे मनोभवहरे।
मातः प्रसीद मयि पुत्रे कुभाग्यधृतसूत्रे कुकर्मकुकरे
चित्ते निषीद मिथिलाया मखीयशुचिभूमौ लसल्लघुकरे॥105॥

हे विदेहराज की कन्या, अपने कृतित्व से धन्य हे महाव्रतधारिणि, हे श्रीराम के मुखचन्द्र को आह्लादित करने वाली, हे पवित्रता से सुन्दर, हे कामवासना को दूर करने वाली, हे माँ सीते! कुकर्म करने वाले दुर्भाग्य के सूत्र से जकड़े हुए मुझ पुत्र पर प्रसन्न हो जाइए। हे मिथिला की यज्ञभूमि में छोटे-छोटे करकमलों से खेलने वाली सीते! मेरे चित्त में विराजमान हो जाइए।

हे अम्ब अम्ब जगदम्ब प्रधेहि मयि शं त्वं लसद्रतिरते
हे देवि देहि ह्यवलम्बं विलम्ब्य मम मा त्वं हलध्वजसुते।

मां पाहि पाहि भवसिन्धोर्विदेहकुलकन्ये मरुत्सुतनुते
सीते प्रसीद किल पायाः करालकलिकालाद् रघूत्तमनते ॥106॥

हे माँ! हे माँ! हे जगदम्बे! मेरा कल्याण कीजिए, क्योंकि आपसे भक्तिरूप लता सुशोभित है। हे सीरध्वज जनक की पुत्री देवि सीते! अवलम्ब दीजिए, विलम्ब मत कीजिए। हे जनककुल की राजकन्ये, हे हनुमान्‌जी द्वारा प्रणम्य, हे सीते! मेरी घोर भवसागर से रक्षा कर लीजिए, हे रघुश्रेष्ठ श्रीराम के चरणों में प्रणाम करने वाली सीताजी! मुझ पर प्रसन्न हो जाइए और इस कराल कलिकाल से मेरी रक्षा कर लीजिए।

सुखानन्द इत्थं गुरोः पादपद्मे निवेद्यात्मनो भावपुष्पाञ्जलिं वै।
सिषेवे यतीन्द्राङ्घ्रियुग्माम्बुजातं सदानन्दचित्तो दरिद्रो यथा स्वम् ॥107॥

इस प्रकार गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के चरण कमल में अपनी भावपुष्पाञ्जलि निवेदित करके, सुखानन्दाचार्य गुरुदेव के चरणकमल युगल की उसी प्रकार अनन्यचित्त से सेवा करने लगे जैसे दरिद्र अपने धन की सुरक्षा और सेवा करता है।

अहोरात्रमेवास्य पादारविन्दं भजन् भावतो भाग्यमेवात्मनीनम्।
समामानयन् विस्मृताशेषवृत्तः सुखानन्द एवान्वभूज्जन्म धन्यम् ॥108॥

इस प्रकार दिन-रात जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरणारविन्द की भाव से सेवा करते हुए, इस सौभाग्य को अपने लिए हितकर मानते हुए सुखानन्दाचार्य ने अपने जन्म को धन्य कर लिया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गश्चतुर्दशो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्यप्रणीते
श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये चतुर्दशः सर्गः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ पञ्चदशः सर्गः॥

अथ समे शनकैः सनकादयो मनसि मारिषमामनुमानने।
समशुचन् शुचयश्च यथा शुचौ मृदिति मीनागणा लघुपल्वले॥01॥

इसके अनन्तर जिस प्रकार ग्रीष्म काल में धूप से मछलीगण छोटे-से तालाब में चिन्तित हो जाते हैं उसी प्रकार सनक, सनन्दन, सनातन सनत्कुमार महापुरुष भगवान् श्रीराम की शक्ति से एवं मन के मनन से युक्त अपने मन में उसी प्रकार सोचने लगे। वे विचार करने लगे कि हमसे एक अपराध हो गया।

यदशपन् विजयं जयमाक्रुशो विबुधवीर्यविलापनया रुषा।
अभिरतौ निरतौ निजकर्मणि प्रणतमाधवमाधवप्रीणने॥02॥

वे सोचने लगे कि अरे देवताओं के भी प्रभाव को नष्ट करनेवाले क्रोध तुमने आक्रोश के कारण उन जय-विजय को शाप दे दिया जो अभीष्ट में तत्पर थे और शरण में आये हुये लक्ष्मी और माया के पति भगवान् के सन्तोषरूप अपने कर्म में तत्पर थे।

तदिदमेन इमे कृपया कया परिमृजेम वयं कृतकिल्विषाः।
जनकजादयितस्य न विद्महे नरकमेव फलं ननु मन्महे॥03॥

वे विचार करने लगे कि अरे इतने बड़े पाप का हम अपराधी गण, भगवान् की किस कृपा से मार्जन कर सकेंगे। यह हम नहीं समझ पा रहे हैं हमको तो इसका फल नरक ही लग रहा है। फिर क्या करें?

द्विजशरीरमुपेत्य पुनः कलावपचितिं विदधीमहि पाप्मनः।
सुकृतिसद्मन आत्मजमादरात् परिनिषेव्य सुखेन जगद्गुरुम्॥04॥

इसके अनन्तर वे सोचने लगे- अब तो एक ही उपाय है इस कलिकाल में फिर से ब्राह्मण का शरीर धारण करके और पुण्यसदन शर्मा के पुत्र जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की सेवा करके हम इस पाप का प्रायश्चित्त कर सकते हैं।

इति विचार्य विचारपरायणा विविधवेदविशिष्टपरायणाः।
सदसवः शिशवश्च पुरातना निगममाशु यजुश्च चतुस्सनाः ॥05॥

इस प्रकार विचार में परायण और अनेक प्रकार से विशिष्ट परायणों को करने वाले श्रेष्ठ प्राणधारी बालक होने पर भी पुरातन चारों सनकादि शीघ्र ही एक निश्चय पर पहुँच गये।

विहितविप्रशरीरमधिव्रजं व्रजपतिप्रतिमाप्रतिपूजकम्।
नरहरिं प्रविवेश चतुस्सनो नवघनं विभवा इव वैद्युताः ॥06॥

इस प्रकार व्रजमण्डल में ही ब्राह्मण– शरीर धारण किये हुये व्रजेन्द्र नन्दन श्री कृष्ण की पूजा करने वाले श्री नरहरि नामक ब्राह्मण में चारों कुमार उसी प्रकार प्रविष्ट हो गये जैसे नवीन बादल में बिजलियों के तेज समाहित हो जाते हैं।

नरहरौ नृहरौ सहरौ हरौ प्रकटिते कटिते भगवद्रसे।
निकटिते घटिते च यथाक्रमं जगदभूत् किल भग्नभयं तदा ॥07॥

इस प्रकार मनुष्यों में सिंह के समान और सूर्य की किरणों से युक्त श्री हरि स्वरूप नरहरि जी जब प्रकट हो गये और जब करुणा रस की वर्षा हुई तथा जब अघटित घटना का क्रम निकट आ गया तब जगत् भय से रहित होकर प्रसन्न हो गया।

नरहरिः करुणार्द्रमनाः क्वचिच्छ्रितविविक्तकुटीर उदीरयन्।
रघुपतेर्गुणनाम महामनाः परिशुशोच दशां किल भारतीम् ॥08॥

एक बार स्वयं नरहरि जी एकान्त कुटीर में बैठे हुये भगवान के गुणों और नाम का कीर्तन करते हुये भारत की करुण दशा के प्रति चिन्ता करने लगे।

परिविभाव्य च भारतदुर्दशां नयननीरनिषिक्तकपोलकः।
स विललाप ललाप महामती रघुप राघव रक्ष रघूत्तम ॥09॥

इस प्रकार भारतीय दशा का चिन्तन करते हुये अपनी आँखों के आँसुओं से कपोल को सुशोभित करते हुए नरहरि जी ने विलाप किया और बोलने लगे कि रघुपते! हे राघव! हे भगवन्! अब रक्षा कीजिये।

भरतभूमिरियं तव पालिता जनकजाकरपङ्कजलालिता।
कथमहो यवनैः परिमृद्यते तुदति सिंहशिशुं खरशावकः ॥10॥

ये भरतभूमि आपके द्वारा पालित है। सीता जी के करकमल से लालित हो रही है ऐसी भरतभूमि आज यवनों के द्वारा क्यों मसली जा रही है कि सिंह-शावक को गधे का बच्चा क्यों सता रहा है।

स्वार्थचक्षुष्कलोको विशोको न वै वैपरीत्यं गतो धर्मतः कर्मतः।
जीविकावर्जितो भोगतो भर्जितस्तर्जितो रौति भो किं विधेयं विधे॥11॥

आज लोगों की दृष्टि मात्र स्वार्थपरक हो चुकी है कहीं भी उनका स्वार्थ दूर नहीं हो रहा है, क्योंकि लोग वैदिक धर्म और वेदविहित कर्म के विपरीत आचरण कर रहे हैं। किसी को कहीं जीविका नहीं मिल रही है सभी को भौतिक भोगों ने भूँज डाला है। लोग सामाजिक और आर्थिक तर्जनाओं से पीड़ित होकर चिल्ला रहे हैं। हे विधाता! अब क्या किया जाये?

क्वापि नो सौहृदं नैव शान्तिः क्वचित् क्वापि नो सम्पदं पद्यते प्राणभृत्।
क्वापि नो मङ्गलं सद्बलं चाविलं क्वापि नो शं न किं किं विधेयं विधे॥12॥

आज कहीं भी परस्पर सौहार्द नहीं रह गया है और न ही कहीं पर शान्ति है। आज कोई भी प्राणी किसी भी दृष्टि से सम्पन्न नहीं दिख रहा है। कहीं पर भी आज मङ्गल नहीं है। सज्जनों का आत्मबल भी विषाक्त वातावरण के कारण मलिन हो गया है। आज न कहीं भी कल्याणकारी योजनायें हैं न ही किसी को भी किसी भी प्रकार का सुख है। हे भगवन् अब क्या किया जाये?

नेतृवर्गः पवर्गोऽपवर्गाऽरतिः सत्तया सञ्जितोऽसंयतस्त्रासकृत्।
पापपाथोधिमीनो विलीनो जनान् दिक्षु दन्दह्यते किं विधेयं विधे॥13॥

आज का नेताओं का वर्ग पाप कर्मों में लिप्त है। अपने ही लिए सभी सुविधाओं के फल का इच्छुक जनता को बन्धन में डालने वाला, भयपूर्ण वातावरण का निर्माण करने वाला और अपने विरोधियों को मरणतुल्य कष्ट देने वाला हो चुका है। नेताओं के मन में मोक्ष अर्थात् अध्यात्म के प्रति कोई भी आदर नहीं है। आज का नेता सत्ता के लिए पागल, संयमहीन और भयङ्कर हो गया है। शासक वर्ग मछली की भाँति पाप-सागर में डूब गया है। वह स्वयं विषयों में लीन होकर सभी दिशाओं में भ्रष्टाचार की आग लगाकर भोली-भाली जनता को जलाता जा रहा है। हे जग के सर्जनहार! अब हम जैसे लोगों को क्या करना चाहिये?

रक्षको भक्षकस्तक्षकस्तक्षकः कालकूटं सुधा मातृमान्या मृतिः।
हन्त तातो यमो विश्रमो विभ्रमोऽनारकं नारकं किं विधेयं विधे॥14॥

जिसे जनता ने अपना रक्षक माना वही आज भक्षक हो गया। जिसे तक्षक अर्थात् लकड़ी के अनपेक्षित अंशों को काटकर उससे सुन्दर कुर्सी, मेज, दरवाजे आदि बनाने के लिये बढ़ई के रूप में नियुक्त किया गया था, वह तक्षक अर्थात् सर्पराज बनकर नियुक्त करने वालों को भी डँसकर उनके प्राण ले रहा है। आज अमृत विष बन गया है। माता के समान माननीया महिला मृत्यु की भूमिका निभा रही है। अहो! आज पिता यमराज बन गया है। सुरासुन्दरी सेवन जैसे भव विलासिता के साधन विश्राम के साधनों के कोटि में गिने जा रहे हैं। शुद्ध गङ्गा नदियों के प्रातः स्नान को लोग नरक जैसा समझकर उससे दूर होकर गन्दे टबों में नहाना श्रेयस्कर मान रहे है। हे भगवन् अब हम क्या करें?

**कुक्कुरो बुक्कति प्राप्य सिंहासनं जम्बुकं सेवते कोऽपि कण्ठीरवः।
राजहंसी बकी कापि काकी पिकी कौतुकेऽस्मिन् कलेः किं विधेयं विधे॥15॥**

अरे आज दैव दुर्योग से कुत्ता सिंह का आसन प्राप्त करके भौंक रहा है। दुर्भाग्य से अद्वितीय वीर सिंह शरणागत होकर गीदड़ की सेवा कर रहा है। आज राजहंसिनी बगली के समान हेय समझी जा रही हैं लोग कर्कश बोलने वाली दुष्ट कौवी को कोयल समझने लगे हैं! हे भगवन्! कलिकाल के इस कराल कौतुक में हम निरूपाय जन क्या कर सकते हैं?

**मानवो मानवासृङ् मुदा पीयते मेदिनी मेदसा प्राणिनां प्रीयते।
गङ्गया वैतरण्येव सन्धीयते भीयते भीभिया किं विधेयं विधे॥16॥**

आज प्रसन्नतापूर्वक मनुष्य–मनुष्य का खून पी रहा है। आज पृथ्वी निर्दोष प्राणियों की चर्बी से तृप्त हो रही है मानो गङ्गा जी वैतरणी अर्थात् खून की नदी से सन्धि कर रही हैं। भय को भी भयभीत करने वाली परमेश्वर की प्रकृति भी आज भयभीत होती दिख रही है। हे विधे! अब हम जैसे लोग कर ही क्या सकते हैं?

**नैव वर्णाश्रमो नैव वेदः स्मृतिर्नो सदाचारवार्ता न सख्यं सुखम्।
हन्त हा हा कृतैर्व्याकुलो नाकुलो लोक आर्त्याकुलः किं विधेयं विधे॥17॥**

आज न तो वर्णाश्रम व्यवस्था है और न ही वेदों तथा स्मृतियों का सम्मान है। आज कोई सदाचार की बात भी करता नहीं, न ही किसी को किसी पर विश्वास है। पारिवारिक

सुख भी पाश्चात्य संस्कृति के कारण बहुत दूर चला गया है। अहो! आज का प्राणी हाय-हाय करता हुआ आकुल-व्याकुल हो रहा है। किं बहुना आज का सम्पूर्ण समाज ही व्यक्तिगत तथा समष्टिगत समस्याओं से जूझता हुआ दुःखी हो चुका है। हे विधाता! अब हमारे लिये क्या करना उचित होगा?

क्रूर आतङ्कवादः कृतान्तायितो हन्ति बन्धुः स्वबन्धुं ततस्तातहा।
भाति नो भारतं साम्प्रतं दुर्गतं राम पायाः क्षयात् किं विधेयं विधे॥18॥

आज क्रूर आतङ्कवाद प्रलयङ्कर काल बनकर मानव-जाति को ही निगल जाना चाहता है। आज भाई, भाई की; बेटा बाप की तथा बाप बेटे की भी हत्या करने में नहीं हिचक रहा है। इस समय हमारा यह भारत शोभित नहीं हो रहा है, या तथाकथित छद्म धर्मनिरपेक्षता, जातिवाद और सत्ता के भेड़ियों की रस्साकस्सी के कारण दुर्गति को प्राप्त हो रहा है। हे जगत् के रचयिता! हम निरीह जन क्या करें? मात्र इतनी प्रार्थना कर सकते हैं कि हे राष्ट्रमङ्गल एवं मानवता के रक्षक, परमपिता परमेश्वर, सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीराम! अब अपने इस भारत को सम्भावित महाविनाश से बचा लीजिए।

नैव सन्ध्या न वै तर्पणं स्वार्पणं न क्वचिद् वन्दनं क्वापि नो नन्दनम्।
नैव वर्णाश्रमो वेदधर्मः क्वचिन्नैव सत्कर्म भोः किं विधेयं विधे॥19॥

अरे इस समय कहीं न तो सन्ध्या-वन्दन हो रहा है, न ही तर्पण है और न ही अपना समर्पण है। कहीं पर भी न वन्दना हो रही है और न आनन्द हो रहा है। नन्दन पुष्प की सम्भावना भी नहीं बन रही है क्योंकि वृक्ष काटे जा रहे हैं और न तो वर्णाश्रम की रक्षा हो रही है न वेदधर्म है। भगवन्! इस समय सत्कर्म भी नहीं हो रहे हैं। अब हमें क्या करना चाहिये?

लौकिकैर्वैदिकैः प्रार्थ्यपारम्परी भारताद् दूरिता चामरी निर्झरी।
कर्मनाशैव बम्भ्रम्यते जित्वरी सत्वरी नेश्वरी किं विधेयं विधे॥20॥

लौकिक और वैदिक सिद्धान्तों द्वारा प्रार्थनीय हमारी परम्परा इस समय समाप्त हो गयी है। लगता है कि हमारी देवनदी भारत से बहुत दूर होती जा रही है। अब तो विजयशीला कर्मनाशा ही यहाँ भ्रमण कर रही है। ईश्वरी भी सत्वर नहीं हैं। इस अवस्था में हमें क्या करना चाहिए? भगवन्! आप ही हमारी रक्षा कीजिए।

एवं खरारिं स्तुवतो द्विजस्य प्रादुर्बभूवास्य च गागनी गीः।
गम्भीरभावाश्रितसुस्वभावा सरस्वतीकोटिमहानुभावा ॥21॥

इस प्रकार नरहरि जी भगवान् श्रीराम की स्तुति कर ही रहे थे, कि उसी समय गम्भीर भाववाली, श्रेष्ठ स्वभाव से समलङ्कृत, करोड़ों सरस्वतियों के समान प्रभावशील आकाशवाणी हुई।

मा ते भयं भूद् भुवि भूसुरेन्द्र मा त्वं व्यतिष्ठास्त्यज शोकमोहौ।
व्यपेतु ते मोहमयी निशेयं शीघ्रं भवान् पश्यतु सुप्रभातम् ॥22॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! इस पृथ्वी पर अब तुमको भय न हो। तुम दुःखी मत हो। अपने शोक और मोह को छोड़ दो। तुम्हारी यह मोहमयी रात्रि समाप्त हो और अपने जीवन में आप शीघ्र सुप्रभात के दर्शन करें।

नो वेत्सि चात्मानहो महात्मन् यदर्थमायाः किल भारतेऽस्मिन्।
सुप्तोत्थितो भासि च विस्मृतस्वः शीघ्रं विभो जागृहि जातबोधः ॥23॥

हे महात्मन्! आप अपने को जान नहीं पा रहे हैं। जिस लिए आप इस भारतभूमि में आये हैं। आप तो सोकर उठे हुए की भाँति लग रहे हैं, आपका अपना स्व भूल गया है। अब ज्ञान के प्रभात में आप जाग जाइये।

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरामयोऽसि श्रीरामभक्तोऽसि महाव्रतोऽसि।
कथं शयीथा ननु मोहनिद्रां सिंहोऽपि शेते चिरमस्तवीर्यः ॥24॥

तुम शुद्ध हो, बुद्ध हो, सब कुछ जानते हो, निरामय हो, तुम्हें किसी प्रकार का रोग नहीं है, तुम श्रीरामभक्त हो, महाव्रती हो फिर भी इस मोह-निद्रा में इतनी देर तक क्यों सोये हो? सिंह भी अपने पराक्रम को शान्त करके बहुत देर तक सोता है।

यदा हि जागर्ति वनाधिराजस्तदा समे बिभ्यति वन्यजीवाः।
तथा भवान् त्यक्तसमस्तशोकश्चिराय जागर्तु जगच्छिवाय ॥25॥

जब सिंह जगता है तब तो उसके जगने से समस्त सामान्य जन्तु त्रसित हो जाते हैं। इसी प्रकार आप भी समस्त शोक मोह छोड़कर जगत् के कल्याण के लिये अब चिरकाल के लिए जाग जाइये।

चतुष्सनात्मा त्वमथो महात्मा सुकर्मनिष्ठो द्विजराजपुत्रः।
प्रचारयन् भागवतं च धर्मं शीघ्रं समुत्तिष्ठ महानुभाव ॥26॥

आपके शरीर में सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार का प्रवेश है। आप महात्मा है, आप अपने कर्म में निष्ठा रखते हैं इसलिये हे ब्राह्मणपुत्र! भागवत धर्म का प्रचार करने के लिये आप शीघ्र उठ जाइये।

पाणिग्रहं मा जगतीहकार्षीस्त्वं ब्रह्मचारी भव भक्तिनिष्ठः।
विरक्तिमाश्रित्य परानुरक्तिं श्रीरामचन्द्रं शरणं व्रज त्वम्॥27॥

तुम इस संसार में रहकर पाणिग्रहण मत करना अर्थात् विवाह मत करना। तुम श्रीराम-भक्ति में निष्ठा करके ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करो। भगवान् में प्रेम और विरक्ति को स्वीकार करके श्रीरामचन्द्र जी की शरण में जाओ।

अपेक्षते तत्र गुरूपशक्तिर्गुरुं विना का भगवत्प्रपत्तिः।
सम्पत्तिरेषा ननु भूसुराणां श्रीरामपादाब्जजुषां हि नृणाम्॥28॥

इसमें गुरुदेव की शरणागति चाहिये और गुरुदेव की शरणागति के बिना कौन सी भगवत्-प्रपत्ति? यही तो भगवान् के चरण-कमलों की सेवा करने वाले ब्राह्मणों की और सम्पूर्ण मनुष्यों की सम्पत्ति है।

संसारमेनं परिविद्धि धीमन् असारभूतं विपदालयञ्च।
तस्मादिमं वान्तिमिव प्रहाय व्रज त्वमद्यैव करीव तोयम्॥29॥

यह संसार दुःख का आलय है, सारहीन है, इसलिए इसको वमन की भाँति छोड़कर अभी भी तुम यहाँ से उसी प्रकार चले जाओ जैसे प्यासा हाथी तालाब में चला जाता है।

तद् गच्छ साधो जगदेकवन्द्यं काशीस्थितं ख्यापितरामभक्तिम्।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य सत्सिद्धकुटीरमेव॥30॥

हे महात्मन्! तुम बहुत शीघ्र काशी में विराजमान श्रीरामभक्ति का प्रचार कर रहे साधक और सिद्धों के निवास स्थान, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी जी के कुटीर में जाओ।

तत्पादपङ्केरुहसन्मरन्दमापीय निर्णीय यथार्थतत्त्वम्।
भविष्यसि त्वं गतशोकमोहस्तटाकमाप्येभ इवार्तचित्तः॥31॥

जिस प्रकार आर्त हाथी तालाब को प्राप्त करके प्रसन्न होता है उसी प्रकार रामानन्दाचार्य जी के चरणकमल का चरणोदक पीकर आत्मतत्त्व का निर्णय करके तुम भी यथार्थ तत्त्व को जानकर शोकमोह से रहित हो जाओ।

ततश्च गायन् रघुनाथगाथाः पुनर्गृणन् माधवमञ्जुकीर्तिम्।
श्रीरामकृष्णौ हृदये दधानः सुखं प्रशान्तः परिशिष्यसे त्वम्॥32॥

इसके अनन्तर श्रीराम की गाथा गाते हुए, श्री कृष्ण के कीर्ति का परिगृणन करते हुए हृदय में श्रीराम कृष्ण को धारण करते हुए, तुम निश्चिन्त होकर सुख से सो सकोगे।

निर्देशमासाद्य शिवस्य धीमन् शिष्यं तुलस्याः किल दासमेव।
श्रीमानसं श्रावयितास्यमोघं यत् पोतभूतं भविता भवाब्धेः॥33॥

इसके अनन्तर शङ्कर जी का निर्देश पाकर महात्मा तुलसीदास जी को अपना शिष्य बनाकर उन्हें तुम श्रीरामचरितमानस पढ़ाओगे जो इस संसार-सागर के लिये जहाज-सा बन जायेगा।

जगद्गुरो स्वामिवरस्य रामानन्दस्य हस्तेन सुखं गृहीत्वा।
त्वं पञ्चसंस्कारविधिं विधिज्ञः शीघ्रं भविष्यस्यथ वैष्णवाग्र्यः॥34॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के हाथ से पञ्चसंस्कार विधि प्राप्त करके तुम शीघ्र ही वैष्णवों के चक्रवर्ती बन जाओगे।

अलं हि कृत्वा भगवन् विलम्बं खल्वत्र गत्वा मनसोऽनुतापम्।
प्रयाहि शीघ्रं यतिराजराजं यदिच्छसि त्वं भवितुं विशोकः॥35॥

यदि तुम शोकरहित होना चाहते हो, तो भगवन् अब विलम्ब मत करो, अब पश्चाताप भी मत करो और शीघ्र यतिराजराज रामानन्दाचार्य जी की शरण में जाओ।

यत्पादपङ्केरुहदिव्यसेवां वाञ्छन्ति देवा अपि नो लभन्ते।
तं सेवमानो विगताभिमानो भविष्यसि त्वं गतसर्वशोकः॥36॥

जिनके चरणकमल की दिव्य सेवा देवता भी चाहा करते हैं पर नहीं प्राप्त कर पाते हैं, उन्हीं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की दिव्य सेवा करते हुए अभिमानरहित होकर तुम सर्वशोक से रहित होकर सुखी हो जाओगे।

यस्यां हि काश्यां किल भूतनाथो मुमुर्षमाणस्य च कर्णमूले।
श्रीराममन्त्रं दिशतीत्यतन्द्रस्तां गच्छ काशीं सुखतैकराशिम्॥37॥

जिस काशी में भगवान् भूतनाथ मरणासन्न जीवों के कान में तन्द्रारहित होकर श्रीराम मन्त्र का दान करते हैं, वहीं तुम उसी पुण्य से युक्त काशी में चले जाओ।

काशीं च गत्वा किल पञ्चगङ्गाघट्टे द्युनद्यां ससुखं विगाह्य।
द्रष्टासि दिव्यां किल पर्णशालां यतीन्द्रवर्यस्य शुभां विशालाम्॥38॥

काशी जाकर पञ्चगङ्गा घाट पर गङ्गा जी में स्नान करके तुम जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के सुन्दर पर्णकुटीर के दर्शन करोगे।

नभोगिरा प्रेरित एवमीड्यः स भूसुरो भूसुरवल्लभस्य।
शिवस्य गत्वा ननु धाम काशीं मुदं प्रपेदे स चतुष्सनात्मा॥39॥

इस प्रकार आकाशवाणी से प्रेरित होकर सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार जिसके शरीर में हैं, ऐसा वह बाह्मण बालक, ब्राह्मण जिनको प्रिय हैं, ऐसी शिव जी की निवास भूमि काशी में जाकर बहुत आनन्दित हुआ।

स्नात्वाधिगङ्गं किल पञ्चगङ्गाघट्टे समालोक्य च तत् कुटीरम्।
जगद्गुरोः पादपयोजपांशुं सानन्दचित्तः शिरसाभ्युवाह॥40॥

इस प्रकार पंचगङ्गा घाट पर गङ्गा जी में स्नान करके उस ब्राह्मण कुमार ने वह दिव्य कुटीर देखा, जहाँ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य विराज रहे थे। और जगद्गुरु के चरणकमलों की धूलि को उस ब्राह्मण बालक ने सिर पर धारण किया।

तं पञ्चसंस्कारयुतं विधाय प्रदाय तस्मै किल राममन्त्रम्।
श्रीवैष्णवत्वं प्रणिधाय तस्मिन् प्रापन्मुदं श्रीयतिराजराजः॥41॥

इस प्रकार यतिराजराज रामानन्दाचार्य जी ने उस बालक को पञ्चसंस्कार-सम्पन्न करके श्रीराम मन्त्रदीक्षा देकर उसमें वैष्णवत्व का आधान करके बहुत प्रसन्न हुए।

नरहर्यानन्दनाम्ना तं जुहाव यतीश्वरः।
सर्वातीतो हि भवति शिष्यः सम्प्राप्य सद्गुरुम्॥42॥

जगद्गुरु जी ने उनका नाम नरहर्यानन्द रखा। सद्गुरु को प्राप्त करके शिष्य सर्वातीत हो जाता है और–

तत्त्वत्रयं तं प्रमुदोपदिश्य चकार विद्वांसममोघदृष्टिः।
श्रीरामकृष्णैकपदारविन्दरोलम्बभूतं कृपयाभिभूतम्॥43॥

इसके अनन्तर उनको तत्त्वत्रय समझाया, श्री रामकृष्ण के चरणकमल का भ्रमण बनाकर कृपा से अभिभूत करके नरहर्यानन्द जी को धन्य कर दिया।

उवाच वाक्यं वदतां वरोऽसौ मदीयवाचं नृहरेः शृणु त्वम्।
श्रीरामकृष्णौ नितरां हि गायन् तरिष्यसि त्वं जगदादिसिन्धुम्॥44॥

वक्ताओं में श्रेष्ठ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने कहा कि हे नरहर्यानन्द! मेरी बात सुनो श्रीराम, कृष्ण को प्रेम से गाते हुये तुम संसार सागर को पार हो जाओगे।

रामे च कृष्णे ननु भेदबुद्धिं कुर्वन्ति ये ते नरकं प्रयान्ति।
द्विधाभवच्चैकलमेव तत्त्वं श्रीरामकृष्णात्मतया परेशम्॥45॥

जो राम और कृष्ण में भेद मानते हैं वे नरक में जाते हैं, एक ही परब्रह्म श्रीरामकृष्ण के रूप में दो प्रकार से सुशोभित हो रहा है।

यो वाऽध्ययोद्धं विचकास्ति रामः कृष्णः स वै श्रीमथुरानगर्याम्।
एको धनुष्पाणिरुदारवीर्यः परो मुरल्याः कुधरस्य धर्ता॥46॥

जो श्रीराम अयोध्या में विराजमान हो रहे हैं वही मथुरा नगरी में श्री कृष्ण रूप में विराजमान हैं। एक धनुष–बाण धारण करते हैं, और दूसरे मुरली और गोवर्धन को धारण करते हैं।

एको वहन् काञ्चनसत्किरीटं भूयः परो वै शिखिपिच्छमौलिः।
एको लसत्काञ्चनकर्णपूरो गुञ्जावतंसस्तु परो विभाति॥47॥

एक स्वर्णमुकुट धारण करते हैं, दूसरे मोर मुकुट। एक सुन्दर कान में कुण्डल धारण करते हैं तो दूसरे गुञ्जा को धारण करके सुशोभित होते हैं।

तस्माद् द्वयोर्नास्ति मनागविभेद एकं हि तत्त्वं द्विविधं विभाति।
रामोऽध्ययोध्यं नरराजराजो वृन्दावने नन्दसुतश्च कृष्णः॥48॥

इससे इन दोनों में कोई भेद नहीं है। वे राम जी हैं अयोध्या के राजा, वही कृष्ण हैं नन्दनन्दन वृन्दावन में।

गायन्नुभौ त्वं परमेश्वरौ तौ भ्रमाऽभयो भारतभूमिमध्ये।
श्रीवैष्णवानां ननु चक्रवर्ती विगस्तमायादिकसर्वदोषः ॥49॥

इसलिये दोनों परमेश्वरों को गाते हुये तुम अब निश्चिन्त हो करके वैष्णवों की चक्रवर्ति बनकर सभी माया प्रपञ्चों से दूर होकर भारत में निर्भय भ्रमण करो।

माया न हि त्वां व्यथयिष्यते भो बाधिष्यसे नो सुखदुःखसङ्घैः।
द्वन्द्वानि जित्वा सुभगानि कृत्वा तेजः स्वकं प्राप्स्यसि जीवनान्ते ॥50॥

तुमको माया व्यथित नहीं करेगी, तुम सुखदुःखादि सङ्घों से बाधित नहीं होगे। इस प्रकार द्वन्द्वों को जीतकर, सत्कर्म करके, जीवन के अन्त में तुम अपने सनकादि के तेज में ही विलीन हो जाओगे।

तद् गच्छ धीमन् किल चित्रकूटं श्रीरामचन्द्रस्य विहारभूमिम्।
तत्रैव तप्त्वा ननु मोहतापं पापं प्रहास्यस्यचिरेण विद्वन् ॥51॥

इसलिए हे बुद्धिमन्! श्रीराम की विहारभूमि श्री चित्रकूट जाओ और वहाँ तपस्या करके मोह को समाप्त करके अपने पापों को तुम शीघ्र ही समाप्त कर दोगे।

तत्राऽनसूयां विगताभ्यसूयां शीघ्रं सुत द्रक्ष्यसि वीतशोकाम्।
सीतासमेतं करुणानिकेतं श्रीरामचन्द्रं सहलक्ष्मणञ्च ॥52॥

हे पुत्र! वहाँ संसार की निन्दा से रहित अनसूया जी को और सीता जी के सहित और लक्ष्मण समेत करुणा के निकेत श्रीराम जी के दर्शन करोगे।

तीर्थानि सन्तीह बहूनि भद्र सर्वाणि धन्यानि मलापहानि।
श्रीचित्रकूटस्य तुलां न यान्ति सत्यं ब्रुवे ते न कदाप्यसत्यम् ॥53॥

हे भद्र तीर्थ तो बहुत हैं और संसार में सभी धन्य हैं। सभी मलों को दूर करते हैं पर कोई भी श्री चित्रकूट के तुलना को नहीं प्राप्त कर पाता। तुमसे मैं सत्य कह रहा हूँ कभी भी असत्य नहीं।

इति नरहर्यानन्दं रामानन्दो जगद्गुरुश्रीमान्।
व्यसृजच्छ्रीचित्रकूटं सीतारामोल्लसत्कूटम् ॥54॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने सीताराम जी से जिसके शिखर सुशोभित हैं उस चित्रकूट के लिये नरहर्यानन्द को प्रेषित कर दिया।

तं चित्रकूटस्य पथि प्रयान्तं दान्तं सुशान्तं स्वगुणैर्महान्तम्।
निजागमोत्सादितलोककर्षा वर्षा सहर्षा गुरुमुच्चकर्ष ॥55॥

इस प्रकार चित्रकूट के मार्ग में जाते हुए दान्त, शान्त और अपने गुणों से महान् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चतुर्थ शिष्य नरहर्यानन्द का अपने आगमन से सम्पूर्ण जीवों के कर्ष अर्थात् कृषत्व को दूर करती हुई प्रसन्न वर्षा ने उत्कर्ष बढ़ाना प्रारम्भ किया।

कादम्बिनीच्छादितरश्मिराशिर्भानुः सभानुर्ददृशे न चाह्नि।
वितर्कवैपुल्यविधर्मिवृन्दैर्यथार्दितं वैदिकधर्मतेजः ॥56॥

मेघमाला के द्वारा जिनके किरणों की राशि ढक चुकी है ऐसे सहस्र किरणों वाले सूर्य नारायण भी उस वर्षाकाल में दिन में नहीं दिख रहे थे जैसे कुतर्कबहुल विधर्म वृन्दों के द्वारा वैदिक धर्म का तेज थोड़ा-सा ढक दिया जाता है और क्लेशित कर दिया जाता है।

विद्युद्रुचा रोचितसर्वगात्रो हरिर्विरेजे वियतीह मेघः।
सीताविभामिश्रमनोज्ञकान्ती रामो हरी राजति वै यथैव ॥57॥

बिजली के प्रभाव से जिस बादल के सम्पूर्ण अङ्ग प्रभावित हो गये हैं, वह अब नीले से हरा बनकर आकाश में सुशोभित हो रहा है, जैसे-सीता जी के प्रकाश से जिनकी मनोज्ञकान्ति मिश्रित हैं वे भगवान् राम नीले से हरित वर्ण होकर सुशोभित होते हैं।

प्रभञ्जनोद्वेगविनुन्नवारिर्ववर्ष वारो वनदश्च वल्गनः।
रामो यथा भाववशंवदः सन् वरं वरेण्यः प्रवदन् ददाति ॥58॥

वायु के वेग से जिसका जल बरसने के लिये उपस्थित है वह मेघ गरजता हुआ जल की वर्षा कर रहा है जैसे- भक्तों के भावों से वशीभूत होकर भगवान् राम स्वयं 'वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि' कहकर भक्तों को वरदान देते रहते हैं, उसी प्रकार मेघ गरजता हुआ जल की वर्षा कर रहा है।

नवाम्बुदच्छन्नहरिर्हरिश्च नक्तं न चादृश्यत यत्नतोऽपि।
सुसंवृतं कुञ्चितकुन्तलैश्च सैरध्वजीवक्त्रमिवाप्तलक्ष्मि ॥59॥

नवीन बादलों से जिसकी किरणें ढक गयी हैं ऐसे चन्द्रमा वर्षा काल में यत्न करने पर भी लोगों को नहीं दिख रहे थे जिस प्रकार सघन केशों से ढका हुआ सीता जी का मुखचन्द्र शोभायमान होता हुआ भी लोगों को नहीं दिख पड़ता।

शिखीवला दर्दुरचातकाश्च नृत्यन्ति कूजन्ति परप्रहृष्टाः।
यथैव रामं नयनाभिरामं संवीक्ष्य गायन्ति मुदैव भक्ताः ॥60॥

वर्षाकाल में सुन्दर मोर, मेंढक और चातक बोल रहे हैं और मयूर नाच भी रहा है जैसे भगवान् राम को निहारकर उनके भक्त उनके दिव्य गुणों को गाते रहते हैं।

कृषीवला ह्यरिहलैः कृषन्तो वपन्ति बीजानि मुदैव भूम्याम्।
यथा जनाश्चारुमनोज्ञमेधां विशोध्य तस्यां भगवत्सुभावान् ॥61॥

किसान सुन्दर हलों से जोतकर पृथ्वी में बीज बो रहे हैं जैसे भक्तजन अपनी सुन्दर मेधा को विशुद्ध करके उसमें भगवान् के भावों का वपन करते हैं।

वर्षत्सु वार्देषु च मातरिश्वा सुशीतलो नून् सुखयत्यनल्पम्।
यथैव भावेषु हृदि स्थितेषु मनोरथा रामकृता मनुष्यान् ॥62॥

मेघों के वर्षा करने पर शीतल-शीतल वायु लोगों को बहुत सुख दिया करता है जैसे भगवदीय भावों के हृदय में आ जाने पर श्रीराम-विषयक मनोरथ लोगों को आनन्द देते हैं।

वर्षर्तुकाले पयसां प्रवाहैर्विभग्नसेतुः सरितां समूहः।
सुवृत्तयो वै प्रतिबन्धशून्याः यथा हरिं राममुपाद्रवन्ति ॥63॥

वर्षा ऋतु में जल वृष्टि होने के कारण जल के प्रवाह से सभी नदियों के सेतु टूट गये हैं जैसे सुन्दर वृत्तियाँ सारे प्रतिबन्ध को छोड़कर श्रीराम के पास ही चली आती हैं।

वर्षर्तुमावीक्ष्य महानुभावा राज्ञीमृतूणां मुदमावहन्ति।
यथैव भक्तिं रघुनायकस्य प्रदृश्य हृष्टाः सुजना भवन्ति ॥64॥

वर्षाकाल में ऋतुओं की रानी वर्षा को देखकर कृषकजन प्रसन्न होते हैं। जैसे भगवद्भक्त को निहारकर वैष्णवजन प्रसन्न होते हैं।

कृषीवलाः स्वीयकृषिं प्रमोदात् प्रकुर्वते शालिमथो विरोप्य।
यथैव भक्तौ भगवज्जना वै संस्कारबीजान् परिपालयन्ति ॥65॥

वर्षाकाल में किसानगण अपनी खेती करते हैं और धान की रोपाई करते हैं जिस प्रकार भक्ति के आ जाने पर भगवज्जन संस्कारों का बीज वपन करते हैं।

तस्मिन् स्थिते दुर्दिन एव हर्यानन्दो महात्मा ह्यधितीर्थराजम्।
कुटीं विनिर्माय सुखेन तस्थौ कुर्वन् चतुर्मासविधिं विधिज्ञः ॥66॥

उसी वर्षाकाल में नरहर्यानन्द जी ने तीर्थराज प्रयाग में कुटी का निर्माण किया और चतुर्मास करने लगे।

वाल्मीकिरामायणमादिकाव्यं व्याख्याति नित्यं दिनमध्य एव।
सायं तथा भागवतं पुराणं प्रवाचयत्येव च कृष्णनिष्ठः ॥67॥

वे दिन में आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण की व्याख्या करते और सायङ्काल भागवत पुराण की चर्चा करते थे, क्योंकि श्रीराम, कृष्ण–दोनों में उनकी निष्ठा थी।

श्रोतुं जना रामकथां मनोज्ञां तथा मुदा भागवतीं कथां च।
नार्यो नराश्च स्म तमाव्रजन्ति यथा निपानं करिणः करिण्यः ॥68॥

उनकी श्रीरामकथा और श्रीमद्भागवत की कथा सुनने के लिये अनेक नारी–नर उसी प्रकार उनके पास आते थे जैसे प्यासे हाथी तालाब के पास चले जाते हैं।

श्रुत्वा तदीयाद् वदनारविन्दाच्छ्रीरामगाथां श्रितरामनाथाम्।
तस्मान्मुदा भागवतं निशम्य प्रसेदुरेते च नराश्च नार्यः ॥69॥

उनके मुखारविन्द से श्रीमद्भागवत सुनकर और श्रीवाल्मीकि रामायण सुनकर सभी नर नारी बहुत प्रसन्न होते थे।

प्रसूनलाजावलिभिः किरन्तस्तं सत्यसन्धं हतमोहबन्धम्।
अपूपुजन् हस्तगृहीतपद्माः पद्माननं तं जरठा युवानः ॥70॥

इस प्रकार सुन्दर पुष्प और धान्यों से लोग उनको ढक देते थे और बाल–वृद्ध सभी लोग हाथ में कमल के पुष्प लेकर उनकी पूजा करते थे।

स एकदा वर्षति वारि मेघे मह्यां जलप्लावनसंयुतायाम्।
अचिन्तयत् खिन्नमनाश्च साधुर्भोगव्यवस्थां प्रति राघवस्य ॥71॥

एक बार पानी बरस रहा था और पृथ्वी जल से प्लावित हो चुकी थी, तब नरहर्यानन्द जी ने सोचा कि भगवान् को भोग कैसे लगाया जाये?

जलाप्लुतं ह्यार्द्रतमं समेधः कथं नु कुर्यां हरिभोगरागम्।
कथं नु सिद्धो भविता प्रसादः स चिन्तितोऽलब्धधनो यथार्तः॥72॥

वे सोचने लगे– क्या करें, सम्पूर्ण वातावरण आर्द्र है, इन्धन भी हरा हो गया है, भगवान् के भोगराग की व्यवस्था कैसे करूँ और भगवान् का प्रसाद कैसे सिद्ध हो? नरहर्यानन्द जी उसी प्रकार चिन्तित हुए जैसे धनहीन आर्त होकर चिन्तित होता है।

व्यचीचरत् सोऽपि पुनर्महात्मा आनन्दपूर्वो नृहरिः स्वचित्ते।
देव्याश्च सद्मैव विदारयेयं शुष्काणि काष्ठानि ततो लभेयम्॥73॥

फिर महात्मा नरहर्यानन्द जी ने विचार किया कि एक कार्य हो सकता है देवी जी के भवन को ही तोड़ दिया जाये, वहीं से सूखे काष्ठ मिल जायेंगे।

दुर्गा च देवी जनकात्मजाया ह्यंशांशभूता नितरां च पूता।
ततस्ततो द्वारमहं विदार्य प्रसादसिद्धिं विदधीय कामम्॥74॥

दुर्गा जी सीता जी की अंशभूत हैं। वे बहुत पवित्र भी हैं इसलिए उन्हीं के द्वार को तोड़कर मैं भगवान् के भोग प्रसाद की सिद्धि कर लूँ।

विचार्य चेत्थं नृहरिर्महात्मा हस्ते गृहीत्वा कठिनं कुठारम्।
आरेभ ईड्यश्च यदा विहन्तुं द्वारं भवान्या विलसत्कुठारः॥75॥

इस प्रकार विचार करके हाथ में कुठार लेकर जब नरहर्यानन्द जी देवी का द्वार तोड़ने लगे।

तदैव दुर्गा प्रकटा बभूव प्रसादसङ्क्लृप्तदिव्यरूपा।
दृशोः समुत्सारितवाष्पबिन्दुर्विनाथबन्धुः करुणैकसिन्धुः॥76॥

उसी समय अनाथों की बान्धवीस्वरूपिणी करुणा की सागरस्वरूपिणी, प्रसन्नता से दिव्य रूप धारण की हुई, नेत्रों में प्रेमाश्रु से पूर्ण भवगती दुर्गा जी नरहर्यानन्द के सामने प्रगट हो गयीं।

अलं भवान्या भवनं विदार्य प्रतप्य चालं नितरां खलूक्त्वा।
अवाच्यवादं विगलद्विषादमहं व्यवस्थां ससुखं करिष्ये॥77॥

बेटे मुझ भवानी के भवन को नष्ट करना व्यर्थ है और पश्चात्ताप करना भी व्यर्थ है और अवाच्य वाणी को बोलना भी व्यर्थ है मैं तुम्हारे प्रसाद की व्यवस्था करूँगी।

शुष्काणि काष्ठानि दिने दिनेऽहं त्वत्कार्यसिद्ध्यै परिदापयिष्ये।
वर्षर्तुकालं सुभगञ्च यावद् विश्वस्य धीमन् विरमस्व कार्यात् ॥78॥

मैं जब तक वर्षा का काल चलेगा, आपके प्रसाद के लिये सूखे इन्धन की व्यवस्था करती रहूँगी। आप मेरे वाक्य पर विश्वास करके इस कार्य को बन्द कर दीजिये।

दिने दिने काष्ठविशालभारमहं व्यवस्थापयितुं यतिष्ये।
रोषं वृथा सज्जन मा कृथास्त्वं मा मा व्यथिष्ठा भगवत्प्रपत्तौ ॥79॥

मैं प्रत्येक दिन सूखे इन्धन की व्यवस्था करूँगी। तुम रोष मत करो और किसी प्रकार की अन्यथा बातें मत सोचो।

एवं ब्रुवाणा जननी जगत्या दिने दिने काष्ठविशालभारम्।
सा वै व्यवस्थापितवत्यमोघं सुश्रेयसे वै भगवत्प्रपत्तिः ॥80॥

इस प्रकार बोलती हुई भगवती जी ने, जब तक चातुर्मास्य चला, प्रतिदिन उनके सूखे काष्ठ की व्यवस्था की और भोग राग की व्यवस्था की। क्योंकि भगवान् की प्रपत्ति सबके कल्याण के लिए ही होती है।

दृष्ट्वा चरित्रं नृहरेश्च साधोस्तदीर्ष्यया कोऽपि नृशंस एव।
देव्या गृहं दारयितुं प्ररेभे चुकोप तस्मै ननु भद्रकाली ॥81॥

इसके पश्चात् एक कोई दुष्ट नरहर्यानन्द जी का चरित्र देखकर उन पर ईर्ष्या करके स्वयं भी सूखे काष्ठ के लिये देवी का भवन तोड़ने लगा तब भद्रकाली उस पर क्रुद्ध हो गयीं।

तं पोथयित्वा जननी जगत्या भूम्यां व्यकर्षत् पशुमारमेव।
अमारयन् मारितदुष्टदैत्या तस्मै च तत्कार्यमसौ प्रदाय ॥82॥

इसके अनन्तर उसे देखकर भगवती ने क्रुद्ध होकर उसको पृथ्वी पर पटककर खींचा और नरहर्यानन्द जी के काष्ठ का भार उसे देकर उसकी पशु की भाँति पिटाई लगायी।

एवं चरित्राणि कृपालुचेताः समाचरंश्चारितचारुचक्षुः।
श्रीचित्रकूटं श्रितधर्मकूटं समागमद्राघवदर्शनोत्कः ॥83॥

इस प्रकार अनेक चरित्र करते हुए नरहर्यानन्द जी धर्मकूट से युक्त श्री चित्रकूट में श्री राघव जी के दर्शन के लिए उत्सुक मन से पधारे।

मन्दाकिनीनीरनिषिक्तकूटं सौमित्रिसीताङ्घ्रिसुषक्तकूटम्।
समुल्लसत्साधकभक्तकूटं श्रीचित्रकूटं स ददर्श धीमान्॥84॥

मन्दाकिनी जी के जल से जिनके शिखर सींचे जाते रहते हैं, जहाँ राघव जी की भक्ति विराजमान हैं और सीता जी तथा सौमित्रि लक्ष्मण जी के द्वारा जो सेवित है, ऐसे चित्रकूट को बुद्धिमान् नरहर्यानन्द जी ने देखा।

नरहरिश्च शुभामतिसुन्दरीं स विरचय्य महन्महितां दरीम्।
जनकजापतिपङ्कजपादयोः सुखमयात् कृतमानसषट्पदः॥85॥

इस प्रकार नरहर्यानन्द जी ने सुन्दर गुफा का निर्माण किया और जनकनन्दिनी श्री सीता जी के पति श्रीराम जी के चरणों में मङ्गल मन को भ्रमर बनाकर सुख को प्राप्त हुए।

क्वचित् फलं मूलमथोपयुज्य क्वचिच्च पानीयमथापि पीत्वा।
श्रीरामपादाम्बुजदर्शनोत्को निनाय कालं विपुलं मनस्वी॥86॥

कभी फल खाकर, कभी कन्दमूल खाकर, कभी जलमात्र पीकर मनस्वी नरहर्यानन्द जी ने श्रीराम जी के चरणकमलों के दर्शन के लिए बहुत समय बिताया।

स च नरहर्यानन्दो हरिपदपद्मालिवर्यपूज्योऽसौ।
निवसंश्च चित्रकूटे सीतारामौ धियाऽध्यायत्॥87॥

इसके अनन्तर नरहर्यानन्द जी ने, जो कि भगवान् श्रीराम के चरणकमल के मनोज्ञ भृङ्गों के राजा थे, सीतापति श्रीराम के चरणकमल का मन से ध्यान किया।

नूतनवनधरनीलं श्रुतसुखशीलं गृहीतनरलीलम्।
सीतामनोभिरामं रामं ध्यायन् सुखी जातः॥88॥

नवीन बादल के समान नीले और जिनका सुखप्रद शील प्रसिद्ध हैं ऐसे सीता जी के मनोभिराम श्रीराम का ध्यान करके वे सुखी हो गये।

पुनश्च तं शङ्कर आदिदेश हरेः पुरं गच्छ महानुभाव।
तं वै गृहीत्वा तुलसीसुदासं श्रीमानसं पाठय बोधराशे॥89॥

इसलिए शङ्कर जी उनको आदेश दिया कि तुम शीघ्र हरिपुर जाओ, वहाँ तुलसीदास जी को स्वीकार करो और उनको मानस पढ़ाओ।

मातापितृभ्यां नितरां विहीनः सन्तापपाथोनिधिमञ्जुमीनः।
तिरस्कृतोऽसौ जगती जनैर्वै प्रकाममाशोचति रामबोला॥90॥

माता और पिता से रहित संसार रूप सागर के सुन्दर मछली के समान अनाथ, असहाय और जगत् के लोगों से तिरस्कृत रामबोला बहुत चिन्तित है।

तं पञ्चवर्षं मम धर्मपत्नी श्रीपार्वती वै सुखयाम्बभूव।
अपाययद् दुग्धमनल्पभक्तिमन्नादिभिस्तं बिभराम्बभूवे॥91॥

उस बालक को पाँच वर्ष पर्यन्त मेरी धर्मपत्नी पार्वती जी ने दूध पिलाया और अन्नादि से उसका पोषण किया।

यथान्नपूर्णा जननी जगत्या बिभर्ति चान्येन मुदा त्रिलोकीम्।
तथा प्रिया मे तुलसीसुदासं मातेव चाऽपीपलदाप्तहर्षा॥92॥

जिस प्रकार काशी में अन्नपूर्णा तीनों लोकों का पालन करती हैं, उसी प्रकार मेरी पत्नी पार्वती ने तुलसीदास का पालन किया।

लोकापवादेन विवर्धितेन सङ्क्षुब्धचित्ता च गणेशमाता।
दिनद्वयात् तन्निकटं न याता क्षुधार्तितः सीदति रामबोला॥93॥

लोकापवाद के कारण सङ्क्षुब्ध गणेश जी की माता पार्वती दो दिनों से वहाँ नहीं जा रही है अब रामबोला भूख से पीड़ित है।

हरेः पुरं वै नृहरे प्रगच्छ हरेश्च दासं परिपालयैनम्।
हरेः कृपातो भविता सुखं ते हरिप्रसादो हि सुखैकहेतुः॥94॥

हे नरहर्यानन्द जी! अब तुम हरिपुर जाओ, भगवान् के भक्त का पालन करो। भगवान् की कृपा से तुम्हें सम्पूर्ण सुख मिलेगा, क्योंकि प्रभु का प्रसाद ही समस्त सुखों का हेतु है।

स प्रेरितः पार्वतिवल्लभेन हरेः पुरं सत्वरमेव गत्वा।
दासं तुलस्याः स ददर्श दीनं कुचैलिनं कष्टपयोधिमीनम्॥95॥

पार्वतीवल्लभ भगवान् से प्रेरित होकर नरहर्यानन्द जी तुलसीदास जी के पास हरिपुर आये और वहाँ तुलसीदास जी को उसी प्रकार देखा जैसे वे विपत्ति के सागर के मछली हैं।

तं पञ्चसंस्कारविधानतो वै स योजयित्वा किल रामबोलाम्।
दासं तुलस्याः स जगाद नाम्ना सत्सङ्गतिः किन्न करोति पुंसः ॥96॥

इसके पश्चात् रामबोला को नरहर्यानन्द जी ने पञ्चसंस्कार विधि से सम्पन्न किया और उनका 'तुलसीदास' नाम रखा क्योंकि सत्सङ्गति ही जीव के लिए क्या नहीं कर देती।

शिष्यं तुलसीदासं रघुवरदासं विभग्नपरिहासम्।
श्रीनरहर्यानन्दो जज्ञे नव्यं च वाल्मीकिम् ॥97॥

श्री नरहर्यानन्द जी ने संसार के परिहास से रहित श्रीराम के अनन्य भक्त शिष्य तुलसीदास को नवीन वाल्मीकि ही समझा।

कृत्वा तं च विरक्तं रघुवरभक्तं जगत्यनासक्तम्।
गुरुनरहर्यानन्दो निन्ये श्रीसूकरक्षेत्रम् ॥98॥

इस प्रकार गुरुदेव नरहर्यानन्द जी जगत् में अनासक्त श्रीराम-भक्त तुलसीदास जी को विरक्त शिष्य बनाकर उन्हें सूकरक्षेत्र ले गये।

वाल्मीकेरवतारं तुलसीदासं विभाव्य हरिभक्तम्।
रामचरितमानसमथ नरहर्यानन्द आवोचत् ॥99॥

श्री नरहर्यानन्द जी ने तुलसीदास जी को श्रीरामभक्त वाल्मीकि का अवतार समझकर उन्हें श्रीरामचरितमानस पढ़ा दिया।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीसम्मोदवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति ॥100॥

कविकुमुद के लिये चन्द्रस्वरूप, हुलसीमाता के हर्ष एवं कल्याण को बढ़ाने वाले तुलसीदास जी की जय हो जिनकी कवितारूप चन्द्रिका को सज्जनरूप चकोर पीते हैं।

यन्निर्मितं धूर्जटिना पुरा वै श्रीमानसं सन्मनसा मनोज्ञम्।
यदेव संश्रावितमादिशक्त्यै पत्न्यै मुदा पर्वतराजपुत्र्यै ॥101॥

जिस सुन्दर रामचरितमानस को शिव जी ने अपने मन से रचा और जिसे अपनी धर्मपत्नी आदिशक्ति पार्वती जी को सुनाया।

दत्तं च यत् काकभुशुण्डिने वै विद्यार्थिने राघवसेवकाय।
सदैव सञ्चिन्तयते खरारेः श्रीबाललीलां श्रितमञ्जुशीलाम्॥102॥

भगवान् राम के भक्त श्री राघव की मङ्गलमय शील से सम्पन्न बाललीला का चिन्तन करते हुए विद्यार्थी काकभुशुण्डि जी को जो शिव जी ने दिया।

यद् याज्ञवल्क्याय भुशुण्डिना वै प्रोक्तं विदेहस्य पुरोहिताय।
स चादिशद् यच्च चतुस्सनेभ्यो रामप्रियेभ्यः किल याज्ञवल्क्यः॥103॥

जो श्रीरामचरितमानस, काकभुशुण्डि जी ने जनकराज के पुरोहित याज्ञवल्क्य को पढ़ाया और जिस रामचरितमानस को याज्ञवल्क्य जी ने श्रीराम के प्रिय सनकादिकों को सुनाया।

नरहर्यानन्ददेहं प्रविश्य सनकादयः।
तदेव मानसं प्रोचुस्तुलसीदाससूरये॥104॥

श्री नरहर्यानन्द जी के शरीर में प्रवेश करके सनकादिकों ने वही श्रीरामचरितमानस विद्वान् तुलसीदास जी को पढ़ा दिया।

सीतारामयशोमृतामललसत्कीलाललालित्यभृद्
भास्वद्भारतसंस्कृतिच्छविमयं प्रेमैकसारं शुचि।
सोपानैर्मुनिभिः श्रितं कविवरैः संसेवितं हंसकैः
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं वर्तर्ति भूमावधि॥105॥

जो भगवान् श्री सीताराम जी के यशरूप अमृतमय जल के लालित्य से युक्त है, जो सुशोभित हो रहे भारत की संस्कृति की छवि से सम्पन्न है, जिसमें भगवान् श्रीराम का प्रेम ही एकमात्र तत्त्व है जो परमपवित्र है जिसमें सुखसम्पादन विषादशमन, भवभञ्जन, सन्देहगञ्जन, जनरञ्जन, सज्जनप्रिय, श्रीरामोपासकप्रिय नामक सात सोपान विराजमान हैं, जो सदैव श्रेष्ठ कविरूप हंसों से सुशोभित रहता है, ऐसा यह श्रीरामचरितमानस इस पृथ्वी पर विद्वज्जगत् में निरन्तर अतिशयतापूर्वक विराजमान है।

स सप्तकाण्डात्मकमानसं वै गुरुर्गरीयान् तुलसीसुदासम्।
संश्राव्य नीत्वा सह चित्रकूटं सीतापतिं राममसौ ददर्श ॥106॥

इस प्रकार श्रेष्ठ गुरुवर्य श्री नरहर्यानन्द जी तुलसीदास जी को सात काण्डों वाले श्रीरामचरितमानस को सुनाकर उन्हें अपने साथ चित्रकूट ले गये और वहाँ नरहर्यानन्द जी ने सीतापति भगवान् के दर्शन किये।

परिक्रमायां किल सव्यभागे उपत्यकायां ननु कामदस्य।
ददर्श रामं नयनाभिरामं सलक्ष्मणं तं मृगयां चरन्तम् ॥107॥

कामदगिरि की परिक्रमा में बायीं ओर कामदगिरि की उपत्यका अर्थात् निचली भूमि में नरहर्यानन्द जी ने मृगयाविहार करते हुए नयनाभिराम श्रीराम के लक्ष्मण के सहित दर्शन किये।

अध्यापिपद्रामचरित्रमानसं श्रीमद्गुरुं वै प्रकटीचकर्ष।
तस्मिंश्च पश्यत्यनघे क्षणप्रभा मेघे विवेशेव चतुस्सनौजसि ॥108॥

इस प्रकार तुलसीदास जी को नरहर्यानन्द जी ने श्रीरामचरितमानस पढ़ाया और अपने शरीर के अवसान के समय चित्रकूट में ही जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी को प्रकट कर लिया। उन निष्पाप जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के देखते-देखते नरहर्यानन्द जी सनकादिकों के तेज में उसी प्रकार सह शरीर विलीन हो गये जैसे बिजली मेघ में विलीन हो जाती है।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गः पञ्चदशो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकवि-स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये पञ्चदशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्री राघवः शं तनोतु॥

॥अथ षोडशः सर्गः॥

अथान्वशोचत् कपिलः कृपालुः सबाष्पदृग्गद्गदकण्ठ एव।
निरागसो यत् सगरस्य पुत्रान् स्वरुड्हुतासे शलभीचकार॥01॥

एक बार अर्थात् सनकादि के अवतरण के पश्चात् कृपालु कपिल जी भी नेत्र में आँसू भरकर गद्‌गद् कण्ठ से पश्चाताप करने लगे कि मैंने निरपराध सगर जी के साठ हजार पुत्रों को अपने क्रोध रूप अग्नि का पतङ्गा बना डाला अर्थात् क्रोध रूप अग्नि में जला डाला।

यन्मार्गमाणा हयमेध्यमश्वं शक्रेण मत्सन्निधिमापितञ्च।
व्यमानयन् वीक्ष्य ततः स्वकोपाद् दावानले तान् प्रददाह दण्ड्यान्॥02॥

मैंने कितनी बड़ी गलती की है, वे तो अपने पिता के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को खोज रहे थे जो कि इन्द्र के द्वारा मेरे पास चुराकर पहुँचाया जा चुका था। उसे देखकर उन्होंने मेरा अपमान किया और मैंने उन्हें क्रोधाग्नि में जला डाला।

दृष्ट्वा चरन्तं हयमेध्यमश्वं मत्सन्निधौ भग्नसमस्तशत्रुम्।
मामेव तच्चोरयितारमेत्यावजज्ञिरे सन्धृतचण्डकोपाः॥03॥

मेरे समीप घोड़े को चरते हुए देखकर इसके द्वारा मुझे घोड़े का चुराने वाला मान लिया था इसलिए उन्होंने भयङ्कर क्रोध के वश होकर मेरा अपमान किया।

यावत्कुमाराः किल ताडयन्ति स्वक्रोधसञ्छादितसर्वबोधाः।
तावन्मया लोचनवह्निना च भस्मावशेषाश्चक्रिरे प्रसह्य॥04॥

जब तक कुमार कुछ कहकर मुझे पीटते तब तक तो मेरे क्रोध की अग्नि द्वारा उन्हें राख बना डाला गया।

भस्मीकृताः षष्टिसहस्रपुत्राः क्षणान् मया ते सगरस्य कोपात्।
दुरन्तपापं कृतचित्ततापं समागतं मां प्रसभं विहन्तुम्॥05॥

इस प्रकार एक क्षण में मैंने सगर के साठ हजार पुत्रों को जला डाला। वह पाप आ गया है मुझे मारने के लिए।

अज्ञानवैश्वानरदग्धसत्त्वा व्यमानयन् मां सगरस्य पुत्राः।
निरागसस्ते तत एव नूनं क्रोधो न किं किं प्रकरोत्यनर्थम्॥06॥

अज्ञान रूप अग्नि में उनका तेज नष्ट हो गया था इसलिए उन्होंने मेरा अपमान किया था। अतः वे निरपराध हैं क्योंकि क्रोध क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालता।

अहं तु साक्षात् परमस्य पुंसो नारायणस्याऽस्मि कलावतारः।
विज्ञानवार्धिः सुरसिद्धसङ्घैः सम्पूज्यमानाङ्घ्रिसरोजयुग्मः॥07॥

मैं तो साक्षात् नारायण का कलावतार हूँ, विज्ञान का मैं सागर हूँ और समस्त देवताओं और सिद्धों के समूह मेरे चरणकमल की पूजा करते हैं।

मानापमाने ननु शत्रुमित्रे प्रियाप्रियौ दारुणहर्षशोकौ।
समं हि पश्यन्त्यथ सिद्धवर्या इत्येव मां प्राह जगत् समस्तम्॥08॥

मैं क्या करूँ मान-अपमान, शत्रु-मित्र, सुख-दुःख सभी को सिद्ध समान रूप से देखते हैं, इस प्रकार लोग मुझे कहते हैं।

शशाक नाहं सहसापि सोढुं तेषां शिशूनामवमाननां च।
ददाह तस्मान् निजरोषवह्नौ ततोऽहमेवास्मि कृतापराधः॥09॥

मैं क्या बताऊँ, उन बालकों के अपमान को मैं स्वयं नहीं सह सका और उन्हें क्रोध की अग्नि में जला डाला इसलिए इस अपराध का मुख्य अपराधी तो मैं हूँ।

तत्पाप्मनः पावनमेव प्रायश्चित्तं विधातुं प्रयतेय नूनम्।
स्वान्तं तदैवैष्यति मे प्रशान्तिं प्रयत्नसाध्या हि समाः समस्याः॥10॥

इस पाप का पवित्र प्रायश्चित करने के लिए मुझे शीघ्र ही यत्न करना चाहिए; तभी मेरे को शान्ति मिलेगी क्योंकि सभी समस्याओं का समाधान प्रयत्न ही होता है।

जायेय विप्रस्य कुले क्वचिन्नु प्रवर्तयेयाऽऽर्यपथं पवित्रम्।
सेवेय साधून् हरिपादनिष्ठान् पारं प्रयायामघवारिराशेः॥11॥

निश्चित रूप से किसी ब्राह्मण कुल में अवतार लूँ और आर्यपथ का प्रवर्तन करूँ, सन्तों-महात्माओं की सेवा करूँ तभी मैं इस पाप का प्रायश्चित कर पाऊँगा।

इति व्यवस्याऽथ च देवहुत्याः सुतः सुशीलः कृतदिव्यलीलः।
कलौ युगे चावततार भूयो यशो वितन्वन् ननु यौगिकं स्वम्॥12॥

इस प्रकार विचार करके दिव्यलीला करते हुए, शोभन शील से युक्त देवहूति के पुत्र कपिलजी ने अपने यौगिक यश का विस्तार करने के लिए इस कलियुग में फिर अवतार ले लिया।

तदा दिवो दुन्दुभयः प्रणेदुः प्रसूनवर्षैर्व्यकिरन् सुरास्तम्।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः सुखं प्रजग्मुर्ननृतुर्जगुश्च॥13॥

उसी समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बज पड़ीं, देवताओं ने बालक को पुष्पवर्षा से ढक दिया। गन्धर्व, यक्ष, देवता एवं सिद्धगण सुखी हुए, नाच पड़े और गाने लगे।

तं बालकं वीक्ष्य सुवर्णवर्णं सुखं च मातापितरौ प्रयातौ।
उपेन्द्रमालोक्य यथा सभार्यः प्रजापतिः कश्यप एव पूर्वम्॥14॥

उस सुन्दर वर्ण के बालक को देखकर माता-पिता इसी प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार भगवान् वामन को निहारकर कश्यप और अदिति प्रसन्न हुए थे।

ददौ द्विजेभ्यः स हिरण्यधेनूर्धनानि रत्नानि च भूसुरेन्द्रः।
माता प्रसन्ना बहुभूषणानि प्रादात् सखीभ्यः किल भूसुरीभ्यः॥15॥

ब्राह्मण श्रेष्ठ ने बालक के जन्म पर बहुत से स्वर्ण और गौओं का दान किया। माता जी ने भी प्रसन्न होकर अपनी सखी ब्राह्मणपत्नियों को बहुत से आभूषण दिये।

स जातकर्मादिविधिं विधाय प्रमोदमापद् द्विजराजराजः।
तं बालकं प्राह पिता स्वनाम्ना यज्ञेशदत्तेति मनोज्ञधाम्ना॥16॥

उन्होंने बालक का जातकर्म किया। जातकर्म के पश्चात् पिता ने अपने पुत्र का नाम यज्ञेशदत्त रखा।

इक्ष्वाकुवंशस्य कृतापराधः स चिन्तयन् जन्मत एव बालः।
इक्ष्वाकुनाथं कलयाऽवतीर्णं संसेवितुं निश्चयमेव चक्रे ॥17॥

'इक्ष्वाकु वंश का अपराध किया है' ऐसा जन्म से बालक सोचने लगा और ध्यान में आ गया कि इक्ष्वाकुनाथ भगवान् रामचन्द्र जी ही रामानन्दाचार्य के रूप में अवतार ले लिये हैं अतः उनकी ही सेवा करनी चाहिए।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः स रामः कलौ पुनश्चापि कृतावतारः।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य रूपेण मनोज्ञसत्त्वः ॥18॥

इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए भगवान् राम ही जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य के रूप में अवतार लिये हैं।

इत्येव चित्ते प्रणिधाय विप्रो ध्येयं च ज्ञेयं हरिमेव मत्वा।
तस्यैव सेवौपयिकं शरीरं विधातुमैच्छन्निजकृत्यशेषः ॥19॥

इस प्रकार अपने चित्त में विचार करके और यह सोचकर कि मुझे रामानन्दाचार्य की सेवा करनी है उन्होंने अपने शरीर को उनकी सेवा के उपयोगी बना लिया। इससे उनका प्रायश्चित भी हो गया।

किं सिद्धिभिर्लोकचमत्कृतीभिर्योगर्धिभिः किं स्वकरागताभिः।
न यत्र सीतापतिपादपद्मप्रेमप्रवाहो धृतभाववाहः ॥20॥

अरे! चमत्कार प्रदान करने वाले उन सिद्धियों से क्या लाभ और अपने हाथ में आये हुए योग बल से प्राप्त सम्पत्तियों से क्या लाभ? जहाँ सीतापति भगवान् श्रीराम के चरणकमल में भाववाही प्रेमप्रवाह न हो।

गृध्रायमाणाः किल साभिमानाः सिद्धाः चमत्कारबलेन कामम्।
उड्डीयमाना नभ उत्पतन्तु किं ते वियत्पारमथापि यायुः ॥21॥

सभी सिद्धगण गीध पक्षी की भाँति अहङ्कार से युक्त होकर अपने चमत्कार के बल से भले ही आकाश में उड़ लें, पर क्या वो आकाश का पार पा सकते हैं?

ग्रहाभिधाभिर्निधिभिर्नवाभिः को वाऽस्ति लाभः समुपागताभिः।
न यर्हि रामस्य पदारविन्दे जीवेन वै प्रेमनिधिर्न चाप्ता ॥22॥

अरे! महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व ये नवों निधियाँ आकर के भी साधक को क्या लाभ दे सकती हैं? यदि भगवान् राम के चरण-कमल में प्रेम रूप निधि नहीं प्राप्त हुई?

कामस्य रूपं तपनप्रतापो मानं गणेशस्य विधोश्च शीलम्।
दीर्घायुरीड्यं किमु लोमशस्य न यत्र रामस्य पदाब्जबोधः ॥23॥

अरे! काम के समान किसी को रूप मिल जाये, सूर्य के समान प्रताप मिल जाये, गणपति के समान सम्मान मिल जाए, चन्द्रमा के समान शील मिल जाये, लोमश के समान चिर जीवन मिल जाये इससे क्या लाभ, यदि रामचन्द्र भगवान् के चरणकमल का हमें बोध न हो सका?

अलं तुरङ्गैर्ननु वाजिभिश्च अलं रथैर्वारणयूथमुख्यैः।
अलं प्रियाभिश्च सुलोचनाभिर्लब्धं न चेद् रामपदारविन्दम्॥24॥

बड़े-बड़े वेगशाली अश्वों से क्या लाभ, रथों से और हाथियों से क्या लाभ? भले ही सुन्दर नेत्रवाली महिलाएं हों उनसे क्या लाभ यदि भगवान् श्रीराम के चरणकमल की प्राप्ति नहीं हो पायी।

धिग्धिक् प्रकामं पुरुहूतराज्यं धिक् शाङ्करं धाम रमेशसद्म।
धिग् ब्रह्मलोकं गतसर्वशोकं न चेदवाप्तो ननु रामचन्द्रः ॥25॥

अरे! उस इन्द्र के राज्य को धिक्कार, शिव के कैलाश को धिक्कार, विष्णु के बैकुण्ठ को धिक्कार, शोकरहित ब्रह्मा जी के लोक को धिक्कार यदि रामचन्द्र जी के चरणकमल की प्राप्ति नहीं हो सकी।

अलं यमैः सायकसङ्ख्यकैश्च प्राप्तैश्च योगेन महाश्रमेण।
न चेन्मुखाब्जं समलोकि पुंसा वैदेहिभर्तुर्जगदेककर्तुः ॥26॥

अरे! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँचों यमों से क्या लाभ, यदि जानकीपति, जगत् के स्वामी भगवान् श्रीराम के मुखकमल के दर्शन नहीं हो सके।

अहो किमेभिश्च तपोभिरुग्रैः शरीरतापैर्हतसर्वपापैः।
न चेदवाप्तो वनमार्गगामी श्रीराघवस्तापसवेशधारिः ॥27॥

अरे! इन शरीरों को तपाने वाले, सभी पापों को नष्ट करने वाले इन तपों से क्या लाभ? यदि वनपथ में चलने वाले तापस वेशधारी भगवान् राम नहीं प्राप्त हो गए।

सन्तोषवृत्या विलसन्निवृत्त्या पुंसा क आप्तो ननु भूरिलाभः।
न चेत् प्रविष्टो हृदयारविन्दं श्रीरामचन्द्रः सुषमासमुद्रः ॥28॥

अरे! सम्पूर्ण निवृत्ति से युक्त इस सन्तोष वृत्ति से क्या लाभ यदि सुषमा के सागर भगवान् श्रीराम हृदय-कमल में नहीं प्रविष्ट होंगे।

स्वाध्यायतः किं निजशाखयाप्तवेदस्य वै खेदभिदो नरस्य।
न चेदधीतो निगमैकगीतः सीतासमेतः करुणानिकेतः ॥29॥

अपने शाखा से प्राप्त, सम्पूर्ण खेद को मिटाने वाले वेद के स्वाध्याय से क्या लाभ यदि वेदों के द्वारा एक मात्र गाये हुए करुणा के सागर सीता के सहित भगवान् श्रीराम का स्मरण नहीं हो गया।

स्नानैश्च किं विष्णुपदीसुतोयैः कलिन्दकन्याजलसेकतः किम्।
किं नार्मदैः किं सलिलैस्तथान्यैर्जप्तं न चेद् राघवनाम दिव्यम् ॥30॥

गङ्गा जी के जल से, यमुना जी के जल से, नर्मदा जी के जल से या अन्य तीर्थों के जल से स्नान से क्या लाभ यदि राम नाम का जप नहीं हो गया।

किं ब्रह्मचर्येण समाश्रितेन त्यक्तेन किं वै वसुमैथुनेन।
स्मृतं न चेद्राघवपादपद्मं सुखैकसद्म श्रितपाद्मपद्मम् ॥31॥

आठों प्रकार के मैथुनों के त्याग और ब्रह्मचर्य से क्या लाभ यदि ब्रह्मा जी और लक्ष्मी जी के भी ध्येय भगवान् राम के चरणकमल का स्मरण नहीं कर लिया गया।

निराग्रहेणाप्यपरिग्रहेण प्राप्तं च किं प्राप्तिमुखेन पुंसा।
धिया गृहीतं न हि चेत् खरारेः पादारविन्दं सुखबोधकन्दम् ॥32॥

आग्रहरहित उस अपरिग्रह से प्राप्ति ही जिसका उद्देश्य है ऐसे जीव को क्या प्राप्त हुआ? यदि समस्त सुख एवं आनन्द के कन्द भगवान् श्रीराम के चरण-कमल को नहीं पकड़ लिया गया।

किमासनैर्वेदवसुप्रमाणैरवाप्तमानैः कलिताभिमानैः।
उपासनं चेन्नहि रामचन्द्रपादाब्जयुग्मस्य कृतं हि पुंसा॥33॥

उन सम्पूर्ण चौरासी आसनों से क्या लाभ, जिनमें मान की आकाङ्क्षा और अभिमान है यदि जीव के द्वारा भगवान् श्रीराम की उपासना नहीं कर ली गयी।

किं पूरकैः पापविदूरकैश्च किं कुम्भकैः श्वासनिकुम्भकैश्च।
किं रेचकैः पातकपाचकैर्भो मनो न रुद्धं यदि चेद्धि रामे॥34॥

सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले उन पूरकों से क्या लाभ, श्वासों को रोकने वाले उन कुम्भकों से क्या लाभ, पापों को पचाने वाले उन रेचकों से क्या लाभ यदि भगवान् राम के चरण-कमल में अपना मन नहीं नियन्त्रित कर लिया गया।

प्रत्यागतैः किं दशभिश्च गोभिः प्रत्याहृतैः किं सुमनोभिरेभिः।
चेन्नाहृतो जानकिजानिपादपाथोजयोः प्रेममयो हि भावः॥35॥

इन दशों इन्द्रियों को विषयों से हटा लेने से और मनों को भी विषयों से हटा लेने से क्या लाभ यदि भगवान् श्रीसीतापति के चरणों में प्रेममय भाव नहीं प्राप्त हो गया।

साकाररूपस्य निराकृतेर्वा किं ध्यानतो भग्नमनोभवेन।
ध्यातो न चेद्राघव इड्यकीर्तिर्वैदेहिचित्ताब्जमनोज्ञभृङ्गः॥36॥

साकार या निराकार किसी भी रूप के अखण्ड ध्यान से क्या लाभ यदि जानकीपति भगवान् श्रीराम का ध्यान नहीं कर लिया गया, जो सीताजी के मन रूप कमल के एकमात्र भ्रमर हैं।

निरस्तसांसारिकपारणायाः किं धारणायाः परिपालनेन।
हृदा न चेद्धारितमात्तभावं सीतापतेः पादपयोजयुग्मम्॥37॥

संसार की विषय-भोग की पारणा से दूर, धारणा के भी पालन से क्या लाभ यदि सीतापति भगवान् श्रीराम के चरणकमल को हृदय में नहीं धारण कर लिया गया।

समाधिना नश्यदुपाधिना किं विकल्पयुक्तेन सुखावहेन।
न चेत् समाधीयत चारुचित्तं श्रीरामचन्द्रस्य पदारविन्दे॥38॥

जहाँ उपाधि नष्ट हो रही है उस सविकल्पक समाधि से क्या लाभ यदि भगवान् श्रीराम के चरणकमल में हमारा मन समाहित नहीं हो गया।

किं निर्विकल्पेन समाधिना भो विकल्पशून्येन सशून्यकेन।
न चेत् समाधीयत रामचन्द्रे मनोमिलिन्दः करुणैककन्दे॥39॥

उस निर्विकल्पक शून्य समाधि से क्या लाभ यदि करुणा के मेघस्वरूप भगवान् श्रीराम के चरणकमल में हमारा मनोभ्रमर नहीं समाहित हो गया।

अष्टाङ्गयोगेन सुयोजितेन पुंसः किमेतेन निरर्थकेन।
न चेदवाप्तं दशमौलिशत्रोः पादारविन्दं किल योगिगम्यम्॥40॥

इस निरर्थक अष्टाङ्ग योग से क्या लाभ यदि योगीन्द्रों के द्वारा नमनीय, रावण के शत्रु भगवान् राम के चरणकमल नहीं प्राप्त कर लिये गये।

तस्मादहं योगबलाभिमानं निरस्य दूरात् किल सिद्धिमानम्।
कामं व्रजेयं शरणं खरारेः पादाम्बुजं द्वन्द्वविवर्जितं च॥41॥

इसलिए अब मैं योगबल और सिद्धि के अभिमान को छोड़कर भगवान् के चरणकमल की ही शरण प्राप्त कर लूँ जो समस्त द्वन्द्वों से रहित हैं।

त्यक्त्वा समस्तां ममतां जगत्याः कौटुम्बिकं मोहमयं च हित्वा।
कामं व्रजेयं ननु रावणारेः पादारविन्दं शरणं शरण्यम्॥42॥

मैं संसार की सभी ममताओं को छोड़कर एवं पारिवारिक मोह का त्याग करके भगवान् राम के चरणारविन्द की शरण अवश्य ले लूँ जो सभी को शरण देने में समर्थ हैं।

यत्पादपाथोजरजोऽभिमृश्य त्रिदोषमुक्ता ननु तोषयुक्ता।
तीर्णा भवाब्धिं नितरामहल्या निरस्तशल्या तदहं व्रजेयम्॥43॥

जिनके चरणकमल की धूलि को स्पर्श करके अहिल्या जी सभी दोषों से मुक्त होकर भवसागर से पार हो गयी उन्हीं प्रभु की धूलि को प्राप्त करने का मैं यत्न करूँ।

यत्पादपङ्केरुहदिव्यरेणुं प्रपन्नसर्वेप्सितकामधेनुम्।
लब्ध्वा विमुक्ताखिलघोरदण्डं सदण्डकं दण्डककाननं च॥44॥

जिनके चरण-कमल का स्पर्श करके घोर दण्ड से रहित होकर दण्डक वन पवित्र हो गया जो भगवान् के चरणकमल की धूलि सेवकों के सम्पूर्ण ईप्सितों की कामधेनु है।

यत्पादपद्मं जनकेन्द्रकन्या मनस्यभिध्याय त्रिलोकधन्या।
वह्निं प्रविष्टा प्रभुणा निदिष्टा वैश्वानरं चन्दनितं व्यधत्त ॥45॥

जिनके चरणकमल का ध्यान करके भगवान् श्रीराम के आदेश से जनकनन्दिनी सीताजी ने अग्नि में प्रविष्ट होकर उसे भी चन्दन की भाँति शीतल बना दिया।

यत्पादपाथोरुहमन्वधावन् मायामृगं वैदिकमन्त्रमृग्यम्।
सुनीचमारीचमनन्तवीर्यं मृगानि तत्पादसरोजपीठम् ॥46॥

जिनके चरण-कमल वेदों के द्वारा विमृग्य होकर भी मारीच के पीछे-पीछे दौड़े उन्हीं प्रभु के चरणकमल के पीठ का मैं अनुधावन करूँ।

यत्कामशत्रोः सुमनस्तटागे सरोरुहं सर्वमहोरुहञ्च।
तदेव रामस्य पदारविन्दं दृशोर्विदध्यामतिथिं प्रकामम् ॥47॥

जिनके चरण-कमल शङ्कर भगवान् के हृदय रूप तालाब में कमल की भाँति विराजते हैं उन्हीं भगवान् के चरण-कमल को मैं अपने नेत्रों का अतिथि बना लूँ।

यत्पादपाथोरुहपादुकाभ्यां कैकेयिपुत्रः स्पृहयाम्बभूव।
तस्मै स्पृहावान् प्रयतेय कामं गृहाद् व्रजेयं वृजिनैकवासात् ॥48॥

जिनके चरण-कमल की पादुकाओं के लिए भरत जी ने स्पृहा की थी उन्हीं भगवान् के चरणकमलों में स्पृहावान् होकर पापनिवास रूपी घर से निकल जाऊँ।

लब्धुं विरक्तिं रघुपानुरक्तिं संयाचमानोऽनुमतिं प्रकामम्।
ततः श्रयेयं जननीं जनोऽहं मातृणतः कोऽपि जनो न मुक्तः ॥49॥

भगवान् की अनुरक्ति से पूर्ण विरक्ति के लिए मैं अपनी माता से अनुमति माँगू क्योंकि माँ के ऋण से कोई मुक्त नहीं होता।

कामं प्रयत्नैरनुमान्य तातं विभाविभातं विलसद्विभातम्।
प्रभातमासाद्य सुपारिजातं व्रजेम रामं नितरां जनानाम् ॥50॥

मैं प्रयत्न करके अपने पिता को भी समझा-बुझाकर ज्ञान की प्रभा से सुशोभित जीवन में प्रभात लाने वाले सेवकों के परिजात कल्पवृक्ष स्वरूप श्रीराम जी के चरण में जाऊँ।

शरणं मिथिलेशकन्यका शरणं मे रघुवंशभूषणः।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम्॥51॥

मैं मिथिलेश-कन्या सीताजी की शरण में जाऊँ, रघुवंशभूषण श्रीराम जी की शरण में जाऊँ, फिर दोनों की शरण में चला जाऊँ और दोनों के अतिरिक्त किसी तृतीय देवता की शरण में अब मैं नहीं जाना चाहता।

शरणं जननी च मैथिली शरणं मज्जनकस्तु राघवः।
शरणं पितरावुभौ पुनः शरणं नैव सुरान्तरं क्वचित्॥52॥

मैं अपनी माँ सीता जी की शरण में जा रहा हूँ, पिता श्रीराम की शरण में जा रहा हूँ, माता-पिता श्रीसीताराम जी की शरण में जा रहा हूँ और अब इनके अतिरिक्त कोई देवता मेरी शरण नहीं होगा।

इति व्यवच्छिद्य कुटुम्बमोहं तृणायमानां ममतां विहाय।
यज्ञेशदत्तो भगवत्प्रदत्तः सुपुण्यराशिं प्रजगाम काशीम्॥53॥

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्रदत्त यज्ञेश दत्त जी समस्त ममता को छोड़कर कुटुम्ब मोह को छोड़कर सम्पूर्ण पुण्यों की राशि काशी पधारे।

स्नात्वादिनद्यां किल पञ्चगङ्गाघट्टे महापुण्यमयप्रघट्टे।
जगद्गुरुं स्वामिवरं च रामानन्दं समासादयदाप्तबोधः॥54॥

इस प्रकार पञ्चगङ्गाघाट पर गङ्गा जी में स्नान कर जो समस्त पुण्यों का प्रघट्टक था, यज्ञेशदत्त ने कुटी में जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के दर्शन किए।

स पञ्चसंस्कारविधिं विधाय संश्राव्य तं तारकराममन्त्रम्।
जगद्गुरुर्विप्रवरञ्च योगानन्देति नाम्ना समलञ्चकार॥55॥

इसके अनन्तर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उन यज्ञेशदत्त नामक ब्राह्मण को पञ्चसंस्कारों से सम्पन्न करके और उनके दक्षिण कर्ण में षडक्षर श्रीराम-मन्त्र पूर्ण रूप से सुनाकर उन्हें योगानन्द नाम से समलङ्कृत किया अब वे यज्ञेशदत्त न होकर योगानन्द हो गए, पूर्णविरक्त दीक्षा ले ली।

श्रीराममन्त्रार्थमथाप्यनन्तानन्देन शिष्येण सुशिक्षयित्वा।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभिनन्दन् तमुवाच वाचम्॥56॥

इसके अनन्तर अपने पट्टशिष्य अनन्तानन्दाचार्य जी द्वारा उनको श्रीराममन्त्रार्थ की शिक्षा दिलाकर योगानन्द का अभिनन्दन करते हुए जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी इस प्रकार बोले-

जाने भवन्तं परमं च साङ्ख्याचार्यं दयालुं कपिलं कृपालुम्।
अस्मत्कलांशं प्रथितप्रशंसं मुदाऽवतीर्णं किल भारतेऽस्मिन्॥57॥

हे योगानन्द जी! मैं यह बात भलीभाँति जानता हूँ कि आप मुझ साकेत-विहारी राम के कलांश हैं, जिनकी प्रशंसा सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी है ऐसे आप दयालु, परमकृपालु साङ्ख्याचार्य कपिल ही इस भारतभूमि में अवतीर्ण हुए हैं।

यत्कोपवह्नौ सगरस्य पुत्रान् निरागसस्त्वं शलभीचकर्थ।
तत्पाप्मनः पावनमेव प्रायश्चित्तं चिकीर्षन् समुपागतोऽसि॥58॥

जो निरपराध सगर के साठ हजार पुत्रों को तुमने अपनी क्रोधाग्नि में पतङ्गा बनाकर जला दिया था उसी पाप का पवित्र प्रायश्चित करने के लिए तुम फिर यहाँ आये हुवे हो।

तद् गच्छ साधो जगदेकबन्धो कृपैकसिन्धो करुणार्द्रचित्तः।
निसेवितुं पावनतीर्थजातं यत्स्पर्शनाद्वै विमलीभवन्ति॥59॥

इसलिए हे साधो! आप चिन्ता मत करो तुम जगत् के एकमात्र बन्धु और कृपा के सिन्धु हो, तुम्हारा चित्त कृपा से आर्द्र है इसलिए अब सम्पूर्ण तीर्थों का सेवन करने के लिए जाओ जिनके स्नान से मानव पवित्र हो जाते हैं।

अटन् पिबन् स्नान् हृदि चिन्तयंश्च श्रीरामपादाम्बुजयुग्ममेव।
अनन्यभावेन पवित्रतीर्थान्यालोकयंस्त्वं भवितासि शुद्धः॥60॥

इसलिए दिव्य तीर्थों को निहारते हुए, भ्रमण करते हुए, स्नान करते हुए वहाँ आचमन करते हुए भगवान् श्रीराम के चरणारविन्द का स्मरण करते हुए तुम शीघ्र ही शुद्ध हो जाओगे।

इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं सम्प्रेषयामास वशी वशिष्ठम्।
कृपानिधिर्योगिवरञ्च योगानन्दं महात्मानमुदारकीर्तिम्॥61॥

इस प्रकार योगानन्द जी से अर्थपूर्ण वाक्य बोलकर जगद्गुरु जी ने श्रेष्ठ योगी श्रीयोगानन्द जी को तीर्थों में भ्रमण करने के लिए भेज दिया क्योंकि वे स्वयं वशी हैं और श्रीयोगानन्दाचार्य भी अब श्रेष्ठ वशी हो चुके हैं।

जगद्गुरुं तं शिरसा प्रणम्य तदीयपादाब्जरजांसि मूर्ध्नां।
बिभ्रन्न बिभ्यद् विगताधिशङ्कः स निष्कलङ्को भ्रमणं चकार ॥61॥

इस प्रकार जगद्गुरु जी के चरणों में प्रणाम करके अपनी चरणकमलधूलि को मस्तक पर धारण करते हुए किसी से भी न डरते हुए सभी मन की वासनाओं और शङ्काओं को छोड़कर निष्कलङ्क भाव से योगानन्दाचार्य भ्रमण करने लगे।

स दाक्षिणात्यानि च तीर्थकानि भ्रमन्महात्मा ननु विष्णुकाञ्चीम्।
तत्रैव दृष्ट्वा वरदं वरेण्यं नेत्रद्वयं धन्यमसौ चकार ॥63॥

प्रथम योगानन्दाचार्य जी ने दाक्षिणात्य तीर्थों का भ्रमण प्रारम्भ किया। शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची में जाकर उन्होंने वरदराज भगवान् के दर्शन किये और अपने नेत्रों को धन्य किया।

पुनश्च गत्वा शुचिवेङ्कटेशं संस्थापितं तत्र निरीक्ष्य रङ्गम्।
हृत्वा समानीतमथापि केन स वै महात्मा विमनीबभूव ॥64॥

फिर व्यङ्कटेश अर्थात् तिरुपति बालाजी आये, भगवान् के दर्शन किये और वहाँ देखा कि रङ्ग मन्दिर से किसी ने रङ्गनाथ भगवान् को यहाँ स्थापित कर दिया है यह दृश्य देखकर योगानन्दाचार्य दुःखी हुए।

तं प्रार्थ्य रङ्गं स सुखैकरङ्गं श्रीरङ्गमत्यादृत आप्तकामः।
रङ्गावनौ तत्कलितप्रतिष्ठं कृत्वा महात्मा सुखमाप कामम् ॥65॥

इसके पश्चात् रङ्ग भगवान् से प्रार्थना करके योगानन्दाचार्य जी ने व्यङ्कटेश से रङ्गनाथ जी को उनके भवन में लाकर स्थापित किया।

तं वीक्ष्य दासाग्रतमं च योगानन्दं चिकीर्षन्तमुदारबुद्धिम्।
सुदर्शनं रङ्ग उदारचेताः स्वमन्दिरे तं समुपाजुहाव ॥66॥

इस प्रकार भगवान् रङ्गनाथ जी ने जब देखा योगानन्दाचार्य जी उनका दर्शन करना चाहते हैं तो उनका कपाट अपने आप खुल गया और योगानन्दाचार्य को उन्होंने अपने मन्दिर के गर्भगृह के भीतर बुला लिया।

श्रीरङ्गनाथं नतकन्धरोऽसौ ननाम नम्रो नितरां विनीतः।
तत्रागतं वर्वरमेव दृष्ट्वा वरं वरं चेति जगाद साधुः ॥67॥

वहाँ पर श्रीरङ्गनाथ जी को प्रणाम करके जब योगानन्द जी आगे निकल रहे थे कि उसी समय रामानुजियों के प्रसिद्ध आचार्य वर्वर जी वहाँ आ गये उन्हें देख योगानन्द जी ने कहा 'वरम् वरम्' बहुत अच्छा-बहुत अच्छा।

वरं वरं चेति गिरा गृणन्तं सुस्वागतं तस्य मुदा दधानम्।
स वर्वरो वर्वरतां विहाय तत्पादपद्मे भ्रमरीबभूव ॥68॥

इस प्रकार दिव्य वाणी में कहते हुए और अपना सम्मान करते हुए देखकर वर्वर मुनि भी अपनी बर्बरता अर्थात् उग्रता छोड़कर योगानन्दाचार्य जी के चरण-कमल के भ्रमर बन गए।

तं प्राञ्जलिं प्राह हसंश्च योगानन्दोऽभिनन्दन् मुनिवर्वरञ्च।
शङ्कां कृथा मा त्यज संशयं स्वं रामं हि मत्वा जगदेकनाथम् ॥69॥

इस प्रकार से वरवर मुनि को हाथ जोड़े हुए देखकर योगानन्द जी ने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा- आप शङ्का मत कीजिए। भगवान् राम जगत् के एकमात्र नाथ हैं।

अस्यैव रामस्य कलांशतो वै विरञ्चिचक्रायुधशङ्कराणाम्।
आविर्भवन्तीह च कोटिशस्ते सर्वावतारी तत एव रामः ॥70॥

इन्हीं भगवान् राम के अंश से करोड़ों-करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों-करोड़ों विष्णु, करोड़ों-करोड़ों शङ्कर की उत्पत्ति हो जाती है, इससे भगवान् राम ही सबके अवतारी हैं।

रामाच्च नारायणकोटयो वै प्रादुर्भवन्त्येव गदायुधाश्च।
नारायणान्नैव कदापि रामो रामोऽवतारी च समेऽवताराः ॥71॥

यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रीराम से करोड़ों नारायणों की उत्पत्ति होती है, नारायण से रामजी की नहीं। इसलिए राम जी अवतारी हैं और सभी अवतार हैं, यह निश्चय कर लेना चाहिए।

श्रीराममन्त्रो ननु मन्त्रराजः काश्यां गिरीशोऽपि षडर्णमन्त्रम्।
मुमूर्षमाणस्य जनस्य कर्णे दिशत्यजस्रं रघुनाथभक्तः॥72॥

श्रीराममन्त्र ही मन्त्रराज हैं इसलिए शङ्कर जी अपनी काशीपुरी में सभी मरने वाले जीवों को श्रीराम-मन्त्र ही देते हैं।

भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च तथैव भक्तिं श्रीराममन्त्रः प्रददाति नृभ्यः।
ततो विशुद्धो जप राममन्त्रं हे वर्वर त्वं त्यज वर्वरत्वम्॥73॥

श्रीराममन्त्र ही प्राणियों को भुक्ति, मुक्ति और भक्ति निरन्तर प्रदान करता रहता है। हे बर्बर मुनि! सभी शङ्काओं को छोड़कर अब तुम राम नाम का जप करो और अपनी बर्बरता को छोड़ दो।

इत्थं समाभाष्य स वर्वरेशं विबोध्य तं रामपरत्वमेव।
जगाम रामेश्वरमेव नन्तुं प्रह्वः परात्मानमथो परेशम्॥74॥

इस प्रकार वर्वरेश मुनि को समझाकर और उन्हें रामपरत्व का बोध कराकर योगानन्द जी महाराज विनीत भाव से श्री परात्मा परमेश्वर रामेश्वर को प्रणाम करने के लिए रामेश्वर क्षेत्र को गये।

तमभ्यसिञ्चत् प्रणतो महात्मा गङ्गाजलैर्योगबलाहृतैश्च।
प्रणम्य रामेश्वरपादपद्मं तं वै ययाचे रघुचन्द्रभक्तिम्॥75॥

योगानन्द जी ने तत्काल अपने योगबल से प्रयाग से श्रीगङ्गाजल मँगवा लिया और उससे भगवान् रामेश्वर का अभिषेक किया। उनको प्रणाम करके शिवजी से योगानन्द जी ने भगवान् राम की भक्ति ही माँगी।

रामेश्वरस्त्वं ननु वामदेव त्वदीश्वरो राघव एव साक्षात्।
त्वं राममन्त्रप्रथमोपदेष्टा याचे ततस्त्वां हरिभक्तिमेव॥76॥

हे वामदेव! आप रामेश्वर हैं अर्थात् 'रामः ईश्वरो यस्य' स रामेश्वरः आपके ईश्वर भगवान् राम हैं, आप राममन्त्र के प्रथम उपदेष्टा हैं। अतः मैं आपसे ही भगवान् राम की भक्ति माँग रहा हूँ।

भवान् बहुव्रीहिमथो जगाद रामेश्वरस्यैव शुभे समासे।
ततस्तवेयं ननु रामभक्तिर्विख्यापिताऽभूत् प्रकटा त्रिलोक्याम्॥77॥

आपने ही 'रामेश्वर' शब्द में बहुव्रीहि समास कहा है अर्थात् 'रामः ईश्वरः यस्य स रामेश्वरः'। इसलिए तीनों लोक में आपकी रामभक्ति प्रख्यात है।

रामापमानोद्धततीव्रमन्युः सतीं स्वभार्यां जहिथ त्वमेव।
कस्त्वत्समो रामपदारविन्दमिलिन्दभूतो ननु भूतभर्तः॥78॥

राम जी का अपमान करने के कारण खिन्न होकर आपने अपनी पत्नी सती जी का भी त्याग कर दिया। ये बताइए आपके समान कौन राम जी का भक्त होगा। हे भूतेश्वर! इससे आप मुझे रामभक्ति प्रदान कर दीजिए।

निशम्य रामेश्वर एव योगानन्दस्य वाचं प्रणतस्य साधोः।
जगाद जीमूतगभीरवाण्या ज्ञात्वा तमुत्सारितपञ्चबाणम्॥79॥

इस प्रकार योगानन्द जी के वचनों को सुनकर और यह जानकर कि यह प्रणत हैं, इनके मन में पञ्चबाण कामदेव की वासना नहीं है, स्वयं रामेश्वर शिवजी मेघ गम्भीर वाणी में बोले-

जाने भवन्तं कपिलं कृपालुमद्धावतीर्णं ननु भारतेऽस्मिन्।
संसेवितुं रामपदारविन्दं ततो ददे ते हरिभक्तिमेव॥80॥

मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् कपिल हैं, भगवान् राम जी की सेवा करने आये हैं। इसलिए मैं आपको भगवद्भक्ति का वरदान दे रहा हूँ।

रामस्तु साक्षात् भगवान् हि रामानन्दोऽवतीर्णो ननु तीर्थराजे।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य सेवां त्वं श्रद्धया भक्तित आनुतिष्ठ॥81॥

साक्षात् भगवान् राम ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के रूप में यहाँ प्रकट हुए हैं इसलिए उन्हीं की तुम श्रद्धा और भक्ति से सेवा करो।

तस्मिन् प्रसन्ने यतिराजराजे योगर्द्धियुक्ता ननु सिद्धयस्ते।
हस्ते गता वै भवितार ईड्य ततः समाराधय तं गुरुं स्वम्॥82॥

यदि रामानन्दाचार्य जी प्रसन्न हो जायेंगे तो योग की ऋद्धियां और सभी सिद्धियाँ तुम्हारे हाथ में आ जायेंगी इसलिए तुम अपने गुरुदेव की ही आराधना करो।

गोविन्दतोऽप्यभ्यजको गुरुर्वै इत्येव नीतिं निगमो न्यगादीत्।
ततः समाराधय देशिकेशं संश्रेयसे गच्छ चिराय वत्स॥83॥

वेद की आज्ञा है कि भगवान् से भी अधिक गुरु होते हैं इसलिए तुम उन्हीं की आराधना करो और अब तीर्थ कल्याण के लिए यहाँ से प्रस्थान करो।

रामेश्वरोक्तं वचनं निशम्य लब्ध्वा प्रसादं वरमीड्यकीर्तेः।
चित्ते प्रसीदन् प्रणतश्च योगानन्दो जगामैव स तीर्थकानि ॥84॥

इस प्रकार रामेश्वर जी का वाक्य सुनकर और उनसे दिव्य वरदान लेकर योगानन्द जी चित्त में प्रसन्न होते हुए अन्य तीर्थों के लिए चले गये।

तीर्थानि सर्वाणि निषेवमानः सङ्गीयमानो विविधाप्सरोभिः।
प्रयागमासाद्य महानुभावो महामनस्वी मथुरां जगाम ॥85॥

इस प्रकार सभी तीर्थों का भ्रमण करते हुए देवताओं और अप्सराओं द्वारा दिव्य जिनके यश का गान हो रहा है ऐसे महान् मनस्वी योगानन्द जी मथुरा को आये।

तत्रार्ककन्यां कमनीयकान्तिं विगाह्य धीरो यदुवंशवीरम्।
ददर्श तापिच्छपयोदनीलं श्रीकृष्णचन्द्रं श्रुतिगीतलीलम् ॥86॥

वहाँ यमुना जी में स्नान करके योगानन्द जी ने नीले तमाल और बादल के समान नील कान्तिवाले वेद में जिनकी लीला गायी गयी है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी के दर्शन किये।

नीलोत्पलश्यामलदेहकान्तिं राधासमालङ्कृतवामभागम्।
वंशीधरं यष्टिधरं मुकुन्दं ननाम भक्त्या भवभावितञ्च ॥87॥

नील कमल के समान दिव्य कान्ति वाले राधा जी के द्वारा जिनका वाम भाग समलङ्कृत है ऐसे वंशीधर लकुटि को धारण करते हुए मुकुन्द, शङ्कर जी के द्वारा भावित भगवान् कृष्ण को भक्तिपूर्वक योगानन्द जी ने प्रणाम किया।

ददर्श तत्राऽथ निकुञ्जलीलां रासेश्वरीं वेदनिगूढशीलाम्।
राधां समुत्सारितघोरबाधां श्रीकृष्णचन्द्रास्यविधोश्चकोरीम् ॥88॥

इसके अनन्तर निकुञ्जों में जिनकी लीला है और वेदों में जिनका रहस्य छिपा हुआ है ऐसी संसार की बाधाओं को दूर करने वाली श्रीकृष्णचन्द्र के मुखचन्द्र की चकोरी राधा जी के, योगानन्द जी ने दर्शन किये जो रासेश्वरी हैं।

मुहुर्मुहुस्तौ प्रणिपत्य धीरो रासेश्वरीं रासरसं रसेशम्।
कृष्णां समासादितवान् स योगानन्दोऽप्ययोध्यां ननु वेदबोध्याम्॥89॥

इसके अनन्तर रासेश्वरी भगवती राधा रासरसिक श्रीकृष्णचन्द्र जी को बार-बार प्रणाम करके वेदों द्वारा बोधनीय श्रीअयोध्या नगर में योगानन्द जी पधारे।

वसिष्ठपुत्रीपरिपूतपाथो विगाह्य विद्वान् सुपुनीतनीरे।
रामं रमाराधितपादपद्मं ददर्श सीतासहितं हितेष्टम्॥90॥

वहाँ जाकर वशिष्ठपुत्री सरयूनदी में स्नान करके उन्हीं के तट पर जिनकी इन्द्रियें जगत् के हित में लगी रहती हैं ऐसे योगानन्द जी ने सीता जी के सहित लक्ष्मी भी जिनके चरण की आराधना करती हैं ऐसे भगवान् राम के दर्शन किये।

कलितभानुसुतं ससुतं सुतं परमभक्तियुताक्षमजस्य वै।
दशरथं परिवीक्ष्य महारथं सुखमुपेत्य ननाम स तापसः॥91॥

वहीं पर कौशल्या जी के सहित चारों पुत्रों को, जिनकी इन्द्रियाँ परमभक्ति से युक्त हैं ऐसे अजपुत्र दशरथ जी के साथ निहारकर योगानन्द जी ने उन्हें प्रणाम किया।

गङ्गासागरसङ्गममित्वा दृष्ट्वा यतीन्द्रवर्यं तम्।
सिद्धेश्वरमथ कपिलं नामं नामं बभौ प्रीतः॥92॥

योगानन्द जी गङ्गासागर सङ्गम को प्राप्त करके वहाँ अपने अंशी कपिल जी को निहारकर उनको बारम्बार प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हुए।

नवराजीवसमानं गलदभिमानं समुल्लसद्ध्यानम्।
कृतरघुवरगुणगानं दृष्ट्वा चित्तेऽभवत्प्रीतः॥93॥

नवीन लाल कमल के समान जिनकी कान्ति है जिनके मन में किसी प्रकार का अभिमान नहीं है, जो निरन्तर राम जी का गुणगान कर रहे हैं ऐसे कपिल को देखकर योगानन्द जी बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीमद्रामानन्दाचार्योऽप्यार्यो बभूव दृग्गामी।
स्वामी यतीश्वराणामन्तर्यामी कृपासिन्धुः॥94॥

उसी समय करुणा के सागर सम्पूर्ण यतिश्वरों के स्वामी आर्य जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य प्रकट हो गये।

योगानन्दो दृष्ट्वा स्पर्शं स्पर्शं तदीयपदपद्मम्।
निजसाधनसाफल्यं मत्वा कामं ययौ मोदम्॥95॥

योगानन्दाचार्य जी अपने सद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी को निहारकर उनके चरणों को प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हुए और अपने जीवन की सफलता का अनुभव किया।

अथावदत्तं जितवावदूको जगद्गुरुः श्रेयसि जागरूकः।
स यायजूको नतजञ्जपूकः स्वतेजसा दण्डितदन्दशूकः॥96॥

इसके अनन्तर अतिवादियों को जीतने वाले जन-कल्याण के विषय में सतत जागरूक, सतत रामनाम रूप महायज्ञ करने वाले और कुत्सित जप करने वालों का हनन करने वाले एवं अपने तेज से हिंसक सर्पों को दण्डित करने वाले जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य योगानन्दजी से बोले।

श्रृणुष्व मे त्वं हितयोगियोगानन्दोपदेशामृतपूर्णवाक्यम्।
श्रुत्वा यदद्धा पुरुषं पुराणं प्रपद्यते ना ननु रामचन्द्रम्॥97॥

हे योगानन्द! अब तुम हित से युक्त मेरा वह उपदेशामृत वाक्य सुनो जिसे सुनकर साधक मनुष्य पुराण पुरुष भगवान् राम को प्राप्त कर लेता है।

वेदान्तवेद्यो ननु रामचन्द्रो वैदेहिभर्ता जगदेककर्ता।
तत्रापि वादेषु शुभं विशिष्टाद्वैताख्यवादं प्रवदन्ति सन्तः98॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र वेदान्तवेद्य हैं, वही जानकीपति प्रभु जगत् के एकमात्र रचयिता हैं। उस वेदान्त में भी यद्यपि अनेकवादों की चर्चा है उनमें भी विशिष्टाद्वैतवाद को ही सन्तजन साधना पक्ष में अधिक शुभ कहते हैं।

त्रीण्येव तत्त्वानि वदन्ति सन्तो जीवश्च माया जगदीश्वरश्च।
जीवश्च सद् वै प्रकृतिर्ह्यसच्च ब्रह्म ह्युभाभ्यां खरजिद् विशिष्टम्॥99॥

इस विशिष्टाद्वैतवाद में तीन तत्त्व हैं- जीव, माया और जगदीश्वर भगवान् राम उनमें से जीव सत् है, माया अर्थात् प्रकृति असत् है और इन दोनों से विशिष्ट हैं खर राक्षस के विजेता परब्रह्म भगवान् राम।

रामेण सृष्टं जगदस्ति सत्यं नासत्यमेतन्नितरां त्रिकाले।
सत्ख्यातिवादो मम सम्प्रदाये विजृम्भतेऽसौ श्रुतिसम्मतो हि॥100॥

भगवान् के द्वारा रचा हुआ यह जगत् सत्य है। यह त्रिकाल में भी असत्य नहीं है इसलिए मेरे सम्प्रदाय में वेदसम्मत सत्ख्यातिवाद ही विराजमान है।

असद्धि चेत् स्याज्जगदेतदार्य तदा त्वसत् स्याद् गुरुशिष्यतत्त्वम्।
तदोपदेशो नितरामसत् स्यादसद् घटेत व्यवहारएष:॥101॥

यदि यह जगत् असत् हो तो गुरुशिष्यकर्म भी असत् हो जायेगा और गुरु का उपदेश भी असत् होगा और सम्पूर्ण शास्त्रीय व्यवहार भी असत् हो जायेगा।

यदा तु पञ्चीकरणप्रकारो रज्ज्वौ च सर्पस्य मतिश्च सत्या।
सर्वत्र सर्वस्य तु सत्त्वतो वै नासत्यमस्तीह च वस्तु किञ्चित्॥102॥

यदि पञ्चीकरण प्रक्रिया का विचार किया जायेगा तो रस्सी में सर्प की बुद्धि भी सत्य ही ठहरेगी क्योंकि वहाँ भी सर्प की अंशीभूत पृथ्वी है। अत: सभी में सब वस्तु होने के कारण कोई भी वस्तु यहाँ असत्य नहीं है।

अल्पस्य सत्त्वे किल पार्थिवादौ भ्रमव्यवस्था व्यवहारहानि:।
भूयस्त्वसत्त्वे व्यवहार एष: प्रवर्तते नेतरथा विचार्यम्॥103॥

जहाँ पार्थिवादितत्त्वों में पञ्चीकरण की प्रक्रिया में जलादि की अल्पसत्ता होती है वहाँ घटादि में जलादि की प्रतीति भ्रम माना जाता है; पर वहाँ भी जलादि की सत्यता है, भले ही उनका व्यवहार न हो। क्योंकि व्यवहार वहाँ होता है जहाँ पार्थिवादितत्त्वों की अधिकता होती है।

तस्माज्जगत्सत्यमिदं विभाव्य सत्ख्यातिवादस्य च प्रत्ययेन।
भजस्व रामं विपदां विरामं श्यामं परब्रह्म नृणां ललामम्॥104॥

इसलिए इस जगत् को सत्ख्यातिवाद के विश्वास के आधार पर सत्य मानते हुए विपत्तियों के अभाव-स्थान जीवात्मा के रत्नस्वरूप, श्यामवर्णी भगवान् राम का भजन करो।

रामो जनिस्थाननिरोधहेतुर्जगन्निवासो जगदेकनाथ:।
सीताभवो वै जगतो जगत्स्थो जगच्छरण्यो जगदेकबन्धु:॥105॥

भगवान् सीतापति श्रीराम ही सम्पूर्ण जगत् के जन्म, पालन और प्रलय के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। वे ही जगत् के निवास हैं। श्रीराम ही जगत् के एकमात्र नाथ हैं। प्रभु श्रीराम ही जगत् के एक बन्धु, सम्पूर्ण जगत् में विराजमान और जगत् के एकमात्र शरण्य हैं।

रामानन्दाचार्यो योगानन्दं निरीक्ष्य तमुवाच।
कपिलस्तवावतारी तस्मिन् विश सम्मुदा वत्स॥106॥

रामानन्दाचार्य जी ने योगानन्द जी को निहारा और कहा- "वत्स! ये कपिल तुम्हारे अवतारी हैं अब इन्हीं में लीन हो जाओ।"

एवं निवेश्य कपिले प्रियशिष्ययोगानन्दं निरीक्ष्य विबुधान् स्तुवतश्च भक्त्या।
अन्तर्दधौ सकलसद्गुणधामरामानन्दो ननन्द भगवान् ननु जानकीशः॥107॥

इस प्रकार अपने शिष्य योगानन्द जी को कपिल के तेज में विलीन करके अपनी स्तुति करते हुए देवताओं को देखकर सम्पूर्ण सद्गुणों के धाम रामानन्दाचार्य जी वहीं अन्तर्ध्यान हो गये और सीतापति भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए।

जयजयकारः समभूद्धाहाकारो जगाम वै पृथ्व्याः।
स्वाहाकारः समजनिर्निःशङ्काऽभूत् त्रिलोकी च॥ 108॥

इस प्रकार जय-जयकार होने लगा और पृथ्वी से हाहाकार चला गया। स्वाहाकार का फिर प्रारम्भ हुआ और त्रिलोकी शङ्कारहित हो गयी।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गोऽयं षोडशो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-
प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये षोडशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ सप्तदशः सर्गः॥

स्वायम्भुवश्चापि मनुर्मनीषी विचारयामास मनस्व्युदारः।
स एकदा दक्षकनिष्ठ एव धुरं वहन् धर्मभुवो भुवश्च॥01॥

एक बार स्वयं धर्म को प्रकट करनेवाली पृथ्वी का बोझ धारण करते हुए प्रथम मनु मनीषी स्वयम्भुव मनु ने उदार बुद्धि से अपने मन में विचार किया वे स्वयं प्रजापति दक्ष के कनिष्ठ भ्राता हैं और मननशीलों में सबसे श्रेष्ठ भी।

दशावतारा ननु शार्ङ्गपाणेर्मयैव दृष्टा मनुनान्तरे स्वे।
स्पृष्टाश्च पृष्टा ससुखेन वार्ताः सहोपविष्टा हृदि सन्निविष्टाः॥02॥

अरे! अपने ही मन्वन्तर में भगवान् के दशावतारों के मुझ मनु ने ही दर्शन किये, उनके स्पर्श किये, सुखपूर्वक कुशलक्षेम पूछा वे मेरे साथ एक आसन पर बैठे और मेरे हृदय में विराजे।

मत्पूर्वजाः श्रीसनकादयो वै ये मानसाः सूनव आब्जयोनेः।
ये पञ्चवर्षा हतपापकर्षा वीरव्रतं सादरमाचरन्ति॥03॥

अहो! जो ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र हैं, जो निरन्तर पाँच वर्ष की अवस्था में रहते हैं जिनके द्वारा पाप और कृशता का नाश किया गया है, जो आदरपूर्वक निरन्तर ब्रह्मचर्य का आचरण करते रहते हैं, वे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार मेरे सबसे बड़े भाई हैं।

देवर्षिरीड्यो मम पूर्वजन्मा श्रीनारदो वेदविशारदश्च।
यः पञ्चभी रात्रिभिरभ्युवाच तन्त्रं शुभं सात्त्वतपाञ्चरात्रम्॥04॥

वेद-विशारद स्तुति करने योग्य देवर्षि नारद भी तो मेरे बड़े भाई हैं जिन्होंने पाँच ही रात्रियों में अद्भुत वैष्णवतन्त्र 'पाञ्चरात्र' का कथन किया था।

तथाऽनुजो मे भगवान् मखात्मा वाराहरूपो धृतयज्ञयूपः।
यस्याधिदन्तं धरिणी विरेजे कादम्बिनीवाधिशरन् मृगाङ्कम् ॥05॥

इसी प्रकार मेरे छोटे भाई के रूप में भगवान् यज्ञात्मा यज्ञ के स्तम्भों को धारण करने वाले वाराह भी तो हैं जिनके दाँतों पर पृथ्वी उसी प्रकार सुशोभित हुई जैसे शरत्कालीन चन्द्रमण्डल में मेघमाला सुशोभित होती है।

मत्पौत्रपूतात्मतपोनियोगात् संतोषितस्तोषितभक्तवृन्दः।
सहस्रमूर्धा वरदित्सयाऽऽप्तो ध्रुवं ध्रुवाक्षो भगवान् व्यलोकि ॥06॥

क्या बात है समस्त भक्तों को सन्तोष देनेवाले भगवान् भी सहस्रशीर्षा अनन्त शिरों वाले प्रभु मेरे पौत्र ध्रुव के तपस्या से सन्तुष्ट होकर अपनी इन्द्रियों को भी अचल रखते हुए वरदान देने के लिए ध्रुव के पास आये। प्रभु मेरे द्वारा निहारे गये अर्थात् ध्रुव को वर देने के लिए आये सहस्रशीर्षा भगवान् के भी मैंने दर्शन किये।

मदन्वये लब्धजनिर्जनेशः पृथुः पृथिव्यामधिराजराजः।
यः सत्कथां श्रोतुमनन्तमूर्तिं वरं श्रुतीनामयुतं ययाचे ॥07॥

मेरे ही वंश में अवतार लिये पृथु जो कि राजाओं के भी राजा हैं उन्होंने जन्म लिया जिन्होंने संतों के मुँह से भगवान् की कथा सुनने के लिए भगवान् से दस हजार कान वरदान में माँगे थे।

मम द्वितीयस्य सुतस्य वंशे नाभेः किलासीदृषभोऽच्युतोऽयम्।
यः शिक्षयन् पारमहंसचर्यां भ्रमंस्त्रिलोकीं सुखयाञ्चकार ॥08॥

मेरे द्वितीय पुत्र प्रियव्रत के वंश में साक्षात् नाभि के यहाँ भगवान् ऋषभ का अवतार हुआ जिन्होंने परमहंसचर्या का उपदेश करते हुए सम्पूर्ण तीनों लोकों को सुखी कर दिया था।

आकूतितो मे प्रथमात्मजायां जज्ञेऽथ यज्ञो ननु वेदविज्ञः।
इन्द्रो भवन् यो भगवाननन्तो मां राक्षसेभ्यो नितरां ररक्ष ॥09॥

इसी प्रकार मेरी प्रथम पुत्री आकूति से जन्म लेकर अपना स्वयं का नाम यज्ञ धारण करते हुए इन्द्र बनकर भगवान् ने राक्षसों से मेरी रक्षा की।

मम द्वितीया किल देवहूतिः पुत्री धरित्रीव सुखं दधार।
गर्भे स्वकीये कपिलं कृपालुं यः साङ्ख्यमाचार्यतया न्यगादीत्॥10॥

मेरी द्वितीय पुत्री ने पृथ्वी की भाँति भगवान् कपिल को अपने गर्भ में धारण किया जिन्होंने आचार्य बनकर साङ्ख्यशास्त्र का व्याख्यान किया।

तस्या द्वितीया च सुतानसूया श्रीदत्तमीशं सुषुवे सुखेन।
यत्पादपद्मं परिसेवमाना योगर्द्धिमापुर्यदुहैहयाद्याः॥11॥

मेरी द्वितीय पुत्री की पुत्री अनुसूया ने दत्त जी को जन्म दिया जिनके चरणकमलों की सेवा करते हुए यदु और हैहय आदि राजाओं ने योगसिद्धि प्राप्त की थी।

ममात्मजाया विरजोऽन्तिमायाः पुत्र्यां च मूर्त्यां भगवान् किलासीत्।
नरश्च नारायण एव नाम्ना यो वा तपस्यत्यधिशैलराजम्॥12॥

मेरी अन्तिम पुत्री प्रसूति की बेटी मूर्ति में साक्षात् नर-नारायण के रूप में भगवान् आये जो आज भी हिमालय पर जनों के कल्याण के लिए तपस्या कर रहे हैं।

एवं मया स्वे प्रथमेऽन्तरे वै दृष्टा निदिष्टाश्च दशावताराः।
स्वधर्मसाराहृतभूरिभाराः सुनिर्विकारा विहिताधिकाराः॥13॥

इस प्रकार दसों अवतारों को मैंने अपने प्रथम मन्वन्तर में निहार लिया। स्वधर्म ही जिनका तत्त्व है, जो निर्विकार हैं और अपने-अपने अधिकार में लगे रहते हैं।

दशावतारा ननु शार्ङ्गपाणेः सुखैकसारा बहुशश्च दृष्टाः।
अंशी च तेषां जगदेकनाथः साकेतनाथोऽपि सुतोऽभ्यधायि॥14॥

मैंने दशावतारों के बहुत बार दर्शन किये और उनके अंशी साकेतनाथ भगवान् श्रीराम के भी बहुत दर्शन किये और उन्हें अपना पुत्र भी बनाया।

श्रीरामचन्द्रः सुषमासमुद्रो मया स्वके दृष्टपथेऽभ्यधायि।
तं पुत्रभावेन च सेवमानो राजाऽभवं पङ्क्तिरथोऽध्ययोध्यम्॥15॥

सुषमा के सागर भगवान् रामचन्द्र जी ही इस संसार में मेरे पास साक्षात् आए। मेरी विडम्बना ये थी कि मैं पुत्रभाव से उनका सेवन करता था और उसका फल हुआ कि सप्तम

मन्वन्तर में मैंने दशरथ राजा बनकर अयोध्या में जन्म लिया। भगवान् राम की मैंने सेवा की और अयोध्या में मैं दशरथ बना।

जगत्पितुश्चापि पिता ह्यभूवमपीपलं सर्वजनैकपालम्।
तं राघवं पुत्रधियाऽभिपश्यन् जगाम तृप्तिं न हि लोचनस्य॥16॥

सारे संसार के पिता का पिता बनकर सम्पूर्ण जगत् के पालक परमात्मा का मैंने पालन किया यही तो मेरी विडम्बना थी। इसीलिए मेरे नेत्र प्रभु को निहारते भी तृप्त नहीं हो पाये।

श्रीरामचन्द्रं सुतभावतोऽहं ह्यलालयं वत्सलतासमेतः।
न दासभावेन कदापि चैनं सिषेव ईड्यं रघुनाथमीशम्॥17॥

मैं क्या करूँ, मैंने पुत्रभाव से ही भगवान् का पालन किया और कभी भी दास्यभाव से उनकी सेवा नहीं की।

न दासभावेन विना कदाचिद् भक्तिर्हरौ जायत ईड्यकीर्तिः।
ततश्च दास्यं मनसीह बिभ्रत् सेवेय रामस्य पदारविन्दम्॥18॥

दास्य भाव के बिना भगवान् की भक्ति कभी हो नहीं सकती इसलिए अब मैं दास्य भाव से भगवान् की भक्ति करूँ।

त्रेतायुगे पङ्क्तिरथावतारे न सम्भवो मे ननु दास्यभावः।
कलौ पुना राजकुलेऽवतीर्णो दास्येन सेवेय कृपानिधानम्॥19॥

त्रेता में दशरथ का अवतार लेने पर तो मेरे लिए दास्य भाव सम्भव नहीं था, इसलिए कलियुग में फिर राजकुल में अवतीर्ण होकर मैं दास्यभाव से भगवान् की सेवा करूँ।

ममापराधस्य च जातु प्रायश्चित्तं तथैकं हि मया व्यलोकि।
दास्येन नित्यं रघुनाथसेवा नान्योऽस्त्युपायो निरुपायकस्य॥20॥

मेरे अपराध का एक ही प्रायश्चित मैंने देखा, वह यह कि मैं दास्य भाव से प्रभु की आराधना करूँ। मुझ उपाय शून्य व्यक्ति के लिए और कोई दूसरा उपाय है ही नहीं।

एवं विचिन्त्यैव धियाधिराजो निश्चित्य नैजं च नरावतारम्।
कलौ युगे राघवसेवनाय पीपाप्रतापः समभून् मनुर्वै॥21॥

इस प्रकार विचार करके स्वायम्भुव मनुजी पुनः मनुष्यावतार लेने का निश्चय करके कलियुग में पीपाप्रताप नाम से अवतरित हुए।

वात्सल्यभावेन निषेवमाणः साकेतनाथं तमनाथनाथम्।
वहन् रतिं चेतसि वत्सलां तां प्रेमाणमाविष्कृतवानहं यम्॥22॥

वात्सल्य भाव से अनाथों के नाथ साकेतनाथ भगवान् राम की सेवा करते हुए अपने चित्त में मैंने वत्सलारति को धारण किया और जिस भगवत्प्रेम को मैंने त्रेतायुग में आविष्कृत किया था, उसी को इस बार भी आविष्कृत करूँ।

सा रामभक्तिर्धृतसर्वशक्तिः प्रेमा स वै वैश्रवणानुजारौ।
कलावुभौ भग्नविभौ विभातो रात्राविवाम्भोजनिकासरोजे॥23॥

सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त वह श्रीराम-भक्ति और वैश्रवण कुबेर के छोटे भाई रावण के शत्रु भगवान् राम में जो वह प्रेम पूर्व में प्रकट हुआ था, वे दोनों इस कलिकाल में इसी प्रकार काम से रहित हो चुके हैं जैसे रात्रि में कमलिनी और कमल कान्ति से रहित हो जाते हैं।

तां रामभक्तिं भगवत्प्रपत्तिं प्रेमाणमीड्यं तमथो खरारौ।
प्रचारयेयं च कलौ कराले भूयोऽप्यहं भारतवर्ष एव॥24॥

उसी भगवच्छरणागति से युक्त श्रीराम-भक्ति को और भगवान् राम के प्रति उसी प्रेम को मैं इस इस भारतवर्ष में आकर फिर प्रचारित करूँ।

वात्सल्यबुद्ध्या समुपासनायां न रामपादौ परिचर्चितौ भोः।
तदङ्घ्रिपाथोजनिषेवणोत्को दासो भवन् भारतमभ्युपेयाम्॥25॥

अरे! वात्सल्यबुद्धि से उपासना होने के कारण मैं भगवान् राम के चरण की सेवा नहीं कर पाया। अब उन श्रीराम के चरणकमलों की सेवा के लिए उत्सुक होकर दास्य भाव से युक्त होता हुआ मैं भारत में अवतार लूँ।

पुराऽन्वहं भूमिपचक्रवर्ती राजाऽभवं पङ्क्तिरथेतिनामा।
स चैव राजर्षिकुले प्रसूतः पीपाप्रतापो भवितास्मि भक्त्यै॥26॥

मैं पहले त्रेतायुग में दशरथ नाम से विख्यात राजाओं का चक्रवर्ती बना वही मैं इस बार भी राजर्षि के कुल में उत्पन्न होकर भगवद्भक्ति के लिए पीपाप्रताप बन जाऊँगा।

पुरा तु गार्हस्थ्यमुपेत्य धर्मं कैकेयिसंशक्तमनस्त्वहेतोः।
रामं नवाम्भोजदलाभिरामं व्यवासयं दण्डककाननञ्च ॥27॥

पहले गार्हस्थ्य धर्म को धारण करते हुए कैकेयी में आसक्त मन के कारण नवीन कमल के समान सुन्दर प्रभु श्रीराम को मैंने घोर वन में भेज दिया था।

अहं च तत्पादपयोजसेवी यतीभवन् तं रघुनाथमेव।
द्रष्टुं व्रजेयं विपिनञ्च घोरं व्रतीभविष्यन् व्रतमाचरिष्यन् ॥28॥

अब वही मैं भगवान् राम के चरण की सेवा से युक्त होने के लिए स्वयं संन्यासी के वेश में आये हुए श्रीरामानन्दाचार्य के दर्शनों के लिए व्रत का आचरण करने हेतु व्रती होकर वन में स्वयं जाऊँ।

स्मरामि पूर्वं शतरूपयाऽहं सार्धं चरिष्यामि तपोऽनवद्यम्।
द्रष्टुं खरारेश्चरणारविन्दं योगीन्द्रवन्द्यं नितरामनिन्द्यम् ॥29॥

मुझे स्मरण है कि मैंने अपनी पत्नी शतरूपा के साथ योगीन्द्रों द्वारा वन्दनीय अत्यन्त अनिन्द्य भगवान् श्रीराम के चरण-कमल के दर्शनों के लिए नैमिषारण्य में घोर तप किया था।

सैवाधुना मे किल पूर्वपत्नी देहं ग्रहीष्यत्यथ भारतेऽस्मिन्।
गुणेन सीतासहचर्यनिन्द्या पतिव्रतारत्नवदान्यवन्द्या ॥30॥

वही गुणों से अनिन्दित निर्दोष मेरी पत्नी शतरूपा इस बार फिर शरीर धारण करेंगी और उनका नाम सीतासहचरी होगा जो पतिव्रताओं और उदारों द्वारा वन्दित होंगी।

शतरूपा मम पत्नी कौशल्याऽभूत्सुखेन त्रेतायाम्।
सैवेदानीं सीतासहचरिनामा सती भविता ॥31॥

मेरी जो शतरूपा नाम की पत्नी थी जब मैं दशरथ बना तो कौशल्या बनीं। इस समय मैं जब फिर अवतार ले रहा हूँ तो ये सीतासहचरी नाम से भारतवर्ष में अवतरित होंगी।

कैकेय्या वरदानान्नाहमपश्यं सुखेन तं रामम्।
सिंहासनस्थमीशं रविमिव मुक्तं ग्रहाद्राहोः ॥32॥

कैकेयी को दिये हुए वरदान के बाद मैं भगवान् राम को राहु के ग्रहण से मुक्त सूर्य की भाँति जाज्वल्यमान सिंहासन पर बैठे नहीं देख पाया।

सम्प्रति जगदाचार्यं रामानन्दं यतीन्द्रमनिवार्यम्।
सिंहासनस्थमीड्यं भूयो भव्यं समेतास्मि॥33॥

इस समय मैं जगत् के एकमात्र आचार्य और जिनको कभी कोई रोक नहीं पाया ऐसे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को छत्र-सिंहासन से युक्त निहारकर धन्य हो जाऊँगा।

रामानन्दाचार्यं साक्षाद्रामं मनोभिरामं तम्।
जाने लसदवतारं भूभारं हर्तुकामं च॥34॥

मैं यह जानता हूँ कि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य कोई साधारण नहीं है भगवान् राम ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के रूप में अवतरित हुए हैं और वे भू-भार दूर करना चाह रहे हैं।

षष्ठः सुयोग्यशिष्यः सपदि च भूत्वा जगद्गुरोस्तस्य।
सेवे पदारविन्दं मुनिगणवन्द्यं सदाऽनिन्द्यम्॥35॥

उनका छठा शिष्य बनकर मैं अब यतीन्द्र शेखर रामानन्दाचार्य जी के उन चरणकमलों की सेवा करूँ जो मुनिगणों से वन्द्य हैं और निरन्तर अनवद्य है।

इत्येव निश्चित्य मनस्यमोघसङ्कल्पवान् कल्पितचित्तवृत्तिः।
श्रीरामचन्द्रस्य पदारविन्दे पीपाप्रतापः स बभूव राजा॥36॥

इस प्रकार भगवान् राम के चरण में अमोघ सङ्कल्प वाले मनु जी मन में निश्चय करके और भगवान् श्रीराम के प्रति चरण में अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति को कल्पित करके पीपाप्रताप नाम के राजा बने।

दुर्गे प्रसिद्धे किल गागरोने लग्ने सुयोग्ये ननु सिद्धभोग्ये।
पीपाप्रतापः समभून्नृपेन्द्रः प्रतापसन्तापितशत्रुवर्गः॥37॥

प्रसिद्ध गागरोन गढ़ में सिद्धों के भोग्य सुयोग्य लग्न में अपने प्रताप से शत्रु वर्ग को सन्तापित करने वाले पीपाप्रताप महाराज उत्पन्न हुए।

जगुः कलं तस्य मनोज्ञकीर्तिं गन्धर्वमुख्याः सहचारणाश्च।
देवाङ्गनाः सन्ननृतुः प्रसन्ना देवाः प्रसूनैर्व्यकिरंस्तदानीम्॥38॥

उस समय गन्धर्वों ने दिव्य गीत गाये, सिद्ध-चारणों के सहित अप्सराएं नाचीं और देवताओं ने महाराज को पुष्पों से ढक दिया।

पीपाप्रतापोऽपि महाप्रतापी स्वशत्रुतापी सुभगः कलापी।
दिने दिने सद्मनि वर्धमानो चन्द्रो यथा राजति शुक्लपक्षे ॥39॥

महाप्रतापी अपने शत्रुओं को तप्त करनेवाले, शिर पर मयूर पिच्छ धारण करने वाले पीपाप्रताप अपने घर में लालित-पालित होकर बढ़ते हुए उसी प्रकार सुशोभित हुए जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा।

भार्यासु बह्वीषु सतीषु राजा रराज राजीवदलाक्ष एव।
तिष्ठत्स्वमात्येषु सदैव विद्वान् सम्पालयामास च गागरोनम् ॥40॥

पतिव्रता पत्नियों के उपस्थित रहने पर और विद्वान् मन्त्रियों के उपस्थित रहने पर पीपाप्रताप महाराज बहुत सुशोभित हुए। उनके नेत्र भी लालकमल के समान थे।

स चापि भक्तो भववान् भवान्यास्तत्पादपङ्केरुहमञ्जुभृङ्गः।
सन्तोषयामास तपःप्रभावात् देवी वरं ब्रूहि गिरं जगाद ॥41॥

पहले वे भवानी पार्वती के भक्त थे और अपने दिव्य उपचारों से पीपाप्रताप महाराज ने देवी को प्रसन्न कर लिया और देवी ने भी उनसे वरदान माँगने को कहा।

सुधोपमां देविगिरं निशम्य महामनस्वी परिभाव्य चित्ते।
संसारसिन्धोर्नितरां विमुक्तिं देवीं ययाचे स नृपालवर्यः ॥42॥

महाराज पीपाप्रताप ने अमृत के समान देवी की वाणी सुनकर उनसे संसारसागर से मुक्ति माँगी।

मुक्तो भवेयं भवसिन्धुतोऽहं जगज्जनन्याश्च वरप्रसादात्।
चित्ते मदीये न हि चान्यदाशा गलन्निराशा विगलद्दुराशा ॥43॥

हे माँ! आपके प्रसाद से मैं इस संसार-सागर से मुक्त हो जाऊँ। निराशा और दुराशा से रहित मेरे मन में कोई दूसरी आशा नहीं है।

जन्मष्वनेकेषु भवाब्धिमध्ये जीवो निमज्जन् नितरां निराशः।
पापच्यमानो भवघोरवह्नौ हा हन्त हा रोदिति भग्नसौख्यः ॥44॥

अनेक जन्मों में यह जीव संसार-सागर में निमग्न होता हुआ दुःख की अग्नि से पकाया हुआ 'हा! हा!' इस प्रकार कहकर रोता रहता है।

तस्मादहं घोरभवाब्धिमध्ये ह्यनादिकालात् पतितो दुरात्मा।
तन्मुक्तिमेवादिशिवां प्रयाचे प्रसीद मातर्मयि मा प्रकुप्य॥45॥

इसलिए इस संसार-सागर से मैं मुक्ति चाहता हूँ। हे माँ! आप प्रसन्न हो जाइए, क्रोध मत कीजिए।

जगाद देवी वचनं महार्थं सत्यस्य सारं परमार्थहारम्।
पाथेयभूतं किल वैष्णवानां सिद्धान्तमीड्यं ननु राघवीयम्॥46॥

इसके अनन्तर देवी दुर्गा जी ने पीपाप्रताप जी से यह वचन कहा जिसका अर्थ महान् था। जो सत्य का सार था, जो परमार्थ रूप पुरुष के हृदय का हार था, जो वैष्णवों का पाथेय था और जो राघव जी के भक्तों का श्रेष्ठ सिद्धान्त था।

जगाद देवी वचनं महार्थं सत्यस्य सारं परमार्थहारम्।
व्योमामृतं निर्जितकोटिसोमं सिद्धान्तसंह्लादितशङ्करोमम्॥47॥

भगवती दुर्गा देवी ने पीपाप्रताप जी से यह वचन कहा जिसका अर्थ महान् था जो सत्य का भी सारतत्त्व था। जो परमार्थरूप पुरुष के हृदय का हार था, जो आकाश का अमृत था। जिसने अपने माधुर्य से करोड़ों चन्द्रमाओं को जीता था और जिसने अपने सिद्धान्त से शङ्कर जी को और पार्वती जी को भी आह्लादित किया था।

श्रृणुष्व राजन् वचनं मदीयं लक्ष्यं निजं निश्चिनु चाद्वितीयम्।
सिद्धान्तभूतं किल वैष्णवीयं राद्धान्तमीड्यं ननु राघवीयम्॥48॥

हे राजन्! समस्त वैष्णवों के पाथेयस्वरूप राघव जी के उपासकों के लिए स्तुत्य सिद्धान्तस्वरूप मेरे वचन को सुनो और इसी के अनुसार अपने लक्ष्य को निश्चित कर लो।

रामो वरेण्यो जगतां शरण्यः स सर्वलोकप्रिय एव साधुः।
देवाधिदेवः श्रितसर्वदेवः कशम्भुचक्रीप्सितपादसेवः॥49॥

हे राजन्! भगवान् राम ही वरण करने योग्य हैं, वे ही सम्पूर्ण संसार के शरण्य हैं, वे ही सर्वलोक के प्रिय हैं, वे ही साधु हैं। श्रीराम देवताओं के भी अधिदेव हैं, सम्पूर्ण देवता श्रीराम की ही शरण करते हैं, यहाँ तक कि ब्रह्मा, शङ्कर और विष्णु जी भी उनके चरण की सेवा की इच्छा रखते रहते हैं।

यस्याङ्घ्रिपाथोजनखांशतो वै विरञ्चिविश्वेशसहस्रकाणाम्।
भवत्यथो जन्म न कापि शङ्का रामाङ्घ्रिसेवाहृतसत्कलङ्का ॥50॥

हे राजन्! जानते हो जिनके चरण-कमल के नख की किरण से ही करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों विष्णु और करोड़ों शङ्करों का जन्म हो जाता है इसलिए भगवान् राम की सेवा सम्पूर्ण शङ्काओं को दूर करती है और वही सन्तों के कलङ्कों को भी दूर करती है।

स देवतानां ननु दैवतं भोः परं प्रसिद्धं श्रुतिशास्त्रसिद्धम्।
विष्णोश्च विष्णुः प्रथितः श्रियः श्रीर्लक्ष्म्याश्च लक्ष्मीः शुभगात्रलक्ष्मीः ॥51॥

वही भगवान् राम देवताओं के भी परमदेवता प्रसिद्ध हैं वही विष्णु के भी विष्णु लक्ष्मी के भी लक्ष्मी हैं और उनके शरीर में दिव्य कान्ति है।

यमानिलेन्द्रार्कशशीशसिंहा रश्म्यश्वकीराहिकपीन्द्रभेकाः।
वर्णा हरित्कापिलकास्तथैव ये कोषजुष्टा हरिशब्दवाचः ॥52॥

यहाँ तक कि कोश में जो यम, वायु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, विष्णु, सिंह, घोड़ा, किरण, तोता, सर्प, वानर, मेंढक हरितवर्ण और कपिलवर्ण ये जो हरि के वाच्य कहे गए हैं।

हेतुः समेषां नितरां हरीणां गौणीजुषां शब्दविचारबुद्ध्या।
रामो रमाराधितपादपद्मो हरिर्हरीणां हरिरेव रामः ॥53॥

किम्बहुना, जो गौणी वृत्ति से हरि शब्द के वाच्य कहे गए हैं, सबके हेतु भगवान् राम ही हैं, वही हरि के हरि हैं। यहाँ तक कि हरि ही राम हैं राम ही हरि हैं।

या च प्रसिद्धोपनिषत्कलेश्च प्रोज्जृम्भिता सन्तरणप्रयत्नैः।
तस्यां हरे राम इतीव मन्त्रे रामप्रयुक्तो हरिरष्टकृत्वा ॥54॥

यहाँ तक कि कलिसन्तरणोपनिषद् में जो,

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'

यह मन्त्र कहा गया है इसमें श्रीराम जी ही आठ बार हरि शब्द के द्वारा कहे गए हैं।

रामो हरिर्वेदपुराणसिद्धो हरिर्हरीणां नृहरिर्नराणाम्।
तस्माद् हरिं तं शरणं व्रज त्वं रामाभिधं नात्र विचारणा भोः ॥55॥

राम जी ही हरि रूप में वेद–पुराणों में प्रसिद्ध है। वही हरियों के भी हरि हैं और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। इसलिए अब तुम राम जी की ही शरण में जाओ, किसी प्रकार की विचारणा मत करो।

प्रयाहि तस्माच्छरणं हरीशं रामं समाह्लादितसद्धरीशम्।
महानुभावं प्रथितं हरीशं सनातनं सर्वगतं हरीशम् ॥56॥

इसलिए, राजन्! राम जी हरियों के ईश्वर हैं और राम जी की सेवा में सन्त और हनुमान् जी विराजते हैं। वही सर्वव्यापक हैं अतः उन श्रीराम की शरण में चले जाओ।

सीता तदीया घटकत्वमाप्ता प्राप्ता प्रतीता श्रुतिगीतगीता।
भावेन नीता हृदयं जनानां हरत्यविद्यां प्रणतप्रतीता ॥57॥

इस शरणागति में सीता जी एकमात्र विश्वासपूर्ण घटक हैं वे ही श्रीराम की पत्नी, परम विनीत, श्रुतियों में जिनके गीत गाये गये हैं वे सीता जी ही इस शरणागति में घटक की भूमिका निभायेंगी।

संश्रावयत्येव हरिं च रामं सा जीवकष्टं सुखशान्तिनष्टम्।
जीवं पुनर्द्रावयति स्वनाथपादारविन्दे घटकत्वमित्वा ॥58॥

सीता जी समस्त जीवों के कष्ट को भगवान् को सुनाती हैं और भगवान् को जीव पर द्रवित कर देती हैं यही उनके घटकत्व की भूमिका है।

यावन्न सीतापदपद्मयुग्मं संसेवते मोहवशाद्धि जीवः।
तावन्न चाप्नोति कृपानिधानं रामं विधायाऽपि प्रयत्नकोटिम् ॥59॥

जब तक जीव सीता जी के चरण–कमल की सेवा नहीं करता तब तक कितना भी यत्न कर ले वह राम जी को नहीं प्राप्त कर सकता।

सिनोति सीता निजदोर्लतायां रामं त्रिलोक्या नयनाभिरामम्।
तस्माच्च सीतेति शुभा विधाना अन्वर्थनामा ननु रामरामा ॥60॥

सीता जी अपने बाहु की लता में भगवान् राम को बाँध लेती हैं इसलिए उनका 'सीताराम' अन्वर्थ नाम है, यथार्थ नाम है। सिनोति इति सीता।

सीता सदा सीयत एव रामभुजैकवल्यां धृतमञ्जुमल्याम्।
ततोऽपि सीतेति प्रगीयते सा शब्दान्तनिष्ठा धृतरामनिष्ठा ॥61॥

सीता जी स्वयं भगवान् राम की भुजालता में बद्ध हो जाती हैं इसलिए निष्ठा प्रत्यर्थ का प्रत्यय करके श्रीरामनिष्ठ सीता जी की व्युत्पत्ति की जाती है।

तां चिन्तयन् मैथिलराजकन्यां तत्पादपाथोजमनोज्ञधूलिम्।
वहन् स्वमूर्ध्ना कृतकृत्यतायाः काष्ठां परामेष्यसि राजपुत्र ॥62॥

इसलिए सीता जी के चरण-कमल का चिन्तन करके और उनकी कृपा से श्रीरामचन्द्र में तुम निष्ठा प्राप्त कर लोगे और हे राजपुत्र! तुम धन्य-2 हो जाओगे।

लब्ध्वेह सीतैककृपां कृपालुर्विमुक्तदोषो दयितो दयालुः।
श्रीरामचन्द्रस्य कृपाप्रासादप्रासादमारोक्ष्यसि राजपुत्र ॥63॥

इसी प्रकार सीता जी की कृपा को प्राप्त करके भगवान् को सन्तुष्ट करके तुम भगवान् के कृपाप्रसाद के प्रासाद को प्राप्त कर लोगे। अर्थात् भगवान् के प्रसादरूप राजमहल में तुम निवास करोगे।

भुक्तिश्च मुक्तिश्च सदैव भक्तेर्दास्यौ प्रतीते कथिते मुनीन्द्रैः।
द्वयोश्च राज्ञी रघुनाथभक्तिर्भनक्ति भावेन समा विभक्तिः ॥64॥

भुक्ति और मुक्ति दोनों भगवान् राम की भक्ति की दासी हैं वही भक्ति सबकी रानी है।

राज्ञे च भक्तिर्ननु रावणारेर्भुक्तिश्च मुक्तिश्च तदीयदास्यौ।
तयोः स्पृहां वै मनसा विहाय भजस्व सीतेशपदारविन्दम् ॥65॥

भुक्ति और मुक्ति ये दोनों भगवान् की दासियाँ हैं। रानी तो केवल भगवान् की भक्ति हैं। इसलिए भुक्ति और मुक्ति की स्पृहा को छोड़कर भगवान् सीतापति के चरण-कमलों का भजन करो।

ये ब्रह्मणो दाशरथेश्च भक्ता अनन्यभावा सगुणस्य भूम्नः।
ते नैव भुक्तिं न किलाथ मुक्तिं रामं प्रयाचन्त इहैकचित्ताः ॥66॥

जो भगवान् राम के अनन्य निष्ठ हैं वे भगवान् से मुक्ति और भुक्ति की याचना करते ही नहीं। वे तो एकचित्त होकर भगवान् राम से केवल भगवान् राम को ही माँगते हैं।

ये वै प्रसिद्धाः सुगुणस्य भक्ता रामस्य ते नैव समर्दयन्ति।
भुक्तिं च मुक्तिं सदनन्यभावास्तेभ्यो हरी राति च भक्तियोगम्॥67॥

जो भगवान् के सगुण-साकार के भक्त होते हैं वे भगवान् से भुक्ति-मुक्ति कभी नहीं माँगते और भगवान् उनको भक्तियोग ही देते हैं।

भुक्तिस्पृहां मारिष मुक्तिवाञ्छां विहाय दूराद् विदितात्मतत्त्वः।
प्रेमाब्धिमग्नो हरिभावलग्नो भजस्व राजीवदृशं खरारिम्॥68॥

इसलिए हे राजन्! भुक्ति-स्पृहा और मुक्ति-स्पृहा इन सबको दूर छोड़कर प्रेम-सागर में मग्न हुए भगवान् के भाव में लगकर उन राजीवलोचन भगवान् श्रीराम का भजन करो।

रामश्च साक्षाद् भगवान् हि रामानन्दस्वरूपेण किलावतीर्णः।
श्रीभारते भारतिनोदितस्त्वं श्रीरामचन्द्रं शरणं व्रजार्य॥69॥

भगवान् राम ही रामानन्दाचार्य के स्वरूप में अवतीर्ण हुए हैं इसलिए उन्हीं की शरण में तुम चले जाओ।

प्रयाहि काशीं ननु पुण्यराशिमलं विलम्बेन नराधिराज।
सेवस्व तं स्वामिवरञ्च रामानन्दं समानन्दितसाधुवर्गम्॥70॥

इसलिए पुण्यराशि से युक्त तुम काशी में चले जाओ और वहाँ सन्तों को आनन्दित करने वाले भगवान् रामानन्दाचार्य की सेवा करो।

व्यथां खलूक्त्वा जगति प्रपञ्चमलं हि गत्वा नरराजराज।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं मुदा भावय भावगम्यम्॥71॥

इसलिए अब बहुत कहना ठीक नहीं है और व्यथा से भी कोई लाभ नहीं होगा। काशी जाओ और जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य की सेवा करो।

काशीं समागत्य जगद्गुरूणां पादारविन्दे प्रणिपत्य मूर्ध्ना।
जग्राह तेभ्यः किल राममन्त्रदीक्षां प्रतीक्षां भगवत्प्रपत्तेः॥72॥

पीपाप्रताप ने भगवती दुर्गा के निर्देश से काशी आकर जगद्गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके उनसे श्रीराममन्त्र की दीक्षा ली जिसमें भगवान् की प्रपत्ति अर्थात् शरणागति की प्रतीक्षा निहित है।

तेषां निदेशं शिरसैव बिभ्रन्निवर्तितः सन् किल गागरौनम्।
विचिन्तयामास गुरोर्मुखाब्जसौन्दर्यमत्यद्भुतमाधिहर्तृ ॥73॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के निर्देश से पीपाप्रताप जी अपने गागरौन नगर को लौटे; पर वो निरन्तर जगद्गुरु जी के चरणकमल का चिन्तन करते रहे जो समस्त मानसिक व्यथाओं को दूर करने वाला था।

तदेव पादाम्बुजमत्युदारं कराम्बुजं तत् सरसीरुहाभम्।
मुखाम्बुजं तत्कमनीयशोभं तामेव वाचं भवरोगहन्त्रीम्॥74॥

जगद्गुरु जी के उन्हीं उदार चरण-कमलों को और कमल के समान कोमल उन श्रीहस्तों को, कमनीय शोभा वाले उस मुखकमल को और भवरोगनाशक उस वाणी को पीपाप्रताप ने अपने चिन्तन का विषय बना लिया।

क्षुन्नो दिवा नैव निशासु निद्रा दिवानिशं देशिकचिन्तनञ्च।
वियोगवातैजितसच्छरीरो धीरोऽपि राजा न जगाम शान्तिम्॥75॥

उन्हें दिन में भूख नहीं लगती थी और रात में नींद नहीं आती थी। केवल गुरुदेव का चिन्तन उनके मन का विषय था। गुरुदेव के वियोगरूप वायु से राजा का शरीर काँपता रहता था। धीर होकर भी महाराज शान्ति को प्राप्त नहीं कर रहे थे।

जगद्गुरुर्विह्वलतां विलोक्य पीपाप्रतापस्य च शिष्यकस्य।
जगाम तं दर्शयितुं स्वरूपं स्वजैत्रयात्रामिषतो यतीन्द्रः॥76॥

पीपाप्रताप की विह्वलता को देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी भावुक हो गये और विजय यात्रा का बहाना लेकर यतिराज अपने स्वरूप का दर्शन कराने के लिए गागरौन गढ़ आये।

विजित्य मार्गे किल बौद्धजैनान् पाखण्डिनो दारुणचारवाकान्।
शास्त्रार्थयुद्धेषु यतीन्द्रवर्यः सशिष्य आयात् किल गागरौनम्॥77॥

मार्ग में बौद्ध-जैन-चार्वाकों को जीतते हुए अपने शिष्यों के सहित जगद्गुरु जी गागरौन आ गये।

पीपाप्रतापस्तु निशम्य दूरादायातमीड्यं स्वगुरुं शरण्यम्।
अभ्याययौ स्वैः सचिवैः परीतो लसत्सुसैन्यो हृदि रूढदैन्यः ॥78॥

पीपाप्रताप अपने गुरुदेव को दूर से ही आते हुए सुनकर हृदय में दैन्य भाव धारण करते हुए मन्त्रियों एवं सेना के सहित उनकी अगवानी करने के लिए आये।

रथादवस्कन्द्य निपत्य भूमौ प्रणम्य मूर्ध्ना किल देशिकेन्द्रम्।
दधार मूर्ध्ना गुरुपादपद्मधूलिं प्रतीक्षां हि जगत्सुखानाम् ॥79॥

दूर से ही रथ से लुढ़ककर पीपाप्रताप जी ने अपने सद्‌गुरु के चरणकमल की धूलि को प्रणाम किया और मस्तक पर लगाया क्योंकि उसी में समस्त सुखों की प्रतीक्षा छिपी हुई है।

पीपाप्रतापं गतसर्वतापं पादाब्जमूले प्रणतं प्रतीक्ष्य।
उत्थाप्य दोर्भ्यां परिषस्वजे स गुरोः कृपैवेप्सितकामधेनुः ॥80॥

पीपा प्रताप जी को अपने चरण में प्रणत देखकर जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उन्हें अपनी भुजाओं से उठाया और हृदय से लगा लिया क्योंकि गुरुदेव की कृपा ही समस्त अभीप्सित वस्तुओं के लिए कामधेनु के समान है।

आरोप्य सिंहासनमेव नैजं समर्चयामास गुरुं गुरूणाम्।
महामनाः षोडशकोपचारैः पूजा गुरूणां हि सुकर्ममूलम् ॥81॥

पीपाप्रताप ने जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य जी को अपने निजी राजसिंहासन पर विराजमान कराकर सोलहों उपचारों से उनकी पूजा की क्योंकि गुरुदेव की पूजा ही सम्पूर्ण सत्कर्मों का मूल है।

सत्सङ्गसङ्कीर्तनसत्कथाभिः श्रीरामचन्द्रस्य यतीन्द्ररत्नम्।
तस्मिन्नुषित्वा कतिचिद्दिनानि काशीं समागन्तुमियेष देवः ॥82॥

इस प्रकार सत्सङ्ग, सङ्कीर्तन, भगवान् की सुन्दर कथाओं से कुछ दिन वहाँ रहकर जगद्‌गुरु जी काशी जाने की इच्छा किये।

राजापि निर्विण्णमना मनस्वी पीपाप्रतापो धृतभूरितापः।
न हातुमैच्छत् स्वगुरोः पदाब्जं मीनो यथा निर्मलगाङ्गवारि ॥83॥

महाराज पीपाप्रताप भी गुरुदेव का गमन सुनकर बहुत व्यथित हुए। उनके सम्पूर्ण अङ्गों में वियोग का ताप उत्पन्न हो गया। वे गुरुदेव के चरण-कमल को उसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहते थे जैसे मछली निर्मल गङ्गाजल को नहीं छोड़ना चाहती।

आज्ञा गुरूणां शिरसावधार्य प्रहाय सद्दुस्त्यजराजलक्ष्मीम्।
विरक्तवेषं गुरुतो गृहीत्वा स्वसद्गुरुं सोऽप्यनुगन्तुमैच्छत्॥84॥

गुरुदेव की आज्ञा पाकर राजलक्ष्मी को त्यागकर गुरुदेव से विरक्त दीक्षा लेकर पीपाप्रताप भी गुरुदेव के साथ चलने की इच्छा किए।

निक्षिप्य राज्यं स्वसुतस्य मूर्ध्नि राज्ञीः समस्ता अनुनीय राजा।
महाविरक्तो ननु रामचन्द्रपादानुरक्तः स मुदा जगाम॥85॥

पुत्र के सिर पर राज्य कार्य छोड़कर सभी रानियों को मनाकर महाविरक्त राजा श्रीरामचन्द्र जी के पदकमल में अनुरक्त होकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

लघ्वी च राज्ञी हरिपादनिष्ठा न हातुमैच्छत् स्वपतिं पतीष्टा।
विहाय साप्यद्भुतराजवेषमन्वव्रजत् कान्तमुदारकीर्तिम्॥86॥

वे भी छोटी रानी जिनको भगवान् के चरणों में निष्ठा थी उन्होंने अपने पति को छोड़ना उचित नहीं माना और अपना राजकीय वेश छोड़कर पति के पीछे-पीछे चलना ही उचित समझा।

जगद्गुरुश्चापि मृणालतन्वीमनुव्रजन्तीं स्वपतिं निरीक्ष्य।
तां पञ्चसंस्कारविधानतो वै संयोजयामास पतिव्रतेशाम्॥87॥

जगद्गुरु जी ने भी देखा कि मृणाल के समान सुन्दर यह महिला अपने पति का अनुगमन कर रही है तो उन पतिव्रता शिरोमणि को पञ्चसंस्कार विधि से संयोजित करके विरक्त बना दिया।

स तां नाम्ना राज्ञीमकृत किल सीतासहचरीं
वसानां कौशेयं कुटिलकचसम्मुक्तशिरसम्।
विरक्तां संरक्तां रघुवरपदाम्भोजयुगले
यथा सीतां रामं निजवरमकामामनुगताम्॥88॥

जिस प्रकार भगवती सीता वनपथ में भगवान् राम का अनुगमन कर रही थीं उसी प्रकार वासनारहित होकर अपने पति पीपाप्रताप का अनुगमन करती हुई, संसार से विरक्त हुई, श्रीराम के युगल चरणकमलों में अनुरक्त हुई, कौशेय वस्त्र धारण की हुई, अपने शिर को घुँघराले केशों से रहित करती हुई अर्थात् मुण्डित सिरवाली महारानी जी का जगद्गुरुजी ने सीतासहचरी नाम रखा।

पीपाप्रतापं समनुव्रजन्तीं विरक्तवेषां परिकृत्तकेशाम्।
विलोक्य रामां जितकामवामां नेत्राम्बुभिस्तां प्रकृतिः सिषेच ॥89॥

पीपाप्रतापजी का अनुगमन करती हुई, सिर के केश कटवायी हुई, अपनी सुन्दरता से कामपत्नी रति को भी जीतने वाली, अत्यन्त रमणीय रानी सीतासहचरी को निहार कर उन्हें प्रकृति अर्थात् प्रजा ने और प्रकृति ने भी अपने नेत्र के जल से नहला दिया अर्थात् रानी सीतासहचरी को विरक्त वेश में देखकर प्रजा के साथ प्रकृति भी रो पड़ी।

पीपाप्रतापो नृपतिश्च सीतासख्यप्युदारा धृतभक्तिसारा।
तौ रोहिणीचन्द्रमसाविवार्यौ जगद्गुरुं स्वर्गुरुमन्वयाताम् ॥90॥

इस प्रकार महाराज पीपाप्रताप एवं भक्ति के तत्त्व को धारण करनेवाली सीतासहचरी जी ये दोनों राजदम्पती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के पीछे-पीछे उसी प्रकार चल रहे थे जैसे रोहिणी और चन्द्रमा देवगुरु बृहस्पति के पीछे-पीछे चलते हों।

सार्धं व्रजन् पार्थिवदम्पतीभ्यां शिष्यैस्तथान्यैर्यतिशेखरोऽसौ।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभ्ययाद् द्वारवतीं सुदुर्गाम् ॥91॥

यतियों के शिरोमणि जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी अपने अन्य विरक्त शिष्यों तथा राजदम्पती सीतासहचरी एवं पीपाप्रताप के साथ चलते हुए सुन्दर दुर्ग वाली द्वारिकापुरी पहुँच गये।

मध्येसमुद्रं किल कंसहन्त्रा या निर्मिता भास्करयोजनेषु।
जाम्बूनदोद्दामगृहैश्च गौरीमातामहं स्वप्रभया हसन्ती ॥92॥

जो श्रीद्वारिकापुरी कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा समुद्र के बीच बारह योजनों में बनायी गयी तथा जो श्रेष्ठ सुवर्णों के गृहों से युक्त होकर पार्वती जी के नाना सुमेरु पर्वत की भी हँसी उड़ा रही है।

त्रैलोक्यलावण्यललामलक्ष्मीः सम्पत्तिलक्ष्म्याश्च सखीव यस्याम्।
रेजे रमानाथपदारविन्दभृङ्गीभवन्ती त्रिदिवं हसन्ती ॥93॥

जिस द्वारिका में तीनों लोकों की सौन्दर्यलक्ष्मी सम्पत्तिलक्ष्मी की सखी जैसी बनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के श्रीचरण-कमल की भ्रमरी बनी हुई स्वर्गलोक का परिहास करती हुई सुशोभित थी।

यस्यां सुधर्मा धृतसर्वधर्मा सभा बभौ जीवितजीवकर्मा।
स्थापत्यसम्व्रीडितविश्वकर्मा वार्ष्णेयसम्पोषितपुण्यकर्मा ॥94॥

जिस द्वारिका में सम्पूर्ण धर्मों को धारण करने वाली और जीवों के कर्मों को जीवनदान देने वाली, अपने स्थापत्य से विश्वकर्मा को भी लज्जित करने वाली वह सुधर्मा सभा सुशोभित हो रही थी जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा पुण्य कर्मों का सम्पोषण किया गया था।

यस्यां सदा पावनपारिजातो देवद्रुमो मोदितसाम्बतातः।
सङ्कल्पितानेव समस्तकामान् रारायते स्माऽन्धकसात्वतेभ्यः ॥95॥

जिस द्वारिका में साम्ब के पिता भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाला देववृक्ष पवित्र पारिजात अन्धकवंशीय एवं सात्वतवंशियों को उनके द्वारा सङ्कल्पित समस्त काम्य पदार्थों को बारम्बार अतिशयता से प्रदान करता रहा।

चिन्तामणिर्यत्र सुचिन्तकेभ्यो राति स्म कामान् नयनाभिरामान्।
दुग्धे स्वयं सोमपयः स्म यत्र स्वर्धेनुरीड्याङ्घ्रिसरोजरेणुः ॥96॥

जिस द्वारका में धर्मसम्मत काम्यपदार्थों का चिन्तन करने वाले सज्जनों को चिन्तामणि नेत्रों को आनन्द देने वाले पदार्थों को दे दिया करता था और जिस द्वारिका में जिसके चरणकमल की धूलि पवित्र है वह कामधेनु स्वयं अमृतमय दुग्ध का दोहन कर देती थी।

यस्यां वसुव्योमविभूर्मिविष्णुसङ्ख्याश्च पत्न्यो मधुसूदनस्य।
रेजू रमालालितपादपद्मा गेहेषु गुण्याः समसङ्ख्यकेषु ॥97॥

जिस द्वारिकापुरी में भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ गुणवती पत्नियाँ उतनी ही सङ्ख्यावाले अर्थात् सोलह हजार एक सौ आठ राजमहलों में नित्य विराजती रहीं और उनके चरण-कमलों की लक्ष्मी जी सेवा करती थीं।

तां गोमतीसागरसङ्गमस्थां विलोक्य विष्वङ्नयनाभिरामाम्।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभ्यनन्दद् यदुराजधानीम्॥98॥

गोमती नदी एवं समुद्र के सङ्गम पर विराजमान सभी ओर से नेत्र को आनन्द देनेवाली उस द्वारका पुरी को, जो यादवों की राजधानी थी, देखकर स्वामी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए।

पीपाप्रतापः सहजाय आर्तो मुरारिपादाम्बुजदर्शनार्थम्।
झटित्युदन्वन्तमथो जगाहे मीनो यथा सोममयाम्बुराशिम्॥99॥

इसके अनन्तर जिस प्रकार मछली अमृत महासागर में कूद पड़ती हो, उसी प्रकार महाराज पीपाप्रताप जी अपनी पत्नी सीतासहचरी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए शीघ्र समुद्र में कूद पड़े।

ददर्श मध्येऽतिसिपुष्पकान्तिं कान्तालकं कामितकम्रकान्तम्।
सिन्धोः कृपासिन्धुमनाथबन्धुं कृष्णं परब्रह्म निजुष्टकृष्णम्॥100॥

पीपाप्रताप जी ने समुद्र के मध्य तिसि पुष्प के समान नीलवर्णी घुँघराले केशों वाले जिनके प्रति सुन्दर महिलायें समालिङ्गन की कामना करती रहती हैं ऐसे कृपा के सिन्धु अनाथों के बन्धु अर्जुन जिनके सेवक हैं या जो अर्जुन के स्वयं सेवक बन गये हैं ऐसे परब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन किये।

सिंहासनासीनमदीनसत्त्वं तद् ब्रह्मतत्त्वं श्रुमिमन्त्रमृग्यम्।
चतुर्भुजं शङ्खगदारिपाणिं पीताम्बरं रुक्मिणिजैत्रजानिम्॥101॥

सिंहासन पर विराजमान प्रसन्नचित्त वाले वैदिक मन्त्रों द्वारा अन्वेषणीय परब्रह्म तत्त्व शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त चार भुजाओं वाले विजयशीला रुक्मिणी जी के प्राणपति भगवान् श्रीकृष्ण के सपत्नीक पीपाप्रताप ने दर्शन किये।

ननाम तत्पादसरोजयुग्मं पीपाप्रतापो मुदितो मुरारेः।
तमागतं सत्कृतवान् मुकुन्दः सद्दर्शनं मोदकरं ह्यघारेः॥102॥

इसके अनन्तर प्रसन्न होकर पीपाप्रतापजी ने भगवान् श्रीकृष्णजी के पवित्र चरण–कमलों को प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी सपत्नीक पीपाप्रताप का बहुत सम्मान किया क्योंकि सन्तों के दर्शन पापहारी श्रीहरि की भी प्रसन्नता के कारण बनते हैं।

यावन्नगाहं नृपतिं सभार्यं मध्येसमुद्रं विनिवास्य शौरिः।
तं शङ्खचक्राङ्कितबाहुमूलं कृत्वा बहिः प्रेषयति स्म सन्तम्॥103॥

एक सप्ताह पर्यन्त समुद्र के बीच सपत्नीक पीपाप्रतापजी को रखकर, उनकी भुजाओं में शङ्ख चक्र का चिह्न बनाकर उन सन्तशिरोमणि पीपाप्रताप को भगवान् ने समुद्र के बाहर भेज दिया।

सशङ्खचक्राङ्कभुजं सभार्यं तमागतं वीक्ष्य बहिः पयोधेः।
जगद्गुरुश्चापि ननन्द रामानन्दो मृतं जीवितमेव मेने॥104॥

इस प्रकार शङ्ख, चक्र से चिह्नित भुजा से युक्त पत्नी सहित पीपाप्रताप जी को समुद्र से बाहर निकला हुआ देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पीपाप्रतापजी को मृत होकर फिर जीवन प्राप्त किया हुआ माना।

अथाऽगमत् कोऽपि हरिर्हरीष्टं पीपाप्रतापं प्रसभं प्रगर्जन्।
राहुर्यथा पार्वणि चारुचन्द्रं ग्रहीतुकामो बलवान् सभार्यम्॥105॥

इसके अनन्तर श्रीहरि भगवान् राम ही जिनके इष्ट देवता हैं, ऐसे सपत्नीक पीपाप्रताप पर भयङ्कर गर्जना करता हुआ एक सिंह उसी प्रकार टूट पड़ा जैसे पूर्णिमा के सुन्दर चन्द्रमा को ग्रहण करने के लिए राहु टूट पड़ता है।

आरात्तमायातमथाऽऽकलय्य पीपाप्रतापः प्रहसन् निवार्य।
जगाद जीमूतगिरा मृगेन्द्र भजस्व रामं त्यज हिंस्रवृत्तिम्॥106॥

सिंह को अपने निकट आया हुआ जानकर, पीपाप्रताप जी ने उसे रोककर हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा– हे मृगेन्द्र! वन के राजा! अब तुम भगवान् राम का भजन करो और अपनी हिंसावृत्ति को छोड़ दो।

पीपाप्रतापवचनं प्रनिशम्य शान्तः कण्ठीरवस्तमनघस्तुलसीसुकण्ठ्या।
संयोज्य राममनुमेव ददौ षडर्णं तस्मै सतां सुरगवीव हि सङ्गतिर्वै॥106॥

इस प्रकार पीपाप्रतापजी के वचनों को सुनकर सिंह शान्त हो गया। पीपाप्रतापजी ने उसको तुलसीकण्ठी से युक्त करके अर्थात् सिंह के गले में तुलसी की कण्ठी पहनाकर उसे षडक्षर राममन्त्र प्रदान किया। वस्तुतः सन्तों की सङ्गति जीव के लिए कामधेनु बन जाती है।

एवंविधानि चरितानि महान्ति कृत्वा जीवांश्च भक्तिसुधया रघुवंशकेतोः।
संस्नाप्य देशिकपदाम्बुजसेवनार्थं पीपाप्रताप इरिपोः पुरमाजगाम॥108॥

इस प्रकार अनेक महान् चरितों को सम्पन्न करके जीवों को श्रीरामभक्ति सुधा से स्नान कराकर पीपाप्रताप जी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के श्रीचरण कमलों की सेवा के लिए कामदेव के शत्रु शङ्कर जी की पुरी काशी में पधार आये।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गः सप्तदशो यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये सप्तदशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथाष्टादशः सर्गः ॥

सुखेनोपविष्टो विदिष्टो विविक्ते विचाराम्बुधौ मीनवल्लीन एषः।
विषीदन् गताह्लादप्रह्लाद ईड्यश्चिरं चिन्तयामास पूर्वातिवृत्तम् ॥01॥

एक बार एकान्त देश में बैठे-बैठे परमात्मा का निर्देश पाकर प्रह्लाद जी विचार-सागर में मछली की भाँति लीन हो गए। उनके मन में विषाद होने लगा, उनका आह्लाद चला गया और वे अपने पूर्व इतिहास का बहुत देर तक चिन्तन करते रहे, सोचने लगे-

जपन् रामनामाहमेतत्प्रतीतिं तथा प्रीतिमास्थापयन्नेत्रवर्णे।
नृसिंहात्मकं राममाभावयं भीभयं निर्भयं लौहसुस्तम्भमध्ये ॥02॥

अरे! अपने प्रह्लाद शरीर में राम नाम का जप करता हुआ इसी दो अक्षर वाले 'राम' नाम में विश्वास एवं प्रेम को स्थापित करते हुए मैंने लौह के सुन्दर स्तम्भ में भगवान् राम को ही नृसिंह रूप में प्रकट कर लिया था। इतना ही नहीं हुआ-

बभूवार्दने दैत्यभर्तुः कृतघ्नः पितुः स्वस्य मातुश्च वैधव्यहेतुः।
अहो धिक् शतं मां पितृघ्नं नृशंसं महापापिनं पामरं पातकीन्द्रम् ॥03॥

मैं कितनी नीच प्रकृति का व्यक्ति हूँ। मैं अपने पिता दैत्यराज के वध में निमित्त बना, अपनी माता के विधवापन का हेतु बना। अहो! पितृघाती, नृशंस, महापापी पापियों में शिरोमणि मुझको अनन्त-अनन्त धिक्कार हैं।

यदीयानुरागाम्बुधौ मीनभूता न पूता दिवं मोक्षमेवाद्रियन्ते।
तमेवाहमज्ञो द्विवर्णामरद्रुं समाकल्पयं नैरये नीचनीचः ॥04॥

अरे! जिस 'राम' नाम के प्रेमामृत में मछली के समान पवित्रात्मा लोग स्वर्ग और मोक्ष का भी आदर नहीं करते उसी दो अक्षर वाले 'राम' कल्पद्रुम को मैंने नर्क में परिकल्पित कर दिया अर्थात् उसका प्रयोग मैंने नारकीय भोगों के लिए किया। मैं कितना नीच हूँ।

न याचे स्म तं निश्चलां रामभक्तिं ययाचे ततो लोकमुग्रं ह्यसूर्यम्।
अहो कामधेनुं हले योजयित्वा ह्यवाप्सं विषं बीजमास्था धरायाम्॥05॥

अरे! उन भगवान् राम से मैंने निश्चल भक्ति नहीं माँगी और उनके देने पर उग्र असुर्य लोकों को स्वीकार कर लिया अर्थात् असुरों का राजा बन गया मैं। मेरी परिस्थिति तो यहीं बन गई कि जैसे मैंने कामधेनु को हल में जोतकर उसी के माध्यम से आस्था रूप पृथ्वी पर विष का बीज बो दिया हो।

चिरं प्रायसश्चित्तमेवैनसोऽस्य प्रकुर्वन् कथं कज्व यत्नं विदध्याम्।
इतीयं दृढं कापि चिन्ताचिता मे मनोदेहमेतत् प्रदन्दह्यते वै॥06॥

क्या करूँ, इस पाप को कैसे प्रायश्चित होगा? मैं यत्न करते–करते भी नहीं सोच पा रहा हूँ। ये चिन्ता चिता मेरे मानसिक शरीर को जलाती जा रही है।

नृसिंहावतारस्य वै हेतुभूतं जगत्स्वामिनं रामचन्द्रं भजेयम्।
तदा पाप्मनः प्रायसश्चित्तमेतद् भवेदेव नान्योऽस्ति यत्नो जगत्याम्॥07॥

नृसिंहावतार के भी अवतारी भगवान् राम की भी मैं सेवा करूँ। इसके अतिरिक्त इस पाप के प्रायश्चित्त का अब और कोई उपाय नहीं है।

कयाधुं पुनर्मातरं संविधास्ये न तातं हिरण्याक्षबन्धुं कदाचित्।
यथा मे भवेन्नासुरो भावलेशो ह्ययोनिः पुनर्भारते सञ्जनिष्ये॥08॥

अब ऐसा करना चाहिए, मैं कयाधु माता को फिर अपनी माता बनाऊँ, पर हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु को पिता नहीं बनाऊँगा। जिससे यदि असुर पिता नहीं होगा तो मेरे मन में आसुर भाव का लेश भी नहीं आयेगा और मैं अयोनि रूप में फिर भारत में जन्म लूँगा।

कयाधोः शुभाङ्के च सङ्क्रीडमानो भवेयं शिशुर्मानवो भव्यदेहः।
पिता मे च नीरूर्जनित्री च नीमा भवेतामिमौ लोकयात्राप्रसिद्ध्यै॥09॥

इसलिए लोकयात्रा के सम्पादन के लिए माता–पिता की आवश्यकता तो होगी इसलिए मैं पहले कयाधु की गोद में आकर के बालक के रूप में खेलूँ और फिर वो मुझे छोड़ दे फिर नीरू नाम का जुलाहा मेरा पिता बने और नीमा मेरी माता बनकर मेरे लोकव्यवहारों की व्यवस्था कर लें।

अथैतद् विनिश्चित्य दैत्येन्द्रवर्यो बभूवापि बालः कयाधोः शुभाङ्के।
निरीक्ष्याथ चैनं हरेः पादमूले जहौ सापि देवी शिशुं शम्भुपुर्याम्॥10॥

इस प्रकार निश्चित करके असुरेन्द्र प्रह्लाद छोटे से बालक बने और कयाधु की गोद में आकर खेलने लगे। कयाधु ने भी उस बालक को भगवान् के चरण-कमल में ही शङ्कर जी की पुरी काशी के समीप जाकर धीरे से छोड़ा।

विलोक्याथ बालं निजाङ्के कयाधूर्हरेश्चापि लीलां हृदा भावयित्वा।
प्रपाय्य स्तनं स्वं पुनः प्राह माता व्रजेर्भारतं त्वं चिरायाथ जीव॥11॥

अपनी गोद में खेलते हुए उस बालक को देखकर और भगवान् की लीला जानकर कयाधू ने कहा, यह भगवान् की लीला है, प्रह्लाद जाओ, भारत में जन्मो और चिरकाल तक जीवित रहो।

न चान्याः स्तनं पातुकामो भवेस्त्वं पिबेर्गोपयो गोपयन् पूर्वकृत्यम्।
जपे रामनामैव सत्यव्रतस्त्वं शिवश्चापि पन्था भवेत्ते कबीर॥12॥

हे बेटे! जाओ अब मेरे अतिरिक्त किसी का स्तन मत पीना। संसार का जीवन गोदुग्ध पीकर ही चलना। तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो और मैं ही तुम्हारा नाम कबीर रख रही हूँ।

सदा त्वं हि मायाभुजङ्ग्या विदूरो भवेः प्रेमपूरो हरेः पादमूले।
जगद्देशिकस्याथ शिष्यत्वमीत्वा भवेरग्रणीस्त्वं सतां वैष्णवानाम्॥13॥

तुम मायारूपी सर्पिणी से निरन्तर दूर रहोगे और भगवान् के प्रेमामृत से निरन्तर पूर्ण रहोगे। निरन्तर भगवान् का नाम जप करते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की शिष्यता को प्राप्त करके तुम वैष्णवों में अग्रणी हो जाओगे।

प्रयागे द्विजो राम आनन्दपश्चाज्जगद्देशिको न्यासिसन्मौलिरत्नम्।
तदीयाङ्घ्रियुग्मं सदा सेवमानो भवे भावुको भारतेऽस्मिन् भविष्णुः॥14॥

प्रयाग में रामानन्दाचार्य नाम से एक अद्भुत सन्त प्रकट हो चुके हैं उन्हीं के चरण-कमल की सेवा करके तुम भारत के भविष्य में कल्याणवान् बनोगे।

य एवास्त रामः स आनन्द एव द्वयोर्नैव भेदं धिया भावयामः।
तमेवाथ दीक्षागुरुं संविधाय तरेर्गोष्पदीकृत्य संसारसिन्धुम्॥15॥

जो राम जी हैं वही रामानन्द जी अर्थात् उनमें कोई भेद नहीं है उन्हीं रामानन्दाचार्य जी को अपना दीक्षागुरू बनाकर इस संसार सागर को तुम गौ के बछड़े के खुर के समान पार कर लोगे।

यथा त्वं मया नैव गर्भे धृतो भूर्ह्ययोनिस्तनुस्ते त्रिलोक्यां प्रसिद्धा।
तथा चान्तकाले न वह्निर्दहेत्त्वा त्वदीया तनू रामपादे भवित्री॥16॥

तुम मेरे द्वारा गर्भ में नहीं धारण किए जा रहे हो और तीनों लोकों में यह प्रसिद्ध है कि तुम अयोनिज हो। उसी प्रकार अन्तकाल में भी तुम्हारा यह शरीर भगवान् में ही लीन हो जाएगा, अग्नि से नहीं जलाया जाएगा।

इति सुतमभिधाय वै कयाधूर्मुहुरथ भावपयश्च पाययित्वा।
अधिलहरसुतारमेव पुत्रं गगनमिता तृणवद् विहाय माता॥17॥

इस प्रकार बेटे को समझाकर कयाधु माता अपने भाव का दूध पिलाकर बालक को लहरतारा के सरोवर के तट पर तृण की भाँति छोड़कर आकाश को चली गईं।

लहरतारगतोऽपि स बालको न हि रुरोद हसन्किलकन्बभौ।
चिरवियुक्तमिमं भरताजिरं मणिमिवेत्य फणी गतकल्मषः॥18॥

इस प्रकार से लहरतारा में फेंका हुआ वह बालक रोया नहीं। जिस प्रकार सर्प मणि को प्राप्त करके खुश हो जाता है उसी प्रकार चिरकाल से बिछड़ी हुई अपनी भारत माँ को प्राप्त कर वह हँसता और किलकता हुआ खेलने लगा।

सुरगणाः सुमनोभिरवाकिरन् विबुधबालमिवैनमनामयम्।
दिवि च दुन्दुभयः परिजघ्निरे जयजयेति जगुर्विबुधाङ्गनाः॥19॥

देवतागण इस बालक पर पुष्प की वृष्टि करने लगे क्योंकि वह बालक देवस्वरूप व निर्दोष था। आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देववधुएँ भी जय-जयकार करने लगीं।

तस्मिंश्च काले ननु तन्तुवायसुदम्पती स्नातुमिह प्रयातौ।
निरीक्ष्य बालं जगदेकपालं प्रमोदमाजग्मतुरप्रमेयम्॥20॥

उसी समय वहाँ स्नान के लिए एक जुलाहा दम्पती आये और वे जगत् के एकमात्र पालक उस बालक को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

नीरूः पुमांस्तत्र गुणैर्गरीयान् नीमा तु योषा गुणशीलपोषा।
इमौ च दृष्ट्वा शिशुराजहंसं प्रजग्मतुस्तन्निकटं निदिष्टौ ॥21॥

वह नीरू नाम का पुरुष जो गुण से श्रेष्ठ था और नीमा नाम की महिला जो सम्पूर्ण गुणों व शीलों का पोषण करती थी। वे दोनों भगवान् के निर्देश से उस बालक के पास आये और प्रसन्न हुए।

बभूव तत्रापि च गागनी गौर्जीमूतसाहस्रगभीरनादा।
लसत्प्रसादा विगलद्विषादा श्रीरामपादाब्जगुणानुवादा ॥22॥

उसी समय आकाशवाणी हुई जो अनन्त मेघों के समान गम्भीर थी, जिसमें प्रसन्नता थी, जहाँ से विषाद नष्ट हो रहा था, जो श्रीराम जी के चरण-कमलों के गुणानुवाद से युक्त थी।

भो तन्तुवायेडितदम्पती वां भाग्येन जन्मान्तरसञ्चितेन।
समागतोऽयं शिशुराजहंसो युवामिमं पालयतं प्रयत्नात् ॥23॥

हे जुलाहा दम्पती! आप दोनों के जन्मान्तर के सञ्चित भाग्य से यह बालक आपके पास आया है। इसका प्रयत्न से पालन कीजिए। आप दोनों का बहुत बड़ा सौभाग्य है।

कशब्दवाच्यं सलिलं प्रसिद्धं सर्वेषु कोषेषु च संस्कृतेषु।
तदाशये वीर इवास्ति लब्धो तस्माच्च नाम्ना भविता कबीरः ॥24॥

सभी कोषों में 'क' शब्द जल का वाच्य है और यह जलाशय के पास ही वीर की भाँति आपको प्राप्त हुआ है इसलिए इसका नाम कबीर होगा।

स एष बालो भविता भविष्णुर्भयापहो भागवतप्रधानः।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य शिष्यः कपरः कबीरः ॥25॥

यह बालक बहुत होनहार, भय को दूर करने वाला भागवतप्रधान होगा और जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का शिष्य बनकर 'क' अर्थात् भगवान् का परायण बनकर यह कबीर बनेगा।

निशम्य तां देवगिरं च नीमा नीरूश्च धीरो किल धर्मभीरुः।
आनिन्यतुर्बालकराजहंसं गृहं स्वकं पालयितुं प्रयत्नात् ॥26॥

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर दोनों नीमा और नीरू बालक को ले आए और उसका प्रयत्न से पालन करने लगे।

दिने दिनेऽसौ परिवर्ध्यमानश्चन्द्रो यथाऽभ्राजत शुक्लपक्षे।
सुदम्पतीभ्यां परिपाल्यमानो गताभिमानो धृतभूरिमानः॥27॥

उन दम्पती के द्वारा परिपालित होकर दिन-दिन यह बालक उसी प्रकार बढ़ने लगा जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा सुशोभित होते हैं। उस बालक में किसी प्रकार का अभिमान नहीं था और उसे सम्मान बहुत मिलता था।

स वै कबीरो रघुवंशवीरं रामं रमाराधितपादपद्मम्।
संसेवितुं तन्मनुराजदीक्षां लब्धुं गुरुं सम्मृगयाम्बभूव॥28॥

वे कबीर सद्गुरु की सेवा करने के लिये रघुवंशवीर भगवान् राम को प्राप्त करने के लिए और राम-मन्त्रराज की दीक्षा लेने के लिए सद्गुरु की खोज में लग गये।

आकाशवाणी समभून्महेष्टा पीयूषजुष्टाऽमलपूषपुष्टा।
तोदं तुदन्ती सुमनो नुदन्ती श्रीरामपादाब्जरतिं दिशन्ती॥29॥

उस समय आकाशवाणी हुई जिसमें इष्ट देवता को महान् सिद्ध किया गया था, जो अमृत से युक्त थी और मल के अभाव रूप सूर्य से पुष्ट थी, जो सभी पीड़ाओं को दूर कर रही थी। सुन्दर मन को पवित्र प्रेरणा दे रही थी और भगवान् के चरण-कमल में निर्मल रति प्रदान कर रही थी।

धीरा गभीरा श्रितयोगिधीरा समुल्लसन्निर्मलगाङ्गनीरा।
सुसाधनापूततपश्शरीरं कबीरमाभाष्य कविप्रवीरम्॥30॥

जो धीर एवं गम्भीर थी। जिसका योगी और धीर-गण आश्रय कर रहे थे। जो निर्मल गङ्गा जल को भी पवित्र कर सुशोभित कर रही थी। ऐसी आकाशवाणी अपनी साधना से तपस्वियों को भी सुशोभित करने वाले बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कबीर जी को सम्बोधित करके हुई।

भो भो कबीरालमलं व्यथित्वा स्वं प्रत्यवाच्यानि तथा खलूक्त्वा।
क्षिप्रं प्रयाता कुविपन्निशेयं द्रष्टासि शीघ्रं नवसुप्रभातम्॥31॥

आकाशवाणी कहने लगी, हे कबीर! तुम्हारा व्यथित होना व्यर्थ है और बहुत काल-पर्यन्त अपने को कुवाच्य कहना भी तुम्हारे को व्यर्थ है। तुम्हारी शीघ्र ही यह विपत्ति की रात्रि चली जाएगी। तुम शीघ्र ही अपने जीवन में नवीन सुन्दर प्रभात के दर्शन करोगे।

जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभिनन्द्याखिलसत्त्वमूर्तिः।
साक्षात्स्वयं राम इहाऽऽकृपालुर्धृतावतारो हृतभूमिभारः॥32॥

तुम्हें ज्ञात है, जिनकी मूर्ति में विराजमान प्रत्येक सत्त्व का अभिनन्दन हुआ है ऐसे जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी विराजमान हैं। यहाँ तक कि पृथ्वी का भार दूर करने वाले भगवान् राम ही रामानन्दाचार्य के रूप में अवतरित हुए हैं।

प्रयाहि तं त्वं शरणं शरण्यं गुणालयं कारुणिकं वरेण्यम्।
श्रीरामचन्द्रं सुषमासमुद्रं सीतापतिं ब्रह्म निरामयञ्च॥33॥

हे कबीर! सबको शरण देने में समर्थ परम कारुणिक वरणीय शोभा के महासागर श्रीराम की ही शरण में तुम जाओ।

तत्पादपद्मं परिसेव्य वत्स प्रह्लादसंह्लादितचित्तवृत्तिः।
गमिष्यसि त्वं न चिरात्स्वरूपं जीवस्य रूपं हृतभग्नकूपम्॥34॥

हे वत्स प्रह्लाद! उन्हीं के चरण-कमलों की सेवा करके तुम शीघ्र ही संसार के कूप को नष्ट कर देने वाले और स्वयं संसार के कूप को भर देने वाले भगवान् के दिव्य स्वरूप को जान जाओगे। यह तभी जानोगे जब जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की सेवा करोगे।

स पञ्चसंस्कारमथो गृहीत्वा विरक्तवेषं परिगृह्य भक्त्या।
लोकान् पुनानो विचरिष्यसि त्वं पृथ्व्यां जितोर्मिर्हतसर्वशोकः॥35॥

उन्हीं से तुम पञ्च संस्कार लेकर छहों ऊर्मियों को जीतकर विरक्त वेष धारण करके निर्द्वन्द्व होकर पृथ्वी पर भ्रमण करोगे।

गच्छाशु काशीं श्रितपुण्यराशिमलं विलम्बेन तवाऽधुना भोः।
जगद्गुरोः प्राप्य पदारविन्दं सीतापतिं द्रक्ष्यसि वीतशोकः॥36॥

तुम अब पुण्य की राशि से युक्त काशी जाओ और विलम्ब मत करो। जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी की शरणागति को प्राप्त करके सीधे ही सीतापति भगवान् राम के दर्शन करोगे जिससे तुम्हारा सब शोक दूर हो जाएगा।

नभोगवीं चारुतमां निशम्य प्रणम्य मूर्ध्ना मुदितः कबीरः।
पप्रच्छ भूयोऽपि विनम्रभावादाकाशवाणीं कुमतेः कृपाणिम्॥37॥

आकाशवाणी सुनकर कबीरदास जी इतने प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया। जो कुमति को नष्ट करने के लिए तलवार के समान थी।

कथं व्रजेयं तमनाथनाथं जगद्गुरुं स्वामिवरं कृपालुम्।
मां म्लेच्छजन्मानमथाकलय्य कथं प्रदास्यत्यथ राममन्त्रम्॥38॥

कबीरदास जी ने कहा मैं उन अनाथनाथ जगद्गुरु कृपालु रामानन्दाचार्य स्वामी जी के पास कैसे जाऊँ? मुझे म्लेच्छ कुल में जन्म लिया हुआ जानकर वे मुझे कैसे राम-मन्त्र की दीक्षा देंगे?

अहं ह्ययोनिः किल जातमात्रः सम्पालितो निम्नकदम्पतीभ्याम्।
समे दयालुर्दयतां कथं नो ब्रवीतु तं यत्नमथो नभोगीः॥39॥

यद्यपि मैं अयोनि हूँ फिर भी मेरा पालन निम्नकुल में जन्मे दम्पती द्वारा हुआ है तो जगद्गुरु जी मुझे कैसे स्वीकर करेंगे! हे आकाशवाणी! वह उपाय भी बताइये।

अङ्गीकरिष्यत्यथ कैरुपायैर्म्लेच्छं हि मां देशिकपुङ्गवोऽसौ।
किं कर्मनाशासलिलं जटायां स धूर्जटिर्वै बिभृयादनन्तः॥40॥

जगद्गुरु जी मुझ म्लेच्छ को कैसे स्वीकार करेंगे, क्या कर्मनाशा के जल को धूर्जटि शङ्कर अपनी जटा में धारण कर सकते हैं?

किं कुक्कुरोच्छिष्टमथापवित्रं वह्निः पुरोडाशमिदं गृहीत्वा।
स्वाहाकृतं चापि हुतं प्रदद्याद् देवेभ्य ईड्यो गतसर्वदोषः॥41॥

क्या कुत्ते द्वारा जूठा किये हुए अपवित्र पुरोडाश को अग्नि देवताओं को समर्पित कर सकते हैं?

वचः कबीरस्य निशम्य दीनमाकाशवाणी समुवाच भूयः।
प्रशस्य तद्दैन्यममोघवीर्या जीमूतसाहस्रगभीरनादा॥42॥

इस प्रकार सहस्रों मेघों के समान नाद करने वाली आकाशवाणी ने जब दैन्यपूर्ण कबीर की बात सुनी तो फिर बोली–

मा खिद्यतां तत्र भवान् भवे स्वे वदाम्युपायं निरुपायमेकम्।
येन त्वमञ्जो गुरुपादपोतं लब्ध्वा तरिष्यस्यथ घोरसिन्धुम्॥43॥

आप अपने मन में खेद मत करिए। मैं एक उपाय बताती हूँ जिसे प्राप्त करके आप गुरुदेव के चरण को प्राप्त कर संसार-सागर से पार हो जायेंगे।

जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभिनन्दन् विबुधापगां ताम्।
स प्रत्यहं ब्रह्ममुहूर्त एव स्नातुं प्रगच्छत्यथ विष्णुपद्याम्॥44॥

जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी गङ्गा जी के जल का अभिनन्दन करते हुए प्रतिदिन ब्रह्म-मुहूर्त में गङ्गा जी स्नान करने जाते हैं।

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तात तस्मिन् सोपानमार्गे ससुखं शयीथाः।
तत्पादपद्माञ्चितदिव्यवक्षा वक्ष्यस्यथो सौख्यमनन्तमेव॥45॥

तुम ऐसा करना ब्रह्म-मुहूर्त में ही जाकर गङ्गा जी की सीढ़ी पर लेट जाना और जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरण-कमल से तुम्हारा वक्ष पवित्र हो जाएगा अर्थात् तुम्हारी छाती पर उनका पाँव पड़ जाएगा और तुम परमानन्द को प्राप्त हो जाओगे।

तदा वदन् मङ्गलरामराम स स्वामिवर्यश्च बृहद्भुजाभ्याम्।
उत्थाप्य सस्नेहमथो भवन्तं सुखेन संल्लालयिता महात्मा॥46॥

उसी समय राम-राम कहते हुए स्वामी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी अपनी विशाल भुजाओं से उठा कर तुम्हें गले से लगाएंगे तब तुम कृतार्थ हो जाओगे।

निशम्य तस्यैव मुखारविन्दाच्छ्रीरामनामध्वनिमप्रमेयम्।
मत्वैवमद्धा गुरुमन्त्रमेव त्वं वैष्णवत्वं मनसा वृणीथाः॥47॥

उसी समय जगद्गुरु जी के मुख से राम-राम सुनकर तब तुम वही गुरु-मन्त्र मानकर वैष्णवता को प्राप्त कर लेना।

आकाशवाणीं प्रणिशम्य धीरो वीरः कबीरो नितरां गभीरः।
दिदृक्षमाणो गुरुपादपद्मं स जाह्नवीतीरमथो जगाम॥48॥

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर अत्यन्त गम्भीर धीर कबीरदास जी गुरुदेव के चरण कमलों का दर्शन करने की इच्छा से गङ्गा जी के तट पर आये।

आसाद्य साधुः किल पञ्चगङ्गाघट्टं सुचित्तं प्रणिधाय धीरः।
अशेत रात्रौ किल विष्णुपद्याः सोपान एवात्तगुणैकतानः॥49॥

अब कबीर जी रात्रि में पञ्चगङ्गा घाट पर आ गए और जाकर गङ्गाजी की सीढ़ी पर ही लेट गये क्योंकि गुणों का विस्तार ही उनका लक्ष्य था।

जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो ननन्दाथ निशावसाने।
ब्राह्मे मुहूर्ते स समुत्थितः सन् स्नातुं प्रयातः कलितत्रिदण्डः॥50॥

अब जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी प्रातःकाल उठे और 'राम' नाम जपते हुए किसी से बिना पूछे, बिना सूचित किये, त्रिदण्ड हाथ में लेकर गङ्गा स्नान करने के तट पर जाने लगे।

स पादुकाभ्यां हतपातकाभ्यां चलन् मनस्वी तरुणस्तपस्वी।
जगाम सोपानपरम्परासु शीलेन सत्येन महानुभावः॥51॥

अब तो सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली पादुकाओं के द्वारा ही जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी गङ्गा जी की सीढ़ियों पर चलने लगे। वे मनस्वी भी थे और योग्य तपस्वी भी।

यावन्महात्मा चरणैस्तृतीयसोपानतो गन्तुमियेष साधुः।
तावत्कबीरस्य सुवक्षसीदं पदं प्रपेदे विपदां विरामम्॥52॥

जब तक जगद्गुरु रामानन्दाचार्य तीसरा चरण न्यास करते हुए सीढ़ी से जाने की इच्छा किये तब तक समस्त विपत्तियो को हरने वाला जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का चरण कबीरदास जी की छाती पर पड़ गया।

कबीरवक्षःपरिमर्षणेन ध्यानाद्विदूरीकृतचित्तवृत्तिः।
स्वामी बभाषे वचनं कृपालुर्ब्रूहि त्वमर्भाच्युतरामनाम॥53॥

कबीर के वक्षस्थल के स्पर्श से स्वामी जी का ध्यान थोड़ा सा विघटित हुआ और वो बोले 'बेटे भगवान् का नाम राम-राम कहो'।

हे वत्स हे मानव भक्तवर्य स्वजिह्वया ब्रूहि च रामनाम।
इत्येवमुक्त्वा स बृहद्भुजाभ्यां तमालिलिङ्गे किल देशिकेन्द्रः॥54॥

'हे वत्स! अब तुम राम नाम कहो ऐसा कहते हुए देशिकेन्द्र रामानन्दाचार्य जी ने उन्हें गले से लगा लिया।

निशम्य वाचं सुसुधासमानां शिष्यप्रवीरः शतधा कबीरः।
पपात तत्पादपयोजयुग्म उवाच वाक्यं वदतां वरेण्यः॥55॥

इस प्रकार जगद्गुरु जी की वाणी सुनकर श्रेष्ठ शिष्य कबीर जी ने जगद्गुरु जी के चरणकमलों को प्रणाम किया और बोले-

प्राप्तो भवत्तः किल राममन्त्रो यो द्व्यक्षरः शम्भुविरञ्चिसेव्यः।
जगद्गुरुश्चापि गुरुर्मदीयः शिष्यः कबीरो न हि संशयोऽत्र॥56॥

वह द्व्यक्षर जो शङ्कर और ब्रह्मा जी का जप्य है, आपसे मुझे प्राप्त हुआ है। अब मेरे आप श्री जगद्गुरु रामानन्दाचार्य गुरुदेव हो गये और मैं आपका शिष्य हो गया, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

इत्येवमुक्त्वा विदुषां वरेण्यः स वै कबीरो नितरां सुधीरः।
जगद्गुरोः पादपयोजधूलिं मूर्ध्ना दधानो नितरां विरेजे॥57॥

इस प्रकार कहकर जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य की चरणधूलि को मस्तक पर धारण करते हुए विद्वान् कबीरदास जी बहुत सुशोभित हुए।

तुष्टाव तं तुष्टमना मनस्वी स दीनवाचा श्रितभक्तिरीड्यम्।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं स नन्दन् नितरां कबीरः॥58॥

मनस्वी कबीरदास जी ने मन में अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गुरुदेव की भक्ति को धारण करते हुये अमृतमयी वाणी से स्तुति करने योग्य उन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की स्तुति की।

गुरुरामानन्द ज्ञात्वा गृहाण मम हस्तम्।-2
नाहं क्रीडासक्तो बालो ज्ञानं न मे समस्तम्। गुरुरामानन्द........
पालय मामनाथमनुपायं विधुमिव राहुग्रस्तम्। गुरुरामानन्द........
पीनं पापपयोनिधिमीनं दीनं कलिमलत्रस्तम्। गुरुरामानन्द........
कबीरदासं गिरिधरस्वामिन् तारय विषयासक्तम्। गुरुरामानन्द.... ॥59॥

इसी का अनुवाद है कबीरदास जी का यह हिन्दी का पद–

'गुरु रामानन्द जी समुझि पकरियो मोरि बहियाँ।
जो बालक झुनझुनिया खेलै सो बालक हम नहियाँ।
हम तो सौदा राम जी को लैहैं पूजा-पाखण्ड नहियाँ।
जो यह पद को अरथ बिचारै प्रेम पदारथ पहियाँ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो यह पद है निरबनियाँ।'

तद्दीनतां वीक्ष्य जगन्निवासो जगद्गुरुस्तुष्टमना मनस्वी।
तं पञ्चसंस्कारयुतं विधाय कबीरदासेति जगाद नाम॥60॥

इस प्रकार से उनकी दीनता को देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कबीरदास जी को पञ्चसंस्कार युक्त करके अर्थात् द्वादश तिलक, बाहु पर शीतल छाप, तुलसी की माला, द्वादशाक्षर, षडक्षर और द्वात्रिंशदक्षर राममन्त्र, अच्युत गोत्र और कबीरदास नाम रखा।

कवीन् धियैवेरयितासि बाल: कस्यापि वीर: सलिलस्य सौम्य।
दासोऽसि नूनं रघुपुङ्गवस्य कबीरदासेति तवास्ति नाम॥61॥

तुम बड़े-बड़े विद्वानों को चकित कर दोगे और तुम जल के सरोवर पर जन्मे अत: जल के वीर समझे जाते हो और तुम भगवान् राम के दास हो इसलिए तुम्हारा नाम कबीर होगा।

त्वां नो जलं क्लेदयिता कबीर न मङ्क्ष्यसि त्वं सलिले कदापि।
दासो यतस्त्वं ननु राघवस्य कबीरदासेति तवाभिधानम्॥62॥

तुमको जल कभी डुबा नहीं सकेगा और तुम कभी जल में नहीं डूबोगे तुम भगवान् श्रीराम के दास हो इसलिए आज से तुम्हारा नाम कबीरदास हो गया।

ये केऽपि लोके कवयो महान्तो मनीषिणो राघवतत्त्वविज्ञा:।
वीरोऽसि तेष्वेव महानुभाव ख्यातस्ततस्त्वं हि कबीरदास:॥63॥

जो लोग बड़े-बड़े मनीषी हैं और जिन्हें भगवत्तत्त्व का ज्ञान है उनमें तुम वीर हो, इसलिए तुम्हारा नाम कबीरदास है।

निष्पक्षपातं वचनं त्वदीयं सुस्पष्टवादोऽस्ति तवोपदेशे।
हिन्दून् तुरुस्कानुपदिश्य भद्र नेष्यस्यतस्तान् भवसिन्धुपारम्॥64॥

तुम्हारा वचन पक्षपातरहित होगा, तुम्हारे उपदेश में सुस्पष्टवादिता होगी। हिन्दू और मुसलमान सबको तुम सुस्पष्टवाद से प्रभावित करोगे और दोनों को उपदेश देकर उन्हें संसार-सागर से पार कर दोगे।

इत्येव चित्ते प्रणिधाय नित्यं बुद्ध्या समाधाय समस्तशङ्काः।
निर्द्वन्द्ववृत्या विचर त्वमुर्व्यां शिवं च ते वर्त्म कबीरदास॥65॥

इस प्रकार चित्त में अवधारणा करके सबकी समस्याओं का समाधान करते हुए तुम निरन्तर भ्रमण करो। हे कबीरदास! तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

स्वजीविकार्थं निजकर्म मत्वा तन्तून् वयस्वेह महानुभाव।
द्वन्द्वैरमन्दैः सुखदुःखसङ्गैर्न लिप्यसे पद्ममिवाम्बुपूरैः॥66॥

इस प्रकार अपनी जीविका चलाने के लिए थोड़ा-थोड़ा कपड़ा बुन लिया करो जिससे जीविका चलती रहेगी और अपने कर्मों से तुम उसी प्रकार नहीं लिप्त होगे जैसे कमल जल से नहीं लिप्त होता।

तुलां त्वदीयां परितोऽभिपश्यन् शीघ्रं समायास्यति रामचन्द्रः।
तदीयपादाम्बुजमञ्जुभृङ्गो भूत्वा तरिष्यस्यथ विश्वसिन्धुम्॥67॥

तुम्हारी सूत कातने वाली तुला को देखने के लिए स्वयं भगवान् श्रीराम आयेंगे और उनके चरणकमल के भ्रमर बनकर तुम भवसागर से शीघ्र पार हो जाओगे।

इत्येवमादिश्य जगन्निवासः प्रेम्णा परिष्वज्य कबीरदासम्।
आघ्राय भाले विशदे विशाले विसर्जयामास मणिं फणीव॥68॥

इस प्रकार उपदेश करके कबीरदास जी को हृदय से लगाकर उनके मस्तक को सूँघकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उनको उसी भाव से विदा किया जैसे सर्प अपनी मणि को छोड़ देता है।

अथैकदा रामपदारविन्दं विचिन्तयन्नास्त कबीरदासः।
तद्भक्तिशक्तिं परिबोद्धुकामः समागमन् भूसुरघस्मराश्च॥69॥

एक बार कबीरदास जी राम नाम का जप कर रहे थे उनकी भक्ति को देखने के लिए द्वेषी ब्राह्मण आ गये।

ययाचिरे ते द्रविणं ह्यनन्तं कबीरदासं भवरोगनाशम्।
विलोक्य तत्सङ्कटमेव धीरो ह्यन्तर्दधे जातु ततः कबीरः॥70॥

इस प्रकार उनका आगमन देखकर और अपने ऊपर सङ्कट जानकर कबीरदास जी वहाँ से छिप गये।

विलोक्य भक्तोपरि सङ्कटं तं तमालनीलः श्रुतिगीतशीलः।
आविर्बभूवाथ जगन्निवासः सीताभिरामो रघुरामचन्द्रः॥71॥

अपने भक्त के इस सङ्कट को देखकर सीताभिराम श्रीराम ही प्रकट हो गये, जिनकी वेदों ने दिव्य लीला गाई है और जो तमाल के समान नीलवर्णी हैं।

स योगमायाबलतः कृपालुः कबीरदासस्य च साधकस्य।
बहूनि रूपाणि विधाय रेजे राजीवनेत्रः करुणैकपात्रः॥72॥

उन पर सङ्कट देखकर भगवान् रामचन्द्र जी जो स्वयं करुणापात्र हैं, उन्होंने बहुत से कबीरदास जी के रूप धारण कर लिए।

समापतन् वै बहवः कबीरास्तेषां समक्षं किल भूसुराणाम्।
तेभ्यो ददौ रूप्यहिरण्यराशिं काशीं समामण्डितवान् यशोभिः॥73॥

इसके अनन्तर बहुत से कबीर प्रकट हो गये और उन्होंने बहुत-सी धनराशि ब्राह्मणों को दी और वे भगवान् की कृपा से मालामाल हो चुके थे।

दासींश्च दासान् करिणस्तथाऽश्वान् गाः कोटिशो वै महिषीस्त्वनन्ताः।
ददौ कृपालुर्ननु भूसुरेभ्यो वाञ्छासुरद्रुर्हि हरिर्जनानाम्॥74॥

इस प्रकार से भगवान् ने दासी-दास, हाथी-घोड़े, रथ, अनेक भैंस आदि सबको दिये, सबको सन्तुष्ट किया क्योंकि भगवान् भक्तों के वाञ्छातरू हैं।

सर्वेऽपि विप्रा ननु पूर्णकामा दानैश्च मानैश्च सुधावचोभिः।
सन्तोषयामास हरिर्द्विजेन्द्रान् श्रीराघवः सेवकपारिजातः॥75॥

सेवकों के कल्पवृक्ष भगवान् श्रीराम ने दान मान और अमृत कल्पवाणी से सम्पूर्ण ब्राह्मणों को संतुष्ट कर दिया और सभी ब्राह्मणों की इच्छायें पूर्ण हो गयीं।

जयेति जीवेति सुखीभवेति श्रीरामभक्तिं परिवर्धयेति।
रामं रमेशं समुपाव्रजेति कबीरदासं जगदुश्च विप्राः ॥76॥

हे कबीरदास! तुम्हारी जय हो, तुम चिरञ्जीवी हो, तुम सुखी हो, तुम श्रीरामभक्ति को बढ़ाते रहो, तुम शीघ्र भगवान् राम को प्राप्त कर लो, इस प्रकार ब्राह्मण लोग कबीरदास जी को आशीर्वाद दिये।

ज्ञात्वा रहस्यं ननु राघवीयं दृष्ट्वा निजं कारुणिकं च नाथम्।
कबीरदासस्तु रमानिवासं तुष्टाव रामं नयनाभिरामम् ॥77॥

भगवान् का महत्त्व जानकर और अपने नाथ श्रीरघुनाथ जी को परमकारुणिक देखकर जगन्निवास, रमानिवास, नयनभिराम श्रीराम की कबीरदास जी स्तुति करने लगे।

नीलाब्जसंकाशशरीरकान्तिं क्लान्तिं हरन्तं शरणागतानाम्।
कारुण्यरूपं जगदेकभूपं श्रीरामचन्द्रं शिरसा नमामि ॥78॥

नीले कमल के समान जिनके शरीर की कान्ति है, जो शरणागतों की क्लान्ति दूर कर रहे हैं, कारुण्य ही जिनका रूप है, जो जगत् के एकमात्र राजा हैं ऐसे श्रीरामचन्द्र जी को नमस्कार करता हूँ।

तापिच्छनीलं श्रुतिगीतलीलं शुचिं सुशीलं धृतधर्मशीलम्।
महानुभावं मधुरस्वभावं श्रीरामचन्द्रं वचसा गृणामि ॥79॥

जो नवीन तमाल के समान नीले हैं वेद ने जिनका यश गाया है, करुणा से पूर्ण जिनका शील है, ऐसे श्रीरामचन्द्र जी का यश, मैं अपनी वाणी से बार-बार गा रहा हूँ।

वेदान्तवेद्यं विषयैरवेद्यं निर्वाणदानव्रतमीड्यकीर्तिम्।
तमादिदेवं पुरुषं पुराणं श्रीरामचन्द्रं मनसा स्मरामि ॥80॥

जो वेदान्त वेद्य हैं, विषयों की इच्छा करने वालों के लिये जो अवेद्य हैं, निर्वाण दान ही जिनका व्रत है, जिनकी कीर्ति स्तुति योग्य है, ऐसे उन आदिदेव पुराणपुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्र का मैं मन से स्मरण करता हूँ।

कौसल्यया चुम्बितपङ्कजास्यं श्रीसीतया लालितपादपद्मम्।
अनन्तवीर्यं धृतधर्मधुर्यं श्रीरामचन्द्रं प्रणमामि भूत्यै ॥81॥

कौशल्या जी के द्वारा जिनके मुखकमल का चुम्बन किया गया। सीताजी के द्वारा जिनके चरणकमल को लाड किया गया है, ऐसे भगवान् राम जो दुराराध्य हैं, भक्तिरूप विभूति के लिए मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

सङ्क्रीडमानं भरतेन साकं सलक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजञ्च।
शत्रुघ्नजुष्टं विभवैश्च पुष्टं श्रीरामचन्द्रं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥82॥

कौशल्या जी जिनके मुखकमल का चुम्बन करती हैं जिनका चरण का लालन श्रीजानकी जी द्वारा किया गया है ऐसे भरत जी के साथ खेलते हुए लक्ष्मण के सहित लक्ष्मण के पूर्वज शत्रुघ्न से युक्त अपने पराक्रम से पुष्ट श्रीरामचन्द्र के चरणों में मैं भक्तिपूर्वक प्रणत हूँ।

पीताम्बरं वर्धितभक्तभावं पीताम्बरं ज्ञाननिकेतमीड्यम्।
पीताम्बरं पीतविभूषणञ्च पीताम्बरं राममहं स्मरामि॥83॥

पीताम्बर अर्थात् जिनका वस्त्र पीत है और पीताम्बर अर्थात् पीतवर्णा सीता जी का अंचल रूप वस्त्र जिनके मस्तक पर है और पुनः पीताम्बर अर्थात् जिन्होंने आकाश को भी पी लिया है पुनः पीताम्बर पीतवर्ण सीताजी के आंचल में विराजमान् भगवान् श्रीराम का मैं स्मरण करता हूँ।

श्यामं नवाम्भोजदलाभिरामं रामं रमाराधितपादपद्मम्।
हनूमता गीतमनोज्ञगाथं श्रीरामचन्द्रं रघुनाथमीडे॥84॥

जो निरन्तर श्याम वर्ण हैं, नयनाभिराम हैं और हनुमान् जी ने जिनके यश की गाथा गाई है ऐसे श्रीरामचन्द्र रघुनाथ जी की मैं स्तुति करता हूँ।

इत्थं स्तुवन् राममनन्तमूर्तिं कबीरदासः सुयशोनिवासः।
भ्रमन्पृथिव्यां हरिभक्तिसीम्नि भूयो गुरोः पादरजः प्रपन्नः॥85॥

इस प्रकार अनन्तमूर्ति भगवान् राम की स्तुति करते हुये यश के निवास कबीरदास जी ने भगवद्भक्ति की सीमा, पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए फिर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के चरणकमल की धूलि प्राप्त की।

यात्रां समाप्याथ कबीरदासो द्रव्यं समस्तं नवरुक्मराशिम्।
विश्राणयामास महीसुरेभ्यो दानैकशीला हि सदैव सन्तः ॥86॥

अपनी यात्रा समाप्त करके समस्त दानराशि को कबीरदास जी ने ब्राह्मणों में बाँट दिया क्योंकि महापुरुष दान को ही अपना सब कुछ मानते हैं।

स एकदा तीर्थपतौ महात्मा विगाहमानः शुचिशिष्यसङ्घैः।
ददर्श चैकं मृतकं वहन्तं शिशुं सुशीलं ननु विष्णुपद्याम्॥87॥

एक बार प्रयाग में शिष्यों के साथ स्नान करते हुए कबीरदास जी ने गङ्गा जी में बहते हुए एक मृतक बालक को देखा।

निरीक्ष्य तं साभिमुखं समेतं स वैष्णवो बालकराजहंसम्।
सञ्जीवयामास च रामनाम्ना दास्यश्च भक्तस्य हि सिद्धयो वै॥88॥

इस प्रकार अपने समक्ष आते हुए देखकर उस बालक को कबीरदास जी ने रामनाम से जिला दिया। क्योंकि सम्पूर्ण सिद्धियाँ भगवान् की भक्ति की दासी होती हैं।

सुभुक्तयः शाश्वतमुक्तयश्च सत्सिद्धयो वै निधयो नवाद्धा।
श्रीरामभक्तस्य समा हि दास्यो भक्तिश्च माता ननु वैष्णवानाम्॥89॥

सभी भुक्तियाँ, चारों प्रकार की मुक्तियाँ, सभी सिद्धियाँ, नवों निधियाँ– ये सब रामभक्त की दासियाँ होती हैं और भक्ति सभी वैष्णवों की माता होती है।

तं बालकं स्वाङ्कगतं निरीक्ष्य कबीरदासः करुणापरोऽभूत्।
पुत्रं चकाराथ तमाप्तबोधो नाम्ना कमालेति च तं व्यधत्त॥90॥

उस बालक को देखकर कबीरदास जी को करुणा हो गई। उन्होंने उसे अपना बेटा माना और उसका नाम कमाल रख दिया।

पुनस्तमादाय सुतं कमालं काशीं समागत्य महानुभावः।
पत्न्यै प्रदायाथ च लोइनाम्न्यै श्रीशम्भुपुर्यां सुखमध्युवास॥91॥

इस प्रकार काशी आकर बालक को पत्नी लोई को सौंपकर कबीरदास सुखपूर्वक काशी में रहने लगे।

नित्यं जपन् द्व्यर्णकरामनाम नित्यं भजन् राघवपादपद्मम्।
नित्यं श्रयन् सद्गुरुपादरेणुं स नित्यनैमित्तिकमाततान॥92॥

इस प्रकार से निरन्तर भगवान् राम का जप करते हुए, श्रीराम की लीला का स्मरण करते हुए, निरन्तर सद्गुरु की चरणधूलि का आश्रयण करते हुए कबीरदास जी ने नित्य नैमित्तिक आचरण किया।

सगुणं ननु निर्गुणं हरिं परिगायन् रघुवंशभूषणम्।
दिवसान् सुनिनाय मङ्गलान् स कबीरो गतमोहकल्मषः॥93॥

भगवान् के सगुण-निर्गुण दोनों चरित्रों को गाते हुए भगवान् का स्मरण करते हुए कबीरदास जी ने अपने दिनों को मङ्गलमय बिताया।

हृदये निवेश्य रामं नयने निमील्य श्यामं पूजनमहं करिष्ये, अर्चनमहं करिष्ये।
हे रघुनायक जनसुखदायक कोशलराजकिशोर
सरसिजलोचन भवभयमोचन विश्वविलोचनचोर।
दिवसेशवंशकेतो भवभीमसिन्धुसेतो पूजनमहं करिष्ये, अर्चनमहं करिष्ये॥

अपने हृदय में भगवान् को धारण करके आँखों को बन्द करके मैं भगवान् की पूजा करूँगा, अर्चन करूँगा। हे रघुकुल के नायक, हे भक्तों को सुख देने वाले, हे विश्वविलोचन के चोर, हे कमललोचन, हे भवभयमोचन, हे कौशलराजकिशोर, हे सूर्यवंश के केतु, हे भवसागरसिन्धु के सेतु मैं आपकी पूजा करूँगा, आपका अर्चन करूँगा।

आवाहनं विधाय स्वमनसा हृदयासनं प्रदाय
पाद्यं चार्घ्यं भावमनर्घ्यम् आचमनं च विधाय।
नयनाश्रुधारयाऽहं श्रितप्रीतिसारयाऽहम्
अर्चनमहं करिष्ये पूजनमहं करिष्ये।

मैं अपने हृदय में प्रभु का आहवान करके उन्हें हृदय में आसन देके उनका पाद्य, अर्घ्य, बहुमूल्य भाव से आचमन करा करके प्रेम के सार से युक्त नेत्र की अश्रुधारा से मैं प्रभु का पूजन करूँगा।

भावनिर्मितं पीतं वस्त्रं राममहं परिधाप्य
प्रेमविभावितयज्ञसुसूत्रं दत्त्वा गुणं प्रगाप्य।

निज वासनासुगन्धं परिमग्नभीमबन्धं
पूजनमहं करिष्ये, अर्चनमहं करिष्ये ॥

मैं प्रेमनिर्मित पीताम्बर भगवान् को धारण कराकर और सम्बन्ध के सूत्र का यज्ञोपवीत बनाकर उन्हें अर्पित करके प्रभु का गुण गाकर अपने हृदय की वासना की सुगन्ध जिसमें संसार का बन्धन नहीं है निवेदित करके भगवान् का मैं पूजन करूँगा।

परममनोरथमञ्जुलपुष्पं श्रद्धामयं सुधूपं
रघुकुलकमलदिवाकररघुवर सुस्मृतमञ्जुलदीपम्।
नैवेद्यमेव भक्तिं श्रितविश्वसर्वसूक्तिं
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये ॥

मैं अपने मनोरथ के पुष्प श्रद्धा के धूप, भगवत्स्मृति के दीप अर्पित करके भक्ति को ही नैवेद्य रूप में अर्पित कर रहा हूँ जिसमें समस्त शक्तियाँ हैं।

पञ्चभावमञ्जुलताम्बूलं प्रदक्षिणां परिदाय
जीवनमेव समर्प्य दक्षिणां पुष्पाञ्जलिं विधाय।
नीराजनं त्वदीयं विरहं विभो मदीयं
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये ॥

मैं सुन्दर पञ्च भावों के ताम्बूल और उनकी प्रदक्षिणा तथा अपने जीवन को ही सुन्दर दक्षिणा के रूप में ही समर्पित करके पुष्पाञ्जलि करके अपने विरह की ही नीराजना भगवान् को अर्पित करूँगा।

जानकीजीवन विलसितयौवन कोसलसुताकुमार
गिरिधरचातक नूतनजलधर रघुवर राम उदार।
पूजामियां मदीयां सुगृहाण राघवीयां
पूजनमहं करिष्ये अर्चनमहं करिष्ये ॥94॥

मैं हे जानकीजीवन, हे सुन्दर अवस्था से पूर्ण हे कौशल राजपुत्री के पुत्र हे मुझ कवि गिरिधर रूप चातक के नवीन जलधर मेघ! आप मेरी इस पूजा को स्वीकार कीजिए मैं आपका पूजन करता हूँ।

इति निवेद्य स राघवपूजनं जनकजादयितं हृदि भावयन्।
परिजपन् हरिनामदृगर्णकं स समयं च निनाय यथासुखम्॥95॥

इस प्रकार भगवान् का पूजन करते हुए दो अक्षर नाम का जप करते हुए कबीरदास जी ने अपने जीवन को बिताया।

स एकदा काञ्चिदथो कुमारिकां निरीक्ष्य विद्वान् गतजीवनां किल।
समुद्धरन्नाह सुते समाव्रज तदा कमाली च जिजीव सत्वरम्॥96॥

एक बार एक कुमारी कन्या को मरी हुई देखकर कबीरदास जी ने कहा "बेटी! आओ।" तब कमाली उनके पास चली आई।

स तं कमालः सुतवत् समागतः सुता कमाली च सुसिद्धसम्मता।
कबीरदासो यमलान्वितो मुदा जिगाय मायां कलिकालनिर्मिताम्॥97॥

इस प्रकार पुत्र कमाल और पुत्री कमाली इन दोनों से युक्त होकर कबीरदास जी ने कलिकाल से निर्मित माया को जीत लिया।

स पद्मनाभं श्रुतिशास्त्रपण्डितं तथा च गोरक्षमनन्तसिद्धिकम्।
विजित्य शास्त्रार्थरणे सुकौतुकैः कबीरदासः समतोषयद् गुरुम्॥98॥

इस प्रकार शास्त्रों के पण्डित पद्मनाभ को एवं अखण्ड सिद्धि वाले योगी गोरखनाथ को शास्त्रार्थ के युद्ध में कौतुक से जीतकर कबीरदास जी ने अपने गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को सन्तुष्ट कर लिया।

न यस्य शत्रुर्न सखा जगत्यहो न चाप्युपेक्ष्यो न च रागभाजनम्।
निरस्तसंसारसमस्तबन्धनः कबीरदासो जयतात् सतां गतिः॥99॥

न जिसका कोई शत्रु, न जिसका कोई सखा, न जिसका कोई उपेक्ष्य, न जिसका कोई प्रेमभाजन– ऐसे कबीरदास की निरन्तर जय होती रहे।

स एकदा द्वादशभिश्च शिष्यैः संसेव्यमानो विगताभिमानः।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो जगन्नाथपुरींजगाम॥100॥

एक बार अभिमानशून्य जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द, पीपाप्रताप, कबीरदास, भावानन्द, सेन, घना, गालवानन्द, रैदास जी– इन बारहों शिष्यों से सेवित होते हुये जगन्नाथ पुरी पधारे।

रामावतारं श्रितभक्तिसारं श्रीमत्सुशीलातनयं सुशीलम्।
देवो जगन्नाथ उदारकीर्तिः स्वं दर्शयामास जगन्निवासः॥101॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को भगवान् राम का अंशावतार और भक्ति पूर्ण जानकर उदारकीर्ति जगन्नाथ जी ने स्वयं अपना दर्शन करा दिया।

विराजितो नीलकलेवरेण प्रलेपितश्चन्दनचारुचूर्णैः।
विभूषणैर्भूषितमञ्जुलाङ्गःसौवर्णसङ्क्लृप्तकिरीटकान्तः ॥102॥

जगन्नाथ जी निम्बदारु से निर्मित नीले कलेवर से सुशोभित हो रहे थे, उनका शरीर मलयचन्दन के चूर्ण से लिप्त था, उनके सभी अङ्ग विभूषणों से सुशोभित थे। जगन्नाथ जी सुवर्ण के मुकुट से बहुत ही सुन्दर लग रहे थे।

सुभद्रया शोभितवामभागः सङ्कर्षणालङ्कृतदक्षदेशः।
आजानुबाहुः खलचन्द्रराहुः स्ववर्ष्मसंव्रीडितवामनश्रीः ॥103॥

जिनके वामभाग में सुभद्रा जी विराजमान हैं और दाहिने भाग में बलभद्र जी सुशोभित हैं, जो आजानुबाहु हैं, जो खल रूप चन्द्रमा के लिये राहु हैं। जिन्होंने अपने शरीर से वामन भगवान् की शोभा को जीत लिया है, ऐसे जगन्नाथ जी ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को दर्शन दिये।

यदाननोच्छिष्टमहाप्रसादः स्वादेन पीयूषरसं जिगाय।
यस्मै सुरेन्द्राः स्पृहयालवो वै समे महीष्ठाः परिभुञ्जतेऽयम् ॥104॥

जिन जगन्नाथ जी के मुखोच्छिष्ट महाप्रसाद ने अपने स्वाद से अमृत रस को भी जीत लिया है जिस प्रसाद के लिये इन्द्र भी स्पृहा करते हैं और जिस प्रसाद को सभी लोग भूमि पर बैठकर ही पाते हैं।

सन्दृश्य देवं पुरुषोत्तमं तं दृशौ यतीन्द्रस्य समापतुः कम्।
शिष्याः समे तोषमवापुरग्र्यं भेजुर्जगन्नाथपदं प्रपन्नाः ॥105॥

इस प्रकार जगन्नाथ देव के दर्शन करके जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के नेत्र सन्तुष्ट हो गये और सभी शिष्य भगवान् के दर्शन से बहुत सन्तुष्ट हुये और प्रसन्न होकर जगन्नाथ जी के चरणों का भजन करने लगे।

वेलामतिक्रान्तमवेक्ष्य सिन्धुं कबीरदासः करुणैकसिन्धुः।
संस्तम्भयाभास पयोधिमुग्रं त्रेतामुखे राम इवाग्निबाणैः ॥106॥

सागर को अपनी मर्यादा का अतिक्रमण करते हुए देखकर करुणा के समुद्र कबीरदास जी ने इस सागर को उसी प्रकार स्तब्ध कर दिया अर्थात् रोक दिया जैसे त्रेता युग में भगवान् श्रीराम ने अग्निबाण से रोक दिया था।

नियम्य सिन्धुं चिमटाप्रभावात् संश्राव्य लोकान् ननु रामभक्तिम्।
कबीरदासो रघुबीरदासो जगाम काशीं स जगद्गुरुः काम्॥107॥

अपने चिमटा के प्रभाव से पुरी के सागर को नियन्त्रित करके सम्पूर्ण संसार को भगवान् श्रीराम की भक्ति का उपदेश करके श्री रघुवीर के भक्त कबीरदास जी जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के साथ सुखस्वरूपिणी श्री काशी पधार आये।

कीर्तिं विधाय विशदां विजितत्रिलोक्यां रामं प्रतोष्य चरितैश्च सतः प्रमोद्य।
भूयो विलोक्य च जगद्गुरुमेव रामानन्दं कबीर इह रामपदे विलीनः॥108॥

इस प्रकार त्रिलोकी को जीतने वाली कीर्ति का विस्तार करके, भगवान् राम को सन्तुष्ट करके अपने चरित्र से सन्तों को प्रमोदित करके और फिर अपने गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को निहारकर कबीरदास जी इसी लोक में सशरीर भगवान् श्रीराम के चरणकमल में विलीन हो गये।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गश्चाष्टादशो यतिपगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्येऽष्टादशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथैकोनविंशः सर्गः॥

जानकीजनक एव मैथिलो यः शशास मिथिलां स्वधर्मतः।
यो महीपतिरभूत् प्रमाणितो जानकीतनयया महीभुवा॥01॥

भगवती जानकी जी के पिता मिथिलाधिराज जनक जो धर्म से मिथिलापुरी का शासन कर रहे थे और जिनको स्वयं से उत्पन्न सीताजी को पुत्री रूप में देकर पृथ्वी ने वास्तविक महीपति प्रमाणित कर दिया था।

योगभोगमयमञ्जुसम्पुटे रामप्रेममणिमाजुगोप यः।
यो विदेहविरुदं व्यभूषयत् स्त्रीयुतोऽपि तरुणो गृहे वसन्॥02॥

जिन्होंने एक साथ योग और भोग के सम्पुट में श्रीरामप्रेम रूपी मणि की रक्षा की और जो युवक रहते हुए स्त्रियों से युक्त होते हुए भी घर में रहते हुए भी, विदेह विरुद को सुशोभित किये अर्थात् गेह में रहकर भी विदेह रहे।

यश्च नारिकुचमेकपाणितो वह्निमप्यपरतः परामृशन्।
नो विवेद शिशिरं न तापकं द्वन्द्वनिग्रहचणर्द्धिसक्षमः॥03॥

जो महाराज जनक द्वन्द्वों के विजय में निपुण सम्पत्ति से युक्त होने के कारण एक हाथ से सुनयना के स्तन का स्पर्श करते हुए दूसरे हाथ से अग्नि में हाथ डालते हुए भी न तो स्तनस्पर्श को शीतल समझ पाये और नहीं अग्नि के स्पर्श को तापक।

सीरकेतुरथ धर्मसेतुधृक् स व्यचारयत शान्तमानसः।
जानकीपतिमुपेत्य राघवं दास्यभावमथ नो समाश्रयम्॥04॥

ऐसे महाराज जनक एक बार शान्त मन से विचार करने लगे क्योंकि वे धर्मसेतु को धारण कर रहे थे। कि अरे परमेश्वर श्रीराम को जानकीपति के रूप में प्राप्त करके भी मैं उनके प्रति दास्यभाव का आश्रयण नहीं कर सका।

वत्सलां च रतिमुद्वहन्नहं स्वीचकार रघुनाथसन्नतिम्।
पापमाचरमहो कुबुद्धितो राममेव तनयं विभावयन्॥05॥

वात्सल्य से युक्त रति धारण करते हुए मैंने रघुनाथ जी के प्रणाम को भी स्वीकार कर लिया और कुबुद्धि होने के कारण मैंने यह पाप किया क्योंकि रामजी को भी मैंने पुत्र मान लिया।

ब्रह्मभावमथ राघवेऽन्वहं स्वीचकार न हि वत्सलत्वभाक्।
दास्यभावमनघं न चान्तरा कोऽपि नोत्तरति भीमवारिधिम्॥06॥

मैंने राघवजी के प्रति ब्रह्मभाव को दृढ़ नहीं किया और सत्य यह है निष्पाप दास्य भाव के बिना कोई भी संसार सागर को पार नहीं कर सकता।

याज्ञवल्क्यचरणाब्जसेवया यद्विवेकविभवं समर्जितम्।
तेन मुक्तिरिह जग्मिवानहं नैव भक्तिमनघां सुनिर्मलाम्॥07॥

करूँ क्या याज्ञवल्क्य के चरण कमल की सेवा से जो मेरे द्वारा विवेक सम्पत्ति का अर्जन किया गया उससे मैंने मुक्ति तो पा ली पर निष्पाप भक्ति को मैं नहीं पा सका।

भुक्तिमुक्तिसहितोऽपि मानवो नो भवेद् यदि मुकुन्दभक्तिमान्।
नो तरेच्च भवसिन्धुमुल्बणं सत्यसत्यमिह निश्चितं मतम्॥08॥

भुक्ति और मुक्ति से युक्त मनुष्य यदि भगवान् की भक्ति को नहीं प्राप्त करता तो वह भवसागर को नहीं पार कर सकता, यही मुख्य सिद्धान्त है और यह मत सत्य है, सत्य है, सत्य है। यही निश्चित भी है।

भक्तिहीनमथ मानवं गुणा नो स्पृशन्ति सहसाऽतिदूरतः।
व्यञ्जनं विगतसैन्धवं यथा स्वादहीनमिह नो सुखावहम्॥09॥

भक्ति से हीन मनुष्य को दूर से भी सद्गुण नहीं स्पर्श कर पाते। जैसे रामरस (नामक) के बिना व्यञ्जन स्वादहीन होता है और सुखावह भी नहीं होता।

तत्कलौ पुनरिहावतीर्य वै साधयेयमथ भक्तिमुज्ज्वलाम्।
रामचन्द्रचरणाम्बुजद्वये सन्तरेयमिह घोरसागरम्॥10॥

इसलिए मैं फिर कलियुग में अवतार लेकर भगवान् रामचन्द्र जी के चरण कमल में भक्ति का ही साधन करूँ जिससे घोर संसार सागर को पार कर लूँ।

विप्रवंशमनघं विशुद्धिमत् स्वीकरोमि निजजन्मनाऽन्वहम्।
मैथिलो मथितकश्मलो मुदा रामभक्तिमिह साधयन् धिया॥11॥

श्रीरामभक्ति का बुद्धि से साधन करने के लिए मैं मिथिला में ही एक पवित्र ब्राह्मण कुल को अपना जन्म का स्थल बनाऊँ और भगवान् के दास्य भाव का साधन करूँ जिससे संसार सागर को पार कर लूँ।

इत्यसौ स्वमनसा विभावयन् योगिराजजनकः प्रतापवान्।
मैथिले द्विजकुले च जातवान् दिव्यदेहमिह मण्डयन् रुचा॥12॥

इस प्रकार विचार करके प्रतापी योगिराज जनक मिथिला में ही जन्म लिये और दिव्य शरीर धारण करके शोभावान् होकर भगवद्भजन करने लगे।

यत्कुलञ्च किल जीविकाकृते त्यक्तवच्च मिथिलां पुरीं पुरा।
अध्युवास ननु पण्डरं पुरं पाण्डुरङ्गचरणाब्जकिङ्करम्॥13॥

जो कुल अपनी जीविका के लिए मिथिला पुरी को छोड़कर महाराष्ट्र में पण्डरपुर में रहने लगा था और पाण्डुरङ्ग का सेवक हो गया था।

यच्च पूतमथ चन्द्रभागया कृष्णचन्द्रचरणानुरागया।
पाण्डुरङ्गरमणीयविग्रहः स्पर्शनेऽपि सुलभोऽद्य यत्र वै॥14॥

जो पण्डरपुर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण में अनुराग करने वाली चन्द्रभागा नदी से पवित्र है, जहाँ पाण्डुरङ्ग भगवान् का रमणीय विग्रह स्पर्शन के लिए आज भी सुलभ है।

पुण्डरीकपितृमातृभक्तितस्तोषितश्च भगवान् हि विठ्ठलः।
उत्थितः कटिनिविष्टपाणिकः शोभतेऽयमधुनापि सुन्दरः॥15॥

जहाँ पुण्डरीक की माता-पिता की भक्ति से प्रभावित होकर भगवान् विठ्ठल आज भी खड़े हुए, कटि पर हाथ रखे हुए, सुन्दर विग्रह में सुशोभित हो रहे हैं।

विठ्ठलः कटिलसत्कराम्बुजः शोभते च भगवान् समुस्थितः।
भीमरथ्युदकधौतधारया स्नापितश्च किल रुक्मिणीपतिः॥16॥

जहाँ पर कटि पर कर-कमल रखे हुए भगवान् विठ्ठल रूक्मिणी जी के पति भीमरथी नदी की जल धारा से स्नान करते हुए आज भी खड़े हैं।

रुक्मिणीपतिरनङ्गसुन्दरो भीमभीमभववार्धिमन्दरः।
भीमरथ्युदकमापिबन् मुहुः पारिजात इह भाति वै सताम्॥17॥

भीम भवसागर के मन्दर के समान कामदेव ने भी जिनसे सुन्दरता पायी ऐसे रुक्मिणी-पति भगवान् भीमरथी के जल का पान करते हुए सन्तों के लिए पारिजात कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हो रहे हैं।

तत्र जन्म जनको गृहीतवान् ब्राह्मणान्वय उदात्तविक्रमः।
विठ्ठलजश्च किल पन्त इत्यसौ विश्वविश्रुतयशाः समुद्बभौ॥18॥

वहाँ पर ही जनक जी ने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया और उनका यश विश्वविश्रुत हुआ और वे विठ्ठल पन्त नाम से सुशोभित हुये।

रामचन्द्रमुखचारुचन्द्रमस्-सच्चकोरनयनो नयान्वितः।
दूरतो विषयभोगतो भवन् राममेव सततं समाश्रयत्॥19॥

इस प्रकार जिनके नेत्र रामजी के मुखचन्द्र के चकोर बन गये हैं ऐसे विठ्ठल पन्त विषय भोगों से दूर होते हुए सतत रामजी का ही आश्रय करते रहे।

पण्डरञ्च पुरमावसन् मुहु रामचन्द्रचरणाम्बुजं भजन्।
नो विवेद भवभीमवासनां भक्तिमान् हि विषयैर्न चाल्यते॥20॥

पण्डरपुर में रहते हुए भी विठ्ठल पन्त ने भगवान् कृष्ण की भक्ति नहीं की वे रामचन्द्र जी के चरण कमल का ही भजन करते रहे और संसार की वासना से बहुत दूर रहे। भक्तिमान् विषय से कभी भी विचलित नहीं किया जा सकता।

यत्र यत्र रघुचन्द्रकीर्तनं यत्र यत्र किल राघवीकथा।
तत्र तत्र रमते स्म भूसुरो राजहंस इव मञ्जुमानसे॥21॥

जहाँ-जहाँ रामजी की कथा होती और जहाँ-जहाँ भगवान् का दर्शन होता वहाँ वहाँ वे रम जाते है उसी प्रकार जैसे मानसरोवर में राजहंस रमण करता है।

आदिकाव्यमनघं च पावनं यज्जगौ च कविकोकिलः पुरा।
श्लोकमस्य हि पठन् च पाठयन् मोदमाप महिदेवतल्लजः॥22॥

जिस आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण को पहले कवि कोकिल बाल्मीकि ने गाया उसी के श्लोकों को स्वयं पढ़ते पढ़ाते विठ्ठल पन्त बहुत प्रसन्न होने लगे।

बालकाण्डमथ भूसुरः पठन् कौशिकागमनमेकदाऽवधे।
वीक्ष्य पङ्क्तिरथ प्रेमभासुरं मूर्च्छितो न्यपतदूर्विमण्डले॥23॥

एक बार विठ्ठल जी वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड में विश्वामित्र का आगमन पढ़ रहे थे और दशरथ जी का प्रेम चिन्तन करते हुए वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

अष्टहोरमथ कालमात्मवान् मूर्च्छितश्च स ददर्श राघवम्।
कौशिकेन सह यान्तमादरान्नागवन्मणिवियोजितोऽभवत्॥24॥

फिर उन्होंने उन्होंने आठ घण्टे पर्यन्त मूर्च्छा में रहकर विश्वामित्र के साथ जाते हुए राघव जी के दर्शन किये और उसी प्रकार वे तलपलाने लगे जैसे मणि से विहीन सर्प।

हन्त हा कमलनेत्र राघव कुत्र यासि सहसा विहाय माम्।
इत्यसौ परिरुरोद सुस्वरं रामचन्द्रसुवियोगविह्वलः॥25॥

हे कमलनयन राघव! अरे मुझे छोड़कर आप कहाँ चले जा रहे हैं इस प्रकार रामचन्द्र जी के वियोग से व्याकुल विठ्ठल पन्त स्पष्ट सुस्वर में फूट–फूट कर रोने लगे।

राक्षसाः समरमायिनः खलास्त्वं च बालवरटासुतोपमः।
किं घटिष्यस इहार्ह उद्धतैः पङ्कजं च पविना समं यथा॥26॥

अरे राक्षस युद्ध में बहुत माया करते हैं आप तो बालहंस के समान कोमल हैं इनके साथ आप कैसे युद्ध करेंगे जैसे वज्र के साथ कमल कैसे युद्ध कर सकता है।

किन्तु नैव मनसा बिभेम्यहं त्वत्पराक्रमविबोधविज्वरः।
बालकोऽपि मिहिरः प्रभातगो हन्ति घोरतिमिरं प्रतापवान्॥27॥

फिर भी मैं आपके पराक्रम के ज्ञान से सन्तुष्ट हूँ और अब नहीं डर रहा हूँ क्योंकि प्रभातकालीन उदित बालसूर्य ही तो सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट कर देते हैं।

एवमेव बहुधा विलप्य वै रामचन्द्रचरणाब्जषट्पदः।
विठ्ठलोऽपि गमितश्च चेतनां जागरूक इव सम्बभूव वै॥28॥

इस प्रकार बार-बार विलाप करके श्रीरामचन्द्र के चरण कमल के भ्रमर विठ्ठल पन्त किसी प्रकार चेतनावान् हुए और संसार के कार्य में लग गये।

रात्रिमेव सकलां तथा दिवा रामचन्द्रमुखचन्द्रमादरात्।
चिन्तयंश्च चिदचिदात्मकं जगन्नो विवेद जगदीशजागरः ॥29॥

भगवान् श्रीराम के लिये जागरण करते हुए सम्पूर्ण और सम्पूर्ण दिन भगवान् का चिन्तन करते हुए वे चिदचिदात्मक जगत् का ध्यान भूल गये।

भोजने च शयने तथाऽऽसने भाषमाण इह सम्पिबन् वदन्।
रामचन्द्रचरणाम्बुजद्वयं चिन्तयन् गृह उवास विठ्ठलः ॥30॥

इस प्रकार भोजन, शयन, आसन आदि क्रियाओं में बोलते हुए जलपान करते हुए, किसी से बातचीत करते हुए, भी विठ्ठल जी श्रीराम जी के चरण कमल का ही चिन्तन करते रहते थे।

रुक्मिणीं च रुचिराननां सतीं स्वीचकार गृहिणीं गृहीश्वरः।
भावयञ्जनकभावमात्मनि स्वां प्रियां सुनयनां विचिन्तयन् ॥31॥

इसके अनन्तर सुन्दर मुखवाली रुक्मिणी नामक ब्राह्मणकन्या को उन्होंने अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया। स्वयं मैं वे जनक की भावना करते थे और रुक्मिणी जी में सुनयना की भावना करते थे।

दास्यभावसुधया प्रपूरितौ दम्पती जनकजाभवाऽऽदृती।
मोदमानमनसौ बभूवतुः स्वाश्रमेऽपि गृहिणौ निरामयौ ॥32॥

इस प्रकार वे पति-पत्नी दास्य भाव रूप अमृत परिपूरित होकर भगवान् सीतापति के चरण में आदरभाव रखते हुए प्रसन्न मन से गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी भगवद्भजन से विमुख नहीं हुए।

नो कदापि विषयेषु विह्वलौ रामचन्द्रचरणाब्जषट्पदौ।
दम्पती जनकजाभवोद्गती सम्बभूवतुरथात्मवित्तमौ ॥33॥

सीतापति भगवान् श्रीराम के चरण में उत्कृष्ट गति प्राप्त करने वाले ये दम्पति कभी भी काम के बाण से विह्वल नहीं हुए और भगवान् का भजन करते रहे।

भूमिजाभवविवाहमुत्सवं चक्रतुः परमप्रेमसंयुतौ।
दम्पती विदितसद्गती मुदा पूर्ववृत्तपरिचिन्तनान्वितौ ॥34॥

कभी-कभी वे दोनों सीताराम जी के विवाह का उत्सव करते थे और फिर उन्हें पूर्ववृत्तान्त का स्मरण हो जाता था और वे सन्तों के आश्रय रूप श्री सीताराम जी को जान लिये थे।

कुत्र यासि तनये ममात्मजे जानकि स्फुटसरोजलोचने।
इत्यनन्यमनसौ विचिन्तितौ साश्रुदृग् प्ररुदतुः सकारुणी ॥35॥

अरे सीते! तुम कहाँ चली जा रही हो इस प्रकार बार-बार सीताजी का स्मरण करके वे रोते थे।

क्वापि रेणुमयमञ्जुविग्रहौ संरचय्य जनकात्मजाप्रभू।
बारबारमथ तौ प्रणेमतुर्भावभिन्नहृदयौ विलेपतुः ॥36॥

कभी-कभी बालू से सीताराम जी का विग्रह बना कर दोनों पति-पत्नी उनकी पूजा करते प्रणाम करते और भावभिन्न हृदय से विलाप करते।

विठ्ठलश्च किल रुक्मिणी तथा तावुभौ च जनकात्मजावरम्।
भेजतुश्च भजनीयविग्रहं जीवनञ्च विमलं प्रचक्रतुः ॥37॥

इस प्रकार विठ्ठल और रुक्मिणी जी भगवान् का चिन्तन करते हुए और उने कमनीय विग्रह का स्मरण करते हुए अपने जीवन को धन्य बना लिए।

कौशिकोऽपि सहसा तमागमद् ब्राह्मणोद्धमवधूतवेशधृक्।
दूरयन् दूरितदोषदुर्भगाद् दुर्विलासभवपाशपङ्कतः ॥38॥

इसी बीच अवधूत का वेश धारण करके पाप, दोष एवं दुर्भाग्य से युक्त दुर्वासना के विलास से मण्डित संसार-बन्धनात्मक कीचड़ से दूर करने के लिए उन ब्राह्मण श्रेष्ठ विठ्ठल पन्त के पास विश्वामित्र जी भी आ गये।

तं तमालवपुषश्च सेवकं पूजितं व्यदधतां च दम्पती।
सत्समागम उदारचेतसां श्रेयसे हि परिकल्पते सताम् ॥39॥

इस प्रकार तमाल के समान सुन्दर श्रीराम के सेवक विश्वामित्रजी की पति-पत्नी ने बहुत पूजा की। क्योंकि सन्तों का समागम उदार चित्त महापुरुषों के कल्याण के लिए ही होता है।

पूजितश्च सुखमास्थितो मुनिर्वीक्ष्य भक्तिविनतौ च दम्पती।
रामचन्द्रचरणाब्जकिङ्करो भाषते स्म वचनं सुधासमम्॥40॥

इस प्रकार से दम्पती द्वारा पूजित उन अवधूत वेशधरी विश्वामित्र ने रुक्मिणीबाई और विठ्ठल पन्त को भाव से विनम्र देखकर भगवान् श्रीराम के चरणारविन्द की सेवा में नियुक्त विश्वामित्र जी अमृत के समान वचन बोले।

विठ्ठल त्वमनुमान्य गेहिनीं काशिकां जनमनप्रकाशिकाम्।
भूतभावनपुरीमवाऽऽशु भो भक्तये भगवतो न मुक्तये॥41॥

हे विठ्ठल अपनी पत्नी को समझा बुझाकर भक्तों के मन को प्रकाशित करने वाली भूतभावन शङ्कर की पुरी में भगवान् की भक्ति के लिए जाओ, मुक्ति के लिए नहीं।

रामनामजपयागदीक्षितः शिक्षितः कमलजेन शङ्करः।
यत्र राति सुमनुं षडर्णकं प्राणिने सुमनसे मुमूर्षवे॥42॥

जिस काशी में राममन्त्र के जप से दीक्षित ब्रह्माजी के द्वारा निदेश पाकर स्वयं शङ्कर जी मरणासन्न सुन्दर मनवाले प्राणी को राम मन्त्र का दान करते हैं।

तारकं निलिखलोकतारकं यत्र राति ससुखं हि शङ्करः।
प्राणसङ्कटवते मुमूर्षवे काशिकां सपदि तां सुखी व्रज॥43॥

जहाँ शङ्कर जी स्वयं राममन्त्र की दीक्षा देते हैं। जब मनुष्य का शरीर छूटने लगता है तो शिवजी आकर के सारे संसार को तारने वाले छह अक्षर वाले मन्त्रराज रामतारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। इसलिए तुम वहाँ अवश्य जाओ।

तत्र वीक्ष्य जगतां गुरुं हरिं राममेव धृतसाधुविग्रहम्।
तत्पदाम्बुजरजोऽनुसेवया लब्धरामरसिको भविष्यसि॥44॥

वहाँ साक्षात् साधुविग्रह में श्रीरामरूप जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के दर्शन करके उनके चरणकमल की धूलि की सेवा से तुम श्रीरामजी की भक्ति प्राप्त कर लोगे।

कौशिकस्य वचनं निशम्य वै गेहिनीं समनुमान्य धीधनः।
भग्नजालहरिणो यथा हरिं वीक्षितुं च मुनिना समं ययौ ॥45॥

इस प्रकार सन्त के वचन सुनकर अपनी पत्नी रूक्मिणी बाई को मना कर जाल तोड़ कर भगे हुए हरिण की भाँति विठ्ठल जी भगवान् का दर्शन करने के लिए मुनि के साथ चल पड़े।

विठ्ठलः समनुनीतविठ्ठलो मार्गमेव समनन् पुरो मुदा।
धूर्जटे जटिलतां विहाय वै मोदमाप गृहमात्यजन् यतिः ॥46॥

और भगवान् विठ्ठल से प्रार्थना करके विठ्ठल भी शङ्कर जी की पुरी काशी के मार्ग में चलते हुए जटिलता को छोड़कर गृह का त्याग करते हुए अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तत्र तत्र रघुनाथगाथया पावयन् निजमनाथनाथया।
नान्वभूच्छ्रममसौ पथि व्रजन् रामचन्द्रचरणाब्जकिङ्करः ॥47॥

भिन्न-भिन्न स्थानों पर अनाथों के नाथ रघुनाथ जी की गाथा का स्मरण करते हुए श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमल के किङ्कर श्रीविठ्ठल पन्त मार्ग के श्रम का अनुभव नहीं किये।

मार्ग एव सहसा व्यलोकयन् नीलपीतजलजाभविग्रहौ।
श्यामगौरवपुषौ कुमारकौ कोटिकामकमनीयकान्तिकौ ॥48॥

मार्ग में ही उन्होंने नीले पीले कमल के समान विग्रह वाले करोड़ों कामदेवों की कान्ति को धारण करने वाले श्याम गौर शरीर वाले दो बालकों को देखा।

मन्दमन्दकलहासशोभनौ कोटिकोटिकमनोजलोभनौ।
बालकौ निखिललोकपालकौ श्यामगौरवपुषौ किशोरकौ ॥49॥

मन्द-मन्द मुस्कान से सुशोभित करोड़ों-करोड़ों कामदेवों को लुब्ध करने वाले सम्पूर्ण लोक के पालक श्याम गौर शरीरवाले किशोर दोनों बालकों को विठ्ठलजी ने देखा।

भक्तभीहरणपादपङ्कजौ बालभानुकमनीयवाससौ।
चण्डकार्मुकसुकाण्डधारिणौ योगिवृन्दमृदुचित्तहारिणौ ॥50॥

भक्त के भयहारी कोमल कमल के समान चरण वाले बाल सूर्य के समान पीताम्बर वस्त्र धारण किये हुए सुन्दर धनुष बाण से सुशोभित योगिवृन्द के मन को हरने वाले ऐसे बालकों को विठ्ठल जी ने देखा।

विप्रपादवनजात्तवक्षसौ केलिसंयुगविनष्टरक्षसौ।
श्यामगौरकमनीयविग्रहौ पादसेवकविपत्तिनिग्रहौ ॥51॥

ब्राह्मण के चरणकमल से जिनका वक्षस्थल सुशोभित है, खेल खेल के युद्ध में जिन्होंने राक्षसों को नष्ट किया है, जो भक्तों की विपत्ति को दूर करते हैं, ऐसे श्याम गौर सुन्दर विग्रह वाले श्रीरामलक्ष्मण को विठ्ठल जी ने निहारा।

चारुचन्द्ररुचिराननावुभौ नीलनीलनवकञ्जलोचनौ।
रोचनौ प्रणतभीतिमोचनौ दृष्टवान् स पथि रामलक्ष्मणौ ॥52॥

विठ्ठल पन्त जी ने मार्ग में पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले नीले-नीले, नवीन कमल के समान नेत्र वाले स्वभाव से सुन्दर प्रणत भक्तों का भय दूर करने वाले दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मण को निहारा।

भ्रातरौ दशरथस्य पुत्रकौ जन्मतोऽप्यवितधर्मसूत्रकौ।
लीलयाऽप्यवितविप्रसत्रकौ भालभूषितसुकाकपक्षकौ ॥53॥

इस प्रकार दशरथ जी के पुत्र जन्म से ही वैदिक धर्म की रक्षा करने वाले खेल खेल में ब्राह्मण विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने वाले और मस्तक पर काकपक्ष धारण करनेवाले दोनों भाई राम लक्ष्मण को विठ्ठल पन्त ने निहारा।

आगतौ सपदि सम्मुखस्थितौ दिव्ययौवनतरङ्गसम्भृतौ।
भूभृतौ कलितदिव्यलक्षणौ सन्ददर्श पथि रामलक्ष्मणौ ॥54॥

सहसा अपने सम्मुख आकर स्थित हुए सुन्दर युवावस्था के तरङ्ग के युक्त पृथिवी को धारण करने वाले श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त ऐसे श्रीराम लक्ष्मण जी को अपने सामने आये हुए देखकर आदरपूर्वक विठ्ठलजी ने श्रीराम लक्ष्मण जी के दर्शन किये।

रामलक्ष्मणविलोकनोत्सवो भग्नभीमविकलन्मनोभवः।
काशीयानपरिवृद्धगौरवो रौरवेण किल भग्नरौरवः ॥55॥

राम लक्ष्मण जी के दर्शन से जिनके मन में बहुत बड़ा उत्साह है और व्याकुल करने वाले काम को जिन्होंने नष्ट कर दिया है, काशी प्रयाण से जिनके मन में गौरव की वृद्धि हो रही है और रौरव मृगचर्म से जिन्होंने रौरव को नष्ट कर दिया है ऐसे विठ्ठल ने भगवान् राम लक्ष्मण के दर्शन किये।

विठ्ठलोऽपि समपूर्वबालकौ स्नेहसंवलितदृष्टिवर्त्मगौ।
तृप्तिमेति न दृशोर्विलोकयन् प्राप्य रत्नमिव जन्मनिर्धनः ॥56॥

विठ्ठल जी भी स्नेह पूर्ण दृष्टि के पाथिक बने हुये उन अपूर्व दोनों बालकों को निहारते हुए उसी प्रकार नेत्रों की तृप्ति को नहीं प्राप्त कर रहे हैं जैसे जन्म दरिद्र रत्न को प्राप्त करके तृप्त नहीं होता।

नीलकञ्जनयनौ गुणायनौ कोटिकामसुभगौ परायणौ।
भव्यभालतिलकौ गुणालकौ गोलगोलविलसत्कपोलकौ ॥57॥

उन दोनों बालकों के नेत्र नीले कमल के समान थे वे सम्पूर्ण गुणों के निधान थे और करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर तथा सबके परायण थे। उनके मस्तक पर भव्य तिलक था। उनके बाल घुँघराले थे। उनके गोल-गोल कपोल सुन्दर लग रहे थे।

श्यामगौरवपुषौ किशोरकौ विश्वविश्वनयनैकचोरकौ।
आम्रपल्लवसमानकाधरौ बालकौ दशरथस्य सुन्दरौ ॥58॥

वे श्यामल और गौर शरीर वाले किशोरावस्था वाले विश्व के सब के नेत्रों को चुराने वाले आम्र पल्ल्व के समान अधर वाले सुन्दर दशरथ के दो बालक आज विठ्ठल के समक्ष उपस्थित हुए।

सोऽवलोक्य नृपबालकावुभौ भ्रातरौ च किल रामलक्ष्मणौ।
प्रेमवाहपरिपूर्णमानसः स्नेहतश्च प्रणनाम विठ्ठलः ॥59॥

इस प्रकार उन दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मण बालकों को देखकर भक्तिभाव से परिपूर्ण विठ्ठल जी ने उन्हें प्रेमपूर्वक प्रणाम किया।

सख्यमापतुरथापि तेन वै भ्रातरौ ननु च रामलक्ष्मणौ।
मोदमानमनसौ सकौतुकौ प्रीतमापतुरमन्दविक्रमौ ॥60॥

इस प्रकार दोनों श्रीराम और लक्ष्मण जी विठ्ठल से एक प्रकार की बहुत मित्रता कर ली और मार्ग में खेलते हुए अनेक प्रकार का कौतुक करते हुए वे इन्हें प्रसन्न करने लगे।

सौख्यमेव ददतौ च वर्त्मनि विठ्ठलाय भगवत्पराय वै।
रम्यरम्यसुकथाभिरादराच्चित्तमेव हरतश्च तस्य वै ॥61॥

इस प्रकार से विठ्ठल जी को वे दिव्य-दिव्य सुख देने लगे और अनेक रमणीय कथाओं से उनके चित्त को भी चुराने लगे।

रात्रिमेव प्रथमामुपेत्य ते शेरते स्म ननु वेदसङ्ख्यकाः।
रामचन्द्रसुविचित्रमायया भूतभावनपुरीं समाहृताः ॥62॥

इस प्रकार प्रथम रात्रि को देखकर चारों ने विश्राम किया और भगवान् श्रीराम की माया से वे चारों काशी पहुँच गये।

तावुभावथ नरेन्द्रबालकौ विठ्ठलाच्च सहसा निलिल्यतुः।
भ्रातरौ च ननु रामलक्ष्मणौ दर्शितामलविशिष्टकौतुकौ ॥63॥

इस प्रकार निर्मल विशिष्ट कौतुक दिखाकर वे दोनों राम लक्ष्मण राजकुमार विठ्ठल के नेत्रों से ओझल हो गये।

विठ्ठलश्च सहसावजग्मिवान् यौ नृपालतनयौ समागतौ।
भ्रातरौ च किल रामलक्ष्मणौ दित्सया दृशिसुखस्य चेयतुः ॥64॥

विठ्ठल जी सहसा जान गये जो ये दोनों राजकुमार हमारे पास आये थे ये हमें सुख देने के लिए ही राम लक्ष्मण आये थे।

रामलक्ष्मणमनोज्ञदर्शनात् कोटिजन्मदुरितक्षये कृते।
कौशिकेन परिदिष्टमार्गकः पाञ्चगङ्गतटमेयिवान् सुधीः ॥65॥

श्रीराल लक्ष्मण के दर्शन से करोड़ों जन्मों के पापों के नष्ट होने के पश्चात् विश्वामित्र जी ने जिन्हें पञ्चगङ्गा घाट का मार्ग बताया था, ऐसे विद्वान् विठ्ठल पन्त जी पञ्चगङ्गा घाट पर निर्मित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के कुटीर में आये।

तत्र चासनमधिश्रितं बुधं कोटिकामकमनीयविग्रहम्।
शङ्खरावमनुजादनिग्रहं सन्ददर्श स जगद्गुरोर्गुरुम् ॥66॥

वहाँ पर सिंहासन पर विराजमान करोड़ों कामदेवों के समान जिनका विग्रह कमनीय है, शङ्खध्वनि से जिन्होंने राक्षसों का निग्रह किया है ऐसे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को जो जगद्गुरुओं के भी गुरु हैं विठ्ठल पन्त ने दर्शन किये।

गैरिकं सुभगवास उत्तमं संवसानमथ रौरवीं त्वचम्।
दक्षिणे च सुकरे त्रिदण्डकं बिभ्रतं च यमिनां वरं गुरुम्॥67॥

देखा वे गैरिक वस्त्र धारण कर रहे थे और रौरव मृगचर्म धारण कर रहे थे उनके दक्षिण हाथ में त्रिदण्ड था और संयमियों में श्रेष्ठ थे।

ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलकं गुडालकं बालकं निखिलविश्वपालकम्।
पार्थिवीपतिपदाम्बुजद्वये भृङ्गमाणमनसं मनस्विनम्॥68॥

उनके मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र था। उनके बाल घुँघराले थे। वे बालक होकर भी सम्पूर्ण लोकों के पालक थे और उनका मन नियन्त्रित था। वे मनस्वी थे और उनका मन सीतापति भगवान् राम के चरण कमल का भ्रमर बन गया था। ऐसे रामानन्दाचार्य जी को विट्ठल जी ने देखा।

द्वादशेड्यतिलकं सुभालकं पीतपीतमुपवीतमादरात्।
लम्बयन्तमथ कन्धरे स्वके ध्यानलब्धदशकन्धरद्विषम्॥69॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी बारह (12) तिलक किये हुए थे और उनकी अलकावली सुन्दर थी और वे आदर के साथ अपने बायें स्कन्ध पर पीला यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे और उनके ध्यान में रावण के शत्रु भगवान् राम विराज रहे थे।

नीलतामरसमञ्जुलोचनं कोटिकोटिजनभीतिमोचनम्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलकेन रोचनं शोचनं न हि भवपाशमोचनम्॥70॥

नीले खिले कमल के समान उनके नेत्र थे, भक्तों का सङ्कट दूर कर रहे थे वे और किसी प्रकार का उन्हें शोक नहीं था।

शङ्खमेव धमतं त्रिकालकं तद्ध्वनिध्वनितदिग्वधूतटम्।
रामचन्द्ररमणीयविग्रहं कोटिहिन्दुरिपुवृन्दनिग्रहम्॥71॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी प्रातः मध्यान्ह और सायङ्काल शङ्ख बजाया करते थे, उनके शङ्ख की ध्वनि से दिशायें ध्वनित होती रहती थीं। रामानन्दाचार्य जी भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के विग्रह स्वरूप ही थे, और उन्होंने करोड़ों करोड़ों हिन्दू विरोधियों का निग्रह करके उन्हें दण्डित किया था।

तं ददर्श द्विशिदर्शनोत्कलं देहकान्तिजितकोटिकोत्पलम्।
रामचन्दिरमनःसुनिर्मलं कोटिभक्तजनदिव्यसम्बलम्॥72॥

ऐसे भगवान् रामानन्दाचार्य जी को विठ्ठल जी ने देखा जिन्होंने अपनी कान्ति से नीले कमल को भी लज्जित किया है जो सन्तजनों के एकमात्र बल हैं और असहायों के एक मात्र सम्बल हैं तथा जिनका निर्मल मन भगवान् रामचन्द्र में तल्लीन है।

स्वाम्बुजाङ्घ्रिमकरन्दनिर्भरप्रोद्धताखिलप्रचण्डभूभरम्।
वीक्ष्य तं द्विजवरो जगद्गुरुं विठ्ठलोऽपि किल विठ्ठलोऽभवत्॥73॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य अपने चरण कमल के मकरन्द रस से सम्पूर्ण भयङ्कर भूभार को नष्ट कर रहे थे, उनको निहारकर विठ्ठल भी विठ्ठल हो गये, अर्थात् भूमि पर बैठ गये।

विठ्ठलं च परिवीक्ष्य दण्डवत् सम्पतन्तमथ पादपङ्कजे।
वत्स वत्स कथयन् जगद्गुरुर्भावसिन्धुमभितो ममज्ज ह॥74॥

इस प्रकार अपने चरण कमल में गिरते हुए विठ्ठल को देखकर जगद्गुरुजी ने कहा वत्स वत्स उठो और स्वयं भावसिन्धु में डूब गये।

रामचन्द्रपदपद्ममाधुरी पानमत्तमिह वीक्ष्य विठ्ठलम्।
पञ्चसंस्कृतिविधानपेशलस्तं चकार किल वैष्णवेश्वरम्॥75॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने विठ्ठल पन्त को श्रीरामचन्द्र के चरण कमल की माधुरी में मत्त जानकर स्वयं पञ्चसंस्कार विधान में कुशल होने के कारण विठ्ठल जी को भी पञ्चसंस्कार से युक्त करके वैष्णवों का राजा बना दिया।

राममन्त्रमिह सन्दिदेश वै तस्य पादपतितस्य धीमतः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रमथ भालपट्टके स व्यधाद् विबुधवन्दिताङ्घ्रिकः॥76॥

चरण में गिरे हुए विठ्ठलजी को उन्होंने राममन्त्र दिया और उनके मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाया। क्योंकि स्वयं रामानन्दाचार्य जी के चरणकमल की देवता वन्दना करते थे।

मञ्जुमञ्जुशरचापमुद्रिकां बाहुमूल इह तस्य सोऽदधात्।
कण्ठदेश इह तौलसीं गुरुः कण्ठिकां च कलयन् बभूव हि॥77॥

उनकी भुजाओं पर धनुष वाण की मुद्रा लगायी अर्थात् छाप दी और उनके गले में तुलसी की माला धारण कराते हुये जगद्गुरु जी सुशोभित हुये।

राममन्त्रमिममादिदेश वै यं जजाप शिवया स्मरान्तकः।
गोत्रमच्युतमथाभिधाय तद् वैष्णवं च विधिना व्यधाद् विभुः ॥78॥

इसके पश्चात् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने उन्हें राममन्त्र दिया और अच्युत गोत्र कहकर उनको विधिवद् वैष्णव बना दिया।

भावानन्दं परमसुभगं नाम तस्य व्यधात् सः
संस्कारैस्तैः परिलसितवान् बाणसंख्यैः स्वशिष्यम्।
रामानन्दो यतिकुलगुरुर्योगिभिः सेव्यमानः
काश्यां तिष्ठन् परममहसा भानुकान्तिं प्रभेजे ॥79॥

यतियों के कुलगुरु योगियों के द्वारा सेव्यमान जगद्गुरु रामानन्दाचार्य अपने सुयोग्य शिष्य विठ्ठल पन्त का नाम भावानन्द रखकर उन्हें पञ्चसंस्कारों से युक्त करके स्वयं काशी में विराजमान होकर मध्याह्नसूर्य के समान सुशोभित हुये।

इत्थं सुशिष्यं यतिराजराजस्तं पञ्चसंस्कारविधानयोग्यम्।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो विधायैव जगाम मोदम् ॥80॥

इस प्रकार अपने शिष्य यतीन्द्र भावानन्द जी को पञ्चसंस्कार से युक्त करके जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए।

तं कृत्वा वैष्णवानामधिपतिमनघं भावपाथोधिमग्नं
भावानन्दं महान्तं गुरुमथ महतां पूजनीयं महिष्ठैः।
आनन्दारण्यवासे यतिकुलतिलकं सादरं सन्नियुज्य
रामानन्दो महात्मा रघुपतिसुतनुर्मोदमापद्यताऽयम् ॥81॥

इस प्रकार भवसागर में निमग्न निष्पाप महान् भावानन्द जी को वैष्णवों का स्वामी बनाकर महापुरुषों द्वारा उन्हें पूजनीय बनाकर उन्हें यतिकुल का तिलक नियुक्त करके भगवान् रामचन्द्र के विग्रह स्वरूप महात्मा जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए।

अथैकदा स्वामिवरञ्च भावानन्दं समाहूय विधेयरत्नम्।
जगद्गुरुर्गद्गददिव्यवाचा पीयूषसंयूषसिचाभ्युवाच ॥82॥

इसके अनन्तर एक बार अपने शिष्य रत्न स्वामी भवानन्द को एकान्त में बुलाकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य अमृतरस को सींचने वाली गद्गद् दिव्यवाणी में बोले।

त्वां वत्स योगस्य बलेन जाने वैदेहितातं जनकं जनेष्टम्।
यदङ्ककारङ्कललामभूता पूता जगत्या जननी विरेजे ॥83॥

हे वत्स! मैं अपने योगबल से यह जानता हूँ कि तुम सीता जी के पिता संसार के इष्ट ऋषिराज जनक हो जिसकी गोदरूप पिटारी की रत्न बनकर जगद्जननी सीता जी सुशोभित हुईं।

चकर्थ पुत्रीं जननीं जगत्या आचार्यवर्यां प्रथमां जनानाम्।
या दोर्लतायामसिनोत् कृपालुं सीता स्वयं ब्रह्म मुदेह रामम् ॥84॥

हे भावानन्द! तुमने जनकरूप में उन्हीं जगज्जननी सीता जी को बेटी बना लिया था, जिन्होंने इसी मर्त्यलोक में अवतार लिये परब्रह्म भगवान् राम को अपनी भुजा लता में बाँध लिया था। इसलिये उन्हें सीता कहा जाता है।

ब्रह्मारिपाणित्रिपुरान्तकानां गन्धर्वसिद्धासुरकिन्नराणाम्।
दाताऽभवद् यो जगतां त्रयाणां बभौ स वै त्वत्पुरतो ग्रहीता ॥85॥

जो भगवान् राम ब्रह्मा, चक्रपाणि, विष्णु, शङ्कर, गन्धर्व, यक्ष, असुर, किन्नर, किम्बहुना तीनों लोकों के दाता हैं, अर्थात् जिनसे सबको सब कुछ मिला है, वे ही तुम्हारे समक्ष ग्रहीता बने। अर्थात् तुमसे सीता जी का कन्यादान लिया।

अशेषमूर्धस्वभिभाति नित्यं यत्पाणिपद्मं करुणैकसद्म।
तदेव ते पाणिसरोजयुग्मं चकास्त्यधोऽधः किमु चित्रमेतत् ॥86॥

और जिन भगवान् के श्रीहस्तकमल करूणा के एकमात्र भवन स्वरूप में सभी प्राणियों के सिर पर निरन्तर विराजते हैं वे ही तुम्हारे युगल करकमलों के नीचे ग्रहीता अर्थात् लेने वाला बनकर विराजते हैं। यह कितना बड़ा आश्चर्य है।

रामं शिशो निर्गुणमत्र विद्धि प्रभुं तमद्धा सगुणं गुणेशम्।
तं वै निराकारमवेहि देवं जानीहि साकारमथो तमेव ॥87॥

हे बालक! उन्हीं भगवान् राम को तुम निर्गुण भी समझो और सगुण भी उन्हीं को निराकार भी जानो और साकार भी।

समस्तकल्याणगुणैकधाम रामो रमाराधितपादपद्मः।
तस्मिन् समस्ताकृतयोऽनवद्याश्चकासति त्याज्यतनुर्न चात्र ॥88॥

लक्ष्मी जी जिनके चरण कमल का आराधन करती हैं ऐसे भगवान् राम समस्त कल्याण गुणों के भवन हैं, उन्हीं में सभी आकार विराजते हैं, पर त्याज्य अर्थात् हेय आकार प्रभु राम में कभी भी नहीं रहते।

गुणा अशेषा निरुपद्रवा वै निरस्तदोषाः स्वसुखैककोषाः।
समस्तकल्याणगुणं तमस्माद् वदन्ति वेदा ननु निर्गुणं च ॥89॥

भगवान् राम ने दोषरहित भक्तों के सुखों के कोश सभी निरूपद्रव गुण विराजते हैं इसीलिये समस्त कल्याण गुणों के विधान भगवान् राम को वेद निर्गुण कहते हैं।

ऐश्वर्यसौन्दर्यसुखादिभिश्च गुणैः सहाऽयं ललितश्चकास्ति।
श्रीरामचन्द्रः सुषमासमुद्रो वदन्ति वेदाः सगुणं तमस्मात् ॥90॥

ऐश्वर्य, सौन्दर्य, सुख आदि सभी सद्‌गुणों के साथ शोभा के सागर श्रीरामचन्द्र जी नित्य ही विराजते हैं, इसीलिये वेद उन्हें सगुण कहते हैं।

यथा न गन्धो पृथिवीं जहाति यथा रसो नो त्यजतीह वारि।
यथा न तेजो ज्वलनं कदाचित् स्पर्शं न वै वायुरथो यथा वै ॥91॥

जैसे पृथ्वी गन्ध को नहीं छोड़ सकती, जैसे जल रस को नहीं छोड़ सकता, जैसे अग्नि तेज को नहीं छोड़ सकता और जैसे वायु स्पर्श को नहीं छोड़ पाता।

यथा नभः शब्दगुणं कदाचिज्जहाति नेदं विमलं त्रिकालम्।
तथैव नैवात्मगुणान् कदाचिज्जहाति रामो विपदां विरामः ॥92॥

जिस प्रकार यह विमल आकाश अपने शब्द गुण को त्रिकाल में कभी नहीं छोड़ता उसी प्रकार विपत्तियों के विराम स्थान भगवान् राम अपने स्वाभाविक गुणों को कभी नहीं छोड़ते।

अपेक्षतां वा समुपेक्षतां वा रामः प्रकामं स्वगुणानदोषान्।
एते न किन्त्वेनमहो त्यजन्ति विहाय गेहं क्व नु को हि तिष्ठेत् ॥93॥

किम्बहुना अपने निर्दोष गुणों की भगवान् राम चाहे अपेक्षा करें चाहे पूर्ण उपेक्षा करें किन्तु ये गुण भगवान् राम को छोड़ ही नहीं सकते। भला अपना घर छोड़कर कोई कहाँ रह सकता है?

द्रव्यं हि मत्त्वा परमात्मतत्त्वं रामं परं ब्रह्म घनाभिरामम्।
नैयायिकास्तं सगुणं मनन्ति द्रव्यं गुणो नो परिहातुमीष्टे ॥94॥

नैयायिक लोग भगवान् राम को परब्रह्म परमात्मा और पदार्थ की दृष्टि से द्रव्य मानकर सगुण ही मानते हैं, क्योंकि द्रव्य को गुण छोड़ ही नहीं सकता।

द्रव्यं हि हेतुर्गुण एव कार्यं द्वयोश्च मध्ये समवायमेव।
सम्बन्धमाहुर्ननु गौतमीयाः साटोपकं कारणकार्यभावम् ॥95॥

द्रव्य कारण है, गुण कार्य है, दोनों के बीच में नैयायिक समवाय, सम्बन्ध और कार्यकारण भाव की चर्चा करते हैं।

गुणं कदाचिन्न गुणी जहाति सम्बन्धिनौ तौ समवायतश्च।
ज्ञानस्य वात्सल्यमुखाः प्रकारा गुणा गुणज्ञस्य सुबाहुशत्रोः ॥96॥

गुणी कभी गुण को नहीं छोड़ता क्योंकि दोनों समवाय सम्बन्ध की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धी हैं। ईश्वर भगवान् राम में समवाय सम्बन्ध से ज्ञान विराजता है, और वात्सल्यादि गुण उसी ज्ञान के प्रकार हैं।

नित्यञ्च रामे परमेश्वरे वै ज्ञानं विभातं समवायतो भोः।
इतीश्वरस्येह सुबाहुशत्रोः सुतार्किका लक्षणमामनन्ति ॥97॥

परमेश्वर भगवान् श्रीराम में समवाय सम्बन्ध से नित्य ही ज्ञान विराजता है। श्रेष्ठ तार्किकों ने ईश्वर श्रीराम का यही लक्षण स्वीकारा है। समवायसम्बन्धेन नित्यज्ञानवत्त्वम् ईश्वरत्वम्।

वेदान्तिनश्चेन्नहि मन्यमानाः सम्बन्धमेते समवायमेव।
स्वरूपसम्बन्ध इहाभ्युपेयो गुणैरथेशस्य सुबाहुशत्रोः ॥98॥

यदि वेदान्ती समवाय को सम्बन्ध नहीं मानते तब भी वेदान्त की दृष्टि में भगवान् राम का गुणों के साथ स्वरूप सम्बन्ध है।

त्रिकालमेवाथ न कोऽपि वत्स स्वरूपमात्मीयमथो जहाति।
स्वरूपभूतान् स्वगुणांश्च रामो जहातु किं जातु गुणैकगृह्यः ॥99॥

हे वत्स! कोई भी पदार्थ या द्रव्य तीनों काल में अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता तो फिर स्वरूपभूत अपने दिव्य गुणों को गुणों के पक्षपाती भगवान् श्रीराम कैसे छोड़ देंगे।

आकारमात्रं जगतीतलेऽस्मिन् यावत् समालोक्यत ईड्यकीर्ते।
तावच्च रामान्ननु निर्गतं हि तस्मान्निराकारमिमं गृणन्ति॥100॥

इस संसार में जो भी आकार दिख रहा है, वह सब भगवान् राम से ही निकला है, इसलिये इनको श्रुतियाँ निराकार कहती है। निर्गता आकारा यस्मात् स निराकारः।

आकार ईड्यो ननु सर्व एव वैदेहिभर्तुर्निरुपद्रवश्च।
तस्मान्निराकारमिमं वदन्ति सर्वाश्च नित्याः श्रुतयः खरारेः॥101॥

भगवान् राम के सभी आकार पूज्य और निरुपद्रव है, इसीलिए सभी श्रुतियाँ उनको निराकार कहती हैं। 'निरूपद्रवः आकारः यस्य स निराकारः।'

सर्वोऽपि चाकार इहैव लीनः श्रीरामचन्द्रे नितरां विभाति।
निरन्तरश्चेममथो वदन्ति रामं निराकारमिमे हि वेदाः॥102॥

जो कि संसार के सभी आकार निरन्तर भगवान् में ही लीन होते रहते हैं, इसीलिए वेद भगवान् राम निराकार कहते हैं।

आकारसङ्घैः सह वर्तमानो रामाभिरामो ननु भाति रामः।
ततश्च साकारमिमं वदन्ति नित्या हि वेदाः स्मृतयस्तथैव॥103॥

सभी दिव्य आकारों के साथ भगवान् राम निरन्तर विराजमान रहते हैं, इसलिये श्रुतियाँ और स्मृतियाँ भगवान् राम को साकार कहती हैं।

कौसल्यास्तनपानलालसमना मन्दस्मितो व्यक्तवा-
गेकं ब्रह्म गुणालकावृतमुखाम्भोजो घनश्यामलः।
खेलन् पङ्क्तिरथाजिरे रघुवरो बालानुजै राघवो
देवो धूलिविधूसरो विजयते रामो मुकुन्दः शिशुः॥104॥

अहो कौशल्या जी के स्तनपान की जिनके मन में लालसा है, जो मन्द मन्द मुसकुराते हुए तोतली बोली में बोल रहे हैं, जो एकमात्र ब्रह्म हैं, घुँघराले बालों से जिनका मुखकमल ढका हुआ है, जो मेघ के समान श्यामल हैं, ऐसे बालकों और छोटे भाइयों के साथ महाराज दशरथ के आँगन में खेलते हुये धूल से विधूसरित देवों के देव बालमुकुन्द भगवान् राम राघव की जय हो।

रामं निराकारमनन्तवीर्यं साकारमाद्यं सगुणं सुशीलम्।
तं निर्गुणं निर्जरवृन्दवन्द्यं सीताभिरामं हृदि भावय त्वम्॥105॥

हे भावानन्द अनन्तपराक्रम सम्पन्न भगवान् राम को निराकार, साकार, निर्गुण, सगुण, निरञ्जन, सीता जी को आनन्द देने वाले, परब्रह्म के रूप में मानते हुए उनकी हृदय में भावना करो।

इत्येवमीड्यं वचनं निशम्य जगद्गुरोः संशयशून्यचेताः।
प्रसन्नधीः स्वामिवरश्च भावानन्दोऽभ्यनन्दद्यतिशेखरं तम्॥106॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के दिव्य वचन सुनकर भावानन्द जी का चित्त संशय से शून्य हो गया और उन्होंने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का अभिनन्दन किया।

जगद्गुरुः स्वामिवरश्च भावानन्दं स्वशिष्यं प्रतिभाष्य चेत्थम्।
काश्यां वसन् वासितसाधुवर्गो लब्धापवर्गोऽपि न तं ववाञ्छ॥107॥

इस प्रकार अपने सुयोग्यशिष्य भावानन्द को दिव्य उपदेश देकर अपने चरणों में साधुओं को निवास देकर काशी में रहते हुये भी मोक्षगति को प्राप्त करके भी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य उसकी इच्छा नहीं किये।

नामं नामं नलिननयनं ब्रह्म रामाभिधानं
गायं गायं ललितचरितं रामभद्रस्य नित्यम्।
ध्यायं ध्यायं हृदयजलजे जानकीजानिरूपं
भावं भावं भवभवभवं कम्रकालं निनाय॥108॥

कमलनेत्र श्रीराम नाम वाले ब्रह्म श्री राम को बार-बार नमस्कार करके रामभद्र भगवान् के ललित चरित्र का नित्यगान करके हृदय कमल में सीतापति भगवान् राम के

रूप का अतिशय ध्यान करके संसार के कल्याण कर्ता शिवजी के भी मङ्गल के हेतु भगवान् की बार-बार भावना करके जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने अपने जीवन काल को सुन्दर रीति से बिताया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
ऊनविंश इह सर्गो यतिपतिगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविराम-भद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्य ऊनविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ विंशः सर्गः ॥

भीष्मोऽधिवैकुण्ठमथाप्यशोचीद् गङ्गासुतो दारुणपापजातम्।
दौवापरे पूर्वनरावतारे वसूत्तमेनापि यदप्यकारि ॥01॥

एक बार वैकुण्ठ में रहकर भी भीष्मजी द्वापर में लिये हुए नरावतार में जो पाप किये थे, यद्यपि वे अष्टवसु में अष्टम थे फिर भी उनसे जो पाप हो गये थे उन पापों के प्रति एकबार चिन्ता करने लगे।

गङ्गासुतो द्वापरपापजातं संस्मृत्य संस्मृत्य भृशं ह्यशोचत्।
वसूत्तमेनाऽपि मयाऽधमेन प्ररक्षिता नाधिसभं च कृष्णा ॥02॥

गङ्गापुत्र भीष्मजी द्वापर के कर्मजात का बार-बार चिन्ता करके शोक करने लगे कि अरे समर्थ हो कर के भी मैंने राजसभा में द्रौपदी की रक्षा नहीं की।

जोहूयमानोऽपि च कृष्णयाहं लज्जावनार्थं किल पापबुद्धिः।
नैव न्यषेधं धृतराष्ट्रपुत्रं दुर्योधनं चापि हि तत्कनिष्ठम् ॥03॥

कृष्णा बार-बार मुझे बुलाती रहीं और उनके बुलाये जाने पर भी उनकी लज्जा की रक्षा के लिए बार-बार आहूत होने पर भी मैंने उस पाप कर्म से न तो दुर्योधन को रोका और न हि दुश्शासन को।

कृष्णस्तु तस्यां द्विषतां सभायां वस्त्रावतारं यमहो व्यधत्त।
तमप्यहं नैव ददर्श मूढो गूढं परब्रह्म सुवस्त्रलिङ्गम् ॥04॥

अरे द्रौपदीजी की गुहार सुनकर भगवान् कृष्ण ने जो राजसभा में वस्त्रावतार धारण किया था और वस्त्रों के बीच परब्रह्म परमात्मा छिपे हुए थे उनके भी दर्शन मैंने नहीं किये।

धन्यो वदान्यो मदपेक्षयाऽसौ मान्यश्च गण्यश्च जयी जटायुः।
तत्याज यो नो जरठोऽपि सीतां प्राणोपहारेण च तां ररक्ष ॥05॥

मुझसे तो करोड़ों गुने जटायु धन्य हैं जिन्होंने वृद्ध होकर के भी सीताजी को अपने जीते जी नहीं छोड़ा अपने प्राण के उपहार से भी उनकी रक्षा की।

यो रावणेनापि विरावणेन यावद्बलं संयुयुधे महात्मा।
छिन्ने च पक्षे ननु राघवाङ्के तिष्ठन्नसून् स्वान् प्रमुदा मुमोच ॥06॥

जो लोकरावण रावण से यथाशक्ति युद्ध करते रहे और रावण के द्वारा पङ्ख काट लिये जाने पर राघवजी के गोद में बैठ कर अपने प्राणों को प्रसन्नतापूर्वक छोड़ा।

प्राप्तोऽहमज्ञो ननु बाणशय्यां पार्थप्रयुक्तां समरेऽप्यसह्याम्।
निर्वाणशय्यां समवाप्य धीरो जिगाय लोकान् स जयी जटायुः ॥07॥

अहो और मैंने तो महाभारत के युद्ध में अर्जुन के द्वारा दी हुई बाणों की शय्या को प्राप्त किया और जटायुजी ने तो भगवान् की गोद में रहकर निर्वाण की शय्या को प्राप्त करके लोकों को जीत लिया।

पीडाश्च सोढा विपदश्च वोढा मयाप्यलं भारतसंयुगेऽस्मिन्।
व्रीडाऽप्यवाप्ता महिलापराधं न्यवारयं नो किल पापबुद्धिः ॥08॥

अहो मैंने उस बाणशय्या पर बहुत पीड़ायें सहीं, बहुत विपत्तियों को भी वहन किया और महाभारत के युद्ध में लज्जा भी झेली परन्तु महिला पर किये हुए अपराध को नहीं रोक पाया।

तस्यैव पापस्य दुरत्ययस्य कः स्यात् प्रतीकार उदग्रशक्तेः।
इतीव भूयोऽपि दहत्यनल्पं चिन्ताचिता मां करवाणि किं भोः ॥09॥

उस पाप का मैं कैसे प्रायश्चित करूँ, कैसे प्रतीकार करूँ, यह चिन्ता चिता मुझे जलायी जा रही है।

अन्नं प्रभुक्तं किल पापिनां वै मया कुरूणां भगवद्रिपूणाम्।
अतीव मेऽभून्मलिना मतिर्वै तस्यापभुञ्जे परिणाममेतम् ॥10॥

मैंने उन पापी कौरवों का अन्न खा लिया, इसलिए मेरी बुद्धि मलीन हो गयी। अतएव उसका मैं फल भोग रहा हूँ।

कृष्णोऽपि दूरोज्झितशस्त्रतृष्णो बाणप्रहाराश्च कृता मया वै।
अहो कियत् पापमकार्यसाधु पूजास्थले यत्प्रहितं शरौघैः ॥11॥

भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत में शस्त्र की तृष्णा से भी दूर हो गये थे फिर भी मैंने उन पर बाण का प्रहार किया यह कितना बड़ा पाप, जहाँ पूजा करनी चाहिए वहाँ मैंने बाण का प्रहार किया।

यच्चारुवक्षस्यथ मञ्जुमाला जनैः प्रदत्ता तुलसी रसाला।
तत्रैव भूम्नो नितरां हि वत्से समर्पिता भीषणबाणमाला॥12॥

जिनके वक्षःस्थल पर भक्तजन तुलसी की माला अर्पित करते हैं उन्हीं भगवान् के वक्षःस्थल पर भीषण बाण की माला अर्पित की।

यत्पादपद्मं परिसेवमाना भवन्ति धन्या भुवि वैष्णवाग्र्याः।
श्रीराजसूये तमजातशत्रोः समभ्यसूयं धृतनापितस्वम्॥13॥

जिनके चरण कमल की सेवा करते हुए श्रेष्ठ वैष्णव पृथ्वी पर रहकर भी धन्य हो जाते हैं, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में नन्दा नाई बने हुये उन्हीं भगवान् कृष्ण की मैंने निन्दा की और डाँटा भी।

अचूचुरं चापि वसिष्ठधेनुं सुरेन्द्रसंवन्दितपादरेणुम्।
अवाप्य शापञ्च ततो मुनीन्द्राद् भीष्मोऽभवं दारुणवीरमानी॥14॥

देवताओं द्वारा जिस कामधेनु की चरण-वन्दना की गयी है उसी वशिष्ठ जी की गाय को मैंने चुराया और उन्हीं के शाप से अपने को बहुत बड़ा वीर मानने वाला मैं भीष्म बन गया।

देवव्रतेनाऽपि मया गुरुर्यत् क्रोधात्तिरश्चक्र उदग्रवीर्यः।
भृगूत्तमो राम उदारकीर्तिः प्रविव्यथे दारुणशस्त्रपातैः॥15॥

देवव्रत होकर मैंने क्रोध से अपने गुरु का भी अपमान किया और उनको दारुण शस्त्रों के प्रहार से व्यथित भी किया।

धिग् धिक् प्रतिज्ञां मम पामरस्य यस्यामवज्ञापि गुरोर्व्यधायि।
धिग् धिग् जघन्यं भटमानिनं मां न तोषितो येन गुरुर्ह्यपापः॥16॥

अरे उस मेरी प्रतिज्ञा को धिक्कार जिसमें मैंने गुरुदेव की अवज्ञा की और स्वयं को वीर मानने वाले मुझको धिक्कार जिसके द्वारा निष्पाप गुरुदेव को भी सन्तुष्ट नहीं किया गया।

रामस्तु धन्यो भगवान् वदान्यो रघूत्तमो ब्रह्म मनुष्यरूपः।
यो जामदग्न्यस्य वचःप्रहारं सुदुःसहं हारमिवानुमेने ॥17॥

धन्य हैं वे भगवान् राम जिन्होंने परशुराम के अपमान भरे वाक्य को भी पुष्प के हार के समान स्वीकार कर लिया।

पितुः समक्षं किल शान्तनोर्या मया प्रतिज्ञाऽभिहिताऽनभिज्ञा।
तयाप्यवज्ञात उदारबुद्धी रामो मया सद्गुरुजामदग्न्यः ॥18॥

अरे शान्तनु के समक्ष जो मैंने प्रतिज्ञा की। जिस प्रतिज्ञा में अभिज्ञ भगवान् का भी अपमान किया गया उसी प्रतिज्ञा के कारण मेरे द्वारा सद्गुरु जामदग्न्य का भी अपमान किया गया।

तत्पाप्मनां नीचकृतां च प्रायश्चित्तं करिष्यामि कलौ च भूयः।
वैकुण्ठहायं किल भारतेऽस्मिन् भूयोऽवतारं तरसा ग्रहीष्ये ॥19॥

मेरे द्वारा किये गये उन दारुण पापों का प्रायश्चित करूँगा और कलियुग में भी मैं वैकुण्ठ छोड़कर भारत में अवतार लूँगा।

यदभ्यसूयं ननु राजसूये श्रीशार्ङ्गिणं नापितवेषमज्ञः।
कुले प्रजातो ननु नापितानां तस्य प्रतिकारमहं करिष्ये ॥20॥

जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में मैंने नापित वेश धारण किये हुए भगवान् कृष्ण की थोड़ी निन्दा की उसका प्रतिकार करने के लिए मैं नापित कुल में ही जन्म लूँगा।

पितृप्रतिज्ञाविवशोऽपि मूढो गुरुं ह्यवाजानमहं प्रमादी।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य दासो भविता तदर्थम् ॥21॥

मैंने पिता की प्रतिज्ञा के विवश होकर जो गुरुदेव परशुराम जी का अपमान कर दिया था इसी कारण जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का सेवक बनकर उस पाप का प्रायश्चित करूँगा।

रामस्तु साक्षाद् भगवाँश्च रामानन्दो बभूवेति दृढा प्रतीतिः।
तत्पादपद्मं परिसेव्य भक्त्या प्रीतिं करिष्यामि जगद्गुरूणाम् ॥22॥

स्वयं भगवान् राम ही साक्षात् रामानन्दाचार्य बने हैं यह मुझको विश्वास है इसलिए उन्हीं के चरण कमल की पूजा करके मैं उस पाप का प्रायश्चित करूँगा और जगद्गुरु को प्रसन्न करूँगा।

वसिष्ठधेनुं यदचूचुरं भो वसूत्तमो दारुणपापबुद्धिः।
वसिष्ठगोत्रस्य जगद्गुरोर्वै सेवां विधायाऽपचितिं करिष्ये॥23॥

जो मैंने वशिष्ठ जी की गाय को चुराया तो अब वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की सेवा करके उस पाप का प्रायश्चित करूँगा।

कृष्णाकृते लब्धपटावतारं नापश्यमज्ञो यदहं मुरारिम्।
काषायवस्त्रं यतिपञ्च रामानन्दं तदर्थं नितरां श्रयिष्ये॥24॥

द्रौपदीजी के लिए वस्त्रावतार धारण किये हुए मैंने भगवान् कृष्ण के दर्शन तो नहीं किये अब काषायवस्त्रधारी साक्षात् जगद्गुरू स्वामी रामानन्दाचार्य का श्रयण लेकर भगवान् का दर्शन करूँगा।

जगद्गुरौ स्वामिवरे च रामानन्दे विपश्यन् किल नन्दसूनुम्।
स्वं नाशयिष्ये दुरितं कठोरमित्येव मे स्यात् प्रतिकर्मभावः॥25॥

मैं जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य के दर्शन में ही नन्दकुमार श्रीकृष्ण की भावना करूँगा यही मेरा इस पाप का प्रतिकर्म हो जायेगा।

जगद्गुरुं कृष्णमनल्पबाणैर्विव्याध मूढो यदहं नृशंसः।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं भजे तत्प्रतिकर्मबुद्ध्या॥26॥

मैंने जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण को बाण से बेधा था इसीलिए अब जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी का भजन करके वह प्रायश्चित कर लूँगा।

एवं विनिश्चित्य च पापप्रायश्चित्तं विधातुं विबुधापगाजः।
कलावभून्नापितवंश एव सुतोऽग्रसेनस्य महानुभावः॥27॥

इस प्रकार अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए गङ्गापुत्र भीष्म इस भारतवर्ष में फिर नापितकुल में अग्रसेन के यहाँ जन्म लिये।

तं रामसेनं श्रितगुण्यसेनं नाम्ना चकारैव पिता मनस्वी।
सम्पालयामास सुतं प्रयत्नाच्चन्द्रो यथा चौषधिबीजजातम्॥28॥

इस प्रकार जिनके पास श्रेष्ठगुणों की सेना थी उन रामसेन को पिता ने उसी प्रकार पाला जिस प्रकार चन्द्रमा औषधि–समूह का पालन करते हैं।

दिने दिनेऽसौ परिवर्धमानः सुबान्धवे देश उदात्तकीर्तिः।
स्वक्षौरकर्मापि कुलानुरूपं चकार बालो वपुषा रसालः॥29॥

इस प्रकार दिन–दिन वर्धमान होते हुए बालक रामसेन बान्धवदेश में अपने कुल के अनुरूप क्षौरकर्म करने लगे।

तत्क्षौरकर्मण्यपि याति निद्रां विश्राममाप्तः सुजनश्च कोऽपि।
इत्येव चैतस्य विशालकीर्तिः कस्तूरिकागन्ध इवाभिजाता॥30॥

उनके क्षौरकर्म में किसी को भी नींद आ जाती है इस प्रकार उनकी कीर्ति कस्तूरी की गन्ध की भाँति फैलने लगी।

राजापि संश्रुत्य तदीयकीर्तिं न्ययुङ्क्त तं राजसुसेवकत्वे।
स सेवमानो नरदेवमेव प्रतीक्ष्यमाणो हरिमभ्यतिष्ठत्॥31॥

राजा ने भी रामसेन की कीर्ति सुनकर उनको अपनी सेवा में रख लिया और वे राजा की सेवा करते हुए भगवान् की प्रतीक्षा करने लगे।

कदा घनश्यामलदेहकान्तिं कान्तालकं भूपतिबालकं तम्।
दृशोर्विधास्याम्यतिथिं स्वकीयं रामाभिरामं प्रमुदैव रामम्॥32॥

वे सोचने लगे कि मेघ के समान श्यामल कान्ति वाले घुँघराले बालों वाले महाराज दशरथ के पुत्र सीताजी से सुन्दर श्रीरामजी को अपने नेत्र का अतिथि कब बनाऊँगा।

कदा कदर्थीकृतमन्महागा रामः समायास्यति दीनबन्धुः।
सीतासमेतः करुणानिकेतः सलक्ष्मणो लक्ष्मणपूर्वजन्मा॥33॥

मेरे सभी पापों को अन्यथा मानते हुए करुणा कर सीताजी के समेत लक्ष्मणजी के बड़े भाई श्रीराम लक्ष्मण के ही साथ मेरे पास कब आयेंगे।

इत्येवमीड्यं किल रामसेनो मनोरथं स्वे हृदये दधानः।
राज्ञा च नीतः प्रणयेन साकं वितन्वता सादरकाशियात्राम्॥34॥

इस प्रकार मनोरथ करते हुए बान्धव महाराज ने रामसेन जी को भी अपनी काशी यात्रा करते हुए अपने साथ ले लिया।

काशीं स गत्वा किल रामसेनः संशीलयन् बान्धवदेशभूपम्।
हृदा भजन् कोशलभूपमेव नासौ विवेदैव भवाख्यकूपम्॥35॥

इस प्रकार काशी में जाकर बान्धव महाराज की सेवा करते हुए और हृदय से कोशल महाराज श्रीरामजी का चिन्तन करते हुए रामसेन संसार के कूप को भूल गये।

राज्ञा निदिष्टः किल कस्यचिद् वै सन्यासिनः क्षौरमथापि कुर्वन्।
चकर्त नो तस्य शिखां महात्मा स्वधर्मनिष्ठो विदुषां वरिष्ठः॥36॥

महाराज के निर्देश पर रामसेन एक संन्यासी का क्षौरकर्म कर रहे थे। सब कुछ तो किया पर उनकी शिखा को नहीं काटा।

सन्यासिना तेन निवेद्यमानो नासौ यदाऽमन्यत तस्य हार्दम्।
शास्त्रार्थयुद्धे निगमानुरुद्धे जिगाय तं संयति रामसेनः॥37॥

संन्यासी के बहुत प्रकार से कहने पर भी उन्होंने उसकी बात नहीं मानी और वेदानुरुद्ध शास्त्रार्थ के युद्ध में उनको जीत लिया।

शिखाविहीनो ननु सूत्रहीनो हिन्दुः कथं स्यान्नरदेहधारी।
तस्माच्छिखा नो परिकर्तनीया शिखैव बोधस्य निदानहेतुः॥38॥

शिखाहीन और सूत्रहीन व्यक्ति कैसे हिन्दू हो सकता है? शिखा नहीं काटनी चाहिए यही तो सम्पूर्ण ज्ञान का मूल है।

शिखैव धर्मस्य महापताका प्राणः शिखा पावनहिन्दुजातेः।
शिखैव वेदस्य शुभा जयश्रीः शिखाविहीनः पशुभिः समानः॥39॥

शिखा ही ज्ञान का सर्वस्व है, शिखा हिन्दू जाति का प्राण है, शिखा ही वेद का मूल है, शिखा से हीन व्यक्ति पशु के समान है।

एवं विवादं भृशमाचरन्तौ सन्यासिसेनौ समवापतुस्तम्।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं खरारेः सुकलांशभूतम्॥40॥

इस प्रकार विवाद करते हुए वे दोनों संन्यासी एवं रामसेन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के पास आये जो साक्षात् भगवान् श्रीराम के अंशावतार थे।

श्रुत्वा तयोश्चापि सुतर्कयुक्तीः सन्यासिनं दुर्बलपक्षमित्वा।
समर्थयामास च रामसेनं जगद्गुरुः शास्त्रविदां वरिष्ठः॥41॥

इस प्रकार दोनों का विवाद सुनकर और दोनों की युक्ति का चिन्तन करते हुए संन्यासी के पक्ष को दुर्बल समझकर जगद्गुरुजी ने सेनजी का ही समर्थन किया।

शिखाविहीनो न भवेत् त्रिदण्डी प्राणैर्विहीनश्च यथा वपुर्वै।
सूत्रं शिखां सादरमत्र बिभ्रत् सन्यासिवर्यो हरिमभ्युपैति॥42॥

त्रिदण्डी को कभी शिखा से रहित नहीं रहना चाहिए जैसे प्राणों से हीन शरीर नहीं होता इसलिए शिखा सूत्र से युक्त संन्यासी ही भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं।

तस्माज्जयत्येष महानुभावः श्रीरामसेनः किल नापिताग्र्यः।
जयत्यमुष्यैव कृपालुमाता यस्यां प्रजातं नरलोकरत्नम्॥43॥

इसलिए रामसेन का पक्ष यहाँ ठीक है। हे सेन! तुम्हारी जय हो और तुम्हारी माता की जय हो जिसने तुम जैसे नर लोकरत्न को जन्म दिया।

अद्यप्रभृत्येव महानुभाव त्वया न कश्चित् खलु मुण्डनीयः।
त्वां पञ्चसंस्कारविधानतोऽहं कामं विधास्ये निजशिष्यमुख्यम्॥44॥

आज के पश्चात् तुम किसी का क्षौरकर्म मत करना और मैं अभी पञ्च संस्कार विधि से तुमको अपना शिष्य बना ले रहा हूँ।

इत्येवमुक्त्वा किल सेनमीड्यं जगद्गुरुः प्रीतमना मनस्वी।
तं पञ्चसंस्कारयुतं विधाय श्रीराममन्त्रं प्रदिदेश तस्मै॥45॥

इस प्रकार कहकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने सेनजी को पञ्चसंस्कार से युक्त किया और उन्हें राममन्त्र दे दिया।

त्वं गच्छ भो बान्धवमेव देशं तत्रैव भूत्वा कुरु साधुसेवाम्।
न लिप्स्यसे दारुणकर्मबन्धैः सरोवरे वार्भिरिवाब्जपत्रम्॥46॥

हे सेन अब तुम बान्धव देश जाओ। वहीं रहकर साधु-सेवा करो। तुम कर्मबन्धनों से उसी प्रकार लिप्त नहीं होगे जिस प्रकार तालाब में जल से कमलपत्र लिप्त नहीं होता।

श्रृण्वन् सदा राघवपुण्यगाथा जपन् मुहुर्द्व्यक्षररामनाम।
बाधिष्यसे नो जगदादिभिस्त्वं करीव सत्पुष्करपुष्पहारैः॥47॥

वहाँ रहकर निरन्तर भगवान् श्रीराम की कथा सुनते हुए और दो अक्षर वाला राम यह नाम निरन्तर जपते हुए तुम जगत् की पीड़ाओं से उसी प्रकार नहीं बाधित हो सकोगे जैसे हाथी सुन्दर कमलपुष्पों के हारों से बाधित नहीं होता।

यदा यदा त्वं जगदेकनाथं स्मरिष्यसि प्राप्तविशुद्धभक्तिः।
तदा तदा दृष्टिपथं त्वदीयं श्रीजानकीजानिरुपैष्यतीह॥48॥

जब जब विशुद्ध भक्ति के साथ तुम भगवान् राम का स्मरण करोगे तब तब तुम्हारे दृष्टि पथ पर सीतापति भगवान् राम प्राप्त हो जाया करेंगे।

गुरुं च गोविन्दमुपास्य भक्त्या श्रीवैष्णवानां विदधच्च सेवाम्।
कालेन मुक्तो भवितासि भद्र संसारबन्धैर्भुजगस्त्वचेव॥49॥

इस प्रकार श्रीगुरु और गोविन्द की उपासना करते हुए श्रीवैष्णवों की निरन्तर सेवा करते हुए प्रारब्ध के समाप्त होने पर संसार-बन्धन से तुम उसी प्रकार मुक्त हो जाओगे जैसे सर्प अपनी केंचुली छोड़ देता हैं।

गृहेषु दारेषु तथा प्रजासु स्थितस्तटस्थस्त्वमथाग्र्यबुद्धिः।
संसारसारं जितकोटिमारं द्रष्टासि रामं नयनाभिरामम्॥50॥

इस प्रकार घर में, पत्नी के विषय में, सन्तति के विषय में तटस्थ भाव से रहते हुए स्थिर बुद्धि वाले तुम इस संसार के सारभूत, कोटि-कोटि कामदेवों को जीतने वाले, नयनाभिराम, भगवान् श्रीराम के तुम दर्शन कर लोगे।

इत्येवमादेशवचो निशम्य जगद्गुरूणाममृतोपमानम्।
तत्पादपाथोरुहधूलिमीड्यां बिभ्रत् स्वमूर्ध्ना स जगाम सेनः॥51॥

इस प्रकार जगद्गुरुजी के अमृतोपम वाणी को सुनकर और उनके चरण कमल की धूलि को अपने शिर पर धारण करते हुए सेन जी बान्धवगढ़ चले गये।

तत्रैव कुर्वन् शुचिसाधुसेवां श्रीरामचन्द्रं सततं समर्चन्।
निनाय कालं नितरां रसालं धिया भजन् पङ्क्तिरथस्य बालम्॥52॥

वहाँ जाकर पवित्र साधुसेवा करते हुए और निरन्तर भगवान् राम का पूजन करते हुए, बुद्धि से दशरथनन्दन श्रीरामजी को भजते हुए उन्होंने अपने सुन्दर काल को सुखपूर्वक बिताया।

यदा यदा पावनवैष्णवानां प्रवर्तते स्माथ सतां समाजः।
तदा तदा सेन उदूढहर्षो भक्तिप्रकर्षै रमते स्म रामे॥53॥

जब-जब पावन वैष्णवों सन्तों का समाज वहाँ होता था तब-तब सेन जी हर्ष से युक्त होकर भक्ति के प्रकर्ष से भगवान् श्रीराम में रम जाते थे।

हे राम हे राघव हे कृपालो हे दीनबन्धो भगवन् दयालो।
इत्येवमादीनि सुबाहुशत्रोर्नामानि रामस्य स गायति स्म॥54॥

हे राम! हे राघव! हे कृपालु! हे दीनबन्धु! हे भगवन्! हे दयालु! इस प्रकार से सुबाहु के शत्रु श्रीरामजी के नामों का वे गान करते थे।

स्मरन् महीजापतिपादपद्मं श्रीरामरामेति जपन् सदैव।
रुरोद बाष्पोद्गमरुद्धकण्ठः कण्ठीरवोऽसौ ननु वैष्णवानाम्॥55॥

सीतापति भगवान् श्रीराम का स्मरण करते हुए और उनके नामों का जप करते हुए वैष्णवों के सिंह सेनजी आँसू से भरे गले से रो पड़ते थे।

दशाक्षरं कीर्तनमेव कुर्वन्नुच्चस्वरेणैव स भक्तराजः।
जिगाय लोकान् विमलान् विशोकान् पूर्वापरान् वैष्णवचक्रवर्ती॥56॥

इस प्रकार से 'सीताराम जय सीताराम' यह दश अक्षरवाला भगवन्नाम कीर्तन करते हुए और भगवान् राम का भजन करते हुए भक्तराज वैष्णवों के चक्रवर्ती सेनजी ने पूर्वापर निर्मल शोकरहित लोकों को जीत लिया।

गुरुं च गोविन्दमथ स्वभक्त्या श्रीवैष्णवान् वै शुचिसेवया सः।
द्विजांश्च दानैर्विगताभिमानो भक्तो व्यजेष्टेष्टपदाब्जनिष्ठः॥57॥

गुरु और गोविन्द को अपनी भक्ति से, श्रीवैष्णवों को पवित्र सेवा से, ब्राह्मणों को दान से, अभिमान रहित होकर इष्ट भगवान् श्रीराम में निष्ठा धारण करते हुए श्रीसेन जी ने जीत लिया।

जितं जितं तेऽजितभक्तवर्य प्रकाममेतज्जगदेकभक्त्या।
इतीव देवा ननु सिद्धसङ्घा जगुस्तमुद्दिश्य च सेनमेव॥58॥

हे भगवान् के भक्तवर्य अपनी श्रीराम भक्ति के द्वारा तुमने इस जगत् को जीत लिया, जीत लिया, जीत लिया। इस प्रकार सेनजी को सम्बोधन करके देवता और सिद्ध लोग उनका विमल यश गाने लगे।

स एकदा वैष्णवसत्समाजे सत्सङ्गरङ्गे धृतचित्तरङ्गः।
कथासुधाविष्णुपदीनिमग्नः सेनो विसस्मार नृपस्य सेवाम्॥59॥

एक बार सेनजी वैष्णव सन्तों के समाज में चल रहे सत्सङ्गरूप रङ्गभूमि में अपने मन के रङ्ग को लगाकर कथा सुधारूप गङ्गाजी में डूबे हुए बान्धवनरेश की सेवा को भूल गये और वह समय बीत गया।

निरीक्ष्य भक्तं स्वपदाब्जसक्तं सत्सङ्गगङ्गाम्बुविगाहमानम्।
रामो दधन्नापितवेषमग्र्यं तं बान्धवेशाधिपतिं सिषेवे॥60॥

इस प्रकार अपने भक्त को अपने चरण कमल में आसक्त देखकर और उन्हें सत्सङ्ग गङ्गा जल में डुबकी लगाते हुए समझकर स्वयं भगवान् राम ही श्रेष्ठ नाई का वेश धारण करके बन्धवेश राजा की सेवा करने लगे।

वहन् क्षुरप्रं स्वकरारविन्दे सदर्पणं दर्पितदुष्टहन्ता।
क्षौरोपयोगीनि समस्तवस्तून्यानीय तच्छौरकृतिं चकार॥61॥

अपने करकमल में क्षुरी अर्थात् क्षुलहरी और दर्पण लेकर दर्पित दुष्टों का हनन करने वाले भगवान् राम क्षौर के लिए उपयोगी समस्त वस्तुओं को लाकर बान्धव नरेश का क्षौर कर्म किये अर्थात् उनकी दाढ़ी बनाई।

यश्चक्रवर्त्यम्बुजनेत्रतारो यो देहशोभाजितकोटिमारः।
स एव रामो भुवनाभिरामः क्षौरं चकारैव महीपतेश्च॥62॥

जो चक्रवर्ती जी के नयन कमल के तारे हैं, जिन्होंने अपने शरीर की शोभा से करोड़ों कामदेवों को जीता है, वे ही भुवनाभिराम श्रीराम आज बान्धव नरेश का क्षौरकर्म कर रहे थे।

पुनश्च तैलं कलितात्मखेलं सुगन्धयुक्तं ननु मुक्तसेव्यः।
लिलेप तस्यैव नृपस्य देहे नवाब्दपाथोरुहदिव्यदेहः ॥63॥

इसके अनन्तर अपना दिव्य खेल करते हुए सुगन्ध से युक्त मुक्तों के द्वारा सेव्य भगवान् राम जिनका शरीर नवीन मेघ एवं कमल के समान दिव्य है ऐसे प्रभु श्रीराम महाराज के शरीर में तेल की मालिश भी किये।

बिभ्रद् विभुर्नापितनव्यरूपं स्वसेवयाऽऽराध्य मुहुश्च भूपम्।
अन्तर्दधे कोशलदेशभूपः स्वनामसम्भग्नभवाब्धिकूपः ॥64॥

इस प्रकार नवीन नाई का रूप धारण करके अपनी सेवा से महाराज को बहुत प्रसन्न करके वे कोशल देश के राजा भगवान् राम अन्तर्ध्यान हो गये जिनका नाम ही भक्तों की सांसारिक पीड़ा के कूप को नष्ट कर देता है।

सत्सङ्गगङ्गाभिषवावसाने यदा स जातः किल जागरूकः।
सेनः सदैन्यो धृतशीलसैन्यः क्षमापयन् भूमिपतिं जगाम ॥65॥

जब सत्संग रूप गङ्गाजल के स्नान का विश्राम हुआ और सेनजी जगे तब दैन्य के साथ शील की सेना लिये हुए सेनजी महाराज से क्षमा करवाने के लिए उनके पास आये।

जगाद जीमूतगम्भीरवाण्या कलेररण्यस्य महाकृपाण्या।
सेनश्च दैन्येन महीपतिं तं स बान्धवेशं स्मृतकोसलेशः ॥66॥

इसके अनन्तर कोशलपति भगवान् का स्मरण करते हुए दैन्य के साथ सेनजी ने कलिकाल रूप वन के लिए कृपाणी के समान मेघ गम्भीर वाणी से इस प्रकार बोले।

क्षमस्व मां बान्धवभूमिपाल ममापराधं च धिया सहस्व।
सत्सङ्गरङ्गे धृतचित्तरङ्गो विवेद सेवासमयं न चाहम् ॥67॥

हे महाराज! मुझे क्षमा कीजिए। मेरे अपराध को सहन कीजिए। सत्सङ्ग रङ्ग में चित्तवृत्ति लगाने के कारण मैं सेवा का समय भूल गया।

सत्सङ्गचित्ते हरिनामवित्तो राजाधिराजस्य कथाश्च श्रृण्वन्।
सेवाक्षणं विस्मृतवाँस्त्वदीयं यथा प्रमत्तो ननु पूर्ववृत्तम्॥68॥

मेरा चित्त सत्सङ्ग में लग गया था, भगवान् का नाम ही मेरा धन हो चुका था, मैं भगवान् की कथा सुनते सुनते आपके सेवासमय को उसी प्रकार भूल गया जैसे पागल व्यक्ति पूर्व वृत्तान्त भूल जाता है।

तत्प्राणदण्डं ननु मे प्रदेहि क्षमस्व वा बान्धवराजवर्य।
त्वदीयपादम्बुजमागतोऽहं यथेच्छसि त्वं तदलं विधत्स्व॥69॥

हे बान्धवराज! फिर तो आप मुझे प्राणदण्ड दीजिए अथवा क्षमा कीजिए। मैं आपके चरणों में आया हूँ, आपको जो मन हो वह कीजिए।

निशम्य तां सेनगिरं गिरीशसेव्याङ्घ्रिपद्मे धृतभूरिनिष्ठम्।
सेनं सदैन्यं विदितप्रतिष्ठं जगाद तं बान्धवराजराजः॥70॥

इस प्रकार भगवान् शङ्कर के आराध्य श्रीराम के चरण में जिनकी निष्ठा है और जिनकी प्रतिष्ठा सर्वविदित है ऐसे दैन्य भरे सेन की दैन्यपूर्ण वाणी को सुनकर बान्धव नरेश महाराज सेन से बोले।

भो सेन भो हासवचः खलूक्त्वा अलं च कृत्वा नु मया विनोदम्।
इतस्त्वमागत्य मुहूर्तपूर्वं सुखेन मत्क्षौरविधिं चकर्थ॥71॥

हे सेन! मेरे समक्ष परिहास वचन कहना व्यर्थ है और मुझसे विनोद करना भी व्यर्थ है। तुम तो एक मुहूर्त पहले मेरे पास आकर सुखपूर्वक मेरी क्षौरविधि करके गये हो अर्थात् मेरी दाढ़ी बना कर गये हो।

सम्मर्द्य मद्देहमहो मनस्विन् तैलेन विश्राम्य च मामतन्द्रम्।
यथा भवान् मां सुखयाञ्चकार तथा न पूर्वं न वदामि मिथ्या॥72॥

मैं क्या बताऊँ! तुम आये, और तेल से मेरे शरीर की मालिश की, आपने जिस प्रकार आज मुझे सुखी किया, उस प्रकार कभी मैं सुखी हुआ ही नहीं हूँ। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ।

क्षमापने किं कुरुषे प्रयत्नं मत्तोऽसि मत्तोऽसि च नापितेश।
विहाय लज्जां व्रज साधुवर्य त्वयि प्रसीदामि विषीद मा त्वम्॥73॥

मुझसे क्षमा कराने के लिए तुम यत्न क्यों कर रहे हो? हे नापित श्रेष्ठ! क्या तुम आज पागल हो गये हो अब लज्जा को छोड़कर अपने घर जाओ और मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम दुःखी मत हों।

जगाद सेनः कलितात्मदैन्यो हे राजराजेश्वर वच्मि सत्यम्।
अहं च सत्सङ्गपयोधिमग्नो रामश्च साक्षात् समितो भवन्तम्॥74॥

इसके पश्चात् दीनता भरे वाक्य से सेनजी ने कहा– हे राजराज! मैं सत्य कह रहा हूँ मैं तो सत्सङ्ग सागर में डूबा हुआ था, रामजी ही आपके पास आ गये थे।

आगत्य रामो नयनाभिरामो महीपतेः क्षौरविधिं चकार।
सम्मर्द्य तैलेन भवच्छरीरं रघुप्रवीरः सुखयाम्बभूव॥75॥

स्वयं रामजी ही आपके पास आकर आपकी क्षौरविधि किये, तेल लगाकर आपके शरीर को सुखी किया था।

निशम्य तां बान्धवराजराजः सेनस्य सत्यं च गिरं गभीराम्।
मन्वान आत्मानमुदारबुद्धिर्जगाद गद्यं जनतैकनाथ॥76॥

इस प्रकार सेन की सत्य वाणी को सुनकर अपने को कृतकृत्य मानते हुए बान्धवराज सेनजी बोले जो वहाँ की जनता के एकमात्र नाथ थे।

ज्ञातं रहस्यं ननु सेनवर्य जगन्निवासो नवचन्द्रहासः।
रामो दधौ नापितनव्यरूपं पस्पर्श मां कोसलदेशभूपः॥77॥

हे सेन जी मैंने रहस्य जान लिया जगत् के निवासस्थान अपनी मुस्कान से नवीन चन्द्रमा को जीतने वाले कोशल देश के अधिपति भगवान् राम ने ही आज नाई का रूप धारण कर लिया है।

यत्पादपङ्केरुहपूजनार्थं भेजे कुवेशं त्रिपुरान्तकोऽपि।
स एव रामस्तव रक्षणार्थं त्वद्रूपमाश्रित्य च मां सिषेवे॥78॥

जिनके चरण कमल के पूजन के लिये शङ्कर जी ने भी कुवेश अर्थात् हनुमान् बनकर वानर का वेश धारण कर लिया वे ही भगवान् राम ने तुम्हारी रक्षा के लिये तुम्हारा ही रूप धारण करके आज मेरी सेवा की है।

अहो खरारेर्ननु कारुणीयं कियत्यपूर्वाऽवितभक्तिदूर्वा।
दूर्वादलश्यामल आर्तबन्धू रामो गमन्नापिततां यदर्थम्॥79॥

अरे भक्तिरूप दूर्वा को पालने वाली खर राक्षस के शत्रु भगवान् राम की करूणा कितनी अपूर्व है कि जिसके कारण दूर्वादल के समान श्यामल आर्त बन्धु भगवान् श्रीराम राजा से नाई बन गये।

सिषेविषुर्यच्चरणारविन्दं भल्लूकतां पद्मजनिर्जगाम।
स दीननाथो जगदेकनाथो मां सेवितुं नापितकर्म भेजे॥80॥

जिनके श्रीचरण कमलों की सेवा करने की इच्छा करते हुए कमलजन्मा ब्रह्मा जी भी भीलू बन गये, अर्थात् जाम्बवान् बन गये वे ही दीनों के नाथ जगत् के एकमात्र स्वामी रघुनाथ जी मेरी सेवा करने के लिये नाई का कर्म किये।

यत्पाणिपाथोजयुगं कुजायाः कपोलसंस्पर्शसुखं बभूव।
तदेव सीतापतिपाणिपद्मं मच्छ्मश्रुमर्द्दं ससुखं व्यतानीत्॥81॥

अरे जिन श्रीराम के युगल करकमल भूमिनन्दिनी सीताजी के कपोलस्पर्श के सुख का अनुभव किये थे, वे ही सीतापति भगवान् राम के करकमल मेरी दाढ़ी का वपन किये।

यत्पाणीपङ्केरुहमाचुचुम्ब साम्रेडमीड्या मिथिलेशपुत्री।
ताभ्यां कराभ्यां जितवारिजाभ्यां तैलं मदङ्गे भगवान् लिलेप॥82॥

जिनके करकमलों को जनकराजपुत्री सीताजी ने बार-बार चूमा उन्हीं कर कमलों से भगवान् राम ने मेरे शरीर में तेल की मालिश की।

यत्पादपङ्केरुहपूतपोताः प्रेम्णा भवाब्धिं सुधियस्तरन्ति।
स एव रामो नयनाभिरामो मत्पादसंवाहनमाततान॥83॥

अरे जिन श्रीराम के श्री चरणकमल को जहाज बनाकर महापुरुष लोग संसार सागर से पार हो जाते हैं उन्हीं नयनाभिराम भगवान् श्रीराम ने मेरा चरण दबाया।

यच्चण्डकोदण्डप्रकाण्डकाण्डलालित्यलक्ष्मीं बिभराम्बभूव।
तदेव रामस्य कराम्बुजं मदर्थेतोः क्षुरप्रं स्म बिभर्ति भव्यम्॥84॥

जिन रामचन्द्र जी के श्री करकमल भयङ्कर धनुष एवं नोकीले बाण की ललित शोभा को युद्धभूमि में धारण किये थे, वे ही भगवान् राम के करकमल आज मेरी सेवा के लिये बुलहरी ले लिये।

करामबुजं यत् सरयूतटेषु रामस्य रेजे धृतकन्दुकं भोः।
तदेव सन्मार्दवमञ्जुलक्ष्मि मदर्थमापद्यत दर्पणस्पृक्॥85॥

जिन श्रीराम के करकमल सरयू जी के तटों पर वेद लिये हुये सुभोभित हुये थे, वे ही प्रभु के श्रीहस्तकमल मेरे लिये आज मुख दिखाने के कार्य में दर्पण (शीशा) उठा लिये।

धन्योऽस्मि मान्योऽस्मि जगत्त्रयेऽहं जगन्निवासेन सभाजितो भोः।
त्वद्भूतये नापितदेहभाजा राजाधिराजेन दृढव्रतेन॥86॥

मैं धन्य हो गया, मैं त्रैलोक्य में मान्य हो गया, क्योंकि तुम्हारी रक्षा के लिए जगन्निवास भगवान् श्रीराम ने नाई का शरीर धारण करके मेरा सम्मान किया।

तन्मे क्षमस्वाद्य महापराधं यत् त्वां नियुञ्जे स्म च सेवकत्वे।
प्रसीद सीतापतिपादपद्मरोलम्ब दत्ताऽऽर्यजनावलम्ब॥87॥

इसलिये आप आज मेरा महान् अपराध क्षमा कर दें, क्योंकि मैने आपको अपना सेवक नियुक्त कर लिया था, हे सीतापति भगवान् राम के चरणकमल के भ्रमर, हे आर्यजनों को अवलम्ब देने वाले सेन जी, आप प्रसन्न हो जाइये।

प्रदेहि मे राममनोश्च दीक्षां शिक्षां हरेः पादरजःप्रतीक्षाम्।
प्रसीद मे नापितमौलिरत्न गुरुं वृणे त्वां गुणतो गरिष्ठम्॥88॥

हे नापितों के शिरोमणि, गुणों से गरिष्ठ, आप श्री को मैं गुरुरूप में वरण कर रहा हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न होइये, मुझे राम मन्त्र की दीक्षा दीजिये और जिसमें भगवान् श्रीराम के चरण रज की प्रतीक्षा है ऐसी शिक्षा दीजिये।

निशम्य चैतद् वचनं महार्हं श्रीबान्धवेशस्य लसत्सुदैन्यम्।
प्रत्युत्तरं सेन इदं बभाषे भास्वानिवार्यो नतकन्धरोऽसौ॥89॥

इस प्रकार बान्धवेश जी का सुन्दर दैन्य से युक्त बहुमूल्य वचन सुनकर सूर्य के समान तेजस्वी श्रेष्ठ गुणों वाले सेन जी सिर झुकाये हुए प्रत्युत्तर में यह वचन बोले।

हे राजराजेश्वर मा विषीद प्रसीद भद्रं तव नाथ भूयात्।
रामस्तु मज्जीवनरक्षणार्थं बभार रूपं ननु नापितस्य ॥90॥

हे राजन् आप दु:खी मत होइये, आप प्रसन्न हो जाइये, आपका कल्याण हो। मेरे जीवन की रक्षा के लिए भगवान् श्रीराम ही नापित बन गये थे।

धन्यं तदास्यं तव राजवर्य धन्यं शरीरं तव बान्धवेश।
यद् रामहस्ताम्बुजलब्धभाग्यं मयाप्यनाप्तं यदहो इदानीम् ॥91॥

हे राजन्, आपका मुख धन्य है, आपका शरीर धन्य है जो रामजी के कर कमल के स्पर्श का भाग्य प्राप्त कर सका। यह सौभाग्य अब तक मुझे भी नहीं मिल सका।

मयाऽधुनाऽप्येतदहो न चाप्तं संस्पर्शनं रामकराम्बुजस्य।
त्वं भूरिभागोऽसि धृतानुरागो यद्दीनबन्धुश्च परामृशत् त्वाम् ॥92॥

अब तक मुझको भी यह सौभाग्य नहीं मिला कि भगवान् राम मेरा स्पर्श करें, तुम तो भूरि भाग्यशाली हो।

ऋणाद्विमुक्तं कुरु मां नरेन्द्र विधत्स्व भो वैष्णवसाधुसेवाम्।
अहं व्रजाम्येष पुरीं च काशीं विहाय सर्वं गुरुदर्शनार्थम् ॥93॥

अब मेरा ऋण समाप्त कर दीजिए, अब आप यहाँ सन्तों की सेवा कीजिए, मैं सद्गुरू के दर्शन के लिए अब काशी जा रहा हूँ।

नाहं भविष्यामि पराङ्मुखो वै वाराणसीतो नरदेवदेव।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य सेवां सततं विधास्ये ॥94॥

महाराज अब मैं काशी से लौटूँगा नहीं और जीवनपर्यन्त जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य की सेवा करूँगा।

क्वाऽहं दरिद्रो ननु निम्नवर्णो वंशे च जातः किल नापितस्य।
क्वैतद् भवान् बान्धवदेशभूपो गुरुश्च सिंहस्य भवेत् कथं श्वा ॥95॥

कहाँ मैं दरिद्र निम्न वर्ण नाई के कुल में जन्मा हुआ व्यक्ति कहाँ आप बान्धव देश के महाराज, क्या कुत्ता कभी सिंह का गुरु बन सकता है?

तस्मान्न चार्होऽस्मि महीपते ते नीचो गुरुत्वे किल मां क्षमस्व।
दीक्षां न दीत्सामि नृपेन्द्र तुभ्यं पिपीलिका किं त्रिदिवं प्ररोहेत्॥96॥

इसलिए हे राजन् मैं आपके गुरु बनने योग्य नहीं हूँ आपको मैं राममन्त्र की दीक्षा नहीं दे सकता। क्या कभी चींटी स्वर्गारोहण कर सकती है?

सेनस्तमेवं नृपतिं निषिध्य तत्पादमूले निपपात दीनः।
स चापि राजा तमशेषबन्धुं प्रीत्याऽनुनिन्ये मनुदीक्षणार्थम्॥97॥

सेनजी इस प्रकार कहकर गुरुदीक्षा का निषेध करते हुए दैन्यभाव से महाराज के चरण में पड़ गये, और बान्धवेश महाराज भी सभी के बन्धु उन सेन जी को मन्त्रदीक्षा के लिए अनुनय करके मना ही लिये।

सेनस्तमालोक्य नृपालरत्नं लब्धाधिकारं ननु वैष्णवत्वे।
दिदेश तस्मै किल राममन्त्रं यथोद्धवायामरदेशिकेन्द्रः॥98॥

अब सेन जी ने भी बन्धवेश महाराज को वैष्णवभाव में अधिकार प्राप्त देखकर उन्हें उसी प्रकार राममन्त्र की दीक्षा दे दी जैसे देवगुरु वृहस्पति जी ने उद्धव जी को वैष्णव दीक्षा दी थी।

भूयो बभाषे विनतं विधेयं सेनो वचो बान्धवराजराजम्।
स्वस्त्यस्तु ते भूप भजस्व रामं सेवस्व साधून् जप राममन्त्रम्॥99॥

फिर सेन जी ने अपने विनम्र शिष्य बान्धवेश को सम्बोधित करके यह वचन कहा— राजन् तुम्हारा कल्याण हो, तुम श्रीराम जी का भजन करो, साधु जनों की सेवा करो और राममन्त्र का जप करो।

इत्येवमुक्त्वा स जगाम काशीं श्रीविश्वनाथार्पिततपुण्यराशिम्।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं निदाघे सुसरः करीव॥100॥

इस प्रकार कहकर के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरण कमल का शरण लेते हुए सेन जी उस काशी नगरी में आ गये जिसको श्रीविश्वनाथजी ने पुण्यराशि समर्पित की है। आज सेन जी रामानन्दाचार्य जी के पास उसी प्रकार आये जैसे ग्रीष्म काल में हाथी सरोवर के पास आता है।

स सर्वतो न्यस्तसमस्तबन्धो निर्बन्धमुक्तः शुचिभक्तियुक्तः।
जगद्गुरोः पादसरोजगन्धं जघ्रौ गृहीतात्मसुखः करीव॥101॥

अब सेनजी के जीवन में कोई बन्धन नहीं रह गया, उनके मन में कोई हठ नहीं रह गया, वे पवित्र भक्ति से युक्त होकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के चरणकमल का सुगन्ध उसी प्रकार लेने लगे जैसे हाथी कमल का गन्ध लेता है।

जगद्गुरोः क्षौरमसौ चकार यथानिदिष्टो विधिवत् प्रहृष्टः।
उच्छिष्टपात्राणि सतां ममार्ज प्रमृष्टदेहो गुणशीलगेहः॥102॥

समय-समय पर जैसी आज्ञा होती थी उसी आज्ञा के अनुसार प्रसन्न होकर सेनजी केवल जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का ही क्षौरकर्म करते थे और पवित्र शरीर होने पर भी, गुणगणों के भवन होने पर भी, वे केवल सन्तों के जूठे पात्र स्वच्छ कर देते थे।

कौपीनमीड्यं च जगद्गुरूणां तथाञ्चलं पुण्यजलाभिषिक्तम्।
संक्षालयन्निच्छति जातु रामग्रन्थिं स वै भक्तिभरेण भक्तः॥103॥

स्वयं जगद्गुरुजी के कौपीन, अचला, जो पुण्य जल से अभिषिक्त है और ब्रह्मग्रन्थि इन सबका वे स्वयं संक्षालन करते थे।

जगद्गुरोर्वक्त्रसरोजभृङ्गो भग्नाधिसङ्गो विमलान्तरङ्गः।
निनाय कालं स कलेः करालं श्रीसद्गुरोः सत्कृपया रसालम्॥104॥

सद्गुरुदेव की श्रेष्ठ कृपा से सेनजी के मन की सभी आँधियाँ समाप्त हो गयीं थीं। उनका अन्तरङ्ग विमल हो गया था। वे जगद्गुरू के मुख कमल के भ्रमर बन कर इस कराल कलिकाल को भी रसपूर्वक बिता रहे थे।

कबीरदासादिसतां प्रसङ्गसत्सङ्गरङ्गो विमलान्तरङ्गः।
तदीयमासीन्ननु नित्यकृत्यं श्रीसद्गुरोः पादरजःप्रसादात्॥105॥

सद्गुरुदेव के चरण-कमल के प्रसाद से अब तो सेनजी का यही कार्य रह गया था वे कबीरदासादि सन्तों का सत्सङ्ग करते थे, उनका अन्तरङ्ग पवित्र था।

गङ्गाभिषेकं गुरुपादसेवा गोविन्दभक्तिः सुजनानुरक्तिः।
श्रीरामनामामृतकीर्तनञ्च सेनस्य चासीन्ननु नित्यचर्या॥106॥

अब तो सेनजी की ये नित्यचर्या बन गयी थी- गङ्गास्नान, गुरुदेव के चरणकमल की सेवा, गोविन्द की भक्ति, सन्तों के प्रति अनुरक्ति और श्रीरामनाम का सत्कीर्तन।

रामानन्दो यतिकुलमणिः प्राप्य सेनं सुसेनं
दर्शं दर्शं शुभगुणगणान् वैष्णवेशस्य तस्य।
स्पर्शं स्पर्शं निजजनशिरः सत्कराम्भोरुहाभ्यां
ध्यायं ध्यायं रघुपतिपदं कालमेवं निनाय॥107॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी अपने प्रिय शिष्य को प्राप्त करके उनके गुणगणों को निहार-निहार कर उनके सिर पर अपने करकमल का स्पर्श करके दिव्यकाल बिताने लगे।

भक्तसेनोऽपि पीनो हरेर्भक्तितः प्रेमपाथोधिमीनो महावैष्णवः।
सद्गुरोः पादपाथोजभृङ्गायितो नो विवेदाथ कालं करालं कलिम्॥108॥

इस प्रकार भक्त सेनजी श्रीरामभक्ति से पीन अर्थात् स्वस्थ हो चुके थे। वे भगवान् श्रीराम के प्रेमसागर के मछली बन चुके थे। वे महावैष्णव थे, सद्गुरु के चरण कमल के वे भ्रमर बन चुके थे। इसलिए कराल कलिकाल को भी वे नहीं समझ पाये, निरन्तर त्रेतायुग में ही निवास किये। भक्तसेनजी की जय हो।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
विंशः सर्गोऽयं यतीन्द्रगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इस प्रकार जिसमें गिरिधर कवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी तथा रामभद्राचार्य गायक हैं और ऐसे श्रीरामानन्दाचार्यचरितम् नामक महाकाव्य में यतिराज रामानन्दाचार्यजी के गुणगणों से युक्त यह बीसवाँ सर्ग सीतापति श्रीराम एवं सुहृद वैष्णवों की सन्तुष्टि के लिए हो। सियावर रामचन्द्र जी की जय।

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-
प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये एकविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथैकविंशः सर्गः॥

बलिर्बलीयान् नितरां ललज्जे वसंश्च पातालपुरे तुरीये।
चित्तं दधानो हरिदत्तदानो दानाभिमानेन विरूढमानः॥01॥

महाराज बलि अभी भी पाताल में निवास कर रहे हैं, उनका मन निरन्तर भगवान् में लगा रहता है, उन्होंने श्रीहरि को सम्पूर्ण पृथिवी का दान किया इसलिए दान के अभिमान से उनके मन में पूजनीयता का भाव आ गया। अतएव एक दिन वे बहुत लज्जित हुए।

अहो मयाऽदायि मही समग्रा महीभृते नाहमथापि दत्तम्।
कथं हृदो दूरयितुं क्षमेय दातृत्वजन्यं हि महाभिमानम्॥02॥

अरे मैंने श्रीहरि को सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया फिर भी अहङ्कार का दान नहीं कर पाया। मैं दातृत्वजन्य अपने हृदय के अभिमान को कैसे दूर करूँ।

मयाऽधमेनापि च वामनोऽसौ द्वौवारिके कर्मणि सन्नियुक्तः।
जगत्समस्तं परिसेवते यं स सेवते मां हि विडम्बनैषा॥03॥

मैंने उनको अर्थात् श्री हरि को अपना द्वारपाल बनाया। समस्त संसार जिनकी सेवा करता है वे मेरी सेवा कर रहे हैं, यह मेरी बिडम्बना नहीं तो और क्या है–

जगन्नियोक्ताऽपि मया नियुक्तो द्वौवारिके कर्मणि शार्ङ्गधन्वा।
मया हरेर्वस्तु प्रदाय तस्मै मिथ्याभिमानो हृदये प्रक्लृप्तः॥04॥

जगत् के नियोक्ता शार्ङ्गपाणी भगवान् को मैंने द्वारपाल के कर्म में नियुक्त कर दिया और श्रीहरि की ही वस्तु श्रीहरि को देकर मैंने अपने हृदय में दान देने का मिथ्याभिमान बसा लिया।

एतं महाघोरतमाभिमानं विदूरयेयं हृदयात् कथं भोः।
उपायमेनं परिचिन्तयामि नाहं लभे काममपि तत्समाधिम्॥05॥

इस अभियान को हृदय से कैसे दूर करूँ, यह उपाय सोच ही रहा हूँ, पर मुझको उसका कोई समाधान नहीं समझ में आ रहा है।

पुनः प्रजायेय च भारतेऽस्मिन् सामान्यवंशे प्रथितप्रसंशे।
संसेव्य तत्रैव हि साधुवर्गान् गताऽभिमानो भविताऽस्मि नूनम्॥06॥

फिर मैं इस भारतवर्ष में ही प्रशंसापूर्ण सामान्य वंश में जन्म लूँ और साधुसेवा करके इस अभिमान को दूर कर लूँ।

एवं विनिश्चित्य बलिर्महात्मा विहाय पातालसुखं सुखेन।
स भारते वर्ष उदात्तकीर्तिर्जातो धनानाम ततः प्रसिद्धम्॥07॥

इस प्रकार सोचकर उदारकीर्ति बलि ने पाताल का सुख छोड़ा और जिसकी प्रशंसा प्रसिद्ध है ऐसे सामान्य वंश में धना नाम से उत्पन्न हो गये।

जातोऽपि बालो न सकृद् रुरोद हसन्निवासीज्जननीसमक्षम्।
पपौ न दुग्धं न पपौ शरीरं सस्मार नित्यं रघुवंशवीरम्॥08॥

जन्म लेकर भी वह बालक एक भी बार नहीं रोया। और अपनी माँ के समक्ष हँसता जैसा दिखा, न दूध पिया, न अपने शरीर की रक्षा की, वह निरन्तर भगवान् श्रीराम का ही स्मरण करता रहा।

धुनोति नित्यं स्म सुलीलयाऽसौ पौरान् समस्तान् पितरौ तथैव।
ततः पिता प्रीतमना मनस्वी नाम्ना धना तं शुचिराजुहाव॥09॥

चूँकि यह बालक सबको अपनी लीला से प्रसन्न कर देता था इसलिए पिता ने इसका नाम धना रखा। धुनोति इति धना।

यदा स बालः किल पञ्चवर्षो मातुः पितुश्चापि ततान हर्षम्।
तदा तमाप्तो द्विजवर्य एकः प्रसन्नचित्तो ह्यवधूतवेषः॥10॥

जब बालक पाँच वर्ष का होकर माता-पिता के हर्ष को बढ़ा ही रहा था कि उसी समय अवधूतवेशधारी एक ब्राह्मण उसके पास आये।

तमिन्द्रसेनांशमथो निरीक्ष्य समस्तकल्याणगुणैकमूर्तिम्।
विप्रः प्रसन्नो नितरां विषण्णं संस्मारयामास भवं च पूर्वम्॥11॥

इसके पश्चात् यह देखकर कि यह बालक बलि का अंश है, ब्राह्मण देवता बहुत प्रसन्न हुए और उस बालक को पूर्व जन्म का स्मरण करा दिया।

अवेहि चात्मानमथो बलिं त्वं त्यक्तं महाघोरतमाभिमानम्।
सुभारते वर्ष इहावतीर्णो विधत्स्व कृत्यं यदपेक्षितं भोः॥12॥

तुम अपने को समझा नहीं कि तुम तो साक्षात् बलि हो, अहङ्कार को दूर करने के लिए ही इस भारतवर्ष में तुमने अवतार लिया है, इसलिए जो अपेक्षित है वह कृत्य अब करो।

अलं विलम्बेन विडम्बितेन अलं तवाऽलं शिशुलीलया भोः।
कुरुष्व यत्नं हरिदर्शनाय न दीर्घसूत्री हि सुखी कथञ्चित्॥13॥

अब विलम्ब मत करो और अब शिशुलीला भी बहुत मत करो, भगवान् के दर्शनों का यत्न करो, क्योंकि दीर्घसूत्री कभी सुखी नहीं रह सकता।

गृहाण मत्तः शिशुवर्य शालग्रामं गुणग्रामचयाभिरामम्।
तस्यैव सेवां विदधान एव द्रष्टासि रामं भुवनाभिरामम्॥14॥

लो, मुझसे यह शालिग्राम की सेवा लो! इनकी सेवा करते हुए, तुम शीघ्र भगवान् श्रीराम के दर्शन कर लोगे।

नित्यं पठन् पौरुषमेव सूक्तं शुभाभिषेकं कुरु बालवर्य।
तं सम्पुटे स्वर्णमये च शालग्रामं मुदा रक्ष महानुभाव॥15॥

लो, पुरुषसूक्त के द्वारा इनका अभिषेक करो, और सोने के सम्पुट में शालग्राम को रखो।

तं ताम्रपात्रे मनुयन्त्रगात्रे शुभेन तोयेन कृताभिषेकः।
संप्रोक्ष्य तन्मूर्ध्नि मुदा दधीथाः श्रीमत्तुलस्या दलमादिपुंसः॥16॥

राममन्त्र के यन्त्र से बने हुए मुद्रित ताम्रपात्र में भगवान् का अभिषेक करके उनके सिर पर श्रीतुलसी अर्पित कर देना।

ततस्तु नैवेद्यमुदारभावो धूपं च दीपञ्च विधाय पूर्वम्।
सानन्दमेतस्य च भोगरागं कुर्या धनास्त्वं भगवत्प्रपन्नः॥17॥

इसके पश्चात् पहले धूप, दीप करके भगवान् का प्रेम से नैवेद्य करना।

नीराजनं पञ्च सुवर्तिकाभिः प्रेम्णा विदध्या ननु बालकेन्द्र।
आराध्य भक्त्या भगवत्सुशालग्रामं भवेस्त्वं कृतकृत्य एव॥18॥

हे श्रेष्ठ बालक! नैवेद्य के अनन्तर प्रेम से पाँच बत्तियों से भगवान् की आरती करना। इस प्रकार भक्तिपूर्वक श्रीरामरूप शालिग्राम की आराधना करके तुम कृतकृत्य हो जाओ।

वन्दे श्रीरामं, प्रभु वन्दे श्रीरामम्।
मुनिजनमनोऽभिरामं, नवमेघश्यामम्। जय राम जय श्रीराम।
पूर्णब्रह्म निष्कामं, पूरितजनकामम्-पूरितजनकामम्
निजजनशोकविरामं-निजजनशोकविरामं व्रीडितशतकामम्। जय राम जयश्रीराम।।

तरुणतमालमनोहर रघुवर दनुजारे। प्रभु रघुवर दनुजारे।
तूणशरासनशरधर-तूणशरासनशरधर दीनं पाहि हरे। जय राम जय श्रीराम।।

समरनिहतदशकन्धर सेवकभयहारिन्। प्रभु सेवकभयहारिन्।
भवपाथोनिधिमन्दर-भवपाथोनिधिमन्दर दण्डकवनचारिन्।
जयराम जय श्रीराम।।

विधुमुखजलजविलोचन पीताम्बरधारिन्। प्रभु पीताम्बरधारिन्
कोसलपुरजनरञ्जन-कोसलपुरजनरञ्जन
हनुमत्सुखकारिन्। जय राम जय श्रीराम।।

भरतचकोरनिशेषं, रिपुसूदनबन्धुम्, प्रभु जय राम जय श्रीराम।
शरणागतसुरधेनुम्-शरणागतसुरधेनुं
नौमि कृपासिन्धुम्- जय राम जय श्रीराम।
जय जय भुवनविमोहन, जय करुणासिन्धो- प्रभु जय राम जय श्रीराम।
जय सीतावर सुन्दर-जय सीतावर सुन्दर
जय लक्ष्मणबन्धो। जय राम जय श्रीराम।।

दर्शय निजमुखकमलं, भवसागरसेतो। प्रभु भवसागर सेतो।
हर गिरिधरभवभारम्-हर गिरिधरभवभारम्
दिनकरकुलकेतो। जयराम जय श्री राम॥19॥

मैं उन प्रभु श्रीराम का वन्दन करता हूँ जो मुनि जन के मनों के आनन्ददाता, नवीन मेघ के समान श्यामल, पूर्ण ब्रह्म, निष्काम तथा भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, अपने जनों के शोक को नष्ट करने वाले तथा अनेक कामदेवों को लज्जित कर देने वाले हैं। हे नवीन तमाल के समान सुन्दर, रे रघुकुल में श्रेष्ठ, हे दनुजों के शत्रु, हे तर्कश एवं धनुष-बाण को धारण करने वाले श्री हरि! आप मुझ दीन की रक्षा कीजिये। हे युद्ध में रावण का वध करने वाले, हे सेवकों का भय हरने वाले, हे भवसागर के मन्दरस्वरूप, हे दण्डक वन में विचरण करने वाले प्रभुश्रीराम आपकी जय हो जय हो, भरतरूप चकोर के चन्द्रमा, शत्रुघ्न के बड़े भ्राता, शरणागतों के लिये कामधेनुस्वरूप, कृपा के सागर, आप श्रीराम को मैं नमन करता हूँ। हे भुवनविमोहन आपकी जय हो, हे करुणा के सागर आपकी जय हो, हे निसर्गसुन्दर सीताजी के वर अर्थात् नवीन दूल्हे आपकी जय हो, हे लक्ष्मण जी के बड़े भाई! आपकी जय हो, हे भवसागर के सेतु श्रीराम! आप अपने मुखकमल के दर्शन करा दीजिये, हे सूर्यकुल के ध्वजस्वरूप प्रभु श्रीराम! मुझ गिरिधर कवि के संसार के भार को दूर कर दीजिये।

आदौ चतुः पादतले च कृत्वा द्वौ नाभिदेशे वदने तथैकम्।
सर्वेषु चाङ्गेषु च सप्तकृत्वो नीराजनं वै विबुधा वदन्ति॥20॥

तुम भगवान् के चरण के पास चार बार, नाभि के पास दो बार, मुखमण्डल पर एक बार और सम्पूर्ण अङ्गों में सात बार नीराजना करना। इस प्रकार विद्वान् कहते हैं।

अनन्तरं संस्कृतभाषया त्वं स्तोत्रं च दिव्यं प्रपठन्नुदारम्।
प्रसादयेर्गण्डकिजन्मशालग्रामं तदा यास्यसि भावुकत्वम्॥21॥

इसके अनन्तर संस्कृत भाषा में दिव्य स्तुति करते हुए गण्डकी पुत्र भगवान् शालिग्राम को प्रसन्न करना और फिर तुम परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

श्रीगाण्डकेयं विभुमप्रमेयं श्रीगोमतीचक्रसनाथितञ्च।
श्रीमत्तुलस्याः पतिमेव शालग्रामं शिलादिव्यतनुं नमामि॥22॥

श्रीमाता गण्डकी नदी के पुत्र सर्वसमर्थ प्रमाणातीत गोमती चक्र से युक्त श्रीतुलसी के पति शिलारूप भगवान् शालिग्राम को मैं नमन करता हूँ।

प्रत्यक्षतो यः कठिनो विभाति परोक्षतः कोमलसर्वगात्रः।
यं वज्रकीटोऽत्तुमियेष शालग्रामं भजे ब्रह्ममयं महौजः॥23॥

जो देखने में कठिन अर्थात् पाषाण रूप और परोक्ष रूप में अत्यन्त कोमल दिखते हैं, वज्रकीट नामक राक्षस को जिन्हें देखकर खाने की इच्छा हो गयी ऐसे ब्रह्ममय महान् तेजस्वी शालिग्राम जी को मैं भजता हूँ।

सर्वावतारं हृतभक्तभारं महत्तमं ज्ञानिकृते लघुं च।
तं सर्वभाज्यं भजतां च शालग्रामं परब्रह्ममयं मनामि॥24॥

जो सभी अवतारों के कारणभूत भगवान् श्रीराम हैं, जिन्होंने भक्तों के भार को नष्ट किया है, जो ज्ञानियों के लिए बड़े और भक्तों के लिए बहुत छोटे हैं, ऐसे बड़ी और छोटी बटी आकार में विराजमान् सबके भजनीय परब्रह्म शालिग्राम भगवान् का मैं मनन करता हूँ।

तपोलसच्छ्रीसनकादिरूपं सब्रह्मचर्यं जगदार्तिनाशम्।
सपञ्चवर्षार्भकमेव शालग्रामं रजोदूरतनुं नमामि॥25॥

सर्वप्रथम तपस्या से सुशोभित सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार रूप धारण किये हुए, ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त संसार की पीड़ा को नष्ट करने वाले, मात्र पाँच वर्ष की अवस्था में वर्तमान रजोगुण से रहित शरीर सनकादि अवतार शालिग्रामजी को मैं नमन करता हूँ।

क्रौडीं तनुं दिव्यविभां दधानं तमालनीलं श्रितदन्तकोट्या।
ऊर्वीं वहन्तं हरिमेव शालग्रामं हिरण्याक्षहनं नमामि॥26॥

दिव्य शोभा वाली सूकर आकृति को धारण करते हुए, तमाल के समान नीले, अपने श्वेत दाँत की नोंक पर पृथिवी को धारण किये हुए, हिरण्याक्ष का वध करने वाले वराह अवतार भगवान् शालग्राम को मैं नमन करता हूँ।

ध्रुवाय दातुं वरमद्वितीयं सहस्रशीर्षाणमुदस्तताक्ष्र्यम्।
वात्सल्यवार्धिं वरदं च शालग्रामं कृपामूर्तिमहं नमामि॥27॥

ध्रुव को अद्वितीय वरदान देने के लिए, गरुड़ को छोड़कर ध्रुव के निकट पधारे हुए, एक हजार मुखों से ध्रुव को चूमते हुए सहस्रशीर्षावतार, वात्सल्यसागर शालिग्राम जी को मैं नमन करता हूँ।

वेनं पतन्तं पृथुमादिराजं पातुं पुतो वै नरकात् सुपुत्रम्।
भक्तं भवद्भागवतं च शालग्रामं भजे तं वरदं वरेण्यम्॥28॥

पुत नामक घोर नरक में गिरते हुए, अपने पिता वेन को बचाने के लिए सुयोग्य पुत्र आदिराज पृथुरूप में अवतीर्ण हुए, भक्त और भगवान् दोनों ही गुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ वरदान देने वाले, भगवान् शालिग्राम का मैं भजन करता हूँ।

आविष्कृतं वै किल मेरुदेव्यां नाभेर्नभस्वन्तमिवाब्जनाभम्।
व्योम्नोऽप्यसक्तं ऋषभं च शालग्रामं प्रपद्ये तमिहादिदेवम्॥29॥

जिस प्रकार आकाश से वायु उत्पन्न हुई उसी प्रकार महाराज नाभि से मेरुदेवी में प्रकट कमलनाथ, आदिदेव भगवान् के अवताररूप, ऋषभावतार शालग्रामजी को मैं प्रपन्न हो रहा हूँ।

आकूतिदेव्यां च रुचेः प्रसूतं यज्ञं मनोस्त्राणकरं रिपुभ्यः।
स्वायम्भुवे शक्रमयं च शालग्रामं प्रभुं विष्णुमहं प्रपद्ये॥30॥

रुचि नामक प्रजापति के सङ्कल्प से मनु की पुत्री आकूति में यज्ञ के नाम से प्रकट हुए शत्रुओं से मनु की रक्षा करने वाले, स्वयम्भुव मन्वन्तर में इन्द्रपद पर आरूढ़ शालिग्राम भगवान् विष्णु को मैं रक्षक रूप में स्वीकारता हूँ।

श्रीकर्दमर्षेः किल देवहूत्यां देवं प्रजातं कपिलं पुमांसम्।
धर्मं वदन्तं जननीं च शालग्रामं भजे कारणमानुषं वै॥31॥

महर्षि कर्दम के सङ्कल्प से देवहूति के गर्भ से जन्मे हुए, माता देवहूति के प्रति भागवत धर्म का उपदेश करते हुए देवाधिदेव परमपुरुष कारणमनुष्य कपिलस्वरूप शालिग्राम के चरणों में मैं प्रपन्न हो रहा हूँ।

अत्रेश्च लब्धो ह्यनसूयया यो दत्तो गुरुः सर्वनृणामनिन्द्यः।
योगेश्वरं तं विभुमेव शालग्रामं महाविष्णुमहं नमामि॥32॥

अपने पति अत्रि से अनसूया द्वारा जो पुत्र रूप में प्राप्त हुए उन योगेश्वर, निन्दारहित, सभी प्राणियों के गुरु दत्तत्रेयावतार, महाविष्णु शालिग्राम भगवान् राम को मैं प्रपन्न हो रहा हूँ।

मूर्त्यां प्रसूतं किल धर्मपत्न्यां नारायणं चैव नरस्य मित्रम्।
तपस्तपन्तं विमलं च शालग्रामं महाविष्णुमयं भजे तम्॥33॥

धर्म की पत्नी मूर्ति में प्रकट हुए, नर के मित्र बदरी क्षेत्र में निर्मल तप करते हुए, नारायणावतार, महाविष्णु, शालिग्राम जी की मैं शरण लेता हूँ।

ग्राहाद् गजेन्द्रं भृशमुद्दिधीर्षुः पत्न्यां हरिण्यां हरिमेधसो वै।
योऽभूद्धरिर्वेदभुजं च शालग्रामं भजे शङ्खगदारिपद्मम्॥34॥

ग्राह से गजेन्द्र को मुक्त करने के लिए जो भगवान् महाविष्णु श्रीराम हरिमेधा ऋषि के पत्नी हरिणी के गर्भ से शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त चार भुजाधारी श्रीहरि प्रकट हुए, उन्हीं शालिग्राम महाविष्णु श्रीराम का मैं भजन करता हूँ।

चतुःसनप्रश्नविमूढमाब्जमज्ञानवाधेर्भृशमुद्दिधीर्षुः।
हंसोऽभवद् यस्तमहं हि शालग्रामं विधेर्मोदकरं प्रपद्ये॥35॥

सनकादिकों के प्रश्न का उत्तर न देने के कारण मोहित हुए, कमल से जन्म लेने वाले, ब्रह्माजी को अज्ञान महासागर से निकालने की कामना से जो भगवान् हंसावतार लिये, और सनकादिकों के प्रश्न का उत्तर दिये, उन्हीं ब्रह्माजी को प्रसन्न करने वाले, हंसावतार, शालिग्राम जी को मैं प्रपन्न हो रहा हूँ।

आहर्तुकामो मधुकैटभाभ्यां हृताः श्रुतीर्यो हरिपुत्रयज्ञे।
आविर्बभूवाश्वमुखश्च शालग्रामं हयग्रीवमहं भजामि॥36॥

मधुकैटभ द्वारा चुरायी हुई वेदों की श्रुतियों को फिर परावर्तित करने के लिए ब्रह्माजी के यज्ञ में जो घोड़े का मुख धारण करके प्रकट हुए, उन्हीं हयग्रीव स्वरूप शालिग्राम जी का मैं भजन करता हूँ।

द्विसप्तकृत्वो मनुतामुपेतं सन्त्रायमाणं ननु वेदधर्मम्।
मन्वन्तराकारमिमं च शालग्रामं महाविष्णुमजं नमामि॥37॥

चौदह बार मनु का अवतार लेकर जो भगवान् वैदिक धर्म की रक्षा कर रहे हैं, उन्हीं मन्वन्तरावतार, महाविष्णु, शालिग्राम को मैं नमन करता हूँ।

धन्वन्तरिः सागरतश्च काशिराजस्य पुत्रोऽभवदेव भूयः।
तं सर्वरोगेभहरिं च शालग्रामं जगद्वैद्यमहं नतोऽस्मि॥38॥

जो भगवान् क्षीरसागर मन्थन से पहले धन्वन्तरि के रूप में प्रकट हुए, फिर वही धन्वन्तरि वैद्य कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी की काशिराज के पुत्र के रूप में प्रकट हुए, उन्हीं सम्पूर्ण रोगरूप हाथियों के लिए महासिंह, जगत् के वैद्य, धन्वन्तरि अवतार, शालिग्राम जी को मैं नमन करता हूँ।

पराशराद्यो ननु सत्यवत्यां पुत्रत्वमायाद् व्यसदेव वेदान्।
द्वैपायनं व्यासमिमं च शालग्रामं हरिं कृष्णमहं प्रणौमि॥39॥

जो महर्षि पराशर के सङ्कल्प से सत्यवती के गर्भ से प्रकट हुए और वेदों को एक हजार एक सौ शाखाओं में विभक्त किया, उन्हीं कृष्णद्वैपायन वेदव्यासरूप शालिग्राम भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ।

यो मत्स्यरूपोऽवदमुञ्च सत्यव्रतं तथोर्वीं जलधेरपारात्।
मत्स्यावतारं प्रणमामि शालग्रामं महाविष्णुमयं च रामम्॥40॥

जिन्होंने मत्स्य का शरीर धारण करके अपार सागर से महाराज सत्यव्रत एवं पृथ्वी की रक्षा की, उन्हीं मत्स्यावतार शालिग्राम भगवान् राम को मैं प्रणाम करता हूँ।

यो कामठीमेव तनुं दधानो दधार पृष्ठे किल मन्दरं च।
तं मन्दरभ्रामरकं हि शालग्रामं महाकच्छपमानतोऽस्मि॥41॥

जिन्होंने कच्छप शरीर धारण करके समुद्रमन्थन काल में अपने पीठ पर मन्दराचल को धारण किया था, मन्दराचल के भ्रमर से सुखानुभूति करने वाले उन महाकच्छपावतार शालिग्राम जी को मैं आदरपूर्वक नमन करता हूँ।

प्रह्लादवाचमथ सत्यपरां विधातुं हन्तुं हिरण्यकशिपुं भटमादिदैत्यम्।
स्तम्भे बभूव नृहरिर्य इमं च शालग्रामं प्रभुं मनुजसिंहमहं नमामि॥42॥

सर्वत्र भगवान् राम हैं, प्रह्लाद की इस वाणी को सत्यापित करने के लिए तथा आदिदैत्य हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए जो भगवान् खम्भे से ही नरसिंह रूप में प्रकट हुए, उन नरसिंह रूप शालिग्राम भगवान् का मैं मनन करता हूँ।

बन्धुं बलिं प्रथितदानमहाभिमानं कर्तुं पदा तदुपरि स्वमनुग्रहं च।
योऽयाचत त्रिपदमेव महीं च शालग्रामं सुवामनवटुं तमिह प्रणौमि॥43॥

दिये हुए दान से उत्पन्न महाभिमान वाले बलि को बाँधने के लिए और उनके ऊपर अपने श्रीचरण कमल से अनुग्रह करने के लिए जिन्होंने बलि से तीन पग भूमि माँगी ऐसे वामनावतार शालिग्राम भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्मद्रुहो नृपतिघस्मरहैहयादीन् योऽहन् त्रिरेव कुपितो ननु सप्तकृत्वः।
तं जामदग्न्यमतिघोरतनुं च शालग्रामं प्रभुं परशुराममहं प्रणौमि ॥44॥

जिन्होंने कुपित होकर इक्कीस बार ब्राह्मणद्रोही, सहस्रबाहु आदि दुष्ट राजाओं का वध किया था, उन्हीं अत्यन्त घोर स्वरूप वाले परशुरामावतार शालिग्राम जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

यो रामचन्द्र इह मण्डितभूपरूप आविर्बभौ दशरथात् कृतधर्मरक्षः।
पौलस्त्यकाननकृशानुशरं च शालग्रामं भजामि परिपूर्णतमं हि रामम् ॥45॥

जो साकेताधिपति भगवान् राम दशरथजी के सङ्कल्प से कौशल्याजी के समक्ष प्रकट होकर राजवेश को सुशोभित किये तथा वैदिकधर्म की रक्षा की, जिनका बाण रावण एवं रावणवंश रूप वन को भस्म करने के लिए अग्नि बना, उन्हीं शालिग्राम रूप परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म भगवान् राम को मैं भजता हूँ।

यो वृष्णिवंशवरवारिधिपूर्णचन्द्र आविर्बभूव वसुदेवयुगस्य गेहे।
कंसं जघान नवकन्दवपुश्च शालग्रामं विचित्रचरितं तमुपैमि कृष्णम् ॥46॥

जो वृष्णिवंश रूप क्षीरसागर के पूर्ण चन्द्रमा स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वसुदेवों के भवन में प्रकट हुए, जिनकी कान्ति नवीन बादल के समान है, जिन्होंने कंस का वध किया उन्हीं विलक्षण चरित्रों वाले श्रीकृष्णरूप शालिग्राम भगवान् की मैं समीपता प्राप्त कर रहा हूँ।

बुद्धो महीदेवतनुः कलौ यः स्वब्रह्मतां वेदमयीं ततान।
सम्मोदयामास जगद्धि शालग्रामं द्विजं बुद्धमहं तमीडे ॥47॥

जो कलियुग में बुद्ध रूप में प्रकट होकर, वैदिक श्रुतियों में भी अपने ब्रह्मत्व को प्रमाणित किये तथा अपनी सुलभता से सम्पूर्ण जगत् को प्रसन्न किये, उन बुद्धावतार शालिग्राम जी की मैं स्तुति करता हूँ।

अन्ते कलेर्यः कुटिलान् जिघांसुराविर्भविष्यन् द्विजदेवगेहे।
श्रिताश्वखड्गं हरिमेव शालग्रामं स्वचित्ते कलयामि कल्किम्॥48॥

जो कलियुग के अन्त में कुटिल लोगों का वध करने के लिए विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के घर में प्रकट होंगे, उन्हीं अश्वारूढ़, तलवार लिये हुए, कल्किरूप धारण करने वाले, कल्कि अवतार भगवान् शालिग्राम को मैं अपने चित्त में धारण करता हूँ।

इत्येवमुक्त्वा च गते द्विजेन्द्रे धना धनं प्राप्य यथा दरिद्रः।
सम्पूजयामास च गण्डकीजं धनुर्धरं राघवमप्रमेयम्॥49॥

इस प्रकार कहकर ब्राह्मण के चले जाने पर धना जी उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जिस प्रकार धन को प्राप्त कर दरिद्र प्रसन्न होता है। और वे शालिग्रामजी की पूजा करते हुए धनुर्धर राघव श्रीराम का ही ध्यान करने लगे।

दिने दिनेऽसौ परिसेवमानो धना धनुर्धारिणमात्तशोभम्।
प्रेम्णा समर्चन् विधवच्च शालग्रामं मुदं प्राप महामनस्वी॥50॥

प्रत्येक दिन भगवान् की विधिपूर्वक पूजा करते हुए और उन शालिग्राम में धुनर्धर श्रीराम जी की भावना करते हुए धनाजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होते थे।

स एकदाऽनेकविधं च भोज्यं समानयद् राघवभोजनार्थम्।
नाश्नाद् यदा भाववशोऽपि शालग्रामस्तदासौ विमनाबभूव॥51॥

एक बार भगवान् के भोजन के लिए धनाजी ने बहुत सा पदार्थ उपस्थित किया अनेक थाल लाये परन्तु भगवान् ने नैवेद्य नहीं किया फिर वे बहुत दुःखी हो गये।

धना धनुर्धारिण एव चाग्रे निवेदयामास च भूरि भोज्यम्।
सम्प्रार्थयामास उदाकीर्तिर्नासौ मुकुन्दो बुभुजे तथाऽपि॥52॥

धनाजी ने धनुर्धारी भगवान् के समक्ष बहुत नैवेद्य उपस्थित किया और बहुत अनुनय विनय किया, फिर भी भगवान् ने भोजन नहीं किया।

अहानि चत्वारि गतानि तस्य बालस्य दीनस्य बुभुक्षितस्य।
आसन्नमृत्युः समभूद् यदा वै तदा खरारिः प्रकटो बभूव॥53॥

इस प्रकार जब बालक मरणासन्न हो गया, क्योंकि चार दिन विना भोजन किये हुए हो गये, तब भगवान् ने बालहठ देखा, तब प्रकट हो गये।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पितकाकपक्षम्।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालक आददर्श ॥54॥

देखा उन्होंने भगवान् की श्रीविग्रह नीले मेघ के समान था जो भक्तों की वाञ्छा के लिए कल्पवृक्ष थे, भुशुण्डीदेव उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, उनके शिर पर 'काकपक्ष' केश था अर्थात् उनके बाल स्कन्ध तक लटक रहे थे। वे धनुषबाण धारण किये हुए थे, ऐसे भगवान् श्रीराम को उस बालक ने निहारा।

पीतं पटं बालदिवाकराभं कट्यां वसानं सुरुचिं जुषाणम्।
शोभां मुषाणं शतमन्मथानां भक्तिं पुषाणं प्रभुमालुलोके ॥55॥

इस प्रकार पीले वस्त्र को धारण करते हुए जो बाल सूर्य का भी निन्दक था और जो रुचि भक्तों की भावना को सेवन कर रहे थे, करोड़ों कामदेवों की शोभा को चुरा रहे थे और भक्ति का पोषण कर रहे थे ऐसे भगवान् को धनाजी ने देखा।

शनैः शनैः पद्मपलाशपद्भ्यां पृथ्व्यां चलन्तं चलकाकपक्षम्।
वात्सल्यसम्पोषितनैजपक्षं सपक्षिणं तं शिशुरालुलोके ॥56॥

कमलचरणों के द्वारा धीरे धीरे चलते हुए, और घुँघराले बालों को धीरे-धीरे हिलाते हुए अपने वात्सल्य से भक्तों के पक्ष का पोषण करते हुए भुशुण्डी जी के साथ, भगवान् राम को धनाजी ने देखा।

धना धनं गुह्यतमं श्रुतीनां मूर्तीभवन् मानवभागधेयम्।
भक्तैकवश्यं श्रितरूपधेयं ददर्श रामामलनामधेयम् ॥57॥

धनाजी ने उस भगवान् को देखा जो श्रुतियों के गोपनीय धन थे, जो मनुवंश के मूर्तिमान् भाग्यस्वरूप थे, जो दिव्यरूप धारण कर रहे थे और जिनका राम यह निर्मल नाम था ऐसे भगवान् को धनाजी ने देखा।

स चात्मनीनं जनभावपीनं समुल्लसन्तं शिशुमाव्रजन्तम्।
कलं वदन्तं मधुरं हसन्तं धना धनेशारिरिपुं ददर्श ॥58॥

धना जी ने ऐसे भगवान् रामजी को देखा, जो अपने लिए बहुत हितकर थे, जो भक्तों के भावों से स्थूल हो चुके थे, अपने समक्ष आ रहे थे, कुछ बोल रहे थे, मधुर-मधुर मुस्कुरा रहे थे, जो धनेशारिरिपुम् अर्थात् कुवेर के शत्रु रावण के भी शत्रु थे।

देहप्रभाव्रीडितकोटिकामं मनोऽभिरामं हृदयाभिरामम्।
श्यामं शिशुं श्यामसरोजनेत्रं सपाणिवेत्रं समपश्यदार्यः॥59॥

अपने शरीर की प्रभा से करोड़ों कामदेवों को जीतने वाले, मन और हृदय को आनन्द देने वाले, नीलकमल के समान नेत्र वाले, ऐसे रामजी को धना जी ने निहारा।

समग्रसौन्दर्यमहानिधानं संसारसंक्लान्तिलसन्निदानम्।
योगीन्द्रदृग्भृङ्गलसन्निपानं ध्यानास्पदं बालकमाददर्श॥60॥

जो समस्त सौन्दर्य के एकमात्र निधान थे, संसार की सम्पूर्ण क्लान्तियों के समाधान थे, योगीन्द्रों के नेत्ररूप भ्रमर के जो पानस्थल थे ऐसे ध्यानास्पद बालक श्रीराम को धनाजी ने देखा।

स चाह बालो वचनं रसालं सुधासमानं धृतभूरिमानम्।
योगीन्द्रसङ्घैः परिपीयमानं मुनीन्द्रगानं श्रवणैकपानम्॥61॥

उन बालक श्रीराम ने वह मधुरवाणी बोली जो अमृत के समान थी, जिसमें बहुत बड़ा सम्मान था, जिसको योगीन्द्र पी रहे थे जिसका मुनीन्द्र गान कर रहे थे जो कर्णकुहरों से पीयी जा सकती थी।

भो भो धना ते परिपूजनेन प्रीतोऽस्मि भो भक्त चिराय जीव।
नाभून्न चास्त्यद्यतनेऽपि काले त्वादृग्रतिर्नो भविता कदाचित्॥62॥

हे धना! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ, ऐसी भक्ति न कभी हुई, न है, और न होगी। क्योंकि इतनी छोटी अवस्था में किसी ने भी मेरे दर्शन नहीं किये।

त्वं पञ्चवर्षोऽपि यदभ्यपश्यो मदीयरूपं श्रितचित्स्वरूपम्।
त्वं भूरिभाग्योऽसि च वैष्णवानां धृतानुरागो मम पादमूले॥63॥

तुमने अपने पाँच वर्ष की अवस्था में मेरे दर्शन किये, वह मेरा अभी रूप देखा जिसका चित् चेतना ही जिसका स्वरूप था, तुम वैष्णवों के बीच बहुत भाग्यशाली हो, मेरे चरणकमल में तुम्हारा अनुराग है।

धना कृतार्थोऽसि च साम्प्रतं भो न तेऽस्ति किञ्चित्करणीयमत्र।
तथाऽपि ते प्रीतिवशाद् ब्रवीमि न चान्यथा चिन्तय चारुचित्ते॥64॥

धना तुम कृतार्थ हो, अब तुम्हारा कुछ भी करणीय नहीं रह गया फिर भी तुम्हारे प्रेमवश होकर कुछ कह रहा हूँ, अपने सुन्दर चित्त में अन्यथा मत चिन्तन करना।

गुरुं विना नैव कदापि चित्तं गोविन्दभावो हि समाश्रयेत।
गुरौ प्रसन्ने च हरिः प्रसन्नो गुरौ तु रुष्टे भगवान् हि रुष्टः॥65॥

देखा धना गुरूदेव के बिना हृदय में गोविन्दभाव नहीं आता। गुरू के प्रसन्न होने पर भगवान् प्रसन्न होते हैं और गुरू के रूष्ट हो जाने पर भगवान् भी रूष्ट हो जाते हैं।

गुरुश्च गोविन्द उभौ सरूपौ गोविन्दतोऽथापि गुरुर्गरीयान्।
ततो गुरुं स्वीकुरु भावलब्ध्यै धनाऽधनस्त्वं धनमावृणुष्व॥66॥

यद्यपि गुरु और गोविन्द ये दोनों समान रूप हैं एक ही हैं फिर भी गुरु गोविन्द से बड़ा होता है। इसलिए अब तुम मेरे भाव की प्राप्ति के लिए गुरु का समाश्रयण करो। हे धना! अभी तुम निर्धन हो। अब धन का वरण कर लो।

नत्लानि रत्नानि मणिः सुवर्णं मन्ये च ये द्राविणराशयो वै।
तुलां न ते यान्ति सखे कथञ्चिद् गुरोः पदाम्भोरुहसेवनस्य॥67॥

चाहे रत्न हो, मणि, सुवर्ण और भी धन की राशियाँ, ये गुरुदेव के चरण की सेवा की कथञ्चित् तुलना नहीं कर सकते।

तद्गच्छ काशीं श्रितपुण्यराशिं श्रीविश्वनाथस्य पुरीं प्रसिद्धाम्।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामा-नन्दं गुरुत्वेन समावृणुष्व॥68॥

इसलिए अब तुम पुण्य की राशि, भगवान् विश्वनाथ की प्रसिद्ध पुरी काशी जाओ और वहाँ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को ही गुरुत्वेन वरण कर लो।

एवं समाश्वास्य कृपासमुद्रः श्रीरामचन्द्रो गुणतश्च भद्रः।
अन्तर्दधे सिद्धसुरेन्द्रवर्यैः सम्पूज्यमानामलपादपद्मः॥69॥

इस प्रकार उनको समझाकार कृपा के सागर गुणों से भद्र श्रीरामचन्द्र भगवान् बालक के देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गये।

स वै समाकर्ण्य विभोर्निदेशं काशीं समायाद् भगवत्प्रपन्नः।
जगद्गुरुं स्वामिवरञ्च रामानन्दं निरीक्ष्याथ जगाम मोदम्॥70॥

इस प्रकार से भगवान् का निर्देश पाकर धनाजी काशी आये और जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को निहार कर बहुत प्रसन्न हुए।

स दण्डवत् तच्चरणारविन्दे प्रेम्णा प्रणम्याऽपि खरान्तकस्य।
आदेशमाश्रावयदार्तभावान्निरीक्ष्यमाणो गुरुपङ्कजास्यम्॥71॥

गुरुदेव के चरण कमल में दण्डवत् प्रणाम करके उन्होंने भगवान् का निर्देश सुनाया और गुरुदेव के मुखारविन्द को निहारने लगे।

जगद्गुरुश्चापि निशम्य तस्माच्छ्रीरामनिर्देशमुदारबुद्धिः।
दिदेश तस्मै किल राममन्त्रं तं पञ्चसंस्कारयुतं विधाय॥72॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने भी इस प्रकार भगवान् का निर्देश सुना तो धनाजी को पञ्चसंस्कार सम्पन्न करके उन्हें राममन्त्र की दीक्षा दी।

उवाच तं वाक्यमनन्यभावं प्रीतोऽस्मि ते वत्स चिराय जीव।
यत्पञ्चवर्षोऽपि निरीक्ष्य रामं मायां महामोहमथो व्यजेष्ठाः॥73॥

इसके अनन्तर अनन्य भाव वाले धनाजी को समझाते हुए रामानन्दाचार्य जी बोले कि वत्स तुम पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम बहुत कालपर्यन्त जीवित रहो। क्योंकि तुमने पाँच वर्ष की अवस्था में ही भगवान् राम के दर्शन करके माया और मोह को जीत लिया।

काचित् चमत्कारमयी भवित्री लीला मदीया ननु शंसनीया।
तस्याः करिष्यन् किल पारिकर्यं गृहं व्रज स्वस्ति शुभं च भूयात्॥74॥

मेरी कोई न कोई एक चमत्कारपूर्ण लीला होगी उसमें परिकर बनने के लिए अर्थात् एक प्रधान पात्र बनने के लिए तुम अभी घर जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।

शिवश्च तेऽध्वास्तु शिशुप्रवीर शिवानि वर्त्मानि तवाऽथ सन्तु।
शिवञ्च भूयात् तव बालकेन्द्र पदे पदे त्वं शिवमत्र दृश्याः॥73॥

हे बालक! तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो और तुम्हारे अवान्तर मार्ग भी मङ्गलमय हो, तुम्हारा कल्याण हो और तुम पग-पग पर कल्याण के दर्शन करो।

इत्येवमादिश्य शिशूद्भमेनं सम्प्रेषयामास वशी वदान्यः।
धनाः धनुर्भृच्चरणारविन्दभृङ्गेशवर्यो जगतां गुरुर्वै ॥76॥

इस प्रकार उन्हें आदेश देकर, धनुर्धर श्रीरामचन्द्र जी के चरणारविन्द में भ्रमर के समान लगे हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने धनाजी को उनके घर भेज दिया।

धनाः समासाद्य गुरोर्निदेशं गृहं समाव्रज्य विनीतभावः।
चकार सेवां बुधवैष्णवानां श्रीरामचन्द्रार्पितचित्तवृत्तिः ॥77॥

इस प्रकार धनाजी गुरुदेव का निर्देश पाकर और घर में आकर विनीत भाव से श्रीरामचन्द्र के चरणों में चित्तवृत्ति को अर्पित करके विद्वान् और वैष्णवों की सेवा करने लगे।

यथा यथा वैष्णवतल्लजाश्च सुखं स्म चाश्नन्ति महाप्रसादम्।
तथा तथा तद् द्विगुणीबभूव सदा धनासद्मनि वर्धमानम् ॥78॥

धनाजी के घर में ज्यों ज्यों वैष्णव भोजन पाते थे, त्यों त्यों वह द्विगुना होता जाता था।

तद् द्रौपदीचीरमिवाऽप्रमेयं भोज्यं समावर्धत नात्र चित्रम्।
यद्गेहमागत्य मनुष्यलिङ्गं गूढं परब्रह्म विराजते स्म ॥79॥

जिस प्रकार से द्रौपदी जी का द्वापर में वस्त्र बढ़ा था, उसी प्रकार धना के घर में भोजन प्रसाद बढ़ता ही गया। कभी भी अल्प नहीं हुआ। इसमें आश्चर्य ही क्या? जिनके भवन में परब्रह्म परमात्मा श्रीराम छिपे हुए सदा विराज रहे थे।

ते दूरदूरान्ननु वैष्णवाग्र्याः सुखं धनासद्म समाव्रजन्ति।
स्वादु प्रसादं परिभुञ्जते स्म जयेति शब्दं स्म मुदा गृणन्ति ॥80॥

दूर दूर से वैष्णव आते हैं, धनाजी के घर में स्वादु प्रसाद पाते, सुखपूर्वक जय-जयकार करते।

विचित्रलीला ननु ताटकारेः कश्चानुगन्तुं पुरुषः क्षमेत।
रजांसि यो वै गणयेत भूमेस्तथा समुद्रस्य सुवारिबिन्दून् ॥81॥

भगवान् की लीला विचित्र है, उसको कौन पुरुष समझ सकता है, उसे वही जाने जो पृथिवी की धूलियों के कण को बिन सके और समुद्र के जल के बिन्दुओं को।

तत्रैकदा वैष्णवतल्लजानां महान् समाजः समभूदमोघः।
धनाऽधिनोत् तान् परिवीक्ष्य साधून् यथा दरिद्रः समवाप्य रत्नम् ॥82॥

धनाजी के घर में एक बार वैष्णवों का समाज हुआ, उन्हें देखकर धनाजी उतने प्रसन्न हुए जैसे कोई दरिद्र रत्न को पाकर प्रसन्न होता है।

वप्तुं च गोधूमचयो य आसीत् तं चूर्णयित्वा विधिवन्महात्मा।
निर्माय दिव्या किल शष्कुलिर्वै स भोजयामास वशी वदान्यः ॥83॥

जो बोने के लिये गेहूँ रखा था उस गेहूँ को पिसवा कर धनाजी ने उससे सुन्दर शुष्कुलि अर्थात् पूड़ी बनायी और सब वैष्णवों को खिलाया।

क्षेत्रेषु मिथ्या हलमेव साधुः स चालयामास न वै चचाल।
निजाद् व्रताद् वैष्णवसेवनाख्याद् धना धनाढ्यो हरिभावरत्नैः ॥84॥

उन्होंने खेतों में झूठा हल चला दिया और भगवान् के भावरत्नों से धनाढ्य धनाजी अपने वैष्णव सेवा से विचलित नहीं हुए।

क्षेत्रेषु नाभूत् किल वीजवापस्तथापि गोधूममभूदनर्घ्यम्।
बीजं विनाप्यङ्कुरयूथरोहो धन्यो धनासद्भजनप्रभावः ॥85॥

क्षत्रों में बीज का वपन नहीं हुआ फिर भी (गेहूँ) उत्पन्न हो गया। सबको आश्चर्य लगा। अहो धना के भजन का प्रभाव धन्य है।

क्षेत्राणि दृष्ट्वा कृषकाश्च तस्य गोधूमयुक्तानि हरित्प्रभाणि।
तं साधुरत्नं प्रशशंसुरेते धन्यो धना वैष्णवचक्रवर्ती ॥86॥

सभी कृषक उनके क्षेत्रों को निहारे कि अरे ये बीज बोये बिना भी, यह कैसे गेहूँ हो गया? वस्तुतः वैष्णवों के चक्रवर्ती धनाजी धन्य हैं।

श्रुतं हि नो दाशरथेश्च राज्ये कीर्णानि बीजानि न कर्षणं हि।
शस्यानि कामं स्म जना लभन्ते ततः प्रतीपं किल चात्र दृष्टम् ॥87॥

हमने दशरथनन्दन रामजीके राज्य में सुना था कि बीज बोये जाते थे पर जोता नहीं जाता था और वहाँ लोग फसल प्राप्त कर लेते थे, पर यहाँ तो उससे विपरीत देखा गया। यहाँ तो बीज भी नहीं बोया गया और फसल हो गयी।

न चात्र बीजानि विलोकितानि क्षेत्रे मृषा कर्षणमेव दृष्टम्।
तथापि गोधूमकभूरिराशिर्धन्यो धनासद्भजनप्रभाव: ॥88॥

यहाँ तो बीज देखे ही नहीं गये, झूठा-झूठा हल चलाया गया, फिर भी इतना गेहूँ हो गया, यही धना के भजन का प्रभाव है।

परिवीक्ष्य रघूत्तमस्य वै शुचिवात्सल्यमथो निजात्मनि।
करुणां तरुणीमहैतुकीं स धना धन्य इहास्त सद्मनि ॥89॥

इस प्रकार भगवान् राम का वात्सल्य देखकर और उनकी अहैतु की तरुण करुणा को देखकर धनाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

त्यक्त्वा भोगान् बन्धुयोगान् वियोगान् दत्वा द्रव्यं निर्धनेभ्यो जनेभ्य:।
रामं नत्वा जानकीप्राणनाथं काशीमायात् सन् विरक्तो धनाऽसौ ॥90॥

इस प्रकार से भगवान् के चरणों में मत्त धनाजी सम्पूर्ण भागों को, कुटुम्ब के संयोग और वियोग को छोड़कर सम्पूर्ण द्रव्य को निर्धन लोगों को देकर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य के दर्शन करने के लिए अब काशी आ गये।

नामं नामं सद्गुरो: पादपद्मं भ्रामं भ्रामं तत्कुटीरं च धीर:।
दर्शं दर्शं देशिकाम्भोजवक्त्रं स्पर्शं स्पर्शं तद्रज: सौख्यमाप ॥91॥

बार-बार गुरुदेव के चरण कमल को प्रणाम करके, उनके कुटी की बार बार परिक्रमा करके, गुरुदेव के मुखारविन्द को बार-बार निहार कर, उनके चरण की धूलि को बार-बार स्पर्श करके, धनाजी बहुत प्रसन्न हुए।

स एकदाहूय धनां च धन्यं श्रीरामपादाब्जरज:स्वनन्यम्।
जगद्गुरु: स्वामिवरश्च रामानन्दोऽभिनन्दन् गिरमुज्जगार ॥92॥

एक बार भगवान् श्रीराम के चरण-कमल के रज में अनन्य, धन्य, धना जी को अपने पास बुलाकर, उनका अभिनन्दन करते हुए जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने उनसे यह वचन कहा।

जाने भवन्तं ननु शक्रसेनं श्रीरामपादाम्बुजपूतपृष्ठम्।
स्वधर्मनिष्ठं वसिनां वरिष्ठं पातालतो भारतमभ्युपेतम् ॥93॥

हे वत्स! मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् भगवान् राम के चरण कमल से जिनका पृष्ठ भाग पवित्र हो चुका है, ऐसे अपने धर्म में निष्ठा रखने वाले संयमियों में श्रेष्ठ बलि ही पाताल से इस भारतवर्ष में आ गये हैं।

अहङ्कृतिं दारुणदत्रिमस्य प्रणाशयन् मानवदेहमाप्य।
त्वं भारतं भारतमागतोऽसि श्रीरामपादाब्जगृहीतभाव: ॥94॥

अपने भयङ्कर दान के अहङ्कार को नष्ट करने के लिए ही तुम भगवान् श्रीराम के चरण कमल में विशुद्ध भाव ग्रहण करके मानव शरीर प्राप्त कर इस ज्ञानमय भारतवर्ष में आ गये हो।

तदद्य वेदस्य रहस्यमेतच्छृणुष्व संशुद्धमना मनस्विन्।
पुमान् यदाकर्ण्य विहाय मायां भवाम्बुधिं गोष्पदमातनोति ॥95॥

हे मनस्वी! अब अपने मन को शुद्ध करके वेद का यह रहस्य सुनो। जिसे सुनकर साधक जीव माया को छोड़कर संसार-सागर को गौ के खुर के समान कर लेता है।

षड्दर्शनान्येव विभान्ति भास्वन्- मद्भारते वेदविजृम्भितानि।
सदास्तिकान्येव यथैव भानि व्योम्न्येव राजन्ति सुपूजितानि ॥96॥

हे भव्य! हमारे भारत में वेदों से अनुमोदित छह आस्तिक दर्शन उसी प्रकार सुशोभित रहते हैं, जैसे आकाश में पूजित छह नक्षत्र सुशोभित होते हैं।

कुदर्शनान्येव च नास्तिकानि त्रीण्येव सन्तीह विदूषितानि।
त्रिशङ्कुवद् भग्नभवानि तात श्रेयो न चैतेषु न चापि प्रेय: ॥97॥

इस भारत में तीन कुत्सित दूषित नास्तिक दर्शन हैं, जो त्रिशङ्कु की भाँति कल्याणशून्य होकर अधर में लटके हैं, न उनमें श्रेय है और न ही प्रेय।

चार्वाकं सौगतं चैव जैनमेव च दर्शनम्।
आकाशपुष्पवच्छून्यं नास्तिकं दर्शनत्रयम् ॥98॥

चार्वाक, बौद्ध और जैन ये तीन नास्तिक दर्शन आकाश पुष्प की भाँति फल से शून्य हैं।

यद्दर्शनं वेदविरुद्धमेव स्मृतेर्विरुद्धं च पुराणतो वै।
वैतण्डिकैर्यच्च विजल्पितं वै न दर्शनं तत् कवयो मनन्ति ॥99॥

जो दर्शन वेद से विरुद्ध हो, जो स्मृतियों और पुराणों से विरुद्ध हो, जो वितण्डावादियों द्वारा अपलाप करके स्थापित किया गया हो, उसे विद्वान् लोग दर्शन नहीं मानते।

ये चेश्वरे न प्रतियन्ति मूर्खास्ते नास्तिका नैव कदापि वत्स।
ये नैव वेदे सुप्रतीतिमन्तस्ते नास्तिका नासितसौख्यजाताः ॥100॥

हे वत्स धना! जो मूर्ख ईश्वर पर विश्वास नहीं करते उनको नास्तिक नहीं समझना चाहिये। क्योंकि मीमांसक भी ईश्वर पर नामोमात्र का विश्वास करते हैं, जबकि वे आस्तिक हैं। इसके विपरीत जो वेद पर विश्वास नहीं करते वे ही नास्तिक कहे जाते हैं। उन्हीं के सभी सुख नष्ट हो जाते हैं।

कापिलं फणिसम्प्रोक्तं काणादं गौतमं तथा।
जैमिनीव्याससम्प्रोक्ते दर्शनान्यास्तिकानि षट्॥101॥

साङ्ख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, वेदान्त– ये छह आस्तिक दर्शन हैं। जिनके प्रवर्तक हैं– कपिल, पतञ्जलि, कणाद, गौतम, जैमिनि, और वेदव्यास।

सर्वेषु चैतेषु च दर्शनेषु सदास्तिकेष्वेव विभाति भद्र।
भक्तिः परेशस्य परानुरक्ति-रासक्तिनामा हरिपादपद्मे॥102॥

हे भद्र सभी इन आस्तिक दर्शनों में भगवान् की भक्ति विराजमान हैं, वही परमेश्वर की परम अनुरक्ति है और वही भगवच्चरण कमलों में परम आसक्ति भी है।

नवविधां हरिभक्तिमधीश्वरे वदति मन्त्रमयः किल वैदिकः।
सकलपुण्यपुराणमहास्मृतिः स्मरति गायति चैकमनास्त्विदम्॥103॥

हे भद्र! वह भगवान् की भक्ति नव प्रकार की है, यह तथ्य वैदिक मन्त्र समूह उद्घाटित करता है और सभी पवित्र पुराण और पूजनीय स्मृतियाँ इसी तथ्य का स्मरण और गान करती हैं।

हरेः कथानां श्रवणं च कीर्तनं मुहुर्मुहुश्च स्मरणं जगत्पतेः।
तत्पादपङ्केरुहशुद्धसेवनं तथाऽर्चनं वन्दनमेव शार्ङ्गिणः॥104॥

भगवान् की कथाओं का श्रवण, कीर्तन और प्रभु का बारम्बार स्मरण भगवान् के चरणों का पवित्र सेवन शार्ङ्गधन्वा प्रभु का अर्चन और वन्दन।

विशुद्धदास्यं रघुवंशकेतोः सख्यं च सख्यौ रविनन्दनस्य।
श्रीराघवे स्वात्मनिवेदनञ्च वदन्ति भक्तिं हि नव प्रकाराम्॥105॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीराम का पवित्र दास्य भाव एवं सुग्रीव सखा भगवान् राम पर सख्य अर्थात् विश्वास और श्रीराम में अपना आत्मनिवेदन यही नव प्रकार की भक्ति विद्वज्जन कहते हैं।

श्रीरामश्रवणे बभूव गिरिजा श्रीशङ्करः कीर्तने।
गाधेयः स्मरणे पदाब्दभजने सीताऽत्रिरभ्यर्चने।
लङ्केशस्त्वथ वन्दनेऽपि हनुमान् दास्ये च सख्ये गुहः
सर्वस्वात्मनिवेदने च भरतो रामाप्तिरेषां फलम्॥106॥

इनमें से श्रवणभक्ति की आदर्श हैं पार्वती जी, श्रीरामकीर्तन भक्ति के आचार्य हैं शिवजी, श्रीरामस्मरण के आदर्श हैं गाधिनन्दन विश्वामित्रजी, श्रीरामचरणसेवा की आदर्श हैं श्रीसीताजी, श्रीरामपूजा के आदर्श हैं अत्रिजी, श्रीराम वन्दन के आदर्श हैं विभीषणजी, श्रीहनुमान् जी श्रीराम की दास्यभक्ति के आदर्श हैं। श्रीरामसख्यभक्ति के आदर्श हैं निषादराज गुह, श्रीरामजी की आत्मनिवेदन भक्ति के आदर्श हैं श्रीभरत। इस नवधा भक्ति का फल भगवान् श्रीराम की प्राप्ति।

जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य नन्दन् वचनं निशम्य।धना
धनुर्धारिकलावतारं श्रीमत्सुशीलातनयं ननाम॥107

इस प्रकार जगद्गुरु स्वामीरामानन्दाचार्य जी के वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुए धना जी ने धनुर्धारी भगवान् श्रीराम के कलावतार सुशीलानन्दन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को प्रणाम किया।

इत्थं श्रीगुरुपादपद्मरजसा निर्धूतदोषाकरः
श्रीमद्रामपदारविन्दमनघं स्वान्ते मुहुर्धारयन्।
प्रेम्णा पावनरामनाम हि जपन् नक्तं दिवं वै धना-
स्त्यक्त्वा जीर्णमिमं त्वचं तनुमहिः पातालमायाद् बलिः॥108॥

इस प्रकार श्रीगुरूदेव के चरणकमल की धूलि से सम्पूर्ण दोषों को समाप्त करते हुए श्रीमद्रामचन्द्र जी के चरण कमल को हृदय में धारण करते हुए रात-दिन पावन राम नाम

का जप करते हुए अपने शरीर को साँप की केंचुली की भाँति छोड़कर बलि जी फिर पाताल लोक को चले गये।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये
गायद्गरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
एकविंशकः सर्गो यतिपतिगुणगणगरिमा
सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इस प्रकार जिसमें जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य गिरिधर कवि गायक हैं, ऐसे "रामानन्दाचार्यचरितम्" नामक महाकाव्य में रामानन्दाचार्य जी के गुणगण से युक्त यह इक्कीसवाँ सर्ग भगवान् सीतापति श्रीराम एवं सुहृद् वैष्णवों के सुख के लिए हो।

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये एकविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ द्वाविंशः सर्गः ॥

रम्भया कृतसंवादः प्रायश्चित्तचिकीर्षया।
श्रीशुको गालवानन्दो बभूवाग्निरिवारणौ ॥01॥

पहले रम्भा अप्सरा के साथ संवाद करने के कारण उसे पाप समझते हुए उसका प्रायश्चित्त करने के लिए स्वयं शुकाचार्य जी ही एक ब्राह्मण कुल में उसी प्रकार उत्पन्न हुए, जैसे अरणि (अरणि) में अग्नि उत्पन्न होता है।

जातमात्रः शिशुः शोभादपूर्वोद्भुतदर्शनः।
लसद्दिनेशतिलको महाभागवतोत्तमः ॥02॥

जन्म लेते ही वह बालक अभूतपूर्व अद्‌भुत दर्शन का था, उसके शरीर पर जन्म से ही बारह तिलक थे, और उसमें महाभागवतों के लक्षण विराज रहे थे।

न रुरोद शिशुस्तत्र जायमानोऽपि मातृतः।
रामनामजपन्नासीत् सुस्वरः स्फुटवाग् बुधः ॥03॥

वे जन्म लेने पर रोये नहीं, उनके मुख से सुन्दर स्वर में वे रामनाम का जप कर रहे थे।

प्रासवी नैव पीडाऽभूज्जनन्यास्तस्य जन्मनि।
कण्ठस्थकरिणीवैषा पुष्पभारमिवाऽजहात् ॥04॥

उनकी माता को किसी प्रकार की प्रसव की वेदना नहीं हुई, उन्होंने बालक को उसी प्रकार सुख से जन्म दिया, जैसे हथिनी अपने गले में विराजमान पुष्प के हार को छोड़ देती है।

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद् देवदुन्दुभिनिस्वनैः।
अवाद्यन्त च वाद्यानि तस्मिन् जाते सुतोत्तमे ॥05॥

उस बालक के जन्म लेने आकाश से बहुत पुष्पों की वर्षा हुई, देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं, और बहुत से बाजे बज उठे।

ब्राह्मणो बालकं वीक्ष्य वैष्णवोत्तमलक्षणम्।
अवाप परमां प्रीतिं विष्णुं प्राप्येव कश्यपः ॥06॥

ब्राह्मण ने भी बालक को वैष्णवोत्तम लक्षणों से युक्त देखा, तो उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जिस प्रकार भगवान् विष्णु को प्राप्त करके कश्यप जी प्रसन्न हुए थे।

जातकर्मादिकं तस्य कारयामास भूसुरः।
विप्रेभ्यो दक्षिणां प्रादात् कर्मकाण्डविशारदः ॥07॥

कर्मकाण्ड में विशारद ब्राह्मण ने बालक का जातकर्म किया और ब्राह्मणों को दक्षिणायें दीं।

तस्यासन् कुटिलाः केशाः कोटिभ्रमरनिन्दकाः।
यान् दृष्ट्वा मुमुहुः सर्वे ग्रामीणा हृष्टचेतसः ॥08॥

इस बालक के केश बहुत सन्दर थे और कुटिल थे, घुँघराले थे, इन्हें देखकर सभी ग्रामीणवासी मोहित हो जाते थे।

तत्राऽऽयाद् ब्राह्मणः कश्चिदवधूतो महामनाः।
बालकं दर्शयामास द्विजः कौतुहलान्वितः ॥09॥

उसी समय वहाँ एक ब्राह्मण आ गये, जो अवधूतवेश में थे। उनको ब्राह्मण देवता ने अपने बालक को कुतूहल से युक्त होकर दिखाया।

दृष्ट्वा तं बालकं विप्रो महामोदसमन्वितः।
अश्रुभिः स्नपयामास चुम्बं चुम्बं तदाननम् ॥10॥

उस बालक को देखकर अत्यन्त आनन्द से समन्वित अवधूत ब्राह्मण ने उसके मुख को बार-बार चूम कर उसे आँसुओं से स्नान करा दिया।

रहसीमं समाभाष्य बभाषे ब्राह्मणोत्तमः।
अवेहि त्वं शुकांशो वै मां व्यासं शिशुपुङ्गव ॥11॥

एकान्त में उस बालक को सम्बोधित करके स्वयं ब्राह्मण ने कहा, तुम अपने को स्वयं शुकाचार्य समझो और मुझे व्यास।

न रामं त्वं भागवते विस्तराज्जगिथाऽऽत्मज।
रामानन्दं तदांशं वै सेवितुं ह्यागतस्ततः॥12॥

रामजी को तुमने उतने विस्तार से नहीं गाया, इसीलिये उन्हीं रामजी के अंश रामानन्दाचार्य जी की सेवा करने के लिए तुम फिर आ गये।

दिक्षां प्राप्याऽपि रामस्य कृष्णं संकीर्त्य जातक।
भूयः कीर्तयितुं रामं कलौ त्वं पुनरागतः॥13॥

भगवान् राम की दीक्षा प्राप्त करके भी तुमने श्री कृष्ण को गाया, इससे अब फिर कलयुग में राम जी को गाने के लिये आये हो।

तद् गच्छ शीघ्रं भद्रं ते काशीं भूतपतेः पुरीम्।
पञ्चगङ्गातटे तत्र द्रष्टासि त्वं जगद्गुरुम्॥14॥

अब तुम शीघ्र ही यहाँ से काशी जाओ और वहाँ पञ्चगङ्गा घाट पर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के दर्शन करना।

तत्पदाम्भोरुहद्वन्द्वं स्पर्शं स्पर्शं महामते।
ततो राममनुं प्राप्य कृतकृत्यो भविष्यसि॥15॥

वहाँ जाकर जगद्गुरु जी के चरण कमल का बार-बार स्पर्श करके उनसे राममन्त्र प्राप्त करके तुम कृतकृत्य हो जाओगे।

एवमुक्त्वा गते विप्रे वर्धमानः पितुर्गृहे।
बालकश्चाष्टमं वर्षं व्यतीयाय यथासुखम्॥16॥

इस प्रकार कहकर ब्राह्मण के चले जाने पर बालक ने पिता के घर में बढ़ते हुए सुखपूर्वक आठवाँ वर्ष बिता दिया।

यज्ञोपवीतसंस्कारं नवम्यां शरदि द्विजः।
कारयामास बालस्य महोत्सवसमन्वितः॥17॥

इसके पश्चात् पिता ने नवमें वर्ष में बालक का यज्ञोपवीत संस्कार बहुत बड़े उत्सव के साथ सम्पन्न किया।

स एव चागतो विप्रो ह्यवधूतस्तदा किल।
स्वसूनुं मुण्डयामास सर्वशास्त्ररतः पिता॥18॥

उसी समय भी वे ब्राह्मण अवधूत जी आ गये, फिर भी उनकी इच्छा से उनका मुण्डन करवा दिया गया।

भूयश्चारुरुहुः केशाः कृष्णमेघोपमाः किल।
सर्वे च विस्मयं जग्मुर्ग्रामीणा वीक्ष्य कौतुकम्॥19॥

इसके पश्चात् फिर उनके केश उसी प्रकार जम आये, सब लोग विस्मय में पड़ गये कि यह कैसे हुआ?

विविक्तसेवी लघ्वाशी मितभाषी शिशूत्तमः।
गायत्रीं चिन्तयामास तदर्थं राममीश्वरम्॥20॥

बालक एकान्त में रहकर अल्पाहार करके किसी से बहुत कम बोलते हुए, गायत्री जी का और उनके अर्थभूत श्रीराम जी का चिन्तन करता रहा।

अध्यापयितुमेवार्भं प्रयते पण्डितः पिता।
नाध्यगच्छन् महाभाग एकं वर्णमपि द्विजात्॥21॥

पिता ने बालक को पढ़ाना चाहा, पर उन्होंने एक अक्षर भी नहीं पढ़ा, और न उन्हें समझ में आया।

सर्वं विवेद वाग्भूषः संस्कारात् पूर्वजन्मनः।
लीलामात्रं चकाराऽसौ प्राप्ते चास्मिन् सुजन्मनि॥22॥

उनको तो सब कुछ स्मरण था, क्योंकि वे तो शुकाचार्य थे ही, वे तो लीलामात्र कर रहे थे।

स जगाम ततः काशीं भूतनाथपतेः पुरीम्।
पञ्चगङ्गाघट्टगतं कुटीरं सन्ददर्श ह॥23॥

वे अब काशी आ गये, और पञ्चगङ्गा घाट पर स्थित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य का कुटीर देखी।

तत्र दृष्ट्वा जगन्नाथं रामानन्दं जगद्गुरुम्।
ववन्दे विमलं विप्रो देवदेवांशभास्वरम्॥24॥

वहाँ जाकर जगत् के नाथ जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी के दर्शन करके उनको बालक ने देव देव श्रीराम जी का अंश जानते हुये प्रेम से प्रणाम किया।

दृष्ट्वा तं पतितं पादे रामानन्दो जगद्गुरुः।
बाहुभ्यां च समुत्थाप्य सस्वजे प्रेमविह्वलः॥25॥

उस बालक को अपने चरण में पड़े हुए देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उसे अपनी भुजाओं में उठा लिया और प्रेम विह्वल होकर उसका आलिङ्गन किया।

पस्पर्श पाणिना मूर्ध्नि फणीवाप्य निजं मणिम्।
ममुदे मोदिताशेषविद्वत्सच्छिष्यमण्डलः॥26॥

जगद्गुरु जी ने उनके सिर पर हाथ का स्पर्श किया और उसी प्रकार सम्पूर्ण शिष्यों को आनन्दित करते हुए वे प्रसन्न हुए जैसे सर्प अपनी मणि को प्राप्त करके प्रसन्न होता है।

मातरं चानुमान्यैव पितरं धार्मिकं तथा।
विरक्तदीक्षया बालं दीक्षयामास धर्मवित्॥27॥

फिर माता जी को मनाकर और धार्मिक पिता को भी मनाकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उस बालक को विरक्त दीक्षा से दीक्षित किया।

द्वाद्वशैवोर्ध्वपुण्ड्रानि द्वादशाङ्गेषु सद्गुरुः।
स्वकीयपाणिपद्माभ्यां रचयामास धर्मवित्॥28॥

जगद्गुरु जी ने बालक के बारह अङ्गों में स्वयं अपने कर कमल से बारह तिलक लगाया।

वामबाहौ चापमुद्रां धनुर्मुद्रां च दक्षिणे।
रचयामास सम्प्रीतः श्रीखण्डसमशीतलाम्॥29॥

प्रसन्न हो करके जगद्गुरु जी ने बालक के बाम बाहु पर भगवान् के बाण की मुद्रा और दाहिने भुजा पर बाण की मुद्रा जो चन्दन के समान शीतल थे अर्थात् शीतल मुद्रा लगायी।

तुलसीगुटिकायुक्तां गले कण्ठीं न्यवेषयत्।
कण्ठीरवीमिवाज्ञानकुञ्जरस्य कृते सताम्॥30॥

इसके पश्चात् सुन्दर छोटे-छोटे गुटका से युक्त तुलसी गले में धारण करायी जो अज्ञानरूप हाथी के लिये सिंहनी के समान थी।

ततो मन्त्रत्रयं प्रादात् तस्मै देशिकसेविने।
षडर्णं द्वादशार्णं च द्वात्रिंशद्वर्णकं तथा॥32॥

इसके पश्चात् उन्होंने उनको तीन मन्त्र दिये। षड्क्षर राममन्त्र, द्वादशाक्षर सीताराममन्त्र और बत्तीस अक्षरों वाला सकृदवप्रपन्नाय यह मन्त्र दिया।

एभिर्मन्त्रैस्त्रिभिर्बालो बभौ भासासमन्वितः।
त्रिभिः संसवनैर्दिव्यैर्यजमानो यथा क्रतौ॥33॥

इन तीन मन्त्रों से वह बालक उसी प्रकार सुशोभित हुआ जैसे यज्ञ में प्रातर्मध्यान्ह सायन्तन संसवनों से यजमान सुशोभित होता है।

ततो नाम चकाराऽस्य गालवानन्द इत्यसौ।
बभाषे चाच्युतं गोत्रं वैष्णवचक्रवर्तिनः॥33॥

इसके पश्चात् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उनका नाम गालवानन्द रखा और उनका गोत्र अच्युत बताया।

ब्रह्मचर्यमयं तस्मै कौपीनं चाप्यदाद् गुरुः।
आञ्चलं लक्ष्मणग्रन्थिं ब्रह्मग्रन्थिं तथैव च॥34॥

उनको जगद्गुरु जी ने ब्रह्मचर्यमय दिव्य लँगोटी दी, आंचला दिया, ऊपर धारण करके के लिए लक्ष्मणग्रन्थि दी, और समाज में धारण करने के लिए ब्रह्मग्रन्थि भी दी।

तं प्राह प्रणतं शिष्यं रामानन्दो जगद्गुरुः।
गालवानन्द साधुस्त्वं जातो मत्कृपयाऽधुना॥35॥

इस प्रकार चरण में पड़े हुये गलवानन्द को रामानन्दाचार्य जी ने कहा बेटे गलवानन्द अब तुम मेरी कृपा से साधु हो गये हो।

शूराणां च सतीनां च सङ्ग्रामः क्षणिको ध्रुवम्।
आजीवनं हि सङ्ग्रामः साधूनां शान्तचेतसाम्॥36॥

शूरों और सतियों का संग्राम क्षणिक होता है, अर्थात् शूर एक क्षण में युद्ध करके मर जाता है, और सती भी एक क्षण में अपने को अग्निसात् कर लेती है, परन्तु साधु को तो जीवन भर संग्राम करना पड़ता है।

सहते धरणी खातं कर्तं च सहते तरुः।
कटूनि साधुः सहते वचांसि नेतरः क्वचित्॥37॥

पृथ्वी खनन को सहन करती है, वह खोदते रहते हैं कुछ नहीं कहती, वृक्ष काटकूट सह लेता है, पर साधु कटु वचन सहता है और किसी से सहा नहीं जाता।

सङ्ग्रहो नैव कर्तव्यः कदाचित् साधुना त्वया।
याचमानो मधुकरीं बुभुक्षां शमय प्रभो॥38॥

साधु को कभी सङ्ग्रह नहीं करना चाहिये तुम मधुकरी माँगकर अपनी भूख बुझाना।

पञ्चैव सद्गृहाण्येत्य याचन् मधुकरीं सुधीः।
न लिप्स्यसे ममत्वेन वार्भिः पद्मदलं यथा॥39॥

केवल पाँच घर में मधुकरी माँगना इससे तुम उसी प्रकार ममत्व से नहीं लिप्त होगे जैसे कमल जल से लिप्त नहीं होता।

अष्टयाममयी सेवा कार्या रामस्य धीधन।
रामनाम जपः कार्यः षडर्णजप एव ह॥40॥

श्रीराम की अष्टयाम सेवा करना और रामनाम जप और षडक्षर राममन्त्र का जप करते रहना।

षट्सहस्रं षडर्णो वै मन्त्रो जाप्यस्तु तारकः।
रामनामद्विलक्षं तु जाप्यं वत्स विधानतः॥41॥

तुम प्रयास करके छह हजार राममन्त्र का जप करना और कम से कम रामनाम का दो लाख जप आवश्य करना।

रामनामजपेनैव राममन्त्रजपेन च।
साधूनां सेवया वत्स साधुत्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम्॥42॥

हे बेटे! श्रीराम नाम के जप से और श्री राममन्त्र के जप से और साधुओं की सेवा करके निश्चित रुप से तुममें साधुत्व आ जायेगा।

उपासनानां सर्वासां साधुत्वमूलमुत्तमम्।
साधुत्वमपि जीवन्ति सम्प्रदायाः समे किल॥43॥

सम्पूर्ण उपासनाओं का साधुत्व मूलमन्त्र है और सभी सम्प्रदाओं का चाहे शाङ्कर सम्प्रदाय, रामानन्द सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय सभी साधुत्व को ही तो उपजीव्य मानते हैं, हम पहले साधु हैं, पश्चात् चाहे जो कुछ रहें।

तस्माद्यत्नेन साधुत्वं रक्षणीयं त्वयाऽनघ।
क्षमस्व द्वन्द्वान्येतानि क्षमासारा हि साधवः॥44॥

इसलिये हे निष्पाप! साधुत्व की निरन्तर रक्षा करो सभी द्वन्द्वों का सहन करो क्योंकि साधु का तत्त्व ही है क्षमा।

अथ त्वां सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चसंस्कारसाधनम्।
तिलकस्य स्वरूपञ्च स्वरूपचिन्तनं तथा॥45॥

अब मैं तुमको पञ्चसंस्कार के साधन तिलक के स्वरुप और स्वरुप चिन्तन का सिद्धान्त समझाऊँगा।

एभिः पुमांसः किल संस्क्रियन्ते तथैव भूतानि महान्ति नूनम्।
नृणां विकाराश्च बहिष्क्रियन्ते संस्कारसंज्ञास्तत एत एव॥46॥

इन पाँच संस्कारों के द्वारा जीवों का संस्करण हो जाता है, पाँच महाभूत इने सुसज्जित होते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह इन्हीं के द्वारा बहिष्कृत कर दिये जाते हैं इसीलिए इन्हीं संस्कार संज्ञा से अभिहित किया गया है।

संस्कारशब्दः करणे घञन्तः संपूर्वकाच्चैव कृञस्तु सिद्धः।
तद् भूषणार्थं परिवक्तुकामः सुडागमं पाणिनिरभ्यधत्त॥47॥

संस्कार शब्द करण में घञ् प्रत्ययान्त है, यह सम्पूर्वक डुकृञ् धातु से सिद्ध हो जाता है, भूषण अर्थ ही सिद्ध करने के लिए आचार्य पाणिनि ने सुट् का आगम किया है।

मुद्रा च बाह्वोः परिलिख्यते या तप्ता क्वचिच्छीतलिता क्वचिच्च।
वामे च रामस्य धनुःप्रमाणा दक्षे तथा रामशरैकचिन्हा ॥48॥

जो बाहु के मूल भाग में मुद्रा दी जाती है कहीं तप्त तथा कहीं शीतल वामबाहु में भगवान् राम के धनुष का चिह्न होता है, दक्षिण बाहु में भगवान् के बाण का चिह्न होता है।

यदूर्ध्वपुण्ड्रं कवयो मनन्ति रेखात्रयं तच्च समागृणन्ति।
दक्षा च वामा धवला हि रेखा मध्ये च रक्तां श्रियमामनन्ति ॥49॥

जो ऊर्ध्वपुण्ड्र होता है, उसमें तीन रेखायें होती हैं दाहिने और बायीं ओर श्वेत रेखायें और मध्य में श्री।

रेखाद्वयं मृत्तिकयैव कार्यं श्रीर्वै हरिद्राविहिता विभाति।
गुर्वासनं चैव नसः सुमूले तदूर्ध्वपुण्ड्रं कवयो वदन्ति ॥50॥

रामरज से ही दोनों रेखायें बनानी चाहिएँ और श्री हल्दी से बनी हुई रोली से की जाती है, नासिका मे मूल भाग में गुरु का आसन होता है उसी को ऊर्ध्वपुण्ड्र कहते हैं।

तदेव वै द्वादशधा विभाति भालादिदेशेषु यथाक्रमेण।
द्वे चैव रेखे भगवत्पदाब्जे श्रीश्चापि सीतापदपद्ममेव ॥51॥

वह तिलक बारह प्रकार का होता है श्वेत दो रेखायें भगवान् के चरण मानी जाती हैं और श्रीरेखा सीताजी का चरणकमल कहलाती हैं।

माला ततः श्रीतुलसीप्ररूढगुटीकृता राजतु कण्ठलग्ना।
तदेव कण्ठीं सुधियो मनन्ति संस्कार एवैष तृतीय एव ॥52॥

इसके पश्चात् तुलसी की छोटी-छोटी गुटिकाओं से बनी हुई कण्ठी गले में धारण की जाती है उसे गले में चिपकी रहनी चाहिए यह तृतीय संस्कार है।

अनन्तरं राममनुः षडर्णो यद्वा मनुः स्याद्युगलोऽर्कवर्णः।
सन्धारयन् ना सुगुरोर्मुखाब्जाच्छ्रीरामपादाब्जरतिं लभेत ॥53॥

इसके पश्चात् चतुर्थ संस्कार है मन्त्र, वह चाहे षडक्षर राममन्त्र हो या द्वादशाक्षर श्रीराम मन्त्र इसे धारण करके जीव श्रीसीताराम जी के चरणों में भक्ति प्राप्त कर सकता है।

ततो नवं नाम नवं च गोत्रं यद्दीयते श्रीगुरुभिर्विचार्य।
श्रीरामदासादिकमेव नाम गोत्रं तथैवाच्युतमामनन्ति॥54॥

इसके पश्चात् पाँचवाँ संस्कार है, नया नाम और नया गोत्र जो सद्गुरु के द्वारा विचार करके दिया जाता है। नाम दासान्त होता है, जैसे रामभद्रदास, रामदास इत्यादि। श्रीवैष्णवों का गोत्र अच्युत है।

श्रीवैष्णवानां निगदन्ति सन्तः संस्कारकान् पञ्च सुभक्तिलब्ध्यै।
सपञ्चसंस्कार उदात्तबुद्धिः सीतापतौ निर्मलभक्तिमीयात्॥55॥

इन्हीं पुण्ड्र, मुद्रा, माला, मन्त्र और नाम पाँचों को पञ्चसंस्कार कहा जाता है। इन्हें सद्गुरुदेव से प्राप्त करके श्रीवैष्णव सीतापति भगवान् श्रीराम की भक्ति प्राप्त कर लेता है।

कं वै विधातारमथोग्रमीशं यो वै स्ववीर्याद् वशयाम्बभूव।
तं केशवं राममिमं सुकेशं ध्यायन् ललाटे तिलकं करोमि॥56॥

क अर्थात् ब्रह्मा, ईश अर्थात् शङ्कर इन दोनों को जिन्होंने अपने पराक्रम से वश में कर लिया ऐसे सुन्दर केश वाले श्रीरामरूप केशव का ध्यान करते हुए मैं मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र कर रहा हूँ।

आपश्च नारा गदिताः सुधीभिस्ताश्चायनं यस्य निवासभूताः।
रामः स नारायण एव विष्णुर्णत्वं च संज्ञाख्यपनाय दिष्टम्॥57॥

संस्कृत में आप् अर्थात् जल को नार कहते हैं वही जिनका अयन अर्थात् निवास स्थान है उन्हीं भगवान् श्रीराम महाविष्णु को नारायण कहते हैं, नारायण महाविष्णु राम की ही संज्ञा है। इसी तथ्य को ख्यापित करने के लिए अखण्ड पद न होने पर भी आचार्य पाणिनि ने "पूर्वपदात्संज्ञायामगः" सूत्र से नकार को णत्व का विधान करके नारायण शब्द सिद्ध किया। राम ही नारायण हैं, श्लोक प्रस्तुत किया जाता है–अच्युतं केशवं रामनारायणम्।

नरस्य राज्ञः किल कोसलानां जायायनं तत्र नरायणे च।
जातः स नारायण एव रामः पुण्ड्रं तमित्वा ह्युदरे तनोमि॥58॥

नर अर्थात् नरों के अधिपति, कोशलराज दशरथ की धर्मपत्नी कौशल्या को ही अयन अर्थात् गृह कहा गया है "गृहिणी गृह मुच्यते" ऐसे नारायण अर्थात् कौशल्या जी के समक्ष जो प्रकट हुए, उन रामजी को ही नारायण कहते हैं नरायणे जातः नारायणः। उन्हीं श्रीरामरुप नारायण का ध्यान करके मैं उदर में ऊर्ध्वपुण्ड्र करता हूँ।

श्रीरेव लक्ष्मीर्धव एव तस्या मायाधवं माधवमामनन्ति।
मधौ भवो माधव एव रामो मायाधवं माधवमाहुरार्याः ॥59॥

सीताजी ही लक्ष्मी हैं और उन्हीं सीता रूप लक्ष्मीजी को 'मा' कहा जाता है, संस्कृत में पति को धव कहते हैं, मा अर्थात् सीतारूपिणी लक्ष्मी के धव, पति भगवान् राम ही माधव हैं, अथवा मधु अर्थात् चैत्र में जिनका जन्म हुआ ऐसे भगवान् राम को माधव कहते हैं, "मधौ भव माधवः", भगवान् राम माया के भी धव अर्थात् पति हैं, इसीलिए भी वे माधव हैं, यहाँ पृषोदरादित्वात् या का लोप हुआ है।

वक्षःस्थिता मा किल माधवस्य श्रीवत्सलक्ष्मेदमथाह वत्से।
वक्षःस्थलेऽहं तिलकं तनोमि श्रीमाधवं ध्यायति मानसं मे ॥60॥

क्योंकि भगवान् राम के मा अर्थात् श्रीसीतारूपिणी महालक्ष्मी वक्षःस्थल में निवास करती है, यही भगवान् के वक्षःस्थल पर विराजमान श्रीवत्सलांछन सूचित कर रहा है, उन्हीं माधव का मेरा मन निरन्तर ध्यान कर रहा है और मैं उसी ध्यान की मुद्रा में अपने वक्षःस्थल अर्थात् हृदय पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

गां वेदलक्षणगिरं धरणीं च धेनूर्गा इन्द्रियाणि किल विन्दति योऽनवद्यः।
गोविन्दमेव मनसा भजमान ईशं तं कण्ठकूबर इमं तिलकं करोमि ॥61॥

गाम् अर्थात् वेदलक्ष्णा वाणी को, पृथ्वी को, गौओं को और दशों इन्द्रियों को जो सहजतः प्राप्त कर चुके हैं अर्थात् जिनका इन पर नियन्त्रण और अधिकार है, गाः विन्दतीति गोविन्दः। उन्हीं रामरूप गोविन्द भगवान् का स्मरण करके मैं अपने कण्ठ कुबर में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

यो वै विवेष्टि भूतानि विष्णौति यो ह्यकिञ्चने।
स श्रीरामो महाविष्णुर्लोके वेदे च कथ्यते ॥62॥

जो सम्पूर्ण भूतों को अपने में व्याप्त किये रहते हैं और जो अकिञ्चन भक्त पर द्रवित हो जाते हैं, लोक और वेद में उन्हीं भगवान् राम को महाविष्णु कहा जाता है।

तं चिन्तयन्नीशमनन्तवीर्यं साकेतलोकाधिपतिं च रामम्।
श्रीविष्णुरूपं जगदेकभूपं दक्षे च कुक्षौ तिलकं तनोमि॥63॥

उन्हीं अनन्त पराक्रम वाले ईश्वर, विष्णुरूप जगत् के एकमात्र राजा, साकेत लोक के अधिपति भगवान् राम का चिन्तन करता हुआ मैं अपनी दाहिनी कुक्षि में तिलक कर रहा हूँ।

मधुं च यो सूदितवान् कृपालुर्मधुं च योऽसूत तथा ह्युनक्ति।
प्राहुर्बुधास्तं मधुसूदनं वै ध्यायाम्यहं तं तिलकस्वरूपे॥64॥

जिन्होंने भगवान् विष्णु से मधु दानव का वध कराया, जो स्वयं मधु अर्थात् चैत्रमास में प्रकट हुए, जो उदन अर्थात् भक्तों पर द्रवित हो जाते हैं, उन्हीं मधुसूदन भगवान् राम को तिलक स्वरूप के समय में ध्यान करता हूँ।

ध्यायँश्चिरं तं मधुसूदनं वै करोम्यहं दक्षिणबाहुमूले।
सदूर्ध्वपुण्ड्रं तिलकं विचित्रं मुद्रीभवद्रामशरैकमित्रम्॥65॥

उन्हीं भगवान् मधुसूदन श्रीराम का दीर्घ ध्यान करता हुआ, मैं अपने दक्षिण बाहुमूल पर वह सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ, जो इसी दाहिने बाहु पर मुद्रा होती है और उसी दाहिनी भुजा के मूल पर ऊर्ध्वपुण्ड्र भी होता है, इसीलिए उसे बाण मुद्रा का मित्र कहा जाता है।

विचक्रमे यस्त्रिरथो जगत्यां त्रिविक्रमं तं भगवन्तमाहुः।
स्मृत्वा तमेवाहमथोर्ध्वपुण्ड्रं करोमि वै दक्षिणकन्धरायाम्॥66॥

भगवान् ने पृथ्वी पर तीन बार चरण रखा अर्थात् पृथ्वी को तीन पग में नापा अथवा परशुराम, श्रीराम एवं श्रीकृष्ण इन तीन अवतारों में पृथ्वी पर निरावरण चरणों से खेले, इसीलिए भगवान् को त्रिविक्रम कहा जाता है, उन्हीं त्रिविक्रम भगवान् राम का स्मरण करके मैं अपने दक्षिण कन्धरा पर (दाहिने कन्धे) ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

भूत्वा च वामनमयो वटुकोऽप्यदित्यां यः कश्यपाद् बलिमगात् परिभिक्षमाणः।
तं वामनं किल भजन् निजवामपार्श्वे भक्त्योर्ध्वपुण्ड्रतिलकं सुखमातनोमि॥67॥

जो कश्यप के सङ्कल्प से अदिति जी के समीप वामन रूप में प्रकट होकर भिक्षा माँगने के लिए बलि के पास पधारे उन्हीं भगवान् वामन का भजन करता हुआ मैं अपने वामपार्श्व में सुखपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

श्रीनामसीतां धरतीह वत्से यो वत्सलः पादपयोजभाजाम्।
तं श्रीधरं राममनुस्मरन् वै स्ववामबाहौ तिलकं तनोमि॥68॥

जो श्रीनामक सीताजी को अपने वक्षस्थल पर धारण करते हैं उन्हीं भगवान् राम को श्रीधर कहते हैं। ऐसे भक्तवत्सल, श्रीधर, भगवान् राम का स्मरण करता हुआ मैं अपने वामबाहु पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

यो वै हृषीकाणि समानि चेष्टे तं वै हृषीकेशमुतामनन्ति।
ध्यायन् हृषीकेशमथोर्ध्वपुण्ड्रं करोमि वामे किल कन्धरेऽहम्॥69॥

जो हृषीक अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियों पर शासन करते हैं, उन्हीं भगवान् राम को हृषीकेश कहते हैं उन्हीं हृषीकेश भगवान् का ध्यान करता हुआ मैं अपने वामस्कन्ध पर ऊर्ध्वपुण्ड्र कर रहा हूँ।

यन्नाभितः पद्ममभूद्यतः कः स पद्मनाभो भगवान् प्रसिद्धः।
तं चिन्तयन् पृष्ठ उतोर्ध्वपुण्ड्रं श्रीपद्मनाभं तिलकं तनोमि॥70॥

जिन भगवान् की नाभि से वह कमल उत्पन्न हुआ जिससे स्वयं ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे, इससे उन्हें पद्मनाभ कहते हैं, उन्हीं पद्मनाभ भगवान् का स्मरण करके मैं अपने पृष्ठ भाग पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

दामानि सर्वाणि च बन्धनानि सम्मान्ति यस्योदर एव कामम्।
दामोदरं तं परिभाव्य कट्यां तदूर्ध्वपुण्ड्रं ससुखं तनोमि॥71

दाम अर्थात् संसार के सारे बन्धन जिनके उदर, पेट अथवा चिन्तन परिणाम में ही समाहित हो जाते हैं, उन्हीं भगवान् दामोदर को स्मरण करके मैं अपने कटिप्रदेश पर ऊध्वपुण्ड्र तिलक कर रहा हूँ।

अहं नैव सेव्यो न सेवाभिलाषी न नाथः प्रभुर्नो विभुर्नो कदाचित्।
अहं रामपादाब्जसामीप्यलीप्सुः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥72॥

न तो मैं सेव्य हूँ ना ही मैं सेवा का अभिलाषी हूँ, ना मैं किसी को नाथ हूँ ना ही समर्थ हूँ और न कभी भी व्यापक हूँ, मैं तो निरन्तर आम राम सामीप्य लिप्स हूँ, मैं तो राम जी के चरण कमल को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ, मैं निरन्तर राम जी का राघव जी का भक्त हूँ।

अहं नो शरीरं हृषीकाणि नाहं मनो नैव चाहं न बुद्धिर्न चित्तम्।
निरस्ताखिलत्याज्यदेहप्रपञ्चः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥73॥

मैं शरीर नहीं हूँ मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, मैं अहङ्कार नहीं हूँ, मैं बुद्धि नहीं हूँ, मैं चित्त भी नहीं हूँ, मैं समस्त त्याज्यप्रपञ्च को छोड़कर एक मात्र राघव जी का भक्त हूँ।

अहं नैव बालः किशोरो न चाहं न चाहं युवा नो जराजीर्णदेहः।
विमुक्तो वयोधर्मतो भक्तिपुष्टः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥74॥

मैं बालक नहीं हूँ मैं किशोर नहीं हूँ, मैं युवक नहीं हूँ, मैं जरा से जीर्ण वाला शरीर वृद्ध नहीं हूँ, मैं अवस्था धर्म से मुक्त हुआ भगवान् राम की भक्ति से युक्त हुआ, एक मात्र राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

अहं नैव विप्रो न च क्षत्रियोऽहं न वैश्यो न शूद्रो द्रुतः क्वापि शोकात्।
अहं वैष्णवस्तत्पदाम्भोजभृङ्गः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥75॥

मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं क्षत्रिय भी नहीं हूँ, मैं वैश्य नहीं हूँ, शोक से द्रुत शूद्र भी कभी नहीं हूँ, मैं तो वैष्णव भगवान् राम के चरण कमल का भ्रमर हूँ, मैं निरन्तर राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

न माता पिता मे न बन्धुर्न मित्रं न मे क्वापि सङ्गो न भङ्गो न रङ्गः।
अहं त्यक्तसंसारकौटुम्बबन्धः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥76॥

मेरे पास माँ नहीं है, मेरे पास पिता भी नहीं है, मेरे पास कोई मित्र नहीं है, और मेरे पास कोई भाई नहीं है, मेरे पास किसी का सङ्ग नहीं है और किसी से मेरा मनोभङ्ग भी नहीं है। कहीं मेरा लगाव भी नहीं है, संसार के कुटुम्ब बन्धन को छोड़कर मैं एकमात्र भगवान् श्रीराम का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

न मे क्वापि रागो न मे द्वेष एव विरागः कुतश्चिन्न नैवानुरागः।
अहं नित्यसाकेतकेतानुरागी सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥77॥

मेरा कहीं पर राग नहीं है, और कहीं पर मेरा द्वेष भाव भी नहीं है, मेरा किसी से भी विराग भी नहीं है, और ना ही किसी से अनुराग है, ना कहीं पर अनुराग है, मैं निरन्तर साकेत ही जिनका केतन है, ऐसे भगवान् का अनुरागी एकमात्र राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

न मे द्रव्यकाङ्क्षा न धर्माऽभिवाञ्छा न कामाऽभिलाषो न मोक्षप्रयासः।
चतुर्वर्गमुक्तो हरेर्भक्तियुक्तः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥78॥

मेरे मन में धन की आकाङ्क्षा नहीं है और मुझे धन की इच्छा भी नहीं है, ना ही मेरे मन में काम की अभिलाषा भी नहीं है और मोक्ष के लिये मैं प्रयास करता हूँ, मैं चर्तुवर्ग से मुक्त भगवान् की भक्ति से युक्त होकर एकमात्र राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

अहं नास्मि वर्णी गृहस्थो न चाहं न वैखानसोऽहं तुरीयाश्रमी नो।
अहं जानकीजानिकैङ्कर्यकामः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥79॥

मैं ब्रह्मचारी नहीं हूँ, मैं गृहस्थ नहीं हूँ, मैं वानप्रस्थ नहीं हूँ, मैं तुरीयाश्रमी संन्यासी भी नहीं हूँ। मैं केवल जानकीपति भगवान् राम की सेवा की इच्छा करता हूँ। मैं एकमात्र राघव जी जन हूँ, जन हूँ।

न चाहं बुभुक्षुर्मुमुक्षुर्न चाहं न चाहं जुगुक्षुर्जिघृक्षुर्न चैव।
दिदृक्षुर्दृशा रामपादारविन्दं सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥80॥

मैं बुभुक्षु अर्थात् भूख से भोगाकाङ्क्षी नहीं हूँ, मैं मुमुक्षु भी नहीं हूँ, मैं कुछ छिपाने का इच्छुक नहीं हूँ, मैं कुछ ग्रहण करने का भी इच्छुक नहीं हूँ, मैं तो निरन्तर भगवान् राम के चरण कमल के दर्शन का अभिलाषी एकमात्र राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

न चैवास्मि योगी न भोगी रसानां न रागी विरागी न वा भूरिभागी।
अहं रावणारेश्चरित्रानुरागी सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥81॥

मैं योगी नहीं हूँ, मैं रसों को भोगी भी नहीं हूँ मैं रागी भी नहीं हूँ। मैं विरागी भी नहीं हूँ। मैं अत्यन्त भाग्यशाली भी नहीं हूँ। मैं तो रावण के शत्रु भगवान् राम जी के चरित्र का अनुरागी हूँ, मैं सदैव राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

न वा मे भयं नामयं नैव शोको न लोकेऽस्ति चिन्ता न लिप्सा परस्य।
अहं रामगाथाऽमृताम्भोधिमग्नः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥82॥

मुझको कोई भय नहीं है, मुझमें कोई रोग नहीं है, मुझको कोई शोक नहीं है, और मुझे लोक की भी चिन्ता नहीं है और परलोक की भी नहीं है, मैं रामचन्द्र जी के गाथामृतरूप सागर में निमग्न एकमात्र राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

जगन्नाट्यशाला नटोऽहं च तस्य न मे क्वापि कश्चित् स्वकीयः परो वा।
ममैवाऽस्ति रामस्तदीयोऽहमर्भः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥83॥

यह संसार एक नाट्यशाला है, और उस नाट्यशाला का एकमात्र मैं नट हूँ, मेरा कोई न अपना है, न पराया है, रामजी मेरे हैं और मैं उनका बालक हूँ, मैं सदैव राम जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

अहं रामभद्रस्य दासानुदासः सदा तस्य निघ्नो न चाहं स्वतन्त्रः।
अहं नित्यजीवो निरस्ताखिलाधिः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥84॥

मैं रामभद्र भगवान् के दासों के भी दासों का दास हूँ, मैं उनके पराधीन हूँ स्वतन्त्र नहीं हूँ मैं नित्यजीव हूँ मेरे मन में कोई किसी प्रकार की मनोव्यथा नहीं है, मैं निरन्तर राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

न मे क्वापि माया न भीतिः कलेर्मे न वा प्रीतिरर्थे रतिर्नैव कामे।
विमोहः सुखी रामनाम्नैव चार्थी सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥85॥

मुझको कहीं भी माया नहीं है, मुझे कलि से डर भी नहीं लग रहा है, मुझे अर्थ मे प्रेम भी नहीं है और न काम में कोई इच्छा रति है, मैं मोह से रहित सुखी और राम नाम से ही एकमात्र अर्थात् राम नाम ही मेरा प्रयोजन है, मैं निरन्तर राघव जी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

मदीयाऽस्ति माता गुरुश्चापि सीता पिता रामचन्द्रः सहायो हनूमान्।
सुशीलासुतो देशिको रामनिष्ठः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥86॥

भगवती सीता जी ही मेरी माँ हैं, और वहीं आदिगुरु भी हैं, मेरे पिता रामचन्द्र और मेरे सहायक हनुमान् जी हैं और रामजी में निष्ठावान् सुशीला जी के पुत्र जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य ही मेरे मुख्य आचार्य है, मैं रामजी का राघव जी का निरन्तर भक्त हूँ, भक्त हूँ।

सदा मानसस्याऽस्मि वै राजहंसो हुलस्याः सुतो मे गुरुर्देशिको वै।
सुधर्मः शुभो वैदिको वैष्णवाख्यः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥87॥

मैं रामचरितमानस रामायण का राजहंस हूँ, जो आगे कहा जायेगा हुलसी के पुत्र तुलसीदास जी ही मेरे गुरु और देशिक होंगे और वैदिक वैष्णव धर्म ही मेरा सुन्दर वैष्णव धर्म होगा, मैं निरन्तर रामजी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

हरेर्दासभूतो विशुद्धोऽहमात्मा अहं सेवको रामभद्रोऽस्ति नाथः।
उपास्योऽस्ति सीतापतिर्वेदवेद्यः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥88॥

मैं भगवान् का दासस्वरूप विशुद्ध आत्मा हूँ, मैं सेवक हूँ, रामभद्र भगवान् श्रीराघव सरकार मेरे स्वामी हैं, और वेदवेद्य सीतापति भगवान् राम ही मेरे उपास्य हैं, मैं उनका उपासक हूँ, मैं सदैव रामजी का भक्त हूँ, भक्त हूँ।

श्रियः सम्प्रदायो मदीयोऽस्ति दिव्यः सदा जानकी वै गुरुर्मे ह्यपूर्वः।
विशुद्धोऽहमात्मा सदा रामदासः सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥89॥

श्री सीता जी का सम्प्रदाय ही मेरा सम्प्रदाय है और मैं एकमात्र रामानुरागी वैष्णव हूँ, सीता जी मेरी प्रथम जगद्गुरु हैं, मैं विशुद्ध आत्मा भगवान् राम का दास हूँ, मैं निरन्तर राघव सरकार का भक्त हूँ।

इदं स्वरूपं परिचिन्तयस्व ध्याय त्वमीड्यं रघुवंशनाथम्।
निर्द्वन्द्वभावेन चरस्व भूमौ शिवश्च तेऽद्ध्वास्तु बुधप्रवीर॥90॥

यह इस अपने स्वरूप का तुम निरन्तर चिन्तन करो, और रघुवंशकेतु भगवान् राम का ध्यान करो निर्द्वन्द्व भाव से निरन्तर विचार करो। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

न काञ्चनं न स्पृश तात योषां भजस्व नित्यं प्रभुरामचन्द्रम्।
साधुस्वभावेन च वर्तमानस्तरिष्यसि त्वं भवसिन्धुमद्धा॥91॥

कभी भी काञ्चन और कामिनी का स्पर्श मत करना, साधु स्वभाव से वर्तमान रहकर भगवान् राम के चरण कमल का चिन्तन करते हुए तुम शीघ्र भवसागर से पार हो जाओगे।

हे गालवानन्द पवित्रचित्त हे रामपादाब्जमनोजभृङ्ग।
हे ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपैकराशे प्रसीदतात् त्वय्यथ रावणारिः॥92॥

हे गालवानन्द, हे उदारबुद्धि! हे रामजी के चरणकमल के सुन्दर भ्रमर हे साधुचित्त! तुम पर रावण के शत्रु श्रीराम शीघ्र प्रसन्न हो जायें।

प्रयाहि काश्मीरमथो महात्मन् निरीक्ष्य हिन्दून् पतितान् भवाब्धौ।
समुद्धर त्वं रघुनाथनामनौकां समाधाय जगत्प्रपूज्य ॥93॥

हे जगत् के पूजनीय! अब तुम कश्मीर जाओ और जाकर हिन्दुओं को भवसागर में मग्न देखकर रामनाम की नौका लेकर उनका उद्धार करो, तुम्हारा कल्याण हो।

मा मा व्यथिष्ठ मनसि प्रवीर ग्लानिं कृथा मा हृदये कदाचित्।
शीघ्रं मम द्रक्ष्यसि पादपद्मं शिवाय लोकस्य सुखेन गच्छ ॥94॥

मन में कभी व्यथित मत होना, हृदय में कभी ग्लानि मत करना, शीघ्र ही तुम मेरी चरणकमल को देखोगे, तुम्हारा कल्याण हो, लोगों के कल्याण के लिए जाओ।

या कश्यपस्यास्त पुरा तपस्थली या बोधबोधायनसद्वसुन्धरा।
सा मेऽपि काश्मीरमनोज्ञमेदिनी सन्दृश्यते मानवमांसमेदिनी ॥95॥

अरे जो मेरी कश्मीर की भूमि पूर्व में कश्यप ऋषि की तपस्थली थी जो दिव्यबोध सम्पन्न ब्रह्म सूत्र के वृतिकार बोधायन जी की साधनस्थली थी, वही मेरे कश्मीर की सुंदर भूमि इस समय मनुष्यों के माँस और मेदा से पटी हुई दिख रही है।

साहित्यिकानां च विहारवाटिका याऽऽसीत् प्रकृत्या रमणीयदृश्यका।
सैवाद्य काश्मीरधराधरीकृता नृशंसनीचैर्निरयैरपि स्फुटम् ॥96॥

जो हमारे कश्मीर की धरती साहित्यिकों की विहार वाटिका थी। जो प्रकृति से रमणीय दृश्यों वाली थी वही इस समय आतङ्कवादी नृशंसों द्वारा नरकों से निम्न कर दी गयी।

या काव्यपुष्पाकररङ्गमाधवी विभ्राजते स्मापि निसर्गमञ्जुला।
सैवाधुना मानवमांसशोणितैर्विभ्रष्टसौन्दर्यसुखा हि रोदिति ॥97॥

हे गालवानन्द जो मेरी कश्मीर की भूमि पूर्व में काव्यरूप वसन्त की रङ्ग भूमि बनकर स्वभाव से मधुर दिखती थी, वही इस समय मानवों के माँस और रक्त से सनी हुई, सौन्दर्य सुख से दूर हुई, दहाड़–दहाड़कर रो रही है।

या शाब्दिकानां कमनीयकल्पना कादम्बिनीवास्त निरस्तदूषणा।
सा साम्प्रतं मानवकोष्णशोणितैः स्नाता न काश्मीरमही महीयते ॥98॥

हे गालवानन्द ! जो पूर्व में कैयट आदि वैयाकरणों की मधुर कल्पनाओं की मेघ माला बनकर दोषरहित सुशोभित होती थी। इस समय वही कश्मीर की भूमि मानवों के गरम रक्त से नहायी हुई पूजनीय नहीं लग रही है।

या काव्यसल्लक्षणचुञ्चुभिर्बुधैः सम्मण्डिता मण्डितपण्डिता बभौ।
सैवाधुना पापिसमाप्तसौभगा हाहाकृतै रोदिति वत्स दुर्भगा ॥99॥

हे वत्स ! जो पूर्व में कविता के श्रेष्ठ लक्षण करने में निपुण कुन्तक, रूद्रट, आनन्दवर्धन, मम्मट आदि विद्वानों से सुशोभित रहती थी। जहाँ पण्डितों का श्रृङ्गार होता था, आज वही कश्मीर की भूमि पापियों के द्वारा जिसका सौन्दर्य लूट लिया गया है, हाहाकार करके दुर्भागिनी की भाँति रो रही है।

यस्यां प्रसन्ना ललना मुखाम्बुजैः संव्रीडयन्ति स्म सुरेन्द्रयोषितः।
तस्यामिदानीं हतपुत्रभर्त्रिकाः कारुण्यजाश्रूणि विमुच्य भान्ति नो ॥100॥

जिस कश्मीर के भूमि में सजी हुई महिलायें अपने मुखकमलों से स्वर्ग की महिलाओं की भी हँसी उड़ाती थीं, उसी कश्मीर की भूमि में जिनके पुत्र और पति मार डाले गये हैं, ऐसी महिलायें करुणा के आँसू बहाकर सुशोभित नहीं हो रही हैं।

यस्यां नरीनर्ति पुरा स्म शारदा विद्वत्समक्षं श्रुतिशास्त्रसारदा।
तस्यां हि काश्मीरशुभावनौ नरा नृत्यन्ति सम्भग्नकबन्धमस्तकाः ॥101॥

जिस कश्मीर की भूमि में विद्वानों के समक्ष वेदों और शास्त्रों के तत्त्वों को प्रदान करने वाली सरस्वती विद्वानों के समक्ष नाचा करती थी। उसी कश्मीर भूमि में इस समय शिरों और धड़ों से रहित मनुष्य छटपटा कर नाचते रहते हैं।

यस्यां स्म पर्जन्य उदारदर्शनः पीयूषवारो नितरां प्रवर्षति।
तस्यां च काश्मीरमहावनौ खला वर्षन्ति नित्यं नरकोष्णशोणितम् ॥102॥

जिस कश्मीर की भूमि में पहले बादल अमृतमय जल की वर्षा किया करते थे उसी कश्मीर की पवित्र धरती पर इस समय आतङ्कवादी खल लोग मानवों के गरम-गरम रक्त की वर्षा कर रहे हैं।

सङ्क्रीडमानाः शिशवो निरामया यस्यां विभान्ति स्म च धूलिधूसराः।
तस्यां हि बालाः पिशितासनैः खलैर्जङ्घन्यमाना भुवि शेरतेऽधुना ॥103॥

जिस कश्मीर की भूमि में बच्चे प्रसन्न होकर, निरोग रहकर, धूलि में खेलते थे। उसी कश्मीर की भूमि में इस समय मांसभोजी आतङ्कियों द्वारा मार-मारकर बच्चे सुला दिये जा रहे हैं।

यस्यां शिखासूत्रयुताश्च वैदिका वेदं पठन्ति स्म मुदा स्फुटस्वराः।
तत्राऽधुना भग्नशिखौघलिङ्गका दुष्टैः क्रियन्ते यवनाश्च हिन्दवः॥104॥

जिस कश्मीर की भूमि में शिखासूत्रधारी पण्डित स्फुट स्वर में प्रसन्नता से वेद पाठ करते थे। उसी कश्मीर की भूमि में शिखा लिङ्ग का छेदन करके दुष्टों द्वारा हिन्दू लोग मुसलमान बनाये जा रहे हैं।

तद् गच्छ काश्मीरमुदारदर्शनं तत्र त्वमाश्वासय हिन्दुमानवान्।
संश्राव्य रामस्य मनुं षडर्णकं संसारसिन्धोः सुजनान् समुद्धर॥105॥

इसलिए हे गालवानन्द! तुम दर्शनीय कश्मीर में जाओ, वहाँ हिन्दुओं को आश्वासन दो, सबको षडक्षर श्रीराममन्त्र सुनाकर उन्हें संसार सागर से पार कर दो।

इति निशम्य गुरोरनुशासनं नमुचिशासनशासनशासनः।
पुनरुपेत्य दिशं किल पश्चिमां पुरमयात् पुनरेवमपश्चिमाम्॥106॥

इस प्रकार जगद्‌गुरु जी का आदेश पाकर नमुचि दैत्य के शासक इन्द्र उनके शासक वामन और उन पर भी शासन करने वाले स्वयं गालवानन्दाचार्य गुरुदेव की आज्ञा से पश्चिम दिशा में विराजमान कश्मीर गये और वहाँ सबको धर्मोपदेश करके 'पश्चिमां पुरात्' अर्थात् पूर्व दिशा में वर्तमान काशीपुरी को फिर लौट आये।

स प्रणिपत्य गुरोश्चरणाम्बुजं परिनिवेद्य दशां च नृणां ततः।
ससुखमेव वसन् गुरुसन्निधौ निजगुरोर्निरतः किल सेवने॥107॥

इस प्रकार गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करके, कश्मीर के दशा कौन है उनसे निवेदन करके गालवानन्दाचार्य प्रेम से उन्हीं जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य के सान्निध्य में रहते हुए गुरुदेव के परितोषण में तत्पर हो गये।

सौशीलोदरदुग्धसागरसरद्व्यङ्कैणलक्ष्मा लस-
च्छ्रीमद्वैष्णववृन्दवानजरविर्विज्ञानवारान्निधिः।

हिन्दूद्धारकविश्वविश्रुतयशाः सारस्वतानां नृपो
रामानन्दजगद्गुरुर्विजयते स्वाचार्यचूणामणिः॥ ॥108॥

इस प्रकार सुशीला जी के गर्भरूप क्षीर सागर के शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमा और श्रीमद्वैष्णवरूप कमल के सूर्य, अनुभवों के साक्षात् सागर, हिन्दुओं का उद्धारक, विश्व विश्रुतयश जिनके पास विराजमान है, ऐसे सारस्वतों के राजा शोभन आचार्यों के चूड़ामणि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की जय हो, जय हो, जय हो।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गो द्वाविंशोऽयं यतीपतिगुणगणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इस प्रकार जहाँ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य सुकवि गायक हैं, ऐसे रामानन्दाचार्यचरित महाकाव्य में यह बाइसवाँ सर्ग जो रामानन्दाचार्य के गुणगणों से युक्त है, सीतापति श्रीराम एवं वैष्णवों के सुख के लिए हो।

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-
प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये द्वाविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥ अथ त्रयोविंशः सर्गः ॥

माण्डव्यशापेन भवत्रयं वै यमस्य भोक्तव्यमभून्नृलोके।
नूनं महान्तोऽप्यधिकारदृप्ता भवन्त्यृषीणां ननु दण्डभाजः ॥01॥

एक बार यमराज के प्रमाद से चिढ़कर माण्डव्य ऋषि ने उन्हें तीन जन्म मनुष्यलोक में लेने का श्राप दे दिया। निश्चित ही अब तीन जन्म मनुष्ययोनि में लेने पड़े और अपराध का फल भोगना पड़ा। वह अपराध यह था कि माण्डव्य ने जीवन की बारहवी वर्ष की अवस्था में एक पक्षी पर तीर चला दिया था, वह तीर उसके पंख में चुभ गया था। फिर ये द्वितीय जन्म में ऋषि बने तो निरपराध राजा ने इन्हें शूली पर लटका दिया और तीन दिन तक शूली का अंश इनके गले में पड़ा रहा। इन्होंने यमराज से जाकर पूछा कि तुमने किस अपराध का मुझे दण्ड दिया? यमराज ने कहा– आपने जो पक्षी को तीर मार दिया था वह तीर का अंश पक्षी के पंख में चुभा रहा इसलिए मैंने तुम्हें तीन दिन तक यह दण्ड दिया। माण्डव्य ने कहा बचपन का अपराध गिना नहीं जाता। चौदह वर्ष तक के बालक का कोई अपराध नहीं गिना जाता और उस समय मेरी अवस्था बारह वर्ष की थी। तुमने निरपराध तीन दिन तक शूली पर लटकवाया तो जाओ तीन बार तक तुम्हें मनुष्य योनि पर जन्म लेने पड़ेंगे। निश्चित ही महापुरुष भी जब अधिकार से मत्त हो जाते हैं तो वे ऋषियों के दण्डभागी बनते ही हैं।

स द्वापरान्ते विदुरत्वमेत्य सुनिष्कृतिं चैकभवस्य चक्रे।
यस्याजिरे श्रीभगवान् मुकुन्दो वास्तूकशाकं बुभुजेऽनवद्यः ॥02॥

वे यमराज द्वापर के अन्त में विदुर बनकर प्रथम जन्म का प्रायश्चित्त किये, जिनके आँगन में आकर भगवान् ने स्वयं बथुवा का साग खाया।

पुनर्द्वयोर्निष्कृतिमेव कर्तुं कलौ प्रजातो भवयोर्महात्मा।
पापस्य चैवापचितिं विधास्यन् यमोऽपि जीवैकविधानविज्ञः ।03॥

जीवों के विधान के वेत्ता यमराज अब दो जन्मों की निष्कृति करने के लिए कलियुग में फिर आ गये और उन्होंने इस पाप की निष्कृति करने के लिए दो जन्म स्वीकारा।

पुनर्द्वयोर्वै भवयोः स देवो विधातुमैच्छन्निजनिष्कृतिं स्वाम्।
यो जीवमात्रस्य च दण्डदाता स वै कथं नो बिभृयात् स्वदण्डम् ॥04॥

फिर दो जन्मों में अपने पाप की निष्कृति करने के लिए यमराज जी यत्न करने लगे। क्योंकि जो समस्त जीवों के दण्डदाता हैं, वे स्वयं दण्ड क्यों नहीं स्वीकार करेंगे।

भवं द्वितीयं किल भूसुरत्वे जग्राह वैवस्वत एव साक्षात्।
विधाय सेवां यतिनायकस्य भवेद् यथा पातकनिष्कृतिर्वै ॥05॥

फिर उन्होंने दूसरा जन्म ब्राह्मण कुल में लिया जिससे यतिराजराज रामानन्दाचार्य जी की सेवा करके वे इस पाप की निष्कृति कर सकें।

स ब्रह्मचारी निजधर्मचारी पितुर्बभूवैकल एव पुत्रः।
सुदीव्यदेहो गुणशीलगेहः स दत्तपूर्वः कपिलः प्रसिद्धः ॥06॥

जन्म से ही पिता के एकमात्र पुत्र होने पर भी वे ब्रह्मचारी बने, अपने धर्म का आचरण करने वाले बने। उनका शरीर दिव्य था, वे गुणों एवं शील के भवन थे और उनका नाम कपिल दत्त ब्रह्मचारी था।

पिताऽपि तं चाद्भुतबालकं स्वं विज्ञाय वीरव्रतमेव वीरम्।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य सेवार्थमथो न्ययुङ्क्त ॥07॥

पिता ने भी जब देखा कि बालक बहुत अद्‌भुत है, ब्रह्मचारी है। यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को जीतने में वीर है, तब उन्होंने जगद्‌गुरु स्वामीरामानन्दाचार्य की सेवा में ही इन्हें नियुक्त कर दिया।

आनीय काशीं श्रितपुण्यराशिं तं दत्तपूर्वं कपिलं कृपालुः।
समर्प्य धीमान् गुरवे जगत्याः कृतार्थमात्मानमसौ नु मेने ॥08॥

इस प्रकार पुण्य की राशि से युक्त काशी में उस बालक को ले आकर उसके पिता ने जगद्‌गुरु जी को उसे सौंप दिया, और अपने को कृतार्थ माने।

स दत्तपूर्वः कपिलोऽप्यनन्ताचार्येण सेवाव्रतिना नियुक्तः।
जगद्गुरोः पायसकर्मसिद्धौ सुब्रह्मचर्यव्रतिनां वरिष्ठम्॥09॥

इस प्रकार अनन्ताचार्य के द्वारा जो सेवाव्रती थे, ब्रह्मचर्यव्रतियों में श्रेष्ठ कपिल दत्त को जगद्गुरुजी के पायस की सिद्धि में लगा दिया गया। अर्थात् वह जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को प्रतिदिन पायस खीर सिद्ध करके पवाया करता था।

स पञ्चगेहान् किल भिक्षयित्वा गवां पयः शार्करतण्डुलञ्च।
क्षैरेयमीड्यं किल साधयित्वा सम्भोजयामास गुरुं गुरुज्ञः॥10॥

वह कपिल दत्त ब्रह्मचारी प्रतिदिन पाँच घरों से गाय का दूध और शक्कर और चावल माँग लाता था, प्रेम से खीर बनाकर जगद्गुरुजी को खिलाता था। क्योंकि गुरुदेव को भली-भाँति जानता भी था, ये केवल पायस ही पाया करते हैं।

स चैकदा कस्यचिदुद्विशो वै गृहे विभिक्षे किल पायसान्नम्।
यश्चर्मकृत्सङ्गविदूषितात्मा व्यापृत्य दुष्टाऽन्नमथोऽपजह्रे॥11॥

उसने एक दिन किसी उच्छृङ्खल वैश्य के घर पायस की भीख माँगी जो एक चमड़े के व्यांपारी के साथ मिलकर दूषित अन्न का सङ्ग्रह करके ब्रह्मचारी को उपहार में दिया था।

तत्पायसं विष्णुपदीनिषिद्धो नाचार्यवर्यो बुभुजे कथञ्चित्।
स ब्रह्मचारी च तदातिभीतः सर्वं ह्युदन्तं कथयाम्बभूव॥12॥

वह दूषित अन्न से बना हुआ खीर जब गङ्गाजी के द्वारा मना करने पर जगद्गुरुजी ने किसी प्रकार से नहीं भोग लगाया, तब अत्यन्त भयभीत ब्रह्मचारी ने उनको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया।

स जातरोषोऽप्यथ धर्मकोषो जगद्गुरुस्तं बटुकं शशाप।
गच्छाऽधम त्वं निजदेहहायं जायस्व भोश्चर्मकृतः कुले वै॥13॥

जगद्गुरु को थोड़ा क्रोध आ गया और धर्म के कोष होने पर भी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उस बटुक को शाप दे दिया। जाओ एक चर्मकार के कुल में जन्म लो।

भवेर्बटो चर्मकृतः सुतस्त्वं क्षैरेयमादा यदहो कदन्नम्।
भुङ्क्ष्वाधुना त्वं परिणाममुग्रं कः कर्मणो जातु गतिं विहन्यात्॥14॥

जाओ अपने कर्म का पाप भोगों क्योंकि तुमने दुष्ट अन्न में बना हुआ पायस अर्थात् और मुझे दे दिया था। कर्म की गति को कौन नष्ट कर सकता है?

कदन्नभोगी यदि चेद्विधाता सोऽपि प्रघोरं नरकं प्रयायात्।
तस्मात् कदन्नं परिवर्जयेद्वै श्रीरामसेवाव्रतमादधानः॥15॥

दूषित अन्न खाकर विधाता भी घोर नरक में जा सकते हैं। इसलिए श्रीराम के सेवाव्रती को कदन्न का यत्न से त्याग कर देना चाहिए।

भुक्त्वा कदन्नं धृतराष्ट्रजस्य दुर्योधनस्यैव बुधो नदीजः।
लज्जां हरन्तं द्रुपदात्मजाया न वारयामास स चान्धपुत्रम्॥16॥

दुर्योधन के कुस्सित अन्न को खा कर ही गङ्गापुत्र भीष्म की बुद्धि कुत्सित हो गयी और द्रौपदी की लज्जा लुटते हुए दृष्टिबाधित धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन को भी भीष्म नहीं रोक पाये।

यो जामदग्न्यस्य प्रधानशिष्यो द्रोणोऽपि दौर्योधनकं कदन्नम्।
भुक्त्वा विनष्टामलबुद्धिसत्त्वो ह्यधर्मपक्षं तरसा बभार॥17॥

जो परशुराम जी के प्रधान शिष्य थे ऐसे द्रोणाचार्य भी दुर्योधन का कदन्न खाकर बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण अधर्म का पक्ष ले लिये।

बुभुक्षितो वा यदि वा मुमुषुर्विनान्नमेतर्हि मनुष्यलोके।
न वै कदन्नं परमार्थपान्थो भुञ्जीत वेदस्य वचः किलैतत्॥18॥

कोई भूखा हो, या अन्न के बिना मर रहा हो तो भी परमार्थ के पथिक को कदन्न नहीं खाना चाहिए, यही वेद की आज्ञा है।

नाश्नां कदन्नं तव निर्मितं वै निवार्यमाणः किल गङ्गयाऽहम्।
विश्वासघाती च वटुर्गुरूणां कदन्नदायी विपदं प्रयाति॥19॥

गङ्गाजी के द्वारा मना करने के कारण मैंने यह कदन्न नहीं पाया, कोई भी जो गुरुजनों का विश्वासघात करता है, और उन्हें दूषित अन्न दे देता है, उसे विपत्ति मिलती ही है।

स दत्तपूर्वः कपिलो गुरूक्तस्त्यक्त्वा स्वदेहं किल विष्णुपद्याम्।
तार्तीयकं जन्म पुनश्च लेभे रघोः कुले चर्मकृतः कृतघ्नः॥20॥

इस प्रकार कृतघ्न होकर गुरुदेव के प्रति विश्वासघात करके वह ब्रह्मचारी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के द्वारा अभिशप्त होने पर गङ्गाजी में शरीर छोड़कर रघुनायक चर्मकार के यहाँ पुत्र बनकर जन्म लिया।

स जातमात्रः शुचिसर्वगात्रो विचारयामास धियाऽर्भकेन्द्रः।
यच्चर्मणो विक्रयिणः कदन्नात् प्राप्तोऽहमेतां गतिमेव घोराम् ॥21॥

जन्म लेते ही उस बालक ने विचार किया कि अरे यदि चमड़े के विक्रयी के कदन्न से मुझे यह घोर गति मिल गयी है।

जातस्मरत्वात् तदहं कथञ्चिद् न चर्मकृन्नारिपयः पिबेयम्।
मरिष्यते चेन्मम पापमुक्तिस्तरिष्यते चेन्मम रामभक्तिः ॥22॥

इसलिए अब मैं रघु की पत्नी का भी दूध न पीऊँ, यदि मर जाऊँगा, मेरे पापों से मुझे मुक्ति मिल जायेगी, यदि तर जाऊँगा तो मुझे रामभक्ति मिलेगी।

इत्येव निश्चित्य स बालकेन्द्रः स्तन्यं जनन्या न पपौ कथञ्चित्।
रुरोद नासौ प्रथमक्षणेऽपि निजाननाद्राम इति ह्यवादीत् ॥23॥

ऐसा सोचकर उस बालक ने माँ का स्तनपान नहीं किया, प्रथम क्षण में भी नहीं रोया, और उसके मुख से राम निकला।

अहानि जातानि षडस्य चैवं प्रतीक्षमाणस्य गुरोः पदाब्जम्।
न चातकः स्वातिजलं विहाय ह्यन्यस्य हि स्यात् पयसोऽभिलाषी ॥24॥

इस प्रकार गुरूदेव के चरणकमल की प्रतीक्षा करते हुए उस बालक के छह दिन बीत गये। क्योंकि चातक स्वाति जल के अतिरिक्त किसी जल की अभिलाषा नहीं करता।

विज्ञाय बालस्य च हार्दमेतज्जगद्गुरुः स्वामिवरो यतीन्द्रः।
अनन्तमुख्यैः स वृतश्च शिष्यै रघोर्गृहं तत्सहसा जगाम ॥25॥

उस बालक का हार्द देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य सूचना दिये बिना ही अनन्ताचार्य आदि शिष्यों से युक्त होकर रघु के घर आये।

लसत्त्रिदण्डो नितरामचण्डो दोर्दण्डसन्दूरितभीतिखण्डः।
महानुभावो मधुरस्वाभावो भवाटवीखण्डनसत्प्रभावः ॥26॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने त्रिदण्ड धारण किया था, वे इस समय शापित बालक के प्रति अत्यन्त कोमल हो चुके थे, वे अपनी भुजाओं से भक्तों के भय को दूर कर रहे थे, उनका तेज महान् था, उनका स्वभाव बहुत मधुर था, और उनका श्रेष्ठ प्रभाव भक्तों के कल्मष वन का खण्डन करने वाला था।

देहप्रभाव्रीडितशैलराजो राजाधिराजांश उदारचेताः।
प्रपन्नशिष्यामरपारिजातो जातो महीदेवमहागृहिण्याम्॥27॥

अपनी देह के प्रभा से वे हिमालय के भी प्रभा को लज्जित कर रहे थे, उनका चित्त उदार था, वे राजाधिराज भगवान् राम के अंशावतार थे, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य प्रपन्न शिष्यों के लिये देववृक्ष के समान थे और वे स्वयं ब्राह्मण पुण्यसदन की महनीय धर्मपत्नी में जन्म लिये थे।

मन्दस्मितव्रीडितकोटिचन्द्रो विभासमुद्रस्मृतरामचन्द्रः।
लसच्छिखासूत्र उदूढभक्तिः श्रितप्रपत्ती रघुवंशकेतौ॥28॥

जगद्गुरु जी अपनी मन्द-मन्द मुस्कान से करोड़ों चन्द्रमाओं को लज्जित कर रहे थे, वे प्रभा के सागर थे और अपने मन में श्रीरामचन्द्र का स्मरण कर रहे थे, और उनकी लम्बी-लम्बी शिखा तथा वामस्कन्ध पर यज्ञोपवीत सुशोभित हो रहा था, उनके हृदय में श्रीराम भक्ति उद्वेलित हो रही थी और भगवान् रघुकुल के केतु श्रीराम में उनकी प्रपत्ति सुशोभित हो रही थी।

समस्तदेवासुरवन्दिताभ्यामनिन्दिताभ्यामभिनन्दिताभ्याम्।
स पादुकाभ्यां चरणाश्रिताभ्यां चलन् समालज्जितराजहंसः॥29॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी सभी देव दानवों से वन्दित निन्दारहित अभिनन्दित श्रीचरणकमलों में धारण की हुई श्रीपादुकाओं से धीरे-धीरे चलते हुए राजहंस को भी लज्जित कर रहे थे।

रघोर्गृहं ग्राम्यजनांश्च पृच्छन् मुदं प्रयच्छन् नवजातकाय।
स्वपूर्वदेहे कृतपातकाय स्मृत्या गुरोः कल्मषखातकाय॥30॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी अपने पूर्व शरीर में पाप करने वाले और इस जन्म में दोषों को नष्ट करने वाले, नवजात शिशु को आनन्द देने के लिए ग्राम्यजनों से रघु के गृह का सङ्केत पूछ रहे थे।

आगत्य धीमान् रघुसौम्यसद्म श्रीपुण्यसद्मार्जितपुण्यपुञ्जम्।
गृहं विवेशैव च सूतिकायाः कृपा गुरो किन्न करोति चित्रम्॥31॥

श्री पुण्यसदन के द्वार अर्जित पुण्यपुञ्जस्वरूप बुद्धिमान् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने रघुचर्मकार के घर में आकर बालक के सूतिका गृह में प्रवेश किया क्योंकि सद्गुरु की कृपा क्या चमत्कार नहीं करती।

ददर्श तल्पे श्रितधर्मकल्पे मुमुर्षमाणं परिशुष्कप्राणम्।
महाप्रयाणं किल कर्तुकामं शिशुं गुरौ कल्पितसुप्रणामम्॥32॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने देखा श्रेष्ठ धर्म कर्म का आश्रय किये हुए पलंग पर सात दिन का एक बालक सो रहा है जो मरणासन्न है जिसके प्राण सूख गये हैं। जो अब महाप्रयाण करना ही चाहता है और स्मृति में गुरुदेव जी के चरणों को प्रणाम कर लिया है।

निरीक्ष्य तं बालकमद्भुतास्यं स्तन्यं पिबन्तं न हि तज्जनन्याः।
मुखे निजाङ्गुण्ठममुष्य दत्त्वा जगद्गुरुस्तद्विपदं जहार॥33॥

अद्भुत मुख वाले उस बालक को देखकर और यह देखकर कि यह अपनी माँ का स्तन नहीं पी रहा है जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उसके मुख में अपना अङ्गुष्ठ पिला दिया और उसकी विपत्ति को दूर कर दिया।

अङ्गुष्ठपायं स जगद्गुरूणां सौन्दर्यदर्शं निजदेशिकानाम्।
वात्सल्यभावं भवतां सतां च रघोः सुतो गद्गदमारुरोद॥34॥

इस प्रकार जगद्गुरुजी के अंगूठे को पीकर और उनके सौन्दर्य को निहार कर, अपने आचार्य के वात्सल्य का चिन्तन करते हुए रघु का पुत्र नवजात बालक स्पष्ट रूप से ऊँचे स्वर से रोने लगा।

तं वै रुदन्तं परिवीक्ष्य बालं जगद्गुरुः कारुणिको बभूव।
उत्थाप्य चालिङ्ग्य प्रचुम्ब्य वक्त्रं कर्णे किमप्यर्हवचो बभाषे॥35॥

उसको रोते देखकर, उसकी वाणी को सुनकर उसे गले से लगाकर, उसे चूमकर, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने उस बालक के कान में कुछ अर्हणीय वचन कहा।

भो चर्मकृत्पुत्रक मा रुदस्त्वं श्रृणुष्व मे वाक्यमुदारबुद्धे।
तिष्ठन् गृहे वर्धय नैजवर्ष्मं क्षिप्रं प्रलब्धासि मदीयसेवाम्॥36॥

हे रघु चर्मकार के पुत्र रोओ मत, मेरी बात सुनो, अब इसी घर में रहकर अपने शरीर को बढ़ने दो, शीघ्र ही मेरी सेवा को प्राप्त कर लोगे।

रयिं प्रयातोऽसि कृपां मदीयां श्रियं ममानुग्रहतो महात्मन्।
अतस्त्रिलोक्यां भविता प्रसिद्धो भवान् विपश्चिद् रयिदासनाम्ना॥37॥

तुम रयि अर्थात् भगवती श्री को प्राप्त हो चुके हो, सीताजी ने तो तुम पर कृपा कर दिया है, इसलिए अब तुम तीनों लोकों में रयिदास के नाम से प्रसिद्ध हो जाओगे।

न रामदासो न रमासुदासो न त्वं सुसाधो रविदास एव।
रयिं कृपां प्राप्य च मामकीनां सिद्धं प्रयाता रविदासनाम्ना॥38॥

तुम रामदास भी नहीं हो, रमादास भी नहीं हो रविदास भी नहीं हो तुम तो मेरी कृपा रयि मेरी कृपा से दास होने के कारण रयिदास हो।

इत्येवमुक्त्वा यतिराजराजस्तं पञ्चसंस्कारविधानतश्च।
संस्कृत्य बालं दिवसे च षष्ठे विधाय जातो रयिदासनाम्ना॥39॥

इस प्रकार यतिराजराज रामानन्दाचार्य जी उस बालक को जन्म के छठे दिन ही पञ्चसंस्कार से युक्त करके रयिदास के नाम से अभिहित करके अपनी कुटी में पधारे।

दिने दिनेऽसौ रघुगेह एव संवर्ध्यमानः परिलाल्यमानः।
शशीव चावर्धत शुक्लपक्षे लोकोत्तराणां चरितं ह्यनर्घ्यम्॥40॥

इस प्रकार रघु के घर में ही पलता पोषता हुआ वह बालक रैदास थोड़े ही दिनों में शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़कर युवक हुआ। क्योंकि लोकोत्तर पुरुषों का चरित्र अनर्घ्य अर्थात् अद्‌भुत होता है।

स बाल्यकालेऽपि च रामभक्तः शुश्राव रामायणसम्प्रदायम्।
बाल्मीकिना यत्कृतमादिकाव्यं पीयूषवत् तच्च पपौ श्रुतिभ्याम्॥41॥

वह रामभक्त बालक बाल्यकाल में ही रामायण सम्प्रदाय को सुनने लगा और बाल्मीकि के द्वारा जो आदिकाव्य बनाया गया है, उसको अमृत के समान अपने दोनों कानों से पीने लगा।

श्रुत्वा त्वहल्योद्धरणं द्विजेभ्यः सञ्जातहर्षोत्पुलकः स शुद्धः।
रजांसि राजीवदृशः पदाब्जजुष्टानि कामं चकमे कमीप्सुः॥42॥

ब्राह्मणों के मुख से अहिल्योद्धार की चर्चा सुनकर रयिदास ने राजीवलोचन भगवान् राम के चरण कमल की धूलि को सुख की इच्छा प्राप्त करने की प्रार्थना की।

स यत्र यत्रापि च वीक्षते स्म सन्मन्दिरं दाशरथेर्मनोज्ञम्।
स तत्र तत्रैव बभार मूर्ध्ना श्रीरामपादाब्दरजः प्रसन्नः॥43॥

वह बालक जहाँ-जहाँ भी भगवान् राम का मन्दिर देखता वहाँ-वहाँ प्रभु श्रीराम के विग्रह के चरण रज को सिर पे धारण कर लेता था।

स यत्र यत्रापि निरीक्षते स्म श्रीवैष्णवान् रामपदाब्जनिष्ठान्।
स तत्र तत्रापि च तत्पदाब्जधूलिं शिरःशेखरमाबभार॥44॥

वह जहाँ-जहाँ रामजी के भक्त श्री वैष्णवों को निहारता था, वहाँ-वहाँ उनके चरण की धूली को भी अपने मस्तक का आभूषण बनाता था।

सामान्यनीरं न कदापि बालः पपौ च सारङ्ग इवाम्बु चान्यत्।
पपौ स रामस्य पदारविन्ददिव्योदकं भक्तपदोदकञ्च॥45॥

उस बालक ने कभी भी उसी प्रकार सामान्य जल नहीं पिया जैसे चातक स्वातिजल के बिना कुछ नहीं पीता। वह रैदास तो निरन्तर भगवान् श्रीराम का चरणामृत और सन्तों का चरणामृत ही पीते रहे।

उच्छिष्टभोजं किल वैष्णवानां स्वकां क्षुधां संशमयाम्बभूव।
श्रीरामसेवां श्रितसर्वदेवां चकार नित्यं रयिदास एव॥46॥

वे रैदास सन्तों का जूठन खाकर के ही अपनी भूख को शान्त करते थे और सम्पूर्ण देवता जिनकी शरण में हैं ऐसे भगवान् श्रीराम की सेवा ही वे नित्य करते थे।

सेवां सतां वैष्णवतल्लजानां सङ्कीर्तनं राघवचारुनाम्नः।
आकर्ण्य दिव्यां रघुनाथगाथां वर्षं सुखं षोडशकं निनाय॥47॥

इस प्रकार वैष्णवों की सेवा करते हुए, भगवान् श्रीराम का नाम जप करते हुए और प्रभु की गाथा का श्रवण करते हुए, रयिदास ने अपने सोलह वर्ष सुखपूर्वक बिता दिये।

स रामभक्तां विषयेष्वसक्तां रामानुरक्तां च भवाद्विरक्ताम्।
सत्सङ्गसेवौपयिकीं स्वपत्नीं शशीव चित्रां प्रभुतां चकार ॥48॥

रयिदास जी ने श्रीरामजी की भक्ता, विषयों में असक्त, भगवान् श्रीराम के प्रति अनुराग रखने वाली, भव से विरक्त, सत्सङ्ग और सेवा में उपयोगिनी प्रभुता नामक कन्या को, चित्रा को चन्द्रमा की भाँति स्वीकार किया।

दिने दिने राघवकीर्तनञ्च दिने दिने वैष्णवसाधुसेवा।
दिने दिने रामकथाप्रसङ्गो दिनान्यनैषीद् भगवत्प्रवृत्तौ ॥49॥

प्रत्येक दिन भगवान् राघव के नाम का संकीर्तन, प्रत्येक दिन वैष्णव सन्तों की सेवा, प्रत्येक दिन श्रीराम की दिव्य-दिव्य कथाओं के प्रसङ्गो का श्रवण, इस प्रकार रयिदासजी ने भगवान् की प्रवृत्ति में ही अपने दिनों को बिताना प्रारम्भ किया।

स साधुसेवां विधिवद् वितन्वन् प्रभोः प्रभूयन् प्रभुताप्रभुर्वै।
प्रभावयामास जगत् समस्तं प्रभावसम्भावितरामभक्त्या ॥50॥

अपने प्रभाव से सम्मानित श्रीरामभक्ति के द्वारा रयिदास जी विधिवत् सन्त सेवा करते हुए और प्रभुता के पति होने पर भी श्रीराम को अपना प्रभु बनाने की इच्छा करते हुए सारे संसार को प्रभावित कर लिये।

उपानहश्चर्ममयीः प्रकुर्वन् सदा सतां वैष्णवतल्लजानाम्।
तल्लब्धसंसाधनतो मनस्वी कुटुम्बमावन् नितरां कुटुम्बी ॥51॥

सन्तों और श्रेष्ठ वैष्णवों के लिए चमड़े से जूती अर्थात् पनही बनाकर उससे प्राप्त संसाधनों द्वारा मनस्वी रयिदास जी ने कुटुम्बी होकर भी अपने कुटुम्ब का भली-भाँति रक्षण किया।

हस्तात् पदत्राणमयं प्रकुर्वन् मुखाज्जपन् पावनरामनाम।
धिया भजन् रामपदारविन्दं स सर्ववृत्तीर्भगवत्यकार्षीत् ॥52॥

हाथ से चमड़े का जूता बनाते हुए, मुख से भगवान् राम का नाम जप करते हुए और बुद्धि से भगवान् श्रीराम की धारणा करते हुए, रयिदासजी ने भगवान् में ही सम्पूर्ण वृत्तियों को समर्पित किया।

तत्रैकदाऽऽगात् प्रभुरामचन्द्रो गृहीतसाधरणसाधुवेषः।
स्पार्शं मणिं भागवताय दातुं सम्भाष्य तं वै वचनं बभाषे ॥53॥

एक बार साधारण साधु का वेश धारण करके वहाँ भगवान् राम आये और स्पार्शमणि अर्थात् पारस मणि रयिदास जी को देने के लिए उन्हें सम्बोधित करके इस प्रकार बोले।

गृहाण धीमन् मणिमद्य चैतं येनाऽऽयसं वै भवतीह हेम।
स्पार्शं विधत्स्वाऽप्यमुनैव सेवां स्वस्त्यस्तु ते वत्स च माऽऽगृहाण ॥54॥

हे रयिदास! यह मणि देखो, इससे लोहा भी सोना बन जाता है, इसी से सन्तों की सेवा करो, तुम्हारा कल्याण हो और तुम हठ मत करो।

निशम्य तस्याऽमृततुल्यवाक्यं धिया च नन्दन् रयिदास ऊचे।
अलं प्रभो मामिह लोभयित्वा किमस्ति कार्यं मणिना ममात्र ॥55॥

इस प्रकार भगवान् का वचन सुनकर रयिदास जी ने उसकी निन्दा की, और कहा भगवान् मुझे लुभाना व्यर्थ है, इस मणि से मेरा क्या लेना देना?

माऽहं कदाचित् कनकैरिहार्थी अर्थी सदा पावनरामनाम्ना।
को नाम विद्वान् प्रतियच्छतीह काचञ्च चिन्तामणितोऽमरार्हात् ॥56॥

भगवन्! मेरा स्वर्ण से कोई प्रयोजन नहीं है और न कभी था, मेरा प्रयोजन तो पवित्र रामनाम से है, अरे कौन ऐसा विद्वान् होगा जो चिन्तामणि दे करके काँच अर्थात् शीशा ले लेगा।

द्रव्यैर्निजोद्योगसमर्जितैश्च सदा करिष्ये ननु साधुसेवाम्।
स्पार्शेन किं मे मणिनाऽस्ति हेतुर्निक्षिप्यतां घासमिवायमद्धा ॥57॥

मैं अपने परिश्रम से अर्जित द्रव्य से ही सन्तों की सेवा करूँगा। इस पारस मणि से मेरा क्या लेना देना। इसको मेरे आश्रम से घास की भाँति शीघ्र ही फेंक दीजिए।

निधाय तं पर्णकुटीरकोणे व्रज त्वमेवार्य पुनः समाव।
गृहाण चैतल्ललितं ललामं निराग्रहं मां त्यज भो कृपालो ॥58॥

आप इसको मेरे पर्णकुटी के कोने में रख दीजिए, जाइये और फिर आइये, इसको ले जाइये और मेरे लिए बहुत आग्रह मत कीजिए।

तथा विधायाऽथ मणिं व्रजित्वा भूयस्तमागत्य च तत्र दृष्ट्वा।
रामो मनोविस्मयमाततान प्राशंसदेनं रयिदासमीड्यम् ॥59॥

इस प्रकार सुन करके अर्थात् वही मणि को रखकर भगवान् राम चले गये और पुनः जब आये तो देखा मणि उसी प्रकार रखा था, फिर तो भगवान् राम के मन में बहुत विस्मय हुआ और रयिदास जी की बहुत प्रशंसा की।

प्रादात् सदा कानकबाणमुद्राः परीक्षितुं तं निजभक्तरत्नम्।
उत्तीर्णमेतं मनसाऽभिधाय ननन्द रामो रयिदासमूचे ॥60॥

इसके पश्चात् भगवान् राम प्रतिदिन पाँच मोहरे वहाँ रखते गये, रयिदास की परीक्षा ली, उनको उत्तीर्ण देखा, फिर श्रीराम बहुत प्रसन्न होकर रयिदास जी से बोले।

याचस्व मां त्वं वरमीप्सितं भोः प्रसीदति त्वय्यथ मे सुचित्तम्।
स्वर्गाऽपवर्गात्मकनित्यसौख्यं वृणीष्व मन्मा हृदये व्यथिष्ठाः ॥61॥

आज जो ईप्सित वरदान हो माँग लो। मेरा मन तुमसे बहुत प्रसन्न है। आज स्वर्ग अपवर्गात्मक नित्य सुख जो भी मागोगे मुझसे वह मैं दे दूँगा। मन में व्यथित मत हो।

सिद्ध्यष्टकं वै नवकं निधीनां याचस्व धीमंश्चतुरः पुमर्थान्।
सर्वं ददामीह न वच्मि मिथ्या न पारिजातः किल निष्फलः स्यात् ॥62॥

आज आठों सिद्धियाँ, नौ निधियों, चारों अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष पुरुषार्थ मुझसे माँग लो। मैं सब कुछ तुम्हें देने को आज उद्यत हूँ। अरे कल्पवृक्ष कभी निष्फल नहीं होता।

सम्प्रेरितोऽपीष्टवरोपलब्ध्यै न भक्तवर्यो हरिमाययाचे।
पश्यन् मुखाम्भोरुहमाजिसूनोर्न जग्मतुस्तृप्तिमिहास्य नेत्रे ॥63॥

भगवान् के द्वारा बार-बार प्रेरित होकर भी रयिदास ने भगवान् से कुछ नहीं माँगा और प्रभु के मुखारविन्द को देखते हुए आजि अर्थात् अजपुत्र दशरथजी के पुत्र श्रीराम जी के मुखारविन्द को निहारते हुए रयिदासजी के नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे।

वरं न चान्यं त्वदहं प्रयाचे प्रदेहि भक्तिं निजपादमूले।
न षट्पदस्तिष्ठति चारुपद्मे कदापि कारीलरसे पिपासुः ॥64॥

भगवन्! आपसे आज कोई वरदान नहीं माँग रहा हूँ। आप अपने चरणकमल की भक्ति मुझे दीजिए। भ्रमर कमल के विरजमान रहने पर कभी भी करील के रस के लिए पिपासु नहीं बनता।

यदा यदा त्वां परिकीर्तयेयं हे राम हे राघव हे कृपालो।
तदा तदा त्वं मम नेत्रवर्त्मपान्थो भवेर्भूमिसुतापते वै॥65॥

जब-जब हे राम हे राघव हे कृपालु इस प्रकार कहकर मैं आपका कीर्तन करूँ। तब-तब हे पृथिवीपुत्री सीताजी के पति आप मेरे नेत्र मार्ग के पथिक बने रहिए।

गते तु रामे नयनाऽभिरामे श्रीवैष्णवः प्रीतमना बभूव।
चकार सेवां ननु सज्जनानां निष्कामता प्रीणयते हरिं हि॥66॥

इस प्रकार भगवान् के पधार जाने पर रयिदासजी वैष्णवों की सेवा करते रहे और प्रसन्न रहे। क्योंकि निष्कामता ही भगवान् को प्रसन्न कर लेती है।

तं काशिराजः सहसाऽऽजुहाव विरोधविक्षोभितमानसो वै।
विनाऽधिकारं रयिदास शालग्रामं कथं सेवस इत्युवाच॥67॥

ब्राह्मणों के विरोध से जिनका मन दुःखित था, ऐसे काशीराज ने रयिदासजी को सभा में बुलाया और कहा-यह बताओ तुम अधिकार के बिना शालिग्राम की सेवा कैसे करते हो?

निशम्य वाक्यं रयिदास ऊचे न वर्णभेदं भगवान् वृणीते।
स प्रेमसम्पत्तिवशंवदो हि ततश्च सेवे ननु गण्डकीजम्॥68॥

रयिदासजी ने कहा महाराज भगवान् कोई वर्ण भेद नहीं मानते। वे तो प्रेम सम्पत्ति के वश में रहते हैं। इसी आधार पर मैं भगवान् की सेवा करता हूँ।

राजाऽवदद् यस्य समीपमेतु सुसम्पुटाद् गण्डकिसूनुरद्य।
स सेवतां तं कलिताधिकारस्त्वं वा द्विजा वा हृदि मा व्यथिष्ठाः॥69॥

राजा ने कहा कि आज जिसकी गोद में शालिग्राम जी आ जायें, वही उनकी सेवा करेगा। चाहे तुम करो, चाहे ब्राह्मण करें, मन में व्यथित न हो।

श्रुत्वा द्विजाः पौरुषसूक्तमन्त्रैरावाहनं चक्रुरथाऽसुरारेः।
नाऽऽवत् समीपं भगवांश्च तेषां ततो व्यसीदन् विमणिर्यथाहिः॥70॥

यह सुनकर ब्राचणों ने पुरुष सूक्त के मन्त्रों से भगवान् का बहुत बहुत आवाहन किया पर भगवान् उनके समीप नहीं गये। इसके अनन्तर वे उसी प्रकार दु:खी हुए जैसे मणि के बिना सर्प दु:खी हो जाता है।

ततोऽब्रवीत् तं रयिदास ईशं सप्राञ्जलिर्जीवनपूरिताक्षः।
हे जानकीजीवन रामभद्र समीपमागच्छ ममाशु देव॥71॥

इसके अनन्तर नेत्रों में आँसु भर कर हाथ जोड़कर रयिदास ने कहा– हे जानकीजीवन! रामभद्र! आप मेरे समीप चले आइये।

हे हरे मम समीपमागच्छ, हे जानकीरमण त्रिशिरारे।
विजयं च मे प्रयच्छ हे हरे मम समीपमागच्छ।
त्रातो यथा त्वया प्रह्लादः, स्तम्भेभवो नृसिंहः।
अधिनृपसभं द्रौपदीत्राता, पटोऽभवो यदुसिंहः।
त्रातो यथा त्वया सुग्रीवः, मित्रं विपदां सिन्धु।
लङ्केशो विहितो विभीषणो, यथा त्वया रिपुबन्धुः।
तथाऽधुना मम लज्जां रक्षेः, हे हे जानकीजीवन।
गिरिधरप्रभो रक्ष रयिदासम्, एहि पतितकुलपावन॥72॥

हे प्रभो मेरे समीप आ जाइये, हे जानकी रमण! हे त्रिशिरारे प्रभो श्रीराम! आज मुझे जीता दीजिए। हे प्रभो! जिस प्रकार आपने प्रह्लाद की रक्षा की, खम्भे मे नृसिंह रूप में प्रकट हुए और राज सभा में द्रौपदी की रक्षा की और वस्त्रावतार ले लिया। जिस प्रकार विपत्ति के सागर सुग्रीव की आपने रक्षा कर ली और वह शत्रु के भाई विभीषण को भी अपने बचा लिया। उसी प्रकार हे जानकीजीवन! आइये मेरी रक्षा कर लीजिए और गिरिधर कवि के स्वामी पतितकुल के पावन प्रभो! आज मेरे पास आ जाइये।

निशम्य वाचं भगवांस्तदानीं स्वसम्पुटाद् गण्डकीसूनुरीशः।
उपाङ्क्रमायान्निजसेवकस्य ररक्ष भक्तं रयिदासमाद्यः॥73॥

इस प्रकार रयिदास का वचन सुनकर के भगवान् शालिग्राम रयिदासजी के गोद में आ गये और उनकी रक्षा कर ली।

तदा दिवो दुन्दुभयः प्रणेदुः शङ्खाश्च तूर्याः पणवाऽऽनकाश्च।
देवाः प्रसूनैर्व्यकिरन् समन्तात् तं रामदासं रयिदासमीड्यम्॥74॥

उस समय स्वर्ग के नगाड़े बजने लगे। शङ्ख, तूर्य, पणव, आनक ये सभी देववाद्य बज उठे। देवताओं ने चारों ओर से श्रीराम भक्त रयिदास को पुष्पों से ढक दिया।

गन्धर्वयक्षाऽमरसिद्धसङ्घा जगुस्तदीयां विमलां च कीर्तिम्।
देवाङ्गनाः सन्ननृतुर्नभस्थास्तथैव विद्याधरधर्मपत्न्यः ॥75॥

गन्धर्व, यक्ष, देवता, सिद्धसमूह रयिदासजी की विमल कीर्ति गाने लगे। आकाश में स्थित देववधुयें और विद्याधरों की पत्नियाँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं।

तं काशिराजोऽपि महाप्रभावं विलोक्य विज्ञाय विशुद्धचित्तम्।
श्रीरामपादाम्बुजभृङ्गराजं स्वभक्तिसम्भावितसत्समाजम् ॥76॥

काशी के महाराज ने भी जब देखा कि रयिदास का प्रभाव महान् है और यह भी जान लिया कि रयिदास का चित्त पवित्र है और वे भगवान् श्रीराम के चरण कमल के श्रेष्ठ भ्रमर हैं, उन्होंने अपनी भक्ति से सन्त समाज को सम्मानित किया है।

विनम्रवेषं गतदर्पलेशं स्वप्नेऽप्यहङ्कारविकारमुक्तम्।
श्रीरामभक्ताऽग्र्यगुणैश्च युक्तं सेवाविधौ शार्ङ्गभृता नियुक्तम् ॥77॥

और काशीराज जी ने यह भी देखा कि रयिदास का वेश बहुत विनम्र है, उनके मन में गर्व का लेश भी नहीं है, वे स्वप्न में भी अहङ्कार रूप विकार से मुक्त हैं और वे श्रीरामभक्तों के श्रेष्ठगुणों से युक्त हैं, उन्हें शार्ङ्गधन्वा भगवान् राम ने ही शालिग्राम की सेवा में स्वयं नियुक्त किया है।

उत्प्लुत्य सिंहासनतः क्षितीन्द्रो ननाम भक्त्या रयिदासमीड्यम्।
अपूपुजत् षोडशभिः प्रकारैर्गुणा हि पूजां समुपाहरन्ति ॥78॥

काशीराज सिंहासन पर से कूदकर भक्ति से रयिदासजी को प्रणाम किये और उनकी सोलहों प्रकारों से पूजा की। क्योंकि गुण ही व्यक्ति को पूजा का उपहार देते हैं।

श्रीविश्वनाथस्तमनाथनाथो गङ्गाजलैः संस्नपयाम्बभूव।
तथाऽन्नपूर्णा गुणतश्च पूर्णा तं भोजयामास सुशष्कुलीश्च ॥79॥

अनाथों के नाथ विश्वनाथ जी ने भी रयिदास को गङ्गाजल से स्नान कराया और गुणों से पूर्ण अन्नपूर्णा जी ने भी रयिदास को पूड़ियाँ खिलायीं।

तं भैरवो भैरवयातनातो मुक्तं विधायाऽथ ववन्द आर्यः।
निर्विघ्नवृत्तं भजनैकवित्तं चकार तुष्टो ननु ढुण्ढिराजः॥80॥

काल भैरवजी ने भी रयिदासजी को भैरव यातना से मुक्त कर दिया और उनकी वन्दना की। दुण्डिराज गणपतिजी ने भी सन्तुष्ट होकर रयिदास जी को प्रत्येक कार्य में विघ्नरहित और भजन धन से सम्पन्न कर दिया।

स काशिराजः किल गाण्डकेयसेवाऽधिकारं रयिदासनाम्ने।
ददौ सभायां वचसाऽधिघोष्य व्रीडान्विता विप्रगणा बभूवुः॥81॥

अनन्तर अपनी राजसभा में काशीराज ने वाणी से घोषणा करके रयिदासजी को शालिग्राम की सेवा का अधिकार दे दिया और सभी ब्राह्मण बहुत लज्जित हुए।

वृत्तं विदित्वा रयिदाससाधोश्चित्तौडराजस्य च धर्मपत्नी।
जग्राह दीक्षां च ततोऽथ झाली मीराऽपि दीक्षां च ततोऽभ्यगच्छत्॥82॥

इस प्रकार रयिदासजी की ख्याति सुनकर चित्तौड़ की महारानी झाली ने उनकी दीक्षा ली और मीराजी ने भी उनसे दीक्षा ली थी।

झाली च चित्तौडमुपानयत् तं कृते विरोधेऽपि महीसुराग्र्यैः।
स दर्शयामास विदार्य चर्म यज्ञोपवीतं कनकस्य देहे॥83॥

इस प्रकार झाली महारानी ने रयिदास जी को चित्तौड़ बुलाया और ब्राह्मणों के विरोध करने पर उन्होंने अपने चमड़े को चीर कर अपने शरीर में सोने का यज्ञोपवीत दिखा दिया।

स राजसिंहासन एव तिष्ठन् प्रदर्शयामास च भूसुरत्वम्।
द्वयोर्द्वयोर्ब्राह्मणयोश्च मध्ये सर्वः समाजस्तमथो ददर्श॥84॥

राजसिंहासन पर विराजमान हो करके रयिदास जी ने अपने ब्राह्मणत्व को दिखा दिया और प्रत्येक दो-दो ब्राह्मणों के बीच में सबने रयिदास जी को देखा।

विस्मृत्य वर्णाश्रमसुव्यवस्थां शिष्या बभूवुर्ननु भूमिपालाः।
गुणा हि पूजाधिकृतिं व्रजन्ति न वा वयो लिङ्गमथापि जातिः॥85॥

उस समय वर्णाश्रम की व्यवस्था छोड़कर सभी राजा रयिदासजी के शिष्य बन गये। वस्तुतः गुण ही पूजा का अधिकार प्राप्त कर पाते हैं वहाँ अवस्था, लिङ्ग और जाति का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

यद्भारती भारतवर्षमध्ये सञ्जीवनी पारमहंसकानाम्।
वेदानुसारं स्मृतिसम्मतञ्च प्रोवाच यो वैष्णवधर्ममेव॥86॥

जिसकी वाणी आज भी भारतवर्ष में परमहंसों की जीवनी बनी हुई है और जिन्होंने वेद के अनुसार स्मृति सम्मत वैष्णव धर्म का उपदेश किया।

यो रामचन्द्रं समुपास्य नित्यं तद्वक्त्रपद्मं ह्यसकृद् ददर्श।
यो रामपादाम्बुजचञ्चरीकः समुद्बभौ मानसपुण्डरीकः॥87॥

जिन्होंने श्रीरामचन्द्र जी की नित्योपासना करके उनके मुखारविन्द को बार-बार निहारा और जो रामजी के चरण कमल के भ्रमर बने रहे और जिनका मन कमल की भाँति निरन्तर विकसित रहा।

जीवंश्च यो भागवतप्रधानो भुक्तिं च मुक्तिञ्च तथैव भक्तिम्।
सम्प्राप नूनं रघुवंशकेतोर्धन्यो बुधोऽसौ रयिदास आर्यः॥88॥

जिन्होंने भगवान् की सेवा करके अपनी जीवित दशा में ही भगवान् राम से भुक्ति और मुक्ति तथा भक्ति तीनों को प्राप्त कर लिया ऐसे विद्वान् रयिदास धन्य हैं।

यश्चर्मकारस्य कुले प्रसूतो रामं सिषेवे न कदापि चर्म।
जगद्गुरोः स्वामिवरस्य रामानन्दस्य यो द्वादशको हि शिष्यः॥89॥

जिन्होंने सामान्य चर्मकार के कुल में जन्म लेकर रामजी की ही सेवा की, चमड़े की सेवा नहीं और जो जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के बारहवें शिष्य बने।

पतितपावनरामयशोऽमृतं परिपपौ किल योऽथ दिवानिशम्।
स रघुनाथपदाम्बुजषट्पदो विजयते रयिदास इहाऽन्वहम्॥90॥

जो पतितपावन रघुनाथ श्रीरामचन्द्रजी के यशोऽमृत का दिन-रात पान करते रहे, ऐसे रयिदास जी निरन्तर विजयी हो रहे हैं।

रघुवरो यदुपाङ्कमुपागमद्-धृदि शुशोच च यं हि जगद्गुरुः।
तमनिशं हि हरिसवेकसम्मतं स्वहृदये रयिदासमहं श्रये॥91॥

जिनके गोद में स्वयं रघुनाथ जी आ गये और जिनकी दीनदशा को देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी भी चिन्तित हो गये, ऐसे जिन के जीवन में कभी अज्ञान की रात्रि नहीं आयी, ऐसे भगवान् के सेवकों में सम्मत रयिदासजी को मैं हृदय में आश्रयण करता हूँ।

स एकदा चर्ममयीरुपानहो मुदा प्रकुर्वन् रघुनाथसेविनाम्।
ददर्श कञ्चिद् वणिजं महाधनं पुरीं व्रजन्तं जगदीशसेविताम् ॥92॥

एक बार श्रीरामभक्त वैष्णवों के लिए चमड़े से पनही बनाते हुए रयिदासजी ने एक धनी वणिक् को जगन्नाथपुरी जाते हुए देखा।

स तं जगन्नाथपुरीसुपान्थकं समीपमाहूय विनीतवाचया।
स्तुवन् बभाषे रयिदास आदरान्मुहुः प्रशंसन् धनमद्यमोहितम् ॥93॥

धन के मद से मोहित जगन्नाथपुरी के उस सुन्दर पथिक को अपने समीप बुलाकर विनीत वाणी में उसकी स्तुति तथा प्रशंसा करते हुए रयिदास जी आदरपूर्वक बोले।

भ्रातर्जगन्नाथपुरीं प्रयासि धन्योऽसि मान्योऽसि महावदान्यः।
यत्पादपङ्केरुहदर्शनाय त्रैविष्टपा वै स्पृहयन्त उच्चैः ॥94॥

हे भाई! तुम आज जगन्नाथपुरी जा रहे हो, तुम धन्य हो, मान्य हो, बहुत बड़े दानशील हो। जिनके चरणकमल के दर्शन के लिए देवता भी निरन्तर स्पृहयालु बने रहते हैं।

यो वै सुभद्राबलदेवयोश्च मध्ये विराजन् विभया विभाति।
श्वेताऽरुणाभ्यां च पयोरुहाभ्यां समावृतं नीलमिहोत्पलं वा ॥95॥

जो भगवान् जगन्नाथ सुभद्रा और बलराम जी के मध्य उसी प्रकार सुशोभित होते हैं, जैसे श्वेत और लाल कमल से घिरा हुआ नीलाकमल।

यः कोटिवृन्दापतिक्लृप्तवेद्यां विराजमानो धृतदारुदेहः।
कारुण्यरूपः सुरसङ्घभूपः स्वदर्शनध्वंसितभीतियूपः ॥96॥

जो भगवान् जगन्नाथ अपने दर्शनों से भय के स्तम्भ को नष्ट कर देते हैं, जो सम्पूर्ण देवताओं के राजा हैं, जिनका स्वरूप करुणामय है तथा जिनका विग्रह दारु अर्थात् नीम की लकड़ी का है और जो एक करोड़ शालिग्रामों पर निर्मित वेदिका पर विराज रहे हैं।

यस्य प्रसादो हृतदाससादः स्वादेन संल्लज्जयते सुधां च।
वर्णाश्रमाणामभिमानशून्याः सम्भुञ्जते यं च जना भुविष्ठाः ॥97॥

जिन जगन्नाथ जी का महाप्रसाद भक्तों की पीड़ा दूर करके अपने स्वाद से अमृत को भी लज्जित करता रहता है। जिस महाप्रसाद को वर्णाश्रम का अभिमान छोड़कर सभी लोग पृथ्वी पर बैठ कर पाते हैं।

आषाढशुक्लस्य शुभा द्वितीया यस्य स्मृता स्यन्दनभव्ययात्रा।
यं वामनोद्वर्ष्मभृतं रथस्थं दृष्ट्वा हि जीवा न पुनर्भवाय॥98॥

आषाढ़ शुक्लपक्ष की द्वितीया को जिनकी रथ यात्रा होती है और रथ पर विराजमान जिन जगन्नाथ को निहार कर जीव फिर भवसागर में नहीं आते।

मातृस्वसारं गुण्डीचां द्रष्टुं च यः समां समाम्।
रथयात्रां प्रकुरुते कौशल्यामिव राघवः॥99॥

जो जगन्नाथ जी अपनी मौसी गुण्डीचाजी के दर्शन करने के लिए प्रतिवर्ष उसी प्रकार रथयात्रा करते हैं जैसे भगवान् राम कौशल्या जी के दर्शनों के लिए जाया करते हैं।

इन्द्रद्युम्नस्य राज्ञो वै पत्नी वात्सल्यभावतः।
पुत्रीयति च यं नित्यं देवकीव गदाभृतम्॥100॥

इन्द्रद्युम्न महाराज की पत्नी गुण्डीचा वात्सल्य भाव से जिन जगन्नाथ जी को उसी प्रकार पुत्ररूप में चाहती हैं जैसे देवकी जी भगवान् कृष्ण को पुत्रभाव में देखती हैं।

तस्मै जगन्नाथमुरारये मे समर्पयेथास्त्वमथैकमुद्राम्।
मयाऽर्पितां तच्चरणाऽर्चकेन गजेन कञ्जं हरये यथैव॥101॥

उन भगवान् जगन्नाथ जी को उनके चरणसेवक मेरे द्वारा अर्पित एक मुद्रा उसी प्रकार समर्पित कर देना जैसे गजेन्द्र के द्वारा भगवान् को कमल अर्पित किया गया था।

निवेद्य चेत्थं पशुचर्मकार्द्रमुद्रामतन्द्रो वणिजे ददौ सः।
उपेक्षया सोऽपि च वामहस्तेनादाय देवेशपुरीं जगाम॥102॥

इस प्रकार कहकर पशु के चर्म से आर्द्र एक मुद्रा तन्द्रारहित होकर रयिदासजी ने वणिक् को दे दिया और उसने भी उपेक्षा से रयिदास जी की मुद्रा को बायें हाथ से लिया और जगन्नाथपुरी आया।

दृष्ट्वा जगन्नाथमनन्तवीर्यं श्रीमत्सुभद्राबलदेवयुक्तम्।
समर्प्य तस्मै स्वधनं मदान्धो विधाय पूजां हृदये तुतोष॥103॥

वह मदान्ध वणिक् सुभद्रा-बलराम सहित जगन्नाथ जी के दर्शन करके अपना बहुत सा धन भगवान् को समर्पित करके स्वयं की गयी पूजा से स्वयं ही सन्तुष्ट हुआ।

ददौ स पश्चाद् रयिदासमुद्रामुपेक्षया सव्यकरे गृहीताम्।
तां श्रीजगन्नाथप्रभुः स्वपाणिपद्मेन जग्राह जनैकवश्यः॥104॥

इसके पश्चात् उस वणिक् ने रयिदासजी की वह मुद्रा जगन्नाथजी को भेंट की जिसको वह उपेक्षा से बायें हाथ में ले आया था। उसको जगन्नाथ महाप्रभु ने अपना करकमल फैलाकर ग्रहण कर लिया क्योंकि भगवान् तो भक्त के वश में रहते हैं।

दृष्ट्वा जगन्नाथकृपामनल्पां स चर्मकारे रयिदासनाम्नि।
बभूव साश्चर्यहृदश्रुनेत्रो भक्त्येकगम्यो भगवान् हि नित्यम्॥105॥

इस प्रकार चर्मकार का शरीर धारण किये हुए रयिदास पर जगन्नाथ की अपार कृपा देखकर उस वणिक् के हृदय में बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने यह जान लिया कि भगवान् एक मात्र भक्ति से ही प्राप्त हो सकते हैं।

पुनः परावर्त्य वणिङ्महात्मा ययौ जगन्नाथपुरीत आर्तः।
अन्वेषमाणो रयिदाससद्म पपात तत्पादपयोजयुग्मे॥106॥

फिर वह वणिक् जगन्नाथपुरी से लौटकर आर्त होकर ढूँढता-ढूँढता रयिदासजी के घर आया और उनके चरणकमल पर गिर पड़ा।

बभूव भक्त्या रयिदासशिष्यो वणिङ्महाभागवतप्रसङ्गः।
एवंविधैः स्वैश्चरितैरनेकै रामं सरामं रमयाम्बभूव॥107॥

वह वणिक् महाभागवत रयिदासजी के सम्पर्क से शीघ्र ही रयिदासजी का शिष्य हो गया। इस प्रकार अपने अनेक चरित्रों से रयिदास जी ने सीताजी के सहित भगवान् राम को रमा दिया।

संसेवमानो गुरुपादपद्मं काश्यां वसन् वासवतुल्यतेजाः।
वैवस्वताऽऽत्मा रयिदासभक्तो रामाङ्घ्रिपद्मभ्रमरो बभूव॥108॥

इस प्रकार इन्द्र के समान तेज से सम्पन्न यमराज के अवतार रयिदास जी काशी में निवास करते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरण कमल की सेवा करते हुए सद्गुरु देव की ही उपस्थिति में भगवान् श्रीराम के चरण कमल के भ्रमर बन गये अर्थात् भगवान् श्रीराम के चरण कमल में सशरीर लीन हो गये।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गस्त्रयोविंश इह यतिपतिगुणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इस प्रकार जहाँ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य सुकवि गायक हैं, ऐसे रामानन्दाचार्यचरित महाकाव्य में यह तेइसवाँ सर्ग जो रामानन्दाचार्य के गुणगण गाया गया, भगवान् सीतापति श्रीराम के सुख के लिए और सुहृद् वैष्णवों के भी आनन्द के लिए हो।

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये त्रयोविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ चतुर्विंशः सर्गः॥

लोकायती कश्चन वावदूको बृहस्पतीयन् नृबृहस्पतिं तम्।
जगद्गुरुं स्वामिनमेत्य रामानन्दं विषाक्तं वच उज्जगार॥01॥

कोई चार्वाकमत वाला अपने को साक्षात् बृहस्पति मानने वाला निरर्थक अलाप करने वाला चार्वाक मत का प्रवर्तक बृहस्पति मानवों के बृहस्पति जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के पास आकर विषाक्त वचन उगलने लगा।

स वेदवेदान्तविरुद्धपक्षी पक्षी जरन् जर्जरपक्षतिर्वा।
रोषादुपातिष्ठिपदुग्रपक्षं स्वापातकध्वंसितपुण्यपक्षम्॥02॥

जिसका पक्ष वेद और वेदान्त से विरुद्ध था, जिसके पंखों का मूलभाग जर्जर हो चुका था, ऐसे वृद्ध पक्षी के समान चार्वाक की परिस्थिति थी, उसने अपना वह उग्र पक्ष जगद्गुरु जी के समक्ष रखा, जिससे अपने उसके पापों के कारण पुण्यों का पक्ष नष्ट हो गया था।

कथं युवन् यावितभूविलासो वसन् कुटीरे कलितत्रिदण्डः।
विहाय कामान् नयनाभिरामान् व्रतं समातिष्ठसि चासिधारम्॥03॥

हे युवक तुम अपने मन से पृथ्वी के भोग विलास को दूर करके, हाथ में त्रिदण्ड लेकर, कुटीर में रहते हुए खड्गधारा व्रत क्यों पालन कर रहे हो?

विहाय पाणिग्रहणं स्पृहार्हं योषामुखाम्भोरुहतो विमुक्तः।
सन्यासिधर्मं परिसेवमानो गताभिमानो ननु चेहसे किम्॥04॥

अरे संन्यासिन लोगों के लिये स्पृहणीय पाणिग्रहण अर्थात् विवाह का त्याग करके और नारी के मुखकमल से दूर रहकर, संन्यासी धर्म का सेवन करते हुए, अभिमान से शून्य होकर तुम चाहते क्या हो।

किमर्थकामौ परितो विहाय महामनस्विन् तपसा तपस्विन्।
रम्यां तनुं खेदयसे निरर्थौ धर्मे च मोक्षे च कृताभिलाषः ॥05॥

अरे हे श्रेष्ठ मनस्वी! हे तपस्वी! अर्थ और काम को छोड़कर इस अपने शरीर को तप से क्यों दुःखी कर रहे हो और हमारे मत में जो पुरुषार्थ के कोटि में नहीं आते ऐसे धर्म और मोक्ष की क्यों इच्छा कर रहे हो?

प्रत्यक्षमेवाथ परं प्रमाणं तद्वै निरादृत्य महानुभाव।
कथं ह्यमूलं न्वनुमानमेव तथैव शब्दं मनुषे प्रमाणम् ॥06॥

हे महानुभाव प्रत्यक्ष जैसे परम प्रमाण का निरादर करके तुम निराधार अनुमान और शब्द को क्यों प्रमाण की कोटि में मानते हो?

श्रद्धत्स एतेषु विजल्पितेषु त्रिष्वेषु तन्मूलपुराणकेषु।
सहेतिहासेषु सुधीधनस्त्वं ये जीविकार्थं विहिता मुनीन्द्रैः ॥07॥

अरे तुम परम बुद्धिमान् होकर भी निरर्थक रूप में कहे हुए इतिहास से युक्त तीनों वेदों में और पुराणों में श्रद्धा कर रहे हो जिनको मुनियों ने अपनी जीविका के लिये लिखा था।

किमीश्वरं द्रष्टुमना मनस्विन् गेहं विहायाथ तपस्यसि त्वम्।
राजानमीशं नितरामवेहि द्रोहं च राज्ञो झटिति त्यजाद्धा ॥08॥

अरे ईश्वर की आराधना करने के लिए घर छोड़कर तुम क्यों तपस्या कर रहे हो, राजा को ही ईश्वर मानो और शीघ्र ही यवन शासक का विरोध छोड़ दो।

किं त्वं त्रिदण्डं धरसि प्रसह्य प्रध्वस्तसच्चेतनकं गुणाढ्यः।
धत्से स्वदेहे दिवसेशसङ्ख्यान् किमूर्ध्वपुण्ड्रान्नु मानशून्यान् ॥09॥

अरे तुम गुणाढ्य होकर भी चेतना शून्य लकड़ी के तीन दण्डों को क्यों धारण करते हो, अहो जिनमें कोई प्रमाण नहीं है ऐसे बारह ऊर्ध्वपुण्ड्रों को अपनी शरीर में क्या लेपते हो?

प्रचारयस्येव सदा जनेषु श्राद्धं पितॄणां किमु तर्कशून्यम्।
मृताः किमायान्ति पितृप्रधानाः वियोगविग्नाः स्वकुटुम्बपार्श्वे ॥10॥

अरे तुम लोगों में तर्कशून्य पितरों के श्राद्ध का क्यों प्रचार करते हो? क्या मरे हुये पिता आदि पूर्वज वियोग से व्याकुल होकर अपने कुटुम्ब के पास आते हैं।

अहं कृशोऽहं किल पीनगात्रो ह्यहं धनी निर्धन एव चाऽहम्।
एवंविधेभ्यो व्यवहारकेभ्यो देहोऽस्ति चाऽऽत्मा न परः कथञ्चित्॥11॥

मैं दुर्बल हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं धनी हूँ, मैं निर्धन हूँ इस प्रकार के व्यवहारों को देखकर यही निश्चित होता है कि शरीर ही आत्मा है, शरीर से अतिरिक्त कोई भी आत्मा पदार्थ है ही नहीं।

अलं तपोभिश्च मखैरलं भोः अलं च वेदाध्ययनैर्व्रतैश्च।
यावच्छरीरं पिब खाद खेल भस्मीभवत् किं वपुरेति भूयः॥12॥

अरे भाई तपस्या करना यज्ञ करना, वेद पढ़ना या सब कुछ व्यर्थ है, जब तक शरीर है, पियो, खाओ, खेलो। क्या जला हुआ शरीर फिर कभी आ सकता है?

निशम्य चेत्थं कटुपूर्वपक्षं चार्वाकपापस्य मलीमशस्य।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो विहस्योत्तरमुत्ततार॥13॥

इस प्रकार पापी चार्वाक का कटु पूर्वपक्ष सुनकर जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने हँसकर उत्तर देना प्रारम्भ किया।

आबालमेवेहि खरारिभक्तिं शुचिः श्रुतिः श्रावयति प्रकामम्।
पूर्वे वयस्येव विहाय गेहं वीरव्रतं सादरमाबिभर्मि॥14॥

भगवती श्रुति बाल्यावस्था से ही भगवान् श्रीराम की पूर्णभक्ति का विधान करती है, इसलिये मैं बाल्यकाल में ही घर छोड़कर विरक्त संन्यासी बनकर आदरपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूँ।

वैवाहिकं लोकसुखं विहाय स्वबुद्धितस्तत्क्षणिकं विभाव्य।
भूत्वा यतिर्हस्तलसत्त्रिदण्डः सीतापतेः पादयुगं दिदृक्षे॥15॥

मैं अपनी बुद्धि से स्त्री सुख को क्षणिक जानकर, वैवाहिक लोक सुख छोड़कर, संन्यासी होकर, हाथ में त्रिदण्ड लेकर भगवान् श्री सीतापति रामचन्द्र जी के श्री श्री चरणकमल के दर्शन करना चाह रहा हूँ।

त्रीण्येव दण्डानि समामनन्ति वाचं च कायं शुचिमानसञ्च।
एतानि यस्येह नियन्त्रितानि स वै त्रिदण्डी प्रथितस्त्रिलोक्याम्॥16॥

शास्त्रों ने वाणी, मन और शरीर ये तीन दण्ड ही कहे हैं। ये तीनों जिसके नियन्त्रित रहते हैं, उसी को त्रिलोकी में त्रिदण्डी कहा जाता है।

श्रुतीः पुराणानि तथा स्मृतीश्च वदन्ति दण्डानि महर्षिवर्याः।
इमानि यस्येह हृदि स्थितानि स वै त्रिदण्डी जगति प्रसिद्धः ॥17॥

श्रुति, पुराण और स्मृतियों को महर्षिजन दण्ड कहते हैं, ये तीनों जिसके हृदय में स्थित रहते हैं, वही त्रिदण्डी होकर संसार में प्रसिद्ध होता है।

वाचं मनः कायमथो नियम्य श्रुतीः पुराणानि मनन् स्मृतीश्च।
अहं त्रिदण्डी निगमैर्नियुक्तो जगद्गुरुस्त्रिष्वथ भाष्यकर्ता ॥18॥

मैं मन, वाणी, शरीर पर नियन्त्रण करके श्रुति, पुराणों, स्मृतियों का मनन करता हुआ, ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों पर विशिष्टाद्वैतपरक भाष्य करके त्रिदण्डी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य हुआ।

अपौरुषेयी जगति प्रसिद्धा वेदत्रयी ध्वस्तसमस्तदोषा।
तन्मूलकं सस्मृतिकेतिहासं सर्वं पुराणं निरवद्यमेव ॥19॥

तीनों वेद अपौरूषेय हैं, अर्थात् किसी पुरुष के बनाये हुए नहीं हैं, उन्हीं को आधार मानकर अट्ठारह स्मृतियों रामायण महाभारत के जो इतिहास तथा अट्ठारह पुराण निर्दोष होकर विराजमान हैं। अतः इन पर श्रद्धा करना हम आस्तिकों का धर्म है।

न यस्य जन्माथ न यस्य नाशः स ईश्वरः क्लेशविवर्जितात्मा।
स्वरूपतो वा समवायतो वा यस्मिन् सदा ज्ञानमथो चकास्ति ॥20॥

जिनका कभी जन्म नहीं होता और जिनका कभी नाश भी नहीं होता वही अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश से रहित परब्रह्म परमात्मा ईश्वर है। उन्हीं में वेदान्त की दृष्टि में स्वरूप सम्बन्ध से और न्याय की दृष्टि में समवाय सम्बन्ध से ज्ञान निरन्तर विराजमान रहता है।

स एव नित्यं जगतोऽस्य सिद्धो हेतुर्भवस्य स्थितिसंहृतेश्च।
तटस्थमेतत् किल लक्षणं वै वेदान्तकृद् व्यास उवाच देवः ॥21॥

वही ईश्वर इस संसार के जन्म पालन और संहार के कारण हैं, यही वेदान्तदर्शन के रचयिता वेदव्यास जी ने परमात्मा का तटस्थ लक्षण किया है।

कार्यं न किञ्चित् किल कर्तृहायं दृष्टं श्रुतं वा जगतीतलेऽस्मिन्।
हित्वा कुलालं नु घटः कथं स्याज्जगत् कथं स्याच्च तथेशहायम्॥22॥

कोई भी कार्य कर्ता को छोड़कर संसार में न देखा गया है, न सुना गया है, जैसे कुम्हार के बिना घड़ा नहीं बन सकता, उसी प्रकार ईश्वर के बिना इस जगत् का निर्माण भी नहीं हो सकता।

जगत् समस्तं हि विचित्ररूपमहो जगन्नाथमृते कथं स्यात्।
तदप्युपादानमथो निमित्तं हेतुर्ह्यभिन्नत्वदृशा विभुः स्यात्॥23॥

अरे अनेक रूपों वाला यह जगत् जगन्नाथ के बिना कैसे संभव है, इस जगत् के भगवान् ही अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं।

ब्रह्माणमीशं च रमानिवासं समं जगत् स्थावरजङ्गमञ्च।
सीतापती राम इहेष्ट ईशो निगद्यतेऽसौ परमेश्वरोऽतः॥24॥

ब्रह्मा, शिव, भगवान् विष्णु अचेतनात्मक समस्त जगत् सब पर सीतापति ईश्वर भगवान् राम ही शासन करते हैं, इसीलिये उनको परमेश्वर कहा जाता है।

यदीश्वरो नैव जगत्यतः स्यान्न स्यात् तदा कर्मफलव्यवस्था।
समस्तनृणां सुखदुःखभाजां तदाऽव्यवस्था महतीह तिष्ठेत्॥25॥

यदि जगत् में ईश्वर न होते तो जीवों के कर्मफलविभाग की व्यवस्था न हो पाती और बहुत बड़ी अव्यवस्था हो जाती।

यदीश्वरो नैव भवेन्नियन्ता तदा भवेच्चौर इवैष लोकः।
भुञ्जीथ पापी महतः शुभानि साधुश्च भुञ्जीत खलस्य पापम्॥26॥

यदि ईश्वर कर्म फल के नियन्ता न होते तब तो यह लोक चोर की भाँति हो जाता। पापी महान् व्यक्ति के सुख का भोग करता और साधु व्यक्ति खल के पाप का भोग करता।

कृत्वाऽपि पापानि खलः सुखी स्याद् दुःखी भवेत् साधुकृती प्रकामम्।
यदीश्वरो नैव भवेत् तदाऽसौ वैषम्यभावेन म्रियेत लोकः॥27॥

यदि ईश्वर न होते तब तो खल भी पाप करके सुखी हो जाता और सज्जन भी सुन्दर कर्म करके दुखी रहता। इस प्रकार वैषम्यभाव के कारण लोग मर जाते हैं।

राजानमीशं यदि मन्यसे त्वं तदाऽनवस्था महती स्पृशेत् त्वाम्।
राज्ञां बहुत्वात् परमेश्वरेऽपि स्यादेव नूनं प्रसभं बहुत्वम्॥28॥

यदि तुम राजा को ईश्वर मानते हो तो तुमको बहुत सी अनवस्था भोगनी पड़ेगी, क्योंकि राजा तो बहुत होते हैं और यदि वही ईश्वर हो जायेंगे तब तो ईश्वर में बहुत्व आ जायेगा, और बहुत से ईश्वर हो जायेंगे, जबकि ईश्वर तो एक होना चाहिये।

विहाय रामं नयनाभिरामं न कोऽपि राजा जगदेकनाथः।
कश्चिद् बलीयानबलश्च कश्चिदितीश्वरोऽपि प्रभवेद् विसङ्गः॥29॥

नेत्राभिराम भगवान् राम को छोड़कर कोई भी राजा जगत् एकमात्र अधिपति नहीं हो सका, राजाओं में कोई बलवान् होता है, कोई निर्बल होता है, यही विसङ्गति ईश्वर में भी आ जायेगी।

मृते महीशेऽवनिरप्यनीशा जाते च राजन्य उताऽव्यवस्था।
जनिर्मृतिश्चापि जनाधिपस्य तथैव राजन्यपि ते पतेताम्॥30॥

यदि राजा को ईश्वर मान लिया जायेगा तो राजा के मरने पर पृथ्वी ईश्वर से हीन हो जायेगी। जो न हमको अनुकूल है न तुम्हें। इसी प्रकार राजा के जन्म लेने पर पृथिवी के लिए एक बहुत बड़ी अव्यवस्था खड़ी हो जायेगी, राजा का जन्म और मरण होता है, किन्तु ईश्वर का जन्म मरण नहीं होता राजा के ईश्वर मानने पर जन्म और मरण ये दोनों राजा पर ही टूट पड़ेंगे।

अमीषु दण्डेषु सुचेतनाऽस्ति श्रीरामसीताशुचिलक्ष्मणानाम्।
वंशेऽस्ति रामः फणिपः पलाशे बिल्वे च सीता जगदेकमाता॥31॥

इन तीनों दण्डों में श्रीराम, सीता और लक्ष्मण जी की चेतनायें हैं, वंश दण्ड में भगवान् राम विराजते हैं, पलाश दण्ड में लक्ष्मण जी का निवास है, और विल्व दण्ड में जगत् की एकमात्र सीता जी विराजती हैं।

एभिस्त्रिभिर्दण्डवरैः क्रमेण विरोधिनस्त्रीन् परिदण्डयामि।
धर्मस्य राष्ट्रस्य च हिन्दुजातेः प्रसह्य जित्वा पशुवत् प्रबध्नन्॥32॥

इन तीन दण्डों से मैं युद्ध में बलपूर्वक जीतकर पशुओं की भाँति बाँधता हुआ मैं तीन

विरोधियों को दण्ड देता हूँ। धर्म विरोधी, राष्ट्रविरोधी और हिन्दू जाति के विरोधियों को इसी त्रिदण्ड से निगृहीत करता हूँ।

दशेन्द्रियाण्येव मनश्च बुद्धिं कामस्य वासान् प्रवदन्ति सन्तः।
तेभ्यस्तु तं वारयितुं खलेशं विधीयते पुण्ड्रमथार्कसङ्ख्यम्॥33॥

सन्त लोग श्रवण, नेत्र, त्वक्, रसना, घ्राण, हस्त, चरण, पायु, उपस्थ, वाक्, मन, बुद्धि इन बारहों को काम का निवास स्थान कहते हैं, इनसे काम को भगाने के लिए मैं द्वादश ऊर्ध्वपुड्र किया करता हूँ।

भालोदरे वक्षसि कण्ठकूबरे दक्षे च कुक्षौ ननु बाहुमूलके।
पार्श्वद्वये मञ्जुलकन्धराद्वये पृष्ठे च कट्यां तिलकं विरच्यते॥34॥

मस्तक पर, उदर पर, वक्षस्थल पर, कण्ठकूबर पर, दक्षिण कुक्षी और दक्षिण बाहु पर, द्वोनो पार्श्वों में, दोनों कन्धराओं पर, पीठ पर और कटि प्रदेश पर क्रमशः बारहों तिलक किये जाते हैं।

तिस्रो हि रेखा ऋजवः प्रकल्पिताः प्रत्यूर्ध्वपुण्ड्रं श्रुतिमान् ततः किल।
श्वेते उभे सङ्कलिते हि मृत्स्नया मध्येऽरुणा श्रीः सुषमां प्रटीकते॥35॥

इनमें से प्रत्येक ऊर्ध्वपुण्ड्र में वैदिक प्रमाण के आधार पर तीन सीधी रेखायें बनायी जाती हैं, जिनमें दाहिनी और बायीं ओर की रेखायें श्वेत रामरज से बनी हुई होती हैं और मध्य में लाल वर्ण वाली श्री दिव्य शोभा को प्राप्त करती है।

दक्षा च रेखा हरिपादरूपा वामा च सौमित्रिपदस्वरूपा।
मध्या च सीता पदपद्मदेहा रेखात्रयी मङ्गलमञ्जुगेहा॥36॥

ऊर्ध्व पुण्ड्र में दक्षिण रेखा भगवान् राम का चरणकमल है, और वामरेखा श्री लक्ष्मण के चरणकमल का चिन्ह है, मध्य रेखा में सीता जी के चरणकमल विराजते हैं, ऊर्ध्वपुण्ड्र की इन्हीं तीनों रेखाओं को मञ्जुल मङ्गल का मन्दिर समझना चाहिये।

श्राद्धं सदा भावप्रधानमाहुर्भावो भवस्येह सदैव हेतुः।
नो चेज्जना गालिवचो निशम्य विग्ना भवेयुर्धृतचण्डचण्डाः॥37॥

श्राद्ध भावप्रधान होता है, और भाव ही इस भव का हेतु कहा गया है, नहीं तो माँ बहन की गाली सुनकर लोगों को भयङ्कर क्रोध क्यों आ जाता है?

यच्छ्रद्धया पिण्डजलं पितृभ्यः सन्दीयते तत् पितरो भजन्ते।
यत्र क्व वा योनिषु वर्तमानास्तत्तत् प्रभोज्यानुगुणं गुणज्ञाः ॥38॥

श्रद्धालुओं द्वारा जो श्रद्धा से पितरों को पिण्ड और जल दिया जाता है, वह जिस किसी योनि में रहकर भी अपने-अपने भोजन के अनुरूप ग्रहण कर ही लेते हैं, मान लो किसी का पिता सिंह योनि में चला गया है, तो उसके पुत्र का दिया हुआ श्राद्ध पिता को सिंह भोजन जैसा स्वाद अनुभव करा देता है।

देशान्तरं कोऽपि गतो यथा वै तन्मुद्रिकातः प्रतियच्छति स्वाम्।
श्राद्धीयमन्नं पितरः स्वलोके प्रभुञ्जते स्वात्प्रतिदाय तुष्टाः ॥39॥

जैसे विदेश गया हुआ कोई व्यक्ति अपने मुद्रा को वहाँ के मुद्रा में बदलकर उपयोग कर लेता है, उसी प्रकार श्राद्धीय अन्न को पितर लोग अपने-अपने लोक के पदार्थ से बदलकर सन्तुष्ट होकर उसका उपभोग करते हैं।

प्रत्यक्षतोऽप्यद्यतने च काले क्षुत्तृट्परीता अनुभूयमानाः।
बहुत्र लोके पितरः पिबन्ति जलं भृशार्ताः परियाचमानाः ॥40॥

प्रत्यक्ष रूप से इस समय भी पितर लोग भूख प्यास से व्याकुल अनुभव में आते हैं, लोक में बहुत से स्थानों में लोगों में आविष्ट होकर माँग माँग कर बहुत जल पीते हुए पितर देखे जाते हैं।

यदङ्गनालिङ्गनमेवसौख्यं ब्रूते भवान् मन्मथकिङ्करः सन्।
तदप्यशुद्धं क्षणभङ्गुरं च प्रत्यक्षमप्यस्ति न तत्प्रमाणम् ॥41॥

अरे काम के किङ्कर चार्वाक! जो तुम अङ्गनालिङ्गन को ही सुख कहते हो, वह भी अशुद्ध और क्षणिक है, क्योंकि वहाँ प्रत्यक्ष भी प्रमाण नहीं है।

अज्ञातयोषापरिरंहणोऽपि बालः कथं खेलति मोदमानः।
किं वर्णिनो मैथुनतो विरक्ता आनन्दसिन्धुं परिगाहमानाः ॥42॥

भला ये बताओ कि बालक को तो अङ्गनालिङ्गन का ज्ञान भी नहीं रहता फिर भी वह प्रसन्न होकर क्यों खेलता रहता है, ब्रह्मचारी लोग मिथुन धर्म से विरक्त होकर कैसे आनन्द से सिन्धु में डुबकी लगाते रहते हैं।

वृद्धा अहो दूरितकामकेलयः कथं प्रसीदन्ति सुखं व्रजन्ति च।
त्वल्लक्षणेन्दुर्ननु भक्षितः सखे अव्याप्तिनामामरशत्रुराहुणा ॥43॥

यदि अङ्गनालिङ्गन ही सुख है तो फिर काम क्रीड़ा से दूर रहकर भी बहुतेरे वृद्धजन क्यों प्रसन्न और सुखी रहते हैं। मित्र सुख का यह लक्षण रूप चन्द्रमा अव्याप्त रूप राहु से ग्रस्त हो गया है।

यद्यर्थकामौ परमौ पुमर्थौ त्वं जल्पसि प्राप्तविमूढभावः।
कथं च ताभ्यां विरता हि सन्तः सुधार्मिकाश्चैव मुमुक्षवश्च ॥44॥

यदि मूर्ख बुद्धि होने के कारण तुम अर्थ और काम को पुरुषार्थ मानते हो तो बहुत से महान् लोग अर्थ और काम से ऊबकर क्यों धार्मिक हो जाते हैं, और क्यों मोक्ष की इच्छा करने लगते हैं?

विमुच्य राज्याभिधबन्धनञ्च परिव्रजन्तो बहवो नृपेन्द्राः।
प्रत्यक्षतश्चैव श्रुताश्च दृष्टास्तथापि न त्वं कुमतिं जहासि ॥45॥

अरे आज भी बहुत से राजा राज्य का बन्धन तोड़कर घर-बार छोड़कर परिव्राजक बनते हुए प्रत्यक्षतः देखे और सुने गये हैं। फिर भी अर्थ और काम को पुरुषार्थ मानने वाली अपनी कुमति को तुम नहीं छोड़ रहे हो।

श्रुताश्च भूपा भरतादयस्ते दृष्टश्च राजा ननु गोपिचन्द्रः।
महामना भर्तृहरिर्व्यलोकि ब्रूषे पुमर्थौ हि तथार्थकामौ ॥46॥

पहले भी भरत आदि राजा सुने गये हैं, जो अर्थ, काम को तिलाञ्जलि देकर मुमुक्षु बन गये और इस समय भी गोपीचन्द्र राजा के दर्शन किये, और तुमने भर्तृहरि की गुफा भी देखी होगी फिर भी अर्थ, काम चिल्ला रहे हो।

यत्कण्टकावेधमिह ब्रवीषि त्वं मूढ बुद्धया नरकं दुरात्मन्।
तन्निःसृतिश्चापि भवेत् सुखं ते पुनस्त्वतिव्याप्तिमियं व्रजेत् त्वाम् ॥47॥

जो तुम कहते हो काँटा चुभना ही नरक है, तो उसके निकालने से आनन्द है, वह भी तो सुख है, फिर तुम्हारे सुख के लक्षण में अतिव्याप्ति हो गई क्योंकि तुम तो अङ्गनालिङ्गन को ही एक सुख मानते थे।

देहात्मवादं यदि मन्यसे त्वमहं कृशादिव्यहारतश्च।
न बुद्धिमन्तो व्यवहारमेनं विचारकाले हि मनन्ति सत्यम्॥48॥

जो तुम मैं दुर्बल हूँ, मैं मोटा हूँ इस प्रकार के व्यवहार की दृष्टि से शरीर को ही आत्मा मानते हो तो यह भी मूर्खता है, क्योंकि बुद्धिमान् लोग विचारकाल में व्यवहार को सत्य नहीं मानते।

आत्मा विशुद्धो नितरां प्रबुद्धः सुनिर्मलः शोकविमोहमुक्तः।
इदं शरीरं नितरामशुद्धं दुर्गन्धिमन्मूत्रपुरीषयुक्तम्॥49॥

तुम देह को ही आत्मा कहते हो जबकि आत्मा शुद्ध प्रबुद्ध शोक मोह से मुक्त होता है और यह शरीर मल-मूत्र से युक्त और दुर्गन्धि पूर्ण होता है।

इदं शरीरं शतसन्धिजर्जरं मलावहं व्यापृतमुग्रपीडया।
विनाशवद् रोगसहस्रभाजनं बलेन शून्यं क्षणभङ्गुरं तथा॥50॥

यह शरीर सैंकड़ों सन्धि से जर्जर है, इसमें अनेक प्रकार के मल हैं और यह उग्र पीड़ा से व्याप्त रहता है, यह नाशवान् है, इसमें हजारों रोग हैं, यह निर्बल है और क्षणभङ्गुर है।

देहात्मवादे महती विडम्बना वैषम्यभावो बहुरूपता तथा।
त्रैलिङ्ग्यमेवासुविनाशशीलता नामुत्र लोकस्य च पूज्यभावना॥51॥

देहात्मवाद मानने पर बहुत बड़ी बिडम्बना यह होगी कि विषमता हो जायेगी, कोई सज्जन, कोई दुष्ट, कोई क्रूर, कोई मृदु, कोई पापी, कोई पुण्यात्मा, कोई दोषी, कोई निर्दोष होगा और इसमें बहुरूपता आ जायेगी, कोई काला, कोई गोरा, कोई छोटा, कोई बड़ा और इसमें त्रिलिङ्गता आ जायेगी क्योंकि शरीर कोई पुरुष, स्त्री, नपुंसक इन तीनों प्रकार का होता है, तब तो आत्मा भी तीनों प्रकार की होने लगेगी और इसमें लोगों की पूज्य भावना भी नहीं होगी।

एकोऽस्तु हन्ता प्रहतो द्वितीयस्त्राताऽपरो रक्ष्य इहापरश्च।
एकोऽस्तु दाता ह्यपरो गृहीता भोक्ताऽपरो भोज्य इहास्तु चान्यः॥52॥

देहात्मवाद मान लेने पर एक मारने वाला होगा, दूसरा मरने वाला, एक रक्षक होगा, दूसरा भक्षक, एक देने वाला, दूसरा लेने वाला, एक भोक्ता होगा, दूसरा भोज्य।

एकोऽस्तु माताऽथ पिता द्वितीयो भ्राताऽपरो वै भगिनी तथाऽन्यः।
एकोऽस्तु कान्तो दयिताऽपरश्च एकोऽस्तु पूज्यो ननु पूजकोऽन्यः ॥53॥

एक जीवात्मा माता दूसरा पिता, एक भाई होगा दूसरा बहन, एक पति होगा दूसरा पत्नी एक पूज्य होगा, दूसरा पूजक।

आत्मा न बालो न युवा न वृद्धो नायं नरो नैव कदाऽपि नारी।
न किन्नरो नैव च वानरोऽयं निशाचरो नो न सुरेश्वरोऽयम् ॥54॥

वस्तुतः आत्मा न तो बालक है, न युवा, न तो यह वृद्ध है और न ही मध्यस्थ, न ही यह नर है, न ही यह नारी, न ही यह किन्नर है, न ही वानर, न ही यह राक्षस है, न ही देवता।

नैवासुरो नैव सुरः कदाचिन्नाऽयं पशुर्नैव खगो नभस्थः।
नैवाम्बरी नैव महीनिवासी पातालवासी न हि जातु चात्मा ॥55॥

यह आत्मा वस्तुतः न असुर है, न ही देवता, न तो यह आत्मा पशु है और न ही आकाशचारी पक्षी, न यह स्वर्ग में रहता, न ही पृथ्वी पर और न ही यह आत्मा पाताल में रहता है।

तिस्रो ह्यवस्थाश्च यथा शरीरे कौमारकं यौवनकं जरा च।
तथाऽयमात्मा निजकर्मयोगाद् देवत्वतिर्यक्त्वनरत्वभाक्च ॥56॥

जिस प्रकार इस शरीर में बाल, युवा, जरा ये तीनों अवस्थायें क्रम से आती रहती हैं, उसी प्रकार यह जीवात्मा भी अपने कर्मयोग से देवत्व, नरत्व और तिर्यक्त्व को प्राप्त होता रहता है।

आत्माऽविनाशी प्रतिदेहवासी साक्षीव सर्वत्र वपुष्ठ एव।
शुभाऽशुभं कर्म करोति देहः सरस्ययं पद्ममिवाप्यलिप्तः ॥57॥

यह आत्मा अविनाशी है यह प्रत्येक शरीर में रहता है, आत्मा साक्षी की भाँति सभी शरीरों में रहता है, शुभाशुभ कर्म शरीर करता है, यह तो तालाब में कमल की भाँति अलिप्त रहता है।

न जायतेऽयं म्रियते न चाऽयं न नाम गृह्णाति न गर्भगामी।
न हन्ति चाऽयं न च हन्यतेऽयं न चापि मित्रं न कदापि शत्रुः ॥58॥

यह आत्मा न जन्मता है और न ही नाम ग्रहण करता है और न ही माँ के गर्भ में आता है, न यह किसी को मारता है और न मारा जाता है, न यह किसी का मित्र बनता है न किसी का शत्रु।

क्रोधी न चाऽयं न कदाऽपि कामी लोभी न चाऽसौ न च मोहवश्यः।
नाऽयं मदी नायमथो प्रमादी न मत्सरी नैवमसौ विषादी ॥59॥

यह आत्मा न तो कभी क्रोधी है और न तो कामी, न यह लोभी है और न ही मोह के वशीभूत, न ही इसमें मद आता है और न ही यह कभी प्रमाद करता है, न इसमें मत्सर आता है और न ही यह विषाद युक्त होता है।

कामं तथा क्रोधमयं जहद् वै लोभं त्यजन् वै निरयापवर्गम्।
द्वाराण्यतीत्यैव गुणाभिधानि सेवाधिकारं लभते खरारेः ॥60॥

यह जीवात्मा काम और क्रोध को छोड़ता हुआ, नरक के द्वारस्वरूप लोभ का त्याग करता हुआ, इन तीनों काम, क्रोध, लोभ रूपी नरकद्वारों को पार करके अन्ततोगत्वा यह जीवात्मा भगवान् राम की सेवा में अधिकार प्राप्त कर लेता है।

बद्धश्च मुक्तो ननु चापि नित्यस्त्रिधा चकास्त्येव हि प्रत्यगात्मा।
क्रमादवस्थात्रयमाप्रविष्टो देहाञ्जुषाणो लघुमध्यमेष्टान् ॥61॥

यह जीवात्मा यथाक्रम छोटे, मध्यम और श्रेष्ठ शरीर को प्राप्त कर तीन अवस्थाओं से युक्त होता हुआ वह मुक्त और नित्य इन तीन भेदों से युक्त हो जाता है।

उच्चावचानेव भवीयदेहान् सम्प्राप्य मोहाद् विषयाञ्जुषाणः।
असारसंसारसरोग आत्मा तदैव बद्धः परिगीयते ज्ञैः ॥62॥

जब यह जीवात्मा ऊँचे, नीचे शरीरों को प्राप्त कर विषयों का सेवन करता हुआ, असार-संसार में सरण करता है, तब यह मनीषियों द्वारा बद्ध कहा जाता है।

यदा गुरूणां कृपया हरेश्च प्रभज्य सांसारिकमोहजालम्।
विमुच्यतेऽतो जगतीप्रपञ्चादात्मा तदा मुक्त इहेर्यतेऽसौ ॥63॥

जब सद्गुरुदेव और श्रीहरि की कृपा से यह प्रत्यगात्मा सांसारिक मोह जाल को काटकर इस जगत् के प्रपञ्च से मुक्त हो जाता है, तभी यह विद्वानों द्वारा मुक्त आत्मा कहा जाता है।

यदैव साकेतपतेः पदाब्जसेवाधिकारं लभतेऽयमात्मा।
तदैव नित्यः परिकथ्यतेऽसौ नित्यं भजन् रामपदारविन्दम्॥64॥

जब यह आत्मा साकेताधिपति भगवान् श्रीराम के श्रीचरणकमलों की सेवा का अधिकार प्राप्त कर लेता है, और भगवान् राम के चरणकमल को भजन करने लगता है, जब इसे नित्य आत्मा कहा जाता है।

आत्मा हि दासः परमात्मनो वै श्रीरामचन्द्रस्य च रावणारेः।
स्वाम्यात्मनो वै रघुवंशकेतू रामः परब्रह्म खरान्तकर्ता॥65॥

यह आत्मा रावण के शत्रु परमात्मा भगवान् श्री रामचन्द्र का दास है, और इस आत्मा के स्वामी हैं रघुवंश के ध्वजस्वरूप खर नामक राक्षस के शत्रु परब्रह्म भगवान् श्रीराम।

नित्योऽयमात्मा ननु दासभूतः पूतः परब्रह्मण एव नित्यम्।
स्वामी च सीतापतिरेव साक्षात् स्वभावमेतं विबुधाः स्मरन्तु॥66॥

यह पवित्र जीवात्मा परब्रह्म भगवान् श्रीराम का दास है, और भगवान् राम ही इसके स्वामी हैं, दोनों के इसी स्वभाव का विद्वानों को स्मरण करना चाहिये।

शस्त्राणि शक्तानि न भङ्क्तुमेतं वैश्वानरो दग्धुमिमं न शक्तः।
न मज्जयत्येनमहो महाब्धिर्नैमं समाशोषयतेऽनिलोऽपि॥67॥

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसे महासागर नहीं डुबा पाता और वायु इसे नहीं सुखा पाती।

अयं ह्यजन्मा ननु शाश्वतोऽयं नित्यः परब्रह्मजनः पुराणः।
आत्मा परात्मन्यपि नित्ययोगी भोगीप्यभोगी भगवद्रसस्य॥68॥

यह आत्मा अजन्मा, शाश्वत, नित्य, परब्रह्म श्रीराम का दास एवं पुरातन है, यह परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध सम्पन्न है, और अभोक्ता रहकर भी भगवद् रस का भोक्ता है।

देहात्मवादे किमिदं घटेत स्पष्टं यदुक्तं ननु चात्मनो वै।
आत्मानमाश्रित्य सुलक्षणं यत् ततो न चात्मा खलु देह एव॥69॥

देहात्मवाद मान लेने पर आत्मा का जो यह लक्षण कहा गया वह इस आत्मा में कैसे घटेगा? इसलिये यह आत्मा कभी भी देह नहीं हो सकता।

शरीरतो यो व्यतिरिक्तभूतः पूतः परब्रह्महरेश्च दासः।
आत्मा स एवैष च वेदवेद्यो देहात्मवादे न घटेत् कथञ्चित्॥70॥

जो शरीर से पृथक्तत्त्व है, वही आत्मा, परब्रह्म भगवान् राम का दास है, यही आत्मा वेद वेद्य है, जो देहात्मवाद में किसी भी प्रकार संघटित नहीं हो सकता।

देहात्मवादे च महाननर्थः सम्पत्स्यते तं विबुधाः स्मरन्तु।
देहस्य नित्या नहि चेतनाऽस्ति प्रचेतनोऽसौ ननु प्रत्यगात्मा॥71॥

देहात्मवाद स्वीकार करने पर जो महान् अनर्थ होगा उसे विद्वान् लोग स्मरण कर लें, देह की चेतना नित्य नहीं होती, कभी न कभी वह अचेतन होता ही है, जबकि आत्मा नित्य चेतन है।

देहात्मवादे विगते शरीरे गतोऽयमात्मा नहि संशयोऽत्र।
गतागतं देहदृशात्मनोऽतिमिथ्याप्रवादस्तव चात्मनोऽयम्॥72॥

देहात्मवाद स्वीकार करने पर शरीर के नष्ट होने पर यह आत्मा भी नष्ट हो जायेगा। इसका भी देह की दृष्टि से गमनागमन चलता रहेगा जो किसी भी दार्शनिक को अनुकूल नहीं है, इसलिये तुम्हारा यह देहात्मवाद पूर्णतः मिथ्या हैं।

श्रुतौ गतायां बधिरोऽयमात्मा दृष्टौ हृतायां विदितोऽयमन्धः।
पादे गते खञ्ज इति प्रसिद्धो देहात्मवादे खलु विप्लवोऽयम्॥73॥

यदि शरीर को आत्मा मान लिया जायेगा, तो श्रवणेन्द्रिय के चले जाने पर जीवात्मा को बहरा कहा जायेगा। दृष्टि के चले जाने पर इसे अन्धा कहा जायेगा। चरण के चले जाने पर इसे लंगड़ा कहा जायेगा, देहात्मवाद में ये सब अनर्थ होंगे।

प्रत्यक्षवादेऽपि तवानुकूले देहात्मवादे विलसद्विषादे।
देहे विनष्टेऽप्यविनाशितत्त्वं ह्यात्मा विनष्टो भवितैव भव्यः॥74॥

तुम्हें जो प्रत्यक्षवाद अनुकूल है उसमें विषाद से युक्त देहात्मवाद मान लेने पर देह के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट हो जायेगा, जो अविनाशी तत्त्व है।

श्रोत्रं च चक्षुस्त्वचमेव जिह्वां घ्राणं मनश्चैव सहैव नीत्वा।
आत्मा ह्ययं गच्छति यत्र तत्र तत्रैव वातीव स गन्धवातः॥75॥

यह जीवात्मा श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना, घ्राण और मन को साथ लेकर जिस–जिस शरीर को प्राप्त करता है वहाँ–वहाँ इन छहों को उसी प्रकार ले जाता है, जैसे वायु गन्ध को।

न चेन्मंस्यसे त्वं पुनर्जन्मवादं कथं सम्भवा वल्गु वर्णव्यवस्था।
भवस्यैव पूर्वस्य कर्मानुसारं चतुवर्णमेतद् विधीशो व्यधत्त॥76॥

यदि तुम पुनर्जन्मवाद नहीं मानोगे तो यह सुन्दर वर्ण व्यवस्था कैसे सम्भव होगी क्योंकि पूर्व जन्म के कर्म के अनुसार ही भगवान् ने चर्तुवर्ण की व्यवस्था की है।

कृतं पूर्वजन्मन्यथो यद्धि कर्म नरैस्तत्फलस्यानुसारं ददाति।
खरारिः सुवर्णं तथा चापवर्णं स्वतन्त्रो न चैवेश्वरः पाकदाने॥77॥

मनुष्य के द्वारा पूर्वजन्म में जैसा कर्म किया गया होता है, उसी के फल के अनुसार सुवर्ण या अपवर्ण में भेज देते हैं। वस्तुतः भगवान् भी कर्म फल के परिणाम दान में स्वतन्त्र नहीं हैं। कर्मप्रधान विश्वकरि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा।

पुनर्जन्म नो चेद् भवान् मंस्यते वै कथं भारते भव्यवर्णव्यवस्था।
तया दूरितस्यैव लोकस्य नूनं भवेद् वर्णसाङ्कर्यमेव प्रघोरम्॥78॥

यदि आप पुनर्जन्मवाद नहीं मानेंगे तो इस भव्य भारत में वर्ण व्यवस्था कैसे चलेगी और वर्ण व्यवस्था से दूर इस लोक का भयङ्कर वर्ण साङ्कर्य हो जायेगा।

उपेते तथा सङ्करं जीवलोके प्रजानां ध्रुवं सर्वनाशस्ततः स्यात्।
स्वतन्त्रा क्रिया प्राणिनां मुक्तबन्धा व्यवायोऽशनं स्नानपानं स्वतन्त्रम्॥79॥

जब इस लोक में वर्णसाङ्कर्य आ जायेगा तब प्रजाओं का सर्वनाश हो जायेगा और प्राणियों की बन्धन से मुक्त स्वतन्त्र क्रिया होगी और उनका मिथुन, धर्म, भोजन, स्नान, पान सब प्रतिबन्ध से शून्य हो जायेगा।

न चैवान्तरं स्यात् तदा जीवलोके पशूनां नृभिर्ग्राम्यदोषाभिषक्तैः।
न भेदो भवेच्चेह जायास्वसृणामधर्मो जिघत्सेन्निरस्तापवर्गान्॥80॥

वर्ण संकर के आ जाने पर पशुओं का मनुष्यों से अन्तर नहीं रह जायेगा और पत्नी तथा बहन का भेद समाप्त हो जायेगा और यह अधर्म मोक्ष से रहित लोगों को खाने की इच्छा करने लग जायेगा।

पुनर्जन्मवादे शुचिः सुव्यवस्था प्रवर्तेत जीवस्य धर्मे शुभास्था।
विभास्यन्ति चत्वार एवात्र वर्णास्तथैवाश्रमाश्चारु चत्वार एव॥81॥

यदि पुनर्जन्मवाद मान लिया जायेगा तो पवित्र वर्ण व्यवस्था चलती रहेगी और जीवों में धर्म के प्रति आस्था हो जायेगी। फिर से चारों वर्ण और चारों आश्रमों की मर्यादा सुरक्षित हो जायेगी।

यदा त्वं हि देहात्मवादं विभाव्य प्रकर्षात् पुनर्जन्मवादं जहासि।
तदा त्वन्मते भस्मभूतं शरीरं न चागन्तुमीशीत नष्टस्वबोधम्॥82॥

यदि तुम देहात्मवाद की परिकल्पना करके पुनर्जन्मवाद को छोड़ रहे हो तब तो तुम्हारे मत में भस्मीभूत शरीर चेतना से शून्य होकर फिर आ नहीं सकेगा।

पृथिव्यम्बुतेजस्तथा मातरिश्वा तवैतानि तत्त्वानि चत्वारि भान्ति।
तदाकाशतत्त्वं हि प्रत्यक्षसिद्धं न वै लज्जसे चापलप्यैव मूढ॥83॥

अरे मूर्ख! तुम्हारे मत में पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार ही तत्त्व है फिर तो तुम प्रत्यक्ष सिद्ध आकाश तत्त्व का अपलाप करके लज्जित भी नहीं हो रहे हो।

यदाकाशतत्त्वं न चाङ्गीकरोषि तदा भानुचन्द्रौ च कुत्राऽथ भाताम्।
समस्तानि भानीह भान्तु क्व कामं गणो ज्योतिषामाश्रयं कुत्र विन्देत्॥84॥

यदि तुम आकाश तत्त्व को नहीं स्वीकार रहे हो, तो यह बताओ कि सूर्य और चन्द्रमा उदित होंगे कहाँ और समस्त तारागण कहाँ प्रकाश करेंगे और सम्पूर्ण ज्योतियों का मण्डल कहाँ आश्रय प्राप्त करेगा?

विनाकाशतत्त्वं कुतो वायुजन्म प्रकामं विमानानि कुत्र भ्रमेयुः।
भविष्यत्यनेकानि प्रक्षेपकाणि किमाश्रित्य यास्यन्ति गन्तव्यमद्धा॥85॥

हे चार्वाक ! यदि आकाश तत्त्व नहीं रहेगा तो विमान कहाँ उड़ेंगे और भविष्यत् काल में भी बड़े-बड़े प्रक्षेपक यन्त्र किसका आश्रय लेकर अपने गन्तव्य को जायेंगे ?

देहात्मवादो यदि ते मतेन प्रस्थापितो मूढधिया कृतान्तः।
तदा पुनर्जन्म न सेत्स्यतीह प्रत्यक्षतो यच्च पुरानुभूतम्॥86॥

यदि तुम्हारे मत में देहात्मवाद सिद्धान्त ही मान लिया गया है, तब तो पुनर्जन्म ही नहीं सिद्ध होगा। जबकि उसका प्रत्यक्षतः पहले भी अनुभव किया जा चुका है।

प्रत्यक्षमानं ह्यनुमानकं च शब्दप्रमाणं ननु मे कृतान्ते।
वेदान्तरत्ने चिदचिद्विशिष्टाद्वैताख्यवादे विगलद्विषादे॥87॥

हमारे वेदान्त के रत्नभूत, विषादरहित विशिष्टा द्वैतवाद में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण माने गये हैं।

प्रत्यक्षमेकं हि न मत्प्रमाणमावश्यकं चाप्यनुमानमद्धा।
शब्दं तृतीयं ननु मे प्रमाणं सिद्धौ यदीशस्य प्रयुञ्ज्महे भोः॥88॥

हे चार्वाक ! हमारे मत में केवल प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण नहीं है। यहाँ अनुमान भी आवश्यक है और ईश्वर की सिद्धि के लिये हम तृतीय शब्द प्रमाण का भी प्रयोग करते हैं।

अर्थैर्गवां यत्र न सन्निकर्षस्तदानुमानं परमं प्रमाणम्।
अदृष्टवह्निः किल पर्वते ना धूमैः कथं तं ह्यनुमातुमीष्टाम्॥89॥

जहाँ विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं हो सकता, वहाँ अनुमान प्रमाण होता है, अन्यथा पर्वत पर अग्नि को न देखने वाला धूम के दर्शन से अग्नि का अनुमान कैसे कर सकेगा ?

कार्यं समस्तं किल कर्त्रधीनं यथा कुलालादिषु कुम्भकादि।
तथैव कार्यं हि जगत् समस्तं रामे ह्यधीनं हृदयाभिरामे॥90॥

जो-जो कार्य होता है वह कर्ता के अधीन होता है। जैसे घड़ा आदि कुम्हार आदि के अधीन होता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् रूप कार्य नयनाभिराम भगवान् श्रीराम के अधीन है।

यत् किञ्च कार्यं जडचेतनात्म कर्तर्यधीनं तदु रामनाम्नि।
उपेक्ष्य कर्तारमिहेश्वरं तं कार्यं जगत् किं घटतां स्थितौ वै॥91॥

जो भी जड़चेतनात्मक जगत् रूप कार्य है, वह श्रीराम नामक परमेश्वर कर्ता के अधीन है। भगवान्‌रूप कर्ता की अपेक्षा करके यह जगत् रूप कार्य अपनी स्थिति में रह ही कैसे सकता है?

कार्यत्वरूपेण च हेतुनाऽहं रामश्च कर्तारमिहानुमामि।
अशेषसंसारविपद्‌विरामं सीताभिरामं जितकोटिकामम्॥92॥

इसलिए मैं जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य कार्यत्व रूप हेतु से करोड़ों कामों को जीतने वाले सीताभिराम भगवान् परमेश्वर श्रीराम का कर्ता के रूप में अनुमान करता हूँ।

नैवानुमाने मम कोऽपि हेत्वाभासो न चोपाधिरुपस्कृताधिः।
तस्माद् द्वितीयं ह्यनुमानमेतत् प्रमाणमेवानुमतं कृतान्ते॥93॥

मेरे इस अनुमान में कोई भी हेत्वाभास नहीं है और न ही पीड़ा को उपस्थित करने वाली कोई उपाधि है, इसलिये हमारे सिद्धान्त में द्वितीय अनुमान में प्रमाण रूप में स्वीकारा गया है।

प्रत्यक्षमानं न हि यत्र सम्भवं नैवानुमानं प्रविशेद् यमद्‌भुतम्।
शब्दप्रमाणं किल तत्र शाश्वतं रामाभिधाने परमेश्वरे स्फुटम्॥94॥

जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण सम्भव नहीं है, जहाँ अनुमान प्रवेश कर सकता नहीं, उन राम नामक परमेश्वर के विषय में हमारा शब्दप्रमाण शाश्वत है।

शब्दो हि वेदो ननु नित्य एव योऽपौरुषेयोऽमलमन्त्रराशिः।
तन्मूलमेवात्र पुराणजातं स्मार्तं तदाधारमिहामनन्ति॥95॥

शब्द प्रमाण नित्य वेद जो अपौरुषेय है और निर्मल मन्त्रराशि से युक्त है, वही वेद सम्पूर्ण पुराणों का मूल है और सम्पूर्ण स्मृतियों का भी वही आधार है।

रामायणं भारतमेव भव्यं द्वौ चेतिहासौ हतदुष्टहासौ।
वेदार्थसंवर्णनमुख्यलक्ष्यौ सनातनौ सूदितशत्रुपक्षौ॥96॥

इसी प्रकार रामायण एवं महाभारत ये दो दुष्टों के हँसी दूर करने वाले इतिहास, वेदार्थ के ही वर्णन को मुख्य लक्ष्य मानकर शत्रुओं के असत् पक्ष को नष्ट करते हुए सनातन रूप में विराजमान हैं।

देहात्मवादं यदि चेद् वृणोषि तदा पुनर्जन्म न सिद्ध्यतीह।
नष्टं शरीरं पुनरेति नैवं प्रत्यक्षमेतद् व्यवहारतश्च ॥97॥

यदि तुम देहात्मवाद स्वीकार करोगे तब पुनर्जन्म भी नहीं सिद्ध होगा क्योंकि नष्ट शरीर लौटकर नहीं आता।

विना पुनर्जन्म शिशोः कथं स्याद्-धर्षस्य शोकस्य भयस्य बोधः।
क्षुत्तृट्स्मृतिः प्रेमविरुद्धचेष्टा आकर्षणं सुन्दरवस्तुजाते ॥98॥

यदि पुनर्जन्म नहीं माना जायेगा तो नवजातु शिशु को हर्ष, शोक, भय की प्रतीति कैसे सिद्ध होगी? उसकी प्रिय और अप्रिय की अनुभूति कैसे सिद्ध होगी? उसका खिलौनों पर आकर्षण कैसे सिद्ध होगा?

नूनं शिशुः पूर्वशरीरकाले भुक्तानि वस्तूनि पुनर्निरीक्ष्य।
अस्मिञ्छरीरे स्मरति प्रबुद्धसंस्कारयोगेन पदार्थजातम् ॥99॥

इससे निश्चित हो जाता है कि बालक पूर्व शरीर में जिन वस्तुओं का उपभोग किये रहता है इस शरीर में उन्हीं को देखकर जगे हुये संस्कारों के कारण उन पदार्थ समूहों का स्मरण कर लेता है।

पूर्वे भवे पीतमथो स्तनं यत् तस्यैव संस्कारवशादिदानीम्।
स्तन्याय मातुः स्पृहयालुरेष भावस्थिरं प्राक्तनजन्मकृत्यम् ॥100॥

पूर्वजन्म में बालक ने जो माँ का स्तन पिया था, वही इस जन्म में भी संस्कार जग गया, और नवजात शिशु की स्वयं माँ के स्तनपान में प्रवृत्ति हो गयी। क्योंकि पूर्वजन्म का कृत्य व्यक्ति के भाव में स्थिर हो जाता है।

आत्मा यदा पूर्वतनुं विहाय नवां च धत्ते निजकर्मयोगात्।
पूर्वं च संस्कारमसौ सहैव नयन् प्रयात्येव न चाऽत्र चित्रम् ॥101॥

जब आत्मा पूर्व शरीर को छोड़कर अपने कर्म के अनुसार नया शरीर धारण करता है, तब पूर्व शरीर के संस्कारों को लेकर दूसरे शरीर में जाता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

लोकेऽपि नृणां क्रम एष दृष्टः कश्चित् प्रसन्नो ह्यपरो विषण्णः।
कश्चिच्च विद्वान् ननु बालिशोऽन्यो विभिन्नरूपा किल चित्तवृत्तिः ॥102॥

लोक में भी यही क्रम देखा जाता है, कोई प्रसन्न होता है कोई दुखी होता है, कोई विद्वान् होता है, कोई नितान्त मूर्ख होता है, चित्त की वृत्तियाँ अनेक प्रकार की होती हैं।

विबोद्ध्यमानो विषयांश्च कोऽपि नैवाभ्यगच्छत्यथ मन्दमेधाः।
कोऽपि प्रकृष्टप्रतिभाप्रभावात् झटित्यवत्येव कुशाग्रबुद्धिः ॥103॥

कोई-कोई बार-बार समझाने पर भी मन्दमति के कारण विषय को नहीं समझ पाता और कोई अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा के प्रभाव से शास्त्रों को शीघ्र ही समझ लेता है।

तस्मान्न चात्मा किल देह एष मनो न बुद्धिर्न हि जातु चाऽहम्।
नैवैष चित्तं हरिभक्तिवित्तं जानीहि चैनं रघुनाथदासम् ॥104॥

इसलिये यह जीवात्मा शरीर नहीं है, यह मन नहीं है, यह बुद्धि भी नहीं है, यह अहङ्कार और चित्त भी नहीं है। इसको तो भगवान् की भक्ति रूप धन से सम्पन्न रघुनाथ जी का दास ही समझो।

प्रत्यक्षतोऽस्माभिरिहापि दृष्टा जातिस्मरा नारिनराश्च कोट्यः।
पूर्वे भवे यन्निहितं च वस्तु तदग्रिमे तत्स्थलमामनन्ति ॥105॥

हमने प्रत्यक्ष रूप में हजारों नर-नारियों को पूर्व जन्म का स्मरण करते हुए देखा और सुना है, यहाँ तक कि जातिस्मर व्यक्ति ने पूर्व जन्म में जो वस्तु जहाँ रखी थी, अग्रिम जन्म में वह उस दिन, उस स्थल को और उस वस्तु को बता दिया।

जातः शिशुर्मातुरथ स्तनेऽपि प्रवर्तते शिक्षित एष केन।
बिभेति मृत्योः कथमेष जीवन् कथं हि रामासु मनो नियुङ्क्ते ॥106॥

यदि पूर्व जन्म नहीं है, तो जन्म लेने वाला बालक माँ के स्तनपान में किससे शिक्षा

पाकर कैसे प्रवृत्त हो जाता है, और पूर्वजन्म के अनुभव के बिना किसी स्त्री में अपने मन को क्यों लगा देता है।

देहात्मवादं परिहाय तस्मादध्यात्मवादं मनसैव विभ्रत्।
त्यक्त्वा मतिं नास्तिकवाददुष्टां चार्वाक कान्तं भज भूमिजायाः ॥107॥

हे चार्वाक! इसलिये देहात्मवाद को छोड़कर अध्यात्मवाद को मन से धारण करते हुए नास्तिकवाद से दुष्ट मति को छोड़कर अब तुम सीतापति भगवान् श्रीराम का भजन करो।

निर्दिष्ट एवं गुरुणा जगत्याः शास्त्रार्थयुद्धे स पराजितो वै।
चार्वाक आनम्य जगद्गुरूणां पादाम्बुजं भीतमना जगाम ॥108॥

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य द्वारा निर्दिष्ट होकर शास्त्रार्थयुद्ध में पराजित हुआ, वह चार्वाक भयभीत होकर जगद्गुरु जी के चरणकमल में प्रणाम करके चला गया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
चतुर्विंशकः सर्गो यतिपतिगुणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः ॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-
प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये चतुर्विंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ पञ्चविंशः सर्गः॥

अथागतस्तं जिनधर्मचारी जेतुं च शास्त्रार्थरणे यतीन्द्रम्।
अवैदिकाप्तव्रतदुर्बलाङ्गं जगद्गुरुः प्राह वचोऽभिरामम्॥01॥

इसके अनन्तर जगद्गुरु जी को शास्त्रार्थ युद्ध में जीतने के लिए उनके पास जैन धर्मावलम्बी आया। उसे अवैदिक व्रत से दुर्बल शरीर देखकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने मधुर वचन कहते हुए निगृहीत कर दिया।

त्वया न शास्त्रार्थमहं करिष्ये त्वत्सप्तभङ्ग्येव न निश्चितार्था।
अनिश्चितोऽतस्तव भोः कृतान्तः किं शास्त्रचर्चाभिरनिश्चितेन॥02॥

अरे भाई! तुम्हारे साथ मैं शास्त्रार्थ नहीं करूँगा क्योंकि तुम्हारी सप्तभङ्गी ही अनिश्चित अर्थ वाली है इसलिये तुम्हारा सिद्धान्त भी अनिश्चित है। अतः अनिश्चित व्यक्ति के साथ शास्त्र चर्चा करना व्यर्थ है।

इत्येवमाकर्ण्य यतीन्द्रवाचं स आर्हतो रोषयुतोऽभ्यवोचत्।
सन्दष्टदन्तच्छद उग्रतेजा जगज्जिघत्सन्निव दीप्तशोकः॥03॥

इस प्रकार रामानन्दाचार्य जी का वाक्य सुनकर क्रोध से युक्त जिसका शोक उद्दीप्त हो चुका था, जो जगत् को मानो खा रहा था ऐसा वह आर्हत रामानन्दाचार्य जी से बोला।

बम्भण्यसे किं यतिवर्यरामानन्द त्वमीदृग् वचनं प्रगल्भम्।
न सूरयो हि प्रलपन्त्यनर्थं भूतार्थवादो हि सतां निसर्गः॥04॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी का इस प्रकार वचन सुनकर आर्हत ने कहा गुरुवर्य रामानन्दाचार्य इस प्रकार प्रगल्भ वचन आप क्यों बोल रहे हैं? क्योंकि आपके लिये ऐसा वाक्य शोभा नहीं देता महापुरुषों का स्वभाव सत्यवादी होता है।

न निश्चितं किं ननु दर्शने नः सर्वं समीचीनमथार्हतोक्तम्।
नेत्रं यदा पीतिमदोषदुष्टं तदा शशी पीतरुचिर्हि भाति॥05॥

हमारे दर्शन में क्या निश्चित नहीं है, अर्हन् ने जो कुछ भी कहा वो सब ठीक है, जब नेत्र में पीलिया हो जाता है, तब चन्द्रमा भी पीले वर्ण के दिखने लगते हैं।

ततो बभाषे वचनं यतीन्द्रः कशाहतश्चाश्व इवात्तरोषः।
किञ्चित् समाकुञ्चितनेत्रपक्ष्म देहप्रभाव्रीडितसिंहवर्ष्मा॥06॥

इसके अनन्तर कोड़े से आहत घोड़े की भाँति अपने पलकों को थोड़ा सा सिकोड़कर अपने शरीर की ऊँचाई से सिंह को भी लज्जित करते हुए जगद्गुरुरामानन्दाचार्य रोषपूर्वक यह वाक्य बोले-

रे रे दुरात्मन् कृतभूरिपाप्मन् वितण्डया पीडितवेदधर्मन्।
न लज्जसे नाशितसर्वकर्मन् प्रजल्पसि प्रोज्झितसभ्यमर्मन्॥07॥

अरे-2 दुरात्मन् अरे भयङ्कर पाप करने वाले, अपनी वितण्डा से वेद धर्म पीड़ित करने वाले, सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करने वाले, तुमको लज्जा नहीं आती, क्योंकि तुम सभ्यों का मर्म नष्ट कर चुके हो, इससे तुम अपलाप कर रहे हो।

सनातनो धर्म उदस्तदोषो दोषाकराभ्यर्चितपादपद्मः।
भ्रमः प्रमादो न हि विप्रलिप्सा नापाटवं क्वापि जनश्रुतीनाम्॥08॥

यह सनातन धर्म दोष रहित है, और चन्द्रमा के समान मुख वाले भगवान् राम इसके चरणकमल की पूजा करते हैं। इसमें कहीं भी भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और कर्णापाटव जैसा दोष नहीं है।

सनातनो धर्म इशत्रुसेव्यो न चाऽस्य कर्ता न इहास्य नाशः।
निर्दूषणो भूषणभूषणोऽयं समुल्लसद् दूषणदूषणोऽसौ॥09॥

यह सनातन धर्म काम के शत्रु शङ्कर जी का भी सेव्य है, इसका कोई कर्ता नहीं है और न ही इसका कभी नाश होता है, इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है, यह दोषों का नाशक और दूषण नामक राक्षस के शत्रु भगवान् राम को भी शोभा प्रदान करता है।

षड्दर्शनान्यत्र तथाऽस्तिकानि विभान्ति सम्पान्ति समस्तजीवान्।
नानाभयेभ्यः कलितामयेभ्यः संसारसिन्धोः करुणान्वितानि॥10॥

इस सनातन धर्म में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, वेदान्त ये छह दर्शन सुशोभित हो रहे हैं, और ये ही सभी जीवों को करुणा करके संसार सागर के अनेक रोगों और विपत्तियों से बचा रहे हैं।

यत्कापिलं साङ्ख्यमुदात्तकीर्ति पातञ्जलं योगसुदर्शनं च।
वैशेषिकं न्यायमुदाहरन्ति श्रीजैमिनीयं शुकतातप्रोक्तम्॥11॥

सनातन धर्म के छह दर्शन हैं, कपिलप्रोक्त सांख्य, पतञ्जलि द्वारा कहा हुआ योग, कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, जैमिनि का मीमांसा दर्शन और शुकाचार्य के पिता वेदव्यास का वेदान्त दर्शन।

एतानि वा अस्तिकदर्शनानि षडेव षट्शत्रुविनाशकानि।
तर्कैरनेकैः शुचियुक्तिभिश्च संसाधयन्तीश्वरमेव नित्यम्॥12॥

इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छहों शत्रुओं को नष्ट करने वाले छहों आस्तिक दर्शन अनेक तर्कों और अनेक पवित्र युक्तियों से निरन्तर ईश्वर को ही सिद्ध करते हैं।

साङ्ख्यं च षड्विंशमिमं गृणीते योगोऽस्य धत्ते प्रणिधानमेव।
वैशेषिकं द्रव्यतयेशमाह न्यायं च कर्तारमथेशमूचे॥13॥

साङ्ख्य ईश्वर को छब्बीसवाँ तत्त्व मानता है, योग ईश्वर को ध्यान का विषय कहता है, (ईश्वरप्रणिधानाच्च) वैशेषिक ईश्वर को आठवाँ द्रव्य सिद्ध करता है।

मीमांसा परिगायति कर्मफलदमभिराममीश्वरञ्च।
वेत्ति च वेदान्तं तमीश्वरमथ ब्रह्म चौपनिषदम्॥14॥

मीमांसा ईश्वर को कर्मफलदाता कहता है, और वेदान्त ईश्वर को ब्रह्म व्यापक जानता है।

सर्वेषु नश्चास्तिकदर्शनेषु क्लृप्तश्च सिद्धश्च सुपूजितश्च।
स ईश्वरः सर्वजगन्नियन्ता कर्ता च दाता च शुभाऽशुभानाम्॥15॥

हमारे सभी आस्तिक दर्शनों में ईश्वर निश्चित हैं, सिद्ध हैं, पूजित हैं, वही सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता हैं, वहीं जगत् के कर्ता हैं, वहीं शुभ और अशुभ के प्रदाता हैं।

क्लेशाश्च कायस्य निरूपिता ये तेभ्यो विदूरो ननु चाशयेभ्यः।
पुमान्विशेषो जगदेकशेषः समीरितो दर्शन एष ईशः॥16॥

शरीर के जो पाँच क्लेश कहे गये हैं उनसे दूर और संस्कारों से बहुत परे विशेष पुरुष को हमारे दर्शनों में ईश्वर कहा गया है।

नास्मिन्नविद्या न किलाऽस्मिताऽस्मिन् रागो न चैवास्य कदापि केषु।
न द्वेषबुद्धिर्जगतीतले ऽस्मिन् निरन्तरं चाभिनिवेशशून्यः॥17॥

हमारे ईश्वर में अविद्या नहीं है, अस्मिता नहीं है, ईश्वर का कभी भी किसी से राग नहीं है, ना ही उनकी किसी से द्वेष बुद्धि है, वे सर्वथा अभिनिवेश अर्थात् मृत्यु से शून्य हैं।

ब्रह्माणमारभ्य पिपीलिकान्तं सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽसौ।
कर्तुं ह्यकर्तुं किल चान्यथाऽपि कर्तुं समर्थः परमेश्वरो नः॥18॥

ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त जगत् का ईश्वर निर्माण करते हैं, रक्षण करते हैं, संहार करते हैं, पर वहाँ आसक्त नहीं होते। वही हमारे ईश्वरर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुं समर्थ हैं।

स ईश्वरो विश्वविलोचनं सत्सखा च जीवस्य प्रसिद्ध एव।
जीवो न चैनं परिहर्तुमीष्टे न चेश्वरो जीवजगज्जहाति॥19॥

वही ईश्वर इस संसार के नेत्र हैं, जीव के निरन्तर सखा हैं, जीवात्मा ईश्वर को नहीं छोड़ सकता और ईश्वर जीवात्मा को नहीं छोड़ते।

यथा तरौ शाश्वतपक्षिणौ द्वावनादिकालात् परिषस्वजाते।
जीवश्च भोक्ता सुखदुःखयोर्वै न चेश्वरोऽथापि सदा प्रसन्नः॥20॥

जैसे एक वृक्ष पर दो शाश्वत पक्षी एक दूसरे से चिपके हुये हों, उसी प्रकार जीव और ईश्वर एक दूसरे से चिपके हुए रहते हैं। जीव सुख-दुःखों का भोक्ता होता है, और ईश्वर सुख-दुःख का भोग न करते हुए भी सर्वदा प्रसन्न रहते हैं।

यानि प्रमाणानि वदन्ति सूरयः षड्दर्शनाचार्यतया सुसम्मताः।
तैस्तैः प्रमाणैः परमेश्वरो मम प्रख्यापितोऽपास्तसमस्तसंशयः॥21॥

जिन-2 प्रमाणों को छः आस्तिक दर्शनाचार्यों ने स्वीकारा है और तुम लोगों ने भी

कतिपय प्रमाण स्वीकारा ही है उन सभी प्रमाणों से समस्त संशयों से शून्य मेरे परमेश्वर को सिद्ध किया गया ही है।

अस्माकमिष्टं समुपेक्ष्य चेश्वरं सर्वज्ञनामानमपेक्षसे च यम्।
किञ्चित् प्रमाणं न हि तं च साधयेन् मिथ्या प्रवादस्तव सूरिमानिनः ॥22॥

हमारे इष्ट देवता ईश्वर की उपेक्षा करके तुम जिस सर्वज्ञ नामक सिद्ध की अपेक्षा कर रहे हो उसको कोई भी प्रमाण सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैं, अरे स्वयं को विद्वान् मानने वाले तुम्हारा यह मिथ्या प्रवाद ही तो है।

न चेन्द्रियाणां विषयैश्च साकं सर्वज्ञनाम्नः किल सन्निकर्षः।
प्रत्यक्षतस्तस्य कथं प्रमा स्याद् विभावयेस्त्वं स्वयमेव चित्ते ॥23॥

तुम्हारे द्वारा कल्पित सर्वज्ञ का प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं साथ दे सकता, क्योंकि उसका इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष सम्भव ही नहीं है। यदि उसका कोई आकार होता तब तो इन्द्रियों का विषयों से सन्निकर्ष होता। यदि आकार नहीं तो इन्द्रियों का विषयों से सन्निकर्ष नहीं और उनके अभाव में सर्वज्ञ की प्रत्यक्ष प्रमा होगी कैसे?

व्याप्तिं समाश्रित्य ममानुमानं प्रवर्तते साधकसाध्यजुष्टम्।
सर्वज्ञनाम्नस्तु ततोऽप्यभावान् नैवानुमानं प्रभवेत् प्रमातुम् ॥24॥

अनुमान व्याप्ति सापेक्ष्य होता है, उसमें पक्ष हेतु और साध्य होते हैं, सर्वज्ञ की व्याप्ति हो ही नहीं सकती, तो फिर उसका अनुमान कैसे किया जायेगा।

सर्वज्ञनाम्नो हि न चोपमा ते सदा स तिष्ठत्युपमाविहीनः।
तदोपमानं किमुत प्रमायां तस्यैव वर्तेत वदस्व विद्वन् ॥25॥

हे विद्वान् भला तुम ही बताओ कि सर्वज्ञ नामक तुम्हारे सिद्ध की कोई उपमा है ही नहीं, फिर उपमान प्रमाण से उसे कैसे सिद्ध किया जा सकेगा, यह तुम ही बताओ।

सर्वज्ञनामा तव सिद्ध ईशो वेदेषु सर्वेषु तथा स्मृतीषु।
विद्यापुराणेषु न चोपलब्धः शाब्दं प्रमाणं किमु साधयेत् तम् ॥26॥

तुम्हारा सर्वज्ञ नामक सिद्ध ईश्वर सभी वेदों में अट्ठारह स्मृतियों में मिला ही नहीं, तो फिर शब्दप्रमाण उसे कैसे सिद्ध कर सकेगा?

तत्रास्ति नैवानुपपत्तिबीजं सर्वज्ञनामन्यथ ते महेशे।
कथं प्रमाणं किल वै तथार्था-पत्तिः समुदिष्टमहाविपत्तिः ॥27॥

तुम्हारे सर्वज्ञ में मुझे कोई अनुपपत्ति का बीज नहीं दिख रहा है, तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण उसे कैसे सिद्ध करेगा?

सर्वज्ञमीशं तव मित्रवर्य स्वप्नेऽपि कुत्रापि लभेमहि स्वित्।
तदा प्रमाणानुपलब्धितो वै तं साधयेयं महता श्रमेण ॥28॥

हे मित्रवर्य! तुम्हारा सर्वज्ञ ईश्वर मुझे स्वप्न में भी नहीं मिल रहा है तो फिर अनुपलब्धि प्रमाण से उसे महान् श्रम से कैसे सिद्ध करूँ? क्योंकि जो कहीं उपलब्ध हो उसी की तो अनुपलब्धि होगी।

एवं प्रमाणैः प्रबलैश्च षड्भिः सर्वज्ञसिद्धं न हि साधयेय।
त्वमेव सर्वज्ञमिमं प्रमाणैः संश्रद्दधानः परिपूजयस्व ॥29॥

इस प्रकार छहों प्रमाणों से जिसको नहीं सिद्ध किया जा सकता, उसको मैं कैसे सिद्ध करूँ? अतः हे देवानांप्रिय! सभी प्रमाणों से शून्य इस सर्वज्ञ की तुम ही श्रद्धा से पूजा करो।

विना प्रमाणं किमपीह बन्धो सर्वज्ञमीशं कथमात्थ सिद्धम्।
गच्छाशु काञ्चिद् गिरिश्रृङ्गसंस्थां गुहां गुहास्थैर्विगतं भज त्वम् ॥30॥

अरे बन्धु! बिना किसी प्रमाण के इस सर्वज्ञ को ईश्वर कैसे कह रहे हो, अब तो शीघ्र किसी पर्वत की गुफा में जाओ और वहाँ छहों प्रमाणों से शून्य सर्वज्ञ का भजन करो।

या सप्तभङ्गी परिजल्पिता ते अनिश्चितार्था नितरां निरर्थाः।
मीमांस्यमाना गलिताभिमानैः शिशोर्गिरिवाऽस्ति विवेकशून्या ॥31॥

जो तुम्हारे द्वारा सप्तभङ्गी की जल्पना की गयी उसका अर्थ ही निश्चित नहीं है वह अत्यन्त निरर्थक है। अभिमान शून्य लोगों द्वारा मीमांसा करने पर वह शिशु की वाणी जैसी विवेकशून्य होती है।

न यौगपद्येन पदार्थ एको धर्मद्वयेनापि समन्वितः स्यात्।
एकत्र दोषाकरबिम्बमध्ये शशित्वसूर्यत्वगतिः कथं स्यात् ॥32॥

कभी भी एक पदार्थ एक साथ दो धर्मों से युक्त नहीं हो सकता। क्या एक ही समय चन्द्रमण्डल में चन्द्रमा और सूर्य दोनों प्रवेश कर सकते हैं?

सर्वं जगन्नित्यमथाप्यनित्यं प्रभाषसे त्वं यदिहैककाले।
आजन्मतो बालिशमानसोऽपि न श्रद्दधीताथ तवेरितेऽस्मिन्॥33॥

सम्पूर्ण जगत् एक ही काल में नित्य और अनित्य दोनों हैं, इस प्रकार जो तुम कहते हो। तुम्हारे इस कथन पर जन्म से मूर्ख मन वाला व्यक्ति भी नहीं श्रद्धा कर सकता।

यद् वस्तु नित्यं ह्यविनाशशीलं प्रध्वंसभिन्नं नितरामखिन्नम्।
तच्चाप्यनित्यं न भवेत् कथञ्चिद् रामो यथा ब्रह्म पतिः श्रियश्च॥34॥

जो वस्तु नित्य होती है अविनाशशील होती है, ध्वंस से भिन्न और अत्यन्त खेद से रहित होती है, वह कभी अनित्य नहीं हो सकती। जैसे सीतापति परब्रह्म भगवान् श्रीराम।

यच्चाप्यनित्यं किल नाशशीलं प्रध्वंसभावप्रतियोगितञ्च।
न तत् कथञ्चित् भवतीह नित्यं यथा घटादिर्ननु मर्त्यलोके॥35॥

जो वस्तु अनित्य होती है, वह नाशशील होती है और वह ध्वंस की प्रतियोगी भी होती है, वह कभी भी नित्य नहीं हो सकती। जैसे इस संसार में घटादि पदार्थ।

विकल्पवादस्तव जन्मसिद्धाधिकार एवाऽस्ति सदाऽनवस्थः।
सङ्कल्पवादस्तु नये मदीये जागर्ति नित्यं जगतीतलेऽस्मिन्॥36॥

तुम्हारा विकल्पवाद जन्मसिद्ध अधिकार है और वह अनवस्थाओं से पूर्ण है, हमारा तो सङ्कल्पवाद ही जन्मसिद्धाधिकार है और वह इस जगत् में नित्य जागरूक है।

सप्तैव भङ्ग्यस्तव दर्शने भो अनिश्चिता जाग्रति जैत्ररङ्गे।
असारसांसारिकभावभङ्गे विभग्नसद्भावमहाकुरङ्गे॥37॥

आर्हत महानुभाव! तुम्हारे दर्शन में अनिश्चित अर्थवाली जिसमें सारहीन संसार के भावों का भङ्ग हो रहा है और जिसमें श्रेष्ठ भाव रूप हरिण की हत्या हो चुकी है ऐसे तुम्हारे तथाकथित विजय के रङ्गभूमि पर सात भङ्गियाँ विराजमान हैं।

धातोरसेर्वै विधिलिङ्लकारे तिपः प्रयोगे प्रथमस्य पुंसः।
स्याद्रूपमेतत् सुधियः पठन्ति सम्भावनायां गतभावनायाम्॥38॥

अस् धातु के विधिलिङ् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय करने पर 'स्याद्' यह रूप विद्वान् लोग पढ़ते हैं। जहाँ सम्भावना होती है, पर भावना नहीं होती।

स्यादस्ति चैतत् प्रथमा हि भङ्गी अस्तित्वमाह प्रखरस्वरेण।
गृहे घटादेः कलितैव सत्ता स्यादित्यनेनैव च संशयोऽपि॥39॥

'स्याद् अस्ति' इस प्रकार तुम्हारी प्रथम भङ्गी है, जो वस्तु की सत्ता कह रही है, पर उसमें भी सत्ता में संशय उपस्थित कर रही है।

स्यान्नास्ति चेत्थं हि तव द्वितीया भङ्गी वदत्येव ससंशया वै।
निवारयन्ती किल वस्तुसत्तां गृहाद् बहिष्ठस्य यथा घटस्य॥40॥

"स्यान्नास्ति" यह तुम्हारे दर्शन की द्वितीय भङ्गी हैं जिसमें वस्तु के अस्तित्व की संशय पूर्ण नकारात्मकता है। वह उसी प्रकार वस्तु की सत्ता का निषेध कर रही है जैसे- घर से बाहर रखे हुये घड़े की।

स्यादस्ति च नास्ति चेति भङ्गी तार्तीयकी मता।
वदन्ती यौगपद्येन सत्ताविधिनिषेधकौ॥41॥

यह वस्तु है भी और नहीं भी, इस प्रकार जैन दर्शन की तृतीय भङ्गी है यह एक साथ सत्ता की विधि और निषेध दोनों कह रही है।

स्यादवक्तव्यमित्येव तूर्या भङ्गी समीरिता।
अनिर्वाच्यत्वमेवाह वस्तुनः सत्तया सह॥42॥

हो सकता है, पर उसका निर्वचन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार जैन दर्शन की चतुर्थ भङ्गी सत्ता के सम्भावना और अनिर्वचनीयता का ख्यापन कर रही है।

स्यादस्ति चावक्तव्यं च भङ्गी पाञ्चमिकी मता।
सत्ता निर्वाच्यते चोभे वदन्ती सुसमाहिता॥43॥

यह हो सकता है, पर अनिर्वचनीय है। इस प्रकार जैन दर्शन की पाँचवीं भङ्गी वस्तु की सत्ता और निर्वचनीयता का सङ्केत कर रही है।

स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च षष्ठी भङ्गी व्यनक्ति वै।
सत्ता निषेधावाच्यत्वे आर्हतागमसम्मता॥44॥

यह नहीं है, ऐसा सम्भव है, पर अनिर्वचनीय भी है। यह छठी भङ्गी सत्ता का निषेध और अनिर्वाच्यत्व कर रही है।

स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं चेति सप्तमी।
भङ्ग्याः भावस्तथाऽभावः पुनश्चावाच्यतां खलु॥45॥

यह है भी, यह नहीं भी है और यह अवक्तव्य भी है, इस प्रकार सातवीं भङ्गी जैन दर्शन की सत्ता उसका निषेध और उसकी अनिर्वचनीयता कर रही है।

जीवाजीवौ पदार्थौं द्वौ ध्रुवमार्हतसम्मतौ।
विचारकोटिमारूढौ दार्शनिकाः सहन्ति नो॥46॥

जैन दर्शन ने जीव और अजीव दो पदार्थ माने हैं इनको भी विचार करने पर दार्शनिक नहीं सहन करते।

वैज्ञानिका वेदविचारविज्ञा देवेषु तिर्यक्षु नरेषु चैव।
जीवस्य सत्तां प्रवदन्ति नूनं प्रत्यक्षतः शब्दप्रमाणतश्च॥47॥

निपुण महानुभाव जड़, चेतन सभी में जीव तत्त्व को स्वीकार करते हैं, वैज्ञानिक भी किसी को निर्जीव नहीं मानते।

स सर्वान्तर्यामी सर्वशरीरे विराजमानो हि।
पश्यति शुभाशुभं वै साक्षीभावेन निर्लेपः॥48॥

वे सर्वान्तर्यामी परमात्मा प्रत्येक शरीर में रहते हुये जीवों के शुभाशुभ कर्म को साक्षीभाव से निर्लेप होकर देखते हैं।

यथा रथं चापि रथी महारथः समाश्रितः श्वेततुरङ्गयोजितम्।
करोति यात्रां निजसूतनोदितस्तथैव जीवः परमात्मना तनुम्॥49॥

जैसे रथी सुन्दर घोड़ों से युक्त रथ पर विराजमान होकर सूत से प्रेरित होता हुआ यात्रा करता है। उसी प्रकार इस शरीर रूपी रथ पर विराजमान होकर जीवात्मा परमात्मा के साथ यात्रा करते हैं।

यथा हृषीकेशसुसारथी रथं समाश्रितो दिव्यधनुः कपिध्वजः।
ययौ कुरुक्षेत्ररिपून् जिगीषया तथैव जीवः परमात्मना तनुम्॥50॥

जिस प्रकार भगवान् कृष्ण को सारथी बनाकर अर्जुन रथ पर विराजमान होकर कुरुक्षेत्र के शत्रुओं को जीतने के लिये कुरुक्षेत्र युद्ध में पधारे। उसी प्रकार यह जीवात्मा परमात्मा के साथ इस शरीर रूपी रथ पर विराजमान रहता है।

त्वद्दर्शने जीवबहुत्वमेव एकान्तभिन्नत्वमथो प्रमेयम्।
देहप्रमाणं तरसानुसृत्य तनुं तनुं प्रत्यभिसम्प्रविष्टः ॥51॥

तुम्हारे दर्शन में जीव का बहुत्व और अनेक तत्व है, वह प्रत्येक शरीर के प्रमाण के अनुसार स्वयं को बनाकर प्रत्येक शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

गजप्रमाणेन गजस्य देहं पिपीलिकामात्रमथो तदीयम्।
एवं प्रमाणानि यथाशरीरं जीवो विधत्ते महदल्पकं वै ॥52॥

जैसे- हाथी के शरीर में जीव हाथी के समान हो जाता है, चींटी के शरीर में जीव चींटी जैसे हो जाता है। इसी प्रकार शरीरों के अनुसार जीव छोटा और बड़ा प्रमाण धारण कर लेता है।

कपोलकल्पनामेतां तर्कप्रामाण्यवर्जिताम्।
ईशते आर्हताः कर्तुं नान्यः कोऽपि कदाचन ॥53॥

इस प्रकार तर्क और प्रामाण्य से शून्य कपोलकल्पना तुम जैसे आर्हत ही कर सकते हैं। अन्य कोई तो किसी भी प्रकार नहीं कर सकता।

महत्प्रमाणं करिणः शरीरे योऽधत्त जीवस्तव वाक्यतो भोः।
पैपीलिकं देहमवाप्य सो वै ह्रस्वप्रमाणं किमुताभजेत ॥54॥

तुम्हारे कथन के अनुसार जो जीव हाथी के शरीर में हाथी के प्रमाण का हो गया था वही चींटी के शरीर में चींटी के प्रमाण का कैसे हो जायेगा?

एवं त्वदुक्त्या ननु जीव एषः अनेकतां खण्डमिहाभ्युपेतः।
अखण्डता तस्य तु शास्त्रसिद्धा तक्षेव त्वं खण्डयितुं तमीश्से ॥55॥

इस प्रकार तुम्हारे अनुसार जीव खण्डित और प्रमाणशील है, जबकि शास्त्र जीव को अखण्ड मानता है, केवल तुम ही एक ऐसे हो जो बढ़ई की भाँति जीव को छोटा बड़ा खण्डित करने में लगे हो।

जीवातिरिक्तं ननु पुद्गलं ते द्रव्यं ह्यजीवं परिजृम्भमाणम्।
पूर्णं गलच्चापि विना प्रमाणं जडस्वभावं भवसिन्धुमग्नम्॥56॥

इस प्रकार जीव से अतिरिक्त तुम्हारा एक पुद्गल अजीव पदार्थ है, जो पूर्ण होकर गलता रहता है और जड़ होकर भवसागर में डूबता रहता है।

तवागमे सर्वमनिश्चितं वै प्रजल्पितं चैवमनेकधर्मि।
अनेकधर्माण इमे हि जीवा जाता हि जीवन्त्वथ वा म्रियन्ताम्॥57॥

तुम्हारे दर्शन में सब कुछ अनिश्चित है, और केवल प्रजल्पना मात्र है, अनेकधर्मी है, ये अनेक धर्म वाले जीव जन्म लेकर जिये या मरे, ये तो तुम जानो।

अस्मन्नये जीव उदारभावो दासो हरेर्नित्यमणुप्रमाणः।
न जायते नो म्रियते कदाचित् क्षेत्रज्ञनामा प्रतिदेहमास्ते॥58॥

हमारे दर्शन में तो उदार भावों वाला जीव भगवान् का दास और निरन्तर अणु प्रमाण वाला है, वह न जन्म लेता है न मरता है, और वह क्षेत्रा बनकर प्रत्येक शरीर में विराजता है।

आकाशचारीव सहस्ररश्मिर्जीवो ह्ययं प्रेरणया हरेश्च।
प्रकाशयत्येव समं शरीरं क्षेत्रज्ञ एतेन गुणेन चोक्तः॥59॥

जिस प्रकार आकाशचारी सूर्यनारायण अपनी हजारों किरणों से सम्पूर्ण आकाश को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार यह जीवात्मा शरीर में रहकर उसके सम्पूर्ण अङ्गों को प्रकाशित करता है इसलिये उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

आकाशवत्सूक्ष्मगुणोऽयमात्मा न लिप्यते दारुणकर्मबन्धैः।
मित्रेण साकं परमात्मना सह सम्भ्राजमानः प्रतिदेहमास्ते॥60॥

यह जीवात्मा आकाश की भाँति सूक्ष्म गुणवाला है और दारुण कर्म बन्धनों से नहीं लिप्त होता। यह अपने मित्र परमात्मा के साथ निरन्तर प्रत्येक शरीर में निवास करता है।

वालस्य यः शततमः कलितो हि भागस्तस्याऽपि यः शततमः शकलः प्रक्लृप्तः।
तादृग् भवेन्निखिलमङ्गलधाम जीव आनन्त्यमेति रघुनन्दनभक्तियोगात्॥61॥

केश का जो सौवाँ भाग होता है, उसका भी जो सौवाँ भाग है, उसी के समान अणु शरीर वाला सम्पूर्ण मङ्गलों का धाम यह जीव भगवान् राम की भक्ति के योग से अनन्त हो जाता है।

इत्येवमुक्तं सुवचो निशम्य जगद्गुरोरार्हतनायकोऽसौ।
कृतप्रणामश्च तदङ्घ्रिपद्मे पराजितो नम्रमुखो निवृत्तः ॥62॥

इस प्रकार जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य के सुन्दर वचन सुनकर वह आर्हत नायक जगद्गुरु जी के चरणकमल में प्रणाम करके उनके द्वारा पराजित होकर मुख लटकाये लौट गया।

तत्रागता दार्शनिकेशमानिनो वैभाषिका माध्यमिका महाग्रहाः।
सौत्रान्तिकाः स्वेरितयोगपूर्वका आचारसञ्ज्ञा ननु बौद्धभिक्षवः ॥63॥

एक समय जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के पास स्वयं को दार्शनिकों का राजा मानने वाले महान् आग्रही माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक ये चार बुद्ध भिक्षु शास्त्रार्थ करने के लिये आये।

सर्वं हि शून्यं सदसज्जगद् यद् बाह्यं तथैवान्तरमेव नित्यम्।
सञ्जल्पितं मानसकल्पितञ्च सैद्धान्तिकं माध्यमिकाः स्म प्राहुः ॥64॥

यह सम्पूर्ण जगत् जो भी सत् या असत् है, जो भी बाहर या भीतर है, वह सब लोगों के मन से कल्पित सञ्जल्पित सब कुछ शून्य है, ऐसा, माध्यमिक बौद्धों ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी से पूर्व पक्ष के रूप में उपस्थित किया।

इदं शून्यमदः शून्यं शून्याच्छून्यमदुच्यते।
शून्यस्य शून्यमादाय शून्यमेवावशिष्यते ॥65॥

यह भी शून्य है, वह भी शून्य है, शून्य से शून्य निकला है, शून्य का शून्य प्राप्त करके अन्त में शून्य ही शेष बच जाता है।

श्रद्धत्से किं शून्यभूते प्रपञ्चे धत्से हस्ते दक्षिणे किं त्रिदण्डम्।
त्यक्त्वा सूत्रं स्वां शिखां लम्बमानां बौद्धो भूत्वा भिक्षुभूयं भजस्व ॥66॥

अरे रामानन्दाचार्य इस शून्यमय प्रपञ्च में क्यों श्रद्धा रखते हो? क्यों दाहिने हाथ में त्रिदण्ड लिये हो, शीघ्र शिखा सूत्र छोड़कर बौद्ध मत स्वीकार करके बौद्ध भिक्षु बन जाओ।

निशम्य तां माध्यमिकस्य वाचं जगद्गुरुः प्राह विहस्य वाक्यम्।
रदप्रभाव्रीडितचन्द्रकान्तिः प्रभर्त्सयन् माध्यमिकं च भिक्षुम् ॥67॥

इस प्रकार माध्यमिक की वाणी सुनकर अपनी दन्तावली की प्रभा से चन्द्रमा के भी शोभा को लज्जित करने वाले जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने अपने वचनों से माध्यमिक को फटकारते हुए हँसकर उत्तर देना प्रारम्भ किया।

न शून्यमेतत् सदसद् जगद्यत् प्राङ्निर्मितं श्रीजगदीश्वरेण।
जगत् समस्तं परिपूर्णमेव क्लृप्तं च पूर्णेन परेश्वरेण॥68॥

यह संसार सदसदात्मक है, वह शून्य नहीं है, वह जगदीश्वर के द्वारा बनाया गया है, इसलिये पूर्ण परमेश्वर के द्वारा रचित यह संसार पूर्ण ही है।

इदं हि पूर्णं ह्यद एव पूर्णं पूर्णाच्च पूर्णं सुविशिष्टमाहुः।
आदाय पूर्णस्य च पूर्णमंशं पश्चाच्च पूर्णं ह्यवशिष्यते वै॥69॥

यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है, पूर्ण की अपेक्षा पूर्ण विशिष्ट है, पूर्ण का पूर्ण अंश लेकर अन्ततोगत्वा पूर्ण ही अवशिष्ट रहता है। ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं। यही तथ्य ईशावास्योपनिषद् के शान्ति पाठ में कहा गया है।

अदः पदं चाह समावतारिणं गुणालयं राममनन्तसौभगम्।
इदं पदं चाप्यवतारमीश्वरं तमध्ययोध्यं नृपबालकं प्रभुम्॥70॥

'अदः' पद से सभी के अवतारी साकेत विहारी भगवान् राम को समझना चाहिये, और 'इदं' पद से श्री अयोध्या में विराजमान नरावतार दशरथ राजकुमार भगवान् राम को समझना चाहिये।

साकेतचारी भवरोगहारी सर्वावतारी शरचापधारी।
सीताभिरामो जितकोटिकामो रामः परब्रह्म स पूर्ण एव॥71॥

साकेतलोक में विचरण करने वाले, संसार के रोग को हरण करने वाले, धनुर्बाणधारी, करोड़ों कामों को जीतने वाले, सीता जी से सुन्दर लगने वाले भगवान् राम ही सभी के अवतारी हैं, वही परब्रह्म हैं, वही पूर्ण हैं।

रामोऽवतारो हृतभूमिभारो लावण्यसंव्रीडितकोटिमारः।
सङ्क्रीडमानश्च सदाध्ययोध्यं पूर्णं परब्रह्म समस्तपूज्यः॥72॥

पृथ्वी का भार हरने वाले, करोड़ों कामदेवों को सुन्दरता से जीतने वाले, निरन्तर अयोध्या में खेलने वाले ,भगवान् राम पूर्ण अवतार हैं, परब्रह्म हैं और सभी के पूज्य हैं।

सर्वावतारिणो रामात् पूर्णाद् राम उदच्यते।
अवतारः सपूर्णस्य पूर्णमादाय शिष्यते ॥73॥

सर्वावतारी पूर्ण श्रीराम से पूर्णावतार श्रीराम श्रेष्ठ हैं, और अवतारी के पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर पूर्ण रूप में अवतार रूप भगवान् आज भी विराजमान हैं। उन्हीं का मैं भजन करता हूँ, तुम भी उन्हीं का भजन करो।

रामोऽवतारः सुलभोऽवतारिणः साकेतनाथाद्रघुनाथ उत्तमः।
पूर्णं परब्रह्म गुणालयः प्रभुः सीताभिरामस्त्रिपुरारिपूजितः ॥74॥

भगवान् राम श्री रघुनाथ जी, जो कि पूर्ण परब्रह्म हैं, जो सभी गुणों के भवन हैं जो सर्व समर्थ हैं, और जो सीता जी से सुन्दर लगते हैं, और जो शङ्कर जी से पूजित हैं, वही सबके अवतार और पूर्ण हैं।

शून्यं च सर्वं तव चेत् कुबुद्धौ त्वमप्यथो शून्यमुदस्तसत्त्वम्।
त्वदीयपक्षोऽपि ततश्च शून्यः शून्येन किं मे घटतां विवादः ॥75॥

तुम्हारी कुबुद्धि में यदि सब कुछ शून्य है तो सत्त्वहीन हुए तुम भी शून्य हो, इसलिये तुम्हारा पक्ष भी शून्य है। हे माध्यमिक तुम जैसे शून्य के साथ मेरा प्रत्युत्तर विवाद कैसे सम्भव हो सकेगा ?

एवं बुधा माध्यमिके निरस्ते स्ववाग्विभूत्या गुरुणा जगत्याः।
सम्बोध्य तं स्वामिनमाह योगाचारः कदाचारविमूढचेताः ॥76॥

इस प्रकार विद्वान् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य द्वारा अपनी वाणी की विभूति से माध्यमिक भिक्षुक के निरुत्तर कर दिये जाने पर कुत्सित आचार से मोहित चित्तवाले योगाचार भिक्षु ने स्वामी जी को सम्बोधित करके अपना पूर्वपक्ष प्रस्तुत किया।

सर्वं च शून्यं न हि मन्मते भो बाह्यं सदा शून्यमथो अवेहि।
बाह्यं च शून्यं तत एव मत्वा त्वं तु त्रिदण्डं जहिहि स्वपुण्ड्रम् ॥77॥

अरे रामानन्दाचार्य मेरे मत में सब कुछ शून्य नहीं है, केवल बाह्य शून्य है इसलिये बाह्य व्यवहार को शून्य मानते हुए तुम अपना त्रिदण्ड और ऊर्ध्वपुण्ड्र छोड़ दो।

यज्ञोपवीतं च शिखां च सूत्रं कौपीनकाषायपटौ त्यजाऽऽशु।
कट्यां च बिभ्रिच्छुचिचीवरं त्वमुपेहि बुद्धं शरणं शरेण्यम्॥78॥

इसलिये तुम बाह्य यज्ञोपवीत, शिखा, सूत्र कौपीन, काषायवस्त्र शीघ्र छोड़ दो और कटि में हमारा पवित्र चीवर धारण करो और सबको शरण देने वाले बुद्ध की शरण में चले जाओ।

निशम्य चेत्थं कुवचोऽथ योगाचारस्य चाचारविवर्जितस्य।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दो ननन्दन् गिरमुज्जगार॥79॥

इस प्रकार आचार से रहित योगाचार भिक्षु के कुत्सित वचन सुनकर क्रुद्ध होते हुए जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य ने प्रत्युत्तर के रूप में यह वाणी उगली।

नासौ त्वदीयो भगवान् हि बुद्धो मायासुतः शाक्यकुलप्रसूतः।
शौद्धोदनिर्वेदविरुद्धवृत्तः स गौतमः सन्नु मतः कथञ्चित्॥80॥

तुम्हारे वह बुद्ध जो महामाया और राजा शुद्धोदन के पुत्र थे, जो शाक्य कुल में उत्पन्न हुये थे जिनका नाम गौतम भी था, वे हमारे भगवान् नहीं हैं। हाँ अहिंसा का उपदेश करने के कारण वे किसी प्रकार सन्त कहे जा सकते हैं।

यः काश्यपो विप्रकुलावतंसो जिनात्मजोऽजायत वै जयन्याम्।
स एव बुद्धो भगवान् मुरारेः श्रुतिप्रसिद्धो नवमाऽवतारः॥81॥

जो कश्यपगोत्री तथा ब्राह्मणकुल के आभूषण जिन नामक ब्राह्मण के पुत्र माताजयनी से उत्पन्न हुये थे, वे ही भगवान् नारायण के नवों अवतार काश्यप भगवान् बुद्ध हैं।

आच्छिद्य वेदानधिकारशून्यमहासुरेभ्यो भगवान् हि बुद्धः।
वेदाधिकारैः परिपूतचेतो द्विजाधिपेभ्यः प्रददौ कृपालुः॥82॥

उन्हीं भगवान् बुद्ध ने अधिकार रहित आसुरी प्रवृत्ति वाले महान् असुरों से वेदों को छीनकर वेद के अधिकार से पवित्र चित्त वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दे दिया था।

यो वै जगत् पापमयं विलोक्य भ्रष्टाधिकारं भवभारसारम्।
जज्ञे हरिर्भारत एव भूयः सद्भ्रातृभी रुद्रमितैः कलौ च॥83॥

जो भगवान् श्री हरि जगत् को पापमय अधिकार रहित भवभार का साररूप देखकर इस भारतवर्ष में कलिकाल में फिर से अवतार लिये।

भ्राता तदीयः प्रथमः प्रवीणः पुनर्द्वितीयो निपुणोऽनवद्यः।
तृतीयकोऽभिज्ञ उदारकीर्तिः पुनश्चतुर्थः कुशली कृतज्ञः॥84॥

उनके प्रथम भ्राता प्रवीण, द्वितीय निपुण, तृतीय अभिज्ञ, और चतुर्थ कुशली थे। ये सभी प्रसिद्ध उदारकीर्ति और कृतज्ञ थे।

सुखी कृती पञ्चमषष्ठकौ च निष्णातनामा किल सप्तमो वै।
भ्राताष्टमः शिक्षित एव तस्य सर्वज्ञनामा नवमश्च बन्धुः॥85॥

उनके पाँचवें भ्राता थे सुखी, छठें कृती, सातवें निष्ठात, आठवें शिक्षित और नवम भ्राता थे सर्वज्ञ।

पुनश्च बन्धुः सुगतो महात्मा ख्यातस्तदीयो दशमः सुशीलः।
एकादशो भ्रातृवरः प्रबुद्धो बुद्धस्तथा द्वादश एव विष्णुः॥86॥

फिर उनके दशम भ्राता सुगत थे, ग्यारहवें भाई थे प्रबुद्ध और बारहवें थे भगवान् बुद्ध, जो साक्षात् विष्णु थे।

पुनश्च सौत्रान्तिकबौद्धभिक्षुर्म्लानोऽपि प्रपच्छ स पूर्वपक्षे।
अलं विवादेन यतीन्द्रवर्य ममापि पक्षं श्रृणु दत्तचित्तः॥87॥

इसके अनन्तर सौत्रान्तिक बुद्ध भिक्षु ने म्लान होते हुए भी पूर्वपक्ष के रूप में प्रश्न किया। स्वामी जी विवाद करना व्यर्थ है अब मेरा पक्ष सावधान होकर सुनिये।

बाह्यानुमेयत्वमहं ब्रवीमि प्रपञ्चभूतस्य जडाजडस्य।
सर्वस्य नूनं जगतोऽखिलस्य प्रस्तूयतेऽभ्यान्तरशून्यवादः॥88॥

स्वामिन् मैं जड़ चेतनात्मक प्रपञ्च भूत इस जगत् का बाह्यनुमेयत्व कह रहा हूँ और अभ्यन्तर शून्यवाद पर मैं अडिग हूँ।

बाह्यानि सर्वाणि चराऽचराणि सदानुमेयान्यनुमानमानात्।
ततस्त्वमप्यान्तरबाह्यदृष्ट्या शून्यं विनिश्चित्य भजाऽनुमानम्॥89॥

ये जितने चराचर पदार्थ हैं, वे बाहर से अनुमेय हैं। यद्यपि उनकी शून्यता यथावत् है, इसलिये तुम भी सब कुछ शून्य समझकर उसका बाह्यानुमान कर लो।

निशम्य सौत्रान्तिकवाक्यमेतद्धसन् सुशीलातनयो न्यगादीत्।
बाह्यानुमाने हि चराचराणां महानवस्था विगतव्यवस्था॥90॥

सौत्रान्तिक के इस वाक्य को सुनकर सुशीलानन्दवर्धन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने हँसते हुये कहा– सौत्रान्तिक महोदय यदि चराचर का बाह्यानुमान किया जायेगा तो कोई व्यवस्था नहीं रह जायेगी और बहुत बड़ी अव्यवस्था हो जायेगी।

जीवा असङ्ख्या जगतीतलेऽस्मिन् विभिन्नरूपा विविधस्वभावाः।
प्रत्येकमेवानुमितौ कृतायां कियन्त्यथैष्यन्त्यनुमानकानि॥91॥

इस संसार में जीव असङ्ख्य हैं, उन प्रत्येक जीवों की अनुमिति करने पर कितने अनुमानवाक्य बनेंगे, इसकी कोई कल्पना कर सकता है क्या?

इत्थं हि सौत्रान्तिकबौद्धभिक्षौ निरुत्तरे स्वामिवरैः कृते च।
जगाद वैभाषिकबौद्धभिक्षुर्जगद्गुरुं वाग्विदुषां वरिष्ठम्॥92॥

इस प्रकार स्वामी जी के द्वारा सौत्रान्तिक बौद्ध भिक्षु के निरुत्तर कर दिये जाने पर वाणी के विद्वानों में वरिष्ठ जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी से वैभाषिक बौद्ध भिक्षु ने प्रश्न किया।

बाह्यान् पदार्थान् खलु शून्यभूतान् प्रत्यक्षप्रामाण्यबलेन जाने।
अभ्यन्तरं सर्वमिदं हि शून्यं नैवात्मपक्षात् पदमाचलामि॥93॥

शून्यभूत बाह्य पदार्थों को मैं प्रत्यक्ष प्रमाण से जान लेता हूँ। आन्तरिक रूप से यह सब कुछ शून्य है। मैं अपने पक्ष से एक पग भी नहीं डिग रहा हूँ।

आर्यसत्यानि चत्वारि श्रावये त्वां महामते।
एकाग्रचेतसा विद्वन् श्रृणु तानि समाहितः॥94॥

हे विद्वान् संन्यासी मानव श्रेष्ठ! मैं आपको चार आर्यसत्य सुना रहा हूँ। उन्हें एकाग्रचित्त से सावधान होकर सुनिये।

दुखं दुःखसमुदायो दुखस्य च निरोधकः।
दुःखाद्विमुक्त्यै यत्नश्च तच्च मोक्षं प्रचक्षते॥95॥

दुःख, दुःखों का समुदाय, दुःखों का निरोध और दुःख की मुक्ति के लिए यत्न।

जगच्च सर्वं क्षणिकं मतं मे यद् दृश्यमानं यदिहापि दृष्टम्।
क्षणे क्षणे नश्यति जीवलोकः क्षणे क्षणेऽसौ परिजायते च॥96॥

हमारे मत में यह सम्पूर्ण जगत् क्षणिक है, यह क्षण क्षण में जन्म लेता है और क्षण क्षण में मर जाता है।

त्रेतायुगे यः समभूत् तवेशः श्रीरामचन्द्रः शरचापधारी।
नासावनादिर्न च सोऽप्यनन्तस्तत्रापि विद्धि क्षणिकत्वमेव॥97॥

त्रेता में जो तुम्हारे ईश्वर श्रीरामचन्द्र प्रकट हुए थे, उनको तुम क्षणिक ही जानो। वे न तो अनादि हैं, न ही अनन्त।

तस्मात् त्वमद्धा त्यज रामभक्तिं रामस्य बुद्ध्वा क्षणिकत्वमेव।
उज्झ त्रिदण्डं तिलकं जहीहि व्रज त्वमीड्यं शरणं हि बुद्धम्॥98॥

इसलिये तुम रामभक्ति छोड़ दो। क्योंकि तुम्हारे राम तो क्षणिक हैं अब त्रिदण्ड और ऊर्ध्वपुण्ड्र त्याग दो और बुद्ध की शरण में चले जाओ।

निशम्य वैभाषिककूटवाक्यं बाणं यथा पीडितकर्णकञ्जम्।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामानन्दश्च जीमूतगिरा जगाद॥99॥

इस प्रकार श्रवणरूप कमल को पीड़ित करने वाले वैभाषिक के कूट वाक्यरूप बाण को सुनकर जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने बादल जैसी गम्भीर वाणी में उत्तर दिया।

रे रे नरापशदभारतधूमकेतो धर्मद्रुहां मुकुटशेखरदुःखहेतो।
मा भूरघूत्तमविनिन्दनजन्यपापपाथोनिधिर्विपदरण्यनवाम्बुवाहः॥100॥

अरे रे नीच मनुष्य! भारत के भाग्य के धूमकेतु धर्मद्रोहियों के मुकुटमणि, दुःखों के

कारण, वैभाषिक, अब मत बनो श्रीराम के निन्दा से उत्पन्न पाप के सागर और विपत्तिरूप वन के नवीन मेघ।

अङ्गीकृते ते क्षणिकत्ववादे जगत्समस्तं सदसत्प्रपञ्चम्।
क्षणे क्षणे नश्यतु जायतां च पूर्वस्मृतिर्जातु कथं घटेत॥101॥

यदि तुम्हारा क्षणिकत्ववाद स्वीकार कर लिया जाए तो यह सम्पूर्ण सदसदात्मक जगत् प्रपञ्च क्षण–क्षण में जन्म लेगा क्षण–क्षण में नष्ट होगा तो फिर पूर्वस्मृतियों का प्रवाह कैसे घटित होगा?

क्षणे पुराणं च नवं क्षणे वै क्षणे च बालश्च युवा क्षणे च।
क्षणे च वृद्धो मरणं क्षणे च इदं च न क्वापि धृतं न दृष्टम्॥102॥

क्षणिकत्ववाद स्वीकार करने पर जो पूर्व क्षण में पुराना था वही द्वितीय क्षण में नया होगा, जो पूर्व क्षण में बालक था वहीं द्वितीय क्षण में युवक, जो पूर्व क्षण में वृद्ध था उसी का द्वितीयक्षण में मरण, यह सब कहीं न सुना गया न देखा गया।

अङ्गीकृते ते क्षणिकत्ववादे कथं पुनर्जन्मकथास्मृतिः स्यात्।
बुद्धोऽपि ते पूर्वभवं च मेने तं वै जिघत्सेत् क्षणिकत्ववादः॥103॥

तुम्हारे क्षणिकत्ववाद के स्वीकार करने पर पूर्वजन्म की कथाओं की स्मृति कैसे सम्भव होगी? यहाँ तक कि तुम्हारे गौतम बुद्ध भी पुनर्जन्म को मानते हैं। पर तुम्हारा क्षणिकत्ववाद उसे भी खाना चाहेगा।

आत्मा विशुद्धोऽणुरमोघसत्त्वः सखा सुबन्धोः परमात्मनश्च।
त्यक्त्वा शरीरं च पुराणमेव गृह्णाति नूत्नं च पटं यथा ना॥104॥

यह जीवात्मा विशुद्ध अणु, अमोघ सत्त्व वाला, सार्वकालिक बन्धु परमात्मा का मित्र है। यह पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर उसी प्रकार धारण करता है, जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को छोड़कर नया वस्त्र धारण करता है।

श्रोत्रं च चक्षुस्त्वचमेव जिह्वां घ्राणं मनः पूर्वतनोर्गृहित्वा।
आत्मा व्रजत्येव नवीनदेहं वातो यथा गन्धयुतो हि वाति॥105॥

यह जीवात्मा पूर्व शरीर के श्रवण, चक्षु, त्वक्, जिह्वा, घ्राण और मन को ग्रहण करके नवीन शरीर में उसी प्रकार जाता है जैसे वायु गन्ध को लेकर ही स्थान-स्थान में बहा करता है।

आत्मानमाश्रित्य सनातनोऽयमध्यात्मवादो विचकास्ति लोके।
अध्यात्मविद्या भगवद्विभूतिर्गीतासु गीता दशमे विभूम्ना॥106॥

आत्मा का आश्रय करके ही यह सनातन अध्यात्मवाद इस संसार में विराजमान है। गीता जी के दशम अध्याय में भगवान् कृष्ण ने भी अध्यात्म विद्या को अपनी विभूति कहा है।

आत्मा हि नित्यं परमात्ममित्रं द्वावेव नित्याविव पक्षिणौ च।
एकं शरीरं परिषस्वजाते वृक्षे यथा वेदकृतान्त एषः॥107॥

जीवात्मा परमात्मा का मित्र है, दोनों ही नित्य हैं और दो पक्षी की भाँति इस शरीर रूप वृक्ष को चिपककर विराज रहे हैं, यही वेद का सिद्धान्त है।

एवं निगद्य चतुरोऽपि च बौद्धभिक्षून् सम्प्रेष्य नैजनिलयानि निजैः सुशिष्यैः।
सम्पूजिताऽङ्घ्रिकमलो यतिराजरामानन्दो ननन्दकृतनन्दनपुष्पवृष्टिः॥108॥

इस प्रकार सभी प्रश्नों के उत्तर देकर चारों बौद्ध भिक्षुओं को अपने-अपने स्थान पर भेजकर सुयोग्य बारहों शिष्यों द्वारा जिनके चरणकमल की पूजा की गयी है और जिन पर देवताओं द्वारा नन्दन वन के पुष्पों की वृष्टि की गयी है ऐसे यतिराज जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी बहुत प्रसन्न हुए।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
पञ्चविंशकः सर्गो यतिपतिगुणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये पञ्चविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ षड्विंशः सर्गः॥

स एकदा द्वादश मुख्यशिष्यान् प्रेम्णा समाहूय हुताग्निहोत्रः।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्च रामा-नन्दोऽभिनन्दन् वचनं बभाषे ॥01॥

एक बार प्रातःकाल अग्निहोत्र करके अपने बारह मुख्य शिष्यों को प्रेम से बुलाकर उनका अभिनन्दन करते हुये जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य यह वचन बोले।

संश्रृणुध्वं दण्डकैर्मण्डितां पण्डितप्रेमवारान्निधिं
सन्निधिं वै सताम् गच्छतां रामपादारविन्दम्।
शरण्यं सदा मामिकां वाचमानन्दधारासिचं
यां निशम्याथ लब्ध्वा पुमर्थं परं प्रेम पीयूषयूषं
पुमान् घोरसंसारसिन्धुं तरेत् सन्तरेत्
वैष्णवीं घोरमायापगां भक्तिसन्निम्नगां लब्धुमीशीत वै ॥02॥

हे शिष्यों दण्डक छन्द से सुशोभित और पण्डितों के प्रेम सागर स्वरूप सन्तों की श्रेष्ठ निधि जो कि श्रीराम चरणारविन्द की निरन्तर शरण ले रहे हैं, ऐसी आनन्दधारा का सेचन करने वाली मेरी वाणी को सुनो, जिसको सुनकर परम पुरुषार्थ प्रेमपीयूष के जूस को पीकर यह मनुष्य घोर संसार सागर पार कर सकता है और वैष्णवी घोर माया नदी को पार कर सकता है तथा श्रीराम की भक्ति गङ्गा को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

हे अनन्तानन्द सुरसुरानन्द सुखानन्द हे
हे नरहर्यानन्द योगानन्द दत्तशत्रुसंताप-
पीपाप्रताप हे हृन्निकेतस्थरघुवीर संसार-
रणधीर कविवीर कबीर हे हे भव्यभाव-
भावानन्द हे धर्मसेन सेन धना गालवानन्द
विगतास सीतारामपदपद्मसद्दास रैदास मम
वाक्यमेतत् समाकर्णयध्वम् ॥03॥

हे अनन्तानन्द, हे सुरसुरानन्द, हे सुखानन्द, हे नरहर्यानन्द, हे योगानन्द, हे शत्रुओं को सन्ताप देने वाले पीपाप्रताप जी, हे अपने मनभवन में भगवान् को बसाने वाले रणधीर कवियों में श्रेष्ठ कबीर, हे मङ्गलमय भाव वाले भावानन्द, हे धर्म के सेना वाले सेन, हे धना, हे गालवानन्द, हे संसार के आशाओं से दूर श्रीसीताराम जी के चरणकमल के श्रेष्ठदास रैदास, मेरा यह वाक्य सुनो।

श्रृणुत साद्गौरवीं संज्जहद्रौरवीं परम्पारम्परीं
घोरसंसारसागरतरीं सत्तरीं जित्वरीं कामकण्ठी-
रवस्योल्लसच्चातुरीं भग्नलोकातुरीम्॥
मन्त्रराजस्य मोदितसमाजस्य राजाधिराजस्य
श्रीरामचन्द्रस्य शोभासमुद्रस्य वै॥04॥

हे शिष्यों! अब तुम समाज को आनन्द देने वाले, शोभा के सागर राजाधिराज भगवान् श्रीराम के षडक्षर मन्त्रराज की सद्गुरु सम्बन्धी उस पवित्र परम्परा को सुनो। जो संसार सागर का जहाज है जहाँ वैराग्य की सतत्वरता है, जो मनोविकारों को जीत लेती है, जहाँ परमेश्वर की चातुरी सुशोभित हो रही है और लोक भी आतुरता का नाश हो रहा है।

श्रृणुत पारम्परीं मन्त्रराजस्य वै षट्सुवर्णस्य
संसुद्धकर्णस्य विद्वच्छरण्यस्य वरदवरेण्यस्य
शोभाभ्यरण्यस्य छन्दोभिवन्द्यस्य नितरामनिन्द्यस्य
विश्वानवद्यस्य श्रीजानकीप्रभृतिसन्निभृतिनिर्वृति -
सुमेधावतां परपावनसताम्॥05॥

हे शिष्यों छः अक्षरों वाले, कानों को शुद्ध करने वाले, विद्वत्जनों को शरण देने वाले, वरदानियों के भी वरणीय, छन्दों द्वारा वन्दनीय, विश्व में निष्पाप श्रीराममन्त्र के श्री जानकी प्रभृति कल्याणस्वरूप सुन्दर मेधा से युक्त सन्तों की परम्परा सुनो।

इमं षडर्णं शुचिराममन्त्रं सीताप्रतीता श्रुतिगीतगीता।
साक्षाच्चकार प्रथमं महार्घ्यं जगद्गुरुः सा प्रथमः समेषाम्॥06॥

इस बहुमूल्य षडक्षर राममन्त्र का सर्वप्रथम वेदों ने जिनके गीत गाये हैं ऐसी विश्वासभाजन भगवती सीता जी ने साक्षात्कार किया था। इसलिये वही जनकनन्दिनी सीता जी सम्पूर्ण प्राणियों की प्रथमजगद्गुरु हैं।

श्रीराममन्त्रस्य षडर्णकस्य सीता ऋषी राघवधर्मपत्नी।
छन्दश्च गायत्र्युपकारचुञ्चु श्रीरामचन्द्रः परदेवता च॥07॥

षडक्षर श्रीराम मन्त्र की जनकनन्दिनी जानकी सीता जी ऋषि हैं, संसार का उपकार करने वाला गायत्री छन्द है, भगवान् श्रीराम देवता हैं।

रां बीजमेतस्य षडर्णकस्य रामाय सत्कीलकमाहुरस्य।
नमश्च शक्तिर्मनुनायकस्य रामाप्तयेऽसौ विनियोजनीयः॥08॥

षडक्षर श्रीराममन्त्र का 'रां' यह बीज है। इसका 'रामाय' कीलक है, इस मन्त्रराज की 'नमः' शक्ति है और भगवान् श्रीराम की प्राप्ति के लिये ही इसके जप का विनियोग करना चाहिये।

ऋषिश्छन्दो देवता च बीजं च कीलकं तथा।
शक्तिश्च विनियोगश्च ऋष्याद्या न्यासकाश्च षट्॥09॥

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, विनियोग ये छः ऋषि आदि न्यास हैं–यथा श्री सीता ऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, रामचन्द्रपरमात्मदेवतायै नमः हृदये, रां बीजाय नमः नाभौ, रामाय कीलकाय नमः गुह्ये, नमः शक्तये नमः पादयोः।

रां रीं रूँ रैं रौं रश्चैव बीजानि षट् प्रचक्षते।
हृदादिन्यासमेभिश्च करन्यासं प्रकुर्वताम्॥10॥

रां रीं रूँ रैं रौं रः ये छहः बीज कहे गये हैं यहीं से हृदयादिन्यास और करन्यास करना चाहिये। हृदयादिन्यास इस प्रकार करना चाहिये, रां हृदयाय नमः, रीं शिर से स्वाहा, रूँ शिखायै वषट्, रैं कवचायहुम्, रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, रः अस्त्राय फट्।

अङ्गुष्ठौ चैव तर्जन्यौ मध्यमे चाप्यनामिके।
कनिष्ठिके तथा धीरो बीजैरेभिर्मुदा न्यसेत्॥11॥

इन्हीं छह बीजों से हाँथ के दोनों अङ्गूठों, दोनों तर्जनियों, दोनों मध्यमाओं, दोनों अनामिकाओं और दोनों कनिष्ठिकाओं को स्पर्श करके नमः करते हुये न्यास करना चाहिये।

अक्षरन्यासमेवाथ पदन्यासं तथैव च।
रां रक्षतु इति प्रोच्य दिग्बन्धं च समाचरेत्॥12॥

राममन्त्र का अक्षरन्यास और पदन्यास भी करना चाहिये और रां रक्षतु कहकर दशों दिशाओं में दिग्बन्ध करना चाहिये। अर्थात् रां नमः शिरसि रा नमः मुखे, मा नमः हृदये, य नमः नाभौ न नमः गुह्ये, मः नमः पादयोः, यह अक्षरन्यास हुआ, रां नमः शिरसि, रामाय नमः मुखे, नमः नमः हृदये, यह पदन्यास हुआ।

षडक्षरं तारकराममन्त्रं सीता कपीन्द्राय हनूमतेऽदात्।
पट्टाभिषेकाऽवसरेऽध्योध्यं हारोपहारेण समं खरारेः॥13॥

भगवान् श्रीराम के राज्याभिषेक के समय भगवती सीता जी ने श्री अयोध्या में हार रूप उपहार के साथ वानर श्रेष्ठ हनुमान् जी को षडक्षर राममन्त्र का उपदेश दिया।

स ब्रह्मणे जातु चतुर्मुखाय ददौ हनूमान् किल राममन्त्रम्।
यथाऽध्यमं ज्योतिरखण्डरोचिः सूर्यः सुधादीधितयेऽनुमासम्॥14॥

उन हनुमान् जी ने ब्रह्मा जी को यह राममन्त्र दिया, जैसे प्रत्येक महीने अमावस्या के दिन सूर्यनारायण अनन्त शोभावाली ज्योति अमृत किरण चन्द्रमा को दे देते हैं।

ब्रह्मा वसिष्ठाय सरोजयोनिः प्रादात्षडर्णं ननु राममन्त्रम्।
यथा विराट् शब्दगुणं परात्मा रातीह नित्यं नभसेऽनवद्यम्॥15॥

इसके अनन्तर कमल जन्मा ब्रह्मा जी ने यही राममन्त्र अपने पुत्र वशिष्ठ जी को दिया, जिस प्रकार विराट् परमात्मा अपने पुत्र आकाश को निरन्तर शब्द गुण प्रदान किया करते हैं।

स वै वसिष्ठो भगवान् षडर्णं स्वसूनवेऽदात् किल राममन्त्रम्।
सुशक्तये शक्तय ईड्य कीर्तिर्जीवात्मने बोध इवात्मवासः॥16॥

उन भगवान् वशिष्ठ जी ने सुन्दर शक्ति सम्पन्न अपने पुत्र शक्ति को यह षड्क्षर राममन्त्र उसी प्रकार दिया जिस प्रकार स्तुत्यकीर्ति वाले भगवान् परमात्मा जीवात्मा को दिव्य ज्ञान प्रदान करते रहते हैं।

शक्तिः स्वपुत्राय पराशराय सम्यक् परिज्ञातपरावराय।
ददौ षडर्णं किल राममन्त्रं हरिर्यथा स्वं हरये सुरूपम्॥17॥

शक्ति ने परावरतत्त्व को सम्यक् जानने वाले अपने पुत्र पराशर को षडक्षर राममन्त्र दिया जिस प्रकार हरि श्रीमन्नारायण ने चन्द्रमा को अपना सुन्दर रूप दे दिया था।

पराशरो राममनुं दिदेश व्यासाय वेदव्यसनोद्यताय।
हेरम्बनाम्ने स्वभुवे द्विवर्णं यथा पुरारिर्विलसत्खरारिः॥18॥

पराशर जी ने वेद विभाग में तत्पर वेदव्यास जी को उसी प्रकार से षडक्षर राममन्त्र का उपदेश किया जिस प्रकार जिनके हृदय में भगवान् राम विराज रहे हैं ऐसे शिव जी ने अपने पुत्र हेरम्ब गणपति को राम इस दो अक्षर महामन्त्र का उपदेश किया था। इसी से गणपति प्रथम पूज्य बन गये।

व्यासस्तु वेदव्यसनैकचित्तः शुकाय पुत्राय महाव्रताय।
श्रीमन्त्रराजं प्रददौ यथाऽब्जिरध्यात्मविद्यां गुरवे सुराणाम्॥19॥

वेदों के वर्गीकरण में जिनका चित्त एकाग्र था, अर्थात् जिन्होंने वेद को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारों भागों में विभक्त किया, ऐसे वेदव्यास जी ने अपने महाव्रती पुत्र शुकाचार्य जी को श्रीराममन्त्र राज उसी प्रकार प्रदान किया जैसे ब्रह्मा जी के पुत्र अङ्गिरा ने देवगुरु वृहस्पति को अध्यात्म विद्या प्रदान की थी।

यो वै शुकाचार्यपदाब्जभृङ्गो वीरव्रती नाम नरोत्तमश्च।
तस्मै शुकोऽदात् किल राममन्त्रं षडक्षरं राम पदप्रपत्त्यै॥20॥

जो श्री शुकाचार्य जी के चरणकमलों के भ्रमर बने हुये ब्रह्मचारी नरोत्तमाचार्य जी थे, उन्हीं को शुकाचार्य जी ने भगवान् राम की शरणागति के लिये श्रीराम मन्त्र प्रदान किया।

गङ्गाधराख्याय निजाङ्घ्रिपद्मषडङ्घ्रये नाम नरोत्तमोऽसौ।
षड्क्षरं तारकराममन्त्रं दत्त्वा भवाब्धेर्हि निनाय पारम्॥21॥

श्री नरोत्तमाचार्य जी ने अपने चरणकमल के भ्रमर श्री गङ्गाधराचार्य जी को षडक्षर तारक राममन्त्र देकर संसार सागर से पार कर दिया।

गङ्गाधराचार्यमिमं विलोक्य श्रीराममन्त्रं विपिने जपन्तम्।
कण्डूयमानो हरिणो हरीष्टं श्रङ्गेण चामोदत रोहितोऽपि॥22॥

एक बार वन में श्रीराम-मन्त्र का जप करते हुये श्रीहरि भगवान् राम ही जिनके इष्ट देवता हैं, ऐसे गङ्गाधराचार्य जी को देखकर रोहित मृग अर्थात् लाल वर्ण वाला हरिण निर्भीक होकर गङ्गाधराचार्य जी को अपनी सींग से खुजलाता हुआ बहुत प्रसन्न हुआ।

गङ्गाधरः सदानन्दनाम्ने शिष्याय दत्तवान्।
षड्क्षरं राममन्त्रं बुधायेन्दुरिवार्णवम्॥23॥

गङ्गाधराचार्य जी ने अपने शिष्य सदानन्दाचार्य जी को षडक्षर राममन्त्र उसी प्रकार प्रदान किया जैसे चन्द्रमा ने बुध को अमृत प्रदान किया था।

रामेश्वरायाऽपि यतीश्वराय गुरुः सदानन्द उदारबुद्धिः।
षडक्षरं तारकराममन्त्रं ददौ यथाऽर्कः स्मितमम्बुजाय॥24॥

उदारबुद्धि सदानन्दाचार्य जी ने अपने शिष्य यतिरामेश्वराचार्य जी को षडक्षर राममन्त्र उसी प्रकार प्रदान किया जैसे सूर्यनारायण कमल को विकास प्रदान करते हैं।

रामेश्वरात्तु तच्छिष्यो द्वारानन्दो गृहीतवान्।
षडक्षरं राममन्त्रं यथाऽऽलोकं रवेर्जगत्॥25॥

रामेश्वरचार्य जी से उनके शिष्य द्वारानन्द जी ने षडक्षर राममन्त्र उसी प्रकार ग्रहण किया जैसे जगत् सूर्यनारायण से प्रकाश ग्रहण करता है।

द्वारानन्दो नैजशिष्यं च देवानन्दं श्रीमद्राममन्त्रेण युक्तम्।
चक्रे चक्रीवेड्यसौभाग्यभाजं कुम्भं चाम्भोराशिना पूर्यमाणम्॥26॥

द्वारानन्द जी ने अपने शिष्य देवानन्द को श्रीराम मन्त्र से युक्त करके उसी प्रकार सौभाग्य का पात्र बनाया जैसे कुम्हार घड़े को बनाकर पकाकर उसे दिव्यजल से पूर्ण कर देता है।

देवानन्दो नन्दिताऽशेषलोकः श्यामानन्दं श्यामरामैकभक्तम्।
युक्तं चक्रे राममन्त्रेण धीमान् जीवं रामश्चात्मना भूषितं वा॥27॥

सम्पूर्ण लोक को आनन्द देने वाले देवानन्द जी ने श्यामवर्णी भगवान् राम के एकमात्र भक्त श्यामानन्द जी को उसी प्रकार श्रीराम मन्त्र से युक्त किया जैसे परमात्मा भगवान् राम जीव के शरीर को जीवात्मा से सुशोभित कर देते हैं।

श्रुतानन्दाय शिष्याय राममन्त्रं प्रदत्तवान्।
श्यामानन्दो यथा सोमं सोमः पादपराशये॥28॥

श्यामानन्द जी ने श्रुतानन्द जी को उसी प्रकार षडक्षर राममन्त्र दिया, जिस प्रकार चन्द्रमा वृक्ष समूह को अमृत प्रदान करते हैं।

ततः श्रुतानन्द उदारकीर्तिः शिष्यं चिदानन्दमुदात्तवृत्तम्।
विभूषयामास षडर्णकेन मन्त्रेण खं चन्द्र इवात्मभासा ॥29॥

इसके अनन्तर उदार कीर्ति वाले श्रुतानन्द जी ने उदात्तचरित्र वाले अपने शिष्य चिदानन्द को श्रीराम मन्त्र से उसी प्रकार सुशोभित किया जैसे चन्द्रमा अपने प्रकाश से आकाश को सुशोभित करता है।

चिदानन्दस्ततो दत्त्वा राममन्त्रं षडर्णकम्।
पूर्णानन्दाय शिष्याय पूर्णं चक्रे सुसंविदा ॥30॥

इसके अनन्तर चिदानन्दाचार्य जी ने अपने शिष्य पूर्णानन्द को श्रीराम मन्त्र प्रदान करके उन्हें अपने ज्ञान से पूर्ण कर दिया।

पूर्णानन्दो रामभक्त्यैव पूर्णो दत्त्वा मन्त्रं रावणारेः षडर्णम्।
शिष्यायास्मै स श्रियानन्दनाम्ने विद्वान् विद्यां मोदमापत् सुपात्राम् ॥31॥

इसके अनन्तर श्रीराम भक्ति से पूर्ण पूर्णानन्द जी ने अपने सुयोग्य शिष्य श्रियानन्द को श्रीराम मन्त्र प्रदान किया और उसी प्रकार प्रसन्न हुये, जैसे विद्वान् सत्पात्र को विद्या देकर प्रसन्न होता है।

प्रेम्णा दत्त्वा राममन्त्रं षडर्णं हर्यानन्दायात्मविद्याधनाय।
स्वामी तुष्टः स श्रियानन्दनामा योग्यः शिष्यः सद्गुरोर्मोदहेतुः ॥32॥

इसके अनन्तर श्रियानन्द जी ने हर्यानन्द जी को श्रीराम मन्त्र प्रदान किया और वे अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि सुयोग्य शिष्य सद्गुरु की प्रसन्नता का कारण बनता है।

हर्यानन्दः सर्वविद्यासमुद्रो विद्यासीम्ने राघवानन्दनाम्ने।
दत्त्वा तस्मै राममन्त्रं षडर्णं दृष्ट्वा तुष्टस्तं वसिष्ठाऽवतारम् ॥33॥

इस प्रकार सभी विद्याओं के समुद्र हर्यानन्द जी ने विद्याओं की सीमा राघवानन्द जी को षडक्षर राममन्त्र प्रदान किया और राघवानन्द जी को श्री वशिष्ठ का अवतार जानकर बहुत प्रसन्न हुए।

मह्यं मह्यं राममन्त्रं प्रदाय स्वामी तुष्टो राघवानन्द ईशः।
दत्त्वा प्रेम्णा स त्रिदण्डं ततो मे स्वाचार्यत्वे चक्र एवाऽभिषिक्तम्॥34॥

इसके अनन्तर मुझ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य महनीय राममन्त्र देकर स्वामी राघवानन्दचार्य जी बहुत प्रसन्न हुये, इसके अनन्तर मुझे प्रेम से त्रिदण्ड देकर मुझको आचार्य पद पर अभिषिक्त कर दिया।

सम्पत्स्येते द्वौ ततो देशिकौ वै मर्यादां मे त्रायमाणौ कथञ्चित्।
तूर्याचार्यो द्रक्ष्यते रामभद्राचार्यो रक्षन् साधु मत्सम्प्रदायम्॥35॥

इसके पश्चात् दो ऐसे आचार्य होंगे जो किसी प्रकार से मेरी मर्यादा की रक्षा करेंगे। चतुर्थ आचार्य होंगे रामभद्राचार्य, जो मेरी मर्यादा की सम्यक् रक्षा करते हुए स्पष्ट दिखेंगे।

सीतारामविशिष्टाद्वैतवादो मे मतः प्रियः।
यत्र रामो घनश्यामो गीयते परदेवता॥36॥

सीताराम विशिष्टाद्वैतवाद ही मेरा प्रिय मत है, जहाँ नील मेघ के समान श्यामल वर्णी भगवान् राम ही पर देवता के रूप में गाये गये हैं।

अत्र त्रीणि प्रमाणानि कथ्यन्ते वेदसम्मतैः।
प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चेति सनातनम्॥37॥

वहाँ वेद सम्मत विद्वानों द्वारा प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण कहे जाते हैं।

प्रत्यक्षेणाऽनुमानेन तथा शब्दबलेन च।
गीयते परमात्माऽसौ विशिष्टाद्वैतवादिभिः॥38॥

विशिष्टाद्वैतवादियों द्वारा ये तीन ही प्रमाण कहे जाते हैं, वे हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

भक्तैः प्रत्यक्षतो ज्ञेयस्तार्किकैरनुमानतः।
आस्तिकैः शब्दतो ज्ञेयो रामो ब्रह्म सनातनम्॥39॥

भक्तों के द्वारा भगवान् का प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञान किया जाता है और तार्किकों के द्वारा अनुमान से और आस्तिकों द्वारा शब्दप्रमाण द्वारा भगवान् का परिज्ञान होता है।

चतुर्युगेषु प्रत्यक्षं भक्तानां भवति प्रभोः।
प्रह्लादः शबरी कृष्णा मीराद्या मानकं ततः ॥40॥

चारों युगों में भक्तों को भगवान् का प्रत्यक्ष होता है, इनके प्रमाण हैं क्रम से प्रह्लाद, शबरी, द्रौपदी और मीरा।

त्रयो विचार्याः सततं सुधीभिर्वेदान्तशास्त्रार्थविचारदक्षैः।
पूर्वं प्रमाता च ततः प्रमेयः परं प्रमाणानि शिवाम्बकानि ॥41॥

वेदान्तशास्त्र के अर्थ एवं विचारों में कुशल पूर्वाचार्यों ने विचार कोटि में तीन विषय स्वीकारे हैं, प्रथम-प्रमाता, अनन्तर प्रमेय पश्चात् शङ्कर जी के नेत्र संख्यक अर्थात् तीन प्रमाण।

जीवः प्रमाता खरजित्प्रमां तां जिज्ञासमानो विगताभिमानः।
त्रिभिः प्रमाणैः प्रयतो यतेत ज्ञातुं हरिं ब्रह्म सदैव रामम् ॥42॥

अभिमानशून्य यह जीव ही खर के शत्रु भगवान् श्रीराम की प्रमा की जिज्ञासा करता हुआ प्रमाता बनकर प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द इन तीन प्रमाणों से पवित्र होकर परब्रह्म हरि भगवान् श्रीराम को जानने का प्रयत्न कर सकता है।

त्रीण्येव तत्त्वानि सदैव बोद्धुं यतेत जीवो गुरुपादनिष्ठः।
चितं तथैवाचितमेव ताभ्यां सदा विशिष्टं हरिमेव रामम् ॥43॥

जीव गुरुदेव के चरणों में निष्ठा धारण करके तीन ही तत्त्वों को जानने का यत्न करता रहे। वे हैं चित, अचित और इन दोनों से विशिष्ट श्रीहरि भगवान् राम।

चिदस्ति जीवः श्रितचेतनाको जीवात्मनामा परमात्ममित्रम्।
भिन्नः स्वरूपेण परात्मनोऽयं सम्बन्धतश्चापि सदा ह्यभिन्नः ॥44॥

चेतना से युक्त यह जीव चित है, इसी का नाम जीवात्मा भी है, यह परमात्मा का मित्र है, स्वरूप से जीवात्मा परमात्मा से सदैव भिन्न अर्थात् पृथक् है और सम्बन्ध से जीवात्मा परमात्मा से अभिन्न है।

ध्वंसाच्च भिन्नो नितरामखिन्नो नित्यश्च जीवः श्रितरामसेवः।
अणुर्लसच्चेतन एव साक्षाद् बहुत्वधर्मा कृतभूरिकर्मा ॥45॥

यह जीव भगवान् के ध्यान से प्रसन्न और भगवान् की सेवा का श्रयण करके सदैव नित्य है, यह अणु है, परन्तु इसकी चेतना सुशोभित रहती है, यह बहुत्व धर्म वाला है और यह शरीरावच्छिन्न होकर बहुत से कर्म करता रहता है।

जीवाः स्वरूपान्नितरामनेके एकस्य रामस्य च दासभूताः।
पूताः परब्रह्मपदारविन्दध्यानाभिभूतास्तनुतः प्रसूताः ॥46॥

जीवात्मा अनेक हैं, वे भगवान् राम के दास हैं, वे पवित्र भगवान् राम के ध्यान से युक्त रहते हैं और शरीरावच्छिन्न होकर जन्म भी लेते हैं।

सिद्धः कठोपनिषदः सुमनुः प्रसिद्धो नित्यत्वलापनपरश्च बहुत्वसूची।
चैतन्यचिन्तनचितिर्ननु जीवलापी आमां त्रयेण कलितः सुयशः कलापी ॥47॥

कठोपनिषद के द्वितीय अध्याय के द्वितीय वल्ली का यह तेरहवाँ मन्त्र सिद्ध भी है और प्रसिद्ध भी। इसमें जीव के नित्यत्व का कथन हुआ है, इसमें जीव के बहुत्व की सूचना दी गयी है और इसमें जीव के चैतन्य की चिति है और इसमें जीव के सुयश समूहों का वर्णन है। यह मन्त्र निम्नांकित है— ओम् नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामे बहूनां यो विदधातिकामान् तमात्मस्थं ये नु पश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शास्वती नेतरेषाम् (कठोपनिषद 2.2.13) यहाँ तीन बार षष्ठी बहुवचन कह करके श्रुति ने यह निश्चित कर दिया कि जीव तीनों कालों में परमात्मा से भिन्न, चेतन और बहुसंख्यक है और परमात्मा तीनों कालों में नित्य, एक, चेतन तथा जीवात्मा के सम्बन्धी है।

श्वेतेन नीलेन च रोहितेन वर्णेन सत्त्वेन रजस्तमोभ्याम्।
गुणैर्गुणज्ञः सगुणो हि जीवः संसेवते राममसौ खरारिम् ॥48॥

इस प्रकार श्वेत, नील और लाल वर्ण से युक्त सत्त्व रजस् और तमस् इन तीन गुणों के साथ गुणज्ञ यह जीव, सगुण होकर खर के शत्रु भगवान् राम की निरन्तर सेवा करता रहता है।

गुणत्रयं चापि चिनोति भोगे चिनोति योगे रघुनाथभक्तिम्।
तस्मात् क्रिया कर्तरि तुक्समेतो जीवो भवेच्चित् किल चेतनाढ्यः ॥49॥

यह जीव संसार यात्रा चलाने के लिये तीनों गुणों का चयन करता है और भगवान् श्री सीताराम जी का संयोग पाने के लिये भगवान् राम की भक्ति का चयन करता है और

भगवद् भजन का आनन्द लेने के लिए चेतना का चयन करता है, इसलिये कर्ता में क्विप् सर्वापहारी लोप और तुक् का आगम होने से इस जीव को चित् कहा जाता है।

जीवात्मनोऽयञ्च यथा शरीरो व्यावर्तकत्वाद्धि विशेषणं वै।
तथैव जीवश्चिदयं खरारेर्विशेषणं ब्रह्मण एव नित्यम्॥50॥

जिस प्रकार यह शरीर इतर से व्यावर्तक होने के कारण जीवात्मा का विशेषण है, उसी प्रकार यह जीव भी परब्रह्म भगवान् श्रीराम का विशेषण है।

आत्मा शरीरं परमात्मनो वै जीवात्मभूतस्तु जगन्नियन्तुः।
स ब्राह्मणे अन्तर्यामिनाम्नि आरण्यके वै बृहति ह्यवादि॥51॥

यह आत्मा परमात्मा का शरीर है और इसी आत्मा का नाम है जीवात्मा। यही तथ्य बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्यामी ब्राह्मण में कहा गया है- 'यस्यात्मा शरीरम्।'

यथा शरीरं न जहाति चात्मा विना शरीरं न कदापि तिष्ठेत्।
तथैव चात्मानमयं न जह्याद् रामः सखायं परमात्मसञ्ज्ञः॥52॥

जिस प्रकार जीवात्मा शरीर को नहीं छोड़ता क्योंकि यह जीवात्मा शरीर के बिना कभी भी नहीं रह सकता, उसी प्रकार परमात्मा श्रीराम भी अपने मित्र जीवात्मा को कभी नहीं छोड़ सकते।

रथस्वरूपे वपुषि प्रकामं द्वौ तिष्ठतः स्यन्दनिसारथी वै।
रथी च जीवो भगवान् हि सूत एको नियम्यो ह्यपरो नियन्ता॥53॥

इस रथस्वरूप शरीर में एक साथ रथी और सारथी की भाँति जीवात्मा और परमात्मा विराजते हैं, जीवात्मा रथी होता है और परमात्मा सारथी। उसमें जीवात्मा नियम्य होता है और परमात्मा नियन्ता होते हैं।

यथा तरोर्नीडगतौ विभातो मित्रीभवन्तौ वरपक्षिणौ द्वौ।
तथैव चैकत्र शरीर एतौ जीवेशसञ्ज्ञौ लसतोऽनवद्यौ॥54॥

जैसे- वृक्ष के एक ही घोंसले में दो मित्र पक्षी रहा करते हैं, उसी प्रकार एक ही शरीर में जीवात्मा और परमात्मा निन्दारहित मित्र बनकर विराजते हैं।

स्वामिभूतो हि जीवात्मा प्रतिदेहं च तिष्ठति।
अन्तर्यामी भवन्नीशः परमात्मा विराजते ॥55॥

प्रत्येक शरीर में जीवात्मा स्वामी बनकर रहता है और परमात्मा अन्तर्यामी होकर विराजते हैं।

अन्तर्यामी हरिः साक्षी तटस्थ इह तिष्ठति।
पश्यन् शुभाशुभे सख्युः कर्मबन्धैर्न बध्यते ॥56॥

प्रत्येक शरीर में श्रीहरि परमात्मा भगवान् राम अन्तर्यामी साक्षी और निष्पक्षपात अपने मित्र जीवात्मा के शुभाशुभ को देखते हुए विराजते हैं और जीव के कर्मबन्धनों से बद्ध नहीं होते।

यथाम्बुभिर्पद्मदलं न लिप्यते स्थितं तटागेऽपि निजस्वभावतः।
तथाऽयमीशोऽपि तनौ स्थितोऽपि सन् न लिप्यते जीवकृतैः शुभाशुभैः ॥57॥

जिस प्रकार सरोवर में रहता हुआ भी कमल पत्र जल से नहीं लिप्त होता उसी प्रकार परमात्मा शरीर में रहते हुए भी जीव के किये हुए शुभाशुभ कर्म फलों से नहीं लिप्त होते।

समं वसन्तावपि मित्रभावे जीवेश्वरौ भिन्नरुची निसर्गात्।
भुञ्जान एकः करुणं विरौति नाश्नंस्तथैको न कदाऽपि खिन्नः ॥58॥

मित्रभाव से एक ही साथ रहते हुए भी जीवात्मा और परमात्मा स्वभाव से भिन्न रुचि वाले हैं, जीवात्मा कर्म फलों का भोग करता हुआ भी करुण क्रन्दन करता रहता है और परमात्मा सुख दुःखों का भोग न करते हुए भी सदैव प्रसन्न रहते हैं।

बद्धश्च मुक्तश्च तथैव नित्यो जीवस्तु भेदैस्त्रिभिराचकास्ति।
भ्राम्यञ्छरव्योमपुमर्थलोकाधिपाख्ययोनिष्वधिकर्मपासम् ॥59॥

चौरासी लाख योनियों में अपने कर्म बन्धों में फँसकर भ्रमण करता हुआ यह जीव बद्ध, मुक्त और नित्य इन तीन भेदों से युक्त होकर तीन प्रकार का हो जाता है।

यो मायया विस्मृतसत्स्वरूपो बद्धः सदा दारुणकर्मपाशैः।
कामं भजन् वै विमुखः खरारेर्जीवः स बद्धो गदितस्त्रिलोक्याम् ॥60॥

जो वैष्णवी माया से अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर श्रीराम के चरणों से विमुख होकर केवल काम वासना का सेवन करता रहता है, वह जीव तीनों लोकों में बद्ध कहा गया है।

गुरुप्रसादाच्च सतां कृपातो यो मोहबन्धात् सहसा विमुक्तः।
यथा कुरङ्गो दृढवागुरातो भजेत रामं कथितः स मुक्तः ॥61॥

सद्गुरु के प्रसाद तथा सन्तों की कृपा से जो सहसा जाल से मुक्त हुए मृग की भाँति मोह बन्धन से विमुक्त होकर भगवान् राम का भजन करता है वह जीव विद्वत्जन द्वारा मुक्त कहा गया है।

दिवानिशं यो नयानाभिरामं सीताभिरामं स्मरतीह रामम्।
संसेवते तच्चरणारविन्दं नित्यः स जीवो गदितो बुधाग्र्यैः ॥62॥

जो दिन-रात नेत्रों को आनन्द देने वाले सीताभिराम भगवान् राम का स्मरण करता रहता है और उनके श्री चरणकमलों की सेवा करता रहता है, उस जीव को विद्वान् नित्य जीव कहते हैं।

मायामचित्तत्त्वमसत्स्वरूपां विदाङ्कुरुध्वं प्रकृतिं प्रकृष्टाम्।
चलस्वभावां परिणामिनीं च या मोहयत्याऽऽशु समस्तलोकान् ॥63॥

हे बालकों! अब तुम क्षणभङ्गुर स्वरूप वाली प्रकृष्ट माया को ही अचित् तत्त्व समझो। जिसका स्वभाग चञ्चल है, जो परिणामिनी है, जो शीघ्र ही समस्त लोकों को मोहित कर लेती है।

इयं जगज्जातु चराचरञ्च सृजत्यवत्यत्ति गुणैरजस्रम्।
सत्त्वं रजश्चापि तमस्तदीया गुणा निबध्नन्ति च जीवजातम् ॥64॥

यही प्रकृति अचित् तत्त्व माया अपने गुणों से जगत् की रचना करती है, जगत् का पालन करती है और जगत् का संहार कर डालती है। सत्त्व रजस् और तमस् ये तीनों गुण प्रकृति के हैं, ये सम्पूर्ण जीव लोक को अपने बन्धनों से बाँधे रखते हैं।

ज्ञानस्य सङ्गेन सुखात्मकेन सङ्गेन वै देहिनमप्यसङ्गम्।
बध्नाति सत्त्वाख्यगुणः शठोऽयं यथा गजं हस्तिपको गुणाभ्याम् ॥65॥

यह दुष्ट सत्त्वगुण ज्ञान की आसक्ति से और गुण की आसक्ति से इस अनासक्त देहधारी जीव को उसी प्रकार बाँध लेता है, जैसे महावत मतवाले हाथी को दो रस्सियों से बाँधकर रखता है।

रजोगुणोऽयं रजसोपपन्नस्तृष्णासमासक्तिलसच्छरीरः।
हठान्निबध्नाति शरीरिणं वै स्वकर्मसङ्गेन च जीवजातम्॥66॥

रजोमयी वासना से युक्त यह रजोगुण जिसका शरीर तृष्णा के आसक्ति से उत्पन्न है, इस शरीरधारी जीव समूह को कर्म की आसक्ति द्वारा हठपूर्वक बाँध लेता है।

अज्ञानजश्चैव तमोगुणोऽयं विमोहनः सर्वशरीरिणां च।
आलस्यनिद्राप्रथितप्रमादैर्जीवं निबध्नाति यथाऽलिमब्जम्॥67॥

अज्ञान से उत्पन्न सभी प्राणियों को मोहित करने वाला यह तमोगुण जीव को आलस्य, निद्रा एवं प्रमाद से उसी प्रकार बाँध लेता है जैसे कमल रूप रस एवं सुगन्ध से भ्रमर को बाँध लेता है।

एभिर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्निबद्धजीवं प्रकृतिर्बलिष्ठा।
पेपिष्यते पिष्टमपीव योषा यवं बलात् पेशकयन्त्रकेऽद्धा॥68॥

इन्हीं सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुणों से इस जीव को बाँधकर बलवती प्रकृति इसे बार-बार उसी प्रकार पीसती रहती है, जैसे कोई महिला पीसने वाले यन्त्र जाँत में जौं को पीसती है।

यो रामचन्द्रं सुषमासमुद्रं सीतासमेतं करुणानिकेतम्।
संसेवते भक्तिमतात्मना च स मुच्यते प्राकृतकर्मबन्धात्॥69॥

जो जीव शोभा के सागर करुणा के भवन सीता जी के सहित भगवान् श्रीराम को भक्ति युक्त हृदय से भजता है वह प्रकृति के कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

विमुक्तसंसारविकारजातः सञ्जातविज्ञानमयप्रभातः।
गुणानतीत्य प्रकृतिप्रसूतान् प्रपद्यते रामपदारविन्दम्॥70॥

इस प्रकार जीव संसार के विकार समूहों से विमुक्त होकर अनुभवमय प्रातः काल को प्राप्त करके, प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों को लाँघकर भगवान् श्रीराम के चरणकमल को प्रपन्न हो जाता है।

चिताचिता चापि सदा विशिष्टाद्वैतं परब्रह्म कृपानिधानम्।
राम रमाराधितपादपद्मं पद्माश्रयं पद्ममुखं भजाम॥71॥

हे मेरे बारह शिष्यों जो चित् और अचित् इन दोनों से विशिष्ट अद्वैत परब्रह्म राम हैं, वे ही कृपा के विधान हैं, लक्ष्मी उन्हीं के चरणकमल का आराधन करती हैं, जिनका मुख कमल के समान है तथा जो स्वयं हाथ में कमल ली हुई, सीता जी के आश्रेय हैं, उन्हीं कमल मुख भगवान् श्रीराम का हम गुरु शिष्य भजन करें।

यद् ब्रह्मवेदान्तनये विशिष्टाद्वैतं चिता चाप्यप्यचिता विशिष्टम्।
जीवात्मनश्च प्रकृतेः परस्तात् तदेव रामाख्यमथो भजाम॥72॥

जो ब्रह्म वेदान्त सिद्धान्त में विशिष्टद्वैत है, वह चित् और अचित् इन दोनों तत्त्वों से विशिष्ट है। जो जीवात्मा और प्रकृति इन दोनों से परे है, उसी श्रीराम-नामक परब्रह्म का हम भजन करें।

तत्कारणं ब्रह्म तथैव कार्यं द्वाभ्यां भिदाभ्यां द्वितयं विभाति।
एकं च साकेतनिकेतकेतं श्रीकोसलायां ह्यपरं गुणाढ्यम्॥73॥

वह ब्रह्म कारण भी है, कार्य भी है, वह एक होता हुआ भी इन दो भेदों के कारण दो प्रकार का दिखता है। एक साकेतवासी भगवान् श्रीराम के रूप में और दूसरा श्री अयोध्या में अवतार श्रीराम के रूप में।

व्याख्यामि यद्वा स्वगुरुं कृपालुं ध्यायं धिया राघवपूर्वमीड्यम्।
अपूर्ववात्सल्यसुधामहाब्धिं समस्तशास्त्रार्थमहोदधिं च॥74॥

अथवा अपने कृपालु साकेतवासी अपूर्व वात्सल्य के महासागर और समस्त शास्त्रार्थों के महासमुद्र परमपूज्य राघवानन्द जी का ध्यान करके इस तथ्य की मैं अन्य प्रकार से भी व्याख्या कर रहा हूँ।

यत्कारणं ब्रह्म पुराणगुह्यं यद्वेदमन्त्रेषु सदैव गीतम्।
तत्कारणं ब्रह्म समामनन्ति रामं धनुर्बाणधरं द्विबाहुम्॥75॥

जो कारणब्रह्म पुराणों में गुह्य है और जो वेद मन्त्रों में सदैव गान का विषय बना रहा है, वही कारणब्रह्म धनुर्बाणधारी द्विभुज भगवान् राम ही हैं। इस प्रकार सन्तजन मनन करते हैं।

तदेव वै नारदपाञ्चरात्रं जेगीयते स्पष्टमुदारयुक्त्या।
सङ्कीर्त्यमानं मुनिभिः सशिष्यैः पुराणरत्नेषु तथाऽऽगमेषु॥76॥

उन्हीं द्विभुजब्रह्म श्रीराम को नारदपाञ्चरात्र अपनी उदारयुक्ति से सतत गाया करता है और शिष्यों के सहित महर्षिगण भी उसी द्विभुजब्रह्म का कीर्तन किया करते हैं और वही द्विभुजब्रह्म श्रेष्ठ पुराणों में और आगमों में भी गाया गया है।

त्रेधा परब्रह्म महीयमानं समुज्जगौ नारदपाञ्चरात्रम्।
स्थूलं च सूक्ष्मं च परात्परञ्च ध्यानास्पदं यद्धि महात्मनां वै॥77॥

नारद पाञ्चरात्र में कहागया है कि यह पूजनीय परब्रह्म तीन प्रकार का है, स्थूल, सूक्ष्म और परात्पर। यही महात्माओं के ध्यान का आश्रय भी है।

स्थूलं परब्रह्म सदाष्टबाहु सूक्ष्मं परब्रह्म चतुर्भुजञ्च।
परात्परब्रह्म निगद्यते यद् द्विबाहुरूपं ननु रामनाम॥78॥

स्थूलब्रह्म आठ भुजाओं वाला होता है और सूक्ष्मब्रह्म चतुर्भुज होता है, परन्तु परात्पर परब्रह्म दो भुजाओं वाला कहा जाता है और वही द्विभुज ब्रह्म हैं भगवान् श्रीराम।

शुक्ले यजुर्वेद उदाजहार मन्त्रोऽयमाध्यायक एकत्रिंशे।
अनुष्टुभिच्छन्दसि रुद्रसंख्यः संख्यातसद्ब्रह्मसुखस्वरूपः॥79॥

शुक्ल यजुर्वेद में इक्तीसवें अध्याय में अनुष्टुप् छन्द में ब्रह्म के सुखमय स्वरूप का वर्णन करता हुआ ग्यारहवाँ मन्त्र भगवान् के द्विभुज स्वरूप का ही स्पष्ट निरूपण कर रहा है।

वर्णो मुखाद् ब्राह्मणनामधेयो नृपो भुजाभ्यां समभूत् खरारेः।
ऊरोर्हरेः स्यान्ननु वैश्यवर्णो शूद्रश्च पद्भ्यां समभूत् प्रभोश्च॥80॥

भगवान् के मुख से ब्राह्मण वर्ण प्रकट हुआ और श्रीराम की दोनों भुजाओं से क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। भगवान् के ऊरु, अर्थात् जङ्घों से वैश्य वर्ण उत्पन्न हुआ और भगवान् के चरणों से चतुर्थ वर्ण की उत्पत्ति हुई।

अमुत्र मन्त्रे श्रुतिरेव साक्षाद् गायत्यदो ब्रह्म लसद्द्विबाहु।
बाहू इतीत्यत्र सुशब्दखण्डे भ्यामर्थ एवौङ् प्रसभं ब्रुवाणा॥81॥

शुक्लयजुर्वेद के एकतीसवें अध्याय के ग्यारहवें मन्त्र में 'बाहू राजन्यः कृतः' इस शब्द खण्ड में पञ्चमी द्विवचन 'भ्याम' के अर्थ में 'औ' यह प्रथमा द्विवचन का आख्यान करती हुई भगवती श्रुति परब्रह्म को दो भुजाओं वाला कह रही हैं।

मन्त्रेषु कुत्रापि च सांहितेषु प्रोक्तश्चतुर्बाहुतया न चेशः।
रामः परब्रह्म लसद्द्विबाहुः परात्परो वा असकृत्प्रगीतः॥82॥

वेद के संहिता भाग के किन्हीं भी मन्त्रों में भगवान् को चतुर्भुज रूप में नहीं कहा गया है। संहिता के मन्त्रों में श्रुति ने बार-बार भगवान् को द्विभुज ही कहा है। जैसे—"बाहू राजन्यः कृतः, संबाहुभ्यां धमति संपत्त्रैः।"

परात्परं ब्रह्म लसद्द्विबाहु रामोऽभिरामो भजनीय एव।
श्रुतिस्मृतिभ्यां सुविनिश्चितोऽयं सिद्धान्त आध्यात्मिकसारविद्भिः॥83॥

अतएव दो भुजाओं से सम्पन्न, सबको आनन्द देने वाले, परात्पर ब्रह्म भगवान् राम ही भजनीय हैं, यही सिद्धान्त श्रुतियों और स्मृतियों से आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ताओं द्वारा सर्वथा निश्चित किया गया है।

यत्कारणं ब्रह्म स एव रामः साकेतलोकेऽप्यवधे विभाति।
स एव नित्यं चिदचिद्विशिष्टाद्वैतं परब्रह्मतया प्रक्लृप्तः॥84॥

जो कारण ब्रह्म है, वही हैं भगवान् राम, वे ही साकेत लोक तथा अवध में सुशोभित हो रहे हैं, उन्हीं को वेदान्त में चित् अचित् से विशिष्ट अद्वैत परब्रह्म रूप में कहा गया है।

कार्यब्रह्म समाख्याता सीताजनकनन्दिनी।
चिताऽचिता विशिष्टा सा परब्रह्म प्रकीर्त्यते॥85॥

जनकनन्दिनी सीता जी भी कार्य ब्रह्म हैं। वे भी चित् अचित् से विशिष्ट हैं और वे भी परब्रह्म हैं।

रामो विशिष्टो जगदेक हेतुः सीता विशिष्टा ननु कार्यरूपा।
विशिष्टयोश्चापि तयोर्यदाहुरद्वैतमेवेह तदेव सत्यम्॥86॥

भगवान् श्रीराम जगत् के कारणस्वरूप परब्रह्म हैं और सीता जी भी चिद्‌चिद्‌विशिष्ट होकर कार्यरूप परब्रह्म हैं।

सीतारामौ विशिष्टौ द्वौ चिदचिद्भ्यां निरन्तरम्।
तयोरद्वैतमित्येव विशिष्टाद्वैतमुच्यते ॥87॥

इस प्रकार भगवती सीता जी और भगवान् श्रीराम ये दोनों ही चित् अचित् से विशिष्ट हैं और इन्हीं दोनों का अद्वैत अर्थात् एकत्व विशिष्टद्वैत है।

न चाद्वैतं भवेत् क्वापि त्रिकाले ब्रह्मजीवयोः।
श्रीसीतारामयोरेवमद्वैतं स्याद् विशिष्टयोः ॥88॥

ब्रह्म और जीव का अद्वैत त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है। अद्वैत तो चिद्चिद् विशिष्ट श्री सीताराम जी का ही हो सकता है।

रामः सीता वेदगीता विनीता
सीता रामो लोकनेत्राभिरामः।
लीलायां तौ दृश्यमाणौ पृथक्त्वे
नेमौ भिन्नौ वारिवीची यथा वै ॥89॥

भगवान् राम ही वेदों द्वारा गायी हुई विश्वासपात्र भूता सीता हैं और भगवती सीता ही लोगों के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् राम हैं, ये दोनों लीला में पति-पत्नी के रूप में अलग-अलग दृष्टिगोचर होते हैं, वस्तुतः ये दोनों उसी प्रकार परस्पर अभिन्न हैं जैसे-जल और तरङ्ग।

श्रीलक्ष्मणेनैव चिता विशिष्टौ विभूषणैश्चापि
शुभैरचिद्भिः।
विशिष्टयोरेव तयोर्विशिष्टाद्वैतं हि वेदान्तविदो
वदन्ति ॥90॥

भगवती श्रीसीता एवं भगवान् श्रीराम ये दोनों चित् स्वरूप लक्ष्मण जी से और अचित् आभूषणों से विशिष्ट हैं, इन्हीं दोनों श्रीसीताराम का अद्वैत विशिष्टाद्वैत है। ऐसा वेदान्त के विद्वान् कहते हैं।

विशिष्टाद्वैतवादो हि सिद्धान्तो भाति भासुरः।
मामकीने सम्प्रदाये श्रीसीतासम्प्रवर्तिते ॥91॥

वस्तुतः श्रीसीता जी द्वारा प्रवर्तित मुझ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के सम्प्रदाय में ही विशिष्टाद्वैत वाद सिद्धान्त पूर्ण रूप से घटित होता है।

विशिष्टाद्वैतवादे हि नित्यं त्रित्वमपेक्ष्यते।
श्रीरामपरिवारे हि तच्च जागर्ति नित्यशः॥92॥

विशिष्टाद्वैत वाद में तीन वस्तु चाहिये, वह केवल श्रीराम परिवार में ही जागृत हो रही हैं।

रामलक्ष्मणसीतानां त्रित्वं जगति विश्रुतम्।
तस्माद् रामोपासनायां विशिष्टाद्वैतमुज्ज्वलम्॥93॥

श्रीराम, श्रीलक्ष्मण एवं श्रीसीता का त्रित्व जगत् में विश्रुत है। यहाँ तीन श्रीराम, लक्ष्मण, सीता स्पष्ट दिख रहे हैं, इससे श्रीरामोपासना में ही विशिष्टाद्वैत सुस्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है।

श्रीरामोपासनायां वै सीताऽपि ब्रह्म कथ्यते।
कार्यब्रह्मतया नूनं नात्र कार्या विचारणा॥94॥

श्रीरामोपासना में सीता जी भी भगवान् हैं, क्योंकि वे कार्यब्रह्म हैं, इसमें किसी भी प्रकार की विचारणा नहीं करनी चाहिये।

श्रीसीता धरणीसुता भगवती वात्सल्यवारान्निधिः
कार्यब्रह्म तु सा सुशक्तिमहिता कारुण्यकादम्बिनी।
श्रीरामोऽपि रमार्चिताङ्घ्रिजलजो यद्ब्रह्म वै कारण-
मद्वैतं च विशिष्टयोरपि तयोः सद्ब्रह्मणो रामयोः॥95॥

पृथ्वी की पुत्री वात्सल्य की महासागर स्वरूपा भगवती सीता, जो कि सभी शक्तियों से पूजित और करुणा की मेघमाला हैं, वही कार्यब्रह्म हैं और लक्ष्मी जी जिनके चरणकमल की पूजा करती हैं, वही भगवान् राम कारण ब्रह्म हैं, इन्हीं कार्यब्रह्म और कारणब्रह्म श्रीसीताराम जी का अद्वैत अर्थात् ऐक्य विशिष्टाद्वैत है।

श्रीलक्ष्मणोऽत्र चित्तत्त्वं सर्ववेदान्तविश्रुतम्।
मायासीताप्यचित्तत्त्वं सीतारामविशेषणम्॥96॥

यहाँ श्रीलक्ष्मण ही चित् तत्व हैं जो सम्पूर्ण वेदान्त में प्रसिद्ध हैं और माया की सीता

अचित् तत्त्व हैं, जो ब्रह्मरूप श्रीसीताराम जी की विशेष्य हैं।

विशिष्टाद्वैतवादोऽयं श्रीरामोपासनानये।
सर्वभावेन निष्पन्नः श्रद्धद्ध्वं सुधियः समे॥97॥

यह विशिष्टाद्वैतवाद एकमात्र श्रीरामोपासना में ही सब प्रकार से निष्पन्न हो जाता है। इसलिये सभी सुधी जन श्रीरामोपासना में ही श्रद्धा रखें।

स ईश्वरो ब्रह्म परात्परः सन् रामो विभुः पञ्चविधो विभाति।
तद्भेदविस्तारमथो श्रृणुध्वं श्रीरावणारेर्भजनं कुरुध्वम्॥98॥

भगवान् श्रीराम परब्रह्म परात्पर विभु और ईश्वर हैं उन्हीं के पाँच भेद कहे जा रहे हैं, उस भेद विस्तार को तुम लोग सुनो और रावण के शत्रु भगवान् श्रीराम का भजन करो।

परो व्यूहश्च विभवः, अन्तर्यामी महाप्रभुः।
अर्चावतार इत्येवं रामः पञ्चविधो हरिः॥99॥

भगवान् महाप्रभु श्री हरि के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा में पाँच भेद हैं।

साकेतलोके सततं बिहारी रामः परः शाश्वतसीतया च।
संसेव्यमानो विगताभिमानश्चापं शरं तूणयुगं दधानः॥100॥

साकेतलोक में नित्य सीता जी के साथ निरन्तर विहार करने वाले धनुष बाण एवं दो तर्कश धारण करने वाले भगवान् राम पर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं।

व्यूहांश्च रामस्य शुभांशभूतान् पूतांश्च यूयं चतुरः श्रृणुध्वम्।
शब्दप्रमाणेन निगद्यमानान् सद्ब्रह्मरूपान् जगदेकभूपान्॥101॥

हे मेरे बारह मुख्य शिष्यों अब शब्द प्रमाण के आधार पर मेरे द्वारा कहे जाने वाले जगत् के एकमात्र शासक ब्रह्म रूप भगवान् राम के साक्षात् अंश परम पवित्र चार व्यूहों को सुनो।

वासुदेवश्च प्रथमस्ततः सङ्कर्षणः स्मृतः।
प्रद्युम्नश्च तृतीयः स्यादनिरुद्धश्चतुर्थकः॥102॥

भगवान् राम के चार व्यूहों में प्रथम हैं– वासुदेव, द्वितीय हैं– संकर्षण, तृतीय हैं– प्रद्युम्न और चतुर्थ हैं– अनिरुद्ध।

श्रीवासुदेवो भरतः प्रकीर्तितः सङ्कर्षणो लक्ष्मण आदृतः स्मृतः।
प्रद्युम्न उक्तो ननु शत्रुसूदनः प्रोक्तोऽनिरुद्धो हनुमान् महाबलः॥103॥

चारों व्यूहों में भरत जी ही वासुदेव व्यूह हैं, लक्ष्मण जी संकर्षण व्यूह हैं, शत्रुघ्न लाल जी प्रद्युम्न व्यूह हैं और महाबली हनुमान् जी अनिरुद्ध व्यूह हैं।

श्रीरामचन्द्रस्य शुभावतारा अंशावतंसा विहितप्रशंसाः।
ज्ञानक्रियाशक्तिसमेधिताभा ज्ञेया इमे वै विभवाः सरामाः॥104॥

भगवान् राम के मङ्गलमय अवतार जो प्रभु के श्रेष्ठ अंश हैं, जिनकी शास्त्रों में प्रशंसा की गयी है, जहाँ ज्ञान, क्रिया और शक्ति से प्रकाश का संवर्द्धन हुआ है, वे भगवान् राम के सहित सभी अवतार विभव कहे जाते हैं, अर्थात् अवतारी रूप में भगवान् राम पर और अवतार रूप में विभव हैं।

सर्वेषामेव जीवानां हृदि जीवात्मना सह।
अन्तर्यामीभवन् रामश्चतुर्थो राजते हरिः॥105॥

सम्पूर्ण जीवों के हृदय में जीवात्मा के साथ भगवान् राम शुभाशुभ कर्मों का निरीक्षण करते हुए चतुर्थ अन्तर्यामी रूप में विराजते हैं।

अर्चावतारो हृतभूरिभारो रामोऽभिरामो ननु पञ्चमो वै।
मूर्तिष्वनेकासु विनिर्मितासु श्रीचित्रकूटादिकधामगासु॥106॥

भगवान् श्रीराम सीता जी के सहित शङ्कर भूभार को दूर करते हुए अर्चावतार के रूप में पाषाण शिला, दारु अर्थात् लकड़ी, लौह अर्थात् भिन्न-भिन्न धातुओं द्वारा, चित्रपट के रूप में चन्दनादि से निर्मित मृत्तिका से रचित मानसी और मणियों से निर्मित इन आठ प्रकारों से रचित श्री चित्रकूट, अयोध्या आदि धामों में विराजमान और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों, नगरों और ग्रामों के मन्दिरों में विराजमान, अनेक मूर्तियों में श्रीसीताराम जी अर्चावतार के रूप में विराजते हैं।

युष्मध्यमेवं विमलं रहस्यं सीताभिरामस्य च राघवस्य।
जगद्गुरुः स्वामिवरश्चरामानन्दोऽहमाख्यं जगतो भवाय॥107॥

इस प्रकार से जगत् के कल्याण के लिये मैंने (जगत्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य ने) तुम बारह मुख्य शिष्यों को माध्यम बनाकर सीताभिराम भगवान् राम का यह निर्मल रहस्य सुनाया।

मधुरमधुरमेतं सूपदेशं निशम्य
मुखकमलमरन्दं श्रीयतीन्द्रेश्वराणाम्।
क्षपितशमलमोहा भानुसङ्ख्याः सुशिष्या
गुरुवरपदपद्मं भक्तियुक्ताः प्रणेमुः॥108॥

इस प्रकार जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी के मुखकमल के मकरन्द रूप श्रेष्ठ उपदेश को आदरपूर्वक सुनकर जिनके सभी दोष और मोह नष्ट हो गये हैं, ऐसे जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी के बारह मुख्य शिष्य अर्थात् अनन्तानन्दाचार्य, सुरसुरानन्दाचार्य, सुखानन्दाचार्य, नरहर्यानन्दाचार्य, योगानन्दाचार्य, पीपाप्रताप, कबीरदास, भावानन्दाचार्य, सेन, धना, गालवानन्दाचार्य एवं रैदास जी ने भक्तियुक्त होकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के चरणकमल में प्रणाम किया।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये
गायद्गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सर्गः षड्विंशो यतिपतिगुणगणगरिमा
सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥109॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यवैष्णवसार्वभौम महाकविरामभद्राचार्यप्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये षड्विशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

॥अथ सप्तविंशः सर्गः॥

अथ स्वशिष्यैर्महितश्च रामानन्दो महाभागवतप्रधानः।
उदारवृत्तैर्ललितैर्मनोज्ञैस्तुष्टाव गङ्गां तरलत्तरङ्गाम्॥०१॥

इसके अनन्तर अपने शिष्यों से सुशोभित महाभागवतों में प्रधान जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने सुन्दर, ललित, उदार छन्दों से चञ्चल तरङ्गों वाली गङ्गाजी की स्तुति की।

महिम्नस्तेऽपारं सकलसुखसारं त्रिपथगे
प्रतर्तुं कूपारं जगति मतिमान् पारयति कः।
तथापि त्वत्पादाम्बुजतरणिरज्ञोऽपि भवितुं
समीहे तद्विप्रुद्क्षपितभवपङ्कः सुरधुनि॥०२॥

हे त्रिपथगे! अर्थात् स्वर्ग, पाताल और मर्त्यलोक इन तीनों लोकों में विराजमान माँ गङ्गे सम्पूर्ण सुखों के सार स्वरूप आपकी महिमा के अपार महासागर को पार करने के लिए भला इस संसार में कौन बुद्धिमान् सक्षम हो सकता है, तथापि हे देवसरिते! मैं अज्ञ होकर भी आपके श्रीचरणकमलरूप नौका का अवलम्ब लेकर आपकी ही महामहिमा के उस महासागर के कतिपय बिन्दुओं से अपने भवपङ्क अर्थात् सांसारिक मोह के कीचड़ को नष्ट करने की चेष्टा मात्र करता हूँ क्योंकि आपके गुणगान से जीव का संसार-मल समाप्त हो जाता है।

समुद्भूता भूम्नश्चरणवनजातान्मधुरिपो-
स्ततो धातुः पात्रे गदितगुणगात्रे समुषिता।
पुनः शम्भोश्चूडासितकुसुममालायिततनुः
सुरांस्त्रीन् सत्कर्तुं किल जगति जागर्षि जननि॥०३॥

हे माँ गङ्गे! आप सर्वप्रथम वेदवेद्यभूमा मधुसूदन भगवान् नारायण के चरणकमल से प्रकट हुईं। तदनन्तर जिस कमण्डलु के प्रत्येक अङ्ग की गुणावलि का गान वेदों ने किया

हैं, भगवान् ब्रह्माजी के उसी पवित्र जलपात्र (कमण्डलु) में विश्राम लिया, पुनः भगवान् शङ्कर की चूड़ामणि की कुसुममाला बनकर आपने अलौकिक शोभा प्राप्त की। वस्तुतः इन तीनों देवताओं को सम्मानित करने के लिए ही आप संसार में जागरूक हैं, क्योंकि यदि आपकी पूर्वोक्त ये तीनों लीलाएँ न रही होतीं तो कदाचित् विधि हरिहर का इतना सम्मान न होता।

तवैश्वर्यं स्वर्योषिदमलशिरोगुच्छविगलत्-
प्रसूनव्यालोलन्मधुकरसमुद्गीतचरिते।
न चेशो भूतेशः पुनरथ न शेषो न च गुरुः
परिज्ञातुं वक्तुं जननि मम धृष्टा मुखरता॥०४॥

हे माँ भागीरथी! देववधुओं के शिरों के गुच्छों से गिरते हुए नन्दनवन के पुष्पों पर मँडराने वाले भ्रमरों ने जिनके सुन्दर चरित्रों का उद्गीथ गान किया है ऐसी आपश्री के महामहिम ऐश्वर्य को पूर्ण रूप से जानने एवं कहने में जहाँ स्वयं भगवान् शङ्कर, भगवान् शेष तथा देवगुरु बृहस्पति भी न समर्थ हों, वहाँ मैं कुछ कहने का साहस करूँ- यह विडम्बना ही तो है, क्योंकि मुखरता स्वयं बहुत धृष्ट (ढीठ) होती है।

अनङ्गारेरङ्गे कृतरमणरङ्गे शुचितया
समाभग्नासङ्गे विहितभवभङ्गे तु भजताम्।
विनश्यद्व्यासङ्गे प्रणतजनतायाः स्वपयसा
तरङ्गप्रोत्तुङ्गे ननु जगति गङ्गे विजयसे॥०५॥

भगवान् शङ्कर के उत्तमाङ्ग (शिरोभाग) में अनुकूल क्रीड़ारङ्ग भूमिका निर्माण वाली अपने भक्तों की संसारासक्ति को नष्ट करके उन्हें भवभय से मुक्त करने वाली, अपने चरणसेवकों के वेदविरोधी व्यसनों को नष्ट करने वाली एवं अपनी विशाल तरङ्गों के कारण विपुल सम्पन्न हे गङ्गे! आप संसार में सर्वश्रेष्ठ भगवद्रूप में विराज रहीं हैं। आपकी जय हो।

हरन्ती सन्तापं त्रिविधमथ पापं जलजुषां
दिशन्ती सन्देशं क्षपितभवक्लेशं सुकृतिनाम्।
तुदन्ती नैराश्यं कलुषमथ दास्यं प्रददती
विलोलत्कल्लोले विबुधवरवीथिर्विजयसे॥०६॥

हे लोललहरों वाली माँ गङ्गे! अपने सुधामय जल का सेवन करने वालों के संताप एवं कायिक, वाचिक, मानसिक— इन तीनों पापों को हरण करती हुई तथा परमबड़भागी अपने भक्तों को भव बन्धन से रहित दिव्य ब्रह्मसन्देश देती हुई एवं भावुकों की निराशा एवं उनके कालुष्य को समाप्त करके उन्हें अपनी सेवा का अधिकार प्रदान करती हुई ऐसी सर्वश्रेष्ठ देवनदी के रूप में विराजमान माँ गङ्गे! आपकी जय हो।

ददाना वात्सल्यं शमितशमशल्यं स्वपयसा
दधाना तारुण्यं तरुणकरुणापूर्णहृदया।
वसाना कौशेयं शशिनिभममेयं भगवति
पुनाना त्रैलोक्यं जयसि ननु भागीरथि शुभे॥०७॥

हे भगवती! भागीरथी! हे कल्याणमयि माँ गङ्गे! इन्द्रियों की विजय में आने वाले विघ्नों के नाशक अपने दिव्य वात्सल्य को प्रदान करती हुई एवं जलधाराओं की दृष्टि से निरन्तर नवीनता को धारण करती हुई नित्य नूतन करुणापूर्ण हृदयवाली तथा चन्द्रमा के समान धारण करती हुई एवं तीनों लोकों को पवित्र करती हुई आप माँ गङ्गा की निरन्तर जय हो जय हो।

निराकारं केचित् प्रणिदधत आवर्जितधियो
नराकारं चान्ये प्रणतिरतिधन्ये स्वमनसि।
त्रिभिस्तापैस्तप्ताः पुनरथ परं केचन वयं
सदा नीराकारं सुरनदि भजामस्तव पदम्॥०८॥

हे देवनदी! कुछ लोग विषयों से बुद्धि को हटाकर निराकार ब्रह्म का यौगिक प्रक्रिया से ध्यान करते हैं तथा कुछ लोग विनम्र एवं भक्ति से धन्य किये हुए अपने निर्मल मन में, निराकार ब्रह्म का श्रीरामकृष्णादि रूप में भजन करते हैं किन्तु हे भागीरथी! हम कुछ ऐसे लोग हैं जो तीनों तापों से तप्त होकर निराकार अर्थात् साक्षात् जलरूप में परिणत ब्रह्मद्रवरूप आपकी ही उपासना करते हैं।

न जाने वागीशं नहि किल शचीशं न च गुहं
न जाने गौरीशं नहि किल गणेशं नहि गुरुम्।
न चैवान्यान्देवान् प्रियविविधसेवान् त्रिपथगे
सदा रामाभिन्नं ननु जननि जाने तव जलम्॥०९॥

हे त्रिपथगामिनी! मैं वागीश अर्थात् ब्रह्मा जी को नहीं जानता और न ही मैं शचीश अर्थात् इन्द्र को और न ही गुह अर्थात् कार्तिकेय जी को जानता हूँ, मैं गौरीश भगवान् शङ्कर तथा गणेश एवं बृहस्पति को भी नहीं जानता। हे माँ! जिन्हें अनेक सेवाएँ प्रिय हैं ऐसे अन्य वेदविहित तैंतीस करोड़ देवताओं को नहीं जानता। मैं तो केवल भगवान् श्रीराम से अभिन्न आपके जलमात्र को जानता हूँ और आपके जल को ही श्रीराम रूप मानता हूँ।

पचत्कायक्लेशं विविधविधकर्मभ्रममलं
हरन्मायालेशं रविसुतनिदेशं विफलयत्।
द्रुतं विघ्नव्रिघ्नान् कुटिलकलिनिघ्नान् विकलयन्
महामोहं गङ्गे! जयति भुवि ते जाह्नवि! जलम्॥१०॥

हे जह्नुपुत्रि! हे माँ गङ्गे! शरीर के पाँच क्लेशों एवं वैदिक कर्मों में आने वाले भ्रम तथा अज्ञानजनित मल को हरता हुआ अर्थात् समाप्त करता हुआ तथा माया के सम्बन्ध को विनष्ट करता हुआ एवं सूर्यपुत्र यमराज के आदेश को विफल करता हुआ तथा कुटिल कलिकाल के अधीनस्थ अनेक विघ्नों को शीघ्रता से विनष्ट करता हुआ एवं महामोह को व्याकुल करता हुआ आपश्री गङ्गा माँ अलौकिक जल सर्वश्रेष्ठ है, उसकी जय हो।

उदन्वन्नैराश्यं दमयितुमथाविष्कृततनो
र्मनोर्वंशं हंसार्पितविमलकीर्तिं प्रथयितुम्।
सुधासारं सारस्वतहृतविकारं श्रुतमयं
तवापूर्वं पूर्वं प्रणिगदति गङ्गे जलमलम्॥११॥

हे गङ्गे माँ! समुद्र को निराशा को नष्ट करने के लिए एवं भगवान् सूर्य द्वारा जिसे विमल कीर्ति अर्पित की गई है ऐसे वैवस्वत मनु के वंश को समस्त विश्व में उजागर करने के लिए ही जिन्होंने दिव्य जल रूप स्वीकार कर लिया है ऐसी आप श्रीगङ्गा जी के पूर्व में सम्पन्न हुए इस अपूर्व सुयश को सारस्वतों अर्थात् विद्वानों के विकार को दूर करने वाला आपका यह जल अपनी कल-कल ध्वनि से निरन्तर गा रहा है।

किमेतत् सौन्दर्यं धृतवपुरथो बालशशिनः
किमाहो माधुर्यं जनकतनयाप्रेममहितम्।
द्रुतं ब्रह्मीभूतं परममथ पूतं वसुमती-
विराजत्पीयूषं शुचि वहति गाङ्गं जलमहो॥१२॥

इस भूमण्डल का अमृत बना हुआ जो यह भगवती गङ्गा जी का जल बह रहा है क्या यह मूर्तिमान् बालचन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर का सौन्दर्य है? अथवा भगवती श्रीसीताजी का परम प्रेमपूजित श्रीराम विषयक माधुर्य है। वस्तुतः यह गङ्गाजल साक्षात् ब्रह्मद्रव ही है। अर्थात् श्री सीताराम से पिघलकर गङ्गाजल रूप में विराजमान हो रहे हैं।

मुनीन्द्रा योगीन्द्रा यमनियमनिष्ठाः श्रुतिपरा
विरक्ताः संन्यस्ताः सततमनुरक्ता दृढधियः।
वसन्तस्त्वत्तीरे मलयजसमीरे सुमनसो
लभन्ते तत्तत्त्वं सुविमलपरब्रह्ममहितम्॥१३॥

हे माँ गङ्गे! मलय वायु से सुशोभित आपके सुन्दर तट पर निवास करते हुए अपने मन को निगृहीत करके मुनीन्द्र योगीन्द्र अहिंसा आदि नियम और तप आदि नियमों में निरत परमविरक्त संन्यासी एवं परम भगवत्प्रेमी वीतराग महात्मागण वेदों में सम्मानित उस परब्रह्मतत्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

विरक्ता वैराग्यं परममथ भाग्यं सुकृतिनः
सुसन्तः सन्तोषं विमलगुणपोषं मुनिगणाः।
नृपा राज्यं प्राज्यं गृहिण इतरे भूरि विभवं
लभन्ते वै त्वत्तस्त्वमसि सुरधेनुस्तनुभृताम्॥१४॥

हे माँ गङ्गे! विरक्त लोग वैराग्य, सुकृतिगण परमभाग्य तथा सन्तजन आत्मसंतोष एवं मुनिजन सात्त्विक गुणों का पोषण, राजा राज्य, गृहस्थजन स्वर्णादि सम्पत्ति और अन्य अर्थार्थीजन पुत्रादि सम्पत्ति, आपसे ही प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि आप प्राणिमात्र के लिए कामधेनु के समान कामनाप्रदायिनी हैं।

गतैश्वर्यान् दीनान् कपिलमुनिकोपाग्निशलभान्
निमग्नाञ्छोकाब्धौ सगरनृपतेर्वीक्ष्य तनयान्।
कृपासिन्धुर्भागीरथविनतभावोग्रतपसा
द्रुता याता गङ्गा ननु सकरुणं मातृहृदयम्॥१५॥

हे करुणहृदया माँ, जिनका ऐश्वर्य समाप्त हो गया था और जो दीन होकर महर्षि कपिल के क्रोधाग्नि के पतंगे बनकर भस्मसात् हो चुके थे ऐसे सगरपुत्रों को शोकसागर

में पड़े हुए देखकर तथा महाराज भगीरथ की विनम्र एवं उग्र तपस्या से द्रवीभूत होकर आप इस पृथ्वी पर आ गयीं। निश्चय ही माँ का हृदय अत्यन्त करुणापूर्ण होता है।

मुरारेः पादाब्जश्रुतपरममारन्दममलं
द्रुतं व्योम्नो वेगान् मधुमथनपादोदकमिति।
दधौ मूर्ध्ना शर्वो विलुलितजटाजूटचषके
ततो लोके ख्यातस्त्रिदशनदि गङ्गाधर इति॥१६॥

हे देवनदी माता गङ्गे! भगवान् नारायण के चरणकमल से उत्पन्न निर्मल मकरन्द रूप आप जब आकाश से परमवेगपूर्वक पृथ्वी पर उतरने लगीं तब भगवान् शङ्कर ने मधुसूदन श्रीमन्महाविष्णु का चरणोदक मानकर आदरातिशय के कारण आपको अपने शिर से अपने जटाजूट के पात्र में धारण कर लिया इसीलिए वे शिवजी इहलोक में गङ्गाधर नाम से विख्यात हुए।

पतन्ती पातीत्यं क्षपयितुमहो गाञ्च गगनाद्
गता गङ्गेत्येवं जननि भुवने ख्यातिमगमः।
ततः पीत्वोन्मुक्ता परमयमिना जह्नुमुनिना
अतस्त्वां वै प्राहुर्विबुधनिकरा जह्नुतनयाम्॥१६॥

हे देवि! लोक के पातित्य को दूर करने के लिए परमवेग से आकाशमण्डल से उतरकर आप पृथ्वी पर गयीं, इसलिए 'गङ्गा' इस नाम से आपको ख्याति प्राप्त हुई फिर परम तपस्वी जह्नु मुनि ने आपको पानकर पुनः मुक्त किया इसीलिए विद्वान् लोग आपको जह्नुतनया अर्थात् जाह्नवी भी कहते हैं।

सुधाधाराधारा हतभवविकारा प्रतिपृषद्
वहन्ती राजन्ती रजतसुममालेव धरणेः।
सुवत्से! श्रीवत्साम्बुजचरणसौन्दर्यसुषमा
जयत्येषा गङ्गा तरलिततरङ्गा त्रिपथगा॥१८॥

जो अपनी दिव्य धाराओं से सांसारिक विकारों को समाप्त कर डालती हैं तथा जो अपने प्रत्येक बिन्दु में अमृत की धारा बहाती रहती हैं तथा जो पृथ्वी के सुन्दर वक्ष पर रजतपुष्प अर्थात् बेला पुष्प की माला की भाँति सुशोभित हैं ऐसी श्रीवत्सलाञ्छन भगवान्

विष्णु के श्रीचरणकमल के सौन्दर्य की परमशोभा रूप चञ्चल तरङ्गों वाली त्रिपथगामिनी भगवती श्रीगङ्गा जी की जय हो।

क्वचिद् विष्णोः पार्श्वे कृतकमनकन्यावपुरहो
क्वचिद्धातुः पात्रे गुणगरिमसर्वस्वममलम्।
क्वचित्कान्ता शान्ता पुरहरजटाजूटलसिता
विधत्से सौभाग्यं त्रिषु त्रिविधरूपा त्रिपथगे॥१९॥

हे त्रिपथगामिनि माँ गङ्गे! आप कहीं भगवान् श्रीविष्णु के समीप सुन्दर कन्या के रूप में, तो कहीं ब्रह्मा जी के कमण्डलु में गुणों की गरिमा से युक्त सर्वस्व धन बनकर, पुनः कहीं भगवान् शङ्कर की जटाजूट की शोभा बढ़ाती हुई एक कमनीय कान्ता की भूमिका निभाती हुई, अपने इन तीन रूपों से ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर इन तीनों देवताओं के सौभाग्य का संवर्धन ही करती रहती हैं।

द्रवन्ती त्वं वेगादभिजलनिधिं गोमुखतलात्
सहस्रैर्धाराणां निहतशतशैलेन्द्रशिखरा।
समुद्धर्तुं मातर्निरयपतितान् राजतनयान्
स्ववत्सान् वात्सल्यात् किल गवसि गौरीसहचरी॥२०॥

हे भगवती पार्वती की सहचरी सखी! माता गङ्गे अपने बछड़े को निहारकर वत्सला गौ की भाँति वात्सल्य के अतिरेक से उद्वेलित होकर स्वयं आप पिघलकर नरक में पड़े हुए सगरपुत्रों का उद्धार करने के लिए अपनी सहस्त्रों धाराओं से पर्वतराज हिमालय के सैंकड़ों शिखरों को तोड़ती हुई गोमुख से सागर की ओर परमवेग से दौड़ पड़ती हैं।

प्रयाता शैलेन्द्राद् विमलितहरिद्वारधरणी
प्रयागे सद्रागे समगतमुदा सूर्यसुतया।
ततोऽकार्षीः काशीं सुकृतसुखराशिं स्वपयसा
महीयांसं मातस्तव च महिमा कं न कुरुते॥२१॥

हे माँ भागीरथि! आपश्री ने शैलराज हिमालय की चरमोच्च शिखर गङ्गोत्री से सागर की ओर प्रयाण किया और मध्य में अपने विमल जल से हरिद्वार की धरणी को पावन किया, अनन्तर जहाँ सन्तों का निरन्तर राग रहता है उस तीर्थराज प्रयाग में सूर्यतनया यमुना

जी से मिलकर उसे तीर्थराज बनाया। फिर अपने दिव्य जल से श्रीकाशी सम्पूर्ण सुखों एवं पुण्यों की राशि बना दी। हे माँ! आपकी यह महिमा भला किसको महान् नहीं बना देती।

महापापास्तापापहतमनसो मन्दमतयः
क्षपाटा वाचाटाः पतितपतिता मोहमलिनाः।
त्वयि स्नात्वा शुद्धा विमलवपुषो विष्णुसदनं
व्रजन्त्येतेऽगम्योऽमरनदि तव स्नानमहिमा॥२२॥

हे देवताओं की नदी माँ गङ्गे! आपके स्नान की महिमा तो वेदों के लिए भी अगम्य है, क्योंकि महापापी, तीनों तापों से नष्ट मनोवृत्ति वाले, व्यवहार और आचार इन दोनों से पतित मोह से मलिन, ऐसे नीच प्राणी भी आप (श्रीगङ्गा जी) में स्नान करके परम पवित्र होकर भगवत्सेवा के लिए उपयुक्त दिव्य शरीर प्राप्त करके विष्णुसदन अर्थात् बैकुण्ठ को प्राप्त कर लेते हैं।

रटन्तः साम्रेडं हरहरहरेतिध्वनिमहो
कटन्तः कारुण्यं क्षपितनिजभक्ताघनिकराः।
वटन्तो वात्सल्यं तुलितरघुनाथैकयशसो
जयन्त्येते गाङ्गा दिशि दिशि तरङ्गास्तरलिताः॥२३॥

अहो! निरन्तर हर हर हर इस ध्वनि को रटते हुए तथा अपने भक्तों के भयसमूह को नष्ट करके, उन पर असीम करुणा की वर्षा करते हुए एवं वात्सल्य का वितरण करते हुए श्रीरघुनाथ जी के विमल सुयश के समान ही सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त श्रीगङ्गा जो की इन तरल तरङ्गों की जय हो।

वसन् गङ्गातीरे कृततृणकुटीरे प्रतिदिनं
निमज्जंस्त्वन्नीरे शिशिरितसमीरेऽमृतजलम्।
मुदाऽऽचामन्सीतापतिपदसरोजार्चनपरो
यमाद्रामानन्दः कथमुपरि भीतो भुवि भवेत्॥२४॥

गङ्गा के तट पर पर्णकुटी बनाकर निवास करता हुआ तथा वायु को भी शीतल कर देने वाले आपके जल में प्रतिदिन अवगाहन करता हुआ एवं आपके पवित्र जल को प्रसन्नता से आचमन करता हुआ तथा श्रीसीतापति भगवान् राम का पूजन करने वाला और उन्हीं प्रभु श्रीराम में आनन्द की अनुभूति करने वाला साधक भला यमराज से क्यों डरे?

तवादि्भः स्यां विष्णुर्नहि नहि तदा स्यान्मम पदे
अथो शम्भुश्चेन्नो शिवसमतया स्यामहमघी।
अतो याचे भागीरथि पुनरहं देवि! भवतीं
वसन् त्वत्तीरेषु स्वमनसि भजेयं रघुपतिम्॥२५॥

हे माँ भागीरथी! आपश्री के जल में इतना सामर्थ्य है कि वह मुझे विष्णु बना सकता है परन्तु मैं विष्णु नहीं बनना चाहता क्योंकि यदि मैं विष्णु बन जाऊँगा तब आप मेरे चरण में आ जाएँगी जबकि यह मुझे कभी भी इष्ट नहीं है, हाँ यदि शिव बनूँ तब तो आप, मेरे मस्तक पर आ सकेंगी परन्तु मैं साधारण जीव भगवान् शङ्कर की समता करके भयङ्कर पाप का भागी बन जाऊँगा। अतएव हे गङ्गा देवि! आपसे मैं बारम्बार यही माँग रहा हूँ कि आजीवन आपके तटों पर विचरण करके भगवान् श्रीसीताराम का भजन करता रहूँ।

कदा गङ्गातीरे मलयजसमीरे किल वसन्
स्मरन् सीतारामौ पुलकिततनुः साश्रुनयनः।
अये मातर्गङ्गे! रघुपतिपदाम्भोरुहरतिं
प्रदेहीत्यायाचन् ननु निमिषमेष्यामि ससुखम्॥२६॥

मैं मलयशीतल वायु से युक्त गङ्गातट पर निवास करता हुआ पुलकित शरीर एवं प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों से श्रीसीताराम का स्मरण करता हुआ हे माँ गङ्गे! मुझे भगवान् श्रीराम के चरणकमल में भक्ति दीजिए। इस प्रकार आपसे याचना करता हुआ प्रत्येक क्षण को कब सुखपूर्वक बिताऊँगा?

विशेष्यं सोद्देश्यं किल यदनवद्यं चिदचिदो-
र्विशिष्टं यत्ताभ्यां श्रुतिगणगिरा गीतचरितम्।
यदद्वैतं ब्रह्म प्रथितमथ यद् व्यापकमिदं
सदेतत्तत्तत्त्वं त्वमसि किल गङ्गे भगवति॥२७॥

हे भगवती गङ्गे! प्रपन्नजन के कष्टहरणरूप उद्देश्य को आधार बनाकर जो निष्पाप अनन्त परब्रह्म परमात्मा चित् और अचित् के विशेष्य तथा उन्हीं से विशिष्ट बने और चिदचिद्विशिष्ट होकर जो वेदों के भिन्न-भिन्न अनुवाकों से चरित्रगान के विषय भी बनाये गये और जिन्हें विशिष्टाद्वैत, ब्रह्म, व्यापक, एक एवं सीमारहित तत्त्वरूप में कहा गया, वह अलौकिक तत्त्व परब्रह्म पद आप ही हैं।

त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वमसि रविचन्द्रौ त्वमसि भू-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमसि शुचिबुद्धिस्त्वमु मनः।
त्वमात्मा त्वं चित्तं त्वमसि मम गौस्त्वं किल पर-
स्त्वमेतत्सर्वं मे भगवति सतत्त्वं जगदहो ॥२८॥

हे भगवती गङ्गे! आप ही अग्नि और आप ही वायु हैं, आप ही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, आकाश, सात्त्विक बुद्धि तथा तर्क कुशल मन भी हैं। किं बहुना आप ही मेरे परब्रह्म सहित संसार भी हैं। अहो! यह हर्ष का विषय है।

विलोलत्कल्लोलां हृतकुमतिदोलां शुचिपयः-
पवित्रत्पातालां क्षपितजनकालां कलजलाम्।
द्रवब्रह्मीभूतां सगरसुतसंसारतरणीं
नमामि त्वां गङ्गां तरलिततरङ्गां स्वजननीम्॥२९॥

मैं लोललोल लहरों से युक्त तथा कुमतिरूप चञ्चल हिंडोले को समाप्त करने वाली एवं अपने दिव्य जल से पाताल को भी पवित्र करने वाली तथा भक्त के मरण भय को दूर करने वाली ऐसी सुन्दर जलसम्पन्न द्रवब्रह्मरूप एवं सगरपुत्रों के लिए संसार-सागर की नौकारूप तरलतरङ्गा अपनी माता गङ्गा को प्रणाम करता हूँ।

नमो धर्मिष्ठायै निरुपममहिम्नेऽस्तु च नमो
नमो नर्मिष्ठायै नरपतिनरिम्णेऽस्तु च नमः।
नमो नेदिष्ठायै लघुमतिलघिम्नेऽस्तु च नमो
नमस्ते गङ्गायै गिरिगतिगरिम्णेऽस्तु च नमः॥३०॥

अब अन्तिम शिखरिणी छन्द में भगवती श्रीगङ्गा जी को सर्वतोभावेन नमस्कार किया जा रहा है- परमधर्मिष्ठा माँ भागीरथी को नमस्कार हो। परम सुखमयी माँ जाह्नवी को नमस्कार तथा श्रीभगीरथ महाराज के उस नरत्व अर्थात् असाधारण महामानवोचित पुरुषार्थ को नमस्कार हो जो अपनी उग्र तपस्या से प्रसन्न करके श्रीगङ्गा माँ को इस धराधाम पर ले आए। हमारे परम निकट रहने वाली गङ्गा तथा मुझ लघुबुद्धि की लघुता को नमस्कार जो अल्पज्ञ होकर भी साहस करके आपकी स्तुति में प्रवृत्त हुई। अन्ततोगत्वा मेरी माँ गङ्गा को मेरा नमस्कार तथा पर्वत पर विचरण करने वाले भगवान् शङ्कर की उस गुरुता को नमस्कार जिन्होंने अपनी जटा में सहजता से श्रीगङ्गा जी को धारण किया।

विबुधसरिते नित्यख्यात्यै नमोऽस्तु नमोऽस्तु ते
विमलरजसे वेदस्तुत्यै नमोऽस्तु नमोऽस्तु ते।
धवलमहसे विद्याभूत्यै नमोऽस्तु नमोऽस्तु ते
अमृतपयसे गङ्गादेव्यै नमोऽस्तु नमोऽस्तु ते॥३१॥

देवताओं की सरिता एवं नित्य ख्याति सम्पन्न माँ गङ्गे आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो। एवं जिनकी धूलि भी अत्यन्त विमल है तथा वेदों ने जिनकी स्तुति की है ऐसी विष्णुपदी आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो। श्वेतप्रकाश वाली विद्याशक्ति की विभूतिरूप आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो तथा अमृत जलसम्पन्न देवी गङ्गा आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है।

क्व च कलिमललीना पापपीना मतिर्मे
क्व च परमपवित्रं जाह्नवीसच्चरित्रम्।
त्वदनुचरितभक्तिः प्रैरयन्मां हि रातुं
जननि तव पदाब्जे पद्यपुष्पोपहारम्॥३२॥

कहाँ कलियुग के मलों में तल्लीन पापों के कारण स्थूल मेरी बुद्धि और कहाँ परम पवित्र श्रीगङ्गा जी का सुन्दर चरित्र! फिर भी हे माँ! आपके चरित्रों में उत्पन्न भक्ति ने ही मुझको आपके श्रीचरण कमलों में पद्य पुष्पोहार समर्पित करने के लिए प्रेरित कर दिया, इसमें मेरा कोई दोष नहीं।

हरिचरणसरोजस्यन्दभूताञ्च भूयः
श्रितविधिजलपात्रां चन्द्रचूडार्यमौलिम्।
नृपरतिरथ भूमौ दर्शमायास गङ्गा-
मनुयुगमिह यत्नो भाति भागीरथोऽयम्॥३३॥

भगवान् श्रीविष्णु के चरणकमल की द्रवीभूत मकरन्द रसराशि एवं ब्रह्मा जी के कमण्डलु को सुशोभित करने वाली तथा चन्द्रचूड़ार्यमौली अर्थात् भगवान् शङ्कर की मुकुटमणिस्वरूप भगवती श्रीगङ्गा जी को महाराज भगीरथ की भक्ति ने ही इस पृथ्वी पर दर्शन के लिए सुलभ कर दिया। इसीलिए युग-युग से इस प्रयास को भागीरथ यत्न कहा जाता है।

वन्दे भगीरथं भूपं भग्नसंसारकूपकम्।
यश्चानिनाय गङ्गाख्यं वसुधायां सुधारसम्॥३४॥

संसार के अन्धकार कूप को नष्ट करने वाले उन महाराज भगीरथ की मैं वन्दना करता हूँ जिन्होंने इस वसुधातल पर गङ्गा नामक सुधारस को ला दिया।

गङ्गास्नानात्परं स्नानं नास्ति नास्तीह भूतले।
नास्ति कापि स्तुतिर्गङ्गामहिम्नस्तोत्रतः परा॥३५॥

इस संसार में श्रीगङ्गा स्नान से कोई श्रेष्ठ स्नान नहीं एवं गङ्गामहिम्न स्तोत्र से श्रेष्ठ कोई स्तुति नहीं।

यः पठेच्छृणुयाद् वापि गङ्गाऽग्रे श्रद्धयान्वितः।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो व्रजेद् विष्णोः परं पदम्॥३६॥

जो आस्तिक व्यक्ति भगवती श्रीगङ्गा जी के निकट इस स्तोत्र को पढ़ेगा एवं सुनेगा वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर श्रीविष्णुलोक को अवश्य प्राप्त कर लेगा।

षडर्णान्न परो मन्त्रो महिम्नो न परा स्तुतिः।
श्रीरामान्न परो देवो गङ्गाया न परा नदी॥३७॥

षडर्ण अर्थात् षडक्षर श्रीराम मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं एवं गङ्गामहिम्नस्तोत्र से श्रेष्ठ कोई स्तुति नहीं, श्रीराम से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं और श्रीगङ्गाजी से श्रेष्ठ कोई नदी नहीं है।

श्रीरामचन्द्रगुणगायकरामभद्राचार्येण देवगिरिगीतमनुस्मरेद्यः।
स्तोत्रं सुभक्तिकलितस्तनुतां प्रसन्ना गङ्गामहिम्नमिति तस्य सुखानि गङ्गा॥३८॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के गुणों के गायक जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा देववाणी में स्वरचित गाया हुआ यह गङ्गामहिम्नस्तोत्र जो भावुकजन भक्तिपूर्वक स्मरण एवं गान करेंगे भगवती श्रीगङ्गा प्रसन्न होकर उनके जीवन में समस्त सात्त्विक सुखों का विस्तार करेंगी।

अथ तं सूर्यसङ्ख्या वै रामानन्दं जगद्गुरुम्।
तुष्टुवुर्ललितैः शिष्याः सूर्यसङ्ख्यैः सुवृत्तकैः॥३९॥

इसके अनन्तर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी को निहार कर उनके बारहों शिष्य अनन्तानन्दाचार्य, सुरसुरानन्दाचार्य, सुखानन्दाचार्य, नरहर्यानन्दाचार्य, योगानन्दाचार्य, पीपाप्रताप, कबीरदास, भावानन्द, सेन, धना, गालवानन्द एवं रैदास जी इन बारहों शिष्यों ने बारह आर्या छन्दों में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की स्तुति की।

पुण्यसदनसुकृताब्धेर्विमलमृगाङ्कं खरारिपूर्णाऽङ्कम्।
रामानन्दाचार्यं देवं त्रिजगद्गुरुं वन्दे ॥४०॥

श्रीपुण्यसदन शर्मा के सुकृत क्षीर सागर के निर्मल चन्द्रमा तथा खर के शत्रु राम भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्य से चिह्नित, देवता के समान दिव्य त्रिलोक के गुरु जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी को मैं वन्दन करती हूँ।

विलसद्रामानन्दं प्रेमानन्दं सकारुणीकन्दम्।
रामानन्दममन्दश्रद्धापुष्पैः श्रियै सेवे ॥४१॥

जिनसे भगवान् राम का भी आनन्द सुशोभित हुआ है। जो श्रीराम के आनन्द से परिपूर्ण हैं तथा जो श्रेष्ठ करुणा के मेघ हैं ऐसे जगद्गुरु श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्य की मैं भगवद्भक्ति श्रीसम्पत्ति के लिये प्रचुर श्रद्धामय पुष्पों से सेवा करता हूँ।

पूर्णज्ञानमखण्डं लसत्त्रिदण्डं भवाक्तभवभाण्डम्।
रामानन्दाचार्यं देवं वन्दे गुरुं जगताम् ॥४२॥

पूर्णज्ञान से सम्पन्न, स्वरूप से अखण्ड, जिनसे त्रिदण्ड की भी शोभा बढ़ी है, जिनके संसाररूप घड़े में कल्याण का रस भरा है ऐसे जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी को मैं वन्दन करता हूँ।

सुन्दरगौरशरीरं परमगभीरं मनस्थरघुवीरम् ।
चरणविनतमुनिधीरं रामानन्दं गुरुं सेवे ॥४३॥

जिनका शरीर सुन्दर एवं गौरवर्ण हैं जो परम गम्भीर हैं तथा जिनके मन में रघुवीर श्रीरामचन्द्र विराजते हैं, जिनके श्रीचरणों में मुनि एवं धीरजन प्रणाम करते रहते हैं, ऐसे जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य की मैं सेवा करता हूँ।

सौशीलेयममेयं सुरमुनिगेयं सतां समाधेयम्।
रामानन्दं ध्येयं ध्यायं ध्यायं सुखं यामि॥४४॥

श्रीसुशीला माताजी के पुत्र प्रमाणों की सीमा से परे, देवता और मुनियों द्वारा गान के विषय बने हुए, सन्तों की समाधि में आने वाले, ध्यान योग्य, जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य को गा-गाकर मैं अलौकिक सुख प्राप्त करता हूँ।

अंसलभवदुपवीतं रघुवरसीताकृपापरीताङ्गम्।
करधृतशङ्खमभीतं रामानन्दं गृणे गीर्भिः॥४५॥

स्वस्थ शरीर वाले तथा जिनके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत सुशोभित है, जिनका श्रीविग्रह श्रीसीताराम जी की कृपा से व्याप्त है, जिनके करकमल में निग्रहाशक्ति शङ्ख विराजमान है, ऐसे सर्वदा निर्भय रहने वाले जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य को मैं वाणी से गाता रहता हूँ।

काशीपुरीनिवासी शरगङ्गायाः कुटीरवासीशः।
कलिखलनृणां प्रशासी रामानन्दश्चिरं जीयात्॥४६॥

श्रीकाशी में निवास करने वाले, पञ्चगङ्गा घाट पर स्थित कुटीर में विराजमान, कलियुग एवं वेदविरोधी दुष्टों पर प्रशासन करने वाले, जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य जी की सदा जय हो।

शङ्खध्वनिहृतकल्मषकलिमलपापः प्रतापपाथोधिः।
रामानन्दाचार्यो जयति जगत्यां महायोगी॥४७॥

अपने शङ्खध्वनि से समाज की बुराइयों, कलिकाल के दोष एवं जीवमात्र के पापों को दूर करने वाले, प्रताप के महासागर, महायोगी जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य सदैव जगत् में उत्कर्ष को प्राप्त कर रहे हैं। अर्थात् आद्य जगद्गुरु जी की जय हो रही है।

यत्पदाब्जपरागं हृतभवरागं हृदाऽसकृत् वोढ्वा।
जातः कविः कबीरो रामानन्दं तमीडेऽहम्॥४८॥

जिनके श्रीचरण कमल के पराग अर्थात् धूल को एकबार हृदय पर धारण करके जुलाहे के यहाँ पालित कबीर जैसे व्यक्ति भी कवि अर्थात् श्रेष्ठ मनीषी और श्रेष्ठ सन्त बन गये अर्थात् सन्त कबीरदास बन गये। ऐसे श्रीमदाद्यजगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी आप की मैं स्तुति करता हूँ।

यन्मुखपद्ममरन्दं पीत्वा लब्ध्वा खरद्विषं सीताम्।
रयिदासाद्याः सन्तो रामानन्दं प्रपद्ये तम्॥४९॥

जिनके मुखकमल का उपदेश मकरन्द पान करके और शीत प्रसाद पाकर रैदास आदि सामान्य कुल में उत्पन्न हुए महानुभाव भी श्रीराम सीता के दर्शन करके श्रेष्ठ सन्त बन गये। ऐसे जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की मैं शरणाति स्वीकार रहा हूँ।

हिन्दूधर्मोद्धारकश्रितमनुतारकसुरेन्द्रतरुशीलम्।
रामानन्दाचार्यं नित्यं वन्दे गुरुं जगताम्॥५०॥

वैदिक हिन्दू धर्म का उद्धार करने वाले, श्रीराम तारक मन्त्र से दीक्षित बान्धुओं और बान्धवियों के लिये कल्पवृक्ष के समान, जगद्गुरु श्रीमाद्य रामानन्दाचार्य जी की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

द्वादशतिलकमभीष्टं द्वादशशिष्यैर्निजुष्टपादाब्जम्।
रामानन्दजगद्गुरुमङ्घ्रिसरोजं सदा सेवे॥५१॥

द्वादशतिलकों से सुशोभित तथा अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द, पीपाजी, धनाजी, रैदासजी, सेनजी, भावानन्दजी, सुरसरीजी, पद्मावतीजी तथा कबीर जी। —इन बारह शिष्यों के द्वारा जिनके श्रीचरणकमलों की सेवा की गयी है ऐसे जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

पद्मावती ततो देवी रामानन्दस्य पादुके।
तुष्टाव वसुभिर्वृत्तैर्ललितैर्ललिताक्षरैः॥५२॥

इसके अनन्तर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की प्रथम शिष्या जो पहले साकेत धाम जा चुकी हैं, वे सहसा प्रकट हुईं और उन्होंने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की चरणकमल की पादुकाओं की आठ ललित छन्दों में स्तुति की।

कोटिकोटिवैष्णवकुलपुण्यसुमाञ्जलिभिः
समर्चिते श्रुतिमहिते वरविरुदावलिभिः।
सदा पूजये मनसा वाचा स्वकर्मणा
रामानन्दाचार्यजगद्गुरुसुपादुके॥५३॥

करोड़ों-करोड़ों श्रीवैष्णवों की भाव पुष्पाञ्जलियों से तथा श्रेष्ठ विरुदावलियों से जिनकी मनसा, वाचा, कर्मणा अर्चना हो रही है ऐसी जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की श्रीचरणकमल पादुकाओं की मैं, मन वाणी कर्म से सदैव पूजा करता हूँ।

रामचन्द्रचरणाब्जलक्ष्यलक्षणलषिते
परमहंसमुनिवृन्दयतीन्द्रमहामहताम्।
विबुधवरूथकिरीटजुष्टप्रपदे नु विदे
रामानन्दाचार्यपद्मपदसुपादुके॥५४॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र के श्रीचरणकमल के कमल आदि चिह्नों से सुशोभित तथा परमहंसों, मुनिवृन्दों श्रेष्ठ संन्यासियों एवं महान् महात्माओं की इच्छाओं का आश्रय बनीं हुई, जिनका अग्रभाग अनेक देवताओं के मुकुटों से सेवित है ऐसी जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की पादुकाओं का मैं निश्चयपूर्वक भजन करता हूँ।

श्रीवैष्णवसरोजवननवरविमालिकयो-
र्विमलविरागविवेकविरतिरतिपालिकयोः।
प्रणतितितिभ्रमरी ममापि मुखरी भवतात्
रामानन्दाचार्यजगद्गुरुपादुकयोः॥५५॥

जो श्रीवैष्णवजन रूप कमलवन को विकसित करने के लिये प्रातःकालीन सूर्य की मालिकाओं के समान हैं। जो साधकों के निर्मल वैराग्य, विवेक एवं भक्तिभाव की पालिका हैं- ऐसी जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की पादुकाओं पर मेरी प्रणामाञ्जलि रूप भ्रमरी गुञ्जायमान होती रहे।

रामकृपावतारपदपङ्कजपांशुजुषो-
र्निजशुचिरुचिशतकोटिकलाधरकान्तिमुषोः।
मम विलसन्तु नमांसि भक्तभवभावपुषो
रामानन्दाचार्यपदाम्बुजपादुकयोः॥५६॥

भगवान् श्रीराम के कृपावतार जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य जी के श्रीचरणकमल की रज का सेवन करने वाली, अपनी पवित्र शोभा से अरबों चन्द्रमा की कान्ति को चुराने वाली भक्तों के कल्याणमय भावों का पोषण करने वाली, जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की श्रीचरणकमल पादुकाओं पर मेरे अनन्त नमस्कार शोभा पाते रहें।

शरणमहं करवाणि वरदवरवन्दितयोः
सुरमुनिनरनतयोरपि सततमनिन्दितयोः।
नरपतिपुरटमुकुटकुलकोटिसमर्चितयो
रामानन्दाचार्यपद्मपदपादुकयोः ॥५७॥

मैं उन जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की श्रीचरणकमल पादुकाओं की शरणागति स्वीकार कर रहा हूँ, जो वरदानियों में श्रेष्ठ देवताओं द्वारा वन्दित हैं, जिन्हें देवता मुनि और मनुष्य नमन करते हैं जो सतत निन्दा से रहित हैं तथा जो कोटि-कोटि राजा-महाराजों के स्वर्णमुकुटों से पूजित होती रही हैं गाग्रोन नरेश पीपा जी महाराज इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

शरणमहं करवाणि सुजनसुखदां छायां
क्षपितकरालकालकलिकल्मषमलमायाम्।
विमलितविषमविषयचयकोटिकुटिलकायां
रामानन्दाचार्यकमलपदपादुकयोः ॥५८॥

मैं सज्जनों को सुख देने वाली तथा कराल काल वाले कलियुग के दोषों को, तथा मल माया को नष्ट करने वाली एवं विषम विषय समूहों से व्याप्त करोड़ों कुटिल लोगों के शरीर को निर्मल करने वाली जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की श्रीचरणकमल पादुकाओं की छाया का आश्रय ले रहा हूँ।

जयताद् वैष्णवजनो जैत्रकलिकालकुलं
भवताद् भवभयहृतिभक्तिरनुजनं हरेः।
द्रवतात् सीतावरो नरेषु सदा कृपया
रामानन्दाचार्यपद्मपदपादुकयोः ॥५९॥

जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य जी की श्रीचरणकमल पादुकाओं से वैष्णवजन सब पर विजय प्राप्त करने वाले कलिकाल के परिवार को जीत लें, तथा प्रत्येक जन में भगवान् राम की भवभय को नष्ट करने वाली भक्ति प्रभाव के साथ प्रकट हो जाये एवं सदैव श्रीरामोपासकों पर सीतापति भगवान् राम द्रवित होते रहें।

जयतां जगति सदैव लब्धविभवे भव्ये हरतां हरिपदजुषां घोरभवभयपीडाम्।
दिशतां दिशि दिशि रामभक्तनिकरेषु सुखं रामानन्दाचार्यजगद्गुरुसुपादुके ॥६०॥

हे जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य महाराज की श्रीचरणकमलपादुकायुगल! आप भगवान् श्रीसीताराम के कृपाप्रसाद वैभव को प्राप्त करके इस संसार से सदैव विजय प्राप्त करती रहें, एवं आपश्री आचार्य पादुकाजी श्रीरामभक्तों की भयङ्कर भवभय पीड़ा को हरण करती रहें एवं हे जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य जी की श्रीपादुकायुगल! आप प्रत्येक दिशा में श्रीरामभक्तों में भगवद्भजन सुख का वितरण करती रहें।

रामानन्दाचार्यजगद्गुरुपादुकयोरष्टकमेतल्ललितवृत्तमिह देवगिरा।
गीतं गिरिधरकविना भवतु सुखाय सतां रामभद्रविदुषा श्रीवैष्णववर्गमुदे॥६१॥

इस प्रकार ललित छन्द में मुझ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य 'गिरिधर' कवि द्वारा देवभाषा में ललित वृत्त में गाया गया यह "जगद्गुरु रामानन्दाचार्यपादुकाष्टकम्" सन्तों के सुख के लिए हो और श्रीवैष्णवजन का भगवद् भजनानन्द बढ़ाता रहे।

एकदा कलितकज्जलवर्णः कृत्तकर्ण इव लब्धविवर्णः।
चित्रवर्ण इति भीमकुवर्णस्तूर्यवर्णकलिराव्रजति स्म॥६२॥

एक बार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के पास काले कज्जल पर्वत के समान काला और जिसका कान कट गया हो इस प्रकार विकृत वर्ण वाला चितकबरे शरीर वाला कुत्सित वर्ण वाला चतुर्थ वर्ण का शरीर धारण करके कलियुग उपस्थित हुआ।

भीमवेषभयमण्डितमूर्तिर्भग्नसज्जनमनोरथपूर्तिः।
नित्यदत्तशुचिवैष्णवजूर्तिः कालवत्समपतत् कुटिलात्मा॥६३॥

उसका वेश अत्यन्त भयङ्कर था। उसकी मूर्ति भय से सुशोभित हो रही थी, वह सदैव सज्जनों के मनोरथ की पूर्ति को नष्ट करता रहता था और वैष्णवजनों को ज्वर देता रहता था। इस प्रकार काल की भाँति कलिकाल जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के समक्ष वह टूट पड़ा।

तं समीक्ष्य कुटिलं कलिमारात् पूतिगन्धपरिसङ्कुलदेहम्।
तर्जयन्तमथ दुर्गुणगेहं नो बिभाय यतिराद् स मनस्वी॥६४॥

उसके शरीर से दुर्गन्ध निकल रही थी और वह कुटिल दुर्गुणों का गेह था, फिर भी कलि को देखकर यतिराज रामानन्दाचार्य जी को भय नहीं लगा और उन्होंने देख लिया कि वह उनके सन्मुख उपस्थित है।

कुत्सितं च कुटिलञ्च हसन्तं व्यङ्ग्यवाक्यशरचालनदक्षम्।
दुष्टरूपमिह दारुणमूर्तिं सर्वलोककदनं शिवजूर्तिम्॥६५॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने देखा कि कलिकाल बहुत ही नीच प्रकृति तथा कुटिल है, वह हँस रहा है, वह व्यङ्ग्य वाक्य रूप वाणों के चलाने में दक्ष है, उसका रूप दुष्ट है, तथा शरीर भयङ्कर है। वह सभी प्राणियों का खार रहा है, और शिव जी को भी ज्वर से युक्त कर रहा है।

तं च वीक्ष्य मदमोहसहायं कृष्णाकायमिव मूर्तमपायम्।
नो बिभाय हृदये किल रामानन्द ईड्यचरितस्तमुवाच॥६६॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने देख लिया कि मदमोह जिसके सहायक हैं ये मूर्तिमान् विघ्न के समान हैं। उसे देख जगद्गुरु जी डरे नहीं और बोले-

प्रातरेव हि भयङ्करवेषः को भवान् हि मम सन्निधिमाप्तः।
सत्यमेव वद मा किल मिथ्या दण्डयामि न तु दुष्टचरित्रम्॥६७॥

प्रातः मेरे समक्ष तुम कौन आ गये हो, सत्य-सत्य बोलो झूठ मत बोलना नहीं तो अभी मैं तुमको उग्र दण्ड दे दूँगा।

वेत्सि मां न कुटिलः किल रामानन्दमेव यतिराजमखण्डम्।
त्वादृशांश्च कुटिलान् धृतपापान् दण्डयन्तमिह लब्धशरीरम्॥६८॥

तुम मुझे नहीं जानते मैं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य हूँ और तुम जैसे कुटिलों को दण्डित करने के लिए ही मैंने यह शरीर धारण किया है।

राम एव धृतमानवदेहः प्रोद्यतः सकलः सद्गुणगेहः।
त्वादृशं दमयितुं कलिकालं प्रस्तुतः कलितचण्डत्रिदण्डः॥६९॥

तुमको पता है मैं दिव्य मानव शरीरधारी श्रीराम ही हूँ, मैं सम्पूर्ण सद्गुणों का गृह हूँ। कलिकाल को दण्डित करने के लिए ही मैंने त्रिदण्ड धारण किया है।

मैव सज्जनकुलं व्यथयेस्त्वं मा तुदः सकलवैष्णवसर्गम्।
गच्छ गच्छ झटिति स्वनिकेतं मा स्म भूश्च शलभो द्विजवह्नौ॥७०॥

जाओ अब किसी वैष्णव को कष्ट मत देना, किसी सज्जन को मत सताना। अपने घर चले जाओ और मुझ ब्राह्मणरूप अग्नि में पतङ्गा मत बन जाओ।

तं विलोक्य धृतचण्डत्रिदण्डं तेजसा ज्वलितसद्भुजदण्डम्।
ब्राह्मणं धृतशमं ननु रामानन्दमेव कलिरास्त स भीतः॥७१॥

जिनके हाथ में भयङ्कर त्रिदण्ड था, और जिनकी श्रेष्ठ भुजाएं तेज से स्फुरित हो रही थीं, ऐसे ब्राह्मण रामानन्दाचार्य को देखकर कलिकाल डर गया।

वेपमानवपुषा च कलिर्वै चण्डविक्रमप्रदर्शितसत्त्वः।
कम्पमानकर एव करालः पाहि पाहि कथयन् पतितोऽग्रे॥७२॥

काँपते हुये शरीर से युक्त कलिकाल का रामानन्दाचार्य जी के प्रचण्ड पराक्रम से बल समाप्त हो गया था। उसके हाथ भी काँप रहे थे और कराल कलिकाल रक्षा कीजिये–२ ऐसा कहता हुआ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के समक्ष गिर पड़ा।

पाहि पाहि कृतपापप्रचारं पाहि मां कलितसर्वविकारम्।
पाहि मां च कुमतिं च कुसारं पाहि पाहि गुणकञ्जतुषारम्॥७३॥

भगवन् मुझ पाप के प्रचार करने वाले की रक्षा कीजिए। सम्पूर्ण विकारों से युक्त मुझ कलिकाल की रक्षा कीजिए। कुमति के भवन मुझ कलिकाल की रक्षा कीजिए और गुणरूप कमलों को नष्ट करने वाले तुषार के समान मुझ कलिकाल की रक्षा कीजिए।

त्यक्तमेतमभिमन्युसुतेन क्रोधमण्डितकृपाणकरेण।
साम्प्रतं चरणमेव प्रपन्नं पाहि पाहि जगदेककृपालो॥७४॥

मैं क्या करूँ क्रोध से कर में तलवार लिए हुए अभिमन्यु पुत्र परीक्षित जी के द्वारा मैं छोड़ दिया गया था और मुझे पीड़ित किया जा रहा था। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझे क्षमा कर दीजिए।

साम्प्रतं च न जहामि विमूढः कौटिलीं कुटिलकर्म कुभावः।
क्षन्तुमर्हसि कृपामृतसिन्धो क्षान्तिरेव हि सतां सुनिसर्गः॥७५॥

हे कृपामृत के सागर अभी भी मैं अपनी कुटिलता नहीं छोड़ रहा हूँ फिर भी आप मुझे क्षमा कर दीजिए क्योंकि क्षमा ही सन्तों का स्वभाव होता है।

दीक्षितं च कलिमेव विधत्स्व राममन्त्रमिह मे दिश देव।
वैष्णवीं च परिलभ्य सुदीक्षां सज्जनांश्च किल नो व्यथयिष्ये॥७६॥

हे प्रभो! अब मुझे दीक्षित कर दीजिए, मुझ कलिकाल को राममन्त्र दे दीजिए। मैं वचन देता हूँ वैष्णवी दीक्षा पाकर अब सन्तों को व्यथित नहीं करूँगा।

मुञ्च मुञ्च प्रकृतिं निजचण्डां यच्छ यच्छ करुणां करुणाब्धे।
पाहि पाहि कलिमेव विपत्ते रक्ष रक्ष शरणागतमेव॥७७॥

अपनी क्रुद्ध प्रकृति को आप छोड़ दीजिए और मुझको करुणा का दान दीजिए। विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिए। आप तो कृपा के सागर हैं।

इत्थमेव निगदन्तमथार्तं वीक्ष्य लब्धकरुणो यतिराजः।
तं ररक्ष जटिलान्निजदण्डात् सम्प्रहस्य वचनं समुवाच॥७८॥

इस प्रकार सुन करके जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी के मन में करुणा आ गई और उन्होंने अपने दण्ड से कलिकाल को बचा लिया और और हँसते हुए बोले–

मा शुचस्त्वमथ पातकिमौले स्वस्थतां व्रज मदीयकृपातः।
मा तुदो निखिलसज्जनवर्गान् मा स्म भूः कुटिल एहि शमेव॥७९॥

हे कलिकाल अब भयभीत मत हो, आज से सज्जनों को मत सताना और दशरथनन्दन को जिन्होंने इष्ट माना हो उन पर कुटिलता का व्यवहार मत करना।

राममन्त्रमिह मत्प्रगृहाण स्वीकुरुष्व शुचिवैष्णवदीक्षाम्।
त्वं भजस्व भजतां सुरधेनुं रामचन्द्रचरणाम्बुजरेणुम्॥८०॥

आओ मुझसे राममन्त्र ग्रहण करो वैष्णव दीक्षा लो और भजन करने वालों के लिए कामधेनु के समान भगवान् रामचन्द्र जी की चरणकमल की धूलि को स्वीकार लो।

रामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरस्त्वं कले भव नितान्तकठोरः।
साधुवृन्दचरणाम्बुजसेवां नित्यमेव कुरु वाञ्छकदेवाम्॥८१॥

हे कलिकाल! तुम रामचन्द्र जी के चरणकमल के चकोर बन जाओ। यद्यपि तुम नितान्त कठोर हो, निरन्तर देवता जिसकी इच्छा करते हैं ऐसे वैष्णवजनों की सेवा करो।

इत्यमुं समनुशास्य यतीशो दीनबन्धुरनघो गुणसिन्धुः।
शीघ्रमेव कलये प्रदिदेश राममन्त्रमथ वैष्णवदीक्षाम्॥८२॥

इस प्रकार कलिकाल को निर्दिष्ट करके यतिराजराज रामानन्दाचार्य जी ने उसे राममन्त्र और वैष्णव दीक्षा दे दी। क्योंकि जगद्गुरु जी स्वयं निष्पाप एवं गुणों के सागर थे।

तं ह्युवाच कलिमेव करालं भो कले श्रृणु वचो मम दिव्यम्।
मा कदापि च सतो व्यथयेथा भ्रातरस्तव समे किल सन्तः॥८३॥

इसके पश्चात् कलिकाल से उन्होंने कहा कि तुम मेरी बात सुनो, आज से किसी सन्त को मत सताना, क्योंकि अब सभी सन्त तुम्हारे गुरुभाई हैं।

सन्तः समस्ताः गुरुबन्धवस्ते तान् मा तुदेस्त्वं च कले कदाचित्।
भजस्व रामस्य पदारविन्दं स्वभावमेतं कुटिलं त्यज त्वम्॥८४॥

अब सभी सन्त तुम्हारे गुरुभाई हो गए हैं, उनको कभी मत सताना, भगवान् श्रीराम के चरणकमल को भजो और अपना यह कुटिल स्वभाव छोड़ दो।

भवान् युगेष्वेव परप्रधानः सुसद्गुणः साधकसौख्यदाता।
ततः परीक्षिद् गुणगृह्यशीलो मुमोच युद्धे स्ववशं भवन्तम्॥८५॥

आप सभी युगों में बहुत श्रेष्ठ हैं। साधकों को सुख देते हैं। इसलिए युद्ध में अपने वश में करने पर भी परीक्षित जी ने आपको छोड़ दिया।

हंसो यथा सारभुगेव राजा त्वां नावधीद् वीक्ष्य गुणं त्वदीयम्।
तवैव काले भगवाननन्तः शीघ्रं सतां दृष्टिपथं प्रयाति॥८६॥

महाराजा परीक्षित हंस के समान सारग्राही थे इसलिए तो तुम्हें उन्होंने छोड़ दिया। क्योंकि तुम्हारे ही समय में भगवान् शीघ्र दर्शन दे देते हैं।

यो वै सहस्रायुतवर्षपूगैर्न शक्यते तोषयितुं कथञ्चित्।
तवैव काले निमिषेण सोऽसौ सतां दृशो गोचरतामुपैति॥८७॥

जो भगवान् हजारों-हजारों वर्षों में सन्तुष्ट नहीं किये जा सकते, वे ही भगवान् तुम्हारे समय में तो शीघ्र ही सन्तों के दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

वैशिष्ट्यमेकं च कले तवेद्यं जानन्ति सन्तः किल भक्तिमन्तः।
साङ्कल्पिकं पुण्यफलं कलौ वै न चापि पापं मनसीप्सितञ्च॥८८॥

हे कलिकाल! तुम्हारा एक सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है उसको तुम सुनो। संकल्प से तुम्हारे यहाँ पुण्य फल दे देता है, पर मन का पाप तुम्हारे यहाँ फल नहीं देता।

कलौ न यज्ञो न तपो न दानं न चापि वेदाध्ययनं न धर्मः।
श्रीरामनामैव कलौ हि सारः पापाम्बुजानां नितरां तुषारः ॥८९॥

कलियुग में न यज्ञ, न तप, न दान, कुछ भी नहीं फलदायक होता, केवल रामनाम ही सारभूत बन पाता है, वही पाप रूप कमलों के लिए तुषार बनता है।

इदमेव निगद्य नीतिमान् विससर्जाथ कलिं कृपानिधिः।
करुणैकमहाब्धिरुज्ज्वलः स बभौ भावमयो जगद्गुरुः ॥९०॥

इस प्रकार कहकर कृपा के एकमात्र सागर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी ने कलिकाल को भेज दिया और दिव्य चरित्रों से सुशोभित होने लगे।

कदाचिद् गतो विश्वनाथं दिदृक्षुः पिधानं निरीक्ष्यापवर्गस्य धीरः।
ततोऽसौ निवृत्तः शिवाप्रेरितः सन् बहिर्द्वार एवाब्जयोनिं ददर्श ॥९१॥

एक बार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य विश्वनाथ के दर्शन के लिए मन्दिर गये। वहाँ किवाड़ा बन्द था, लौटने लगे, फिर पार्वती जी ने प्रेरणा की कि आप आइए, आपके लिए किवाड़ा खुला है, विश्वनाथ जी द्वार के बाहर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर उन्होंने उनके दर्शन किए। शिवजी को रामानन्दाचार्य जी ने देखा।

जटाधारिणं हारिणं मानसानां भवानीलसद्वामभागं सरागम्।
जपन्तं मुदा रामनामैव भक्त्या जगद्देशिको भूतनाथं ददर्श ॥९२॥

इस प्रकार शिर पर जटा धारण किए हुये मनों को चुराने वाले, पार्वती जी के द्वारा जिनका वाम भाग सुशोभित है और जिनको श्रीराम जी के प्रति राग है, जो श्रद्धा से रामनाम का जप कर रहे हैं, ऐसे भूतनाथ शङ्कर को जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने निहारा।

शिवोऽप्येष दृष्ट्वा जगद्देशिकं तं खरारेर्लसद्दिव्यबोधावतारम्।
समुत्थाय दोर्भ्यां तमेवालिलिङ्गे दृशां वारिधाराभिरेवाभ्यसिञ्चत् ॥९३॥

भगवान् शङ्कर ने भी देखा कि जगद्गुरु जी आ गए हैं, तुरन्त उठकर उन्होंने उनका आलिङ्गन किया और नेत्र की अश्रुधारा से उनका अभिषेक कर डाला।

पुनश्चाप्यवोचद् वचः सोमकल्पं भवानीपतिर्भावितो भव्यभक्त्या।
जगद्देशिकं पुण्यसद्मेड्यसूनुं महायोगिनं हस्तराजत्त्रिदण्डम्॥९४॥

भगवान् श्रीराम की भक्ति से परिपूर्ण भवानीपति शिवजी पुण्यसदन के पूजनीय पुत्र महायोगी और जिनके श्रीहस्त में त्रिदण्ड विराजमान है ऐसे जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी से यह अमृत के समान वचन बोले।

भवान् मत्प्रभोः कारुणीकप्रसिन्धोः श्रुतो रामचन्द्रस्य बोधावतारः।
कलौ हिन्दुजातिं समुद्धर्तुकामो जगद्देशिको लोकनेत्राभिरामः॥९५॥

आप करुणा के सागर मेरे स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्र के ज्ञानावतार हैं, इस कलियुग में हिन्दूजाति का उद्धार करने के लिए सबके नेत्रों को आनन्द देते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य बनकर आप पधारे हैं।

भवानद्य मद्दर्शनार्थं निशीथे समायाज्जगद्देशिको मन्दिरं मे।
पिधानं ततश्चापवर्गस्य दृष्ट्वा विमन्युर्निवृत्तः क्षमा भूषणं ते॥९६॥

भगवन् जगद्गुरो! आज आप मेरे दर्शन के लिये आधी रात में ही मेरे मन्दिर पधारे फिर भी मन्दिर का द्वार बन्द देखकर आप क्रोध किये बिना वहाँ से लौटे, वस्तुतः यह क्षमा ही आपका अलङ्कार है।

क्षमामन्दिरस्य क्षमाधीश्वरस्य क्षमाकन्यकाया वरस्यावतारः।
कथं न क्षमा स्यात् त्वदीयेह दासी भवन्तं समासाद्य धन्याद्य काशी॥९७॥

हे भगवन्! क्षमा के मन्दिर, क्षमा पृथ्वी शासक और क्षमता अर्थात् भूमि की कन्यासीता जी के पति भगवान् राम के आप अंशावतार हैं, तो फिर क्षमा आपकी दासी क्यों न हो? वस्तुतः आज आपको प्राप्त करके काशी धन्य हो गयी है।

उमा मां न्यगादीद् भवत्प्राप्तिमीड्यिां विभो मन्दिरस्यापवर्गेऽपवर्गाम्।
ततोऽहं झटित्यागतो मन्दिरात् स्वात् प्रतीक्षे भवन्तं यथा निर्धनः स्वम्॥९८॥

हे भगवन्! मुझे उमा ने सूचित किया कि आपकी मेरे मन्दिर के द्वार पर निष्पाप उपस्थिति हो चुकी है, यह सुनकर मैं अपने मन्दिर से आकर द्वार पर आपकी उसी प्रकार प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जैसे निर्धन धन की प्रतीक्षा करता है।

विलोक्याद्य धीमन् त्वदीयाङ्घ्रिपद्मं न तृप्यन्ति नेत्राणि मे कञ्जनेत्र।
गृहस्थाश्रमं सेवमानाः पुमांसः सतां दर्शनं पुण्यपुञ्जैर्लभन्ते॥९९॥

हे बुद्धिमन्! हे कमलनेत्र! आज आपके चरणकमल निहारकर मेरे नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हैं। क्योंकि गृहस्थाश्रम का सेवन करने वाले मुझ जैसे पुरुष बहुत बड़े बड़े पुण्यों से ही सन्तों का दर्शन कर पाते हैं।

अहो अद्य मे भागधेयं सुगेयं सभार्यस्य सत्पुत्रयुग्मस्य जिष्णोः।
जगद्देशिकेन्द्रस्य सन्दर्शनात्ते सतां दर्शनं प्राणिनां पारिजातः॥१००॥

आज आप जैसे जगद्गुरु शिरोमणि के श्रेष्ठ दर्शन से पार्वती कार्तिकेय और गणपति सहित मेरा शोभन गान योग्य बहुत बड़ा सौभाग्य है, क्योंकि सन्तों का दर्शन हम जैसे गृहस्थ प्राणियों के लिये कल्पवृक्ष के समान होता है।

अहं तारकं राममन्त्रं षडर्णं वसन् कम्रकाश्यां लसत्पुण्यराश्याम्।
सदा रामि रामाङ्घ्रिपाथोजभृङ्गो मुमुषोर्जनस्य श्रुतौ दक्षिणायाम्॥१०१॥

भगवन् मैं तो पुण्य की राशि से युक्त सुन्दर काशी में निवास करता हुआ, भगवान् राम के चरणकमल का भ्रमर बना हुआ मरणासन्न प्राणी के दक्षिणकर्ण में सदैव षडक्षर राममन्त्र प्रदान किया करता हूँ।

त्रिलोक्यालयो यस्य भङ्गाद्भ्रुवोर्वै श्मशानं जगद् यस्य वै ताण्डवेन।
स एवार्भकं रामचन्द्रं प्रपश्यन् प्रसीदामि नृत्याम्यहं चाध्ययोध्यम्॥१०२॥

जिसके भृकुटिभङ्ग मात्र से तीनों लोकों का प्रलय हो जाता है, जिसके ताण्डव से जगद् श्मशान बन जाता है, वही मैं शङ्कर श्री अयोध्या में बालरूप श्रीराम को देखकर प्रसन्न हो जाता हूँ और नाचता हूँ।

अहं रामचन्द्रस्य दासानुदासो जपाम्यन्वहं द्व्यक्षरं रामनाम।
निरीक्षे घनश्यामलं रामरूपं प्रतीक्षे परं दर्शनं रावणारेः॥१०३॥

मैं भगवान् श्रीरामचन्द्र के दासों का भी दास हूँ, मैं निरन्तर राम इस दो अक्षर नाम का जप करता रहता हूँ, अपने नेत्रों से घनश्यामल भगवान् के रूप को निहारता रहता हूँ, फिर भी रावण के शत्रु भगवान् राम के दर्शनों की प्रतीक्षा करता रहता हूँ।

ततो गच्छ साधो दिशन् राममन्त्रं जनान् पाहि दुःसङ्कटाद् भारतीयान्।
जगद्देशिकोऽप्यागतः पञ्चगङ्गासुघट्टे सतां पावने स्वे कुटीरे ॥१०४॥

इसलिए हे महात्मन्! अब आप जाइये, श्रीराम मन्त्र प्रदान करते हुए भारतीयों को भयङ्कर सङ्कट से बचाइये। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी भगवान् विश्वनाथ की अनुमति पाकर पञ्चगङ्गा घाट पर बने संतों को पवित्र करने वाले अपने कुटीर में पधार आये।

शुभे वैक्रमे सौम्यसंवत्सरे वै शरे राघवे प्राणसीतावरे च।
नवम्यां मधौ शुक्लपक्षे सुशीलासुतो रामचन्द्रे तिरोधात् सदेहः ॥१०५॥

इस प्रकार विक्रमी संवत् १५१५ की चैत्र शुक्ल नवमी को सुशीलानन्दन जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्य जी भगवान् रामचन्द्र में ही सशरीर विलीन हो गये।

एवं कृत्वा चरितमनघो विश्वविख्यातकीर्ती
रामानन्दो यतिकुलमणिर्वैष्णवं चापि धर्मम्।
गेहे गेहे दिशि दिशि पुनः स्थापयामास धीरः
काले प्राप्ते रघुपतिगिरा प्राप साकेतलोकम् ॥१०६॥

अनेक चरित्र करते हुए अपनी कीर्ति को विश्व में विख्यापित करके और घर-घर में वैष्णव धर्म की स्थापना करके भगवान् राम के ही आदेश में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी साकेत लोक को प्राप्त कर लिये।

योऽसौ देहो विशदविभया व्रीडितानेककामः
शङ्खो योऽसौ भवभयहरो यत्रिदण्डं प्रचण्डम्।
सर्वं चैतद् रघुपतितनुं सादरं चाविवेश
रामानन्दो जयति सततं देशिकः सर्वनृणाम् ॥१०७॥

इस प्रकार जो उनका दिव्य शरीर अपनी शोभा से करोड़ों कामदेवों को जीत रहा था और जो शङ्ख सभी के भव-भय हर रहा था और जो उनका वेदविरोधियों के लिए प्रचण्ड त्रिदण्ड था, वह सब कुछ भगवान् राम के शरीर में विलीन हो गया और आज भी सम्पूर्ण लोकों में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी की जय-जयकार हो रही है।

सीतारामाङ्घ्रिपद्मभ्रमरितसुमना दिव्यदेहो महात्मा
सौशीलेयः सुशीलो गुणगणसहितो विश्वविख्यातकीर्तिः।
विज्ञानाब्धिः स धीरो गुरुरथ जगतां श्रीधनश्चापि रामा-
नन्दाचार्यो मनस्वी जयति हि सततं श्रेयसे मङ्गलाय॥१०८॥

भगवान् सीताराम जी के चरणकमल में जिनका मन भ्रमर के समान विराजमान हो रहा है जो सद्‌गुणों के समुद्र हैं, ऐसे सुशीलानन्दन सुशील गुणगणों से युक्त, विश्वविख्यात यश वाले और विज्ञान के सागर ऐसे रामानन्दाचार्य जी की जगत् के कल्याण और मङ्गल के लिए जय हो, जय हो, जय हो।

रामानन्दाचार्यचरितसुमहाकाव्ये गायद्‌गिरिधरसुकविरामभद्राचार्ये।
सप्तविंशकः सर्गो यतिपतिगुणगरिमा सीतापतितुष्टये भवतु वैष्णवसुखदः॥१०९॥

इतिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्‌गुरुरामानन्दाचार्यमहाकविरामभद्राचार्य-
प्रणीते श्रीरामानन्दाचार्यचरितमहाकाव्ये सप्तविंशः सर्गः सम्पूर्णः।

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

विषयानुक्रमणिका

अथ प्रथमः सर्गः	15
अथ द्वितीयः सर्गः	36
अथ तृतीयः सर्गः	58
अथ चतुर्थः सर्गः	86
अथ पञ्चमः सर्गः	108
अथ षष्ठः सर्गः	130
अथ सप्तम सर्गः	151
अथ अष्टमः सर्गः	174
अथ नवमः सर्गः	198
अथ दशमः सर्गः	224
अथैकादशः सर्गः	253
अथ द्वादशः सर्गः	275
अथ त्रयोदशः सर्गः	299
अथ चतुर्दशः सर्गः	321
अथ पञ्चदशः सर्गः	344
अथ षोडशः सर्गः	366
अथ सप्तदशः सर्गः	387
अथाष्टादशः सर्गः	409
अथैकोनविंशः सर्गः	432
अथ विंशः सर्गः	453
अथैकविंशः सर्गः	475
अथ द्वाविंशः सर्गः	498
अथ त्रयोविंशः सर्गः	520
अथ चतुर्विंशः सर्गः	542
अथ पञ्चविंशः सर्गः	564
अथ षड्विंशः सर्गः	585
अथ सप्तविंशः सर्गः	608

❑❑

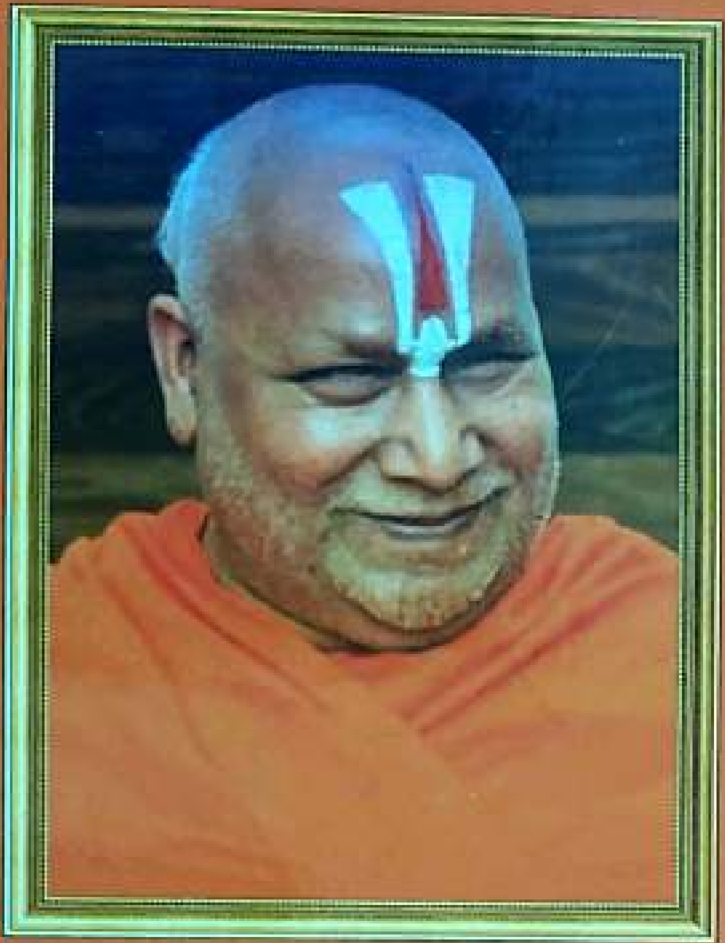

महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामिरामभद्राचार्य

आवरण सज्जा
रेमाधव आर्ट

Epic

9 789390 683857

अ अनामिका प्रकाशन
1981 से 2023 साहित्य के 42 वर्ष
52, तुलाराम बाग, प्रयागराज – 211006
09415347186, vinodshukla185@gmail.com